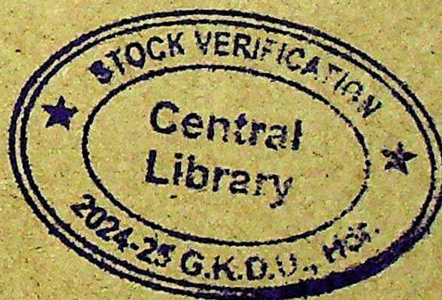
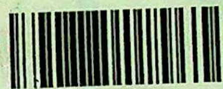
GYANODAYA AUG-NOV. 1961 G.K.U


STOCK VERIFICATION
Central
Library
2024-25 G.K.D.U., Hdr.


077994


STOCK VERIFICATION
Central
Library
2024-25 G.K.U., Hdr.

अनुक्रम

१. रवीन्द्र-अर्चना : नगर-लक्ष्मी — रवीन्द्रनाथ ठाकुर २
२. आज के युग में दर्शन का दायित्व — कार्ल यास्पर्स ६
३. संस्कृत काव्य के छः वर्षा-चित्र — रंगनाथ राकेश १२
४. एक इंच मुस्कान — मन्नू भण्डारी १६
५. नवलेखन : माध्यम मैं — डॉ० धर्मवीर भारती १७
६. दो कविताएँ — कान्ता २९
७. चाँदनी — नरेश मेहता ३०
८. प्रेम-पूछ-ताछ-घर — केशवचन्द्र वर्मा ३३
९. भविष्य बताने वाली संख्याएँ — कुमार काश्यप ४९
१०. सावन बाँध गया — महेन्द्र शंकर ५४
११. ये घाटियाँ : ये गूँजें—३ — बसन्त प्रभा ५५
१२. बच्चन : एक इण्टरव्यू — चन्द्रदेव सिंह ६१
१३. दूसरी आग — शानी ६७
१४. कड़वे सीमान्त पर — डॉ० कैलाश वाजपेयी ७२
१५. बातें, जिनमें सुगंध फूलों की—८ — अहमद सलीम ७३
१६. कहिये तो आपको तबलाएँ — रामेश्वरदयाल दुबे ७८
१७. ये फैले हुए हाथ — रामपद मुखोपाध्याय ८१
१८. सिर्फ इतना ही — विष्णुकान्त शास्त्री ८८
१९. भारत के ये आदिग्रंथ और ग्रंथकार — सूर्यनारायण सक्सेना ८९
२०. भारतीय परिवार अंक — एक सूचना ९३
२१. मरने के पहले और मरने के बाद — लक्ष्मीकान्त वर्मा ९८
२२. साहित्यार्चन — प्रो० कृष्णनन्दन पीयूष, डॉ० देवीशंकर अवस्थी ११५
२३. नये क्षितिज — यथागत १२३
२४. सृष्टि और दृष्टि — दूधनाथ सिंह, भगवान सिंह, राजकमल चौधरी १२६

सम्पादक

लक्ष्मीचन्द्र जैन

शरद देवड़ा

संचालक

भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता

कार्यालय

१८ बी, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता—१

Sole Selling Agents : Bennett, Coleman & Co., Ltd., Bombay-1.

दुर्भिक्ष श्रावस्तिपुरे यबे
जागिया उठिल हाहारवे,––
बुद्ध निज भक्तगणे शुधालेन जने जने
"क्षुधितेरे अन्नदान - सेवा
तोमरा लइबे बलो के-बा।"

शुनि' ताहा रत्नाकर शेठ
करिया रहिल माथा हेंट।
कहिल से कर जुड़ि––"क्षुधार्त विशालपुरी,
एर क्षुधा मिटाइब आमि––
एमन क्षमता नाइ, स्वामी।"

कहिल सामन्त जयसेन––
"ये-आदेश प्रभु करिछेन
ताहा लइताम शिरे यदि मोर बुक चिरे
रक्त दिले होत कोनो काज,
मोर घरे अन्न कोथा आज।"

निश्वासिया कहे धर्मपाल––
"की कब, एमन दग्ध भाल––
आमार सोनार क्षेत्र शुषिछे अजन्मा-प्रेत,
राजकर जोगानो कठिन,
हयेछि अक्षम दीनहीन।"

रहे सब मुखे मुखे चाहि',
काहारो उत्तर किछु नाहि।
निर्वाक से - सभाघरे व्यथित नगरी' परे
बुद्धेर करुण आंखि दुटि
सन्ध्यातारासम रहे फुटि'।



रवीन्द्रनाथ ठाकुर
अनुवाद : यथागत

श्रावस्ती नगरी में जब दुर्भिक्ष
हाहाकार करके उठ पड़ा,
तब भगवान बुद्ध ने जन-जन से पूछा :
"क्षुधितों को अन्नदान देने का सेवा-कार्य
बोलो तुममें से कौन लेगा ?"

सुन कर रत्नाकर सेठ ने
सिर नीचा कर लिया।
हाथ जोड़ कर उसने कहा--"इतना बड़ा नगर क्षुधा से पीड़ित है,
इसकी क्षुधा मैं मिटा सकूँ--
इतनी क्षमता मुझ में नहीं है, स्वामी !"

सामन्त जयसेन ने कहा--
"जो आदेश आपका है
उसे मैं सिर-माथे पर लेता हूँ, यदि अपना हृदय चीर कर
मैं रक्त दूँ, और उससे कुछ काम हो सके तो हाज़िर है,
आज मेरे घर में भला अन्न का दाना कहाँ ?"

धर्मपाल निःश्वास छोड़ कर बोला--
"क्या कहूँ, ऐसा फूटा भाग्य है मेरा--
मेरा सोने-सा खेत, अशरीरी प्रेत की तरह सूख गया
राजकर देना भी कठिन है।
मैं तो असमर्थ दीन-हीन हो गया हूँ।"

सब एक-दूसरे का मुख देखते रह गये
किसी के पास कोई उत्तर नहीं।
उस निर्वाक सभागृह में, व्यथित नगरी के उस पार
बुद्ध के दोनों करुणाप्लावित चक्षु
सन्ध्यातारे के समान खुले रह गये।

नगर-लक्ष्मी

तखन उठिल धीरे धीरे
रक्तभाल लाजनम्रशिरे
अनाथपिण्डद - सुता वेदनाय अश्रुप्लुता,
बुद्धेर चरणरेणु ल'ये
मुक्तकण्ठे कहिल विनये—

"भिक्षुनीर अधम सुप्रिया
तव आज्ञा लइल बहिया।
काँदे यारा खाद्यहारा आमार सन्तान तारा,
नगरीर अन्न बिलाबार
आमि आजि लइलाम भार।"

विस्मय मानिल सबे शुनि'—
"भिक्षुकन्या तुमि ये भिक्षुनी—
कोन् अहंकारे माति लइले मस्तक पाति'
ए हेन कठिन गुरु काज।
की आछे तोमार कह आज।"

कहिल से नमि' सबा काछे—
"शुधु एइ भिक्षापात्र आछे।
आमि दीनहीन मेये अक्षम सवार चेये,
ताइ तोमादेर पाब दया
प्रभु-आज्ञा हइबे विजया।

आमार भाण्डार आछे भेरे
तोमार सबाकार घरे घरे।
तोमरा चाहिले सबे ए पात्र अक्षय हबे
भिक्षा-अन्न' बांचाव वसुधा—
मिटाइब दुर्भिक्षेर क्षुधा।"

तब धीरे-धीरे उठी,
लाज से नीचा सिर किये, लाल-भाल
अनाथपिण्डद की पुत्री, वेदना के आँसुओं में डूबी,
बुद्ध की चरण-रज लेकर,
मुक्तकण्ठ से विनयपूर्वक बोली—

"मैं अधम सुप्रिया भिक्षुणी
आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करूँगी।
जो बिना अन्न के रो रहे हैं, वे सब मेरी ही सन्तान हैं
नगरी से अन्न प्राप्त करने का
भार आज मैं लेती हूँ।"

बड़े विस्मय से सब ने सुना—
"री भिक्षुणी, भिक्षु-कन्या, तू ने
किस अहंकार में मतवाली होकर, ये बोझ अपने सिर पर लिया है?
यह अत्यन्त कठिन और दुष्कर कार्य।
आज तुम्हारे पास ऐसा क्या है?"

सब के आगे विनम्र होकर उसने कहा—
"मेरे पास तो केवल यही एक भिक्षा-पात्र है,
मैं दीन-हीन लड़की सबसे ही अधिक असमर्थ हूँ।
तो भी यदि आपकी दया प्राप्त हुई,
तो मैं विजयी हो जाऊँगी।



मेरा भण्डार तो भरा हुआ है
आप सब के घर-घर में।
आप सब यदि चाहेंगे तो यह भिक्षापात्र अक्षय हो जायेगा।
भिक्षा के अन्न से मैं वसुधा की प्राण-रक्षा करूँगी,
दुर्भिक्ष की क्षुधा शान्त कर दूँगी।"



मूल : कार्ल यास्पर्स

दर्शन के एक प्रकाण्ड आधुनिक विद्वान द्वारा इस भ्रान्त धारणा का खंडन कि 'आज के युग में दर्शन अनुपयोगी हो चुका है'; तथा साथ ही उन दिशाओं का स्पष्ट निर्देश भी जिन पर चल कर दर्शन आज के मानव के लिए अधिक व्यावहारिक, महत्त्वपूर्ण और उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

• • •

आज दर्शन की क्या उपयोगिता है? प्रश्न पूछने पर हमें उत्तर मिलता है: कुछ भी नहीं, क्योंकि आज दर्शन में यथार्थ का अभाव है; आज तो यह गयी-गुजरी और अनावश्यक बातों में लगे रहने वाले कुछ विशेषज्ञों के दल का महज़ पर्यायवाची बन कर रह गया है। उनके मतानुसार दर्शन आज निरर्थक है, बीते दिनों का पत्थर का एक स्मारक मात्र, जो समय के थपेड़े खाकर आज ध्वस्त होने की प्रतीक्षा कर रहा है; संक्षेप में यह कि अब दर्शन का कोई कार्य नहीं रहा, उसकी किसी भी तरह की कोई उपयोगिता नहीं रही।

इस पूर्ण नकारात्मक स्थिति में, यह आवश्यक है कि हम एकदम प्रारंभ से ही अपनी विवेचना शुरू करें।

जहाँ कहीं मनुष्य अपने अस्तित्व के सम्बन्ध में विचारों के माध्यम से सोचने-विचारने लगता है वहीं दर्शन का जन्म हो जाता है। यह सर्वव्यापी है, भले ही हम लोग इस नाम से इसे न पुकारें। एक व्यक्ति, जब विचार करता है, सोचता है--हम कहेंगे कि वह उसी समय दर्शन के क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है। जिस जगह मानदण्ड निर्धारित किये जाते हैं और निर्णय दिये जाते हैं, वहाँ हम दर्शन को उपस्थित पाते हैं। यह जिस मात्रा में जागरूक और सचेत दार्शनिकों के स्वतंत्र चिन्तन-मनन में पाया जाता है, गिरजाघर के उपदेशों और प्रवचनों में उससे किसी भी कदर कम नहीं रहता है। यही क्यों, नास्तिकों के विश्वासों में, निहिलिज्म के विनाशकारी विचारों में, मार्क्सवाद में, मनोविश्लेषण में, और जीवन से सम्बन्धित आज

आज के युग में दर्शन का दायित्व

संक्षिप्त रूपान्तर : शरद देवड़ा

अन्य जितने सिद्धान्त प्रचलित हैं उन सब में दर्शन का अस्तित्व रहता है। दरअस्ल दर्शन के अस्तित्व को नकारने का सिद्धान्त भी स्वयं में एक किस्म के दर्शन का ही परिणाम है। अस्तु, दर्शन का कार्य—जिसका कि प्रतिनिधित्व विश्वविद्यालयों के आचार्य-गण करते हैं—इतिहास के जाने-माने महान् दार्शनिकों की कृतियों द्वारा इसी सर्वव्यापी और अनिवार्य दर्शन को प्रकाश में लाना है। इस कार्य का भी कुछ कम महत्त्व नहीं है।

लेकिन जब हम उन मूलभूत वास्तविकताओं पर विचार करते हैं जिन्होंने कि आज मानवता को चारों ओर से घेर रखा है तो उक्त व्याख्याएँ कितनी प्रभावहीन और तुच्छ लगने लगती हैं!

आज की सृष्टि पर जिन दो शक्तिशाली ताकतों का राज्य है वे हैं स्वतन्त्र दुनिया और टोटैलिटेरियनिज्म की दुनिया। इन दोनों को दृष्टि में रखना दार्शनिक चेतना का एक आवश्यक पहलू है। क्योंकि यही दोनों आज दर्शन की वास्तविक प्रकृति का स्वरूप-निर्धारण करती हैं। दूसरी ओर दार्शनिक विचारधारा ने इन वास्तविकताओं के उद्भव में योग दिया है, और अपनी शक्ति या कमजोरी के द्वारा कल की दुनिया की प्रकृति के निर्धारण में भी सहायक यह दार्शनिक विचारधारा ही होगी।

एक ओर स्वतंत्रता के द्वारा उपलब्ध प्रचुर सम्भावनाएँ हैं; दूसरी ओर मात्र एक मस्तिष्क द्वारा पूर्ण नियंत्रण। एक ओर अन्वेषण, वाद-विवाद और मस्तिष्क तथा पदार्थ का निरन्तर संघर्ष है; दूसरी ओर तथा-कथित पूर्ण ज्ञान और षड़यंत्रों का बोलबाला है। एक ओर संभाव्य की सीमाओं के भीतर व्यक्तिगत योजनाएँ हैं; दूसरी ओर बिना सीमाओं के परिपूर्ण योजनाएँ। एक ओर अव्यवस्था की सीमा को छूती हुई विभिन्नता है; दूसरी ओर इस कदर एकरूपता है कि परिणाम स्वरूप जिस तरह के चीटियों-जैसे राज्य का निर्माण होता है उसमें रहने वाले इन्सान इन्सान नहीं रहते, बल्कि किसी निर्जीव तत्व की तरह दल, नौकरशाही, पुलिस और फौज द्वारा निगल लिये जाते हैं।



टोटैलिटेरियन शासन-पद्धतियों की कार्य-

प्रणाली इस धारणा पर आधारित है कि उन्हें इतिहास के चक्र और प्रकृति के कार्य-कलापों की पूरी जानकारी है। इसी पूर्ण जानकारी के आधार पर वे अपनी पूर्ण योजनाएँ बनाते हैं। लेकिन किसी के लिए भी सम्पूर्ण विश्व के अन्तर्बाह्य को अधिकृत कर लेना संभव नहीं होता, तिस पर भी यदि कोई ऐसा प्रयत्न करता है तो वह अपनी ताकत के जोर से विश्व पर अधिकार कर तो सकता ही है, लेकिन यह विश्व को बहुत-कुछ उसी तरह कब्जे में करना होगा जिस तरह कि एक हत्यारा लाश पर कब्जा करता है; एक सर्व-कल्याणकारी विश्व के निर्माण के लिए अपने समान अन्य इन्सानों के साथ सहयोग-पूर्वक कार्य करनेवाली भावना इसमें कहाँ !

टोटैलिटेरियनिज्म के साम्राज्य में दर्शन का सदा के लिए खात्मा कर दिया गया है। जर्मनी में इसका स्थान राजनीति-शास्त्र ने ले लिया है। उधर मार्क्सवाद को बोल-शेविज्म ने स्थानच्युत कर दिया है। इसीलिए पूर्वी जर्मनी के विश्वविद्यालयों में सभी विद्या-र्थियों के लिए अध्ययन का प्रमुख विषय दर्शन न होकर मार्क्सवादी समाजवाद है। राष्ट्रीय समाजवाद और बोलशेविज्म अपने सिद्धान्तों के ही सम्पूर्ण सत्य होने का दावा करते हैं। जो इस सत्य का विरोध करता है उसका सफाया कर दिया जाता है।

इस तरह के भय के साम्राज्य में विचारकों द्वारा भला किस कार्य में हाथ लगाये जाने की उम्मीद की जा सकती है? ऐसी पद्धति में व्यक्ति की असहायता स्वयं-स्पष्ट है।

स्वतंत्र दुनिया में इससे क्या अन्तर दिखाई देता है? यहाँ व्यक्ति के संसार पर कोई बाहर से कब्जा नहीं करता। यहाँ इन्सान अपने अन्य साथियों के साथ मिल कर विश्व को जीतने का प्रयास करता है। यहाँ वह कानून और व्यवस्था के घेरे में रहते हुए स्वतंत्र प्रतिद्वन्द्विता के द्वारा अपने अस्तित्व और

निर्णय

एक भाई ने पूछा, "निर्णायक हम स्वयं हैं, फिर गुरु को क्यों मानें ?"

मैंने कहा, "गुरु को इसलिए मानते हैं कि हम स्वयं निर्णायक हैं। हमें जो अपने से बड़ा लगता है, उसी को हम गुरु मानते हैं, उसे गुरु नहीं मानते जो हमें अपने से छोटा लगे।

"शब्दों की दुनिया में कहा जाता है—हम आप्त वाणी को मानते हैं, शास्त्रों को मानते हैं, गुरु को मानते हैं, आदि-आदि। पर सचाई यह है कि हम अपने आपको मानते हैं, अपनी बुद्धि को मानते हैं, अपनी रुचि को मानते हैं, अपने संस्कारों को मानते हैं।

"यह जगत् संकुलता से भरा है। शब्द एक है, अर्थ अनेक। एक पाठ के अनेक आचार्यों ने अनेक अर्थ किए हैं। किसे मान्य किया जाए? इसका निर्णय आगम नहीं करते, हम स्वयं करते हैं। गुरु जो व्याख्या देता है, उसे भी हम अपनी बुद्धि द्वारा अपने संस्कारों व रुचि के अनुरूप ढालने का यत्न करते हैं।

अपने प्रभाव को कायम रखने का प्रयत्न करता है। यहाँ किसी सर्वज्ञाता और सर्वशक्तिशाली ताकत का पंजा उसके ऊपर सदा कसा हुआ नहीं रहता। अगर कुछ अनुचित और अवांछनीय स्थितियों का अस्तित्व है भी तो वह अच्छे कानूनों और बेहतर सुविधाओं के निर्माण द्वारा उन्हें दूर करने का प्रयत्न करता है।

स्वतंत्र दुनिया के क्षेत्र में संभावनाओं की अनेकता के कारण दार्शनिक विचारधारा भी अनेक धाराओं में प्रवाहित होती है। यहाँ भी हम व्यक्ति की वही असहायता की भावना उपस्थित पाते हैं––इसलिए कि यहाँ व्यक्ति लाखों-करोड़ों में अकेला होता है। लेकिन कमजोरी और असहायता की यह चेतना मूलतः उससे भिन्न है जिसका अनुभव व्यक्ति को टोटैलिटेरियनिज्म के अन्तर्गत होता है। जिस तरह कि चुनावों में किसी एक मत का कोई महत्व नहीं होता, फिर भी इन मतों का सम्पूर्ण योग ही परिणाम को निर्धारित करता है, उसी तरह स्वतंत्र दुनिया के क्षेत्र में घटनाओं के निर्धारण में व्यष्टिगत कार्यवाहियों का कोई महत्व नहीं होता; लेकिन समझदार व्यक्ति जानते और मानते हैं कि एक मत का महत्त्व कम भले ही हो अन्तिम परिणाम के निर्धारण में उसका भी अपना महत्त्व और दायित्व होता जरूर है। इस तरह एक स्वतंत्र व्यक्ति अपने सम्पूर्ण जीवन को मशीन के एक ऐसे सूक्ष्म पुर्जे के रूप में मानता है जिसका अपना अलग से कोई महत्त्व भले ही न हो, लेकिन पूरी मशीन की गतिविधि को चालू रखने के लिए उसका भी सहयोग अनिवार्य तो है ही। व्यक्ति की यही अनुभूति है जो स्वातंत्र्य की भावना को जीवित रखती है।

दर्शन के बहुत-से आचार्यों की यह मान्यता रही है कि एक विश्वविद्यालय में दर्शन का केवल एक ही प्राध्यापक रहना चाहिए––एक से अधिक प्राध्यापक रहेंगे तो वे विद्यार्थियों

उसमें ढले तो ठीक, नहीं तो उसे हृदय से मान्यता नहीं देते। वाणी किसी सर्वज्ञ की हो या असर्वज्ञ की, सिद्धान्त किसी सर्वज्ञ का हो या असर्वज्ञ का वह हमारा होकर ही मान्यता प्राप्त कर सकता है, अन्यथा नहीं। जो बात हमारी समझ में आती है उसे हम प्रत्यक्ष मान्यता देते हैं और जो बात हमारी समझ में नहीं बैठती उसे हम श्रद्धा से मान्य करते हैं। श्रद्धा और क्या है?––हमारी ही बुद्धि का निर्णय है। हमने मान लिया कि अमुक व्यक्ति की बात मिथ्या नहीं हो सकती, हमारी समझ अधूरी हो सकती है। इसीलिए उसकी सब बातें हम मान्य कर लेते हैं, भले ही फिर वे समझ में आयें या न आयें। श्रद्धा हमारी बुद्धि का स्थित-पक्ष है। इसका अर्थ यह नहीं कि समझ से परे जो भी है उसे आँख मूँद कर मान्य कर लें, किन्तु इसका अर्थ यह होना चाहिए कि जो समझ से परे है, वह समझ का विषय बने इतना धैर्य रखें। सत्य-जिज्ञासा की लौ बुझ न पाए, आग्रह का भाव बच न पाए।"

––मुनि नथमल

के दिमाग को उलझन में डाल देंगे। कुछ दूसरों ने--जिनकी आस्था केवल एक दर्शन की सत्यता में रही है--यह भी आवाज उठायी है कि समूचे राष्ट्र के लिए भी केवल एक ही दार्शनिक रहना चाहिए--निश्चय ही इस सम्मान का एकमात्र अधिकारी वे स्वयं को ही समझते हैं। इन दावेदारों के दर्शन की कथा-सामग्री जो भी रही हो, इनके सोचने की दिशा समान है। ये दरअसल टोटैलिटेरियनिज्म के लिए रास्ता साफ कर रहे हैं।

× × ×

आधुनिक युग में आध्यात्मिक ह्रास का एक प्रमुख कारण उलझनभरी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रभाव है। आज हम ज्ञान में आस्था रखते हैं। ज्ञान ही वह शक्ति है जिसकी हम आराधना करते हैं।

कुछ उदाहरण लें :

प्रसिद्ध अंग्रेज दार्शनिक बर्ट्रेण्ड रसल का यह विश्वास है कि मानवता का एक सूत्र में मिलन ज्ञान के द्वारा ही संभव होगा। लेकिन दरअसल ज्ञान के द्वारा मनुष्य केवल बुद्धि से सम्बन्धित बातों के सम्बन्ध में ही परस्पर मिल सकते हैं उनके हृदय नहीं मिल सकते। क्योंकि वैज्ञानिक समस्याओं में सहमति का अर्थ भावनाओं की सहमति नहीं होती। मात्र विज्ञान से इस उपलब्धि की अपेक्षा करना विज्ञान के प्रति अन्याय ही साबित होगा।

सन् १९१० की आधुनिकतावादियों की सौगन्ध में एक वाक्य इस प्रकार है : "मेरा विश्वास है कि ईश्वर को उसकी सृष्टि के दृश्य उपादानों द्वारा निश्चित रूप से पहचाना और सिद्ध किया जा सकता है जिस प्रकार कि किसी भी कार्य द्वारा उसके कारण का पता लगाया जा सकता है।" सचमुच आश्चर्य की बात है! ईश्वर के अस्तित्व का प्रमाण तो केवल आस्था से ही मिल सकता है। लेकिन जो सिद्ध किया जा सकता है वह आस्था पर निर्भर नहीं रहा करता। जहाँ बुद्धि किसी पदार्थ को सिद्ध कर सकती है वहाँ आस्था की स्वीकारोक्ति की आवश्यकता ही नहीं रहती।

एक तीसरा उदाहरण टोटैलिटेरियन शासन-व्यवस्थाओं की चिन्तन-प्रणाली का लिया जा सकता है। वे अपने दावों को ज्ञान पर आधारित बताते हैं। लेकिन इस ज्ञान की स्वीकृति के लिए दूसरों से आस्था की माँग करते हैं। उदाहरण के लिए उनकी मान्यता है कि, "अन्य किसी भी वस्तु का अस्तित्व नहीं है सिवाय इस सृष्टि के और उसके जिसको मनुष्य उपलब्ध कर सकता है।" हालाँकि इस कथन की नींव ज्ञान है लेकिन आश्चर्य है कि उनका यह कथन मुझसे पूर्ण आस्था कि मांग करता है और कहता है कि मुझे पूरी तरह से इसका 'विश्वास' करना चाहिए, इसलिए मुझे इसके सम्बन्ध में किसी तरह की कोई आपत्ति नहीं उठानी चाहिए, कोई संदेह व्यक्त नहीं करना चाहिए; कोई प्रमाण नहीं माँगना चाहिए; संक्षेप में मुझे इसकी वैज्ञानिक रीति से किसी भी तरह की कोई जाँच नहीं करनी चाहिए।

ये उदाहरण परस्पर एक दूसरे से चाहे जितने भिन्न हों, वे सब करते हैं एक ही दिशा की ओर इंगित जिसने कि आधुनिक चेतना

को उलझन में डाल दिया है। इन सब का मूल स्वर यह है कि जो सचमुच में आस्था की चीज़ है उसे हम ज्ञान के द्वारा प्राप्त कर सकते हैं। लेकिन आस्था मानव अस्तित्व की वह अनिवार्य शर्त है जिसका स्थान ज्ञान कभी नहीं ले सकता। विज्ञान जिस चीज़ को कभी उपलब्ध नहीं कर सकता उसी की उससे अपेक्षा की जाती है। यह एक तरह का वैज्ञानिक अन्धविश्वास है जिसका प्रचार विज्ञान के अंध-भक्तों द्वारा किया जाता है।

आज दर्शन का सबसे बड़ा कार्य है कि वह विज्ञान और दर्शन के सम्बन्धों का स्पष्टीकरण करे। यह स्पष्टीकरण वैज्ञानिक अंधविश्वास से हमें छुटकारा दिलाएगा, और परिणामतः एक ओर जहाँ हमारे अनिवार्य आधुनिक विज्ञानों की आश्चर्यजनक उपलब्धियों का वास्तविक अर्थ और उनकी सीमाएँ निर्धारित करेगा, वहीं दूसरी ओर स्वयं दर्शन की संभावनाओं के प्रति भी हमारे विश्वास की वृद्धि करेगा।

• •

ज्ञानोदय के ग्राहकों से

प्रत्येक मास हम बहुत ही सतर्कता और सावधानी के साथ अपने ग्राहकों को 'ज्ञानोदय' के अङ्क भेजते हैं, और डिस्पैच की तारीखें ऐसी बँधी हुई हैं कि प्रत्येक ग्राहक को मास के प्रथम सप्ताह के अन्दर अन्दर उस मास की प्रति पहुँच जाती है। दुहरी जाँच के बावजूद यदि कभी किसी मास, किसी ग्राहक को अंक नहीं प्राप्त हो तो उनसे हमारा साग्रह निवेदन है कि वे १० तरीख के अन्दर ही स्थानीय डाक-घर से पूछ-ताछ करें और डाक-विभाग से लिखित शिकायत कर, उसकी प्रतिलिपि के साथ हमें लिखें ताकि हम यह पता लगाने में समर्थ हो सकें कि आखिर गड़बड़ी कहाँ और कैसे हुई है।

व्यवस्था की सुविधा और पत्र-व्यवहार में शीघ्रता लाने हेतु ग्राहकों से यह भी प्रार्थना है कि वे किसी भी प्रकार का पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख करना न भूलें। यदि किसी सज्जन को, अपनी ग्राहक-संख्या ज्ञात न हो तो रैपर पर अपने नाम और पते के आगे अंकित संख्या को नोट कर लेना चाहिए।

—व्यवस्थापक, ज्ञानोदय

एक भाव पर आधारित कई कविताओं वाली इस सीरीज के अन्तर्गत जुलाई अंक में 'आधुनिक बंगला की चार प्रेम-कविताएँ' प्रस्तुत की गयी थीं ; अब इस अंक में पढ़ें : 'संस्कृत काव्य के छः वर्षा-चित्र !'

निसर्गतः संस्कृत भाषा और इसका वाङमय सात्यन्त उदात्त, रस-पेशल, कोमल और स्वभाविक है। हृदय की वृत्तियों का, विभिन्न दशाओं में उत्पन्न होने वाले मानसिक विकारों का सहज, सुन्दर चित्रण संस्कृत काव्य की भूयसी विशिष्टता है। तप-त्याग-तपोवन के 'युटोपियन' आदर्श और नैतिक निकष से परे जन-साधारण का ध्यान संस्कृत काव्य में सर्वथा-सर्वदा रक्खा गया है। जो कुछ यहाँ है वह अन्यत्र है, पर जो यहाँ नहीं है वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है—यही कहा जा सकता है : 'यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्।'

कालिदासानन्तर ऋतु वर्णनों और चित्रणों में आलंकारिक रूढ़िमयता (Decorative dogmatism) और कृत्रिमता तथा कवि-प्रसिद्धियों और 'श्रूयते हि पुरा लोके' का अंधानुकरण प्रारंभ हो गया। माघ का शिशुपाल वध (सर्ग ६), श्री हर्ष का नैषधीय चरित (सर्ग ४) आदि इसके प्रमाण हैं। वह सहजता, स्वाभाविकता और स्वीय अनुभव जो वाल्मीकि किंवा कालिदास में प्राप्य है, परवर्ती कवियों में नहीं। **पाणिनि** (७०० वर्ष ईसा पूर्व), **वाल्मीकि** (५०० वर्ष ईसा पूर्व), **माघ** (६७५ ईस्वी), **कुमार दास** (५०० ईस्वी), **विज्जिका** (६२० ईस्वी) तथा **पद्मावती** (१६०० ईस्वी) के वर्षा-चित्रणों में प्रावृट् काल का वर्णन प्राकृतिक और सहज हुआ है। **पाणिनि** में आलंकारिक छटा तथा काव्यत्व की ताजगी एवं सजीव उत्प्रेक्षा है। **वाल्मीकि** में 'ग्राफिक' चित्रण, 'डाइरेक्ट एप्रोच' तथा रसोद्रेक की अपूर्व क्षमता है जो होमर और दान्ते में दृष्टिगोचर होती है। 'माघे सन्ति त्रयोगुणाः' की लोकोक्ति में सत्यता तो है ही ; उपमा, अर्थ गौरव और पद लालित्य में **माघ** बेजोड़ हैं समूचे संस्कृत काव्य में। **कुमारदास** पर कालिदास का प्रभाव पड़ा है। **विज्जिका** आचार्य दण्डी की समकालीन थी, उसमें तत्कालीन प्रगल्भ मुखरता और नारी-हृदय की सहृदयता का सामंजस्य

संस्कृत काव्य के छः वर्षा-चित्र

है। **पद्मावती** पण्डितराज जगन्नाथ की समकालीन थी; उसमें नारी-सुलभ आकुलता तथा विह्वलता है जो मन को बींध देती है।

यहाँ क्रमागत कालक्रम से पाणिनि, वाल्मीकि, कुमारदास, विज्जिका, माघ और पद्मावती के काव्यों से वर्षा-चित्र दिये जा रहे हैं। अनुवादों में मूलात्मा का ध्यान रखा है और शब्दशः तथा भावार्थतः इन्हें रूपान्तरित किया है।

वाल्मीकि | वर्षा-चित्र : १

सन्ध्यारागोत्थितैस्ताम्रैरन्तेष्वधिकपाण्डुरैः।
स्निग्धैरभ्रपटच्छेदैर्बद्धव्रणमिवाम्बरम् ॥
मन्दमारुतनिःश्वासम् सन्ध्या चंदन रंजितम्।
आपाण्डु जलदम् भाति कामातुरमिवाम्बरम् ॥
मेघोदरविनिर्मुक्ता कह्लारसुखशीतलाः।
शक्यमञ्जलिभिः पातुं वाताः केतकगन्धिनः ॥

सान्ध्यवर्णी-तांबई औ' पीत चिकने मेघ-पट;
कि जैसे पट्टियों से घाव-बंधा यह आकाश।
मंद वायु के निःश्वास वाला यह पीला बादर--
संझा रूपी चन्दन से रंगा हुआ
लगता है जैसे कामातुर।
मेघिल कमल-गंधापूरिता यह वायु
केतक गंध-भीनी,
आंजुरी में पेय।



पाणिनि | वर्षा-चित्र : २

निरीक्ष्य विद्युन्नयनैः पयोदो,
मुखं निशायामभिसारिकायाः।
धारानिपातैः सह किन्नुवान्तः,
चन्द्रोऽयमित्यार्ततरम् ररास।

रात्रि वेला में अपनी बिजुरी-आँखों
कान्तिपूर्ण अभिसारिका का मुख देख
करुण-क्रन्दन कर रहे हैं मेघ--
कि कहीं धारानिपात संग चन्द्र भी गया हो टूट !

कुमारदास | वर्षा-चित्र : ३

इह धातुसानुषुनिषण्णदृशः,
शिरसिस्थितासित घनावलिषु ।
मृगयोषितो जहति मुग्धधियो,
दवकृष्णपद्धतिभयम् न चिरम् ।।

यहाँ अवस्थित सिर के ऊपर काली मेघावलियाँ,
धातु-चोटियों पर बैठीं ये मुग्ध हरिणियाँ--
इन्हें देख कर दावानल-पथ के
भय को त्याग नहीं पाती हैं।

विज्जिका | वर्षा-चित्र : ४

सोत्साहा नव-वारि-भार-गुरवो,
मुंचन्तु नादम् घनाः ।
वाता वान्तु कदम्बरेणु-शबला
नृत्यन्त्वमयी बर्हिणः ।
मग्नां कान्त-वियोग-दुःख-जलधौ
दीनां विलोक्यांगनाम् ।
विद्युत् प्रस्फुरसि त्वमप्य करुणा
स्त्रीत्वेऽपि तुल्ये सति ।।

उत्साह वाला नव-जलद छोड़े भले ही नाद,
कादम्ब केसर से पगी यह वायु पसरे,
नाचें मत्त मोर।
किन्तु चपले ! पति-विरह के दुःखसागर--
में निमज्जित अंगना को देख कर,
जो कौंधती है नारि होने पर अरी
तो निष्ठुरा तू !

माघ | वर्षा-चित्र : ५

स्फुरदधीरतडिन्नयना मुहुः प्रियमिवागलितोरुपयोधरा ।
जलधरावलिरप्रतिपालितस्वसमया समयाञ्जगतीधरम् ।।
दलितमौक्तिकचूर्ण विपाण्डवः स्फुरितनिर्झरशीकरचारवः ।
कुटजपुष्पपरागकणाः स्फुटम् विदधिरे दधिरेणु विडम्बनाम् ।।

अनबरसीं ये अभ्रावलियाँ चंचल नेत्रों वाली (बिजुरी)
नियत काल को छोड़ (रैवतक) पर्वते आ हुई उपस्थित
जैसे चंचल नयना-उन्नत कुच-कुंभो वाली प्रिया-नायिका
प्रिय के पास स्वयं आ जाती कामातुरता के कारण ।
पीसे गये मुक्ता-चूर्ण समान श्वेत--
स्फुरिताभ झरनों के सूक्ष्म जल-बिंदु सदृश :
इन्द्रयव के मनोहर पुष्प-पराग-कण
लगते हैं दही के चूर्ण जैसे ।

पद्मावती | वर्षा-चित्र : ६

नायं गर्जः, किमुत ? मदनप्रौढ़ निसाणशब्दो
नैते मेघाः, किमुत ? मदनस्योद्धरा सिन्धुरास्ते ।
नैषा विद्युत, किमुत ? जयिनी तत्करे कापिशक्ति-
नैन्द्रश्चापः, किमुत ? जगतां मोहनास्त्रं स्मरस्य ।

यह गरज नहीं है ! तो क्या ?
कन्दर्प के जबरदस्त नगाड़ों के शब्द ।
यह मेघ नहीं, तो क्या ?
कामदेव के धुरों वाले घोड़े-हाथी ।
यह बिजली नहीं, तो क्या ?
उसके हाथ में कोई विजयिनी शक्ति ।
यह धनुष नहीं, तो क्या ?
जगत्-हेतु मदन का मोहनास्त्र ।



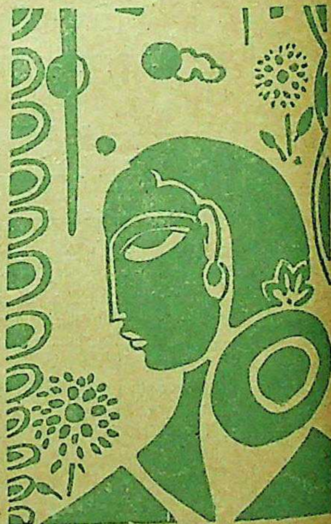
राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी का धारावाही सहयोगी उपन्यास

एक इञ्च मुस्कान

सूचना
और
बधाई

'एक इंच मुस्कान' का आठवाँ अध्याय जो इस अंक के लिए प्रस्तावित था श्रीमती मन्नू भण्डारी को लिखना था। यह अध्याय वे नहीं लिख पाई हैं। ज्ञानोदय के सहस्रों पाठक-पाठिकाएँ जो इस कृति के अगले अध्याय को पढ़ने के लिए प्रति मास ज्ञानोदय के नये अंक की प्रतीक्षा करते हैं, यह समाचार पढ़कर कदाचित् निराश होंगे। किन्तु जब उन्हें कारण ज्ञात होगा तो निश्चय ही वे प्रसन्न होंगे और उपन्यास के लेखक-दम्पत्ति को बधाई देने में हमारे सहयोगी होंगे : मन्नूजी के अंक में नयी कृति ने जन्म लिया है—कविता-सी सुन्दर एक कन्या ने ! अस्तु, आशा है मन्नूजी के आठवें अध्याय के लिए अब आपको सितम्बर अंक की प्रतीक्षा करना खलेगा नहीं।







० डॉ० धर्मवीर भारती

हिन्दी नवलेखन—(१)

'आधुनिक विदेशी साहित्य' वाली लेखमाला पर हमें जो प्रतिक्रियाएँ प्राप्त हुई उनका प्रमुख स्वर था कि 'यह तो है सो बहुत ठीक है ही, लेकिन केवल यही क्यों ?.....यानी केवल आधुनिक विदेशी साहित्य पर ही क्यों ? आधुनिक हिन्दी साहित्य पर भी क्यों नहीं ?'....

और परिणामस्वरूप 'हिन्दी नवलेखन' शीर्षक यह नयी लेखमाला आपके सम्मुख प्रस्तुत है।

'नवलेखन' शब्द जहाँ एक ओर काल का बोध कराता है, वहीं आज वह एक विशिष्ट साहित्यिक कृतित्व के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है।

अस्तु, इस लेखमाला के अन्तर्गत आप 'हिन्दी नवलेखन' की विविध समस्याओं और प्रवृत्तियों पर विचार-विमर्श तथा प्रतिनिधि कृतियों और कृतिकारों का लेखा-जोखा तो पायेंगे ही, साथ ही उस आधुनिक कृतित्व से भी वंचित नहीं रहेंगे जो नवलेखन के विशिष्ट साँचे में भले ही फिट नहीं हो पाये, हिन्दी के कृति-साहित्य की महत्वपूर्ण उपलब्धि तो है ही।

नवलेखन : माध्यम में

[कुछ स्नैपशाट्स]

मैंने अमुक कृति क्यों लिखी? कब लिखी? उसके द्वारा नवलेखन का कौन-सा पक्ष उभरा, क्या उसने कोई मान स्थापित किये? ये सवाल दरपेश हैं।

और मेरा मन है कि पुरानी यादों में डूब जाने को आतुर है। उसे इतनी भी ताब नहीं कि सवालों का मुख्तसर-सा जवाब देने का शिष्टाचार तो निभा दे! सवालों को साथ-साथ लिये-दिये वह यादों में डुबकी लगा जाता है।

"सम्मुख होकर जो भी आया है और गया भी है
बाँधा है उसने मुझको हर बार और नया भी है
. . . .
दुनिया के मेले में केवल बच्चा हूँ!"

—अजित कुमार.

(१)

......चारों तरफ मेला लगा है। भीड़-भाड़, खरीद-फ़रोख्त, आवाजाही। झूलों की चररमरर, सर्कस का भोंपू, आरती के घंटे। मैंने मनिहारिन का वह रंगीन काँच का खिलौना मोल ले लिया है और उसे हर तरफ से खोल डाला है। कहाँ गया वह खूबसूरत तिलिस्म? काँच की दो-तीन नलियाँ और कटोरी में सादा पानी! मैं हक्का-बक्का हूँ और लज्जित। मनिहारिन हँस रही है, जीजी हँस रही हैं, दूकान पर खड़े दूसरे बच्चे और बड़े हँस रहे हैं। चारों ओर की विद्रूप भरी हँसी से आहत होकर मेरा शिशु-मन घबरा गया है, आँखें छलछला आयी हैं और बस यह इच्छा हो रही है कि जीजी मेरा हाथ छोड़ दें और मैं भागता हुआ जाऊँ और सीधे जमुना में डूब मरूँ। मैंने उस काँच के तिलिस्म का अन्दरूनी क्या और कहाँ देखना चाहा था और हाथ लगे सिर्फ काँच के टुकड़े, पानी और हँसी के ठहाके!

मेला कातिक का था, जो हर साल जमुना किनारे लगता था। अब भी लगता होगा। रेशम, ऊनी कपड़े, साड़ियाँ, बर्तन, चूड़ियाँ, सीपी के बटन, सिन्दूर, सूई के पत्ते, पत्थर की कूँड़ियाँ, रंगे हुए बेलन, क्या नहीं मिलता था वहाँ! माँ आर्यसमाजी हैं। इन मेलों-ठेलों ने देश का नाश किया अतः उन्हें इसमें दिलचस्पी नहीं। बगल वाले घर की जीजी का मैं लाड़ला था। उनके ठाकुर जी के लिए स्कूल के अहाते से कनेर और मधुमालती के फूल लाने से लेकर दोपहर को चिल्ला कर राधेश्याम की

रामायण गाना. यह मेरा रोज का कार्यक्रम था। फलस्वरूप हरछठ पर छोटी-छोटी कुल्हियों में भुने चने, मकई, मटर भरने में, जन्माष्टमी पर पंजीरी पंचामृत बनाने में, और कातिक में मेले से साल भर की खरीद-फरोख्त करने में मैं उनका सलाहकार और छोटा सिपाही था।

इस बार मेले में मनिहार की दुकान की चर्चा बहुत जोर में थी। फतेहपुर वाली चाची ने मेले से लौट कर बताया, "हाय भैया, ऐसा बढ़िया फव्वारा है कि बीस रंग का पानी ओमें कुलेल करत है, और छुवै की जरूरत नैं, चाभी लगाय देव और फव्वारा आपै आप चलत रहत है।" जब ऐसी चीज आयी है तो जीजी अपने लाड़ले छोटे सिपाही को कैसे न दिलायें! दो रुपया मुझे दिया गया और मैं मेले में गया। चूड़ियों की दुकान। कुछ चूड़ियाँ अन्दर से खोखली होती हैं। बहुत से रंगों की ऐसी तमाम चूड़ियों को जोड़-जोड़ कर एक गोरखधंधा-सा बनाया गया था। ऊपर नीचे दो टीन के बर्तन थे जिनका पानी इन गोरखधंधे में से होकर गुजरता था। लगता था हजारों रंग कांच की उन नलियों में से बेतहाशा पगलाये हुए दौड़ रहे हैं। एक दूसरे की आभा लेकर नये-नये रंग बन रहे हैं और कातिक की सबेरे की हल्की धूप में उन रंगों की छाया किरणें काँच के ऊपर-ऊपर साथ-साथ दौड़ रही हैं। जिसने देखा मन्त्र-मुग्ध रह गया। खिलौने का दाम पाँच रुपये था। जीजी ने मेरे मुँह पर उत्सुकता देखी, बगल वाले जान-पहचान के खत्री बिसाती से तीन रुपये तुरंत उधार लिये और खिलौना मेरा हो गया।

इस होनहार विरवान के पात 'चीकने' तो कभी नहीं रहे, न आज हैं, पर शायद किसी भावी नवलेखन के व्याख्याकार की आत्मा मेरी काया में प्रवेश कर गयी होगी, तभी न वह तिलिस्म हाथ में आ जाने के बाद नवलेखन का बौद्धिक, वैज्ञानिक और विश्लेषक आधुनिक मिजाज मुझ में जागा? बौद्धिक मिजाज ने जानना चाहा कि इतने रंग इसमें कहाँ से आते हैं, वैज्ञानिक मिजाज ने निश्चय कर लिया कि जो बात मनिहार जैसा महामानव कर सकता है वह मुझ जैसा लघुमानव क्यों न कर लेगा! विश्लेषक मिजाज ने पाँच रुपये दिये और पानी के बर्तन और काँच की नली के बीच के रबड़ ट्यूब को निकाल दिया। पानी नीचे गिर गया। उसके बाद मैंने पुनर्सृजन शुरू किया मगर चूड़ियों में पानी नहीं आया तो नहीं आया! भीड़ में से दो-चार ज्ञानियों ने आजमूदा नुस्खे बताये मगर बात बिगड़ती गई। उसके बाद पहले मनिहारिन हँसी और फिर भीड़। मैं लौटा तो खिलौना जीजी की डोलची में था मगर मेरे गाल पर आँसू की बड़ी-बड़ी लकीरें बन गयी थीं और हर दस कदम पर एक हिचकी आ जाती थी।

मेला आज भी लगा है। लेकिन एक साधारण करामात के खिलौने का विश्लेषण जिससे नहीं हो सका वह बड़ी सम्पूर्ण कृतियों का ब्यौरेवार विश्लेषण करके रख दे, वैसा गर्व बचपन के साथ चला गया। सिर्फ इतना जानता हूँ कि साधारण शिल्प में भी जाने कितनी चीजें होती हैं जो मिल कर गति का, रंग का, वैविध्य का आभास देती हैं। मगर जो मूल स्रोतस्विनी उस रंग-विरंगे परिवेश में से बहती है वह उद्गमस्रोत और अभीप्ट गंतव्य के किस सापेक्ष संतुलन से आती है वह बात तो अभी भी धीरे-धीरे जानने के लिए हर अच्छे-बुरे में से जी रहा हूँ।

वैसे मेले में आसपास कई लोग ऐसे हैं जिनके पास अपने-अपने आजमूदा नुस्खे हैं, वे सब कुछ पहले से जानते हैं, जानते आये हैं, जानते रहेंगे। खुद उन्होंने कभी कोई चीज बनायी है या नहीं, नहीं मालूम। कभी किसी चीज का मूल्य दिया है जीवन में, या नहीं, यह भी नहीं मालूम। लेकिन उनके आजमूदा नुस्खे की घोषणा बराबर सुन पड़ती है। यहाँ उसके आधार पर विश्लेषण करने चलिये तो उससे बात और बिगड़ती जाती है। बस इतना जानता हूँ कि जितना मैं नहीं जान पाया हूँ उसके बारे में यह गर्व नहीं है कि वह सब मेरा जाना हुआ है। पर साथ ही साथ न जानने की स्थिति को भगवान की कृपा मानकर बैठ जाऊँ और जानने को, जानने की प्यास को और सारी कोशिशों के बावजूद न जान पाने की आकुलता भरी तड़प को हेय मानूँ, तिरस्कार योग्य मानूँ, यह भी नहीं है। जीवन के मर्म को पूरी तरह न जानने का बोध, जानने की चरम आकुल प्यास और उसको जानने की प्रक्रिया में ही अच्छे-बुरे, चटख और फीके, हर रंग में से एक रंग होकर बहते जाने की अथक गति; अभी तक तो यही उपलब्धि है।

यह मिजाज पिछले युग के मिजाज से थोड़ा भिन्न ज़रूर है। अंग्रेजी का रोमाण्टिक कवि जानने को बहुल महत्व नहीं देता था। उससे प्रभावित पूर्व का छायावादी कवि रहस्य और विस्मय को वरदान मानता था। एक वर्ग ऐसा था, और है, जिसके सामने जानना कोई समस्या ही नहीं। वह सब कुछ जानता है। उसके पास हर चीज के नपे-तुले प्रतिमान थे। (लेकिन यह कैसे कह दूँ कि ऐसे लोग नवलेखन के पहले ही थे और नवलेखन में नहीं हैं।) इसलिए अधिक से अधिक यह कह सकता हूँ कि यह न जानने का बोध, जानने की प्यास, जानने की प्रक्रिया में जीना और जीने की प्रक्रिया में जानने वाला मिजाज जिन लोगों का है, उनमें मैं अपने को पाता हूँ। ऐसे लोग बहुत भाग्यशाली नहीं होते। अधिक से अधिक यह कह कर अपने को सन्तोष दे सकते हैं कि भाग्यशाली न होना ही उनकी ताकत है। वे यह भी पाते हैं कि तमाम चीजों के बीच शायद उनका एक

अंश तटस्थ द्रष्टा बना रहता है, संजय की भाँति। और अक्सर राज्य कौरवों का होता है और जिस व्यवस्था के सामने उसे विवरण देना पड़ता है उसके आँखें नहीं होतीं।

"लो मैं वापिस लौटता हूँ
पर, अब जानता हूँ मेरे पीछे
जहाँ ढाल और पेड़ों का अन्त है
एक गुनगुनाती नदी और
एक हँसता हुआ पुल है।"

—विपिन अग्रवाल

(२)

संजय की दृष्टि सिर्फ दिशाओं को बेध कर देखती थी। लेकिन दिक् (स्पेस) के अतिरिक्त एक दूसरी महत्वपूर्ण चीज है—काल या समय का प्रवाह। हम, हमारी जिन्दगी जो है वह पहले नहीं थी, जो पहले थी वह अब नहीं है। केवल इतना जानना बहुत ज्यादा उलझन नहीं पैदा करता। अधिक से अधिक यह मध्यकाल वाली गलत या सही धारणा पैदा करता है कि यह सब माया से उत्पन्न भ्रान्तियाँ हैं और उनसे तटस्थ होकर मनुष्य भव से मुक्त हो जाता है। लेकिन जब साक्षात्कार यह होता है कि जो पहले कभी था वह वहीं पर अब भी है और जो आज है उसमें भी उसकी टीस और कसक निरन्तर विद्यमान है और जो आज है वह उससे बिल्कुल पृथक् है लेकिन कहीं पर बीज रूप में सही, उसी में विद्यमान था, संजय की आधुनिक जटिल समस्या वहीं से प्रारम्भ होती है। आज संजय को सिर्फ दिशाओं की दूरी नहीं पार करनी पड़ती, काल के अजस्र प्रवाह में पैठ कर कभी उसे देखना पड़ता है जो आज बीज रूप में है और कल आ सकता है, कभी उसे पीछे लौटना पड़ता है जहाँ वह सब था और नहीं है और न होते हुए भी, अपनी जगह बदस्तूर कायम है। आज का संजय बहुत बड़ी उलझन में है। उसका काम भी दोहरा, तिहरा और चौहरा हो गया है।

उससे भी बड़ी बात यह है कि आज का रणस्थल बँटा हुआ नहीं है। यह नहीं कि कौरवों का महल एक जगह हो, पाण्डवों का अन्तःपुर दूसरी जगह हो और कुरुक्षेत्र इन दोनों से दूर किसी तीसरी जगह हो। जो उस कुरुक्षेत्र में नहीं है वह संजय, अपने को युद्ध से बाहर मान कर तटस्थ विवरण देता जाय, ऐसा भाग्य अब उसका नहीं रहा। अब कुरुक्षेत्र बहुत व्यापक है। हर जगह है। शस्त्र युक्त योद्धाओं की रणभूमि में भी, पाण्डवों के अन्तःपुर

में भी, कौरवों के प्रासाद में भी, यहाँ तक कि अर्जुन का रथ चलाते हुए कृष्ण के चिन्तन में भी है, दूर छूटी हुई यमुना तट की किसी ग्रामबालिका के मन में भी। दो पक्षों का संघर्ष, दो नैतिकताओं का संघर्ष, दो दृष्टिकोणों का संघर्ष बराबर चलता रहता है। संजय की तटस्थता बहुत उलझी हुई, जटिल प्रक्रिया हो गई है क्योंकि कभी-कभी संजय जो कहना चाहता है उसमें और जिन शब्दों से कहना चाहता है उन तक में संघर्ष उठ खड़ा होता है। फिर भी उसका अटूट विश्वास है कि उसका एक रचनाकार व्यक्तित्व है जो भोक्ता भी है और तटस्थ द्रष्टा भी। छाया की तरह बराबर वह व्यक्तित्व उसके साथ रहता है, उस तमाम दौरान में जब वह पानी की धार की तरह हजार-हजार रंग की नलियों में से बेतहाशा पगलाया हुआ-सा बहता जाता है।

शादी के विपक्ष में दलील

एक स्त्री ने शादी नहीं की थी, हालाँकि वह अब प्रौढ़ावस्था को पहुँच गयी थी। किसी ने उससे पूछा, "आपने जीवन भर शादी क्यों नहीं की ?" उसने उत्तर दिया,

कभी-कभी मन युद्ध से थक जाता है, जीवन के कठोर निर्मम संघर्ष से थक जाता है, लौट जाता है उस ठण्डी, खुशनुमा नवम्बर की, उजली भोर के कोहरे में! वह भोर अभी भी मन में उतनी ही ताज़ी है......

असल में पन्ना जिज्जी मुझसे कुछ महीने छोटी हैं लेकिन केवल अपने तेहे, बेरोक हँसी और बुजुर्गाना ममता के बल पर बड़ी बन बैठी हैं। उसके बाद आज तक क्या मजाल कि उन्होंने कभी एक पल को यह माना है कि मैं उनसे बड़ा नहीं तो कम से कम बराबर का तो हूँ ही या अब मैं उम्र के साथ-साथ थोड़ा समझदार हो चला हूँ। समझदारी की बात मैंने उठायी कि उन्होंने खिलखिला कर हँसना शुरू किया। हँसी के बीच-बीच में मेरी जाने कौन-कौन-सी मनोरंजक भूलों की मनगढ़ंत कहानियाँ नमक मिर्च लगा कर सुनायेंगी और फिर खिलखिला कर हँसेंगी। नतीजा यह होगा कि डर के मारे उनका बड़प्पन मुझे फिर स्वीकार कर लेना पड़ेगा और उनके आदेशों का आँख मूँद कर पालन करना पड़ेगा।

उन दिनों उनको झक सवार थी मेरी तन्दुरुस्ती सुधरवाने की। सेठ (मेरे बहनोई साहब) का तबादला जिला बाराबंकी के एक बड़े खूबसूरत गाँव में हो गया था जिसके चारों ओर पहाड़ियाँ और घने जंगल थे। एक छोटी-सी रेलवे लाइन उधर से गुजरती थी। कई मील दूर बियाबान जंगल में चौड़ी, गहरी, खतरनाक, मटमैली सरजू नदी बहती थी जिस पर रेल का बहुत बड़ा पुराना पुल था। पटरियों के किनारे-किनारे जाड़ए

तो चारों ओर लोहे के जाल से बना हुआ वह पुल एक भयानक कन्दरा जैसा लगता था। वह कन्दरा उस खौफनाक विराट जंगली नदी को चीर कर न जाने कहाँ ट्रेनों को ले जाती थी।

पद्मा जिज्जी खुद कभी अपने घर से बाहर निकल कर दो फर्लांग भी नहीं गयी होंगी क्योंकि बड़ी अफसराइन थीं। कस्बे पर पुराने जमाने की स्पष्ट छाप थी और कोई महिला घर से नहीं निकलती थी। लेकिन मेरी तन्दुरुस्ती सुधरनी तो जरूरी थी इसलिए सुबह मेरा चार मील टहलना भी जरूरी था। उस दिन तड़के अँधेरे मुँह जिज्जी की डाँट सुनायी पड़ी और बची-खुची तन्दुरुस्ती को बचाने के लिए मैं पटरियों के किनारे-किनारे प्रातः भ्रमण के नाम पर जिज्ञासु सिद्धार्थ की तरह घर से निकल पड़ा।

> "गुर्राने के लिए मेरे पास एक कुत्ता है, कसमें खाने के लिए मेरे पास एक तोता है ; मेरे पास एक अँगीठी है जो दिन रात सिगरेट-सा धुँआ उड़ाती है ; और मेरी एक बिल्ली है, जो रात-रात भर घर से गायब रहती है ? फिर मुझे शादी करने की क्या जरूरत थी ?"

अवध की वह सुबह, हवायें सीधे हिमालय से आती हैं। माथे पर टकराती हैं, पलकों को, होठों को छूती हैं, बालों को बिखेरती हैं और चारों ओर छाये हुए कोहरे में हल्की-हल्की लहरें बनाती चली जाती हैं। ज्यों-ज्यों सुबह होती है कुहरा घना होने लगता है। फिर उसमें परतें बन जाती हैं, फिर कहीं पेड़ों के बीच, कहीं लाइन के पास, कहीं सरोवर के ऊपर, कोहरे के बड़े-बड़े टुकड़े जमा हो जाते हैं। लाइन के किनारे-किनारे छोटे-छोटे पोखरे लगातार चले गये थे जिनमें कई रंग के छोटे-छोटे कुमुद, कोकाबेली और कमल फैले थे। लाइन के उस ओर सूरज उग रहा था। लाइन ऊँचाई पर थी और मेरी छाया बहुत लम्बी, धुँधली भूरी धारी की तरह कोहरे में तैरती जा रही थी। दिन और ज्यादा खिला, छाया जरा छोटी हुई, नीचे उतरी और किनारे के सरोवरों में कोहरे ढँके कमल और कोकाबेली के फूलों पर से तैरती हुई चलने लगी। मैं कुछ सोच नहीं रहा था। सिर्फ यह महसूस कर रहा था कि सरोवर का ठंडा पानी, कमल का हरियाला ताजा स्पर्श, सिवार का उलझाव, सब मुझमें से गुजर रहा है। दोनों मैं हूँ, कंकड़ और लोहे के इस रास्ते पर चलता हुआ मैं, और कोहरे कमल और सरोवर में से तैरता हुआ मैं। और मैं सिहर कर रुक गया, जब मैंने देखा कि किनारे से दो जल-साँप छप्प से कूदे और मेरी भूरी छाँह को पानी में सौ-सौ टुकड़ों में काटते हुए, टेढ़े-मेढ़े लहराते-तैरते हुए कमल नाल के चारों ओर खेलने लगे, जहाँ मेरा छाया-कंठ था।

मैंने दोनों हाथ अपने ठंडे, सुबह की ओस से भीगे गले पर रखे। साँप कमल नाल को लपेट कर आपस में कुलेल कर रहे थे।

मैं नहीं जानता सौन्दर्य किसे कहते हैं। यह जानता हूँ कि कुछ चीजें बाँध लेती हैं। उस दिन सुबह उन साँपों ने मुझे बाँध लिया था। जादू तब टूटा जब लखनऊ से आने वाली गाड़ी की सीटी दूर से सुनायी दी। लौट कर आया तो जिज्जी परेशान थीं। दो अर्दली साइकिल पर मेरी खोज में जा चुके थे।

घर के बगल में टीलों को काटता हुआ एक नाला बहता था। किनारे-किनारे एक पगडण्डी थी जो जंगल के बीचों-बीच ले जाती थी। जंगल का वह छोटा-सा हिस्सा खेतों के समुद्र में हरे प्रायद्वीप की तरह घुस आया था। लेकिन कितना भयानक था वह जंगल! लतरों ने नीचे से उग कर तनों से लिपट कर ऊपर डालियों से झूल-झूल कर जंगल को भयानकतम बना दिया था। घर भर को खिला-पिला कर, खाकर जिज्जी सो जाती थीं तो मैं वहाँ भाग जाता था। उस दिन दो डालों के बीच बैठा-बैठा बहुत कुछ सोचता रहा। वह 'मैं' कौन है जो अपने से अलग जीता है। कमल और साँपों से खेलता है और उसका एक-एक संवेदन मुझ तक पहुँचा देता है। या वह केवल छाया है। उन दोनों का एकत्व कहाँ होता है? किशोर मन में पहली बार अपने अन्दर की भाव-प्रक्रिया के प्रति कुतूहल जागा था। याद है मुझे कि दो तीन दिन अजीब बेचैनी और अजब भावाकुलता मन में बनी रही। बहुत दिनों बाद एक कविता लिखी थी : "झील के किनारे"—

वह निरन्तर जो कि चलता आ रहा है साथ
इन सबों से सर्वथा निरपेक्ष
लापरवाह
नीली झील के इस छोर से
उस छोर तक
एक जादू के सपन-सा
तैरता जाता

उस दिन यह बोध, कुतूहल, विस्मय और व्यक्तित्व की आन्तरिक सम्पन्नता के प्रति एक उत्साहपूर्ण खुशी जगा गया था।

लेकिन ज्यों-ज्यों वक्त बीतता गया मालूम हुआ कि संजय का काम इतना आसान नहीं है। वे लड़ते हुए, छाया-शरीर को सौ-सौ खंडों में

काटते हुए जल-सांप इतने निरापद विषहीन भी नहीं हैं। यह भी मालूम हुआ कि बहुत सुबह जंगली नदी की ओर निकल जाने वाले के लिए फिर कोई ऐसा ममता भरा घर नहीं बचता जहाँ वह लौट कर ममता की छाँह में सब भूल जाय। कोई ऐसा शान्त अरण्य नहीं है जहाँ वह बैठ कर चुप-चाप सोच सके। सब कुछ खंड-खंड होकर घुल-मिल जाता है। छायाएँ साँप बन जाती हैं; कमल की पाँखुरियाँ खूँख्वार नदी बन जाती हैं, नदियाँ उन घरों को सैलाव में बहा ले जाती हैं जहाँ थके पाँव लौटा करते हैं और जिन शान्त अरण्यों में लौट कर चुपचाप चिन्तन किया जा सकता है वे अरण्य छाया की तरह समानान्तर चलते हैं, उनको देखते रहिये पर उनमें लौटकर चिन्तन नहीं कर सकते। और फिर साँपों की लताएँ, जंगली नदियों का तूफान, कुहरा, सब एक विराट् जंगल बन जाते हैं जिनमें लौटने का कोई रास्ता नहीं।

लेकिन संजय की समस्या है कि उसे पीछे लौटना भी है! दिक् की सीमाओं की तरह काल की सीमाओं को भी तोड़ना है, समय-प्रवाह में आगे भी बढ़ना है, पीछे भी लौटना है और कभी-कभी आगे बढ़ने के लिए पीछे लौटना है और कभी-कभी पीछे लौटने की ही प्रक्रिया में आगे बढ़ते जाना है।

विचित्र है यह आधुनिक युग का माहौल जिसमें जिज्ञासा एक पहलू से देखने पर ऋषियों की दिव्य दृष्टि लगे और दूसरे पहलू से सरकस के खिला-ड़ियों के हास्यास्पद व्यायाम! आस्था से श्रद्धापूर्वक सर झुकाइये और होठों पर बरबस हँसी आती जाय! और तुर्रा यह है कि तटस्थ संजय तटस्थ भी नहीं है और पक्षधर भी नहीं। कृष्ण की तरह इस सारे युद्ध में सिर्फ़ वही मरता है, हर बार वही मरता है। चाहे किसी का ब्रह्मास्त्र छूटे, चाहे किसी की गदा चले, चाहे किसी धृतराष्ट्र का प्रवंचना भरा लौह आलिंगन मिले, मृत्यु उसी की होती है। वह शिकायत भी नहीं कर सकता क्योंकि उसको मारने वाले के मन में भी जो-जो भटकन और बेचैनी है किसी अंश में संजय का उसके साथ भी तादात्म्य है।

(३)

'क्रान्तिद्रष्टा नहीं हैं हम
मनीषी भी नहीं
मसीहा भी नहीं
पर, ओ भाई...'

—मलयज.

अच्छे थे वह जमाने जब दुनिया में मसीहा हुआ करते थे। एक ओर काफी गुनाह होते रहते थे, धर्म, नियम टूटते रहते थे और दूसरी ओर कोई मसीहा आता था जो खुद ईश्वर होता था, हाथ उठाकर कहता था कि सारे संशय छोड़ कर मेरी शरण आओ। तुम्हारा समस्त 'योग क्षेम वहाम्यहम्'। या कोई दूसरा मसीहा आता था जो ईश्वर नहीं तो ईश्वर का बेटा होता था और कहता था तमाम दुनिया के पाप मैंने अपने कन्धे पर ले लिये हैं ताकि हे पिता, ये तुम्हारे तई विश्वास लायें और तू इन्हें क्षमा कर। कवि भी छोटा-मोटा मसीहा होता था : "कविर्मनीषी परिभूस्वयंभू"—"पोयेट द अनएक्नालेज्ड लेजिस्लेटर आफ द वर्ल्ड।"

जमाना बदल गया है, जमाने का मिजाज बदल गया है। मसीहे निरर्थक लगने लगे हैं और 'योगक्षेम वहाम्यहम्' जैसे मसीहाई वाक्य भारतीय जीवन बीमा कार्पोरेशन के मोटो वाक्य बन चुके हैं। और हस्तिनापुर में 'कविर्मनीषी' का क्या हुआ है उसको न जानना ही अच्छा है।

संजय मसीहाई के गर्व में यह नहीं कह सकता कि सबका पाप अपने कन्धों पर लेकर ही उसने कोई बहुत बड़ा काम किया है। न वह पूर्ण प्रभु और अपूर्ण जनसाधारण के बीच का जनसम्पर्क अधिकारी है। मसीहा ऊपर से आता था और बड़ी-बड़ी सभ्यताओं का कूड़ा-कचरा बटोर कर फिर ऊपर चला जाता था। तब तक के लिए जब तक कि वह कूड़ा-कचरा फिर न इकट्ठा हो जाय। संजय ने यह जाना कि नये युग के मिज़ाज का एक रंग निराला का है जो गुलाब के मुकाबले में कूड़े-कचरे या उस पर उगे कुकुरमुत्ते को तरजीह देने लगा है। दूसरी आवाज पन्त जी की है, 'कूड़ा कर्कट सब भूपर : लगता सार्थक औ सुन्दर!' और लो! स्याह-सफेद, पवित्र-मलिन, अच्छे-बुरे की तमाम सदियों से जमी-जमाई धारणाएँ बिखर गई हैं। मसीहाई के जमाने में तो बिल्कुल स्पष्ट मालूम था कि एक पक्ष मर्यादा का होता है और दूसरा पक्ष अमर्यादा का। एक पक्ष का विनाश जरूरी है, दूसरे पक्ष का उद्धार। मगर यह कैसा अजब वातावरण है कि अच्छे और बुरे के बीच की रेखा बिल्कुल अनिश्चित है। मर्यादा अगर टूटती है तो उसके तोड़ने में सभी सहभागी हैं—कोई कुछ कम, कोई कुछ ज्यादा! "टुकड़े-टुकड़े हो बिखर गयी मर्यादा, उसको दोनों ही पक्षों ने तोड़ा है, पाण्डव ने कुछ कम, कौरव ने कुछ ज्यादा!" और तब कोई भी ऐसा मसीहा नहीं रह जाता जो सामान्य संकट से निर्लिप्त सर्वोपरि हो, और उस उलझन में दीख पड़ता है कि कृष्ण की मौत तथा परीक्षित की मौत एक ही कहानी के दो अध्याय बन गये हैं।

और यहाँ से उसकी खोज फिर से शुरू होती है। यह खोज इतनी

जटिल और इतनी कठिन है जितनी कि शायद पहले कभी नहीं रही। तमाम चीजों को देखने, उनकी अच्छाई-बुराई परखने का जो अन्दरूनी माप-दण्ड था वह झूठा पड़ चुका है। हर युद्ध बाहर भी होता है और उसके मन में भी। वह मरने वाला भी है और जिस उपकरण ने मारा है वह भी उसी का है। वह परीक्षित भी है और अश्वत्थामा भी। इन सब के बीच से उसे चीजों का अर्थ खोजना है। बाहरी निगाह वालों के लिए दुनिया पहले से कहीं ज्यादा खुशनुमा, रंगीन और जगमग है। लेकिन उसके लिए वह रोशनी बुझ चुकी है जिससे दुनिया की तमाम रोशनियाँ देखी जाती हैं। तमाम रंग पहचाने जाते हैं।

मेरे शहर में एक नुमायश आती थी। उस छोटे उजाड़ बियाबान शहर में वह वर्ष का सबसे उल्लासमय पर्व होता था। साल दर साल वही पुरानी दूकानें, वही बिजलियों का सजाव, वही शिवमूर्ति की जटाओं से निकलता फव्वारा! मगर शहर का शहर उमड़ पड़ता था। उनके लिए यह सब हर बार नया था। उस दिन जालौन की मशहूर आतिशबाजी के खेल दिखाये जाने वाले थे। मेरे मोहल्ले का अन्धा बरेठा गाहकों के उधार के कपड़े पहन कर नुमायश जाने के लिए तैयार हो रहा था। नुमायश की ठसाठस भीड़ में मैंने उसे देखा। उसका लड़का उसका एक हाथ पकड़े था, धक्के खाता हुआ बांये हाथ से टटोलता-टटोलता वह अन्धा बरेठा नुमायश 'देख' (?) रहा था। थोड़ी देर में आतिशबाजियाँ छूटेंगी, आसमान में रोशनी के अजीबोगरीब खेल होंगे। सौ-सौ रंगों के अनार छूटेंगे और मेरे मोहल्ले का अंधा बरेठा उन्हें 'देखेगा'। हाय रे उजाले की प्यास!

अगले दिन कुछ ऐसा हुआ उस शहर में, जिसका शोर नुमायश से भी ज्यादा मच गया। वही कातिक के दिन थे। जमुना स्नान का मेला। वही बचपन का बलुआ घाट। शोर था कि उल्टी गंगा बह आयी है। इला-हाबाद के संगम पर साफ दीखता है कि जमुना का हरा पानी इधर है, गंगा का सफेद पानी उधर। मगर आज गंगा का वह सफेद पानी बहुत दूर तक जमुना के अन्दर आ गया है और गऊ घाट से त्रिकोण बनाता हुआ करेलाबाग तक जमुना के अन्दर चला गया है। शहर में सनसनी थी। ऐसा सिर्फ एक बार कभी हुआ था जब बड़ा भारी अकाल पड़ा था। उसके पहले सन् सत्तावन का गदर हुआ था। अब क्या होगा?

लेकिन यह हुआ कैसे?

दो-चार समझदार लोगों ने कहा: कि शायद हरिद्वार के पास गंगा की नहर बन्द कर सारा पानी मूल धारा में डाल दिया गया है, क्योंकि नहर की मरम्मत हो रही है। लेकिन यह व्याख्या मोहल्ले के लिए बेकार

थी। ठठ के ठठ लोग भय, आशंका और कुतूहल से भरे हुए बलुआ घाट की ओर चले जा रहे थे। बरसों बाद उसी मेले की सड़क पर मैं जा रहा हूँ। साथ मेरे घर के कई लोग हैं। रुदौली से आये हुए बड़े जीजा, शान्ति, केशो और मोती। बारहदरी की सीढ़ियों पर मैं खड़ा हूँ। दिन ढल रहा है और जमुना के अन्दर दूर तक धँस आने वाली गंगा छप-छप कर पाँवों को भिगो रही है। कैसा अजब है कि इस वक्त सारे मेले-ठेले से दूर मेरा ध्यान सिर्फ पिछली रात रंगारंग नुमायश में घूमते हुए उस अन्धे बरेठा पर केन्द्रित हो गया है। सारी दुनिया उसके लिए सिर्फ आवाज थी। अगणित प्रकार की घुली-मिली आवाज़ें जिनमें से उसके लिए रंग, रोशनी और आकार अपने आप उभर आते थे। सचमुच की रंग, रोशनी और आकारों से वे मेल खाते थे या नहीं, यह दीगर बात है। लेकिन उसने नुमायश की वह शाम उन्हीं आवाज़ों के सहारे भरपूर जीने की कोशिश की थी।

उलट कर उस ग़लत दिशा में बह आने वाली गंगा की लहरें पत्थर की चिकनी साफ सीढ़ियों पर छप-छप करती हुई मेरे पाँव को भिगो रही हैं। धीरे-धीरे वे धवल लहरें लम्बी पतली सफेद पट्टियाँ बन जाती हैं और लहरों के नीचे समय की जाने किस अतल गहराई से ऊपर उठ आता है एक चेहरा, आँखों पर पट्टियाँ बँधी हुई। यह तो गान्धारी है। आँखें होते हुए भी जिसने आँखों पर पट्टियाँ बाँध लीं थीं, बूढ़े धृतराष्ट्र के लिए। क्यों किसलिए, उस वातावरण में मुझे गान्धारी की याद दिला गयी वह गंगा, मुझे आज तक नहीं मालूम।

फिर वह चेहरा लहरों में बह गया। लौट आया मेले का शोर और नुमायश में, भीड़ में धक्के खाता हुआ मुहल्ले का अन्धा बरेठा!

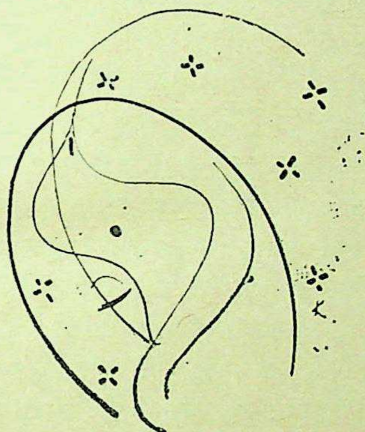
अन्दर की रोशनी धुँधली है और हमें इस नुमायश में जीना पड़ रहा है और संजय को लगता है कि किसी अंश में शायद वह धृतराष्ट्र भी है। और वह मसीहे की तरह यह नहीं कहता कि तुम मेरे पास आओ, मैं भूखे को भोजन और अन्धे को दृष्टि दूँगा। वह सिर्फ यह कह रहा है कि युद्ध ऐसा अजीब है कि स्याह और सफेद घुलमिल गये हैं। वह सिर्फ यह कह रहा है कि वधिक अश्वत्थामा और वध-लक्ष्य परीक्षित के बीच की रेखा बहुत क्षीण रह गयी है। और वह सिर्फ यह कह रहा है कि वह इन सब की पीड़ाओं से परे नहीं है। उसकी मुक्ति कोई वैयक्तिक मुक्ति भी नहीं रह गयी है। सबकी मुक्ति में उसकी मुक्ति है क्योंकि वह सबकी एक सचेत इकाई है। सचेत इसलिए कि वह जानता है कि उसे अभी बहुत कुछ जानना शेष है और जानने की प्रक्रिया में उसे अच्छे-बुरे के बीच एकरंग होकर जीना पड़ रहा है और जीने की प्रक्रिया में वह जानता चल रहा है। ●

पास, बहुत पास

कान्ता

पास, बहुत पास
आधी रात गूँजती बाँसुरी-सी,
मोहक हँसी,
समुद्र-सा उच्छ्वल जीवन।
और मुझ पर घिरा हुआ
एक अजब अनमनापन !

ओ आलोकित प्राण,
अँधेरा मेरी पीठ पर रख दे हाथ :
यह वही क्षण है,
वही क्षण।



भय-मुक्ति

सामने मुस्कराता गुलाब,
कनेर की टहनी पर पंख फैलाये कबूतर,
सलाखों पार हमको छूती हुईं
जानी-अनजानी लतरें,
और निर्मल, निखरा आकाश :
सब बड़ा सुहाना है।

पर अभी, पहर बाद महकेगी रात-रानी,
मंदिरों में गूँजेगा शयन-संगीत——
थोड़ा सब्र करो।
गहरा हो जाने तक अँधकार
मुझको
प्यार किये जाने के भय से
मुक्त रखो।

दो कविताएँ



नरेश मेहता ०

"चाँदनी जब यहाँ से गयी थी तो उसमें सायास कुछ नहीं था"...."उसने अपने को इतना सायास साधा है कि अब सब अनायास लगता है"...... 'अनायास' से 'सायास' और 'सायास' से पुनः 'अनायास' तक की यह लघु-दीर्घ यात्रा किन-किन रास्तों से होकर गुजरी—यह तो आपको प्रस्तुत कहानी ही बता सकती है।

● ● ●

महीनों बाद चाँदनी का पत्र आया, कलकत्ते से—

खूब ही वर्षा है यहाँ और वर्षाश्री भी। पूजा तक रुकेगी। कल पड़ोस में कोई संगीत-गोष्ठी थी, किसी प्रत्यूष गोस्वामी ने बड़ी अच्छी सितार बजायी थी।

बस, यह पत्र है। तब विज्ञप्तियाँ किसे कहा जायेगा? और मजा यह कि यह पत्र भी पूरे दो माह बाद कलकत्ते से नहीं, दार्जिलिंग जाने की सूचना के साथ सिलिगुड़ी से डाला गया था। चाँदनी कहा करती है कि मैं उसके पत्रों का उत्तर नहीं देता। लेकिन इस पत्र का ही उत्तर कहाँ दूँ? अपने रुकने की जगह या फिर होटल का ही पता दिया होता।

बिल्कुल गर्मियों के धूल-भरे आकाश-सी है।

चाँदनी जब यहाँ से गयी थी तो उसमें सायास कुछ नहीं था। एक दिन पहले ही तो हम लोग लॉन में बैठे हुए चाय पीते रहे थे और मौसम को कोसते रहे थे। दूसरे दिन शाम की डाक से एक पोस्टकार्ड मिला कि वह कलकत्ते जा रही है और दो सप्ताह बाद लौट आयेगी। मैंने भी सोचा कि इस बार पहाड़ नहीं जा सकी थी, घबरा उठी होगी, चलो ठीक है,

चाँ द नी

दो-चार दिनों के लिए कहीं हो आना अच्छा होता है। लेकिन मैं इस स्वल्प-सी सूचना से क्या समझता? कहीं मैं आहत अनुभव कर रहा था कि पूछ ही लेती, खैर।

दिन बीते, सप्ताह गुजरे, महीने भी आये-गये हो गये और चाँदनी का कहीं पता ही नहीं था। मुझे विश्वास था कि वह कलकत्ते में में ही होगी और जेटियों पर घूमते हुए, विलियम फोर्ट के मैदान में दूब पर लेटे हुए, विक्टोरिया मेमोरियल के पोखर में मछलियों को चारा चुगाते हुए अनुक्षण प्रतीक्षारत रही होगी कि मैं आऊँगा। लेकिन कैसे? "तुम तो अपने किसी सम्बन्धी के यहाँ गयी हुई हो, भला मैं वहाँ कैसे आ सकता हूँ?"

अजीब अधूरे आकाश-सा उसका आचार होता है। लोग एब्स्ट्रेक्ट चित्र बनाते हैं, वह एब्सट्रेक्ट व्यवहार करती है, जबकि मुझे कांगड़ा - शैली भी समझ में नहीं आती। भला शैलियों के इतने बड़े व्यवधान पर खड़े हम लोगों का क्या होगा?

कुछ भी हो, उसे उत्तर तो देना है। एकमात्र उत्तर जो हो सकता है, वह है कि मैं भी दार्जिलिंग आ रहा हूँ।

इस उत्तर को वहाँ के पोस्ट मास्टर के मार्फत भेज रवाना हो जाऊँगा।

अपनी इस लम्बी यात्रा में पत्र-पत्रिकाओं के अलावा चाँदनी की स्मृतियाँ हैं। खिड़की से बिहार के सपाट मैदान, दुखती रेखाओं-सी नदियाँ—सब बड़ा अच्छा लग रहा है। स्मृतियों में कोई दुखद नहीं हैं। अधिकांश या तो सुखद हैं अथवा एब्सट्रेक्ट।

वह अपनी बात, आचार, व्यवहार सब में संकेत करती है। याद नहीं पड़ता कि कभी कोई वाक्य भी किसी से पूरा कहा होगा। सादी-सी बात होगी—चलिये, थोड़ा घूम आयें, इतना भी पूरा नहीं कह सकती। वह तो कहेगी—चलिए—और सड़क पर जाती किसी टैक्सी को रोक बैठ जायगी और हँसती आँखों से आपकी ओर देखने लगेगी।

कभी बातों के छोटे-छोटे टुकड़ों से अधिक की गहराई में जाना नहीं चाहेगी। फटे बादलों में से आकाश के जैसे नीले टुकड़े दीखते हैं न, बस वैसा ही उसका बोलना होगा। हठात् कहेगी, "फूलों से मोनोटनी टूटती है न?"

और आप देखेंगे कि यह बात का टुकड़ा फेंसिंग से दिखे किसी केना के फूल को देखकर कहा गया होगा। उसके बाद—देर-देर तक, दूर-दूर तक कोई बात नहीं होगी। हाँ, चर्चा हो सकती है कि वर्जीनिया वूल्फ की डायरी में सहजता कितनी है अथवा वह मात्र प्रयोजन लगती है।—और आप देखेंगे कि आपके चारों ओर ऐसे या इस जैसे अनेक टुकड़े फैले हुए हैं। ऐसा वह इसलिए करती है कि आपको भ्रम हो जाय कि नहीं, वह कितनी तो बात करती है। लेकिन कहीं इन टुकड़ों को सुनते हुए उसे पा सकने के ख्याल से उसकी ओर देखना शुरू किया तो वह घिरी मछली की तरह पहले तो इधर-उधर करेगी और फिर हताश भाव से अपने गहरे जल में नीचे उतर जाएगी, जैसे कि सब बेकार है।

प्रायः आपने देखा होगा कि लोग, आपके बारे में बातें करते हुए आपको नहीं बोलने देते, लेकिन चाँदनी हँसते हुए आपको बोलते सुनती रहेगी—ऐसे, जैसे कि आप किसी बिल्लौरी शीशे के सामने खड़े हैं और वह आपको दुहरा रहा है। इसीलिये चाँदनी लोगों के सामने या तो उपस्थित होती है अथवा प्रस्तुत होती है, मिलती नहीं है। जरा-सा उसे घेर लीजिये तो वह अजीब बच्चों की भाँति शैतानी हँसी होठों में अछूते दाबे प्रस्तुत हो जाएगी, विवश-सी। लेकिन, मौका मिलते ही मछली की भाँति हाथ से

फिसल कर छूट जायगी और फिर तो गर्मियों के सूर्यास्त की तरह ऐसी दूर-दूर हो जाएगी कि समेटे नहीं सिमटाएगी। उसे हठात् पा सकना कठिन है, कारण कि उसने अपने को साधा है। रियाज किये हुए राग की तरह उसकी उपस्थिति अनुभव होती है। तभी तो बिल्कुल बेमन होने पर भी अपनी सधी उँगलियों से चाय में चीनी या दूध की मात्रा में कोई अन्तर नहीं होगा उस पहले दिन से, जिस दिन उसने आपको जाना था।

, सच ही वह अपने को प्रस्तुत करती है, वर्ना उसके मुख पर विवर्णता, निस्तेज, आक्रोश सभी तो बड़ी जल्दी झलक उठता है। पतझर की झरती पत्तियाँ देखते हुए जाने क्या-क्या होने लगता है और वह खिड़की बन्द कर लेती है। टैक्सी, व्यक्ति, होटल की सीट, क्राकरी पर बने बेलबूटे सभी के बारे में बड़ी जल्दी प्रतिक्रिया से भर उठती है, लेकिन दो जलों को भी मिलने में देर लगती होगी पर कब वह क्रोध से लाल होकर होठों में मुस्करा दी है, कोई नहीं जान पाएगा। उसने अपने को इतना सायास साधा है कि अब सब अनायास लगता है।

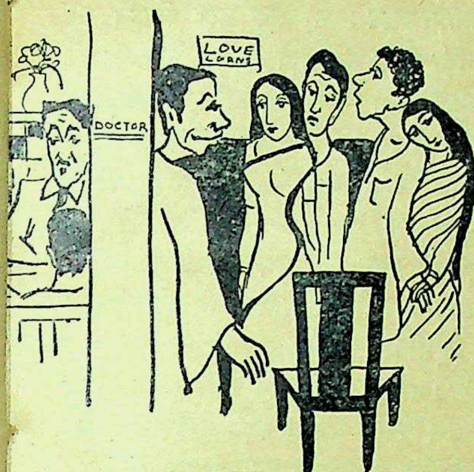
यहीं लीजिये कि वह ऐसे पत्रों द्वारा सामने वाले से क्या अपेक्षा करती है? पूछो, तो कह देगी कि नहीं, अपेक्षा करना तो बड़ी व्यक्तिगत बात है। एक दिन मैंने उसे अपने टोस्ट पर मक्खन लगा देने के लिए कहा तो वह जाने कैसी-कैसी हो आयी। तत्काल आँखें तक छलछला आयीं और वैसे ही बरजती देखती रही। बड़ा संकोच बना रहा उस दिन। जब कि कुछ दिनों बाद एक नर्सरी से लौटते हुए कह गयी कि मैंने उसे कभी वेणी तक खरीद कर नहीं दी। उसके इस कह दिये जाने के बाद तो मैं कभी भी वेणी नहीं खरीद पाऊँगा, क्योंकि कह दिये जाने पर तो न व्यक्ति, न फूल किसी में भी गन्ध नहीं रह जाती है। इसीलिए चाँदनी न बोलती है, न कहती है, बल्कि केवल यहाँ-वहाँ या तो एब्स्ट्रेक्ट टुकड़े होंगे या फिर बड़ी-बड़ी आँखों वाला हँसता बरजना होगा। स्कूली लड़कियों की तरह।

सिलिगुड़ि से ट्रेन बदली। तेज पहाड़ी नदियाँ, प्रलंबित चीड़वन, अजीब चित्रात्मक एकान्त, प्रतीक्षित घाटियाँ––सब अजीब तरह से मोहते हैं। दोनों ओर चाय बागानों के हरे विस्तार जिनमें फूलहीन पलाश, वसन्त में कैसे सुलग उठते होंगे। मुझे याद आया दो साल हुए जब हम ताजे चीड़फूलों की तलाश में साततात गये थे। मन्द दोपहर छन कर बूटीदार यहाँ-वहाँ एकान्त बिछली थीं। साततात वाला ताल, दर्पण बना हुआ था। अनेक ताजे अछूते चीड़फूल लँलोये-से, तँबियाये-से लगे थे। पगडण्डी के रास्ते हम चीड़-फूल खोजते हुए पत्तों को चरमराते तथा अपनी आहट सुनते चले गये थे। हमारी वह खोज कितनी सफल रही थी। ढेर सारे चीड़ फूल रंग कर लोगों को बाँटे गये थे। कुछ ड्राइंग रूम में भी सजाये थे।

सहसा जाने कहाँ से सहमा-सहमा-सा दार्जिलिंग का स्टेशन सामने आ खड़ा हुआ। क्लॉक-रूम में सामान रख चाँदनी की तलाश में निकल पड़ा। किसी अच्छे होटल में ही हो सकती थी। तिब्बती कुलियों से पीछा छुड़ाता सारे होटलों में भटकता रहा और उसकी हुलिया बताता पूछता रहा। अनेक बार लोगों ने सशंक होकर देखा कि मैं कौन हूँ और किस

(शेष पृष्ठ ४८ पर)





केशवचन्द्र वर्मा ०

आज के युग में जब और सभी चीज़ों के पूछ-ताछ-घर हैं तो फिर बेचारे प्रेम ने ही ऐसा क्या गुनाह किया है जो उसका भी अपना एक पूछ-ताछ-घर न हो! . . . .हमें तो आपकी बात उचित मालूम देती है, लेकिन मुश्किल यह है कि प्रस्तुत रचना पढ़ लेने के बाद आप स्वयं ही अपनी बात पर कायम नहीं रहेंगे।

● ● ●

(संगीत। पृष्ठभूमि में चाय की प्यालियों की खनक। 'रॉक एन रोल' संगीत की धुन। मिली-जुली खिलखिलाहट।)

एक स्वर : अरे साहब! अब आपको यकीन न आवे तो बात ही दूसरी है। पर मैं कहता हूँ न, कि मेरी तो आजमाई हुई चीज़ है।

गौरीश : क्या कहते हैं मिस्टर दलाल ? मैंने तो आज तक कहीं पढ़ा ही नहीं कि प्रेम का भी कोई इलाज होता है और उसके प्राब्लम्स भी डाक्टर लोग हल कर सकते हैं ?

स्त्री स्वर : अरे साहब, दलाल साहब की तो आज़माई चीज़ है। इनके प्रेम के जंजाल तो वही जानते होंगे। (हँसी)।

प्रेम - पूछ - ताछ - घर

दलाल : मैं कहता हूँ न गौरीश जी, ज़माना बहुत बदल गया है। आप तो कभी आसमान में फ़ाख्ता ही उड़ा कर संतोष कर लेते थे पर अब तो जनाब लोग चाँद तक उड़ा देते हैं और हम आप मुँह बाए देखा करते हैं। अरे यार, कह तो रहा हूँ कि ज़माना बदल गया है, ज़माना !

दूसरा स्त्री स्वर : तो मिस्टर दलाल, डाक्टर साहब ने आपका प्रेम का मर्ज ठीक कर दिया य। फिर अभी कुछ.... **(हँसी के स्वर)**

दलाल : देखिए, आप इस समय मेरे ऊपर हँस सकते हैं। पर मैं तो भई मुरीद हूँ उस डॉक्टर का। यार, ये विलायत वाले कमाल करते हैं, कमाल। लव जैसी मोस्ट डिफ़ीकल्ट प्राब्लम् को भी साइंस से हल कर दिया। और कुछ नहीं। बस ट्रेनिंग है। इस एंगिल से वह आपकी प्राब्लम को पकड़ता है कि आपको खुद अपना रोमांस नया लगने लगता है।

पहिला स्त्री स्वर : तो मिस्टर दलाल, आज की पार्टी में आपने अपने रोमांस की बात तो बताई नहीं, सिर्फ उसका इलाज़ बताते रहे। **(हँसी के स्वर)** आखिर मामला क्या हो गया था कि आपको उन डाक्टर की सलाह लेनी पड़ी ?

गौरीश : अमां दलाल साहब, तो ये तुम्हारे डॉक्टर हैं कहाँ के ?

दलाल : बंगाल के हैं बंगाल के। आई. सी. एस. में आ गये थे पर विलायत गये तो वहाँ पर उन्हें इस नई साइंस में इतना आनन्द आया कि अपने देश के जवानों का कल्याण करने के लिए ही उन्होंने आई. सी. एस. छोड़ कर डाक्टरी अपना ली। इसी सिविल लाइंस में आकर दूकान खोल ली—प्रेम-पूछ-ताछ-घर।

दूसरा स्त्री स्वर : तो एक बार मिलने की बड़ी फीस लेते होंगे ? प्रेम के रोगी तो अनगिनती मिले होंगे यहाँ। **(हँसी)**

दलाल : फ़ीस-वीस क्या है—जिसकी जैसी श्रद्धा-भक्ति हो।—अच्छा भई, चलना चाहिए।

पहिला स्त्री स्वर : हाँ, हाँ, शहर के दूसरे प्रेमी जनों से भी तो आपको मिलना होगा। **(हँसी)**

दलाल : नहीं-नहीं, ये बात नहीं है।.....यूं ही कुछ अपना जरूरी काम है इसलिए अब चलना ही उचित है—हीं हीं हीं हीं.... अच्छा नमस्कार।

(दूसरा दृश्य : प्रेम-पूछ-ताछ-घर)

डाक्टर : वाह जी मिस्टर दलाल। हो गया। अब हियां कुछ नोंही होने शकेगा। आज छोरा दीन शे बेशि होइ गया—एक भी मानूश—एक भी रोगी—एक भी प्रेमी जन नेंही आया।

दलाल : अमां डाक्टर। इस तरह से ऊबोगे तो कैसे काम चलेगा ! कहते हैं डाक्टर, वकील और बगुले को कभी धीरज नहीं खोना चाहिए।—देखो, मैं जहाँ आता-जाता हूँ सब जगह तुम्हारी तारीफ करता हूँ।

डाक्टर : लोग क्या बोलता है ?

दलाल : अरे उस वक्त तो सब लोग मज़ाक उड़ाते हैं पर देखना उसी में से दो-चार चिड़ियाँ गिरेंगी। आखिर तुम्हारा क्या लगता है ? बेकार बैठे रहने से यही अच्छा है ! अब यह धन्धा जो हमने शुरू

किया है वह इस शहर में ही नहीं, इस दुनिया में ही एकदम नया धंधा है। अगर चार-चार महीने भी एक शहर में रहे तो समझो, उमर पार हो जायगी।

डाक्टर : अच्छा ये जो तूमने हमारा मिलने का बखोत दोश बजे से बारह बजे तक रक्खा है और पांच बजे से नौ बजे तक बोला है, इसे तुमको बोदेलना पड़ेगा।

दलाल : क्यों ?

डाक्टर : ये ई कि आप हमारा बखत दश बज कर बारह मिन्ट से बारह बज कर दस मिन्ट तक कर देव। और ये ई तरह उधर भी कर देव। ये करने से सब लोग जो मिलने आयेगा वो हमरा के बहूत बिजी डाक्टर समझेगा।

दलाल : अच्छा अच्छा—वह देखिए, मिस्टर गौरीश आ रहे हैं। कल मेरी इनकी बातें हुई थीं। मेरा ख्याल है कि ये इधर ही आ रहे हैं। यह आदमी जरूर अपनी कोई समस्या लेकर आ रहा होगा। मैंने कहा था न कि जरूर एकाध चिड़ियां फँसेंगी।

डाक्टर : अच्छा अच्छा, अब आप फौरन हिंया से एबसेंट होइ जाव। हम अकेला में बात करेंगा।

दलाल : बहुत ठीक।

गौरीश : नमस्कार। आर यू डाक्टर सेन ?

डाक्टर : एस प्लीज। सीट डाउन प्लीज। बौठिये। कहिये—हम आपकी क्या सेवा कर शकता हूँ ? प्लीज।

गौरीश : सुना कि आप लोगों के पर्सनल मैटर्स में भी बड़ी कुशलता के साथ दिलचस्पी लेते हैं ?

डाक्टर : हाँ हाँ, आप अपना पर्सनल मैटर्स बोलो। हम तो ऊशका शब साईंटिफिक सोल्यूशन करता हाय। यू सी, आइ गाट दिस ट्रेनिंग एट लंदन। हिंया अपना देस में तो ऐसा सिखाई पढ़ाई नेंई होता। ईश कारन हमरा के बाहर पढ़ाई करना पड़ा। पर खैर, ऊ कोई बात नेंहीं। जे आपना के पढ़ाई लिखाई से क्या काम ? आप आपना प्राब्लम बोलो। हाँ हाँ बोलो.....शब कुछ प्राइवेट है।.....हिंया कुछ भी आउट होने का डर नेंही हाय।

गौरीश : देखिए—बात यह है कि मैं एक लड़की को लव करता हूँ।

डाक्टर : (उछल कर) ओह वेरी गुड। वेरी गुड। यू आर रियली ऐ यंग मैन। —आप जानता है न, कि जो प्रेम नेंई करता वोई का मैंटल डेवलपमेंट कभी नेंई होइ शकता। प्रेम शे तो बहूत कुछ होइ जाता है। बहूत बहूत लोग कवी होइ जाता है, बहूत बहूत लोग नेता होइ जाता है, बहूत लोग जर्नलीस्ट, बहूत लोग नाटक कम्पनी वाला, बहूत लोग—

गौरीश : जी, तो मैं कहने यह आया था कि क्या आप मेरी कुछ सहायता करेंगे ?

डाक्टर : अरे बाबा और हम कीश खातीर येई दूकान खोल कर हिंया बैइठा है। जे शहायता नेई करनी है तो फीर आपना घोर मा हम न बैइठता।

गौरीश : मेरी बहुत साइकोलॉजिकल यानी कि मनोविज्ञान समस्या है।

डाक्टर : हाँ हाँ....सो है तो बोलो न—वोही खातिर तो हम हियां बैठा है न बाबा...

गौरीश : देखिए, जो मेरी प्रेमिका है, उसे मैंने गलती से शुरू-शुरू में बहिन जी कह

दिया था। सो आज तक वही बहिन जी का सम्बोधन चलता चला जा रहा है। मैं यह नहीं समझ पाता हूँ कि किस तरह से उसे बदल कर उसे अपने मन की बातें समझाऊँ।

डाक्टर : ओह माई गाड! आपका केस में तो बहुत बड़ा ट्रैजिडी है। बिना जाने-बूझे आज का यंग मैन हर किसी को आपना सिस्टर बोल देता है--ये हीं उसका केस में आगे चल कर ट्रेजिडी होई जाता है--ओहो....ओहो....अच्छा...आपका केस हम शमझ लीया। अब हम जैसा-जैसा पूछता है आप ऊशका जवाब देता जाओ--

गौरीश : पूछिए।

डाक्टर : ठहरिए--हम आपना रजिस्टर में ऊशको नोट करेगा--आप बताता चलो हम नोट करता चलें।--हाँ आप क्या काम करता है?

गौरीश : कुछ नहीं।

डाक्टर : बहुत ठीक ई सब काम करेगा तो ऊ काम कैसे करेगा? ठीक। बहुत ठीक। अब बोलो जे प्रेम क्यों करता है?

गौरीश : मानवता का अध्ययन करने के लिए और उस अध्ययन से आपना लाभ करने के लिए।

डाक्टर : **(आश्चर्य से)** ओई! अच्छा! बेश-भालो। आगे बोलो जे अपना प्रेम के बखत कैसा लक्षण दिखाई पड़ता है--माने अपना मन के भीतर, आई मीन.....

गौरीश : मुझे लगता है कि मैं जो कुछ भी कर रहा हूँ उससे मानवता का कल्याण होगा। जीवन की गति अप्रतिहत रूप से चलेगी। मेरा मानस स्वच्छ होगा और मन-मराल सौन्दर्य के मोती चुगेगा।

डाक्टर : **(ताली बजा कर)** वेरी गुड...वेरी गुड....तुम्हारा केस अब बहुत आसान होता चलता है।....अच्छा अब एक काम और। जे आप प्रेम का एक ठो डाइ-लाग--मने संवाद बोल कर हमको बताइए....। ....हाँ हाँ बोलिये....कोई शरमाने की बात नेई है--ई तो हमारा अण्डर-स्टैंण्डिग का खातिर है.....

गौरीश : जी आपका क्या मतलब है?

डाक्टर : मतलब? मने जब आप प्रेम करता हाय तो अपने को किश माफिक आप अपने को इक्सप्रेस करता है, कैसे प्रेम बताता है....आप हमरा शे वोही तरह बोलिये....

गौरीश : (खखार कर) मानवता आज कितनी टूटी हुई है। उसकी आस्था खो गयी है। आओ, हम तुम मिल कर उसे जोड़ें; तुम मेरी बात नहीं सुनतीं.... पर......

आज तुम मेरी बात नहीं सुनतीं
न सुनो,
कल भी मैं कहूँगा।।

डाक्टर : ओह....राइट...राइट...वेरी डिफ़ी-कल्ट....अच्छा....डेली तूम यही कहता है? जरूर कहता होगा....ठीक है....

गौरीश : अच्छा मिस्टर सेन। अब तो आपने सब कुछ पूछ लिया। अब आप मेरी समस्या का हल तो बताइये।

डाक्टर : बताता हूँ, बताता हूँ। आपको तो एक बड़ा डिफ़ीकल्ट काम करना पड़ेगा। जे आपको अपनी प्रेमिका से मने वो ही लड़की शे किशी दूशरे को प्रेम करने का खातिर बूलाना पड़ेगा।

गौरीश : जी ?......क्या मतलब ? (**तैश में आ जाता है**)

डाक्टर : थोड़ा धीराज धारो मेरा भाई। हम जो बोलता है वोई को ध्यान में धर कर फीर आपना बात बोलो। अब तूम कोई को सिस्टर बोल दिया है तो ऊशको पलटना आज के सोशल ऊश में बहूत डिफीकल्ट होई जाता है।

गौरीश : तो आप चाहते क्या हैं ?

डाक्टर : देखिए शफ़ा शूनना चाहता है तो शूनो। मतलब तूम एक ठो प्रेमी तै करके ले आओ। वो तूमरा दोस्त होय। तब वोई से अपना मिस को मिलाय देव। फिर वोई दोनों को प्रेम करने का मौका देव। तूम खूद किसी दूसरा को बहिन जी कह कर उसका साथ बातचीत करने लगो। तब तूमरा मिस मारे गूस्सा के तुमरा फ्रैंड से लव करने लगेगा। वोई का जब प्रेम बहूत पक्का होइ जाय तब वोई से बोल देना कि अब वो दगा देई के, छोड़ के चला जाय। तब तूम उस बखत आपना मिस का हाथ पकड़ लो। बाई दे वे, आपना मिस का नाम क्या है ?

गौरीश : मंदाकिनी।

डाक्टर : यस यस...तब तुम अपना ठाठ से मिस मंदाकिनी का हाथ पकड़ लो और बोलो जे 'मिस मंदाकिनी, कोई बात नहीं। आप दुखी मत हों। आपको प्रेम करने वाला बहूत सा मिल जायगा' और फिर अपना को आफ़र कर दो। ईश माफिक वो बहिन जी वाला डिफीकल्टी खतम होइ जायगा।

गौरीश : मान लीजिये कि वह दूसरा प्रेमी ऐसा न हो कि मेरे कहने पर रहे। वह अगर उससे प्रेम करना न छोड़े, तब तो मैं धारोधार गया। मानवता का उससे फिर क्या कल्याण होगा ?

डाक्टर : हाँ, ये एक डिफीकल्टी है। पर ऐसा आदमी तो ढूँढ़ना पड़ेगा। नेंही तो आपका काम ठीक नेंई होगा। साइकलॉजिकल ट्रीटमेंट के लिये ये बहुत जरूरी है। अगर आप आदमी नहीं ढूँढ़ सकता है तो हम आदमी का बांदोबाश्त कर दे सकता हूँ। पर आप अपना पहिला च्वायस रखिए।

गौरीश : मेरे मान का तो नहीं है डाक्टर साहब। आप ही कहीं से प्रबन्ध कर लीजिए।

डाक्टर : नेंही नेंही...आप खूद कर लीजिए तो अच्छा होगा। बात ई है कि हमको तो आदमी इंगेज करना होगा। कुछ पेमेंट करना होगा। पता नहीं कितना महीना...

गौरीश : जी नहीं, मैं पेमेन्ट कर दूँगा। कितना लगेगा ?

डाक्टर : ये तो कहना डिफीकल्ट है, पर अभी सौ रुपये में काम चलेगा।

गौरीश : सौ ? अच्छा ये तीस रख लीजिए; बाक़ी दे जाऊँगा।

दलाल : (**आकर**) ओ हो गौरीश बाबू ! कहिए कहिए नमस्कार ! डाक्टर साहब से आपकी भेंट हुई न ? कुछ बातचीत कीजिए तो आपको इनकी क्वालीफिकेशन मालूम पड़े।

गौरीश : जी हाँ, कर चुका मिस्टर दलाल।

दलाल : डाक्टर साहब, आपसे मिलने के लिए एक सज्जन और बाहर बैठे हुए हैं।

डाक्टर : अच्छा ! अच्छा !! अभी मिलता हूँ। बैठाओ।......

गौरीश : तो मैं चलता हूँ...बाकी पैसे भिजवा दूँगा।

डाक्टर : हाँ हाँ ठीक है। उसका कोई बात नहीं है।...आपना फुर्सत से करना। पर ये काम बहुत जोखिम का है सो ईस को ऐसे वैसे मत करना...बाकी फिर मिलना तो आगे का काम देखेगा।

गौरीश : अच्छा नमस्ते। **(जाता है।)**

डाक्टर : नमस्ते। हाँ मिस्टर दलाल, दूसरा आदमी को भीतर भेजो।

दलाल : कितना दे गया है डाक्टर? मेरा हिस्सा न भूलना।

डाक्टर : अरे मानूस। पहिले काम तो करेगा कि पहिले ही हिस्सा माँगेगा।

दलाल : जाता हूँ। पर उसको याद रखना।

(मिस्टर राजेन्द्र का प्रवेश)

राजेन्द्र : नमस्ते।

डाक्टर : नमस्ते नमस्ते।...आपकी नाम?

राजेन्द्र : जी, मुझे राजेन्द्र सिंह कहते हैं।

डाक्टर : अच्छा अच्छा राजेन्द्र सिंह। आप क्या काम करता है?

राजेन्द्र : मैं यहीं के बी० जी० आफिस में काम करता हूँ।

डाक्टर : अच्छा तो हम आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ।

राजेन्द्र : मैंने सुना है कि......

डाक्टर : कि मैं शब तरह का लव सम्बन्धी रोगों का जानकार हूँ। मेरा काम है कि शब लोग खूब अच्छी तरह से लव कर सकें, इश खातिर उनका डिफीकल्टीं, उनका कठिनाई साल्व करना...जे उनका प्रेम ठीक करना।

डिक्शन और डिक्शनरी

उस दिन मुशायरा था। उससे पहले खाने की दावत थी। क़रीब-क़रीब सभी लोग खाने से निवृत्त हो चुके थे, मगर मजाज़ और मुईन एहसन जज़्बी अभी खा ही रहे थे।

तभी बातों-बातों में मजाज़ ने एक

राजेन्द्र : जी हाँ, मुझसे आपकी बड़ी-बड़ी तारीफें की गई हैं।

डाक्टर : (शरमाते हुए) जी जी, वो तो लोग है। उनका कहना पर आप मत जाइए। आपना खुद आजमा कर देखिए, मिस्टर सिंह।

राजेन्द्र : मैं आज आपसे एक मामले में सलाह ही लेने आया हूँ।

डाक्टर : जरूर लीजिए। आपना पूरा बात बताइए...हियां तो साब बात एकदम प्राइवेट रक्खा जाता है। आपना मन का बात हमसे एकदम खुल कर बोलो...

राजेन्द्र : देखिए बहुत प्राइवेट बात है।

डाक्टर : कूछ चिन्ता मत करो। बेशी फिकिर तो हम करेगा।

राजेन्द्र : मेरे दफ्तर में बहुत सी लेडी टाइपिस्ट हैं। उनमें से एक से मेरा लव हो गया है।

डाक्टर : ओह वेरीगुड। वेरीगुड। इट इज़ वेरी कन्वीनियंट लव। बहुत आसान है आपका प्राब्लम।

राजेन्द्र : ज़रा मेरी बात तो सुन लीजिए।

डाक्टर : यस यस...आगे बोलिए...

औरत को अपनी शायरी के सम्बन्ध में बताते हुए कहा, "मैं डिक्शन (शब्द-शैली) का मास्टर हूँ।"

उस औरत ने तुरन्त कहा, "तो फिर जोश मलीहाबादी क्या हुए ?"

"डिक्शनरी के मास्टर", मजाज़ का संक्षेप में उत्तर था।

—सैयद अख्तरुल इस्लाम

राजेन्द्र : मैंने उस लड़की को अपने यौवन का प्रथम प्रेम समर्पित कर दिया था...अपना सब कुछ अर्पित कर दिया था, पर उसने मुझे धोखा दिया। मेरे साथ बेवफ़ाई की। मेरी लहलहाती हुई प्यार की बगिया को पाला मार गया।

डाक्टर : ओह बाबा। आखिर क्या हुआ ?

राजेन्द्र : उसने मेरे साथ बेवफ़ाई की। मेरे दिल के हज़ार टुकड़े कर दिये। हर टुकड़े को सड़क पर बिखेरती चली गई। कोई यहाँ पर गिरा, तो कोई वहाँ पर गिरा।

डाक्टर : दैट इज वेरी बैड...वेरी बैड...तो फिर क्या हुआ ?

राजेन्द्र : वह लड़की...अब मुझको छोड़ कर उस खवीस बड़े बाबू के साथ टहलना पसन्द करती है। मेरी ओर आँख उठा कर भी नहीं देखती। मैंने उससे सिनेमा चलने के लिए कहा तो वह साफ़ इन्कार कर गई; पर अभी कल ही बड़े बाबू के साथ पिक्चर देखने गई थी।

डाक्टर : ओहो ओहो...दैट इज़ वैरी बैड।...तो क्या चाहता है आप ?

राजेन्द्र : आप किसी तरह से उस खवीस के साथ उसका टहलना बन्द कर दीजिए।

डाक्टर : ब...स ?

राजेन्द्र : जी हाँ। अगर वह उसके साथ टहलना बन्द कर देगी तो फिर झक मार कर वह मुझे प्रेम करेगी। मगर किसी तरह से यह करवाना बड़ा जरूरी है। मैंने सोचा कि आप यह काम आसानी से कर सकते होंगे, इसलिए...

डाक्टर : अच्छी बात है तो आप पहिले जो हम बोलता है ऊशका ठीक ठीक जवाब दीजिए। फीर हम आपको इसका हल बताएगा। पहिले आप बोलो कि आप प्रेम क्यों करता है ?

राजेन्द्र : डाक्टर......मैं प्रेम क्यों करता हूँ ? **(भावुक होकर)** मेरा प्रेम अति पवित्र प्रेम है...वह आत्मा का प्रेम है...जन्म-जन्मांतर के बन्धनों को तोड़ने के लिए वह मेरे हृदय की तड़प है, टीस है, पुकार है, चीत्कार है...

डाक्टर : बस बस। काफी है, काफी है। अब आप बोलो कि जे जब आप प्रेम करता हाय तब कैसा माफिक लक्षण दिखाई देता है...मतलब कैसा फ़ील करता है।

राजेन्द्र : ओहो डाक्टर साहब, यह मत पूछिए...लिली जब मेरी ओर देखती थी तो लगता था कि जैसे मैं किसी अतल तल की गहराइयों को छूता हुआ किसी नये स्वर्ग के द्वार को पार करता हुआ उड़ा चला जा रहा हूँ। जैसे किसी हंस के शुभ्र पंखों पर बैठ कर मेरा मन कहीं किसी सपनों के देश जा रहा हो जहाँ पर बस सब परियां सब लड़कों को बुला रही हों, जहाँ पर...

डाक्टर : बस मिस्टर सिंह। काफी है। अब आप अपने प्रेम का एक ठो डाइलाग भी बोल दीजिए। प्रेम का संवाद...

राजेन्द्र : किससे कहूँ ?

डाक्टर : मुझसे ही कहिए। हमी को लिली मान कर बोलिए...

राजेन्द्र : ये मुझसे न होगा...मैं...किसी दूसरे को लिली नहीं मान सकता।

डाक्टर : अच्छा आप अपने मन में सोच कर बोल दीजिए।

राजेन्द्र : ओह मेरी लिली। जब मैं तुम्हें याद करता हूँ तो सारा कमरा ही जैसे लिलीमय लगता है...तुम्हारी फीरोज़ी उंगलियाँ, तुम्हारे सुरमई दाँत, तुम्हारा चम्पई तारों वाला पल्लू...सब कुछ मेरे कमरे में अपने आप लहराने लगता है... मैं खो जाता हूँ, तुम जी जाती हो...

डाक्टर : ओह वेरी गुड। आपका केस अब क्लियर है।

राजेन्द्र : तो आप क्या सलाह देते हैं ?

डाक्टर : देखिए हमरा बात मानिए तो आप कुछ दिन उस लड़की से अपना छुट्टी कर दीजिए।

राजेन्द्र : इम्पासिबुल। ऐसा हो सकता तो फिर आपके पास काहे को आता ?

डाक्टर : आइ से मिस्टर, फार 'कुछ दिन'। वोई को जब तक शॉक न मिलेगा तब तक वो आपके फेवर में नेई आएगा।

राजेन्द्र : अच्छा तो...?

डाक्टर : हाँ, आप उसके साथट हलना-फिरना बन्द करके और दूसरा के संग में घूमिए। वोई दूसरा को आप प्रेजेन्ट्स् वगैरह दीजिए...जाहिर कीजिए कि आप उसको नेहीं दूसरा को प्रेम करते हैं। बस फिर वो ठीक होइ जायगा।

राजेन्द्र : लेकिन इतनी जल्दी मैं यह दूसरी लड़की कहाँ से ढूँढ़ लाऊँ ? यह तो बड़ी मुश्किल बात बताई आपने।

डाक्टर : नेंहीं मिस्टर सिंह। आखिर हमारा ये क्लीनिक किस के खातिर है ? आपका हेल्प करना हमारा फर्ज है। हम आपका खातिर ये काम करेगा। बस हमरा करने में थोड़ा खरचा-बरचा पड़ जाता है ?

राजेन्द्र : तो खर्च-वर्च मैं दे दूँगा। बोलिए कितना ?

डाक्टर : बस हमको मत दीजिए; प्रेजेन्टस का खातिर सौ दुइ सौ लग जायगा।

राजेन्द्र : कोई बात नहीं। मुझे लिली को उस खबीस से छुड़ाना ही है।

डाक्टर : तो आप पैसा लेकर हमसे मिल लेना। आपका खातिर एक प्रेमिका हम देगा। नमस्ते।

राजेन्द्र : नमस्ते।

डाक्टर : मिस्टर दलाल।

दलाल : यस डाक्टर।

डाक्टर : अब काफी काम होए गया है। गौरीश का खातिर एक प्रेमी चाहिए, इस सिंह के खातिर एक लड़की चाहिए। अब दूनों गोटी फिट होइ जायगी। अब तुमरा काम है कि किसी तरह ऊश हेडक्लर्क और टाइपिस्ट को भी हमारा पास लाओ।

दलाल : ले आऊँगा। पर याद रखना हमारी बात।

डाक्टर : पहिले शब काम करता जाओ। और साइन बोर्ड ठीक करके लगाओ। बाकी काम फिर।

(तीसरा दृश्य : प्रेम-पूछ-ताछ-घर)

मिस मंदाकिनी : क्या मैं अन्दर आ सकती हूँ ?

डाक्टर : ओह यस, स्योरली, व्हाई नाट ? क्यों नहीं, क्यों नहीं । आप भीतर न आइएगा तो क्या वहीं खड़ा रहेगा ? प्लीज टेक योर सीट ।..आपकी नाम मिस...?

मंदाकिनी : मिस मंदाकिनी ।

डाक्टर : मिस मंदाकिनी ?...(सोचते हुए) ओह यस । आप मिस मंदाकिनी हैं... बी० ए० सेकेंड ईयर...आप हियां सिविल लाइन्स में रहता हाय...आपका फादर रिटायर्ड सुपरिंटेंडेन्ट हैं...आपका मित्र गौरीश बाबू है ?...है ना ?

मंदाकिनी : (घबरा कर) लेकिन...लेकिन... आपको ये सब कैसे मालूम ?

डाक्टर : (हँसते हुए) कोई बेशी घबड़ाने का बात नेई है । बाबा, हमरा के तो येई बिजनेस है । हमरा के तो येई काम है कि शहर के सब लड़का लड़की लोग का पूरा लिस्ट अपना पास में रक्खे और ऊश पर जब कोई बिपत्ति हो, जब कोई मुशीबत हो, तब आपना के खड़ा होकर ऊशका हेल्प करे । शब बात हियां प्राइवेट रहता है न । शो ईश कारन कोई घबड़ाने का भी बात नेंही है ।

मंदाकिनी : ओह !!

डाक्टर : हम बोला न कि आपको घबड़ाहट का बेशी बात नेंही हाय । आपका प्राब्लम क्या है ? आपका कोई खाश मुशीबत हो तो आप जरूर हमको बताइएगा ।

मंदाकिनी : देखिए...आप गौरीश बाबू को जानते हैं न ?

डाक्टर : जानना वानना क्या है, आप आपना बात बोलो ।

मंदाकिनी : वह मेरे बहुत अच्छे साथी हैं... मैं...मैं...मैं उनको...

डाक्टर : 'लव करती हूँ ।' है ना ?

मंदाकिनी : जी हाँ, जी हाँ । पर...पर...

डाक्टर : पर वाला क्या बात है ?

मंदाकिनी : पर वह मुझे अपनी बहन की तरह मानते रहे हैं और मेरी हिम्मत नहीं पड़ती थी कि उनसे यह कह दूँ कि मैं आपसे शादी करना चाहती हूँ ।

डाक्टर : ओह वेरी सारी...वेरी बैड...फीर... फीर क्या हुआ ?

मंदाकिनी : इधर इस बीच उन्होंने अपने एक मित्र से मेरी मुलाकात करवाई थी । वह महाशय बुरी तरह मेरे पीछे पड़े हुए हैं । गौरीश बाबू का कहीं पता भी नहीं रहता । उनके बारे में तरह तरह की अफ़वाहें सुनाई पड़ रही हैं ।

डाक्टर : अच्छा तो तूम क्या चाहता है मिस मंदाकिनी...गौरीश बाबू का मन दूसरा तरफ से हट कर फिर तोमरा तरफ आ जाय और तूमको वह बियाह कर ले ?... है ना ?

मंदाकिनी : यही नहीं ? इन महाशय से मेरा पीछा छूटना चाहिए—ये मिस्टर सिंह जी उनके दोस्त हैं ।

डाक्टर : देखिए, आप प्रेमी नहीं चाहता ?

मंदाकिनी : चाहती तो हूँ ।

डाक्टर : बहन जी वाली बात आपको पसन्द नेंही है न ?

मंदाकिनी : सख्त नापसन्द है। मैं हर किसी से बहन जी कहलाना पसन्द नहीं करती।

डाक्टर : अच्छा तो आप पहिले बताइए कि आप प्रेम क्यों करता है ?

मंदाकिनी : प्रेम ? प्रेम करती हूँ जीवन की पूर्णता के लिए। अपने देवता के चरणों पर समर्पित हो जाने के लिए...

डाक्टर : ओह वेरी गुड...आपका लक्षण तो एकदम क्लियर है। अगर आपको आपत्ति न हो तो प्रेम का एक डायलाग हमरा के खातिर बोल दीजिए। उससे हमरा के जरा मदद मिलेगा।

मंदाकिनी : **(शरमा कर)** जाने दीजिए।

डाक्टर : नहीं नहीं...शरमाइए नहीं। बोल दीजिए...

मंदाकिनी : 'भूल जाओ--भूल जाओ अपनी मंदाकिनी को--इस जन्म में यदि मैं तुम्हें न मिल सकी तो अगले जन्म में...'

डाक्टर : बस बस...होइ गया...हम समझ गया। आपको अब कोई दिक्कत नेहीं होइगा। फिलहाल जब तक गौरीश बाबू को अकल नेंही आता हाय, तब तक आप मिस्टर सिंह से बराबर दोस्ती रक्खे। वही उसका खातिर फीर शे आकर्षण बनेगा। फीर आपको चाहेगा, आपका पास आएगा। हम सब काम देख लेगा। बाकी ये है कि गौरीश बाबू को उधर से हटा कर फीर इधर लाने में काफी खर्चा-बर्चा लगने का बात है; वोही से हम कुछ हिचकता था। बात ई है कि आपना पाकिट में इतना पैसा नाहीं। नाहीं तो कोई बात नेंही थी।

मंदाकिनी : जी नहीं, उसके लिए आप चिन्ता न कीजिए। मैं तो आपकी फीस लेती आई थी। और भी जितना खर्च बैठे...बताइएगा। देखिए डाक्टर साहब, यह मेरे जीवन-मरण का मामला है। जब तक यह ठीक न हो जाय, मैं अपने पिता जी को भी नहीं बताना चाहती हूँ।

डाक्टर : बस बस ठीक है। बात ई है कि आजकल आदमी को मन ईधर से ऊधर करने में काफी पइसा खरचा करना पड़ता है। आप तो जानती ही होंगी। सो अगर ये काम ठीक है तो बाकी काम अपने आप ठीक होइ जायगा। दुइ सौ के लगभग हमरा ख्याल है...

मंदाकिनी : ये लीजिए दो नोट हैं। अब मैं कब तक आपसे मिलूँ ?

डाक्टर : बस कुछ चिन्ता नहीं। आप अब अपना काम कीजिए...हम आपना काम करेगा।

मंदाकिनी : अच्छा नमस्ते।

डाक्टर : नमस्ते !

लिली : **(आकर)** नमस्ते !

डाक्टर : **(मंदाकिनी से)** मिस मंदाकिनी...ये आपके ही साथ में था ?

मंदाकिनी : जी नहीं।

लिली : मैं अलग आई हूँ। आप ही डाक्टर सेन हैं ?

मंदाकिनी : अच्छा, मैं चली डाक्टर साहब।

(प्रस्थान)

डाक्टर : अच्छा नमस्कार...आइए बैठिए... आपका नाम मिस लीली है...जी, आप बी० जी० आफीस में काम करता हाय ?

लिली : ओह यस। बट हाऊ डू यू नो इट ? किसने आपको बताया ?

डाक्टर : वो सब हमरा काम है।...आइए बैठिए...बोलिए...जे आज आप कैसे आया? आपका तो बड़े बाबू से आजकल खूब अच्छा रिलेशन चल रहा है न?

लिली : (अचम्भे से) ओह माई गाड! बट हाऊ डू यू नो इट? तुमको किसने ये सब कहा डाक्टर?

डाक्टर : हमने बोला न...आप ई शब पूछ कर क्या करेगा? आपना बात बोलो जे हमरा क्या हेल्प चाहता है?

लिली : देखो डाक्टर, हमारा एक फ्रेन्ड है सिंह। वह भी हमारे दफ्तर में काम करता है...पर मुझे वह हेडक्लर्क के साथ घूमते देख कर बड़ा जलता है। सच बात यह है कि मैं भी उसे बहुत चाहती हूँ पर अपने प्रोमोशन के लिए मैं उस खबीस हेडक्लर्क को ये इम्प्रेशन दे रही हूँ कि मैं उसे बहुत चाहती हूँ। अगर ये न करूँगी तो वह मेरा कन्फर्मेशन रुकवा देगा।...पर यह मिस्टर सिंह इस क़दर बचकानी तबीयत के आदमी हैं कि बात समझ ही नहीं पाते।

डाक्टर : अच्छा तो मिस्टर सिंह आपको बहुत चाहता है?

लिली : (तेज होकर) चाहता है पर उसके अक्ल तो नहीं दी है भगवान ने! अब आखिर अगर मेरा कन्फर्मेशन हो जायगा और मेरी उसके बाद उससे शादी भी हुई तो उसी का फायदा होगा कि नहीं? पर वह तो बेवकूफ है बेवकूफ। आप ही बताइए कि अगर मुझे कुछ कास्टली प्रेजेन्ट्स लेने हैं तो उसे मुझे सिंह से खरीदवाना चाहिए या उस बड़े बाबू को उल्लू बना कर उससे पैसे ऐंठने चाहिए? अगर सिंह के पैसे बच जाते हैं तो वह हमारे ही काम तो आएँगे।

डाक्टर : दैट इज़ रियली ब्रिलियंट।...बहुत अच्छे मिस लिली। मुझे इतने दिनों में पहिली बार एक अक्लमन्द लड़की मिली है। अब बोलो, तूम क्या चाहती हो हमसे...

लिली : मैं चाहती हूँ कि आप सिंह को किसी तरह से समझा-बुझा दीजिए ताकि वह मेरे कन्फर्मेशन तक मुझे बड़े बाबू के साथ घूमने फिरने दे। इस बीच वह किसी और लड़की के फेर-फार में न पड़ जाय, जैसा कि मैंने सुना है।

डाक्टर : अच्छा पहिले हमारा सवाल का जवाब बोलो। तूम कीस लिए प्रेम करता हाय?

लिली : किसलिए? किसलिए क्या? मैं प्रेम-वेम इसलिए करती थी कि अपने मन का कोई लड़का ढूंढ़ कर शादी करना चाहती थी। सो अब मिल गया है। दो तनखाहें मिल कर ज्यादा पैसा हो सकता है न...।

डाक्टर : गूड...वेरी गूड...अब बोलो कैसा लक्षण होता है?

लिली : हमेशा प्रेम करते वक्त मैं अपने आप को ही बहुत सुन्दर लगती रहती हूँ और उसे हरबार और बढ़ाने की कोशिश करती हूँ।

डाक्टर : अच्छा तो अब प्रेम का एक डायलाग भी बोलो--हमरा के उससे बड़ा लाभ होता है और तोमरा के भी होगा। बोलो बोलो--सब प्राइवेट होगा--खूब बोलो...

लिली : 'चले हो प्रेम करने और पैसा गांठ में नहीं है ! मैं कमा कर न लाऊँ तो तुम्हारे घर का चूल्हा भी न जले।' सच मानिए डाक्टर, मैं इसे जब भी उससे कहती हूँ तो एक लफ्ज भी झूठ नहीं बोलती।

डाक्टर : ओह दैट इज़ आल राइट। बिल्कुल ठीक। अब मैं मिस्टर सिंह को समझाय दूँगा। वो तोमरा हाथ से अभी जल्दी बाहर नेंहीं निकल सकता। पर तूम भी अब जल्दी उस हेडक्लर्क का पीछा छोड़ो।

लिली : मैंने तो आपको बता ही दिया। जैसे ही काम पूरा हो जायगा, वह छूट जायगा। पर आप सिंह को सम्हालिएगा।

डाक्टर : ठीक है। सिंह को सम्हालने का खातिर जो कुछ पैसा-वैसा लगेगा सो तो आप हमको देगा ही।

लिली : यस। ह्वाई नाट।

डाक्टर : फीर क्या---कुछ पैसा एडवांस चाहिए। बाकी काम हो जाने पर देना।

लिली : यह लीजिए...ये चालीस हैं। बाक़ी आगे दूँगी। नमस्ते...

डाक्टर : थैंक्यू...थैंक्यू...नमस्ते !

(पॉज)

डाक्टर : तो फिर आप क्या मांगता है, सावित्री देवी जी ?

सावित्री : हम तो सीधी बात जानते हैं कि हमारा मियाँ हमारे पास रहे।

डाक्टर : अरे बाबा। ऊ तो रहेगा ही। ऊ आखिर कहाँ जायगा ?

सावित्री : बताया तो कि ऊ अपने दफ्तर की एक मेम से आजकल आसीकी-मासूकी चलाय रहे हैं। वही का काट के फेंको।

डाक्टर : ऊ तो हम करेगा ही। आखिर आप हमको पचास रुपिया फीस दिया तो क्या हम ऊ भी न करेगा तो क्या करेगा ?

सावित्री : तो बस, उनका उस जाल में से निकाल लेव तो हम भाई ई सब समुझी।

डाक्टर : तो आप एक काम करेगा। आप अपना मैका, अपना माँ का घर, अपना भाई के घर चला जाय गुस्सा होकर। बाक़ी काम हम ठीक कर देगा।

सावित्री : पर हमारे तो कोई भाई भी नहीं है।

डाक्टर : ओह माई लार्ड ! ऊ अब क्या करना होगा ?...भाई के घर जाना लेकिन बहुत जरूरी है। बिना इसके आपको अपना हस्बैंड से ठीक तरह से लड़ने का फुर्सत नेंहीं मिलेगा।

सावित्री : भाई कहाँ से आवे ? पैसा खर्च करने पर क्या भाई-बहन थोड़े ही मिल सकता है ?

डाक्टर : वाह, क्यों नहीं मिल सकता है ? हम आपको पचास रुपिया पर एक ठो भाई का बन्दोबस्त कर देगा। तुम वोहीं के पास चली जाओ। वहाँ जाकर तब तक रहो कि जब तक सब मामला ठीक न हो जाय। फिर आगे का किस्सा हम ठीक करेगा। अच्छा अब आप अपने मियाँ बड़े बाबू से जैसे प्रेम से बातें करती हैं वैसे ही एक बार हमें कह कर बताइए...

सावित्री : धत् ! हमें तो बड़ी लाज लगती है।

डाक्टर : यहीं कहता है न आप ! ठीक है ठीक है। हम आपका मामला दुरुस्त कर देगा। अब हम काल तक आपका भाई का बन्दोबस्त कर देगा। तब आप झगरा करके अपने घर चला जाय।

सावित्री : ठीक है। अच्छी बात है। नमस्ते।

(हल्का चेंज ओवर)

(हेड क्लर्क का घर)

सावित्री : अब दफ्तर खतम हुआ है ?

बड़े बाबू : और क्या ? क्यों ? हाँ-नहीं-तो, बात क्या है ?

सावित्री : हमसे बात न छिपाओ। हम सब जानते हैं। दफ्तर के बड़े बाबू होकर...

बड़े बाबू : क्या जानती हो ? तुम्हारी तो आदत हो गई है कि हर बार जब दफ्तर से लौट कर आऊँ तो झिक-झिक करो। हाँ-नहीं-तो...

सावित्री : हाँ, मेरी ही तो आदत पड़ गई है। तुम्हारी जो आदत आजकल पड़ रही है वह तो दुनिया को मालूम है।

बड़े बाबू : मेरी क्या आदत ?

सावित्री : यहीं कि इतनी रात को घर लौटना और उल्टे मुझी को समझाना कि अभी दफ्तर से आ रहे हैं। जो न जानता हो उसे ये सब चरित्तर समझाया करो।... हाँ, ये बात दूसरी है कि उसी लौंडिया के साथ तुम्हारा दफ्तर कहीं और लगता हो।

बड़े बाबू : कौन लौंडिया ? दिमाग़ कुछ खराब हो गया है क्या ? हाँ-नहीं-तो...

सावित्री : मेरा दिमाग़ तो ठीक है। अपने दिमाग़ का कुछ इलाज कराओ जो तीन-तीन बच्चों के बाप होकर अब चले हो आशिकी-माशूकी करने।

बड़े बाबू : अगर तुम्हें यहीं सोचकर मजा मिलता है तो यहीं सोच कर जियो। अगर आशिकी-माशूकी करता हूँ तो किसी के बाप का इजारा ! हाँ-नहीं-तो...

सावित्री : बाप ही होता तो यह काम करने के लिए तुम्हारी हिम्मत पड़ती ! यही सब करना है तो मुझे मेरे भाई के घर भेज दो फिर अपना चाहे जो नाच दिखाओ।

बड़े बाबू : जाओ। चाहे जहाँ जाओ। मुझ पर रोब दिखा कर तुम नहीं रह सकती हो...हाँ-नहीं-तो...

सावित्री : अच्छी बात है, तो मैं चली। तुम अपना घर उसी के साथ बसाओ।

बड़े बाबू : तो जाओ...तुम्हारा कौन भाई-बन्द बैठा हुआ है जिसके घर जाने की तुम कमर कसे हो ?

सावित्री : हमारे लिए तुम न चिन्ता करो। जहाँ सींग समाएगा तहाँ चली जाऊँगी।... जब तुम अपनी करनी न सुधारोगे तो...

बड़े बाबू : तो जाओ जहाँ मन चाहे...मैं...

(चेंज ओवर)

(गौरीश का घर)

गौरीश : देखो सावित्री जी। फिर तुम्हारे बच्चों ने मेरी मेज़ पर दावात गिरा दी।...

सावित्री : क्या करें बेचारे बच्चे ? सुबह से इधर-उधर भटक रहे हैं। ज़रा-सा दूध चाय मिले तो वह भी ठिकाने बैठें।

गौरीश : तो अगर दूध या चाय देर से मिले तो वह हमारी मेज पर ऊधम मचाएँगे।

सावित्री : मना तो कर दिया था। पर क्या करूँ, आखिर भूखे बच्चे क्या करें ?

गौरीश : वह तो अच्छी रही। सौ रुपये देकर मुझे यही बहन मिलनी थी तो अच्छी बहन रही और अच्छे मेरे भांजे रहे।

सावित्री : हुँ हुँ, डेढ़ सौ रुपये भेंट करके अगर मुझको यही भाई मिलना था कि मेरे बच्चे दूध को तरस जाँय तो फिर भगवान बचाए...मिलने दो उस बेईमान डाक्टर को तो...

गौरीश : क्या कहा...डेढ़ सौ देकर तुम्हें मैं मिला हूँ...

सावित्री : तुमने क्या कहा...सौ रुपया देकर तुमने मुझे पाया है।

मंदाकिनी : (बाहर से) क्या मैं अन्दर आ सकती हूँ ?

गौरीश : अरे मंदाकिनी ?...आओ...आओ... बैठो...कैसे आज इधर भूल पड़ीं ?

मंदाकिनी : तो यही हैं वह देवी जी जिनके लिए आपने मेरी मित्रता खत्म की है।

गौरीश : सुनो सुनो मंदाकिनी...बैठो...मैं तुम्हें सारी बात...

मंदाकिनी : मुझे नहीं मालूम था कि तुम दिल के इतने काले हो...**(सिसकी के स्वर)** अगर मैं यह जानती तो कभी तुम्हारे लिए अपने मन में...

गौरीश : लेकिन सुनो तो मंदाकिनी...

सावित्री : क्या बात है...

गौरीश : कुछ नहीं। सुनो तो मंदाकिनी...

सावित्री : क्या बात है...

गौरीश : कुछ नहीं। सुनो तो मंदाकिनी...

मंदाकिनी : आखिर मैंने क्या किया था तुम्हारा जो तुमने मेरे पीछे सिंह को लगा दिया...मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था कि तुमने मेरे मन को...

(सिसकी)

गौरीश : सुनो मंदाकिनी मैंने कभी नहीं जाना था कि...

राजेन्द्र : (बाहर से) गौरीश, अरे भई गौरीश !

राजेन्द्र : (प्रवेश करके) क्यों भाई गौरीश बाबू, क्या हो रहा है ?...अरे मिस मंदाकिनी...? ये रो क्यों रही हैं ?

मंदाकिनी : शट्अप। आप यहाँ से चले जाइए। आपको किसने बुलाया है ?

राजेन्द्र : मिस मंदाकिनी। आप बेकार क्रोध कर रहीं हैं। आपको शायद यह भ्रम है कि मैं आपके पीछे पड़ा हुआ हूँ। दरअस्ल मैं आपको नहीं, आपसे लव दिखा कर अपनी बिलवेड लिली को प्राप्त करना चाहता हूँ।...इसके लिए मैंने सैकड़ों रुपये खर्च कर दिए।...आप यह न समझिएगा कि मैं आपसे शादी करना चाहता हूँ।

सावित्री : कौन लिली ? जो दफ्तर में काम करती हैं वही ?

राजेन्द्र : जी हाँ, पर आपने कैसे जाना ?

सावित्री : तो उसके चाहने वाले आप हैं... बड़े बाबू नहीं।

राजेन्द्र : अरे वह खबीस क्या चाहेगा उसे। वह तो कुछ ऐसी बात हो गई थी कि लिली उसी के साथ रहने लगी थी। अब उसका काम हो गया है...उसे बेवकूफ़ बना कर उसने अपना सब काम पूरा कर लिया है। सेन डाक्टर ने ऐसी

तरकीब बताई कि साँप भी मर गया और लाठी भी टूट गई गौरीश बाबू। प्रेजेन्ट्स लेकर लिली चम्पत हो गई। उसका ट्रांसफर हो गया है। अब बड़े बाबू बेटा टाप रहे हैं। मैं भी उसके साथ जा रहा हूँ। खबीस कहीं का ! बदमाश...

सावित्री : देखिए, आप इस तरह की बातें न कीजिए...मुझे...

राजेन्द्र : क्यों ? आप जानतीं नहीं उसे... बड़ा ही...

सावित्री : देखिए वह मेरे पति हैं...उन्हें आप कुछ न कहिए...उनकी इसी हरकत से ऊब करके मैंने डेढ़ सौ रुपये उस डाक्टर को देकर भाई प्राप्त किया और अब मैके का बहाना करके इनके पास पड़ी थी।

मंदाकिनी : तो आपने इनको सचमुच भाई करके माना था.....

सावित्री : अरे हाँ माना था। डेढ़ सौ रुपया उसे पूज कर....

गौरीश : तो सबने उस डाक्टर को पैसे पूजे। सब से पैसे ऐंठ कर उसने हमको इस परेशानी में डाल दिया ?

(दरवाजे पर थपथपाहट)

गौरीश : कौन है ?

बड़े बाबू : खोलिये। **(दरवाजा खुलता है)** आपके यहाँ मेरी वाइफ़ आयी हुई हैं ?

गौरीश : आप कौन हैं ?

बड़े बाबू : मेरा नाम आर. एन. कल्ला है। यहीं बी. जी. आफिस में हेड क्लर्क हूँ। मेरी वाइफ़ पिछले तीन दिनों से यह कह कर चली आई हैं कि वे अपने भाई के घर जा रही हैं। यहीं का पता है मुझे।

गौरीश : जाइए......

राजेन्द्र : अरे...बड़े बाबू....यहां भी आप ?

सावित्री : मुझे आपके भ्रम का पता चल गया है। आपको मैंने माफ़ किया....

बड़े बाबू : मैं तो तुमसे पहिले से ही कह रहा था, हाँ-नहीं-तो....

सावित्री : बस अपने डेढ़ सौ रुपये जाने का मुझे बेहद अफसोस है....

बड़े बाबू : ऐं, मुझसे चुरा कर डेढ़ सौ दिया.... किसे ?

सावित्री : अरे उसी बेईमान डाक्टर को।

राजेन्द्र : तब तो वह डाक्टर बहुत ही बेईमान निकला भाभी जी। हम सब से सौ-सौ, डेढ़ सौ रुपया खाये बैठा है।

गौरीश : उससे तो वह रुपया वसूल करना चाहिए।

बड़े बाबू : उसने आप सब को बेवकूफ बना कर रुपया ऐंठ लिया है। इसका कहीं रिकार्ड होगा तो वह फँस जायगा, नहीं तो समझो ले भागा।

मंदाकिनी : अभी उसके यहां चलिये....

(सम्मिलित स्वर 'चलो चलो')

(पॉज; फेड इन)

राजेन्द्र : यही तो है उसकी दूकान....पर यहाँ से तो इसका साईनबोर्ड वगैरह सब उतर गया है।

गौरीश : वह देखो, दलाल तो घूम रहा है। उसी को पकड़ो। दरअस्ल सब को उसी ने फंसाया था।....ए मिस्टर दलाल......मिस्टर दलाल...

दलाल : (नजदीक आता आता कुछ डरे स्वरों में) कहिये....क्या बात है?....आप लोग डाक्टर साहब से मिलने आये हैं ?

गौरीश : डाक्टर से भी और तुमसे भी, बताओ वह कहाँ गया...तुम्हारा स्पेशलिस्ट ।

दलाल : वह तो मैं ख़ुद चक्कर में पड़ गया हूँ कि वह कहाँ गये ? यहाँ तो बाजार में जितने मुँह उतनी बातें । कोई ठीक-ठीक बताता ही नहीं ।

राजेन्द्र : वह भाड़ में गये हों पर तुम्हें वह सारे वापस करने होंगे जो उसने हम सब लोगों को उल्लू बना कर वसूल किये हैं ।

दलाल : भई, तुमको वह बुला कर उल्लू बनाने थोड़े ही गये थे । तुम बनना चाहते थे, तो तुम उनके पास आये । और शायद मैं भी उल्लू बनना चाहता था ।

राजेन्द्र : चुप रहो....बकवक करोगे तो अभी पुलिस में दे देंगे ।

सावित्री : जाने भी दो....छोड़ो सिंह बाबू....

गौरीश : ठीक-ठीक बताओ, नहीं तो पुलिस में चलने की तैयारी कर लो मिस्टर दलाल ।

बड़े बाबू : हाँ, यहाँ का दरोगा तो मेरा अपना पहिचानी आदमी है । उसके पास चल कर अभी ठीक करवा दूँगा ।....चलिये ले चलिये इनको..... (चलो-चलो की आवाजें)

दलाल : अरे....अच्छी मुसीबत है....(कुछ डर कर) मुझे आप कहाँ लिये जा रहे हैं.... सुनिए, मैं भी तो आपकी ही तरह का मारा हूँ....सुनिये साहब, मेरी कमीशन लेकर भी वह भाग गया है ।...अजी सुनिए....मुझको पुलिस में देकर क्या ?... (भीड़ का शोर उभरता है । स्त्री स्वर....'जाने दीजिये . . . छोड़ दीजिये'... पुरुष स्वर 'अभी याद आ जायगा छठी का दूध' आदि । (संगीत)

● ●

(पृष्ठ ३२ का शेषांश : चाँदनी)

महिला को खोजता फिर रहा हूँ । इस सबके बाद मैं आश्वस्त हो गया कि वह यहाँ आयी तो किसी होटल में नहीं रुकी । क्योंकि किसी होटल में यदि वह टिक जाए तो लोग उसे न जाने ऐसा कभी नहीं हो सकता । पैसों के प्रति वह जितनी निर्मम है यही तो होटल वाले याद रखते हैं ।

रात एक होटल में बिता दूसरे दिन अनेक सार्वजनिक स्थानों पर खोजता रहा, लेकिन व्यर्थ । यहाँ उसका कोई परिचित भी नहीं था जिसके साथ वह हो सकती थी । मैं झल्ला कर लौटने के लिए बाध्य था । एक बार सोचा कि चलूँ, पोस्ट आफिस में तलाश करूँ संभव है कुछ पता चल जाए । लेकिन उन लोगों ने भी विवशता प्रकट की । केवल वे यही कह सके कि नोटिस बोर्ड देख लीजिये कि इस नाम के व्यक्ति का कोई पत्र तो नहीं है ?

और मैंने अपना पत्र नोटिस बोर्ड की जालियों के पीछे, मैले-सफेद फीतोंमें एक जगह बड़े उदास भाव से लटके पाया, जिसमें कि मैंने अपने दार्जिलिंग आने की बात लिखी थी तथा यह भी कि वह मेरी प्रतीक्षा करे । ● ●



० कुमार काश्यप

भविष्य बताने वाली संख्याएँ

यह शेखचिल्ली का किस्सा या कोई जादुई क़रिश्मा नहीं, बल्कि तथ्यों और आँकड़ों पर आधारित आज के विज्ञान की उद्घोषणा है।

फलित ज्योतिष के पंडित भविष्य में झाँक कर देखने का दावा करते हैं। परन्तु यह दावा क्यों और कहाँ तक सत्य है, इसका कोई वैज्ञानिक स्पष्टीकरण आज तक नहीं किया जा सका है। बहुत से लोग इस कथित विद्या को कोरा आडम्बर ही समझते हैं। उनका कहना है कि भविष्य अज्ञात और अज्ञेय है; उसे जानने का कोई उपाय मानव को उपलब्ध नहीं।

परन्तु विशुद्ध गणित ऐसा नहीं मानता। गणित के अनुसार जो कुछ हो चुका है, जो हो रहा है, और जो अनंत काल तक होने जा रहा है, उस सब का हाल जाना जा सकता है—एक संख्या द्वारा, जो अकल्पनीय सीमा तक बृहत् होने पर भी है 'निश्चित', अर्थात् उसका एक सीमित परिमाण है। परन्तु यह परिमाण इतना बड़ा है कि उसे लिख कर व्यक्त करने पर भी उसकी कोई स्पष्ट कल्पना नहीं बन पाती। शायद इसीलिए उसके द्वारा सर्वज्ञता की प्राप्ति सम्भव है।

यह संख्या किस प्रकार निर्मित होती है, इसका रहस्योद्घाटन करने से पहले अनुपयुक्त न होगा, यदि हम कुछ प्रसिद्ध बृहत् संख्याओं का विवेचन कर लें।

बृहत् संख्याओं के विषय में सबसे बड़ी कठिनाई उन्हें व्यक्त करने की रही है। यह कठिनाई केवल जंगली जातियों को ही अनुभव होती हो, ऐसी बात नहीं है। प्राचीन युग के विद्वानों को भी एक दीर्घ काल तक इस समस्या का कोई सरल हल नहीं सूझा था। उदाहरण के लिए आदि मिस्र की संख्या-लिपि को ले लीजिये। इसके अनुसार एक से लेकर हजार या लाख तक की संख्याओं के लिए अलग-अलग चिह्न निर्धारित थे। उस काल के मिस्री गणितज्ञों को यदि, मान लीजिये, ९८७६ की संख्या व्यक्त करनी होती, तो वे पहले नौ बार हजार का चिह्न, फिर आठ बार सौ का चिह्न, फिर सात बार दस का और छः बार एक का चिह्न लिखते थे। यानी उन्हें चार अंकों की इस साधारण-सी संख्या को व्यक्त करने के लिए कुल मिला कर ३० चिह्न लिखने पड़ते थे। कल्पना कीजिये कि उन प्राचीन विद्वानों को यदि ९९,९९,९९९ की संख्या लिपिबद्ध करनी होती, तो उनकी क्या दशा होती होगी।

परन्तु आज हम, शून्य का आविष्कार करने वाले प्राचीन भारत के किसी अज्ञात गणितज्ञ की कृपा से, बड़ी से बड़ी संख्या को भी सरलता के साथ लिख लेते हैं। आज हमारा काम केवल इतना रह गया है कि किसी भी संख्या-चिह्न के दाईं तरफ शून्य पर शून्य लगाते जायँ, यहाँ तक कि हम एक ऐसी बृहत् संख्या लिख डालें, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में परमाणुओं की कुल अनुमानित संख्या से भी बड़ी हो। यदि आप जानना चाहते हों कि यह संख्या कितनी है तो लीजिये वह भी हाजिर है। यह संख्या है—३००,०००, ०००,०००,०००,०००,०००,०००,०००, ०००,०००,०००,०००,०००,०००,०००, ०००,०००,०००,०००,०००,०००,०००, ०००,०००! अर्थात् ३ के बाद ७४ शून्य! इसे वर्तमान युग की संक्षिप्त संख्या-लिपि में यों भी लिख सकते हैं—$३.१०^{७४}$ अर्थात् ३ को १० से ७४ बार गुना करने से जो संख्या बनती है, वह यह संख्या है। परन्तु यह संख्या वास्तव में है क्या, इसका कुछ भी अनुमान हम नहीं लगा सकते।

हम केवल इतना ही जानते हैं कि यह एक बड़ी संख्या है; और बड़ी संख्याओं की कोटि में इसका एक विशेष स्थान है। परन्तु सच पूछिए, तो हमें ऐसी अकल्पनीय संख्याओं की कल्पना करने के लिए 'ब्रह्माण्ड के कुल परमाणुओं' अथवा 'अंतर्नक्षत्रीय दूरियों' में भटकने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है! बहुधा अति साधारण समस्याओं में भी ऐसी-ऐसी बृहत् संख्याएँ सामने आ खड़ी होती हैं कि अक्ल दंग रह जाती है। यही कारण है कि बृहत् संख्याओं को लेकर सभी देशों में अनेक रोचक कथाएँ प्रचलित हैं।

भारत की एक लोक-कथा इस प्रकार है :–

विराट राज्य के मंत्री ने शतरंज का खेल ईजाद कर राजा को भेंट किया, तो राजा ने प्रसन्न होकर उसे मुँहमाँगा इनाम देने की इच्छा प्रकट की। तब मंत्री ने जो कुछ माँगा, वह देखने में अति सामान्य था। उसने कहा, "महाराज! मैं केवल इतना चाहता हूँ कि आप मुझे इस शतरंज की बिसात के एक खाने में रखने के लिए गेहूँ का एक दाना दीजिए।

कल्पना कीजिये कि यदि हमारी योजना के अनुसार ब्रह्माण्ड का प्रत्येक परमाणु एक अलग छपाई मशीन हो, अर्थात् हमारे पास ऐसी कुल ३.१०७४ मशीनें हों और वे सब की सब पिछले दो अरब वर्षों से अर्थात् जब से पृथ्वी की रचना हुई मानी जाती है, तब से निरन्तर चालू रही हों, और १०१५ पंक्तियाँ प्रति सेकण्ड की आणविक गति से छपाई करती रही हों, तो भी अब तक ५० स्थानों में ७८ चिन्हों के 'सब संभाव्य क्रम' अर्थात् ७८५० पंक्तियों का एक हजारवाँ भाग भी छप कर तैयार नहीं हो सकता था! एक या कुछ मशीनों द्वारा सामान्य यान्त्रिक गति से इतनी पंक्तियाँ छाप देने का तो खैर सवाल ही पैदा नहीं होता। फिर जैसा कि पीछे बताया गया, इस सारी सामग्री का अधिकांश भाग निरर्थक या असंगत अक्षर-समूहों का तूमार मात्र होगा। इसलिये ये सब पंक्तियाँ यदि छप भी जाएँ तो भी उनमें सार्थक साहित्य और भविष्यवाणी की खोज और सम्पादन करते-करते सम्पूर्ण मानव-जाति का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा! यही कारण है कि इस प्रकार की मशीन का निर्माण सरल होने पर भी मनुष्य के लिए अपने सीमित जीवन में उस पर कोई उपयोगी बात छाप लेना संभव नहीं है। अतः आश्चर्य नहीं कि आज तक किसी वैज्ञानिक या अभियंता ने ऐसी मशीन का निर्माण कर समय नष्ट करने की मूर्खता नहीं दिखाई। हाँ, कुछ व्यापारिक संस्थाओं और पत्र-पत्रिकाओं ने निरन्तर गुणा होती हुई संख्याओं के इस वृद्धि-क्रम से लाभ उठा कर शब्द-पहेली आदि के भ्रमजाल द्वारा लोगों को बड़े-बड़े पुरस्कारों का प्रलोभन अवश्य दिया है। और निषेधात्मक कानून के बावजूद यह 'छल-क्रीड़ा' किसी न किसी रूप में आज भी चल रही है। ● ●

रायता और मजाज़

मुशायरे के प्रबन्धकों ने जज़्बी से प्रार्थना की, कि लोग बड़ी बेचैनी से उनका इन्तज़ार कर रहे हैं।

जज़्बी बोले, "भई, अभी आया, ज़रा रायता पी लूँ।"

मजाज़ ने सुना तो गम्भीर होकर बोले, "जज़्बी, लफ्ज़ 'रायते' को अगर इक़बाल अपने यहाँ नज़्म करता, तो मिसरा यूँ होता— 'हैफ़ शाहीं रायता पीने लगा', **और अख़्तर शीरानी कहता—**'रायता जो रुखे सल्मा पे बिखर जाता है', **और फ़िराक़ फरमाते—**'टपक रहा है इन आँखों से रायता कम-कम—' **फिर ज़रा-सा रुक कर फरमाया, और मैं यूँ कहता,** 'अभी चलता हूँ, ज़रा रायता पी लूँ, तो चलूँ।'"

—सैयद अख़्तरुल इस्लाम



महेन्द्र शंकर ०

सावन बाँध गया

[भोजपुरी कजली की धुन पर]

नैनों में बूंदों का झरना, सावन बाँध गया;
थिर नहीं मन का हिरना, सावन बाँध गया।

देखा न सागर दूर है नदिया पास में उमड़ी तलइया,
बढ़-बढ़ चूमे दुअरिया कि मुरके नरमी कलइया,
लहरों का ताना ओरहना, सावन बाँध गया;
थिर नहीं मन का हिरना, सावन बाँध गया।

रस-रस बहती बयार कि अँचरा-सी बँसवट डोले,
सूई-सी चुभती करील महोफी लुक-छिप बोले,
कानों में किसका कहरना, सावन बाँध गया;
थिर नहीं मन का हिरना, सावन बाँध गया।

खुल गई नींद बिसर गया सपना खिड़की से आई अँजोरिया,
धीरे-धीरे टारे चनरमा कि बदरी की अँचरी मनोरिया,
सुधियों में सपनों का तिरना, सावन बाँध गया;
थिर नहीं मन का हिरना, सावन बाँध गया।

●



एक नर्स का स्वगत - कथन

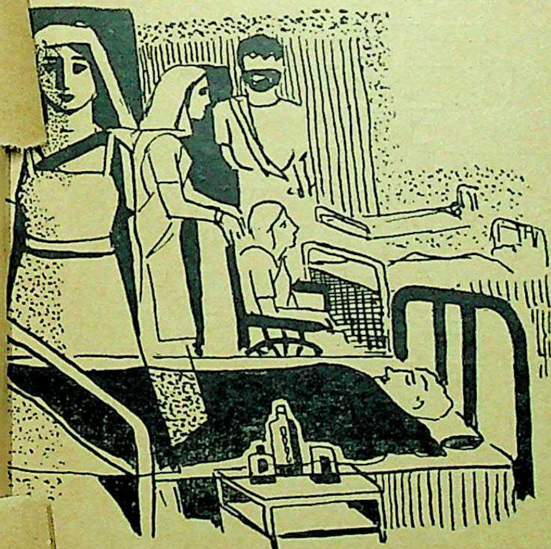
'ये घाटियाँ : ये गूंजें' लेखमाला के अन्तर्गत प्रस्तुत यह तीसरी रचना है जिसमें लेखिका ने साहित्य की नवीनतम विधा एकपात्रीय नाटक के माध्यम से एक नर्स के जीवन की कारुणिक विडम्बना को अभिव्यक्ति दी है।

(करुण संगीत उठता है और लोप हो जाता है)

(उच्छ्वास)

कितनी अकेली हूँ, कितनी बेबस हूँ। जाने क्यों चाहती हूँ कि कोई सुनने वाला हो और मैं उसके आगे अपने जीवन का इतिहास खोल दूं। मैं समझती हूँ मेरी बातों में किसी तरह का कोई अन्तर्राष्ट्रीय महत्व नहीं और न ही उनमें कोई घरेलू समस्या है। वह जितनी साधारण है उतनी ही पुरानी, पर आज उन्हीं पुरानी बातों को दोहराने बैठ गई हूँ। क्योंकि इन बातों के बोझ को ढोता हुआ मेरा जीवन थक चुका है।

आज जब मैं अपने गत जीवन के पन्ने उलट रही हूँ तब कुछ बातों ने चुपके से मेरे मस्तिष्क में प्रवेश किया है, मैं देखती हूँ उन घटनाओं के बीच में महीनों और वर्षों का अन्तर पड़ गया है इसीलिये उनकी झाँकियों में सामंजस्य नहीं रहा। वे चलचित्र की भाँति आँखों के सामने आ-आकर मस्तिष्क में कौंध जाती हैं और मैं आँख मूंद कर केवल उन घटनाओं को देख लेती हूँ। मुझे याद आ रहा है वह दिन जब मैंने अपनी माँ को आकर बताया था। (उत्तेजना और



ये घाटियाँ : ये गूंजें-३

प्रसन्नता) माँ-माँ मैं पास हो गई हूँ, अरे पास ही नहीं प्रथम आई हूँ प्रथम।

(उच्छ्वास) माँ ने सुना और मुझे छाती से लगा लिया, खुशी से उसकी आँखें छलछला रही थीं। आह! स्नेह का शीतल झरना बह रहा था माँ की आँखों से। उस झरने की शीतलता को तो मैं आज भी अनुभव कर रही हूँ। ओह! माँ का प्यार कितना अच्छा होता है, कितना सुखद, कितना निश्छल! और आज सैकड़ों मील दूर बैठी भी मैं देख रही हूँ स्टेशन पर छोड़ते समय की वह व्याकुलता। (रेलवे स्टेशन का इफैक्ट)

माँ कुली से मेरा सामान उठवाये तेजी से गाड़ी की ओर बढ़ी जा रही थी और साथ ही मुझसे कह रही थी..."विमला, जरा जल्दी से आओ; इस गाड़ी में बड़ी भीड़ होती है।"

(निष्प्रभ हँसी) हूँ...माँ भी कितनी भोली थी।...जानती नहीं थी कि भावी इतनी प्रबल है तो गाड़ी कि क्या मजाल कि वह मुझे बिठाये बिना ही चल पड़े।

(उच्छ्वास) और मैं बैठ गई, यह सोच कर कि यह गाड़ी की रफ्तार मुझे मेरे भविष्य की ओर लिये जा रही है, जहाँ मुझे माँ, भाई, बहिन और देश को भुला देना है। ओह! तीन बरस का लम्बा कोर्स मेरी आँखों के सामने घूम गया और मैंने काँपते हुए आँखें मूँद लीं...

उस अनजान नन्हें-से निर्बोध पक्षी की भाँति जो जिन्दगी में पहली बार ही उड़ने की चेष्टा करता है, और उस चेष्टा में अपने पंखों के फड़फड़ाने की शक्ति को आकाश की दूरी से नापता है (उच्छ्वास) और तभी समय का विचार करके मैंने आँखें खोल दीं, और देखती क्या हूँ, माँ का धीरज उसकी आँखों में आकर गल गया है, और माँ बड़े यत्न से अपने आँसुओं को छिपाने की कोशिश कर रही है।

(निष्प्रभ हँसी) हुँ, भला कहीं मेघों में बिजली की तड़प, और रिमझिम का करुण संगीत भी पृथ्वी से अबूझा रहा है? मुझे माँ की स्थिति पर करुणा, और अपने पर रोना हो आया। माँ कुछ कहने वाली थीं कि देखा, विनोद और शशि बड़ी तेजी से प्लेट-फार्म पर भागे आ रहे हैं, शशि का मेरे पास पहुँचने का उल्लास और विनोद की उत्सुकता व्यर्थ गई...गाड़ी चल पड़ी और मैं केवल उन्हें देख-देख कर हाथ भर हिलाती रह गई।

(उच्छ्वास) जब वह नन्हें बिन्दु भी आँखों के आगे से लोप हो गये तो अपने को सम्भाला और अपने पास बैठी हुई लड़कियों से मेल-जोल बढ़ाया, ताकि रास्ते का अकेला-पन और घर का मोह अधिक न खले। (उच्छ्वास) और फिर मैं इस अस्पताल में आ पहुँची। ओह! कितना बड़ा अस्पताल है, किस तरह के लोग हैं यहाँ! इस फौजी अस्पताल में सब कुछ नया और अजीब-सा है, मैं मन ही मन सोचती। इस नये वातावरण में मेरे अनुभव भी नये थे, कुछ सुनती और सुन-सुन कर अपने को सचेत करती, उस कठोर और मन की इच्छा के विपरीत काम करने के लिए अपने पर मुझे कितना बड़ा अन्याय करना पड़ा है यह तो मैं ही जानती हूँ। और मैं मानती हूँ कि मुझे व्यवहारिकता निभानी है, इसलिये मुझे हरदम मुस्कराते रहना है। क्रोध आने पर भी और दुःख अनुभव करने पर भी। मैं सुनती और अपने को समझाती कि दुःख-

शोक को दूर करके मुझे कर्तव्य निभाना है। निर्लिप्त भाव से, निस्वार्थता को स्वीकार करके। (उच्छ्वास) कल्पना में अपने कर्तव्य को भूल न जाऊँ इसलिये तो मैं सर्वदा सचेत रहती हूँ।

(उत्तेजना) नहीं, नहीं, मैं सचेत कहाँ हूँ? अपने से धोखा करके भी कभी कोई सचेत रह सकता है? नहीं, यह तो मेरी छलना है; जब भी इस छलना के आवरण को दूर फेंक कर मैं अपनी स्थिति पर ध्यान देती हूँ तो मालूम होता है जैसे मेरे अन्तर में कल्पना और पुरानी स्मृतियों ने एक मजबूत तानाबाना बुन रखा है। यह भावना जितनी गोपनीय है उतनी ही गहरी, समय और अवकाश पाते ही यह भावनायें उमड़ घुमड़ पड़ती हैं, तब मैं घर की, माँ की, भाई और बहन की याद करके रो पड़ती हूँ।

(रुलाई) ओफ! कहाँ उड़ गये वह दिन? कहाँ पिछड़ गया वह जमाना? दिनों की गिनती के साथ-साथ, महीने बीते, फिर एक-एक करके तीन साल भी बीत गये, फिर भी आशा मेरे साथ थी, सोचती, ट्रेनिंग पीरियड बीतते ही घर चली जाऊँगी, और माँ के सीने से लग कर कहूँगी (उत्तेजना) बड़ा कठिन काम है माँ, मुझसे नहीं हो सकेगा। और तब माँ कहेगी:

"जान है तो जहान भी है, मन नहीं होता तो कोई बात नहीं बिमला।"

(उत्तेजना) कोई बात नहीं? यह कैसे कह सकती हूँ। नहीं, माँ ने मुझसे यह नहीं कहा। ट्रेनिंग पीरियड समाप्त हो गया, फिर भी माँ ने मुझे बुलवाने की उत्सुकता प्रकट नहीं की। घर लौटने के लिए रुपयों की दिक्कत ने मेरे रहे सहे अरमान चूर-चूर कर दिये। और मैंने सोच लिया, न इतने रुपये होंगे और न ही मेरा लौटना हो सकेगा, और फिर माँ ने भी तो लिख दिया था: "बाहर की ट्रेनिंग की यहाँ कद्र अवश्य है बिमला, पर वेतन में वृद्धि यहाँ नहीं हो सकेगी।"

(क्रोध से) हूँ, वेतन में वृद्धि नहीं हो सकेगी। वेतन, वेतन और रुपये... बस, केवल रुपये...रुपये...ही चाहिये माँ को, मैं नहीं।

(उत्तेजना) ठीक है, मुझे माँ को रुपये ही देने हैं, मुझे घर नहीं लौटना है...नहीं लौटना। कभी भी! (उच्छ्वास) और फिर मैं तन मन लगा कर काम में जुट गई, बस इसी एक साध को लेकर कि मुझे रुपये कमाना है, और वह रुपये घर भेजना है, मुझे मेरी माँ के कष्टों का निवारण करना है। भाई की पढ़ाई का खर्च और कला के स्कूल की फीस देनी है, क्योंकि उस घर में मैं ही बड़ी हूँ और इसीलिये बड़े होने का अभिशाप भी लेना है।

(उच्छ्वास) और सच! मेरी साधना सफल हो गई। मेरी मेहनत से डाक्टर खुश थे। खुशामद ने सिस्टर को प्रसन्न कर दिया। मेरी रिपोर्ट बहुत अच्छी भेजी गई और इसीलिये डाक्टर ने मुझे इसी अस्पताल में रख लिया, वेतन पूरा दो सौ। दो सौ। कितनी खुशी की बात है कि मैं दो सौ कमा सकती हूँ, और इन दो सौ में से डेढ़ सौ माँ को भेजती हूँ। माँ प्रसन्न हैं और इसीलिये मुझे आशीर्वाद भी लिखती है। हा-हा-हा। आशीर्वाद! आशीर्वाद! ताकि मैं जीवित बनी रहूँ, और काम करती रहूँ, काम करती रहूँ और रुपये कमाती रहूँ।

हा-हा-हा-हा ! कितनी अच्छी बात है, कि मैं जी रही हूँ, जी रही हूँ; वहाँ, जहाँ अनेकों लाशें मेरे इर्द-गिर्द पड़ी हुई हैं। यह लाशें, यह जीवित लाशें जो हिल-डुल नहीं सकतीं, पर चीत्कार कर सकती हैं। **(उत्तेजना)** इस चीत्कार को सुन-सुन कर मेरे कानों के पर्दे फट गये हैं। जी चाहता है कान बन्द करके और आँखें मूँद कर यहाँ से भाग जाऊँ, भाग जाऊँ इन ऊँची-ऊँची दीवारों को फाँद कर जिसमें कैद होकर मैं छटपटा रही हूँ।

(विश्रान्ति)

(उच्छ्वास) ओह ! मैं क्या कह बैठी। **(रुदन भरी आवाज में)** मैं भाग जाऊँ ? यह कैसे हो सकता है ? यहाँ से भाग जाने पर भी मेरा भाग्य मेरे साथ नहीं भागेगा। मनुष्य जिन कर्मों से बँधा है, वह कर्म तो हमेशा उसके साथ ही रहते हैं, बसेरा बनाने के लिए काम तो करना ही है। तो फिर ? भागने से क्या लाभ ? नहीं। मुझे यहाँ से नहीं भागना, मुझे यह चीत्कार सुनने ही हैं। इन रोगियों की पीड़ा से मुझे अपना अन्तर पीड़ित करना ही है, मैं इनसे अलग नहीं हो सकती, अलग नहीं हो सकती, कभी भी।

ओफ ! कितनी उमस है यहाँ। यह कमरा जहाँ मैं बैठी हूँ, कितना सुन्दर और स्वच्छ है ! नीले प्रकाश से यह जगमगा रहा है, लेकिन फिर भी मेरा दम यहाँ घुटता-सा मालूम हो रहा है। मुझे बाहर बरामदे में बैठना चाहिए। हाँ, यहाँ बहुत अच्छा-अच्छा है, **(प्रसन्नता)** ओह ! कैसी सुन्दर रात्रि है ! हल्की गुलाबी रोशनी आकाश में छा रही है, बड़े-बड़े तारे पीले पड़ गये हैं, यह छोटे-छोटे तारों का समूह बड़ी द्रुतगति से अदृश्य होता जा रहा है, हाँ चन्द्रमा भी निकल रहा है. ओह ! ऐसे समय में घर की छत पर टहलना कितना सुखद होता है ! ओह.... मेरे घर की छत, जो कच्ची थी, जिसकी छोटी-छोटी मुँड़ेर, जहाँ से पेड़ के पीछे से निकलते हुए चाँद को मैं देखा करती थी....ओह ! कैसा सुन्दर समय होता था वह। हाँ, सब इस ज़िन्दगी की लम्बी होड़ के साथ-साथ नहीं निभ सकता ; वह नहीं रहा, तो शायद यह भी नहीं रहेगा।

(प्रसन्नता) यह हल्की-हल्की हवा की सरसराहट कितनी प्यारी है ! इसमें एक अद्भुत संगीत है। परन्तु इस हृदय में यह कैसी कसक पैदा कर रही है, कैसी पीड़ा हो रही है ! लगता है, जैसे प्रकृति यहाँ बैठ कर करुण-क्रन्दन कर रही है। **(उत्तेजना)** नहीं नहीं....दोष तो इस हृदय का है जो ऐसा अनुभव कर रहा है। यह सब मेरी भ्रान्ति है। रोगियों की चीखें सुन-सुन कर मेरे मस्तिष्क का सन्तुलन बिगड़ गया है, दवाइयों की तेज गन्ध ने मेरी सूँघने की शक्ति को निर्बल कर दिया है। तभी तो मैं इस प्यारी सुगन्ध को अपने मस्तिष्क में भर नहीं सकती। ओह ! कैसी दयनीय दशा है मेरी ! मैं अपने को इन रोगियों से भिन्न क्यों नहीं समझ सकती ? क्यों नहीं समझ सकती ?

(उत्तेजना) नहीं, मैं कैसे समझ सकती हूँ कि मैं उनसे भिन्न हूँ ? ठीक है कि मेरा पलंग रोगियों के वार्ड में नहीं, मेरे निजी कमरे में है। लेकिन यह मैं कैसे भूल जाऊँ कि जिस छत के नीचे वह साँस ले रहे हैं, उसी छत के नीचे मेरा बसेरा बना है। जिस डाक्टर की दवा पर वे जी रहे हैं उसी डाक्टर की दया पर मैं आश्रित हूँ। डाक्टर का काम दवा देना है

और मेरा काम दवा पिलाना। (हँसी) बस, केवल यही अन्तर है, केवल यहीं, वरन जिस रोग से वह शरीर से पीड़ित हैं उसी रोग के प्रभाव से मेरा अन्तर पीड़ित है। मैं अपने को भिन्न नहीं समझ सकती कभी भी। (उच्छ्‌वास) मेरी दृष्टि में कितनी थकान है! मेरी पलकें कितनी बोझिल हो रही हैं!! लगातार जागने से मेरी आँखों के नीचे के भाग में काली-काली रेखाएँ खिच आयी हैं, जैसे अनिद्रा आँखों में न समा सकने के कारण आँखों के इर्द-गिर्द आँचल पसार कर आ बैठी हो। काश! मैं इसे आँखों में आश्रय दे सकती!

(विश्रान्ति)

कितनी निस्तब्धता है यहाँ! कितना सन्नाटा छा रहा है! वार्ड की सभी बत्तियाँ बन्द हैं, बरामदों में से हल्की-हल्की रोशनी छन-छन कर दरवाजों और खिड़कियों पर पड़ रही है, इन परदों और इन रोशनदानों को भेद कर कुछ हल्की-हल्की धड़कनों की आवाज़ें सुनाई दे जाती हैं। जिससे मैं समझ सकती हूँ कि उन साँसों के प्रति मुझे सचेत रहना है, पर आज तो मैं छुट्टी पर हूँ। पिछले बीस दिनों से लगातार जागती आ रही थी, आज तो उससे छुट्टी मिल गई है। (घबराहट) लेकिन ज्यों-ज्यों रात की नीरवता गहरी होती जा रही है मेरी आँखों की पलकें सतर्क होती जा रही हैं। मन के कोने में जैसे कोई बार-बार कह जाता है। 'तुम सो सकोगी? नहीं, तुम्हें जागना ही है, मैं सो गया हूँ यही समझ कर तुम सोना चाहती हो। नहीं मैं सोया नहीं, हाँ मेरा शरीर सो गया है, जिसके लिये तुम्हें रातों जागना पड़ा है। इधर देखो, इन आँखों को। क्या यह सो गई हैं?'

(रुदन भरी आवाज़) ओफ! कितनी मर्मभेदी आवाज़ है! (उत्तेजना) नहीं, मैं अपने को उन आँखों की दृष्टि से बचा नहीं सकती। मैं उस आवाज़ को न सुनने के लिए बहरी नहीं बन सकती। मैं उसे भूल नहीं सकती, जिसने दम तोड़ते-तोड़ते दर्द भरी आँखों से मेरी ओर देखा था। (उच्छ्‌वास) मेरे दुर्दैव की यह कैसी विवशता है कि मैं अपनी पीड़ा में स्वयं ही घुली जा रही हूँ। सबकी पीड़ा सुनती हूँ और उस पीड़ा को सहलाती हूँ, पर किसी को क्या पड़ी है मेरा हाल पूछने की! यहाँ अनेकों आते हैं और आ-आ कर चले जाते हैं, कुछ जीवनदान लेकर और कुछ जीवनदान अर्पित करके, समय बीत जाता है तो कोई मुड़ कर पूछने नहीं आता कि हमें जीवनदान देने वाली का क्या हाल है?

(उच्छ्‌वास) कितनी स्वार्थी है दुनिया! लोग कहते हैं मैं बहुत सुन्दर हूँ, मोहक हूँ, मेरी चाल में गति स्वयं एक संगीत है। (हँसी) सुनती हूँ और मुस्करा देती हूँ, कितनी अजीब बात है कि मेरी एक मुस्कुराहट से डाक्टर निहाल हो उठते हैं, और रोगी की आँखें आशा से चमक उठती हैं। लेकिन अफसोस कि यह लोग मेरा वास्तविक स्थिति का परिचय कहीं पा सकते और वही समझ सकते, कि मैं इतनी व्यस्त क्यों रहती हूँ। हाँ...... व्यस्त हूँ मैं, उस चलती-फिरती मशीन की भाँति जिसमें गति एक सांस बन कर धड़क-धड़क कर सिसकती रहती है; वह जिस ओर घुमाई जाती है उसी ओर उसे चलना पड़ता है, मशीन और मुझमें क्या अन्तर है? मुझे भी तो डाक्टर के आदेश पर, और रोगियों के संकेत पर निर्भर रहना पड़ता है। भीतर ही भीतर रो कर मैं ऊपर से हँसती हूँ। उस

बन्द भट्ठी की तरह मैं अपने दुःख को छिपाये रहती हूँ जिसके भीतर हरदम धुआँ भरा रहता है, पर भाप निकल नहीं पाती।

(उच्छ्वास) मैं स्वतंत्र नहीं हूँ—न मन से और न ही इच्छाओं से। मुझे वही सब करना होता है, जिसको करने को मैं बाध्य हूँ। कितनी बार कह चुकी हूँ कि इस वार्ड का काम मुझसे नहीं हो सकेगा। पर....पर....डाक्टर का कहना है, मरीज़ तुम्हें चाहते हैं! **(क्रोधावेश)** मरीज मुझे चाहते हैं, डाक्टर क्या समझते हैं मुझे? क्या मुझे अपनी इच्छा और अनिच्छा पर कोई अधिकार नहीं? मैं उसके विरुद्ध कुछ नहीं कह सकती? विरुद्ध और अधिकार? हा-हा-हा! कहाँ रह गया है मेरा अधिकार? रुपयों की आवश्यकता ने मेरे सारे अधिकारों पर विजय पा ली है, और इसीलिए मैं डाक्टर के आदेश को टाल नहीं सकती। इसी से रोगियों की सभी बातों को मुझे चुपचाप सुन लेना होता है। शान्त बनी रहूँ, इसके लिए सतर्क रहना पड़ता है। हाँ, मैं क्या नहीं कर सकती? डाक्टर से अधिक महत्वपूर्ण काम मेरा है। डाक्टर की दवा रोगी पर कोई असर नहीं कर सकती जब तक कि मेरी सेवा उसे नहीं मिल पाती। मैं रात-रात भर जागती हूँ। रोगी की प्रताड़ना सहने की मुझमें क्षमता है। रोगी के इशारे पर नाचने की कला में मैं दक्ष हूँ। मुझमें साहस है कि उसकी पीड़ा को मैं चुपचाप देख लिया करती हूँ। मुझमें कठोरता है कि मैं उसके दुख पर आँसू नहीं बहाया करती। पर, मुझ में सहृदयता का भी अभाव नहीं है, मुझ में सद्भावनाएँ हैं कि मैं उसके दुःख में साथ दे सकती हूँ, मैं वह प्रेरणा दे सकती हूँ जिसका आश्रय लिये वह अपने दुख के दिन धीरज से काट लेता है। जीने के प्रति रोगी के मन में उत्साह भरना केवल मेरा ही काम है, केवल मेरा ही; और मुझे विश्वास है कि मेरा प्रेम और मेरा स्नेह, और मेरी सेवा उसे जीवनदान दे सकती हैं।

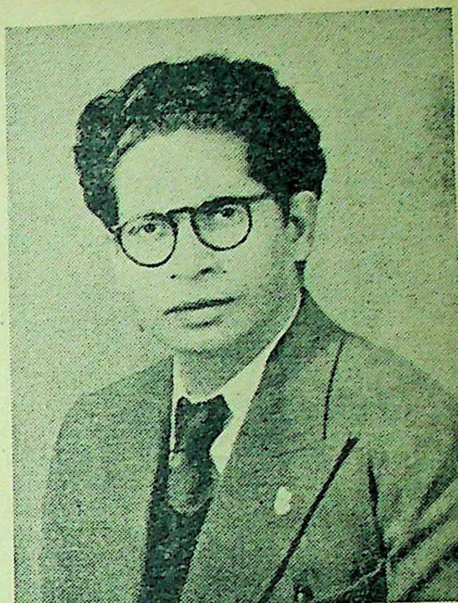
(उच्छ्वास) हाँ, नर्स होना कोई बुरी बात नहीं। जो स्वयं को मिटा कर दूसरों को प्रसन्न कर सके वही तो असल जीना है। मैं क्यों सोचती हूँ कि मेरा कोई घर नहीं, कोई अपना नहीं? यह इतना बड़ा अस्पताल, यह इतने अधिक रोगी जो मेरी सेवा पर आश्रित हैं क्या मैं उनसे अपनों जैसा व्यवहार नहीं करती? क्या उनके लिए मेरा मन स्नेह से ओत-प्रोत नहीं है?

(विश्वास) है, और जरूर है, न होता तो कोई भी मरीज मुझसे सन्तुष्ट न होता। रोगी मुझसे सन्तुष्ट हैं, डाक्टर मुझसे प्रसन्न हैं, नर्स मुझसे ईर्ष्या नहीं करतीं......क्या यह कम खुशी की बात है? **(हँसी)** सचमुच बहुत खुशी की बात है।

(घड़ी में तीन बजते हैं)

(चौंक कर) अरे! तीन बज गये! और मैं यहाँ बैठी हूँ? ओह! चार बजे तो मुझे ड्यूटी पर जाना है। इस चाँद को अब मैं नहीं देख सकती। मुझे वही पीले मुर्झाये चेहरे देखने हैं, जिनकी धीमी सिसकियाँ मुझे बुला रही हैं, हाँ जीना है तो इन साँसों की धड़कनों को सुनने से इन्कार कैसा? इनसे विमुखता कैसी और इनके प्रति शिकायत भी क्यों?

◉ ◉ ◉



चन्द्रदेव सिंह

हिन्दी के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि से नयी पीढ़ी के एक अन्य कवि द्वारा लिया गया इण्टरव्यू !

किसी भी कवि अथवा साहित्यकार से मिलने के पूर्व उसके सम्बन्ध में भाँति-भाँति के भाव-चित्र मिलने वाले के मन में होते हैं। कुछ मेरी भी धारणाएँ थीं लेकिन जैसे किसी के भी प्रति बनायी गयी धारणाएँ पूर्णतः सत्य न होकर उसका अंश होती हैं---मुझे भी ऐसा ही अनुभव हुआ।

सलाम-दुआ के पश्चात् बच्चन जी ने अजित कुमार (कवि) की ओर मुड़ कर कहा, "अजित, चन्द्रदेव सिंह कलकत्ते से आकर मेरा इण्टरव्यू लेना चाहते हैं। इस समय कुछ भी बोलना खतरनाक है क्योंकि पता नहीं ये क्या-क्या छाप दें।"

मैंने हँसकर कहा--"तो यहीं से क्यों न प्रारम्भ करूँ।"

"जानते हो", बच्चन जी ने आगे कहा, "मैं जिन दिनों इंगलैण्ड में था, एक बार श्रीमती ईट्स से मिलने गया। मेरा रिसर्च डब्लू. बी. ईट्स पर चल ही रहा था, सोचा उनकी पत्नी से भी मिल लूँ। लेकिन वहाँ पहुँच कर कई ऐसी घटनाओं से परिचित होना पड़ा जो श्रीमती ईट्स के दुख का कारण थीं।

बच्चन : एक इण्टरव्यू

और उनका दुख यहाँ तक पहुँच गया था कि वे अब किसी से साहित्यिक स्तर पर मिलने एवं अपने पति के विषय में कुछ भी कहने में भय खाती थीं, संकोच करती थीं। कारणों का जिक्र करते हुए उन्होंने बताया, 'एक बार एक अमेरिकन जिज्ञासु मिलने आये। उन्होंने स्वर्गीय डब्लू. वी. ईट्स के विषय में भाँति-भाँति के प्रश्न किये, उन्होंने समुचित उत्तर भी दिये। उसी सिलसिले में ईट्स के प्रेतों के प्रति विश्वास और उनके कुछ ऐन्द्रजालिक रहस्यों के सम्बन्ध में भी उन्होंने कुछ बातें बताईं कि ईट्स का प्रेतात्माओं में विश्वास था, वे कभी-कभी अपनी ही हथेली को रगड़ कर कहते थे, लो सूँघो, इससे गुलाब की गन्ध आती है और वैसा ही होता भी था। एक दिन उन्होंने कहा कि मेरे अध्ययन-कक्ष में जाकर देखो ताजे-टटके गुलाब के फूल बिछे हैं। जब जाकर देखा गया तो सचमुच ही अगणित गुलाब के खिले हुए फूल कमरे में क़रीने से बिछे हुए थे। इसी प्रकार एक स्थानीय मुहल्ले में वे आधी रात को खण्डहरनुमा स्थानों पर भी प्रायः जाया करते थे।

उस अमेरिकन ने--जिसके पास पाकिट टेपरिकार्डर था--सभी वार्तायें रिकार्ड कर लीं और अमेरिका जाकर 'डब्लू० वी० ईट्स--एक जादूगर', 'डब्लू० वी० ईट्स--एक प्रेतात्माओं में विश्वास करने वाला' ऐसे ही अनेक शीर्षकों से ईट्स के उस रूप का चित्रण करना प्रारम्भ किया जिसका परोक्ष या प्रत्यक्ष कैसा भी सम्बन्ध उनके साहित्य तथा कला से नहीं था।'

और बच्चन जी ने आगे कहा, "जब मैंने अपने रिसर्च गाइड से पूछा कि डब्लू० वी० ईट्स क्या सचमुच भूत-प्रेतों में विश्वास करते थे? तो उसने उत्तर दिया, यदि वे करते भी हों, तो हमें उससे क्या मतलब, हमें तो यह देखना है कि उस विश्वास या प्रयोग से या उसके बावजूद उन्होंने कैसा साहित्य हमें दिया है। इसी संदर्भ में जब मैंने पूछा कि शोधकर्ता में सब से बड़ा गुण क्या होना चाहिये तो मेरे गाइड ने कहा, इमेजिनेशन---कल्पना।"

एक मिनट की खामोशी के बाद पुनः बच्चन जी ही बोले, "तुम मेरे विषय में क्या जानना चाहते हो? मैं अपने व्यक्ति रूप में जितना सहज और स्पष्ट हूँ उतना ही अपनी कविता में भी हूँ। मैं सीमाओं में रह कर काम करनेवाला आदमी हूँ और मुझे सीमाएँ अच्छी लगती हैं। मैंने कभी आकाशी स्वप्नों में विचरने की कल्पना ही नहीं की, क्योंकि मेरा पाँव जहाँ ठोस जमीन पर है उसी के आस-पास मुझे अपनी कविता का आधार मिल जाता है। मैंने जीवन में अनेक ऐसी परिस्थितियों का सामना किया है जिनमें आत्महत्या तक कर डालने को जी चाहा है परन्तु जीवन के किसी आकर्षण ने मुझे ऐसा करने से रोका, जिन्दगी में आनन्द जितना प्रेरक होता है उतना ही दुःख भी। मैंने जीवन को, सर्वदा सुख और दुखों से भरा हुआ पाया है और ऐसे ही इसे स्वीकार भी किया है। यदि आज कोई मुझसे कहे कि चार हजार रुपए माहवार लिया करो और एक कमरे में बैठ कर कविताएँ लिखा करो तो मैं उससे हाथ जोड़ कर कह दूँगा कि तुम्हारे रुपये तुम्हें मुबारक हों, मैं जहाँ हूँ वहीं कविता है। यदि कविता कमरे में बैठ कर लिखी जायगी तो वह कमरे की दीवारों की कविता होगी, जीवन के विस्तृत

क्षेत्र की नहीं। कविता तो मुझे साधारण अनुभवों से प्राप्त होती है। मैं तो साधारण बातों से ही बहुत कुछ सीखता हूँ। और जो लोग मेरी कविताओं को व्यक्ति की संकुचित सीमाओं में फिट करते हैं वे भूल जाते हैं कि व्यक्ति में किसी न किसी रूप में समाज ही व्यक्त अथवा मुखरित होता है। समाज व्यक्ति से अलग नहीं, समाज अपनी आवश्यकताओं को वाणी देने के लिए अपने ही बीच से किसी एक को आगे कर देता है। मैंने आज तक जो कुछ भी लिखा है उसमें न तो किसी सिद्धान्त और वाद का प्रतिपादन है, न चारणों जैसी प्रचार-प्रवृति, अपितु जिन्दगी की कठिनाइयों से जूझते हुए एक भावप्रवण व्यक्ति का अहम् है, पौरुष और आक्रोश हैं। मैं नहीं जानता कि कभी भी बिना प्रेरणा के मैंने कलम उठायी हो और यदि ऐसा हुआ है तो पाठक स्वयं समझ जायगा।"

किसी प्रसंगवश वार्ता का क्रम बदल गया और--"जिन दिनों मैं इंग्लैण्ड में था मुझे एक लड़की मिली। उसने वहीं के किसी युवक से कई वर्षों तक प्रेम किया था। प्रणय-प्रदर्शन की अवधि में उस प्रेमी ने सैकड़ों ऐसे प्रेम-पत्र लिखे थे जिनके द्वारा उसने यही व्यक्त करने का प्रयास किया था कि वह कभी भी उस कुमारी को अपने जीवन से अलग नहीं कर सकेगा और यदि अलगाव हो ही जाय तो वह उसके लिए मृत्यु से कम दुखद नहीं होगा। लेकिन आगे चल कर जब उसने किसी और का समर्पण स्वीकार कर लिया तो लड़की ने मात्र इतना ही कहा-- (I have lost faith in English language) 'अंग्रेजी भाषा से मेरी आस्था उठ गई है।'

मैं तो, भाई, साधारण व्यक्ति हूँ और ऐसी ही जीवन की साधारण घटनाओं से सीखता हूँ। न तो मुझे शब्द ढूँढ़ने के लिए किसी शब्दकोष के समीप जाना पड़ता है और न भाव ढूँढ़ने के लिए जिन्दगी की चहार-दीवारी लाँघनी पड़ती है। नित्य के प्रयोग में आने वाले शब्द ही मेरे मित्र हैं जो मेरे भीतर की आवेग-धारा को चित्र देते हैं, आकार और स्वर देते हैं।

"क्या भूलूँ, क्या याद करूँ" शीर्षक पंक्ति की एक कहानी तुम्हें सुनाऊँ? यह मेरे कवि और व्यक्ति मन की उस स्थिति को व्यक्त करती है जब कहीं भी प्रकाश की किरण नहीं दीखती थी। यदि मेरी सम्पूर्ण रचनाओं को यथार्थ रूप में पढ़ा जाय तो भी सहज ही स्पष्ट हो जायगा कि मैंने दुख में भी पलायन को नहीं अपनाया, वरन् दुख को उसकी अन्तिम सीमा पर जाकर देखा है--झेला है, जहाँ वह गहनतम है और उसके पार मुझे किरणों का आभास मिला है--

पीड़ा का स्वर आँसू लेकिन
पीड़ा की सीमा पर मैं तो
रो न सकूँगा और न तुझको
रोने दूँगा हे मन वीणे।

"हाँ, तो मैं भूल गया। तुम्हें बताऊँ, मेरी माँ ने अच्छे और बुरे सभी प्रकार के दिन देखे थे। मुझे याद है बचपन के दिन, जब गुड़ियों पर चारों ओर प्रसन्नता बिखरी रहती थी और लगता था सृष्टि का सम्पूर्ण आनन्द-सुख-वैभव मेरे ही छोटे से घर में बन्द हो गया है। लेकिन वैसे ही एक वर्ष गुड़ियों पर मैंने अपनी माँ को देखा, वह आँगन में बैठी गिट्टी तोड़ रही थी, किसी बात पर कह रही थी, मनई का भूलै, का याद करै।

और मैं कह सकता हूँ, क्या भूलूँ क्या याद करूँ में इस एक पंक्ति से ही जीवन की जिस यथार्थ स्थिति का बोध होता है उसे व्यक्त करने वाला एक भी मुहाविरा निश्चय ही छायावादी शब्द योजना से नहीं बन सकेगा। तो भाई, मैं तो जीवन का, सहज और साधारण जीवन का ही गायक हूँ, और अपने ही जैसे लोगों के बीच पल-पुस कर, बड़ा होकर, मैं जब कुछ कहने योग्य हुआ तो 'अरथ और आखर' का साधारण-सहज रूप ही मुझे प्रिय लगा। इसीलिए मेरी भाषा जहाँ कहीं उर्दू मिश्रित है वहाँ भी वह जिन्दगी से दूर नहीं होने पाई है। उर्दू तो मेरे घर में पढ़ी-लिखी जाती थी--यूँ उर्दू को मैं हिन्दी से अलग नहीं मानता, बल्कि उसी की एक शाखा समझता हूँ। जहाँ मेरे माता-पिता रामायण और विनय-पत्रिका का पाठ करते थे, वहीं मेरे मामा को उर्दू के हजारों शेर याद थे जिन्हें सुनाते न वे थकते थे, न उनका कोष खाली होता था।"

मैंने बीच में ही टोक कर पूछा, "बच्चन जी, जब छायावाद अपने उत्कर्ष पर था तब भी आप उससे प्रभावित हुए बिना ही नया स्वर लेकर आये थे, क्या में इसका कारण जान सकता हूँ ?"

"देखो भाई, यह तो रिसर्च करने वाले का कार्य है कि वह उस युग विशेष की सारी स्थितियों का अन्वेषण करे और यदि ऐसा किया जायगा, तो लगेगा--कम से कम मैं तो यही मानता हूँ कि देश की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक समस्याओं से छायावादी कविता कोसों दूर थी--मैं छायावाद के प्रशंसकों में हूँ, मुझे उसमें अनेक ऐसे तत्व मिलते हैं जो काव्य के विशिष्ट तत्व हैं, परन्तु वह कविता युग की कविता नहीं थी। और क्या यही कारण नहीं था कि मधुशाला की इतनी अधिक प्रसिद्धि हुई जिसकी कल्पना मैंने नहीं की थी। और आज भी जब 'मधुशाला', 'मधुशाला' की पुकार करते हुए लोगों को सुनता हूँ तो सोचता हूँ कि स्वतन्त्रता के बाद भी देश में 'मध्ययुगीन' स्थिति ही बरकरार है जिसके विरुद्ध मधुशाला का स्वर लोगों को आकर्षक लगता है। आज भी पुत्र पिता की अनुमति के बिना शादी नहीं कर सकता, आज भी निम्न जातियों के लोग खुल कर ऊँची जाति के लोगों का मुकाबिला नहीं कर सकते। मेरा एक धोबी है। उसके घर से चिट्ठी आई है कि उसका भाई ग्राम पंचायत के सभापति-पद के लिए खड़ा हुआ है लेकिन उसके गाँव के ब्राह्मण कहते हैं कि यदि तू चुन लिया गया तो हम तुझे मार डालेंगे। आखिर कुछ तो कारण है, हम तो आज भी मध्ययुग में ही साँस ले रहे हैं। यही वजह है कि 'मधुशाला' की पंक्तियाँ श्रोताओं को क्षण भर के लिए सारी संकीर्णताओं के ऊपर उठा देती हैं, उनमें विद्रोह और शक्ति का संचार करती हैं। जब मैं 'मधुशाला' के साथ आया था मुझे अनेक विशेषण मिले थे लेकिन 'मधुशाला' 'छायावादी गल्ले' में नहीं डाली जा सकी, और वह आज तक अपना एक विशेष आधार, विशेष स्थान बनाए हुए है।

"आपकी सर्व प्रथम रचना कौन-सी है?" प्रश्न के उत्तर में बच्चन जी ने कहा, "तुम्हें आश्चर्य होगा कि मेरी प्रथम छपित रचना कविता न होकर एक लेख था जो प्रयाग से प्रकाशित होने वाले 'विज्ञान' पत्रिका में छपा था। मैंने वह लेख डा० सत्यप्रकाश के

कहने पर लिखा था और जब मेरा लेख छपा तो उस अंक की कई प्रतियाँ खरीद लीं और परिचितों में बाँटी। मेरी पहली कविता जबलपुर से प्रकाशित होनेवाली 'प्रेमा' में 'मध्यान्ह' शीर्षक से शायद १९३१ में छपी थी और बाद में 'मधुशाला' की दस रूबाइयाँ १९३३ ई० में 'सरस्वती' में छपी। यूँ तो मैंने १९२० ई० के करीब ही कुछ जोड़ना शुरू किया था; किन्तु उस काल की कविताएँ अब याद भी नहीं रहीं। आगे चल कर १९२९ से लिखी कुछ कविताओं को 'तेरा हार' नाम से प्रकाशित कराया गया था।"

आजकल बच्चन जी उठते-बैठते भगवान का नाम बहुत लेते हैं। मैंने उनके 'एकांत संगीत' की कुछ पंक्तियों—

प्रार्थना मत कर, मत कर, मत कर।
मनुज पराजय के स्मारक है
मठ, मस्जिद, गिरिजाघर—

को दुहराकर पूछा कि अब आप बड़े आस्तिक बन गये हैं—क्या कारण है ?"

उन्होंने कहा, "मैं नास्तिक तो कभी नहीं था। वस्तुतः यह तो एक बड़ा मनोवैज्ञानिक रहस्य है कि बहुत-सी बातों में विश्वास करते हुए भी हम कहते हैं उनमें विश्वास नहीं रखते। शब्दों से विश्वास का इन्कार नहीं व्यक्त होता। हम सचमुच किस चीज में विश्वास कर रहे हैं यह तो हमारा अन्तर्मन ही जानता है।"

"क्या मैं जान सकता हूँ वे बाबाजी कौन हैं जिनके कहने पर आपने 'गीता' का अवधी में अनुवाद किया है ?"

"तुम, यह जान कर क्या करोगे ?"

"आखिर सुनूँ भी ?"

"होंगे कोई, छोड़ो; मैं तुमसे कह आया हूँ कि मेरे रिसर्च गाइड ने कहा था कि यदि डब्लू० बी० ईट्स जादूगरी में विश्वास करता भी था तो हमें इससे क्या मतलब; हमें उसकी रचनाओं से काम है और यह देखना है कि उसके उस विश्वास विशेष का कौन-सा रूप उसकी रचनाओं में मिलता है।"

"तो आप अब आस्तिक हैं ?"

"जरूर, मैं तो ईश्वर की सत्ता में विश्वास करता हूँ, उसके स्वरूप को जानने का दावा नहीं करूँगा। जानना विश्वास की शर्त नहीं है। वास्तव में जो जाना हुआ है उसमें विश्वास कैसा ? देखो जीवन क्या है, क्या नहीं है, यह प्रश्न बड़ा टेढ़ा है। मैं तो जो कुछ अनुभव करता हूँ यदि उसे कभी वाणी देने की आवश्यकता महसूस करता हूँ तो उससे चूकता भी नहीं।"

"अच्छा एक बात और—आज जो आप लोक-धुनों पर आधारित कविताएँ लिख रहे हैं इनका रूप आपके मन में क्यों और कैसे जगा, क्या कोई विशेष कारण है ?"

"मैं तो कोई विशेष कारण नहीं जानता। अचानक मेरे मन में उन धुनों ने लहराना प्रारम्भ किया और मुझे लगा इन्हें आकार देना चाहिए, इन्हें बाँधना चाहिये। मेरी नयी पुस्तक 'त्रिभंगिमा' अभी-अभी प्रेस में दी गई है। वह फरवरी तक छपेगी, उसकी भूमिका पढ़ लेना। हाँ, इस प्रकार की रचनाओं की इससे बढ़ कर सफलता क्या होगी कि मुझे दूर देहातों से प्रशंसा के पत्र आते हैं और उन्हें वे लोग भी पढ़ते हैं जिन्हें खड़ी बोली कविता से कोई वास्ता नहीं है।"

दूसरे दिन जब बच्चन जी ने अपनी लोक-धुनों पर आधारित रचनाओं के विषय में कहना शुरू किया तो जैसे उन्हीं के भावों में डूबने-से लगे, और थोड़ी देर बाद उन्हें गाने लगे।

'गर्म लोहा पीट, ठंडा पीटने को वक्त बहु तेरा पड़ा है'--का भाव स्पष्ट करते हुए बच्चन जी ने कहा, "मैं इंगलैण्ड गया तो था अपने रिसर्च के सिलसिले में किन्तु जब कविता का मूड बनने लगा तो मुझे चिन्ता हो चली। आये थे हरि भजन को ओटन लगे कपास। मैंने सोचा हरि भजन भी हो, और थोड़ी कपास भी ओट ली जाय। मुझे जहाँ अपने रिसर्च के लिए ठंडे बेसमेंट (एक तल्ला नीचे) वैठना पड़ता था, वहीं मन के अन्दर आग भी जलती रहती थी जिसे स्वर और शब्द देना था। बहुत कुछ सोचने के वाद मैंने उन्हीं भावों को--अर्थात् शोध का कार्य जहाँ ठंडा था कविता की आग वहीं प्रज्वलित थी--इस रूप में व्यक्त किया :

गर्म लोहा पीट, ठंडा पीटने को
वक्त बहु तेरा पड़ा है।
सख़्त पंजा, नख-कसी चौड़ी कलाई
और बल्लेदार बाहें,
और आँखें लाल चिन्गारी सरीखी,
चुस्त औ सीखी निगाहें,
हाथ में घन और दो लोहे निहाई—
पर धरे तो देखता क्या,
गर्म लोहा पीट, ठंडा पीटने को वक्त
बहु तेरा पड़ा है।

(आरती और अंगारे)

"यद्यपि मैं यह भी जानता था कि यदि कविताएँ ही लिखता रह गया तो यहाँ की यात्रा ही व्यर्थ हो जायगी क्योंकि खाली हाथ भारत लौट जाने पर लोग व्यंग करेंगे कि हिन्दीवाला गया था अंग्रेजी में रिसर्च करने और वह भी कैम्ब्रिज में, लौट आया न? फिर भी मैंने बहुत कुछ हरि भजन भी किया और उसी के साथ कपास भी ओटी मैंने। जहाँ पी० एच० डी० की डिग्री लेकर आया वहीं १०० से ऊपर कविताएँ भी लिखीं जो 'प्रणय पत्रिका' और 'आरती और अंगारे' संकलनों में आईं।"

और फिर आधुनिक समीक्षा की चर्चा चल पड़ी तो उसकी उपलब्धि तथा अभावों पर भी बच्चन जी ने अपना अभिमत व्यक्त किया जिससे आज का प्रत्येक रचनाकार सहमत है। यहीं व्याज से ईट्स का नाम आ गया और बच्चन जी ने ईट्स की अत्यन्त ही प्रिय रचनायें--जो उन्हें प्रिय हैं--सुनाईं तथा उनका हिन्दी अनुवाद भी सुनाया।

बच्चन जी द्वारा लगाये गये फूलों तथा गढ़े गये मूर्तियोंनुमा पाषाणखण्डों को भी मैंने देखा जिन पर कहीं 'मानस' की चौपाइयाँ लिखी थीं तो कहीं मृत्यु का भयद रूप उपस्थित करनेवाले विम्ब थे। कहीं जटायु की कारुणिक स्थिति का बोध हो रहा था तो कहीं कठिनाइयों में मुस्कराने की चेष्टा करती मानव आकृतियाँ थीं।[1] ● ●



[1] (मैंने बच्चन जी की बातों को अपनी भाषा दी है। यद्यपि चेष्टा की है कि भरसक उन्हीं की भाषा रहे, परन्तु स्मृति-स्मृति ही है। अतः जहाँ बातें स्पष्ट नहीं हो सकी हैं वहाँ दोष मेरा है, बच्चन जी का नहीं।)

"समय क्या हमेशा एक जैसा होता है ? अरे, कल की बात और थी कि कहीं कुछ भी लेकर बैठ जाओ, पनप गये। आज लोगों के पास पैसा कहाँ है ? जहाँ देखो, जिधर देखो, आग लगी है ; क्या नहीं ?" और फिर उसका चेहरा झुक कर घुटने पर आ टिकता है। ऐसा झुकाव जैसे कोई किसी मुलायम टहनी को मोड़ कर छोड़ दे, तोड़ कर अलग न करे।

⊙ ⊙ ⊙

हर काम धीरे-धीरे करने वाला, शान्त, सहनशील, और सीधा आदमी दयाल विफरने पर ऐसा क्रोध कर सकता है, यह मैंने पहली बार जाना।

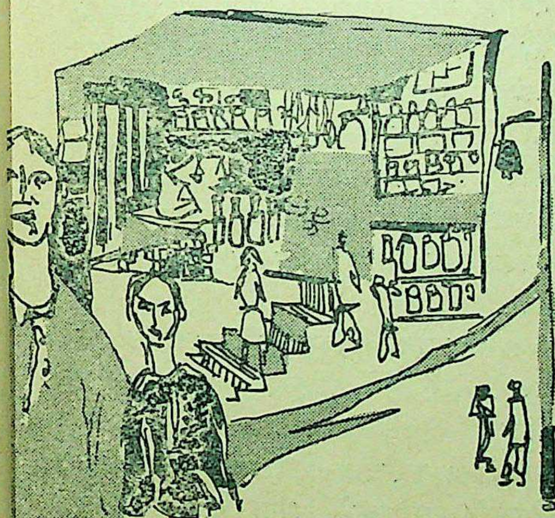
देखा कि उसके छोटे-से माथे पर कई-कई सिलवटें खिच आयी हैं, गर्दन की नसें उभर कर मोटी हो गयी हैं, बोलने पर बार-बार थूक उड़ती है और चेहरा बुरी तरह विगड़ गया है !

अब की बार अपने छोटे भाई की ओर देख कर वह और ज़ोर से चिल्लाया—"मैं कहता हूँ छोटे, ख़ैरियत चाहता है तो चला जा यहाँ से.... चला जा।"

पर छोटे वहाँ से हटा नहीं। ज़रा भी सहमे या काँपे विना उसी तरह ढिठाई से एकटक दयाल को घूरता रहा। मानो उस तीखी और चुभती हुई दृष्टि से कहता हो कि क्या करूँ, तुमसे छोटा हो गया वर्ना वताता....

"साला, कमीना।"

दयाल से छोटे का वैसा घूरना शायद सहा नहीं गया। वह क्रोध से दाँत पीसता हुआ बड़बड़ाने लगा। उसी झल्लाहट में उसने हाथ के पैसे झन्न से फेंक, सन्दूक का पल्ला इतनी ज़ोर से पटका कि उसके झोंके से सामने वाले कनस्तर का आटा उड़



दूसरी आग

कर इधर-उधर फैल गया।

छोटे भाई ने भी इस बार दुगुने जोश से चिल्ला कर कहा, "कमीना तू! ....."

सुन कर दयाल ने अपने हाथ-होंठ रोक दिये। एक क्षण उसे जलती आँखों से घूरता रहा, फिर सुपारी काटने का बड़ा सरोता उठा कर उसकी ओर लपका। दोनों अभी गुँथने को ही थे कि एक-दो ग्राहकों और पास-पड़ोस के लोगों ने बीच-बचाव कर दिया। अलग-अलग वे लोग पकड़ लिये गये, दोनों को समझाया-मनाया गया और छोटे को वहाँ से जबरन उठा कर भेज देने की कोशिश हुई। उतने सारे लोगों के आग्रह के कारण छोटे वहाँ से सरका ज़रूर, लेकिन गया नहीं। सामने वाले पुल पर बैठा, दयाल और उसकी दूकान की ओर देख-देख कर गालियाँ बकता रहा।

लेकिन उसके बाद दयाल ने फिर उधर ध्यान नहीं दिया। कठिनाई से पाँच-एक मिनट लगे होंगे और अपने को पूरी तरह संयत करके वह फिर से अपने काम में उसी तरह जुट गया।

दूकान में इस बीच काफ़ी ग्राहक इकट्ठे हो गये थे और थोड़ी देर ध्यान न दिया जाता तो उनके भड़क जाने का अँदेशा था। अपनी बारी आने पर सिगरेट लेकर मैं भी लौट आया लेकिन उस झगड़े का प्रभाव मन से हटा नहीं। बार-बार एक ही बात पर आश्चर्य होता था कि दयाल-जैसा शान्त, सहनशील और चुप-चाप आदमी भी क्या ऐसा क्रोध कर सकता है? और सिर्फ इस कारण कि...

लेकिन कारण क्या सचमुच उतना ही था?

× × ×

बिल्कुल ठीक-ठीक याद है जब मैंने दयाल को पहली बार देखा था। चार-पाँच बरस पहिले कभी सर्दियों के दिन थे और रात के ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे होंगे। किसी कारणवश उस दिन क़स्बे का इकलौता सिनेमा हाउस भी बन्द था और शायद इसलिए भी और दिनों की अपेक्षा वह रात भारी और सन्नायी-सी लग रही थी। कोहरा के मारे न मकान सूझते थे और न रास्ते।

मैं चमड़ा वाले सेठ के यहाँ की मीलाद से लौट रहा था कि रास्ते में सिगरेट ख़त्म हो गयी। कोफ्त इसलिए भी बहुत हुई कि उतनी रात गये कहीं सिगरेट पाने का उपाय न था। मजबूरन सिगरेट की ओर से अपना ध्यान हटाने का प्रयास करते हुए मैंने अभी एक सड़क छोड़ी ही थी कि एक किनारे के मकान में लालटेन की जलती हुई रोशनी दिखाई दी। हालांकि उधर बढ़ गया लेकिन विश्वास नहीं होता था कि इतनी रात गये इधर सन्नाटे में कोई भला मानुष दूकान खोल कर बैठ सकता है।

छोटा-सा कच्चा मकान था और उसी के बरामदे वाले हिस्से में किराने की उखड़ती-सी दूकान। दरवाज़े के पल्ले के ऊपर नारियल की रस्सी से बाँध कर बाँस की एक चटाई टाँग दी गयी थी। जो दिन में शेड और रात दूकान बन्द होने पर पल्लों को ढकने के काम आती थी। उसी के पास एक लाल-टेन टँगी थी और नीचे सिगड़ी जला कर हाथ सेंकता हुआ कोई बैठा था।

आस बँधी, लेकिन कहीं ना न हो, इस डर के मारे मैंने धीरे से पूछा—"सिगरेट होगी?"

अपने शरीर के गिर्द लिपटे कम्बल को सँभालते हुए उसने अपना चेहरा उठाया,

थोड़ी देर मेरी ओर बेपरवाही से देखता रहा; फिर जवाब दिये बिना सिगरेट की एक डिबिया बढ़ा दी।

बाहर रात तिल-तिल बर्फ़ हो रही थी। एक तो हाथ-पैर बुरी तरह ठंडे हो गये थे, दूसरे सामने ही जलती हुई सिगड़ी की आग का आकर्षण भी था। ज़रा हाथ गर्म करने के लिए जो ठहरा तो पाँच मिनट के बदले घंटा लग गया। पता नहीं कैसे एक-एक करके कई बातें निकल आयी थीं....कुछ वे तमाम बातें जो परिचय के शुरू-शुरू में निकल आती हैं।

"दूकान आपने नयी खोली है?"

एक क्षण का मौन पड़ता है। दोनों के बीच चमकती हुई सिगड़ी की रक्तिम रोशनी और मेरे अपने चेहरे पर उसकी आँखों का गहरा गड़ाव।

"हाँ, यहाँ के लिए तो नयी ही है।"

"इधर कितना सन्नाटा पड़ जाता है"—मैं बाहर के सुनसान अँधेरे को देख कर कहता हूँ—"आप इतनी रात तक भी दूकान खोल कर कैसे रखते हैं?

"दूकान तो तभी खुलनी चाहिए न जब दूकानदारी चले....इधर पास ही में शराब-भट्ठी है। लोग बारह-एक तक लौटते हैं और अजीब बात है कि दिन के बदले रात की बिक्री अच्छी होती है।"

और बावजूद इसके कि मेरे हर प्रश्न पर ठिठक कर वह सशंकित आँखों से हर बार घूरता, मैंने बहुत-सी बातें मालूम कर लीं।

कई बरस पहले, कहीं से रोज़ी-रोटी की तलाश में भटकता हुआ दयाल इस क़स्बे में आ गया था। पहले खूब धक्के खाये। फ़ाकों से लेकर चने तक बेचे, फिर दो-एक किराने की दूकानों में नौकरी की और बाद में ले-देकर एक मुहल्ले में अपने स्वयं की किराने की दूकान खोल ली थी। भाग्य ठीक नहीं था मुश्किल से साल बीता होगा कि दूकान बुरी तरह बैठ गयी और सारे सपने हवा हो गये....।

"आप कभी उड़ियों के मुहल्ले में गये हैं?" उसने जाने कैसी आँखों से मेरी ओर देख कर पूछा था—"वहाँ अमूमन छोटे और ग़रीब लोग रहते हैं। ऐसे लोग जिनके यहाँ चूल्हा रोज़ की खरीद-फ़रोख्त से जलता है और बहुतों की ज़रूरत ऐसी है कि लोग उधार ले जाते हैं चाहे चार पैसों की चीज़ चार आने में क्यों न दी जाय। यही सब देख कर मैंने पहले वहाँ दूकान खोली थी।"

कह कर उसने ऐसी साँस खींची जैसे कोई जर्जर और वृद्ध व्यक्ति अपने जवान बेटे की मृत्यु की याद करता है।

बाहर गश्त देने वाले सिपाहियों की सीटियाँ अँधेरे में गूँजती हुई पास आने लगीं। इतने पास कि थोड़ी देर बाद सड़क की गिट्टियों को कुचलने वाले उनके भारी बूटों की आवाज़ ठीक दूकान के सामने आकर थम गयी और उनमें से एक ने सीधे टार्च की रोशनी उछालकर हमलोगों को देखा। मैं अनमने ढंग से वहाँ से उठ आया लेकिन कम्बल से घिरा दयाल का चेहरा और बुझती हुई आँखों से सारी रात पीछा नहीं छूटा।

उसके कई दिनों बाद फिर भेंट हुई और इस बीच सैकड़ों बार मिलना-बैठना हुआ होगा, लेकिन दयाल या उसकी दूकान में कहीं कोई परिवर्तन नहीं देखा। वही पुरानी जगह, कच्चा मकान, नारियल की रस्सियों से बँधी सामने वाली बाँस की चटाई और रात बारह-

एक तक लालटेन जला कर उसका धीरे-धीरे ऊँघना......

उन सैकड़ों अवसरों में जिसे एक बार भी धैर्य खोते न देखा हो, उस दयाल को आज एकाएक इतना क्रोध करते देख कर बिल्कुल यक़ीन नहीं हुआ। भला वह भी कोई बात थी?

× × ×

तेल-साबुन वाला हाथ पोंछ कर दयाल ने पान लगाये थे, मुझे सिगरेट भी दे डालना चाहता था लेकिन तभी कोई आटा खरीदने वाला ग्राहक आ गया और उसने जल्दी मचा दी। मुझे अपनी पुरानी मुस्कराहटों से समझा कर दयाल ने, नये ग्राहक को पटाने के लिए तत्काल ही कनस्तर में हाथ डाल दिया। पास बैठे सज्जन (जो मुहल्ले के ही थे, और बेकारी के कारण अधिकांश समय दूकान में व्यर्थ बैठ कर गुज़ारा करते थे) ने सहसा एक करवट बदली और पहले से चल रही किसी बात का सिरा जोड़ कर कहा—"अभी क्या हुआ है? देखना और आग लगेगी और कुछ दिनों बाद यह होगा कि सरकार कहेगी पैसा लो और खाओ...."

माप-तोल के बाट तराजू समेत रखते हुए दयाल मुस्कुराया और उसने भी जो बातें कीं उससे मैंने अन्दाज़ लगा लिया कि दूकान में आज दूसरे स्तर की बातें चल रही हैं। विभिन्न राजनैतिक पार्टियों के सम्बन्ध में फतवों के बाद नये बजट की आलोचना हुई। बेकार सज्जन ने बुरी तरह कराह-कराह कर बताया कि सरकार ने रोजमर्रा की चीज़ों पर टैक्स बढ़ा कर ग़रीब और छोटे स्तर के लोगों का जीना कितना कठिन कर दिया है और उसकी हर नीति से कैसे पैसे वालों का ही भला होता है।

"मरेगा कौन?" उन्होंने नाटकीयता के साथ दयाल की ओर देख कर अपनी भौहें चमकायीं—"हम और तुम—यही बीच के लोग। ऊपर के लोगों को क्या फ़र्क़ पड़ता है। अब यही देख लो कि चीज़ों के दाम बढ़े और बड़े-बड़े स्टाकिष्ट व्यापारियों ने आनन-फानन हज़ारों रुपये पीट लिए।"

दयाल का छोटा भाई जो अभी तक चुपचाप बैठा सुन रहा था, सहसा होंठ बिचका कर खड़ा हो गया। पहले उसने बढ़ती हुई मँहगाई और नये करों के लिए सरकार को भद्दी गालियाँ दीं, फिर अपने भाई को कोसता हुआ बाहर निकल आया और देर तक बड़बड़ाता रहा।

"इस सड़े-से धन्धे में क्या रखा है? देखना, मेरी बात न मानी तो एक बार फिर सब चौपट होगा और इस बार डूबे तो थाह ही नहीं मिलेगी। अब तो औरत के गहने भी नहीं हैं..."

बस बात सिर्फ़ इतनी ही थी। इसी पर खींचतान मची, धीरे-धीरे गालियाँ बढ़ीं और देखते-देखते दूकान के सामने इतना बड़ा हंगामा खड़ा हो गया...

—"जाने दो, क्या करना है।"

सोच कर अपने को झटकता हुआ मैं बुरी तरह चौंका। देखा कि जाने कब घर आ गया हूँ और अपने कमरे में पहुँच कर मैं चुपचाप खड़ा हूँ। सिगरेट दोनों उँगलियों के बीच सारी की सारी जल गयी है और आग सरकती-सरकती मेरी उँगलियों के माँस को छू रही है।

खिड़की के बाहर तत्काल सिगरेट फेंक कर मैं धीरे से लेट गया, आँखें मूँद लीं और सारे के सारे उस दृश्य को अपने दिमाग़ से

खरोंच कर साफ़ करने लगा। कमरा निहायत ही सर्द और अँधेरा था। कहीं कोई आवाज़ नहीं और ऐसे में जैसे-जैसे वह खुरचता गया उस पर एक और दृश्य आहिस्ते-आहिस्ते लदने लगा...

तीन-चार दिनों बाद मैं दयाल की दूकान गया हूँ। शाम नहीं है, बाँस की चटाई के पास बुझी हुई लालटेन टँगी है, ग्राहक के नाम पर एक भी आदमी नहीं और अपने घुटने पर ठोड़ी टिकाए दयाल सामने तैयार हो रहे एक लकड़ी के डिब्बे की ओर देख रहा है।

मैं पहुँचता हूँ तो फ़ीके ढंग से मुस्कुरा कर बताया जाता है—"कोई सिंधी है। यहाँ किराने की नयी दूकान खोलना चाहता है, बस दो-एक दिन की देर और है।"

पिछले दिनों की घटना आयी-गयी हो गयी है। छोटा भाई अपने काम में चुपचाप जुटा है यहाँ तक कि सामने बन रहे डब्बे की ओर भी नहीं देखता।

—"आप को पता है?"—अचानक अपना स्वर बदल कर दयाल मुझसे कहता है—"पिछली बार भी मेरी दूकान इसीलिए उखड़ गयी थी कि थोड़े दिनों बाद ही एक सिंधी काम्पीटीशन में खड़ा हो गया। मेरी चलती हुई दूकान देख कर उसने भी यही किया और आप तो जानते हैं कि इन लोगों के सामने टिकना कितना मुश्किल होता है..."

मैं चुपचाप दयाल की बातें सोचने लगता हूँ...

बिजनेस क्या होता है, मैं नहीं जानता। शायद सिंधियों को उसमें महारत होगी क्योंकि दयाल ने इधर उनकी नकल करनी शुरू कर दी है। उन्हीं की देखा-देखी रात को घर जाना बन्द कर दिया है और बीवी-बच्चों को छोड़ कर दूकान पर ही पड़ा रहता है। घर पर किसी एक आदमी को होना चाहिए सो वह ज़िम्मेवारी छोटे भाई ने सम्हाल ली है। अभी उस दिन जो झगड़ा हुआ, उसके मूल में क्या कहीं...

मैं चोरी-छिपी नज़रों से दयाल के चेहरे पर उस दिन का कहीं कोई प्रभाव ढूँढ़ता हूँ लेकिन वहाँ एक ही छाया काँप रही है कुछ ऐसी जैसे विपत्ति की आशंका पर अक्सर क्षण-क्षण में घेर जाती है।

—"छोटे तो मूर्ख है," कह कर दयाल हँसने का प्रयत्न करता है—"समय क्या हमेशा एक-जैसा होता है? अरे, कल की बात और थी कि कहीं कुछ भी लेकर बैठ जाओ, पनप गए। आज लोगों के पास पैसा कहाँ है? जहाँ देखो, जिधर देखो, आग लगी है, नहीं?"

और एक पल के लिए रुक कर दयाल एक उड़ती नज़र मुझ पर डालता है। दरअसल उसकी आँखें सामने वाले डिब्बे पर बुरी तरह जम गयी है। थोड़ी देर वह एकटक उधर देखता रहता है फिर उसका चेहरा झुक कर घुटने पर आ टिकता है। ऐसा झुकाव जैसे कोई किसी मुलायम टहनी को मोड़ कर छोड़ दे, तोड़ कर अलग न करे।

—"देखना, सिंधी की यह नयी दूकान चलेगी नहीं।"

दयाल धीरे से कहता है पर इतने धीरे कि डब्बे से आ रही लकड़ी चिरने, कीलें ठुँकने और हथौड़ा चलने की आवाज़ के बीच ही उसका स्वर फँस कर रह जाता है।

—:०:—



कड़ुवे सीमान्त पर

•

कैलाश वाजपेयी

नीले भविष्य के कड़ुवे सीमान्त पर
अब जहाँ हूँ मैं
मैंने तुम्हें खो दिया है
जैसे चिटखती है आग और चिनगारी—अलग नई—
सृष्टि रच लेती है।
—खो दिया, मैंने तुम्हें खो दिया है!
मटमैले वर्षों के धारदार पहिए
रौंद चुके होंगे उस पिण्ड को
मैंने जिसे पीछे कल छोड़ा था—
याद नहीं मुझे उस अनात्म की
चाँदी की पिघली सलाखें गिराकर
तुमने जिस बदहवास प्रणयी का
कन्धा झकझोरा था—
उजले व्यतीत के फीके देहान्त पर—
अभी जहाँ हो तुम
उस सबसे दूर दूर दूर अब
जहाँ कहीं हूँ मैं
मैंने तुम्हें खो दिया है—

—सन्नाटा ओढ़कर रात के वक्ष पर
रोएँदार अन्धकार सोया है
पत्थर—निस्पन्द—मैं
इस वन्ध्या रात की रीढ़ से
चिपका हूँ।
और भोजपत्रों की राख से ढका हुआ
—मेरा कंकाल—
रक्षित है कहीं किसी अगली शताब्दि में
मुझको प्रतीक्षा में
एक और मृत्यु अभी ढोनी है।
पूर्वमृत्यु—नीले भविष्य के कड़वे सीमान्त पर
अब भी मैं क्योंकि,
उस कोख के अयोग्य हूँ
बेहोश जन्म जहाँ
भटक कर वर्षों में एक बार आता है!

अहमद सलीम

बातें, जिनमें सुगन्ध फूलों की (८)

उक्त लेखमाला की आठवीं क़िश्त जिसमें उर्दू के प्रसिद्ध शायर 'दाग़' देहलवी के कुछ पत्र प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

⊙ ⊙ ⊙

दाग़ की मस्नवी का एक अंश है :

फिर हुईं दिल में हस्रतें आबाद,
नाले[1] देने लगे मुबारक-बाद।
फिर हुआ शौक़ जिब्हा-साई[2] का,
फिर जमा रंग आश्नाई[3] का।
देख कर इस परी-शमायल[4] को,
रह गया थाम थाम कर दिल को।
किस क़ियामत ने पाएमाल[5] किया;
सिहरे-बंगाला ने हलाल किया।

और यह बंगाले का जादू 'दाग़' के सर उस वक्त चढ़ा जब हज़रते-दाग़ क़िला-ए-मुअल्ला की बरबादी के बाद रामपुर आये और रियासत के नौकर हुए। 'नवाब कलबे अली ख़ाँ' बड़े ज़िन्दा-दिल रईस थे और दिल्ली के उजड़ने के बाद अच्छे-अच्छे कलाकारों का जमघट रामपुर में हो गया था। नवाब ने "मेला-बेनज़ीर" की बुनियाद डाली जो दिल्ली के "फूल वालों के मेले" का जवाब था। इस मेले में दूर-दूर से प्रसिद्ध तवायफ़ें और गायक

१. आर्त्तनाद, २. माथा टेकना, ३. दोस्ती, ४. परी जैसा सुन्दर चेहरा, ५. पैरों से रौंदना।

फ़सीहुल मुल्क 'दाग़' देहलवी के कुछ पत्र

बुलाये जाते थे। इन्हीं में एक बार कलकत्ते की 'मुन्नी बाई हिजाब' भी आई। और 'हिजाब' जब कुछ रोज़ रामपुर रह कर कलकत्ते वापिस गईं तो दाग़ पर इनका जादू चल चुका था :

"दिलदारो-दिल नवाज़ !

क्या ग़ज़ब है, आँख से ओझल होते ही वह सब क़ौलो-क़रार यकलख़्त फ़रामोश कर दिये। ख़त भेजा था, वहाँ की दिलचस्पियों में इतनी खोई हो कि जवाब देना मुहाल। क्या मेरे सीने में दिल नहीं या दिल में तड़प नहीं ? क्या बेक़रार होना मुझे नहीं आता ? क्या तिलमिलाना मैं नहीं जानता ? इस ख़त का जवाब जल्द न आया तो खुद बाज़ार जाकर ज़हर लाऊँगा और बे-मौत मर कर दिखा दूँगा। तुमसे वादा लिया था और तुम वादा कर गई थीं कि रोज़ नहीं तो हफ्ते में दो बार ख़त ज़रूर लिखा करोगी। आज दस दिन हो गये, न ख़ैर है न ख़बर––यहाँ तो जिस दिन से गई हो जान पर बनी है ; कोई बात अच्छी नहीं लगती। जब तक तुम्हारा ख़त न आए दिल को कैसे चैन आए !"

हिजाब का ख़त आने पर 'दाग़' को चैन आ ही गया होगा, परन्तु दूसरे साल मेला-बेनज़ीर के आते ही मुलाक़ात की आग फिर भड़क उठी :

"बाई जी, सलामे शौक़ !

ग़ज़ब तो यह है दूर बैठी हो, पास होतीं तो सैर होती। कभी तुम्हारे गिर्द घूमता और शोलाए-जव्वाला बन जाता ; कभी तुम्हें शमा क़रार देता और पतंगा बन कर क़ुरबान हो जाता ; कभी बलाएँ लेता और सदक़े क़ुर्बान हो जाता। एक ख़त भेजा है अभी उसके इन्तज़ार की मुद्दत ख़त्म नहीं हुई कि यह दूसरा ख़त लिखवाने लगा। ख़ुदा के वास्ते जल्द आओ या तारीख़ मुक़र्रर करके इत्तिला दो। शबो-रोज़ इन्तज़ार में गुज़रते हैं। वहाँ के लोग क्यों कर ख़ुशी से इजाज़त देंगे, तुम्हीं चाहोगी तो रवानगी हो सकेगी। मैं तुम्हारे लिए बिलबिला रहा हूँ। यह ख़ौफ़नाक काली-काली रातें क्या कहूँ क्यों कर तड़प-तड़प कर सुबह की सूरत देखता हूँ। यक़ीन जानो, ऐसे तड़पता हूँ जैसे बुलबुल क़फ़स में। मेरे दोनों ख़तों का जवाब आना ज़रूरी है––"

ख़त का जवाब आया, हिजाब आईं और दाग़ आनन्दित हो उठे ; लेकिन जाने कहाँ से प्रेम की इन दो समानान्तर रेखाओं के बीच नवाब कलबे अली ख़ाँ के भाई साहबज़ादा हैदरअली ख़ाँ प्रतिद्वन्द्विता का त्रिकोण बन कर उभर आये ; वह भी हिजाब में दिलचस्पी लेने लगे। हिजाब को भी उधर प्रवृत्त देख कर दाग़ अपने आपको क़ाबू में न रख सके। दिल का बुख़ार निकालना था, एक पर्ची लिख कर भिजवा दी :

"सितमगर, सितम पेशा !

तुम दो रोज़ से नवाब साहब के यहाँ थीं, यहाँ दिल पर अजीब आलम गुज़र गया। मैं नहीं मानूँगा कि तुम मजबूर हो गईं। इस रियासत में ऐसी भी ख़ुदा की बन्दियाँ हैं जो रईस के हज़ार दबाव पर भी अपनी जगह से हिलती नहीं। जिनसे वास्ता है और जिनसे वफ़ादारी का अहद कर चुकी हैं अपने क़ौल पर क़ायम हैं। एक तरफ़ दौलत है,

रियासत है और हर तरह की शानो-शौक़त है, लेकिन मुहब्बत का नाम नहीं। तुम्हारा दिलदार उनके मुक़ाबले में कोई ख़ूबी नहीं रखता मगर तुम्हारी उल्फ़त में जान से गुज़र सकता है। क्या मेरे रक़ीब भी ऐसा कर सकते हैं, क्या तुमको इसका यक़ीन है? और जब नहीं कर सकते तो फिर किसलिए तुम 'दाग़' जैसे परस्तार (उपासक) को भूली हुई हो? दिल पर जब्र कर लिखता हूँ कि अगर वाक़ई तर्के-तअल्लुक़ (सम्बन्ध तोड़ना) मंज़ूर नहीं तो फिर मुझे दीदो-शुनीद (देखना-सुनना) से क्यों महरूम रखा जाता है?

तुम जानो तुमको ग़ैर से जो रस्मो-राह हो;
मुझको भी पूछते रहो तो क्या गुनाह हो।"

हिजाब इस ख़त से ज़रा भी प्रभावित नहीं हुईं। इसी बीच दाग़ ने हिजाब को एक ऐसी महफ़िल में देख लिया जहाँ हिजाब बहुत ही बेहिजाब (निर्लज्ज) थीं। दाग़ की जलन का कोई ठिकाना न रहा :

"बे मेहरो-बेवफ़ा! कल उस महफ़िल से बादिले-दाग़दार (दुखी दिल से) और यासो-हर्मां (निराशा) का गहरा चर्का खा कर आया हूँ। उस वक्त से सोच रहा हूँ कि आख़िर यह तमाशा कब तक? मुआमला यक सू (निर्णय) होना ज़रूरी है। सुबह और शाम होते-होते इतना ज़माना गुज़र गया, आख़िर कोई हद भी है। कलेजे में नासूर पड़ गये हैं, अब तो इनका इलाज करना ही होगा। कहिये आपके दिल की हवस घटी या बढ़ी। वह आदमी ज़रूर बेहिस है और उसके दिल में बजाए दिल के लोहे का टुकड़ा रखा हुआ है जो यह मंज़र (दृश्य) देखे और चुप रहे। मेरे जिस्म में ख़ून हांडी की तरह पक रहा है। तुम्हें यह अच्छा मालूम होता है कि यह सब शिकरे मिल कर नोचा-खसूटा करें। आख़िर यह क्या सिर में समाई है? कौन जाने इसका क्या अंजाम हो! यही लैलो-नहार है तो 'दाग़' का सलाम क़ुबूल हो। दिल पर सब्र की सिल रखूँगा मगर तुम्हारा नाम न लूँगा। आख़िर बे-हयाई की कोई हद भी होती है......"

और इसी सिलसिले में दाग़ ने एक ख़त अपने दोस्त को भी लिखा :

"मुहिब्बे दाग़! अगर आप मुझे यह लिखें कि नवाब साहब की बुलाई हुई हिजाब गई थीं या ख़ुद उन्होंने डोरे डाले थे तो बड़ी बन्दा-नवाज़ी होगी। मेरा दिल और दिमाग फुँक चुका है। दिल में ज़ख़्मों की हद नहीं रही, और फिर यह रोज़-रोज़ की नमक-पाशी; तिलमिलाया जाता हूँ। आप दोनों तरफ के हालात से वाक़िफ़ हैं। आपको ख़ूब मालूम है कि नवाब साहब के मुक़ाबलेमें सिवा इसके, कि जल-भुन कर अपने इश्क़ की आग में कबाब हो जाऊँ, कुछ नहीं कर सकता। आप शायद नवाब साहब से कह सकें कि दाग़, हिजाब के तीरे-नज़र से बे-तरह घायल है, आपकी दिल-बस्तगी के लिए और भी सामान हैं लेकिन बेचारा दाग़, हिजाब को न पाए तो कहाँ जाए। और अगर कहीं जाए तो वह फांस जो दिल में पेवस्त है कैसे दूर हो। हिजाब के इन्तज़ार में बेचैन हूँ——"

परन्तु बात हद से गुज़र चुकी थी इसलिए मित्रों के बीच-बचाव पर भी कोई अच्छा नतीजा न निकला। हाँ, हुआ यह कि नवाब

साहब का हिजाब से दिल भर गया तो उन्होंने हिजाब से मुँह फेर लिया। दाग़ ने अब भी उन्हें बुलाना चाहा। हिजाब लज्जित थीं, कैसे आतीं, बीमारी का बहाना कर गईं। विवरण इस ख़त में देखिए जो दाग़ ने हिजाब की बहन हमीदन बाई 'निक़ाब' को लिखा था :

"बी हमीदन बाई! तुमने यह खूब सुनाई कि वह आने वाली थीं, मगर नागहां तबीयत ख़राब हो गई, जान के लाले पड़ गए। वह तो ज़िन्दगी थी कि दो-तीन घड़ी दौरे से तकलीफ़ उठा कर ठीक हो गईं। कल खाँ साहब भी आये थे उनसे देर तक ज़िक्र (चर्चा) रहा, वह देर तक वहाँ बैठ कर आये थे। उन्होंने तो इस तरह की कोई बात नहीं कही जिससे नागहां अलालत (बीमारी) का पता चलता। वह क्या बात है, आख़िर ऐसा मुझे क्यों लिखा गया; इससे उनका क्या मक़सद था? क्या मेरा इम्तहान मंज़ूर था। सोचती तो होंगी कि दाग़ कितना संगदिल है, तकलीफ़ और बीमारी का हाल सुन कर भी भागा हुआ नहीं आया। और किसी वजह से आना मुमकिन न था तो ख़ैर-ख़बर भी न ली—"

यह ख़ैर-ख़बर लेने की भी एक ही रही। दाग़ भला यह झोल काहे को पालते? वहाँ तो "रोज़ माशूक़ नया, रोज़ मुलाक़ात नयी" वाला मुआमला था। और फिर दाग़ ने तो यह अपनी ही ज़ुबान से कहा था ना कि :

"इक न इक हम लगाये रखते हैं"

ऐसे में लोग हिजाब के बाद बनारस की 'मलिका जान' और 'गौहर जान' से दाग़ के सम्बन्ध को हवा न देते तो क्या करते—लोगों के कहने-सुनने पर तो फिर कभी विचार कर लेंगे अभी आप मलिका जान के नाम दाग़ का यह पत्र देख लें :

"मलिकए अक़लीमे-सुख़न वरी! क्यों जी, ख़ुदा ने मुझे क्यों आशिक़-मिज़ाज बनाया? इस बला में क्यों फंसाया? पत्थर का दिल लोहे का कलेजा क्यों न बनाया? जिसने कोई अच्छी अदा देखी तबीयत लोट गई। ख़ूबसूरत कोई माशूक़ पढ़ा-लिखा हो और शेर-गो (शाइर) भी हो तो मिर्ज़ा दाग़ की मौत है—"

जी हाँ, यह मलिका जान शाइरी भी करती थीं और इनके हाथों भी दाग़ कुछ दिनों जीते और मरते रहे थे। और फिर गौहर जान भी थीं, जिनको पत्र लिखते हुए मिर्ज़ा दाग़ ने हिजाब के बारे में लिखा था :

"—हिजाब से दिल-लगी हो गई थी। एक दास्ताने तूल-तवील है। अक्सर वह हाल तुमको "मस्नवी फ़र्यादे दाग़" से ज़ाहिर हुआ होगा, ज़रा भी फ़र्क़ नहीं। मैं उसका मम्नून हूँ; रामपुर में तलवार की धार पर मुझसे मिली और उस मुलाक़ात को आदमीयत और अताअत के साथ बेग़रज़ाना कलकत्ते तक निबाहा। उस मुलाकात की शुहरत तो क्या रुस्वाई तमाम में हुई मगर जुदाई भी ऐसी हुई कि मुलाक़ात की उम्मीद न रही। मैं एक रियासत का नौकर, कलकत्ते में हमेशा क्यों कर रह सकूँ, इतनी मक़दिरत (शक्ति) कहाँ से लाऊँ। तर्के-रोज़गार क्यों कर हो सके (नौकरी क्यों कर छोड़ी जाये) कि यह वसीलए-आबरू (मर्यादा बनाये रखने का साधन) और हीलए-मआश (रोज़ी का बहाना) है। बाई जी को यह ज़िद बेहूदा हुई कि तमाम उम्र रामपुर की सूरत न देखूँ—मेरे ख़मीर में इश्क़ है, मैं वफ़ा का पुतला हूँ, जो

मुझसे मिला और मिल कर छूटा—याद करता रहा—"

कहाँ तो दाग़ ने कभी हिजाब को यह लिखा था :

"दुश्मने-जानी, सलामे-शौक़ ! ऐन इन्तज़ार में तुम्हारा मुहब्बत-नामा मिला। कई बार पढ़ा, आँखों से लगाया, चूमा, छाती पर धरे रहा। तुम लिखती हो कि मुझे भूल जाओ और अगर न भूलो तो बदल जाओ। यह कर लोगे तब ही तुम्हारे पास आऊँगी। ख़ूब, तुमको भूल जाऊँ :

तू भूलने की चीज़ नहीं ख़ूब याद रख;
नादान किस तरह तुझे दिल से भुलायें हम।

अच्छा तुम यहाँ आ जाओ, फिर हम दोनों एक दूसरे को भूलने की कोशिश करेंगे। मुझे तुम्हारी हर बात मंजूर है। जवाब में लिखो कि कब आ रही हो—"

और कहाँ अब बात उस मोड़ पर आ पहुँची जहाँ एक रास्ता दूसरे रास्ते को बढ़ कर काट देता है। और ऐसे ही एक मोड़ पर दाग़ ने अपने मित्र बहादुर ख़ाँ 'अंजुम' नेशापुरी को हिजाब के विषय पर धूल डालते हुए लिखा :

"......कम्बख़्त एक बलाए-बेदरमाँ थी जिसके तसव्वुर से अब तक नजात नहीं; हर चन्द अब बहुत सब्र आ गया है........आपने नाहक़ मेरी तस्वीर उनको भेजी, मैं उनसे कमाल नाराज़ हूँ। आज कुछ तबीयत अच्छी नहीं वर्ना गर्म-गर्म जवाब देता—"

किन्तु इस विषय पर धूल डालने से पहले दाग़ का एक इन्तहाई दिलचस्प-सा पत्र देख लें, जो कभी हिजाब को ही लिखा गया था :

"नेक-बख़्त, पाक-दामन, बेलौस मुन्नीबाई हिजाब, सलामत रहिये। गुस्ताख़ी मुआफ। क्या ख़ूब ! मुझ पर आस्माने-हवादिस (वृहत् घटनाएँ) टूट पड़ें। मेरे दाँत निकल जायें और आप दाँत निकाल कर हँसें। सलामती से पूरा ख़त देखने की ज़रूरत नहीं, अगर देखा तो समझे कौन, ग़रज़ किसको, तवज्जुह कैसी। कोई कल मरता आज मर जाये तो घी के चिराग़ जलें। पहले ख़त में लिख दिया है कि साहब सब क़िस्म के दाँत एक आदमी के मुँह के लाइक़ भेजवा दीजिये, दुनिया जानती है कि बत्तीस दाँत होते हैं—" ● ●



फ़सीहुल मुल्क 'दाग़' देहलवी

रामेश्वरदयाल दुबे

कहिये, तो आपको तबलायें !

क्षमा करें मुझसे ग़लती हो गई ! वरना भला मेरी क्या ताकत है कि मैं आपको तबलाने का साहस करूँ ? आपको तबला बना कर अपने हाथों को त्रिताला की प्रेक्टिस दूँ ? मैंने पहले ही कहा न, कि क्षमा करें, मुझसे ग़लती हो गई। एक अक्षर इधर का उधर हो गया। मैं लिखना चाहता था '**बतलायें**' और लिख गया '**तबलायें**'।

मगर मुझसे ही ऐसी ग़लती हुई हो—ऐसी बात नहीं है। मैं तो जब अपनी नज़र आसपास और दूर पर दौड़ाता हूँ, वर्तमान और अतीत पर गौर करता हूँ और देश और विदेश की घटनाओं पर ध्यान देता हूँ तो यही पाता हूँ कि इस प्रकार की ग़लतियाँ सभी देश और सभी काल में होती आई हैं। इस व्यापकता के कारण मेरा अपराध सम्भवतः कुछ हलका हो ही जाता है।

शब्दों में अक्षर की हेराफेरी सदा से होती आई है। भाषा-वैज्ञानिकों ने तो शब्द-परिवर्तन के मूलाधार कारणों में इसकी गिनती की है। **लखनऊ** जैसा प्रसिद्ध शहर लाखों व्यक्तियों के द्वारा '**नखलऊ**' कहा जाता है और मज़ा यह है कि सुनने वाले समझ लेते हैं कि यह '**लखनऊ**' ही है।

आप मानें न मानें, मगर उत्तर प्रदेश के अनेक गाँवों में '**चाकू**' को '**काचू**' ही कहा जाता है, और '**कीचड़**' को तो '**चीकड़**' पढ़े-लिखे लोग भी



बड़ा रोचक है अदला-बदली का यह इतिहास ! तभी तो आपने 'बतलाये' जाने की अपेक्षा 'तबलाये' जाने पर भी बुरा नहीं माना है।

कहते हैं। इसी तरह अनेक लोगों का **'नुकसान'** नहीं होता **'नुसकान'** हीं होता है। एक बार तो मुझसे ऐसी ग़लती हो गई कि जिसके लिए मुझे क्षमा माँगनी पड़ी थी। एक कन्याशाला में भाषण देने गया और मुँह से निकल गया—"अब समय आ गया है कि हम अपनी **लर्काड़ियों** की ओर अधिक ध्यान दें।"

इस प्रकार की ग़लती कुछ हिन्दी में ही थोड़े होती है। आपको एक मज़ेदार घटना सुनाऊँ। मराठी प्रदेश में आया-आया ही था। प्रूफ देखने का मौका आया। गेली में एक शब्द था **'महशूर'**। मैंने उसे ठीक किया **'मशहूर'**। जब मेरे सामने पेज प्रूफ आया, तो फिर मैंने उसे ठीक किया और लिख दिया—मशहूर। मगर यह क्या? मशीन प्रूफ में भी **'महशूर'** ही लिख कर आया। मैंने वहाँ भी उसे ठीक किया इस आशा से कि अन्तिम बार तो सुधार हीं लिया जायगा। मगर हुआ यह कि जब पत्रिका सामने छप कर आई, तो क्या देखता हूँ कि **"महशूर"** महाशय उसी रूप में विराजमान हैं। बड़ा क्रोध आया। जब पूछा-ताछा, तब पता चला कि मराठी कम्पोजीटर ने यह मानकर कि प्रूफ देखने वाला भ्रमवश **'मशहूर'** लिख देता है, उसने **'महशूर'** ही जाने दिया। वह बेचारा भी क्या करता। उर्दू का शब्द **'मशहूर'** महाराष्ट्र में पहुँच कर **'महशूर'** ही बन गया है।

इसी तरह **'अमानत'** भी बड़े मजे में **'अनामत'** रूप में चलता है।

अक्षर विपर्यय के आधार पर यदि आप को ऐसे वाक्य सुनने को मिलें, तो आपको चौंकना नहीं चाहिये, आप चाहें तो ओठों में ही मुस्करा सकते हैं—

यह स्थान बड़ा **रमकीण** हैं।

मैं तो आज **सिमेना** देखने जा रहा हूँ।

गधे ने वे **दुतलियाँ** झाड़ीं, कि देखते रह गये।

दूध तो लाई **बसाते** भी तो लाओ।

जो कुछ देना है **ईनामदारी** से दे दो।

फूल के **पुक्का** हो गये।

कमरे की **तुपाई** हो रही है।

ये तो उदाहरण ऐसे हैं, जिनमें अक्षर ने अपने पड़ोस के अक्षर से अदला-बदली कर ली है। मगर कभी-कभी अक्षर छलांग मार कर भी अदला-बदली किया करते हैं।

मेरे एक पड़ोसी मित्र हैं, आये दिन उनके मुँह से ऐसे शब्द सुनने को मिलते हैं। मेरे बच्चे ने उनके कई वाक्य नोट कर रखे हैं। उनकी नकल कर-कर के वह अपना मनरंजन कर लिया करता है। आप भी उनके कुछ वाक्य सुनिये—

इस साल तो हमने **रज्जा-गदाई** बनवा ही ली। हमें तो भाई **लगड़ा-झड़ाई** अच्छी नहीं लगती। हम तुम्हारी **बुली-भरी** बातें सुनने के लिए तैयार नहीं।

उस दिन स्टेशन पर एक छोकरे को गाता सुना—

आँसों में आँखू आ गये।

आँसों में आँखू आ गये।

जब दूसरे छोकरे ने एक धौल जमाई और कहा—अबे क्या बकता है—**'आँसों में आँखू'**? तब उसकी समझ में आया और उसने अपने को ठीक किया—

आँखों में आँसू आ गये।

अक्षरों की कूदा-फाँदी तो आपने देखी, कहिये, तो आपको तकलयें! —रामेश्वरदयाल दुबे

लेकिन क्या कभी आपने शब्दों की अदला-बदली देखी-सुनी है ?

मेरे एक साथी मित्र उस दिन सुना रहे थे कि उनके यहाँ एक नौकर है जो कभी-कभी अजीब भाषा बोला करता है। उदाहरण के लिए दो-चार वाक्य उन्होंने उस दिन सुनाये थे, आप भी सुनिये।

एक दिन नौकर ने घर की एक बच्ची से कहा—**"गाय ले आओ, बाल्टी दुह लें।"**

एक दिन नौकर ने मेरे मित्र को सूचना दी—"बाबूजी **हवा में साइकिल नहीं है,** आप जायेंगे कैसे ?"

एक दूसरे दिन नौकर ने शिकायत की—"देखो बाबूजी, यह माली का छोकरा हमारी बात नहीं सुनता। जब कुछ कहो **तेल में कान डाल कर** बैठ जाता है।"

एक दिन मेरे मित्र भी अपने नौकर से मज़ाक कर बैठे—**"ज़रा बाल तो ले आओ, पानी बना लें।"**

मेरे एक दूसरे मित्र जो जलगाँव (खानदेश) में रहते हैं, मुझे एक दिन सुना रहे थे कि खानदेश में एक गाँव है, नाम है पिम्पी।

खानदेश की भाषा मराठी है। मराठी भाषा में कपड़ा सीनेवाले को शिम्पी कहते हैं।

कभी कभी लोग जब यह कहना चाहते हैं कि **"पिम्पी गाँव का शिम्पी आया है।"** तो कह जाते हैं—**"शिम्पी गाँव का पिम्पी आया है।"** तो आपने देखा—यह अदला-बदली का रूप अक्षरों और शब्दों में किस तरह होता है। मगर यह यहीं तक सीमित नहीं है। इस अदला-बदली से विचित्र घटनायें भी हो जाती हैं।

यह तो अक्सर हो ही जाता है कि प्लेटफार्म की टिकट यात्री के साथ चली जाती है और यात्रा-टिकट पहुँचाने आने वाले के हाथ में रह जाती है। टिकट ही तक की अदला-बदली हो जाय, तो खैर कोई बात नहीं, मगर कभी-कभी तो यह हो जाता है कि जो पहुँचाने जाता है, वह गाड़ी में, और जिसे जाना है, वह प्लेटफार्म पर; और गाड़ी चल देती है।

सबसे बढ़िया अदला-बदली तो दो-तीन वर्ष पहले झाँसी जंकशन पर हुई थी। शादी का मौसम, बरातों की क्या कमी ! कई बरातें प्लेटफार्म पर ही पेड़ों की छाया में गाड़ियों की प्रतीक्षा में ठहरी थीं। उत्तर प्रदेश की नववधुयें—लम्बे-लम्बे घूँघट। नल के पास जाने-आने में बेचारी भूल गई। एक बरात की बहू दूसरी बरात में, और दूसरी बरात की बहू इस बरात में पहुँच गई। गाड़ियाँ आईं, बरातें विदा हुईं। करीब दो घंटे बाद रहस्य खुला। तब बहुओं को यथास्थान पहुँचाने का प्रयत्न किया गया। दौड़-धूप देखते ही बनती थी।

एक मासिक पत्रिका में एक विनोद पढ़ने को मिला—

एक आदमी ने पूछा—"तुम्हारी **बजी में** क्या **घड़ा** है ?"

दूसरा आदमी ग़लती समझ तो गया, पर था वह घाघ। उसने जवाब दिया—**"नौने पौ"** (पौने नौ)।

भगवान बचाये इस अदला-बदली से। इस लेख का शीर्षक भले ग़लत हो गया हो, परन्तु **'मनस्ते'** करके इस लेख के अन्त को ग़लत न करूँगा। मैंने आपको **'तबलाया'** और आपने मुझे क्षमा कर दिया—इसी के लिए मैं आभारी हूँ।

●



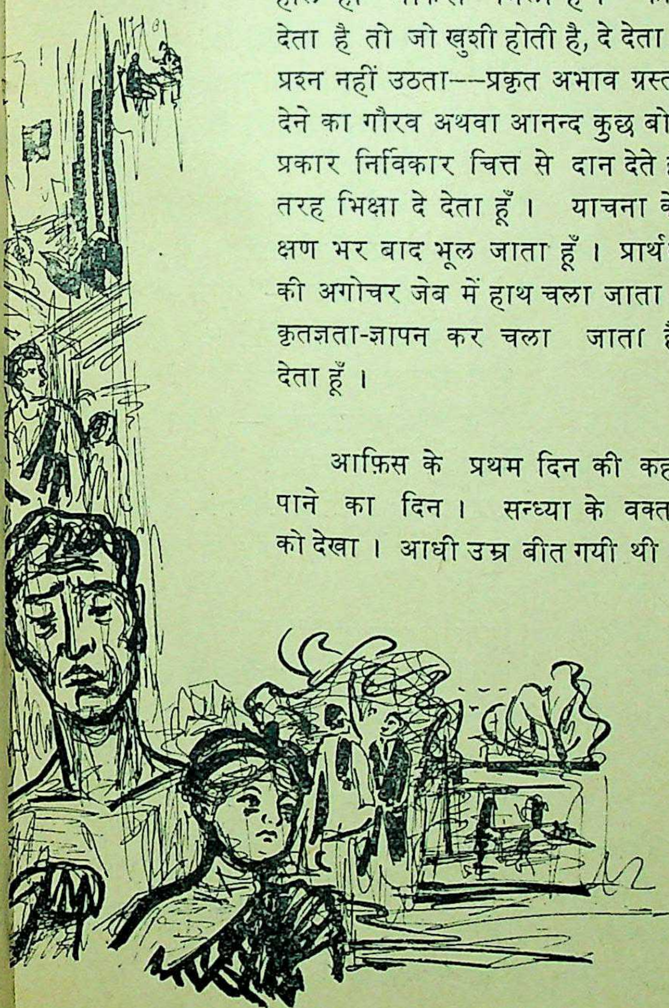
ये फैले हुए हाथ

अगर समस्या एक हाथ की या कुछ हाथों की हो तो हल भी की जाय, लेकिन मुश्किल तो यह है कि न केवल ये फैले हुए हाथ ही अनेक हैं वरन् जब ये सामने आते भी हैं तो भेष बदल-बदल कर, अनेक-अनेक रूपों में ।

⊙ ⊙ ⊙ ⊙ ⊙

हाल ही नौकरी मिली है । कोई भिक्षा-हेतु हाथ सामने फैला देता है तो जो खुशी होती है, दे देता हूँ । दान देने के समय मन में कोई प्रश्न नहीं उठता---प्रकृत अभाव ग्रस्त को भिक्षा दी कि नहीं ? दान देने का गौरव अथवा आनन्द कुछ बोध नहीं करता । दूसरे मनुष्य जिस प्रकार निर्विकार चित्त से दान देते हैं, उसी प्रकार मैं भी किसी यंत्र की तरह भिक्षा दे देता हूँ । याचना के समय याचक का चेहरा देखता हूँ, क्षण भर बाद भूल जाता हूँ । प्रार्थना की ध्वनि कान में पड़ी कि मन की अगोचर जेब में हाथ चला जाता है और बाहर आ जाता है । याचक कृतज्ञता-ज्ञापन कर चला जाता है ! मैं दूसरे कामों में मन लगा देता हूँ ।

आफ़िस के प्रथम दिन की कहानी है । पहली तारीख---महीना पाने का दिन । सन्ध्या के वक्त दरवाज़े के पास खड़े एक व्यक्ति को देखा । आधी उम्र बीत गयी थी । कपड़े पुराने, हाव-भाव ऐसा, जो



⊙

रामपद मुखोपाध्याय

अनुवाद : साग़िर

⊙

दूसरे के हृदय में दया का उद्रेक शीघ्र कर सके। उसके साथ गन्दा फ्रॉक पहने दस-बारह वर्ष की एक लड़की। गन्दा फ्रॉक, फिर भी गठित देह लावण्यमय, आभापूर्ण। किशोरावस्था में पाँव रखा है, दरिद्रता उसके नव अंकुरित सौन्दर्य को सम्पूर्ण ग्रस नहीं सकी है। भोजन और वस्त्र के अभाव में भी चेहरे पर स्निग्ध आभा। सूखे बालों की एक लम्बी चोटी पीठ पर लटक रही थी। आँखें उज्ज्वल, दीप्त, चेहरे पर कोमल-श्री, हाथ-पैर का गठन शिशिर की सलोनी लता-सा। उम्र के भार से बूढ़े का शरीर कुछ झुक गया था, मुख पर दीनता की छाप। लड़की की दृष्टि में कौतुहल। चाल में एक विचित्र तनाव। बूढ़े के साथ हाथ फैलाने के समय भी वही तनाव।

बूढ़े के साथ लड़की हमलोगों के टेबुल के सामने आ गयी। बूढ़े ने अपने खुरदुरे हाथ से लड़की के कोमल हाथ को लेकर हमलोगों के सामने कर दिया। कोई प्रार्थना नहीं की। सिर्फ़ दोनों निस्तेज आँखें दाता के चेहरे पर टिक गयीं। उन आँखों में याचना की दीनता, अल्पाहार क्लिष्टता, न पाने की निराशा कुछ भी नहीं झलकी। सिर्फ़ कौतुहल-रश्मि अथवा कौतुक-रंग-जैसी कोई वस्तु चमक उठी। प्रथम बार लक्ष्य नहीं किया। यांत्रिक नियम के अनुसार सबों की तरह मैंने भी आना-दो आना दे दिया।

दूसरी बार देखा। मन में विचार किया। बूढ़े के चेहरे पर कौतुक, कौतुहल का रंग क्यों? जो देता उसके चेहरे की ओर एक बार देखता, कभी उदास कभी प्रसन्न होता। पैसा कम मिला अथवा अधिक इससे उसके चेहरे का भाव परिवर्तित नहीं होता, पहले जैसा कौतुहल अथवा कौतुक-रंग ही रहता।

दूसरे महीने भी यही क्रिया। पैसा अधिक देने से ख़ुशी नहीं होती, कम देकर मुख म्लान नहीं कर पाता।

महीने के बाद महीना। पहली तारीख़। महीना मिलने की तरह सहज रूप से वह भी आने लगा। अनेक उदासीन घटनाओं के साथ यह घटना भी अन्तस्तल में पैठ गयी।

हाँ, पैठ गयी, किन्तु बिल्कुल भूल न सका। यदि भूल जाता तो फिर सहयोगी गजेन की बातों से क्यों चकित हो उठता।

महीने की तीस तारीख़ (जून महीना था)। गजेन बोला—"पहली तारीख़ को जो बाप-बेटी भिक्षा माँगने आते हैं, उनका वास्तविक रूप कल देखा।"

कौतुहल हुआ, पूछा—"किस तरह?"

गजेन बोला—"बस के लिए प्रतीक्षा कर रहा था; वींडेन स्क्वायर के कोने पर उनको भी खड़े देखा, किन्तु पहचानने योग्य नहीं।"

"क्या मतलब?"

"मतलब यह कि उनके पास खड़े होकर मन हुआ अपना हाथ यदि भिक्षा के लिए उन भद्र पुरुष के सामने बढ़ा देता, तभी अच्छा होता। ऊँह, क्या ठाठ-बाट था! शान्तिपुरी धोती, शरीर पर मटका का पंजाबी कुर्ता, पाँव में चकचक अलबर्ट स्लीपर, हाथ में अँगूठी और चाँदी की मूठवाली छड़ी। लड़की का पहनावा भी अच्छा था। एक

सिल्क की साड़ी, हाथ में चूड़ियाँ, गले में हार।"

"ठीक देखा था तो"—विस्मित होकर मैं बोला।

"अभी चश्मा लेने की उम्र नहीं हुई है, समझे।"

"एक व्यक्ति के समान क्या कोई दूसरा नहीं होता?"

"चेहरे में एकरूपता अवश्य होती है, पर दो व्यक्तियों की आँखें अथवा आँखों का भाव एक होता है क्या? लड़की की आँखों में जो पदार्थ तिरता है, उसे किसी दिन देखा है? बच्चे जैसा कौतुहल, चंचल दृष्टि, कभी लक्ष्य किया है? हू-ब-हू वही लड़की। बूढ़े ने अवश्य चेहरे के साथ हाव-भाव भी बदल लिया था।"

"तुम्हें पहचान सका?"

"पहचाना और नहीं भी पहचाना। जब उनके सामने जाकर बोला—'पहचान सके सेन महाशय?' पहले तो वह चौंक उठा। उसके बाद इस तरह का भाव प्रकट किया मानो पहले कभी मुझको देखा ही न हो। इसी समय बस आ गई, मैं चढ़ गया। वे लोग बस में चढ़े नहीं। सोचा, जान-बूझ कर नहीं चढ़े।"

"उसके बाद?"

"उसके बाद...कल उसका हिसाब-किताब सब हो जायेगा। कल तो आयेगा ही।"

"किन्तु, इतनी साधारण घटना, इसके लिए इतना काण्ड करोगे?"

"अवश्य करूँगा। सिर्फ़ पैसे के लिए मन में कुछ नहीं होता, किन्तु हमें ठगेगा क्यों? दुःख नहीं होता क्या?"

"हाँ, पौरुष पर आघात तो अवश्य लगता है। बुद्धि के खेल में हार मारात्मक होती है। रुपये-पैसे की हानि के दुःख से भी अधिक दुःख होता है। 'मैं सबसे बुद्धिमान हूँ' ऐसा भाव हमलोगों के मस्तिष्क में प्रबल रूप से विद्यमान है। इस पर कोई ठग ले, उग्र हो जाना स्वाभाविक है।"

गजेन ने इस घटना में नमक-मिर्च लगा कर आफिस में घूम कर सभी व्यक्तियों को बता दिया। सभी उत्तेजित हो गए।

पहली तारीख़ को वे लोग आये नहीं। गजेन बोला—"देखा, कैसा धोखेबाज है! सोचा होगा अब यहाँ सुविधा नहीं, इसीलिए नहीं आया है।"

छः मास बीत गये। वे लोग नहीं आये। हमलोग प्रायः उन्हें भूल-से गये। आफिस में प्रतिदिन कितने व्यक्ति आते हैं, कितनी घटनाएँ घटती हैं, उन सब को स्मरण रखें तो अवस्था सोचनीय नहीं हो जायेगी?

इस तरह जब हम उन्हें सम्पूर्ण रूप से भूल गये थे तभी एक दिन वही लड़की द्वार के पास आकर खड़ी हो गयी। अकेली लड़की। सात-आठ मास के बाद ऐसा लगा, सिर कुछ लम्बा हो गया है, वेश परिवर्तित। फ्राक छोड़ साड़ी, अधमैली साड़ी; बालों की बेणी नहीं, उसके स्थान पर जूड़ा। हाथ में रबर की दो चूड़ियाँ। लज्जित, सकुचाई मुद्रा में मुख नीचे कर खड़ी है। बिल्कुल परिवर्तित हाव-भाव। किशोरावस्था की लड़की बड़ी शीघ्रता से बढ़ जाती है: सभी अंगों का विकास जल्दी हो जाता है। चाल में अतीत को बाँध रखने की कोई कामना नहीं। इसीलिए, पहले तो हमलोग पहचान ही नहीं

सके। लेकिन गजेन धीरे-धीरे बोला--"वही रे, वही।"

"लेकिन बूढ़ा?"--मैं बोला।

"पास ही कहीं खड़ा होगा"--गजेन बोला।

"अशुभ भी हो सकता है, मर गया हो, तो भी कोई आश्चर्य नहीं।"

"असम्भव। इन लोगों को अक्षय परमायु मिली होती है, अटूट स्वास्थ्य। सोचते हो, भिक्षा माँग कर राख-माटी खाता है, योग-भोग से अकाल मौत मरता है? राम बोलो। ये लोग असली चार सौ बीस होते हैं, दूसरों के सिर पर हाथ फेर कर राजा की तरह रहते हैं।

"इसी प्रकार मैं एक व्यक्ति को जानता हूँ जिसने भिक्षा से घर-द्वार बनाया, जमीन मोल ली और शहर में मकान बना कर राजा की तरह रहने लगा"--विस्तृत वर्णन करने लगा गजेन।

मुझे अच्छा नहीं लगा। बोला--"सभी क्या इसी तरह के होते हैं?"

"अवश्य होते हैं। इनका वर्ग ही अलग है।"

मैं क्रोधित हो उठा। बोला--"कभी नहीं, विश्वास नहीं होता।"

"ठीक है, तो रही बाजी। हारने पर पाँच रुपये का रसगुल्ला खिलाना होगा।"

मैं हँस कर बोला--"किन्तु हार-जीत होगी किस तरह?"

"क्यों? आज ही इसका फैसला हो जाएगा। जब लड़की भिक्षा लेकर चली जायेगी तो हमलोग पीछा करेंगे। बूढ़ा पास ही कहीं छिपा होगा।"

कौतुहल हुआ। बोला--"अच्छा, आज यह भी करके देख लेते हैं।"

हमारे विभाग से भिक्षा लेकर लड़की और भी कई विभागों में घूमी। उसके बाद सड़क पर उतर गयी। गजेन और मैं दोनों चुपचाप उसके पीछे हो लिये।

उसने बड़े रास्ते का मोड़ घूम कर दाहिनी ओर एक गली को पार किया। उसी गली में तीन-चार मकानों के बाद एक लम्बा-चौड़ा रेस्टोरेन्ट है खपड़ैल का। बहुत पुराना रेस्टोरेन्ट और बहुत नामी। कलकत्ते शहर की नींव देने वाला जॉब चार्नाक जब आया था, उसी समय से यह रेस्टोरेन्ट है, जाब चार्नाक की स्मृति में ही इस रेस्टोरेन्ट का नाम पड़ गया चार्नक रेस्टोरेन्ट।.... हमारे आफिस के सबसे पुराने किरानी श्यामदा के मुख से यह कहानी सुनी है। चालीस वर्ष पहले भी यह रेस्टोरेन्ट इसी तरह था एवं ऐसा ही प्रसिद्ध था। आज भी कितने साहेब लोग सुबह चाय पीने यहाँ आते हैं। यहाँ की स्पेशल चाय और चॉप-कटलेट, किसी साहेब के होटल में भी नहीं मिलतीं। हमलोग भी यदा-कदा यहाँ आना नहीं भूलते हैं।

लड़की रेस्टोरेन्ट के सामने आकर खड़ी हो गयी। ज्यों ही खड़ी हुई--पास की गली से एक व्यक्ति निकल आया। गजेन ने मेरे कन्धे को हल्के से दबाया--मैं विस्मित हो उठा। वही वेश, वही भाव-भंगिमा। उसने लड़की के सामने हाथ फैला कर कुछ कहा। लड़की ने भिक्षा में प्राप्त सारे पैसे उसकी हथेली पर रख दिये।

उस बूढ़े के मुख पर हँसी फूट उठी। पैसे जेब के अन्दर डाल सीधा रेस्टोरेन्ट में घुस गया।

गजेन बोला--"कैसा लग रहा है ?"

मैं बोला--"क्या यहाँ भी भिक्षा..."

गजेन हँसा--"दुर, बुद्धू ! स्पेशल चाय और फ्राई-कटलेट सिर्फ हमको-तुमको ही अच्छा लगता है ? नहीं, बहुत लोग पसन्द करते हैं । यही बात है । चलो एक कोने में चल कर बैठ जायँ, जहाँ से हमलोग तो उसे देख सकें, लेकिन वह हमलोगों को न देख पाये ।"

जाने की इच्छा नहीं हुई, किन्तु गजेन खींच ले गया । सोचा--नहीं आने से ही अच्छा होता । आश्चर्य, महीने की पहली तारीख । मनी-बेग भरा रहने पर भी हमलोग महीने भर का हिसाब कर, रसना का रस संचित रखते हैं, और वे लोग (भिखारी एवं लड़की) अनायास डिस पर डिस मँगा रहे हैं । दूकान में जितने प्रकार के खाद्य पदार्थ हैं, सब उसकी टेबुल पर आ रहे हैं, प्लेट पर प्लेट, काँटा, चम्मच, छूरी जैसे दूकान सज रही हो । और आश्चर्य यह कि वे लोग आँख उठा कर किसी तरफ़ नहीं देखते हैं । आमने-सामने बैठे हैं बाप-बेटी । सामने विविध प्रकार के भोजन--वे दोनों एक के बाद एक तश्तरी खींच रहे हैं, और जल्दी-जल्दी खाली कर रहे हैं दोनों । खाने में कैसी अशोभन व्यग्रता है ।

केवल दो चॉप और दो कप चाय लेकर हमलोग बैठे थे । लेकिन हमलोगों के पहले ही उनका भोजन समाप्त हो गया ।

भोजन समाप्त कर, जेब की रेज़गारी से बिल पटा कर वे लोग बाहर चले गये ।

गजेन जल्दी-जल्दी बिल चुका कर उन लोगों के सामने पहुँचा और बोला--"नमस्कार महाशय, पहचान रहे हैं ?"

मैं गजेन के पीछे था । देखा, बूढ़े का मुख सफ़ेद पड़ गया । हकला-हकला कर बोला--"तो...तो सर, आप इस तरफ़ कहाँ ?"

"जहाँ आप आये थे, वहीं । चार्नाक रेस्टोरेन्ट जैसा फ्राई-चॉप कहाँ मिलता है ? बोलिए । ऐसा टेस्ट--आप क्या कहते हैं ।"

बूढ़ा अप्रतिभ हो सिर के बाल खुजलाने लगा । मुख पर हँसी लाने का प्रयास करता हुआ, सूखे गले से बोला--"हाँ, चॉप का टेस्ट अच्छा था ।"

गजेन उस समय निष्ठुर हो उठा । व्यंग्य भरी वाणी में बोला--"दूसरे के सिर पर हाथ फेर कर यदि चाय का प्याला और फ्राई-कटलेट खाया जाय तो टेस्ट उत्तम ही होगा । क्यों ? ठीक है न ?"

वृद्ध क्या बोलता, रो पड़ा ।

गजेन निष्ठुरता से बोला--"शाबाश इस ढोंग के !"

लड़की अवाक हो गजेन की ओर देखने लगी । बाबा को रोते देख उनका हाथ पकड़ कर खींचा । बोली--"चलो बाबा ।"

आँख पोंछते-पोंछते वृद्ध बोला--"उपार्जन नहीं कर पाता, बूढ़ा हो गया हूँ । भिक्षा नहीं माँगूँ तो क्या करूँ ? सच बोलता हूँ बाबू, खाद्य पदार्थों से भरी दूकान को रोज देखता हूँ...चाय की गन्ध, चॉप-कटलेट-भाजी की गन्ध,...मन ठीक नहीं रहता । सिर्फ एक यही दिन है तो ।"

"वाह--क्या खूब सफ़ाई दी है !"

मैं गजेन को खींच कर ले आया । जो कष्ट पाने के लायक है, उसको कष्ट देने में आनन्द होता है सही, किन्तु सब चीजों की मात्रा होती है, सीमा होती है । सोचा,

गजेन वह सीमा पार कर गया है ।

बोला—"उसके साथ बक-बक करने से क्या लाभ ?"

गजेन बोला—"तुम नहीं समझे ! यह लोग समाज के कलंक हैं । इनका सच्चा रूप सबों को दिखाने की आवश्यकता है । सभी समझेंगे, अपात्र को दया-दाक्षिण्य करते हैं । जो वास्तव में दया-भिक्षा पाने योग्य हैं, उनको वंचित करते हैं ।"

इस घटना के बाद बाप-बेटी हमलोगों के दफ्तर में नहीं आये । धीरे-धीरे हमलोग भी उन्हें भूल गये ।

पूरे बारह वर्ष बाद । तब शहर में रहने लगा था । एक दिन हमारे यहाँ एक आत्मीया आईं । साथ में वयस्का कन्या । लड़की विवाह योग्य कब की हो चुकी थी, किन्तु आत्मीया महिला असमर्थ थीं, उसकी शादी करने में । उसी के विवाह के लिए वह लड़की को लेकर परिचित लोगों के—दूर के अथवा नज़दीक के रिश्तेदारों के यहाँ घूमती हैं । इसी तरह पिछले कुछ दिनों से घूमती रही हैं ।

विवाह के समय उन्हें देखा था । उसके बाद नहीं देखा । स्त्री के ख्याल में भी नहीं आता—कौन सम्बन्ध है उनका...मौसी जैसी लगती हैं । जो हो, किसी से हमारा पता-ठिकाना लेकर सकन्या हमारे यहाँ आ गयीं । बोलीं—"मेरे सभी अपने हैं । इस लड़की के विवाह के लिए सभी द्वारों पर हाथ पसारती हूँ । तुम लोगों की दया से इसका विवाह हो जाय, तब मैं बाबा विश्वनाथ के चरणों में जा पड़ूँ ।"

तीन दिन हमारे यहाँ रहीं । तीन दिन में ही ऊब गया, उनलोगों की फ़रमाइश से । जहाँ बाजार जाने के लिए थैला हाथ में लिया कि आकर बोलीं—"हाँ, यहाँ पर गाँठ गोबी आती है ? एक लेते आना तो । कितने दिनों से नहीं खायी ।"

कुछ रुक कर बोलीं—"पकी रोहू मछली यदि मिले तो वह भी लेते आना । लड़की कितने दिन से..."

बगल वाले घर से उसकी लड़की शीघ्रता से बाहर आई और बोली—"माँ सुनो" माँ को और बातें कहने का बिना अवकाश दिये खींचते-खींचते घर के भीतर ले गयी ।

किन्तु वह बेचारी कितने समय तक माँ को रोक कर रखेगी ! उनकी इच्छानुसार दसवीं की रात को छेना लाना पड़ा, उसके साथ रबड़ी । द्वादशी को केला, सन्देश और रसगुल्ला । भात के साथ चीनी-दही दो दिन चला ।

आखिर मैं पत्नी से बोला—"अच्छी आत्मीया आई हैं !"

पत्नी बोली—"यहाँ दो दिन ही तो रहेंगी । अच्छी-अच्छी वस्तुएँ खरीद कर उसे कौन खिलाता, बोलो ? गरीब मनुष्य को अच्छी चीजें खाने की इच्छा नहीं होती क्या ? यह अन्याय है ? ईश्वर ने अक्षय खाद्य-पदार्थों की सृष्टि की, लेकिन साथ ही मनुष्यों के मन में लोभ भी दे दिया ।"

बोलते-बोलते सामने के घर की ओर देख कर हँस पड़ीं ।

क्रोध से सारा अंग जल उठा । बोला—"तुमको हँसी सूझती है, जानती हो, आज महीने की कौन तारीख है ?"

पत्नी हँसी रोक कर बोलीं—"क्यों हँसती हूँ, देखोगे । आओ—घर में आओ ।

और जरा पास आ जाओ।" बोल कर मेरा हाथ पकड़ रसोई घर की छोटी खिड़की के पास खड़ा कर दिया। बोली--"सामने दृष्टि डाल कर देखो तो। देखो--"

देखा।

छोटी गली के उस पार तीन-मंजिला मकान। पुराने युग का। एक घर जिस पर हँसी नहीं फूटती। हमारे रसोई घर के सामने जो घर है,--धूएँ से काला, गन्दा। घर में सभी जगह फैले जाले ने शोभा ही बिगाड़ दी है। रैक, सेल्फ़, दो-चार बरतन। उसी काले घर में काला, चीकट पकड़ा पहने उस घर का ब्राह्मण-ठाकुर जो हाँड़ी, कलशी, हाथ में कलछुल और चूल्हे के साथ प्रतिदिन मल्लयुद्ध करता है।...आज दूसरा ही दृश्य देखा। भोजन हो गया है--दरवाज़े भिड़े हुए हैं। दीवार की ओर मुँह कर ब्राह्मण-ठाकुर कुछ चबा रहा है। चबा नहीं रहा है, बल्कि जल्दी-जल्दी गले में उतार रहा है। मुँह में डाल रहा है और कभी-कभी भिड़े हुए दरवाज़े की ओर भी देख लेता है। वह सब खाने के बाद सामने रखा एक प्लेट (स्पष्ट देखा चॉप से भरा हुआ प्लेट) हाथ में उठा लेता है।

पत्नी हँस कर बोली--"देखा। यदि खाने को मिलता तो कभी चोरी करता? कभी नहीं। अपने हाथों सुन्दर-सुन्दर चीज पका कर सबों को खिला कर परितृप्त करता है और उसको क्या मिलता है, सिर्फ दाल और एक तरकारी। यह तो सर्वत्यागी संन्यासी नहीं है।"

हठात् बारह वर्ष पहले की एक घटना आँखों के सामने नाच उठी। वही बूढ़ा और उसकी किशोरी कन्या जो नित्य नया रूप धारण कर हमलोगों के सामने से गुज़रते हैं। उनकी संख्या अनेक है। उनको हटा कर हमलोग किस रास्ते से जायँ, कैसे उन्हें भूलें?

⊙ ⊙

सूचना

लेखकों से सूचनार्थ निवेदन है कि केवल स्वीकृत रचनाओं की ही सूचना दी जाती है, और केवल वही अस्वीकृत रचनाएँ लौटायी जाती हैं जिनके साथ आवश्यक टिकट होता है

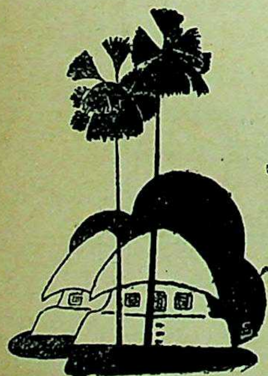
--सम्पादक

विष्णुकान्त शास्त्री

जा रहे हो, आज मन के मीत!
चार दिन की चाँदनी सचमुच गयी क्या बीत?
कौन, कब, बोलो, रुका है सुन किसी की आह?
दर्द ही देती सदा परदेशियों की चाह!

मैं न रोकूँगा तुम्हें, निर्भय रहो तुम,
गन्ध शीतल सहज उस दक्षिण पवन से,
पुलक जन-जन में भरो, पुलकित बहो तुम।
सिर्फ इतना ही कहूँगा, बन्धु,
आभारी तुम्हारा, तप्त यह मरुथल,
कि जिसकी ओर करुणा से भरा झोंका,
न जाने क्यों बहा तुमने दिया,
कि जिसको दे गये मुसकान का सम्बल!
आभारी तुम्हारा, तप्त यह मरुथल!!

जानता हूँ, भूल जाओगे मुझे तुम,
पंथ के उन अनगिनत मित्रों सरीखे,
कि जिनके साथ हम हँसते, उलझते, खेलते हैं,
किन्तु जिनसे हृदय लेता है बिदा,
बिना पीड़ा, बिना कसके!



पर, तुम्हारी मधुर स्मृति का,
जो विहँसता कमल इस मरु में खिला है,
वह सदा अम्लान रहेगा।
चाहता हूँ, काश, तुम भी जान यह पाते!

सिर्फ इतना ही



सूर्यनारायण सक्सेना

कुछ ऐसी सूचनाएँ जिनकी जानकारी हर भारतवासी के लिए अनिवार्य है।

⊙ ⊙ ⊙

साहित्य का इतिहास जिन अनेक प्रमाणों के आधार पर लिखा जाता है, उनमें एक प्रमुख आधार होता है पांडुलिपियाँ। यह आधार भी एकदम निर्विवाद नहीं होता। पांडुलिपि भी मिल गई तो यह निश्चय करना सरल नहीं कि यह वास्तव में लेखक की लिखी है या बाद के किसी व्यक्ति की। इसी कारण भारत की प्रायः हर भाषा के प्रथम कवि या लेखक के बारे में विवाद और मतभेद है। फिर भी अधिकतम सहमति या प्रचलित मान्यता के आधार पर यहाँ देश की तेरह भाषाओं के आदि ग्रंथों और ग्रंथकारों के बारे में जानकारी संग्रहीत की गई है।

असमिया

असमिया का विकास भी अन्य भारतीय आर्य भाषाओं के समान अपभ्रंश से हुआ है। अतः असमिया के आदिकाल की रचनाएँ अपभ्रंश-मिश्रित हैं। असमिया के प्राचीन लोकगीतों को छोड़ कर प्रथम रचना हेम सरस्वती का **'प्रह्लादचरित'** है। यद्यपि विप्र हरि भी हेम सरस्वती के समकालीन लेखक हैं, फिर भी 'प्रह्लादचरित' उनकी रचनाओं 'बभ्रुवाहनर युद्ध' और 'लवकुशर युद्ध' से पुराना माना जाता है। हेम सरस्वती का काल १४वीं शताब्दी माना जाता है और ये राजा दुर्लभ नारायण के आश्रित थे। 'प्रह्लाद-

भारत के ये आदि ग्रन्थ और ग्रन्थकार

चरित' संस्कृतनिष्ठ प्रांजल असमिया का नमूना है। यह वामन पुराण की एक कथा पर आधारित है। हेम सरस्वती की इतनी पुरानी दूसरी वृहद् रचना 'हरगौरी संवाद' है।

उड़िया

उड़िया की आरम्भिक रचनाएँ कुछ गीत और व्यंग रचनाएँ हैं। लेकिन उड़िया भाषा और साहित्य को निखारने का श्रेय सारलादास को है। सारलादास उड़ीसा की 'चास' जाति के कृषक थे। इन्होंने विद्वान् ब्राह्मणों के मुँह से महाभारत की कहानियाँ सुनकर **'उड़िया महाभारत'** जैसे महान् महा-काव्य की रचना कर डालीं। इनका मूल नाम सिद्धेश्वर परिला था। इनके वंशज आज भी पुरी जिलेके नेन्तुलीपदा नामक छोटे-से गाँव में रहते हैं। सारलादास के उड़िया महाभारत के अध्यायों का क्रम मूल महाभारत के १८ पर्वों के क्रम से भिन्न है। आखिर सुनी-सुनाई सामग्री को लिपिबद्ध करने में इतना अन्तर पड़ जाना स्वाभाविक है।

उर्दू

कुछ समय पहले तक अमीर खुसरो उर्दू के प्रथम कवि और उनकी पहेलियाँ और मुकरियाँ उर्दू की प्रथम कविता कही जाती थीं। पर खुसरो की रचनाओं की कोई मूल प्रति न मिलने और इस खोज के आधार पर कि खुसरो नाम के कई कवि हुए हैं, खुसरो के उर्दू के प्रथम कवि होने में सन्देह है। खुसरो के बाद उर्दू के ऐसे कवि जिनका दीवान उपलब्ध है, गोलकुंडा के प्रसिद्ध काव्यप्रेमी शाह कुली कुतुब शाह हैं। इनके मूल दीवान **'कुल्लियात'** में एक लाख शेर हैं; यह दक्षिण हैदराबाद में सुरक्षित है और प्रकाशित हो चुका है। कुली कुतुब शाह और इनके कुल्लियात का समय १५६० ई० से १६११ ई० है। दक्षिण में ही इनसे पहले की गद्य-रचना ख्वाजा बन्दा नवाज़ गेसू दराज़ (१३२० ई०–१४१२ ई०) की **'मिराजुल आश्कीन'** है। यह भी प्रकाशित हो चुकी है। इस प्रकार यह कहना कठिन है कि उर्दू भाषाका प्रथम कवि या लेखक कौन है।

कन्नड़

कन्नड़ की प्राचीनतम उपलब्ध रचना प्रायः निर्विवाद रूपसे **'कविराजमार्ग'** मानी जाती है। इसके रचयिता राजा नृपतुंग का दूसरा नाम अमोघवर्ष भी था। ये मान्यखेट के राष्ट्र कूटवंश के शासक थे और इन्होंने ८१४ से ८७७ ई० तक राज किया। 'कवि-राजमार्ग' छान्दस कन्नड़ का रीतिग्रंथ है। नृपतुंग ने स्वयं अपने पूर्ववर्ती कवियों और गद्यलेखकों के नामों का भी उल्लेख किया है पर उनकी कृतियाँ उपलब्ध न होने के कारण कन्नड़ का प्रथम काव्यग्रंथ 'कविराजमार्ग' ही माना जाता है।

कश्मीरी

कश्मीरी भाषा के प्रथम दर्शन १३वीं शताब्दी के कवि शितिकंठ के **'महानय प्रकाश'** में होते हैं। यह 'महानय प्रकाश' तांत्रिक शैव-सम्प्रदाय की कश्मीरी शाखा का ग्रंथ है इस ग्रंथ की कश्मीरी संस्कृत की अपेक्षा अपभ्रंश के अधिक निकट है। कश्मीरी का प्रथम प्रबन्ध काव्य महावतार का 'बाणासुर वध' है। यह हरिवंश के आधार पर १५वीं शताब्दी में जैनुलाबिदीन बडशाह के शासन काल में लिखा गया।

गुजराती

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुन्शी ने अपने 'गुजराती और उसका साहित्य' ग्रंथ में शालिभद्र के '**भारतेश्वर बाहुबलिरास**' को गुजराती का आदिग्रन्थ माना है। यह वीर-गाथात्मक रचना है जो १२०० ई० के आस-पास रची गयी थी। प्रायः इसी समय १२३२ ई० की गुजराती के शैशवकाल की कृति विजयसेन का 'रेवन्तगिरिरास' है। पर गुजराती की प्रथम प्रौढ़ रचना पद्मनाभ का 'कान्हड़ दे प्रबंध' है जो १४५६ ई० में लिखा गया। यह वीर रसप्रधान काव्य का अनुपम उदाहरण है। इसमें झालौर के राजा कान्हड़ दे की अलाउद्दीन से टक्कर लेने और अपने पुत्र सहित वीरगति को प्राप्त होने तथा राजपूत ललनाओं के जौहर का मार्मिक वर्णन है।

पंजाबी

महमूद गजनी के पुत्र मसूद के दरबारी कवि मसूदुस्सलमान और सूफी सन्त फरीदुद्दीन गंजेशकर उपनाम '**बाबा फ़रीद**' पंजाबी के आदि साहित्यकार हैं। बाबा फरीद के श्लोक उपलब्ध हैं। इनके श्लोक सूफियों के प्रकृत उन्माद से ओतप्रोत हैं और इनकी भाषा पर फ़ारसी और लहंदी का काफी प्रभाव है। बाबा फरीद का जीवनकाल ११७३ ई० से १२६५ ई० है। पंजाबी का विकसित और निखरा रूप 'आदि ग्रंथ' में देखने को मिलता है। इसकी एक पाण्डु-लिपि भी मिली है। आदि ग्रंथ को, गुरु अर्जुन देव की इच्छा से भाई रामदास ने १६०४ ई० में लिपिबद्ध किया।

बंगला

बंगला की प्राचीनतम रचनाएँ बौद्ध सिद्धाचार्यों के '**चर्यागीत**' ही कहे जाते हैं। गीतकारों का नामोल्लेख नहीं मिलता। बंगला के प्रथम ज्ञात कवि चंडीदास हैं जिनके नाम से कौन भारतवासी परिचित न होगा। १४वीं शताब्दि के मध्य में चंडीदास ने राधाकृष्ण विषयक एक हजार गीत लिखे। भक्तों में इनका स्थान सूरदास के समान है। 'श्री कृष्ण संकीर्तन ग्रन्थ' नामक एक और रचना इन्हीं की कही जाती है, पर निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि इसके रचयिता चंडीदास ही हैं।

तमिल

तमिल का प्राचीनतम उपलब्ध साहित्य '**संघम साहित्य**' है। इसका अधिकांश किसी जलप्लावन के कारण नष्ट हो गया है, फिर भी ३८१ पद्य मिलते हैं। इनमें से कुछ पद बहुत छोटे ३ पंक्तियों के और कुछ ७८२ पंक्तियों तक के लम्बे गीत हैं। इनको लिखने वाले अनेक कवि-कवयित्रियाँ थीं। बहुतों के नाम भी मिलते हैं, पर इनका क्रम सुनिश्चित नहीं। संघम साहित्य का रचनाकाल ५ ई० पू० से २०० ई० पू० माना जाता है। ये पद्य दो प्रकार के हैं—(१) अंकम अर्थात् शृङ्गारप्रधान गीत और (२) पुरम अर्थात् वीररसप्रधान युद्धवर्णन आदि।

तेलुगू

तेलुगू का प्रथम उपलब्ध काव्य '**तेलुगू महाभारत**' है और इसके रचयिता हैं कवि नन्नय। नन्नय गोदावरी के तट पर राजमंद्री के चालुक्यवंशी शासक राजराज नरेन्द्र के राज-

कवि थे और इन्होंने अपने राजा की आज्ञा से संस्कृत महाभारत का तेलुगू में अनुवाद किया। सम्भवतः नन्नय महाभारत के आदिपर्व, सभापर्व और अरण्य पर्व तक का अनुवाद कर पाये थे, तभी उनकी मृत्यु हो गयी। शायद इनके मित्र नारायण भट्ट ने इनका शेष कार्य पूरा किया। १०६३ में राजराज नरन्द्र की भी मृत्यु हो गयी। अतः यह रचना इसी काल के कुछ इधर-उधर की है।

मराठी

महाराष्ट्री अपभ्रंश से आधुनिक मराठी भाषा का विकास हुआ है। संधिकाल में अवश्य कुछ फुटकर कविताओं और गीतों आदि की रचना हुई होगी, पर मराठी का प्राचीनतम ग्रंथ **'ज्ञानेश्वरी'** है। इसके रचयिता भारत के मूर्धन्य संत ज्ञानेश्वर थे। इस ग्रंथ का समय १२९० ई० है। ज्ञानेश्वरी गीता की मराठी टीका है। यह काव्य संस्कृत में नहीं शुद्ध मराठी छन्दों (ओवी) में लिखा गया है।

मलयालम

मलयालम **'रामचरितम्'** अभी कुछ समय पहले इस भाषा का प्राचीनतम ग्रंथ माना जाता था, पर अब इसकी प्राचीनता संदिग्ध हो गई है। इसके लेखक चीरामन कवि माने जाते हैं। मलयालम का अलंकार और व्याकरण ग्रंथ 'लीलातिलकम्' भी इस भाषा के प्राचीनतम ग्रन्थों में है। इसके कवि का नाम भी ज्ञात नहीं। इसका रचनाकाल १४-१५वीं शताब्दी है।

हिन्दी

'पृथ्वीराज रासो' की प्रामाणिकता संदिग्ध हो जाने पर अब हिन्दी के प्राचीनतम ग्रंथ और ग्रंथकार का निर्णय हिन्दी-पाठक स्वयं ही करें तो बेहतर हो।



पागल की पहचान बताने वाला प्रश्न

एक टेलीविजन-प्रतिनिधि ने इण्टरव्यू के समय एक विख्यात मानसिक रोग-चिकित्सक से पूछा—"डाक्टर, आप कैसे कह सकते हैं कि अमुक व्यक्ति वास्तव में पागल है ही?"

"यह तो बहुत आसान है। मैं उस व्यक्ति से इस प्रकार के प्रश्न पूछूँगा जिनका उत्तर कोई भी स्वस्थ व्यक्ति बिना किसी कठिनाई के दे सकता है।"

"वे प्रश्न किस प्रकार के हैं? एक-आध उदाहरण दें।"

"मसलन"—चिकित्सक ने उत्तर दिया—"कैप्टन कूक ने पृथ्वी के चारों ओर तीन बार सामुद्रिक-यात्रा की। अपनी किसी एक यात्रा में उनकी मृत्यु हो गयी—बताइये, वह कौन-सी यात्रा थी?"

"इसका उत्तर भला एक साधारण व्यक्ति कैसे दे सकता है"—प्रतिनिधि ने कहा—"इसकी जानकारी के लिए तो इतिहास का अच्छा ज्ञान होना आवश्यक है।"

चिकित्सक आश्चर्य से टेलीविजन-प्रतिनिधि के मुँह की ओर देखने लगा।

ज्ञानोदय का वार्षिक विशेषांक

अक्तूबर, १९६१

भारतीय परिवार अङ्क

ज्ञानोदय के विशेषांक प्रतिवर्ष भारतीय पत्रकारिता के इतिहास में सदा ही नया और अद्वितीय अध्याय जोड़ते रहे हैं :—

- ० १९५५—एशिया अंक
- ० १९५६—आधुनिकता अंक
- ० १९५७—संस्मरण अंक
- ० १९५८—प्रणय अंक
- ० १९५९—विज्ञान अंक
- ० १९६०—भारतीय इतिहास कथा अंक

और अब १९६१ में

भारतीय परिवार अङ्क

हमारा प्रयत्न होगा कि विशेषांक में अधिक से अधिक मूल्यवान, रोचक और उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करें। शीर्षकों की कल्पना प्रस्तुत है :—

१. भारतीय परिवार : इतिहास की ओट में (प्रागैतिहासिक भारतीय परिवार)
२. भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रों में परिवार
३. वैदिक परिवार की झाँकी
४. जहाँ आज भी माताएँ राज करती हैं
५. परिवार के प्रतीक—हमारे शब्दों का वैभव

६. अतीत के रंग :

क. वाणी का व्यापार--ब्राह्मण परिवार

ख. प्रत्यञ्चा के छन्द--क्षत्रिय परिवार

ग. वसुधा के खिलाड़ी--वैश्य परिवार

घ. सेवा धर्मः परम गहन--शूद्र परिवार

७. पाण्डु का परिवार :

क. पुराणकार की दृष्टि में

ख. इतिहासकार की दृष्टि में

८. रामायण का युग : (पारिवारिक चित्र)

९. राजपूतों की परिवार-गाथा : भेरी और मृदंग की गूँजों में

१०. गाँव की गोरी--युवकों की दृष्टि में (पारिवारिक प्रतिक्रियाएँ)

११. हरम की पृष्ठभूमि में मुग़ल परिवार की महिला

१२. सम्बन्धों का असन्तुलन :

क. परिवार उजड़ गये

ख. तख्त उलट गये

१३. विवाह की धुरी पर परिवार का चक्र :

क. एक पति--एक पत्नी

ख. एक पति--अनेक पत्नियाँ

ग. एक पत्नी--अनेक पति

१४. परिवार का आधार :

क. पति-पत्नी

ख. भाई-बहन अथवा मामा

१५. परिवार का मुखिया--तब और अब

१६. भारत में कम्यून परिवार--अतीत, वर्तमान और भविष्य

१७. परिवार की प्रतिध्वनियाँ--साहित्य में :

ननद-भौजाई, सास-बहू, देवरानी-जेठानी, समधी-समधिन, देवर-भाभी आदि

१८. लोकगीतों में परिवार
१९. परिवार का विघटन : समस्या और समाधान
२०. **नयी घाटियाँ : नयी गूँजें :**
(पति और पत्नी के विभिन्न कार्यक्षेत्र, दायित्व और अधिकार)
२१. स्वावलम्बिनी नारी
२२. आँचल में है दूध और आँखों में पानी
२३. प्रकृति के ये विद्रूप : हीजड़ों की समस्या
२४. जब विभाजन की विभीषिका परिवार ने झेली
२५. **पारिवारिक पृष्ठभूमि--समस्याएँ और समाधान :**
आधुनिक साहित्य में परिवार :
क. कथा साहित्य
ख. नाटक साहित्य
२६. भारतीय परिवार--प्रदेशों के दर्पण में
२७. दक्षिणांचल का परिवार--उत्तरांचल के परिवार के यहाँ अतिथि
२८. भारतीय परिवार--पर्यटकों की दृष्टि में
२९. भारतीय परिवार--आधुनिक मनोविज्ञान की दृष्टि में
३०. **विवाह-विच्छेद :**
क. मनु से अम्बेडकर तक
ख. मानव मन की गुत्थियाँ
३१. घर से पागलखाने तक : परिवार के विषाक्त सम्बन्ध
३२. चित्र-विचित्र (पारिवारिक प्रथाएँ)
३३. बराती और घराती : विवाह के अवसर पर
३४. रुचियों का सामंजस्य--एक पारिवारिक समस्या
३५. परिवार-नियोजन : एक परिचर्चा
३६. परिवार के अंग : अपनी-अपनी दृष्टि
३७. शिक्षा की समस्या : एक पारिवारिक गोष्ठी
३८. दीर्घायु--दूभर पल
३९. ये पति--ये पत्नियाँ

४०. परिवार की परिकल्पना (विभिन्न राजनैतिक और सामाजिक वादों की दृष्टि में)
४१. भारतीय विधवा——तब और अब
४२. परिवार में अतिथि : नये प्रश्न, नये समाधान
४३. देसी परिवार में विदेशी बहू : सामंजस्य की समस्या
४४. सुखी परिवार : परिकल्पनाएँ
४५. आदिम जातियों के परिवार
४६. फ़िल्मी गीतों में भारतीय परिवार

इस विशेषांक के लिए हिन्दी के प्रायः सभी मूर्धन्य लेखक रोचक शैलियों में रचनाएँ लिख रहे हैं। अपनी प्रति आज ही सुरक्षित करवा लें।

इस अंक का मूल्य : २) रुपये मात्र

हमारे कलकत्ता कार्यालय को लिखकर तत्काल वार्षिक ग्राहक
बनने वालों के लिए यह अंक ७७ नये पैसे में
प्राप्त हो सकता है। आज ही लिखें :

ज्ञानोदय-कार्यालय

१८-बी, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता-१

प्रमुख वितरक : बेनेट कोलमैन एण्ड कम्पनी, लिमिटेड, बम्बई-१

लक्ष्मीकान्त वर्मा

एक बहुत व्यापक कैनवास पर अंकित कहानी जिसमें एक साथ करुणा की तरलता और व्यंग्य का तीखापन दोनों समान मात्रा में घुले-मिले हैं, इसीलिए यह एक ओर जहाँ आपको विगलित कर देती है वहीं दूसरी ओर तिलमिलाये बिना भी नहीं छोड़ती।

● ● ●

हाँ, तो मैं मर चुका हूँ। मर चुकने की सूचना से किसी को कोई आश्चर्य क्यों हो? आखिर मेरे हाथ में पोटेशियम साईनाईट की शीशी है, एक लेटर पैड है, कलम है और रात भी आधी से ज़्यादा बीत चुकी है, कमरे की पीली क्षयी बिजली की रोशनी भी आने वाली सुबह से आतंकित हो सिकुड़ी जा रही है और दूर अँधेरे में जाने कैसी खट-खट-खट की आवाज़ें गूँज रही हैं...... और मैं मर चुका हूँ....मेरी आँखों के सामने एक अँधेरा है जो बिल्ली के बच्चे की तरह म्याऊँ-म्याऊँ करता मुँह चिढ़ाता मेरी ओर बढ़ता आ रहा है...... मैं केवल उसकी मुखाकृति ही देख रहा हूँ...इन पत्थर-सी आँखों से देख रहा हूँ....केवल देख रहा हूँ....कुछ भी सुनाई नहीं पड़ रहा है....कुछ भी तो नहीं सुनाई पड़ रहा है....न तो नीलिमा की चीख, न क्रिस्टी की आवाज़, न शोभा को हँसी...न बच्चे की चीख, न दर्द.... न पीड़ा, न अस्पताल की घंटियाँ और न हारी-थकी फरियाद....अभी कुछ क्षणों में मैं मौन होकर लेट जाऊँगा....हर आने वाली बात या तो रुक जायगी या बिना मुझे छुये हुए मेरे ऊपर से गुज़र जायगी....मैं बिल्कुल निरपेक्ष-सा पड़ा रहूँगा....बिल्कुल ही निरपेक्ष-सा......



लेकिन मैं पोटेशियम साईनाईट को ज़बान पर क्यों नहीं रख रहा हूँ? शायद इसलिए कि सामने पड़े हुए कागज़ पर कुछ लिखना चाहता हूँ लेकिन मैं कुछ लिख क्यों नहीं रहा हूँ? शायद नीलिमा आज रात आने वाली है ...लेकिन नीलिमा भी आ क्यों नहीं रही है? मुमकिन है उसे क्रिस्टी ने रोक लिया हो।....लेकिन क्रिस्टी और शोभा की दुश्मनी

जो है......बेकार की दुश्मनी....शोभा क्रिस्टी से तो कुछ कहती भी नहीं फिर यह दुश्मनी क्यों....? अभी उस दिन तो वह दोनों ही बड़े ज़ोर-ज़ोर से हँस रहीं थीं। फिर यह नाराज़गी कैसी ? यह मनमुटाव कैसा ?

उस दिन तो वह दोनों मेरे साथ थीं। मैंने शोभा को एकदम अपनी बाँहों में कस लिया था और वह एकदम मेरी बाँहों में बेलौस स्निग्ध छाया-सी काँप गयी थी। उसकी आँखें दया की याचना करने लगी थीं, ओठ कम्पित हो गये थे, पलकें बन्द हो गई थीं। उसे पसीना आ गया था। उसके नर्म-नर्म माथे पर जाने कैसी बूँदों की कतारें जमा हो गई थीं......लगता था जैसे वह बेहोश हो जायगी....लेकिन क्रिस्टी के साथ तो यह नहीं था.....उसके पहले भी मैंने कई बार उसकी कलाई पकड़ कर उसे बिल्कुल अपने समीप तक खींच लिया था......वह विरोध करती-सी हाथ छुड़ाने की कोशिश करती थी। उसकी भवें तन जाती थीं, आँखें विवशता से लाल हो जाती थीं......वह मुझसे दूर चली जाती थी....जैसे वह मुझे घृणा करती थी.....पशु समझती थी......एक खौफ़नाक, कठोर प्राणी समझती थी......वह मुझसे दूर हो जाती थी......

और मैं अपने को ढूँढ़ने लगता था। इन दोनों के बीच मैं कहाँ हूँ ? कहाँ था ? मैं क्या चाहता था ? क्या शोभा की निरीहता मुझे प्रिय थी ? क्या क्रिस्टी का विद्रोह मुझे प्रिय था ? क्या मैं मनुष्य था ? क्या मैं पशु था ? मैं क्या था उस समय ? और मैं क्या हूँ इस समय ? किसका हूँ ? क्यों हूँ ? नर्म बेंत-सा हर तरफ़ झुकने वाला भी तो मैं नहीं हूँ......पोटेशियम साईनाईट की शीशी लेकर बैठा हुआ मैं और शोभा की साँसों से साँसें मिला कर तीव्र गतिगामी मैं ? क्रिस्टी के विद्रोह को भी स्वीकार करने वाला मैं ? मैं कौन हूँ ? कहाँ हूँ ? क्यों हूँ......सोचता हूँ तो लगता है मैं थका हुआ हूँ......चूर-चूर....एकदम हारा हुआ.....केवल थका.......बोझिल...अनमन....

लेकिन नीलिमा को विश्वास नहीं होता कि मैं कभी भी आत्महत्या कर सकता हूँ...उसने उस बार भी कहा था––"तुम पागल हो सकते हो......लेकिन आत्महत्या नहीं कर सकते......?"––लेकिन उसने क्यों कहा था यह सब ? क्या वह यह नहीं जानती कि मैं चाहूँ तो आत्महत्या भी कर सकता हूँ ? आज इस क्षण मुझे कौन रोकने वाला है ? यह सामने पड़ा लेटर पैड, यह

क़लम....यह रोशनी......यह दूर से टकरा कर आने वाली अन्धकार में लिपटी हुई आवाज़ें दस्तकें...आहत आवाज़ें......मूकें ..चोटें....

लगता है यह कागज़ भी कहीं मेरी दुर्बलता बन रहा है....मैं बिना इसको फाड़ कर फेंके और क़लम को तोड़े यह हाथ की शीशी नहीं पी सकता। इस लेटर पेपर का प्रत्येक पृष्ठ, हवा में फड़फड़ा कर मुझे अकस्मात नीलिमा की हँसी की याद दिलाता है। वह भी क्यों? शायद वह मुझे शोभा, क्रिस्टी से अधिक जानती है? शायद वह कहीं मेरे अन्तरतम में छिप कर मेरे भीतर पर्दे में होते हुए अतिरेक और भाव-विह्वलता को अधिक यथार्थ रूप में जानती है। नीलाकाश के नीचे उस दिन उसने मेरा नंगा रूप देख लिया था। नैनीताल की पहाड़ियों पर हम दोनों चढ़े जा रहे थे....नीचे घाटियों में बादल उतरे आ रहे थे....रेंगते हुए छोटे बौने बादल....लगता था जैसे कोई भाप की गठरी लिये चला जा रहा था और सहसा उस गठरी की गाँठ खुल गयी और सारा भाप बिखर गया....उन पहाड़ी टीलों पर कोई नहीं था। केवल मैं था और नीलिमा थी....नीलिमा का पैर फिसल गया था....नहीं उसने जान-बूझ कर अपना पैर फिसला दिया था....मैंने उसके हाथ को पकड़ लिया था, उसे ऊपर उठा लिया था......उसके हाथ से हाथ मिलते ही जाने कैसी बिजली दौड़ गई थी मेरे मन में......वह भी मुझसे एकदम चिपक गई थी......उसने मुझे कस कर पकड़ लिया था... मैं चौंक-सा पड़ा था.....मैंने कहा था—"नीलिमा, पीछे ममी आ रही है....क्या कहेंगी....छोड़ो..." लेकिन जैसे वह जानती थी कि कोई नहीं आ रहा था....मैं जैसे काँपा जा रहा था। मैंने उसके दोनों हाथों को झंझोड़ कर छुड़ाया था....इस झटके में वह गिर पड़ी थी और बड़ी आर्द्र आँखों से मुझे देखने लगी थी....लेकिन दूसरे ही क्षण उसकी समस्त आर्द्र भावना जैसे किसी वितृष्णा में बदल गई थी। वह मुझे एकदम कुचली हुई नागिन-सी देखने लगी थी.....लगता था वह अपनी आँखों ही आँखों में मुझे पी जायेगी...मुझे ज़िन्दा निगल जायेगी....और अगर नहीं निगलेगी तो भी वह बारह बरस बाद बदला लेगी......लेकिन फिर भी मैंने उसका हाथ पकड़ कर उसे उठाना चाहा....उसने भी मुझसे अपना हाथ छुड़ा लिया था। वह स्वयं अपने आप उठने लगी थी लेकिन उठ नहीं पा रही थी। दो बार उठ-उठ कर गिरने के बाद वह गिर पड़ी....और फूट-फूट कर रोने लगी... वह पैर पकड़ कर बैठ गई....मुझे लगा जैसे उसके पैर में चोट है....मैंने उसे अपने दोनों हाथों में उठा लिया....वह चीखती रही लेकिन मैं उस पहाड़ी चोटी से उसे लेकर नीचे उतरा। उसकी ममी उसके साथ थीं। नीचे आने पर पता चला कि उसका पैर टूट गया है। तभी से वह लँगड़ाती है....आज भी उसका पैर ठीक नहीं हुआ है। वह आज भी लँगड़ा-लँगड़ा कर चलती है....मैं जब कभी भी उसे देखता हूँ तो लगता है जैसे मैंने ही उसकी टाँगें तोड़ी हैं....केवल मैंने......

और आज वह वर्षों बाद आने वाली है। पिछली बार जब वह आई थी तब भी उसमें कोई परिवर्तन नहीं आया था। वह वैसी ही थी। उसी प्रकार भावुक, क्षण-क्षण पर रोमांच से विगलित होने वाली.....क्षण-क्षण रोमांच से उसकी आँखें भर आती थीं! मैंने पूछा था, "इतनी रात गये मेरे यहाँ क्यों आयी हो.....कोई देख लेगा तो...."

"कौन देख लेगा...." उसने पूछा था !

"कोई भी सभ्य पड़ोसी.... ।"

"पड़ोसी सभ्य नहीं होते...." उसका व्यंग्य मुझ पर था। मैं जो उसका पड़ोसी था।

"लेकिन सभ्य ग़ैर पड़ोसी...."

"वह सब भी तुम्हारे ही तरह हैं....."

"क्या मतलब ?" और वह ठहठहा कर एकदम मुक्तमना-सी हँस पड़ी। उसकी हँसी एकदम वातावरण में गूँज गई। सारा कमरा जैसे उस अट्टहास से गूँज उठा। थोड़ी देर तक वह एकदम मौन सहमी-सी खड़ी रही फिर बोली:—

"कायर......"

"कौन......"

"मैं......" उसने व्यंग्य में कहा। दरवाजे की बगल में दीवार से अपना जूड़ा टिकाये छत की ओर देखती हुई उसने कहा था। फिर बोली थी......

"कब तक खड़े रहोगे....बैठ जाओ..."

मैं बैठ गया था। वह फिर बोली थी, "तुमने इन दिनों लगातार डायरी लिखी है न ?"

मैंने कहा, "हाँ...... ।"

"मैंने सब पढ़ ली है...." उसने निश्चयात्मक स्वर में कहा।

"लेकिन ...." मैं कुछ कहने वाला था।

"लेकिन तुम आत्महत्या नहीं कर सकते.... तुम कायर जो हो ? कायर और सब कुछ कर सकते हैं....आत्महत्या नहीं कर सकते, समझे......"

उसने मुझे जैसे एक चुनौती दे दी थी.... जैसे उसने मेरे मन के अन्दर बैठे चोर को पकड़ लिया था......जैसे उसके पास वह आईना था... वह एक्सरे मशीन थी जिनसे मेरी सम्पूर्ण मानसिक दशा को वह ठीक-ठीक जान लेती थी.. जैसे वह मेरे मन की उलझी गुत्थियों को एक आकार देकर सब कुछ समझ गई थी। बोली:—

"यह क्रिस्टी कौन है....?"

"एक औरत...." मैंने कहा।

"औरत ही होगी...." एक विचित्र प्रकार से साँस लेती हुई नीलिमा ने कहा। वह जैसे सब कुछ पढ़ कर मेरे बारे में एक निश्चित धारणा बना चुकी थी। फिर बोली:—

"प्रकाश भी यही कह रहा था......सोहाग रात को ही मेरी लँगड़ी टाँग देख कर बोला, 'इतना कुरूप है यह पैर'—और तब जानते हो मेरे जी में क्या आया ?—ख़ैर जाने दो क्या करोगे तुम जानकर... हाँ इतना समझो कि उस दिन उसने शराब के कई प्याले दिये.... मैं सब पी गई....वह सुन्दर रंगीन शराब..... मैं बिल्कुल खो-सी गई....प्रकाश ने भी पी ली थी....दुबारा उसने मेरी लँगड़ी टाँग की शिकायत नहीं की.....मुझे केवल उसके मुँह से उड़ती हुई शराब की गन्ध याद है....और उसे मेरा औरत मन....मैं भी औरत ही हूँ....महज़ औरत......"

और जब वह यह कह रही थी तो लगता था वह बेहद पिये हुए है....लगता था वह शराब पीकर मुझसे मिलने आयी थी....वह बिल्कुल दीवाल से लगी खड़ी थी....बिना अपना शरीर हिलाये-डुलाये वह एकदम जड़-सी निस्तेज दशा में मौन भी हो जाती थी लेकिन रह-रह कर जाने कैसी उत्तेजना उसे होती थी। बहुत छोटे-छोटे वाक्यों में वह सारी बातें ऐसे कहती थी जैसे कोई मूर्त्ति बोल रही हो....मुझे उस

क्षण उसकी वह घटना भी याद हो आयी थी जब उसने पत्र लिख कर मुझे बुलाया था.... जाने कैसी पागल-सी वह हो रही थी....अद्विग्न आवेशमय....मुझसे बोली—थी—"तुम मुझे प्रेम करते हो" मैंने कहा था—"हाँ...." और वह एक दम मेरे समीप आकर मेरे कन्धों पर हाथ रख कर बोली थी—"मेरे साथ मौत स्वीकार करोगे...." मैं उसकी यह बात सुन कर बिल्कुल हक्का-बक्का रह गया था। प्रेम और मौत ? मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा था...."क्या मर जाना ही प्रेम है ?" मैंने पूछा था। मेरी बात सुन कर वह बोली थी—"जाने क्यों मर जाने को जी कहता है"—"और मरने के बाद"—मैंने पूछा ! "कुछ नहीं.... मरने के बाद कुछ नहीं होता....सब समाप्त हो जाता है।"

उस दिन मैं चला आया था। दरवाज़े पर आते-आते मैंने देखा था उसे एक अज़ीब रोमांच हो आया था। उसकी आँखों से एकदम आँसू निकलने लगे थे। उसने बड़ी कठिनाई के साथ उन्हें अपने आँचल से पोंछा था... चलते-चलते बोली थी—"तुम ...तुम मुझे कभी नहीं समझ पाओगे......कभी नहीं..."

लेकिन जब वह फिर दूसरे दिन मिली थी तो वह बहुत भिन्न थी। उसे जैसे पिछले दिन की सारी दुर्घटना ही भूल गई थी....उसकी हर बात से लगता था जैसे हम दोनों अभी-अभी एक दूसरे से परिचित हुए हैं....जैसे एक दूसरे को जानते ही नहीं.......बोली—

"अगर मैं मर जाऊँ तो....?"

"तो क्या ? मर जाना इतना आसान नहीं होता......।"

"आसान होता है....पाप करने वाले के लिए मरना आसान होता है....।"

"लेकिन पाप करना तो आसान नहीं होता...."

"हर मरने वाला पाप कर लेता है...."

हम दोनों उस समय ज़ीने से उतर रहे थे। सामने एक अन्धेरी गैलरी से होकर बाहर ड्राईंग रूम में जाना होता था। गैलरी में पहुँचते ही उसने फिर कहा—

"पाप करना आसान नहीं होता...." मैंने मुड़ कर देखा....उस अन्धेरे में भी मुझे स्पष्ट दिखलाई दे रहा था....उस अन्धेरे में उसकी आँखें एकदम से चमक रही थीं। उनमें न जाने कितना आँसुओं का वेग था.... क्षण-क्षण रोमांच होने की यह प्रक्रिया भी अजीब थी। कभी-कभी लगता जैसे वह कुछ नैसर्गिक कल्पनाओं में डूब जाती है....कहीं कुछ खो जाती है....मैं उस बन्धन से मुक्त होकर जाना चाहता था और वह भी एक झटके के साथ.....मैं चला भी गया। जाने क्या हो गया था मुझे। उस दिन से नीलिमा को देख कर मुझे भय लगने लगा था। मुझे लगता था जैसे वह कहीं मुझसे भी बड़ी है.... मुझे भी पराजित करने की क्षमता रखती है।

और उस घटना के बाद से मुझे वह फिर वर्षों बाद मिली। अपने भाई के साथ वह नैनीताल जा रही थी। मैं भी जा रहा था। मेरे साथ शोभा थी। लखनऊ में रात के समय जब मैं गाड़ी में चढ़ने लगा तो देखा नीलिमा डिब्बे में बैठी थी। मेरे जी में आया कि मैं शोभा के साथ किसी दूसरे डिब्बे में चला जाऊँ लेकिन तब तक उसकी अधखुली आँखें मिल गईं थीं। मैं स्वयं हक्का-बक्का बन गया था। वह भी बर्थ पर से उठ पड़ी। दया ने नाम लेकर पुकार लिया। मजबूर था। डिब्बे में बैठ गया। शोभा की समझ में पता नहीं

कुछ आया कि नहीं, पर नीलिमा जैसे सारी स्थिति समझ गई थी। गाड़ी जब लखनऊ से छूटी तो उसी ने बात का सिलसिला शुरू किया। एक सिरे से सबको पूछ गई। मैंने एक-एक कर सब बता दिया। कितना औपचारिक था यह सब। कुछ अजीब लग रहा था इसीलिए थोड़ी ही देर में बात का सिलसिला भी खत्म हो गया। नीलिमा ने फिर शोभा से बात करनी शुरू की लेकिन वह भी कुछ अजीब ढंग से मसलन् यह कि––"कैसे हैं तुम्हारे पति ?"....शोभा लज्जा से गड़ गई थी। उसने मेरी ओर व्यंगात्मक हँसी हँसते हुए कहा––"तुम्हारी टाँग तो सही-सलामत है"....शोभा की समझ में कुछ नहीं आया। इस सन्दर्भहीन वाक्य का जैसे वह अर्थ ही नहीं समझ सकी। बात को काटते हुए मैंने कहा, "सब की टाँग तोड़ने लायक नहीं होती....कुछ पूजा योग्य भी होती है....।" नीलिमा जैसे तिलमिला गई, बोली, "कायरों की पूजा का भी कोई अर्थ होता है क्या ?" मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। खिड़की के बाहर देखने लगा। अब तक दया को नींद आने लगी थी वह ऊपर की बर्थ पर चला गया था। शोभा भी कुछ कुड़मुड़ा रही थी। मैंने होल्डाल खोल दिया। वह उस पर सो गई। मैं नीलिमा की बर्थ पर बैठ गया। नीलिमा पीछे हट गई। गाड़ी चलती रही.....

काफ़ी दूर तक हम दोनों मौन रहे, फिर नीलिमा ने कहा––"कभी बरेली नहीं आते ?"

"नहीं....।" मैंने कहा।

"इस बार कहाँ जा रहे हो ?"

"देहरादून।"

"यों ही घूमने....?"

"हाँ.....और तुम ?...."

"मैं ? अपनी ससुराल जा रही हूँ.... तीन महीने कानपुर रही....तुम्हारा कुछ पता ही नहीं था....माँ से ही पता चला था तुम्हारी शादी का....जाने कैसा लगा था मुझे...."

"कैसा लगा था ?...."

"कुछ अजीब-सा......फीका-फीका....."

और आगे कहते-कहते वह रुक गई ! गाड़ी भी अब तक किसी पुल को पार करने लग गई थी। एकदम से गड़गड़ाहट की ध्वनि हुई। लगा एक-एक कर सारा पुल धसमसा कर गिरा जा रहा है। नीलिमा एकदम चौंक-सी गई। जाने क्या हो गया था उसे वह थर-थर काँपने लगी......क्षण भर तक काँपती रही....फिर बेहोश-सी होने लगी। एक सेकण्ड में ही यह सब हो गया......वह एकदम मेरी गोद में गिर गई। उसकी ज़बान ऐंठने लगी। आँखें चढ़ने लगीं। वह एकदम एड़ियाँ घसीट-घसीट कर ऐंठने लगी। शोभा भी जग गई। दया भी तब तक ऊपर से नीचे आ गया। मुँह पर पानी के छींटे देने लगा लेकिन कोई परिवर्तन नहीं हुआ। सहसा पास की छोटी अटैची खोल कर उसने एक नीली शीशी निकाली। उसे सुँघाया। वह केवल सिर हिला कर रह गई। उसे होश नहीं आया।

यह सब देखकर शोभा जैसे सकते में आ गई। उसे यह सब अच्छा नहीं लगा। वह जैसे सहम-सी गई थी। तमाम रात वह बैठी रही। नीलिमा के होश आ जाने के बाद भी बैठी रही। मैंने उससे कई बार सोने के लिए कहा लेकिन वह नहीं सोई। केवल नीलिमा की बातें सुनती रही और नीलिमा कहती जा रही थी....

"जाने कैसा रोग है यह....हर जगह-

बेजगह हो जाता है...."

फ़िर बोलीं, "एक बार तो बिल्कुल जान गई थी....जीना था...बच गई।"

शोभा कुछ नहीं बोली। मैं भी कुछ नहीं बोला। इतना अवश्य अनुभव हुआ कि उसका सारा जिस्म पीला पड़ गया है और वह एकदम निस्तेज-सी हो गई है। साथ ही उसके चेहरे पर कुछ रेखायें बन गई हैं, कुछ लकीरें खींच गई हैं। कुछ धब्बे हैं जो अधिक स्याह रंग के होकर उसके तमाम चेहरे पर बिखरे हुए हैं......कुछ सिकनें हैं जो गाढ़ी होकर एक पुरानेपन की याद दिला देती हैं......मैं चुपचाप उसे देखता रहा। वह कहती जा रही थी—

"ऐसा नहीं है कि उन्होंने दवा न की हो.... रेलवे के बड़े-बड़े डाक्टरों की दवा की लेकिन शादी के चार साल बाद जो इस रोग ने पकड़ा तो आज तक साँस लेने का अवसर नहीं मिला... लगता है इसने कहीं तोड़ दिया है मुझे या यह कि मैं स्वयम् कहीं इतनी टूट गई हूँ कि अब जीने मरने का सवाल बन कर यह रोग आ खड़ा हो गया है......"

मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने अपनी पूरी बाँह का ब्लाउज़ खोला और अपना हाथ खोल कर दिखाया। पूरा हाथ जला हुआ था। बोली—"स्टोव से जल गई थी......नाश्ता बनाते-बनाते गिर पड़ी थी.....बड़ी दवा करने के बाद यह ठीक हुआ है......क्या करूँ.. .."

मैं फिर भी चुप रहा। मुझे बार-बार लगता था कि जैसे इन सब का दोषी मैं ही हूँ। मैंने ही कहीं इसके जीवन से इसकी निष्ठा छीन ली है। मुझे उसका वह वाक्य याद आया—"मैंने आत्म-समर्पण किया है तुम्हारे सामने......इसे फिर कहाँ समर्पित करूँ......" फिर रह कर उसका खीझ भरा दूसरा वाक्य भी गूँज गया वहीं घृणा से ओत-प्रोत आक्रोष का पूर्ण परिचायक "वाक्य"। मुझे जैसे अब मितली-सी होने लगी। मैं सीट पर से उठ खड़ा हुआ। शोभा मुझे एकटक देखने लगी। दया भी एकदम से देखने लगा। नीलिमा कहती जा रही थी:— "सच शोभा....जी में आता है आत्म-हत्या कर लूँ..... इस जीने से क्या लाभ ?"

"लेकिन......" लेकिन कहते-कहते वह रुक गई। फिर कुछ सोच कर बोली:—

"आत्म-हत्या इतना आसान नहीं होता..... मुझसे जब वह नहीं हो पाता तो किसी से नहीं हो सकता......"

और मैं जैसे मर चुका था। मैं जानता था कि मेरे इस तरह मर चुकने की सूचना से किसी को भी घबराहट नहीं होने वाली थी। आखिर उस समय मेरे हाथ में पोटेशियम साईनाईट की शीशी भी तो नहीं थी......एक लेटर पेपर भी तो नहीं था, क़लम भी नहीं थी......रात आधी से ज्यादा ज़रूर हो गई थी लेकिन कम्पार्टमेन्ट की रोशनी काँप रही थी......उसकी क्षयी पीली रोशनी भी तो नहीं थी। फिर उसे आने वाली सुबह से आतंक क्यों होता......खट-खट की आवाज़ ज़रूर आ रही थी; लेकिन वह आवाज़ दूर अँधेरे में डूबी हुई आवाज़ नहीं थी......बिल्कुल नज़दीक की आवाज़ थी...एकदम नज़दीक की... अन्धेरा बिल्ली के बच्चे की तरह भी तो नहीं था......मैं चुपचाप सीट पर बैठ गया...... गाड़ी तेज रफ्तार से चलने लगी..... तमाम रात अँधेरे को टटोलते हुए चलती ही रही...

इस घटना को भी आज पाँच साल हो गये हैं। तब से नीलिमा से मेरी भेंट नहीं हुई है। लेकिन इस पाँच साल में बहुत कुछ हो गया है। उस दिन से जब कभी भी शोभा को रेल की वह दुर्घटना याद आ जाती है तो बरबस हँस पड़ती है। अब भी जब वह मेरे बिल्कुल निकट होती है तो ठीक उसी प्रकार काँपने लगती है। लगता है उसका दम फूला जा रहा है। उसके माथे पर पसीने की बून्दें आ जाती हैं.....एक अजीब-सा रोमांच हो जाता है....वह एकदम काँपने लगती है। और पिछले तीन वर्षों से तो वह बिल्कुल बेहोश हो जाती है.....ठीक उसी तरह जैसे उस रात नीलिमा बेहोश हो गई थी......वैसी ही बेचैनी......वैसी ही तड़प......वैसी ही ऐंठन... वैसी ही निस्तेज कम्पन......

मैंने काफ़ी दिनों तक उसका निर्वाह किया लेकिन जाने क्यों मेरे मन में बार-बार यही बात उठती थी जैसे इन सब का कारण मैं हूँ...मैं... नीलिमा के अर्द्धविक्षिप्त जीवन का, शोभा की इस पीड़ा का......मैंने शोभा से भी इसका रहस्य जानना चाहा, लेकिन वह कुछ नहीं बोलती। सती सावित्री-सी माथा नीचे करके खड़ी हो जाती है लेकिन मुझे लगता है विवशता दोनों जगह है......दोनों ही का विश्वास मुझे प्राप्त है.. ...दोनों ही का स्नेह मुझे प्राप्त है लेकिन मुझे लगता है कि मैं किसी ऐसे शिकंजे में फँसा हूँ कि उससे निकलने की कोई सूरत नहीं है। अभी नीलिमा ने अपने पिछले पत्र में शोभा को लिखा है—"मेरी टूटी हुई टाँग में पिछले कई दिनों से बेहद दर्द हो रहा है......जीने से उतर रही थी कि दौरा आ गया......घर में कोई नहीं था......वे अपने काम से रेलवे स्टेशन गये थे......मुझे चार घण्टे बाद होश आया......पैर टूटा नहीं लेकिन दर्द सख्त है...... जाता ही नहीं......"

चार दिन बाद उसने भी एक पत्र लिखा था। उसने उसे भी मुझे सुनाया था। शोभा ने लिखा था—

"यह विवशता तुम में क्यों है दीदी...... यह विवशता उन्हें भी क्यों है......यह विवशता मुझ में भी क्यों घर किये जा रही है......मुझे भी अब लगातार दौरे आने लगे हैं......कारण जो तुम्हारा हो वह मेरा भी हो ऐसा नहीं है; फिर परिणाम क्यों एक ही है? कुछ समझ में नहीं आता......बिल्कुल समझ में नहीं आता दीदी..."

और फिर चार-पाँच महीने तक कोई खत नहीं आया था। चार-पाँच महीने बाद एक रोज़ आधी रात को दया कानपुर से आया था। नीलिमा का सन्देश लेकर आया था। बोला था कि दीदी ने आत्म-हत्या का प्रयास किया था......कोई ज़हरीली दवा खा ली थी लेकिन उससे बच गई...... समय से पता चल गया......डाक्टरों ने ठीक कर लिया। इतना कह कर वह कुछ देर तक मौन रहा फिर बोला...."लेकिन दवा बड़ी ज़हरीली थी....आप देखेंगे तो दीदी को पहचान नहीं पायेंगे......दीदी बिल्कुल काली पड़ गई है......एकदम काली......उनकी आँखों में भी खून जम गया है......नाखून तक काले पड़ गये हैं......आपको दीदी ने बुलाया है......"

दया जब यह सूचना दे रहा था तो शोभा भी मेरे बगल में खड़ी सारी बातें सुन रही थी। काफ़ी देर तक वह मौन रही फिर जाने क्या सोच कर कहने लगी कि मैं नीलिमा को जाकर देख आऊँ लेकिन मैंने वहाँ जाना

स्वीकार नहीं किया। जाने क्यों जाने का जी नहीं चाहता था। दया दो दिन तक टिका रहा लेकिन मैं नहीं गया। मुझे लगता था कि नीलिमा के इतने गहरे परिणामों का कारण मैं हूँ। सहसा उसका एक वाक्य मेरे कानों में फिर गूँज गया....मैंने कभी उससे ही कहा था—"पाप करने वाले के लिए मरना आसान होता है.....हर मरने वाला पाप कर लेता है......"—मैं नीलिमा से मिलना चाहता था लेकिन जान-बूझ कर नहीं गया।

कुछ दिनों बाद पत्र आया कि नीलिमा माँ हो गई है......सुन्दर-से एक बच्चे की फोटो भी साथ में आई। फ़ोटो देख कर शोभा बड़ी प्रसन्न हुई लेकिन बच्चे को देख कर बोली—"है तो लड़की लेकिन दीदी को नहीं पड़ी है", फिर अपने आप ही बोली—

"हो सकता है बाप को पड़ी हो।" मैं कुछ नहीं बोला। वह फिर बोली—

"आपने नीलिमा जी के पति को तो देखा होगा......"

"नहीं......"

"क्यों......?" शोभा ने बड़ी सरलता से ही यह प्रश्न पूछा था लेकिन स्वयम् यह प्रश्न मुझे अपने से भी पूछना था। बार-बार पूछता भी रहा हूँ लेकिन उत्तर आज तक नहीं मिला।

बात का सिलसिला वहीं ख़त्म हो गया। मैंने नीलिमा की याद को ही दिमाग़ से निकाल दिया। लेकिन नीलिमा का एक प्रतिरूप जो मेरे साथ था। शोभा की बीमारी बढ़ती ही गई। डाक्टरों ने जवाब दे दिया। उसे दिन में दर्जनों फ़िट्स आने लगे......मेरी तबीयत परेशान हो गई। उसी बीच मेरी बदली नागपुर हो गई। मैंने शोभा को पिता के घर भेज दिया। ख़ुद नागपुर चला गया। शोभा की चिट्ठियाँ नागपुर बराबर आती रहीं। मैं भी जवाब बराबर देता

मातृभाषा का ज्ञान

एक बार कलकत्ता विश्वविद्यालय के बंगला साहित्य के प्रोफेसर श्री नारायण गांगुली को ढाका विश्वविद्यालय जाना पड़ा। ढाका स्टेशन से बाहर निकल कर उन्होंने एक रिक्शेवाले से पूछा, "भई, ढाका विश्वविद्यालय चलोगे, कितना लोगे?"

'ढाका विश्वविद्यालय!' रिक्शेवाला क्षण भर सोचता रहा, फिर तुरत बोल उठा, "हाँ, हाँ, अवश्य पहुँचा दूँगा, दो रुपये लगेंगे।"

दो रुपये सुन कर प्रोफेसर साहब चकित हुए। अन्य प्रोफेसर-साथियों ने कहा था, ढाका विश्वविद्यालय स्टेशन से कुछ ही दूर है। फिर यह रिक्शेवाला दो रुपये माँग रहा है। शायद धूप अधिक होने के कारण माँग रहा हो। प्रकट में बोले, "अच्छा, चलो भई।"

रिक्शेवाला प्रोफेसर साहब को लेकर आगे बढ़ा। क़रीब दो घंटे हो गये, फिर भी ढाका विश्वविद्यालय नहीं आया। प्रोफेसर साहब चिन्तित हुए। पूछा—"ढाका विश्वविद्यालय जानते तो हो?"

"हाँ हाँ, जानता क्यों नहीं? अभी पहुँचा देता हूँ।" रिक्शेवाला पसीने से नहा उठा था। अन्त में हार कर एक व्यक्ति से पूछा, "ढाका विश्वविद्यालय किस तरफ़ पड़ेगा?"

रहा। एक दिन शोभा ने पत्र में बड़े आश्चर्य की बात लिखी। मुझे तो पहले विश्वास नहीं हुआ लेकिन फिर विश्वास करना पड़ा। शोभा ने लिखा कि दया ने सूचना दी है कि नीलिमा दीदी एकदम घर छोड़ कर ग़ायब हो गई हैं। तमाम हिन्दुस्तान में उन लोगों ने ढुँढ़वाया......कुछ भी पता नहीं चला। लोगों का ख़याल है कि उन्होंने आत्म-हत्या कर ली है। पत्र पढ़ कर मैं बिल्कुल हैरान रह गया। समझ में नहीं आया क्या करूँ। केवल एक विश्वास ही मुझे घेरे था। वह यह कि और कुछ भले ही हो नीलिमा आत्म-हत्या नहीं कर सकती......

इस विश्वास के बावजूद भी जाने क्यों मुझे बार-बार यह लगता था कि जैसे कोई अनहोनी घटना घट गई है। मुझे स्वयम् अपना मकान ही बुरा लगने लगा। लगता उसकी ईंट-ईंट उदासी में शराबोर......शोभा के पत्र बराबर आते थे लेकिन वैसे ही नीरस बेमन के.......कुछ दिनों बाद तो वह भी बन्द हो गये। लोग मुझसे दफ्तर में बाहर हर जगह शोभा को बुलाने के लिए कहते लेकिन मैं उनको कोई उत्तर नहीं दे पाता। धीरे-धीरे लोगों ने कहना भी छोड़ दिया। कुछ लोग अपने मन से मुझे नाच घर, सिनेमा जाने का प्रस्ताव करते लेकिन मेरा जी वहाँ भी जाने को नहीं होता....सीधे दफ्तर और घर..... बिजली के हीटर...... कुकर पर खाना बनाना और बैल की तरह काम करना; बस यहीं रह गया था।

लेकिन इसी बीच एक अजीब घटना घटी। जाने कैसे क्रिस्टी से मेरा परिचय हो गया। शायद एक बार ही हम दोनों एक बस में जा रहे थे। क्रिस्टी अमरावती जा रही थी, मैं भी जा रहा था। क्रिस्टी ख़ूबसूरत नहीं है लेकिन इसके अतिरिक्त उसमें कई गुण हैं। वह विद्रोह करना जानती है। बात काटना जानती है। बात न मानना जानती है। विरोध करना जानती है। आज दो साल के परिचय के बाद जब मैं क्रिस्टी के व्यक्तित्व पर नज़र डालता हूँ तो मुझे लगता है वह एकदम नयी अनुभूति के रूप में मुझे मिली है। इसी नयी अनुभूति से मेरा उसका परिचय भी हुआ था। वह बस छूटने के समय तक नहीं आई थी। बस चलने पर आई थी। उस दिन भीड़ कुछ आवश्यकता से अधिक थी..बस

"पास ही है", कह कर उस व्यक्ति ने समीप की एक इमारत की ओर इंगित किया। प्रोफ़ेसर साहब ने देखा, यह तो वही इमारत है जिसके पास से रिक्शा वाला कई बार रिक्शा ले गया था। अब रिक्शा उसी इमारत की ओर बढ़ा।

ढाका विश्वविद्यालय के गेट पर प्रोफ़ेसर साहब उतरे। रिक्शे वाले ने कहा, "बाबू साहब, इसे तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ। आपने तो अंग्रेज़ी में पूछा था ढाका विश्वविद्यालय जाना है, आपको बंगला में पूछना चाहिए था 'ढाका यूनिवर्सिटी' जाना है, तो मैं तुरत पहुँचा देता।"

प्रोफ़ेसर साहब रिक्शे वाले का मातृभाषा सम्बन्धी ज्ञान सुन, केवल मुस्कराये और हाते के अन्दर दाख़िल हो गये।

—स. गिर

चल पड़ी थी। मैं बिल्कुल फाटक के पास बैठा था। मुझे लगा था क्रिस्टी गिर जायगी। मैंने उसका हाथ पकड़ कर खींच लिया था। वह ऊपर आ गई थी लेकिन कुछ झटका इतना तेज़ था कि वह बिल्कुल मेरी गोद में आ गिरी। कुछ बस में बैठे लोगों ने इसे ध्यान से देखा। कुछ ने मुँह फेर लिया लेकिन क्षण भर में मेरी गोद से हट कर क्रिस्टी दूर जा बैठी। उसने एक बार मुझे देखा फिर वह ख़ामोश हो गई लेकिन जब अमरावती में बस से उतरी तो मुझसे क्रोधित हो बोली—"तुम कौन हो ..... तुमने मेरा हाथ क्यों पकड़ लिया था......"

मैंने कोई उत्तर देना उचित नहीं समझा। उसने इसी तरह लगातार एक सिलसिले से कई प्रश्न पूछ डाले मैं मौन ही रहा। अपनी अटैची हाथ में लिए ताँगे वाले से बात करने लगा। इस पर जैसे उसके क्रोध की और भी कोई सीमा नहीं रह गई। मैं भी न जाने किस मूड में था। मैंने कोई उत्तर नहीं दिया। ताँगे पर बैठा, चला गया।

बाद में जब नागपुर वापस आया तो उसे एक दिन स्टेशन पर नर्स की पोशाक पहने देख कर आश्चर्य हुआ। मैं उसे एक टक देखता रह गया था। वह भी कनखियों से मुझे देख लेती। पता चला सैलून में कोई ऑफ़िसर बीमार है उसी की देख-भाल के लिए रेलवे अस्पताल से क्रिस्टी आती है। मैं दिन में तो कुछ खाता नहीं था। रात का खाना स्टेशन पर ही खाने लगा था। जब मैं खाना खाने जाता तो वह सैलून से ड्यूटी करके लौटती होती। एक दिन मुझे रेलवे होटल में घुसते देख कर वह भी भीतर आ गई। रात के १० बजे थे। कोई दूसरा नहीं था होटल में। वह बिल्कुल मेरी कुर्सी के बग़ल में आकर बैठ गई। बोली—"आप ही मेरे साथ आज से दस रोज़ पहले अमरावती गये थे न......"

"जी......" मैंने एक छोटा-सा उत्तर दिया फिर पूछा—"क्यों?"

"मैंने उस दिन अमरावती में बहुत बुरा-भला कह दिया था", क्रिस्टी बोली।

"वह तो आपकी मेहरबानी थी......"

वह जैसे मेरा व्यंग्य समझ गई। हँस पड़ी। मैं भी उसके श्वेत वस्त्र और घुँघराले बालों के बीच साँवले जिस्म को देख कर खो-सा गया।

शायद मैं सोच रहा था शोभा के विषय में, नीलिमा के विषय में; लेकिन मेरी आँखों के सामने मेरी गोद में पड़ी क्रिस्टी की तस्वीर नाच जाती थी। क्रिस्टी......एक रक्त-माँसधारी कुरूप स्त्री....उसके प्रति मेरा आकर्षण! कहाँ गया मेरा सारा आत्मीय स्नेह.....कहाँ गया मेरा सरल आदर्श और उसमें भिची मेरी प्यास? मुझे याद नहीं मैं कब क्रिस्टी के साथ उठा और उसे घर छोड़ता हुआ अपने घर चला गया।

दूसरे दिन से मैंने रेलवे स्टेशन पर होटल में जाकर खाना खाना बन्द कर दिया लेकिन यह भी मैं अधिक दिनों तक नहीं निभा पाया। रह-रह कर जाने कैसी उत्कण्ठा होती थी उससे मिलने की। मैं फिर भी अपने मन को रोकता रहा लेकिन वह भी नहीं हो सका। जैसे मन का सारा बन्धन मुक्त होना चाहता..... जीवन का पिछले एक वर्ष से ठहरा तनाव टूट जाना चाहता था और जब क्रिस्टी उस दिन अकस्मात मुझे मिली तो मैंने ही उससे क्षमा माँगी। वह हँस पड़ी। अंग्रेजी में

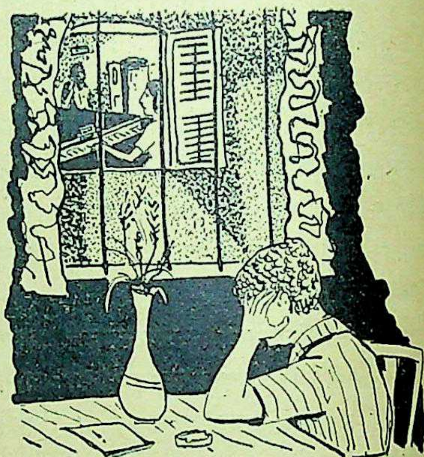
उसने कहा, "डोन्ट बी ए चाईल्ड"—मैं भी चुप रहा। वह फिर बोली—"चलो मेरे घर में ममी से मिला दूँ तुम्हें।" मैं उसके घर गया......उस निर्जन में पाँच छः बंगलों के एक गुच्छे में वह रहती थी। मुझे देख कर उसकी ममी बड़ी प्रसन्न हुई। उसने अपने हाथ से चाय बना कर मुझे पिलाई...... बहुत देर तक मुझसे बात करती रहीं। वह विधवा थीं। पति के मरने के बाद केवल क्रिस्टी को ही लेकर उसने सारा जीवन बिताने का निश्चय किया था लेकिन ऐसा वह नहीं कर सकी थी। एक अंग्रेज़ सिपाही ने उससे शादी कर ली थी जो बाद में उसे छोड़ कर विलायत चला गया था। जिस कमरे में मैं बैठा था उसमें केवल दो तस्वीरें थीं और मैं अन्दाज़ लगा सकता था कि वह दोनों उसके दो पतियों की थीं। दोनों ही तस्वीरें सुरक्षित थीं। लगता था दोनों के प्रति उसकी श्रद्धा थी।

उस रात क्रिस्टी मेरे साथ बहुत देर तक घूमती रही थी। वह तरह-तरह की बातें करती थी। कभी उस नवयुवक की जिसने पहली बार उससे प्रेम करने की घोषणा की थी, फिर उस वृद्ध रोगी की जो बीमारी की हालत में अस्पताल में पड़ा-पड़ा अक्सर उसका हाथ पकड़ लेता था......उस इंजन ड्राईवर की जो दिन भर रात भर कोयला झोंकने के बावजूद भी अपने को इंगलैण्ड के रायल परिवार के एक सिपाही का पुत्र बतलाता था और अन्त में उसने एक दिन स्वयम् इंजन के सामने कट कर अपनी जान दे दी थी और यह सब बताते-बताते मैंने देखा उसको भी एक प्रकार का रोमांच-सा हो आया था......उसकी आँखों में आँसू भर आये थे......उसका शरीर काँपने लगा था। उसकी मनोदशा ठीक वैसी ही हो जाती थी जैसी कि नीलिमा की हो जाती थी......जाने कैसा क्षण था वह कि मैंने फिर उसकी कलाई पकड़ ली......वह एकदम से उत्तेजित हो गई। उसने एक झटके के साथ अपना हाथ छुड़ा लिया......उसकी आँखें क्रोध से लाल हो उठीं। वह मुझसे दूर छिटक कर खड़ी हो गई। मैं भी पहले उसका यह व्यवहार नहीं समझ पाया; लेकिन जाने क्यों मेरा उसके प्रति इतना तीव्र आकर्षण हो गया कि मैं अपने को रोक सकने में असमर्थ था। मैंने उसे क्रिस्टी को उसका नाम लेकर दो-तीन बार पुकारा। उससे क्षमा भी माँगी लेकिन मेरी क्षमा-याचना सुन कर वह फूट-फूट कर रोने लगी। मेरी समझ में नहीं आया कि मैं क्या करूँ? मैंने उसे समझाना चाहा लेकिन जैसे वह एक विकट पहेली थी जिसे मैं अभी कल तक महीनों साथ रहने के बावजूद भी समझने में असमर्थ था। मैं बड़ी मुश्किल से उसे उसके घर पर छोड़ कर वापस चला गया। घर पहुँचते-पहुँचते मैं बुखार में धुत था।

और दूसरे दिन वह अपनी ममी के साथ एकदम सवेरे ही आयी। साथ में ताँगा लेकर आई थी। मैं बुखार में बेहोश था। बिना मेरे पूछे ही उसने मेरा सारा सामान ताँगे पर लदवा लिया और एकदम साथ लेकर चल दी। मैं कुछ कह सकने में असमर्थ-सा था......एक तो इसलिए भी कि मेरी तबियत उस मकान में नहीं लगती थी और दूसरे यह कि मेरे अन्तरमन में कहीं कुछ ऐसा प्रगाढ़ स्नेह-सा था क्रिस्टी के लिए कि मुझमें उसका विरोध करने का जैसे साहस भी नहीं था। जिस शाम को मैं वहाँ रहने के लिए गया था

उस दिन उन मकानों में से एक में कोई दुर्घटना हो गई थी। जाने पर पता चला था कि मेरे मकान के ठीक बगल वाले मकान में आग लग गई थी। पूछने पर पता चला कि वह रिटायर्ड रेलवे इंजनियर कुछ रहता ही इस प्रकार है कि उसके यहाँ आये दिन एक न एक दुर्घटना होती रहती है। क्रिस्टी ने बताया कि कुछ दिनों पूर्व इंजीनियर सीढ़ी पर से गिर पड़ा था। महीनों उसकी बाँयीं टाँग में प्लास्टर बन्धा था......वह कुछ और बताना चाहती थी लेकिन मैंने जानना ही नहीं चाहा। कोई उत्सुकता भी नहीं दिखाई। क्रिस्टी मौन हो गई।

लेकिन क्रिस्टी जैसे उस रेलवे इंजीनियर के विषय में सब कुछ बताना ही चाहती थी। ऐसा लगता था जैसे यदि मैं उस रिटायर्ड इन्जीनियर के विषय में सारी बातें नहीं जान लूँगा तो मेरे ज्ञान में कोई बड़ी भारी कमी रह जायगी। जब मैंने उसकी ऐसी उत्सुकता देखी तो फिर मौन होकर उसने जो कुछ भी कहा सब सुन लिया। बताते वक्त वह एकदम आत्म-विभोर हो जाती थी। मैंने बिजली के प्रकाश में पहली बार देखा कि उसके साँवले चेहरे पर क्रासनुमा दाग कितना भला लगता था। वह जाने क्या-क्या कह गई थी लेकिन मैं केवल उसके चेहरे पर पड़े हुए उस दाग को ही देख रहा था। मुझे सहसा नीलिमा की याद आ गई। उसके भी चिबुक पर एक तिल था। जब वह बात करती थी तो जाने कितना परिवर्तन होता था उसमें और मैं उसी में डूब गया था। क्रिस्टी उस रिटायर्ड इन्जीनियर के बारे में कहती रही... कहती रही......जैसे उसका कोई अन्त ही नहीं था। शाम हो गई। हम दोनों ने साथ-साथ बैठ कर चाय पी और कुछ बात करने में लगे रहे। सहसा क्रिस्टी ने कहा उधर देखो। खिड़की से मैंने इन्जीनियर के बंगले की ओर देखा। एक महिला मेरे कमरे के ठीक सामने वाले कमरे की खिड़की खोल रही थी। खिड़की खुलते ही कमरे की नीली रोशनी लोहे के सीखचों को बेध कर बाहर फैल गई। फिर वह स्वयम् खिड़की के पियानो के पास बैठ कर एक निहायत ही दर्द भरे स्वर में कुछ गाने लगी। क्रिस्टी ने कहा—



"देखा आपने...यही वह औरत है जो न तो घर से निकलती है और न किसी से मिलती है...लेकिन रोज-रोज ठीक इसी समय यह पियानो पर एक निहायत दर्द भरा गीत गाती है......"

मेरा भी ध्यान उस ओर चला गया। मैं भी ग़ौर से देखने लगा। क्रिस्टी बोली— "यही नहीं......इस समय तो निश्चित रूप से यह पियानो बजाती है......कभी-कभी आधी रात को भी बजाती है......तमाम रात बजाती रह जाती है......"

मैं कुछ नहीं बोला। झिलमिले घूँघट की आड़ से केवल दो बड़ी-बड़ी उदास आँखें और प्रोफ़ाईल ही दिखलाई पड़ा। मैंने विशेष ध्यान नहीं दिया केवल स्वर में ही डूब-सा गया......कितना मर्मस्पर्शी स्वर था वह। मन में बार-बार आता था जैसे यह स्वर पहचाना हुआ है लेकिन उसे ठीक-ठीक समझ नहीं पा रहा था। क्रिस्टी भी जैसे कुछ जान-बूझ कर मुझे छोड़ देना चाहती थी। वह कहती थी कि मैं उधर न देखूँ। मैं देखना भी नहीं चाहता था। लेकिन कभी-कभी मनुष्य कुछ विवशतावश भी करता है। मैं अपने को उन स्थितियों से बिल्कुल विवश-सा पा रहा था। उस रात कमरे के बाहर जाते-जाते क्रिस्टी ने कहा——

"तो क्या रात भर तुम खिड़की के पास यूँ ही बैठे रहोगे......?"

"नहीं चलो कहीं घूम आयें......" मैंने प्रस्ताव रक्खा।

कुछ अजीब था। आज जब क्रिस्टी मेरे साथ घूमने गई और वह स्वयम् रह-रह कर मेरे ऊपर गिर-सी पड़ती थी। मैंने दो एक बार उसे रोका भी लेकिन उसकी आँखों में एक अजीब नशा-सा था।

अब तक मुझे रहते हुए लगभग दो महीने हो गये थे। इन दो महीनों में क्रिस्टी का मानवीय रूप तो मेरे सामने अधिक स्पष्ट हुआ ही साथ ही इंजीनियर के घर की भी बड़ी रहस्यात्मक बातें मालूम हुई। पहली बात तो यह थी ही कि रोज़ एक निश्चित समय से निश्चित समय तक शाम को उसी कमरे में उसी जगह पर बैठ कर वह पियानो बजाती थी। मेरी उत्सुकता भी दिनोदिन बढ़ती जाती थी, लेकिन सिवा उस प्रोफ़ाईल के और कुछ नहीं दीख पड़ता था। उधर जब कभी भी मैं उसे पियानो पर कोई राग गाते सुनता था। तो जाने क्यों मेरी भी उद्विग्नता बढ़ जाती थी। उस अस्पष्ट प्रोफ़ाईल में केवल उस चेहरे की आकृति मात्र थी——ऐसी आकृति जिसमें जाने कहाँ की गंभीर उदासी एक रहस्य बन कर व्यक्त होती थी। जाने कैसी थी वह उदासी जो सहज ही आकर्षित कर लेती थी। बड़ी-बड़ी झुकी हुई पलकें, अस्त-व्यस्त केश, माथे पर एक सुन्दर सोहाग टीका और व्यस्त-त्रस्त-सा आधा चेहरा जैसे सम्पूर्ण वातावरण से रस निचोड़ लेने की क्षमता के साथ-साथ करुणा का भी संचार करने में अद्वितीय थी वह। मैंने बार-बार उसे देखने-पहचानने और परिचय प्राप्त करने की चेष्टा की लेकिन सब बेकार।

एक दिन सुबह-सुबह उठा ही था कि सहसा किसी ने मेरा दरवाज़ा खटखटाया। दरवाज़ा खोला तो देखा कि सामने वही रिटायर्ड रेलवे इन्जीनियर महोदय खड़े थे। विस्मय से मेरी ओर देख कर बोले——

"आप तमाम रात अपनी खिड़की खुली रखते हैं? मेरे घर का पर्दा नष्ट होता है... कल से खिड़कियाँ बन्द रक्खा कीजिये......"

"लेकिन खिड़कियाँ तो खोलने ही के लिए बनी हैं......"

"और जो मेरा घर बे-पर्द होता है वह..."

"उसे मैं क्या करूँ......आप अपने घर का पर्दा कीजिये", मैंने ज़रा सख़्त लहजे में कहा। मेरी बात सुन कर वह अपने ब्रिजीस के खुले फ़ीते को बाँधने लगा। एक बार अपनी फ्रेंच कट दाढ़ी को अपनी हथेली से खुजलाया

और फिर छड़ी की नोक फ़र्श पर पटकने लगा। मैं बड़ी उत्सुकता से उसका मुँह देख रहा था। उसके चेहरे पर पड़ी हुई शिकनों के बीच कुछ पढ़ लेना चाहता था। मैं इस बात की प्रतीक्षा ही में था कि वह कुछ और कहे कि वह स्वयम् बोल पड़ा——

"तुम घर की पवित्रता नहीं जानते..ख़ैर..."

वह चुपचाप चला गया। दिन भर उस कमरे की खिड़की वैसी ही खुली रही और उसके पियानो वाले कमरे की खिड़की वैसी ही बन्द की बन्द रही। मुझे सन्देह था कि आज शाम को कमरे की खिड़की नहीं खुलेगी। इसीलिये मैं आज विशेष रूप से शाम की प्रतीक्षा कर रहा था। लेकिन सुबह की बात का जैसे उन लोगों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा था। वहाँ ठीक ६ बजे शाम को उस दिन भी खिड़की उसी प्रकार खुली। नीली रोशनी के झीने वातावरण में फिर वही प्रोफ़ाईल चेहरा......वही पियानो......वही दुख भरा राग और उस राग में बेतहासा दर्द......वही मर्म भरी पीड़ा जनित राग और उसके स्वरों में डूबी रहस्यात्मक आकृति। मुझे लगता जैसे मेरा सब कुछ बरबस ही छिना जा रहा है। मैं कहीं आवश्यकता से अधिक टूटा जा रहा हूँ। यहाँ तक कि काफ़ी रात गये जब क्रिस्टी मेरे पास ड्यूटी के बाद आई और उसने मुझसे दिन भर का सारा हाल सुना तो उसके मन को कुछ अजीब-सा लगा...... बोली——

"जाने कैसी औरत है...मनचाहे ढंग से रहती है......न आदमी को देखना चाहती है और न आदमियों से मिलती है......कोई नौकर भी नहीं रहता वहाँ......रोज़ इंजीनियर टिफ़िन कैरियर लेकर होटल से खाना लाता है.... पता नहीं कैसे रहते हैं दोनों......"

क्रिस्टी यह सब सूचनायें देती जा रही थी। उसके कहने का मतलब ही शायद यह था कि रिटायर्ड रेलवे इंजीनियर का जीवन ही रहस्यमय है। उसने यह भी बताया कि शायद जो स्त्री उसके साथ रहती है, वह उसकी पत्नी नहीं है।

मैंने कहा——

"पत्नी नहीं तो यह इसे कहाँ से लाया.."

"विदेश से...कहीं से......" क्रिस्टी बोली।

मैंने उसकी बात काटनी नहीं चाही। मौन रह गया लेकिन एक बात मैंने क्रिस्टी की बातों में अवश्य देखी। मुझे लगा कि वह मुझ पर सन्देह करने लगी है। कहीं उसके मन में यह बात खटकती भी थी लेकिन वह कह नहीं पाती थी। दूसरे दिन सुबह मैंने देखा कि क्रिस्टी उस रिटायर्ड इन्जीनियर से कुछ बातें कर रही थी। इन्जीनियर का चेहरा रह-रह कर तन उठता था। साथ ही क्रिस्टी भी कुछ आवेश में कह रही थी। इन्जीनियर फिर सहसा मौन होता हुआ उठ खड़ा हुआ। अपनी हाथ की छड़ी को उसने वहीं रख दिया और फिर ड्रेसिंग गाउन को ठीक करके खुले फ़ीते को बाँधा। एक बार अपनी फ्रेंचकट दाढ़ी को अपनी हथेलियों से सुलझाया और फिर घड़ी सम्भाल कर उठ खड़े हुए। मैं बड़ी उत्सुकता से उनका मुँह देखता रहा। इस बात की प्रतीक्षा करता रहा कि वह कुछ और कहें लेकिन उन्हें जैसे और कुछ बोलना आता ही नहीं था। वह चुपचाप उठे और हाते के बाहर चले गये। मैंने भी कमरे का दरवाज़ा बन्द कर लिया और ख़ामोश होकर चारपाई पर बैठ गया।

कुछ अवसाद में घिरा हुआ उनमन-सा । छुट्टी के दिन थे इसलिए काफ़ी देर तक चारपाई ही पर पड़ा रहा । सहसा जब छत पर नज़र पड़ी तो देखा एक गोरी बाँह छत की मुण्डेर से बाहर निकल कर भीगी साड़ी फैला रही है । उँगलियों में तीन-चार अँगूठियाँ हैं और बाँह में कुछ फ़ीरोजी रंग की निहायत ही बारीक चूड़ियाँ । मैं फिर ध्यान लगा कर बैठा रहा लेकिन जितना हाथ मुण्डेर के बाहर दिखलाई पड़ता था वह गोरे रंग का होता हुआ भी कुछ अजीब फीका-फीका-सा उदासी लिए दिखलाई पड़ता था । लगता था जैसे वह एकदम झुलसे हुए हाथ हों । दागों से भरे हुए हाथ--ऐसे हाथ जिसमें न चिकनाहट, न नर्मी, न जीवन, न तेज । मैं एकटक उसे देखता रहता लेकिन फिर थोड़ी देर बाद वह भी ग़ायब हो जाता । अब तक, यानी दो महीनों में, मैं केवल इतना ही निष्कर्ष निकाल पाया था । पहला यह कि इन्जीनियर के साथ एक महिला रहती है । दूसरे यह कि इन्जीनियर और महिला में कभी कोई वार्तालाप सुनाई ही नहीं पड़ सकता । लगता जैसे उन दोनों का जीवन किसी मौन समझौते के सहारे चला जा रहा हो । मैंने बारहा इस बात की चेष्टा की कि वह महिला कभी भी किसी असावधानी के क्षण में मकान या लॉन में, या उसके आसपास दिखलाई पड़ जाय लेकिन ऐसा कभी भी नहीं हुआ । मैंने जब देखा तो बस यही कि लान में रिटायर्ड इन्जीनियर साहब अकेले अखबार पढ़ रहे हैं, या अकेले चाय पी रहे हैं, या अकेले टहल रहे हैं, या अकेले धूप में लाल नीली-पीली छतरी लगाये बैठे रहते हैं । यह सारा सब कुछ इतना असाधारण था कि मेरे लिये उसका अर्थ समझना कठिन तो था ही मैं उसके प्रति जिज्ञासावश कुछ आवश्यकता से अधिक उत्सुक भी हो गया था । इसीलिये उस छुट्टी के दिन मैं केवल उस एकान्तवासी घर में हिलती-डुलती छाया को ही देखता रहता था ।

उस दिन मैं विस्मय और आश्चर्य की एक विचित्र दुभि-सन्धि में पड़ा हुआ था । शाम की डाक से नीलिमा का एक पत्र आया था । सहसा पत्र के नीचे नीलिमा का नाम पढ़ कर आश्चर्य हुआ । उसने लिखा था कि वह उस रात १२ बजे वाली गाड़ी से आयेगी । मैंने स्टेशन पर पता लगाया तो पता चला कि ११ बजे रात से लेकर २ बजे प्रातःकाल के बीच में कोई भी गाड़ी नागपुर स्टेशन पर नहीं आती । फिर इस पत्र का रहस्य क्या है ? यह भी मेरी समझ में नहीं आ रहा था । इसी उधेड़-बुन में पड़ा था कि सहसा क्रिस्टी आई । आज वह भी बड़ी गंभीर थी । चुपचाप आकर मेरी बगल में कुर्सी पर बैठ गई बोली--"आज मेरी एक सहेली तुमसे मिलने आने वाली है......"

"क्या नाम है उसका ? क्यों आने वाली है वह ?......"मैंने उससे पूछा ।

"मैंने उसे सब कुछ बता दिया है...सब कुछ......" और वह अत्यन्त स्नेह से मेरे माथे पर के बाल हटाने लगी......उसकी गर्म सांसें मेरे माथे पर दो लकीरें बना रही थीं ।

"तुमने उसे क्या बता दिया है क्रिस्टी ?...."

"यही सब ? अरे...क्या हुआ है तुम्हें..." वह एकदम से मेरे गले में बाहें डाल कर एक शोख़-सी हँसी हँसने लगी ।

"तो तुमने अपनी सहेली को सब बता दिया है ?...."

"हूँ......गिन-गिन कर.....एक-एक बात"—वह मेरे निकट सरक आई।

मैं कुछ कहने वाला था। कुछ बातें जो अभी तक मैंने क्रिस्टी को नहीं बतायी थीं, उन पर भी रोशनी डालना चाहता था। चाहता था कि मैं उसे थोड़ी-सी बातें और बताऊँ...उसे बता दूँ कि मैं विवाहित हूँ। उसे बता दूँ कि मैं हर स्थिति में नीलम को छोड़ कर और किसी को प्रेम नहीं कर सकता और...और...और बहुत-सी बातें। मैं कुछ बोलने ही वाला था कि सहसा क्रिस्टी फिर बोल पड़ी—"तुमने नीलिमा को देखा नहीं है...वह देवी है...देवी!"

नीलिमा का नाम सुनते ही जैसे मेरे शरीर में एक बिजली-सी दौड़ गई। अपने को सँभालते हुए मैंने कहा—"नीलिमा? क्या तुम नीलिमा को जानती हो?....."

"हाँ......आज से नहीं बहुत दिनों से......"

जाने क्या मेरे जी में आया। मैंने अपने सारे पत्रों का पुलिन्दा उसके सामने फेंक दिया। वह एक-एक कर सब पढ़ गई। सारे पत्र पढ़ लेने के बाद वह एकदम बिजली की तरह काँपने लगी...बोली—"मुझसे छिपाती थी...दुष्ट कहीं की!......"

क्रिस्टी ने दाँत पीसते हुए कहा और उठ कर चली गई।

मैं कमरे में वैसा ही पड़ा रहा। सहसा घड़ी में बारह की घण्टियाँ बज गईं। मेरी तन्द्रा जैसे टूट-सी गई। मैं दरवाजे की ओर देखने लगा। सहसा एकदम से भभकने वाली लपटें सामने बग़ल वाले बंगले से उठने लगीं। रेलवे इन्जीनियर चीख़ने लगा। सब लोग दौड़ पड़े। वहाँ पहुँचा तो देखा कमरा बन्द था। आगे के दरवाज़े किसी प्रकार तोड़े। तब तक और लोग आ गये थे।.....

भीतर जाने पर देखा एक स्त्री आग में लिपटी जल रही थी। किसी ने उस पर कम्बल डाल दिया लेकिन जाने क्या था उस आग में कि कम्बल भी जल रहा था। यह देखकर मैंने कम्बल खींच लिया...... लपटों में मैंने उसकी नायलान की साड़ी भी खींचनी चाही.....वह चिल्ला रही थी। शायद वह नंगी होना नहीं चाहती थी लेकिन मैंने उसके शरीर से वह लिपटी हुई साड़ी अलग की। उसे उठा कर बाँहों में लेकर पलंग पर लिटा दिया......मेरे दोनों हाथ जल गये थे......मेरा चेहरा भी झुलस गया था और वह पियानो वाला कमरा जल रहा था। उसकी तेज़ लपटों को देखती हुई क्रिस्टी जंगले पर दिखाई पड़ रही थी। सारा शरीर जले जाने से भुनी मछली की तरह स्त्री पलंग पर तड़प रही थी......और लोग आग बुझाने में लगे थे...... मैं भी उसी पलंग के पास मुँह लटकाए ज़मीन पर बैठा था......थोड़ी देर बाद जैसे उसे होश आया......उसने मुझे देखा......मैं ने उसे......और उसने कहा—"मैंने लिखा था न कि मैं बारह बजे रात आऊँगी...मैं आ गई..."

मैंने उलट कर देखा......एक झुलसा हुआ चेहरा......एक आफ़तज़दा चेहरा...जिस पर एक नहीं न जाने कितने क्रास बने थे। मेरे मुँह से एक चीख़-सी निकल गई। वह मर चुकी थी...और पास में खड़ा हुआ रिटायर्ड रेलवे इन्जीनियर कह रहा था—"एण्ड सो शी इज़ डेड...."

मैंने पहली बार उसे देखा ....वह रिटायर्ड इन्जीनियर बोला......

"मुझे क्या देखते हो मैं इसका पति

(शेष पृष्ठ १२१ पर)

काठ की घंटियाँ
(प्रतिनिधि रचनाएँ)

ले० : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, मूल्य : ७)

इधर भारतीय ज्ञानपीठ, काशी ने हिन्दी नवलेखन की प्रतिनिधि रचनाओं का प्रकाशन कर जो एक नया आदर्श हिन्दी प्रकाशकों के बीच स्थापित किया है वह प्रशंसनीय है। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना की प्रतिनिधि रचनाओं का प्रस्तुत संकलन भी इसी प्रकार का एक महत्वपूर्ण प्रकाशन है।

सर्वेश्वर ने एक लम्बे अर्से से लिखा है और काफी लिखा है। गद्य-पद्य सभी क्षेत्रों में उनकी लेखनी ने स्थायी एवं जीवन्त चित्र खींचे हैं। "काठ की घंटियाँ" इन्हीं सभी प्रकार की रचनाओं का संकलन है जिसका सम्पादन सप्तकों के सम्पादक एवं हिन्दी की नई कविता के आन्दोलन के अग्रदूत 'अज्ञेय' ने किया है। सम्पादक 'अज्ञेय' ने सर्वेश्वर के विषय में जो भी लिखा है, वह सत्य ही है। सर्वेश्वर में एक साथ ही कवि, कहानीकार, चिन्तक एवं उपन्यासकार की प्रतिभा का गठबन्धन हुआ है। इस संकलन की कहानियों में कुछ कहानियाँ अत्यन्त भावपूर्ण एवं जीवन के कठोर अनगढ़ स्वरूप को कला की भंगिमाओं के साथ उपस्थित करने में समर्थ हुई हैं। "बरसात अब भी आती है" शीर्षक खण्ड में संग्रहीत कहानियों में "बरसात अब भी आती है" "मौत की आँखें", "पत्थर के फूल", "प्रेम-विवाह" "डूबता हुआ चाँद" इत्यादि कहानियाँ सर्वेश्वर के श्रेष्ठ कथा-तत्व की परिचायिका हैं। हिन्दी की नई कहानी जिस गति से आगे बढ़ रही है उसी धारा में इन कहानियों का योगदान भी कम महत्वपूर्ण नहीं माना जायेगा।

समाज की विषमता एवं सामान्य मध्यवर्ग के आर्थिक, मानसिक एवं सामाजिक प्रश्नों को वाणी देकर सर्वेश्वर ने इन कहानियों के स्तर को जहाँ ऊपर उठाया है, वहाँ उसे अत्यधिक संवेद्य बनाने का भी प्रयत्न किया है। सर्वेश्वर के साहित्यिक रूप में इन्हीं सामाजिक विषमताओं के प्रति जेहाद का स्वर है—

फलतः उनकी कहानियाँ एवं कविताएँ सभी एक विशिष्ट परिचित संवेदना से ओत-प्रोत हैं जिन्हें पढ़ कर साधारण पाठक की भी अनुभूति एकत्व स्थापित कर पाती है। नई कविता के प्रति जिस दुर्बोधता, अस्पष्टता और बिम्बों के अपरिचित रहने का दोषारोपण किया जाता है, सर्वेश्वर की रचनाएँ उनसे सर्वथा मुक्त हैं। "काठ की घंटियाँ" खण्ड की कविताओं में कवि की संवेदनशील वृत्ति की स्पष्ट छाया मिलती है। "काठ की घंटियाँ" "नीला अजगर", "ताम्बे के फूल", "नये वर्ष पर", "एक प्यासी आत्मा का गीत" "घास काटने की मशीन", "प्लेटफार्म", "सब कुछ कह लेने के बाद" इत्यादि कविताओं में आधुनिक जीवन की असंगतियों, गत्यावरोधों एवं जीवन की जटिलताओं की व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। मानवता के लिए सर्वेश्वर में एक तड़प है—वह चाहते हैं—पुरातन की पृष्ठभूमि में नये क्षितिज का निर्माण किया जाय। कवि की वाणी में विद्रोह है, मर्म की पुकार है और इसी बीच वह व्यंग्य और कटाक्षों के तीर भी छोड़ता है जो सड़े हुए समाज के लिए नश्तर का काम करता दिखाई देता है। परम्परा के प्रति रूढ़िग्रस्त न होकर भी सर्वेश्वर के कवि का स्वर अपरम्परित नहीं है। उन्होंने कुछ सुन्दर एवं मार्मिक गीतों की भी रचना की है जो नये भाव-बोध के साथ सहज एवं स्वच्छन्दवादी भावभूमि पर अवतरित हुए हैं। इनमें एक नयी एवं सर्वथा अछूती रस-धारा का वहाव है। "मैंने आवाज दी है" 'सुहागिन का गीत", "चरवाहों का गीत", "झूले का गीत" इत्यादि गीतों की रचना ग्राम्य-गीतों की पृष्ठभूमि पर की गई है। हिन्दी की नयी कविता यदि यही है जो सर्वेश्वर की रचनाओं में दिखाई पड़ती है तो शायद नई कविता के विरोधी भी इससे सहमत होंगे। सर्वेश्वर की कविता सहज हृदयग्राही एवं संवेदनशील कवि के मार्मिक उद्‌गार के रूप में स्वीकृत की जायगी।

इस संग्रह में एक लघु उपन्यास 'सोया हुआ जल' भी है जो हिन्दी का प्रथम सिनेरियो-शिल्प पर आधारित उपन्यास है। प्रयोग की नवीनता के लिए यह भले ही महत्वपूर्ण माना जाय पर कथा-तत्व एवं संवेदनशीलता की दृष्टि से यह सफल रचना नहीं कही जा सकती है। कथा-तत्व उखड़ा-उखड़ा लगता है और ऐसा प्रतीत होता है कि लेखक ने प्रयोग के कौतूहल से ही प्रभावित होकर इसकी रचना की है। प्रश्न जो भी उठाये गये हैं, वे सर्वेश्वर की कविताओं में भी आये हैं, पर उनका सम्यक निर्वाह इस उपन्यास में नहीं हो सका है।

कुल मिला कर "काठ की घंटियाँ" एक प्रकार से तीन पुस्तकों का संश्लिष्ट रूप प्रस्तुत करती है। ज्ञानपीठ ने सर्वेश्वर की कृतियों को प्रकाशित कर सर्वेश्वर के पाठकों की माँग की पूर्ति तो की ही है, हिन्दी साहित्य के भण्डार को एक सफल एवं जीवन्त कृति देकर समृद्ध करने का भी प्रयत्न किया है।

—प्रो० कृष्णनन्दन 'पीयूष'

मैं गूँगा देवता
(कविता-संग्रह)

कवि : राम सेवक श्रीवास्तव, प्रकाशक : शतदल प्रकाशन, अलीनगर, गोरखपुर, मूल्य : २।)

प्रस्तुत काव्य-संग्रह का विज्ञापन जब मैंने इधर-उधर पढ़ा था, तब मुझे कुछ अजब-सा

इसका नाम लगा था। मैं स्पष्ट रूप से स्वीकार करना चाहता हूँ कि इस नाम ने मुझे काफी चौंकाया था; इसलिए भी कि इस शीर्षक का अर्थ मेरे मन में उभर नहीं सका था। पर आज सुस्थिर होकर सोचता हूँ तो लगता है कि हमारा नवलेखन इस अर्थ में अत्यन्त विशिष्ट है कि उसकी यह माँग है कि बिना उसे भलीभाँति देखे, समझे एवं जाने उसके बारे में कोई टिप्पणी या प्रतिक्रिया प्रकट न की जाय (जबकि आज के अधिकांश नये काव्य के पुराने आलोचक यही करते हैं!)। पुरानी कविता का शीर्षक सुनते ही एक प्रकार की अभ्यस्त प्रतिक्रिया जाग्रत होने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है, पर नयी कविता इस अर्थ में तो सहज नहीं ही रही। अस्तु, यह संग्रह मिलते ही सबसे पहले मैंने संग्रह की इसी शीर्षक वाली कविता (जो कि अंतिम कविता भी है विवेच्य संग्रह में) को पढ़ कर अर्थ समझना चाहा। कहना न होगा कि शीर्षक एक नयी अर्थवत्ता से भरा-सा लगा।

पूरी कविता पढ़ने के बाद सामान्य पाठक के लिए भी यह समझना दुरूह नहीं है कि देवत्व एक प्रकार की जड़ता की अवस्था है। गूँगापन ही उसे देवता की संज्ञा से बाँधे रहता है। परन्तु उपासक का मंत्रोच्चार, जलपखार, या आँखों के कलश सजा कर मन्दिर को प्रदीप्त करने की जो प्रक्रिया है, वह उस जड़ता को दूर करके एक प्रकार की गति का संचार करती है। उपासक की भावना के आगे वस्तुतः हर प्रतिमा छोटी और बौनी होती है। मध्यकाल के वातावरण में पले व्यक्ति के लिए यह भावना अरुचिकर नहीं करती थी, पर आधुनिकता का झोंका देवत्व को छोड़ने के लिए तैयार है, यदि उसे गतिशीलता मिले जड़ता के स्थान पर। इस प्रकार संग्रह का शीर्षक कवि की आन्तरिक गतिशीलता की कामना को व्यंजित करता है।

गत्वरता के साथ ही आधुनिक व्यक्ति के मन में विवेक का बोध भी जागा है। विवेक का बोध सबसे बड़ा यही है कि वस्तुओं का चाक्षुष प्रत्यक्षीकरण भी असली सच्चाई नहीं देता---उसे छूना-परखना पड़ता है---

धोखा न खाओ बन्धु।
देख कर न निर्णय दो।
आँखों की कही भी अनिश्चित है
मुझे छुवो, परखो, तब जानोगे।

वह बता देता है कि यह जो आँखों में सावन की हरियाली, खिला-खिला हरसिंगार तथा वाणी में अंगूरी रस-गुच्छे या कि व्यक्तित्व के पूरेपन में फूली सरसों की सुषमा है वह सब बाहरी ढक्कन है, भीतर तो छाती पर....(एक भार) है।

इसी आवरण के समान ही आधुनिक जीवन की अन्तर्हीनता, अनिश्चय, वसीयत की कटुता, पहली तारीख की अर्थ (?)-हीनता, पारदर्शी आयनों के दायरे में विवश व्यक्ति आदि विक्षोभक स्थितियों के चित्र संग्रह में यथेष्ट हैं, पर इन सब को संक्रमित करके उठता हुआ वह व्यक्तित्व भी है जो सर्जक मन के रूप में बड़े विश्वास से कहना चाहता है कि जड़ता मेरी नियति नहीं है, निष्क्रियता मेरी परिणति भी कैसे हो सकती है? तथा

लौट आओ ओ सर्जक मन
आँधियाँ उगेंगी फिर
अर्थ पुनः उभरेंगे
मंत्र पुनः गूँजेंगे
बालक तुतलाएगा; बढ़ेगा; बड़ा होगा।

अलग-अलग ऐसी ही आस्थापूर्ण (अनास्थापूर्ण भी) कविताएँ संग्रह में उपलब्ध हो जाती हैं ।

परन्तु साथ ही इस संग्रह के कतिपय अभाव भी छिपे नहीं रहते । मुझे जो सबसे बड़ी कमज़ोरी लगी वह यह कि प्रस्तुत संग्रह के आधार पर कवि का एक निश्चित व्यक्तित्व उभरता नहीं प्रतीत होता । यह कमी कविताओं के सम्पूर्ण संगठन (उपकरण एवं उपादान) में दिखाई देती है । बहुत गहरा क्षोभ भी उसमें नहीं है और बड़ी प्रखर विश्वास या शक्ति की भावना भी दृष्टिगोचर नहीं होती । शिल्प की दृष्टि से कच्चापन और अधिक है । वह उर्दू के अनुकरण पर रुबाइयाँ भी लिखता है, कुछ गीत जैसी चीज़ें भी लिखने की चेष्टा की गयी है, पर मुझे लगा है कि इन दोनों ही माध्यमों में लिखी गयी कविताएँ संग्रह की सबसे कमज़ोर रचनाएँ हैं । 'नयी कविता' के शिल्प की भी एक रुढ़ि बनती जा रही है । इस रूढ़ि में एक ओर तो अज्ञेय की सम्बोधन वाली शैली (जो स्वयं उन्हें छायावाद और प्रगतिवाद से उत्तराधिकार में मिली है ।) का प्रचुर उपयोग होता है एवं दूसरी ओर बिम्ब निर्माण की ओर अधिक ध्यान दिया जाता है । 'मैं गूंगा देवता' संग्रह में इन दोनों रूढ़ियों को अपनाने का प्रयास किया गया है । इसके साथ ही कुआँ खुदवाने, पीपल लगवाने, अमोले गाड़ने आदि लोक-जीवन के प्रतीकों, शब्दों या अभिप्रायों का प्रयोग भी हुआ है । इस रूढ़ि के भीतर ही अभिव्यक्ति होने के कारण इसमें कभी अज्ञेय या भवानी मिश्र का स्वर गूँजने लगता है । यों नये उपमानों एवं बिम्बों का प्रचुर उपयोग यह भी सूचित करता है कि कवि यदि थोड़ा-सा और सचेष्ट हो जाय एवं अनुशासन की ओर गहरी मर्यादा स्वीकार करे तो शिल्प के क्षेत्र में नितान्त मौलिक हो सकता है । चिटखती उमर के गमले, टूटी चूड़ी-सी बात, आँच बोती हुई पछुवा, रोशनी की नयी बच्ची, सुधियों के हाँकते हुए बछड़े, दृष्टियों की झील आदि मनोहर काव्य-प्रयोग माने जाने चाहिए । अन्तहीनता मेंहदी की मौत, वसीयत, मैं गूंगा देवता, अपरिचित, प्रश्न, परकीयता का दर्द, ओ सर्जक मन, विदा के पहले, स्वीकार आदि संग्रह की श्रेष्ठ कविताएँ हैं जो कि आधुनिक काव्य के पाठक को सहज ही प्रिय लगेंगी । ४३ कविताओं वाले इस संग्रह की सराहना होनी ही चाहिए ।

—डॉ० देवीशंकर अवस्थी

अमावस और जुगनू

(उपन्यास)

ले० : राजेन्द्र प्रसाद सिंह ; प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली ; मूल्य : ८)

डिमाई साईज के चार सौ तिरसठ पृष्ठों के इस वृहद्काय उपन्यास के लेखक श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने हिन्दी कथा-साहित्य के क्षेत्र में इस कृति के द्वारा ही प्रवेश किया है । इसके पूर्व वे एक जीवन्त कवि के रूप में चर्चित रहे हैं । अतः उनकी इस प्रथम गद्य कृति को देखने की मेरी प्रबल उत्सुकता थी और अब वह पूर्ण अवलोकन के पश्चात् शमित भी हो गयी है ।

'अमावस और जुगनू' जैसे वृहद्काय उपन्यास को 'इन्दुमती', 'कब तक पुकारूँ',

परती : परिकथा, 'भूले बिसरे चित्र', 'खाली कुर्सी की आत्मा', 'सतीमैया का चौरा', 'बूंद और समुद्र' की परम्परा मिली है, उसे पढ़ने के बाद एक बात मुझे खटकी है, वह यह है कि जहाँ उपर्युक्त रचनाओं में (इन्दुमती को छोड़ कर) लेखकों ने कथातत्व की अक्षुण्णता को बनाये रख कर अपनी रचना को पर्याप्त मनोरंजक रखा है वहाँ राजेन्द्र की यह आलोच्य-कृति मनोरंजक न होकर शुष्क हो गयी है। कभी-कभी इसे पढ़ते समय बिना पढ़े पन्नों को उलट देने की इच्छा हुई है---पर आलोचना के दायित्व ने इसे पढ़ने को बाध्य ही किया है। अनेकानेक उद्धरणों, पर्याप्त सिनेमा-गीतों, विश्लेषणों (प्रयोगों) से यह रचना इतना अधिक भाराग्रस्त हो गयी है कि कथा की तन्वगी लता टूटती-सी दिखाई देती है। राजेन्द्र की इस पुस्तक को पढ़ते समय मुझे लगा जैसे यह उपन्यास उद्धव के ज्ञान की गठरी का पर्याय बन गया है---इसे राधा की कमनीयता का बोध नहीं हो सका है। राका रजत, साही, मयंक, जितने भी पात्र हैं वे अत्यन्त विचक्षण एवं प्रातिम हैं---पर "श्वेत कमल की सिहरती कली-सी सुकुमार" राका का चित्रण जिस रूप में उपन्यासकार कर रहा है---वह प्रशंसनीय नहीं है। वह कोमल और भावुकता की प्रति-मूर्ति होकर भी सहज, सुबोध एवं ग्राह्य नहीं है। राजेन्द्र जी ने इन पात्रों के साथ जो भी किया है वह अप्रत्याशित ही हुआ हो ऐसी बात नहीं; कथित प्रयोग और असाधारणता के चक्कर में पड़े हुए हिन्दी के कथाशिल्पी यही कर रहे हैं---यह देखा जा रहा है।

लगता है राजेन्द्र के सामने इस उपन्यास को लिखते समय लक्ष्य इन पात्रों की पूर्णता का नहीं था वरन् इन पात्रों के माध्यम से अपनी बहुज्ञता एवं विधात्मक प्रतिभा का प्रदर्शन ही था। फलतः एक कोमल आधारभूमि पर आधारित होकर भी "अमावस और जुगनू" अपना प्रभाव मस्तिष्क पर ही छोड़ पाता है---हृदय पर उसका प्रभाव नहीं पड़ता है। बिहार के मध्यवर्गीय जमींदार परिवार की कहानी के माध्यम से लेखक ने एक विशेष वर्ग की मानसिक कुण्ठा और उसके लघु आयामों में जकड़े हुए संकीर्ण भावबोध का सम्यक निदर्शन भर उपस्थित किया है। सूरज, मयंक, रजत, राका इसी समाज के हैं---जो मध्यवर्ग बुद्धिवादी और रसग्राही प्रारम्भ से ही रहा है। राका इसी बीच पली है---फलतः वह भावुक है---पर सिनेमा गीतों के प्रभाव में कुछ सस्ती हो गई है जो अपेक्षित नहीं था, रजत अपने अल्प वय में ही इतना अधिक बौद्धिक कैसे हो गया है, यह आश्चर्यजनक है। मैट्रिक की परीक्षा में असफल होने वाले इस किशोर नायक के मुख से जिन पंक्तियों को लेखक ने उगलवाया है---वह यह पता देते हैं कि देश, काल का व्यवधान भी अब समाप्त हो रहा है। प्रयोगों के लक्ष्य से प्रेरित नये प्रयोगकर्ता देश-काल के आयामों को भूल कर हास्यास्पद हो जाते हैं।

इस प्रकार के अनेकानेक स्थल इस उपन्यास में सहज ही मिल सकते हैं---जिसमें लेखक की व्यावहारिक दृष्टि की अपरिपक्वता का बोध होता है।

इन दिनों हिन्दी के तरुण कवियों को उपन्यास लिखने की चाव लग गयी है, उसका कारण अपनी जीवन-रेखा की अभिवृद्धि के साथ-साथ त्वरित यश की आकांक्षा भी है।

फलत: आये दिन हिन्दी के कवियों का कोई-न-कोई उपन्यास प्रकाश में आता जा रहा है। कवि राजेन्द्र प्रसाद सिंह जी भी इसके अपवाद नहीं हैं। "अमावस और जुगनू" को पढ़ते समय ऐसा आभास ही नहीं विश्वास भी होता है कि "अमावस और जुगनू" का लेखक एक उवर मस्तिष्क वाला पुष्ट चिन्तक। सफल कवि, एवं कुशल शब्द-शिल्पी अवश्य है पर वह एक सफल उपन्यासकार कदापि नहीं है। इतनी भारी-भरकम पुस्तक का अध्ययन मस्तिष्क को थकाता है, चेतना प्रदान नहीं करता। मावस के घिरे अन्धकार की अतिशयता के बीच लेखक का इच्छित जुगनुओं का प्रकाश अपनी प्रभा बिखेर नहीं पाता, इसका कारण लेखक की दिशा-दृष्टि का अनिश्चय ही है। अनिश्चय और शंकाओं की घाटियों में भूली-भटकी आज की नई पीढ़ी को लेखक से किसी सुलझे विचार की आशा थी जो यहाँ संभव नहीं हो सका। मैं श्री राजेन्द्र प्रसाद सिंह जी से भविष्य में किसी लघु उपन्यास की माँग करूँगा जो उनके जीवन-दर्शन और काव्य की पृष्ठभूमि की व्याख्या न होकर शुद्ध आनन्दवादी धरातल की औपन्यासिक कृति होगी।

——प्रो० कृष्णनन्दन 'पीयूष'

समीक्षार्थ-प्राप्त साहित्य

१ भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद

१ साहित्य-रूप : डॉ० राम अवध द्विवेदी
२ परिवेश : हम तुम : कुँवरनारायण

२ बंगाल हिन्दी मण्डल, कलकत्ता

१ राजस्थानी कहावतें : डा० कन्हैयालाल सहल

३ ज्ञानपीठ प्राइवेट लिमिटेड, पटना

१ आधुनिक भाषा विज्ञान : पद्मनारायण

४ हिन्दी साहित्य संसार, दिल्ली

१ हिन्दी साहित्य और उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ : डॉ० गोविन्दराम शर्मा
२ प्रेमचन्द और गाँधीवाद : रामदीन गुप्त
३ घाटी की परियाँ : खलील जिब्रान अनु० भाईदयाल जैन
४ राजस्थानी साहित्य; परम्परा और प्रगति : डा० सरनामसिंह शर्मा
५ काव्य-विवेचन : देशराज सिंह भाटी
६ खाट पर हजामत : रोशनलाल सुरीर वाला
७ करुण रस : डा० ब्रजवासीलाल श्रीवास्तव

५ अखिल भारत सर्व सेवा संघ प्रकाशन, काशी

१ लोक राज्य : शंकर राव देव
२ कपास : दादा भाई नाईक

६ नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली

१ घाटियाँ और घुमाव : श्री महेशचन्द्र शर्मा
२ रामचरित मानस और साकेत : परमलाल गुप्त
३ आदिम मानव समाज : भूपेन्द्र नाथ सान्याल
४ सोवियत संघ की लोक कथायें : प्योत्र अलैकटेविच वारानिकोव
५ सत्यानाशी के फूल : सूर्यकुमार जोशी
६ कार्तिकेय : विराज
७ माँ : सूर्यनारायण अग्रवाल
८ टैसीटोरी : यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'
९ झूठी शान : यादवेन्द्र शर्मा 'चन्द्र'

७ शैलाभ प्रकाशन, पटना

१ हत्या : द्वारका प्रसाद

८ साहित्य भवन (प्रा०) लि०, इलाहाबाद

१ मध्यकालीन श्रृंगारिक प्रवृत्तियाँ : परशुराम चतुर्वेदी

२ साहित्यपथ : परशुराम चतुर्वेदी

३ शिला पंख चमकीले : गिरिजाकुमार माथुर

९ नेशनल एकाडमी, दिल्ली

१ आधुनिक समाज में वर्ग : अनु० सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

२ हमारे युग की क्रान्ति : अनु० सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

१० ज्योति प्रकाशन, पांडिचेरी

१ आरती : विद्यावती कोकिल

११ किताब महल प्रकाशन, इलाहाबाद

१ नन्हीं चिड़िया : शकुन्तला सिरोठिया

२ बैताल पचीसी : रामेश्वर प्रसाद मेहरोत्रा

३ परदे के पीछे : किशोर साहू

४ पगडण्डी और परछाइयाँ : कुलभूषण

५ उजड़े घर : विश्वम्भर 'मानव'

६ आस्था और सौन्दर्य : डॉ० रामविलास शर्मा

१२ मालव लोक साहित्य परिषद, उज्जैन

१ हरियाली आँचल : गीतकार श्री हरीश निगम

१३ हिन्दी प्रचार सभा, मथुरा

१ गीत मेरे गीत तेरे : श्री त्रिलोकी नाथ ब्रजवाल

१४ व्यंजना, कलकत्ता

१ एक विन्दु अनेक कोण : अवधनारायण सिंह

२ फन्दा : छेदीलाल गुप्त

१५ साहित्यालय, इन्दौर नगर

१ आधुनिक भारत और गीता : नि० छ० जमीदार

१६ मध्य प्रदेश मोतीलाल नेहरू जन्म शताब्दि समारोह समिति, भोपाल

१ मोतीलाल नेहरू : सेठ गोविन्द दास

१७ त्रिपथगा ग्रन्थमाला, कलकत्ता

१ जीवन दान : सीताराम ● ●

(पृष्ठ ११४ का शेष : मरने के पहले और मरने के बाद)

हूँ प्रकाश......"

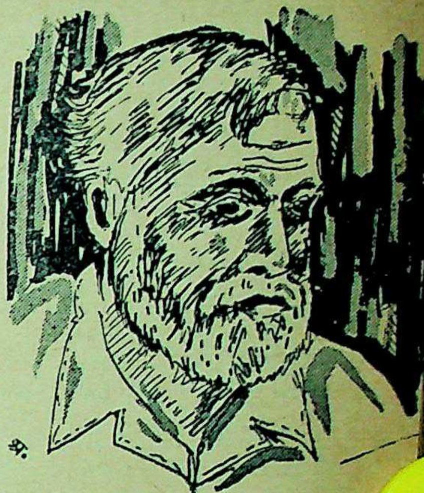
"प्रकाश......" एक विस्मय में डूबा यह स्वर मेरे मुँह से निकल गया। मुझसे वहाँ खड़ा नहीं रहा गया। मैं भाग कर अपने कमरे में आया......कमरे के दरवाज़े पर ही मुझे क्रिस्टी मिली। उसके हाथ में एक तार का लिफ़ाफ़ा था। बिना कहे ही उसने मुझे दे दिया......शोभा मर गई थी.... उसकी भी सूचना थी .....

"एण्ड सो, शी इज़ डेड"---मेरे मुँह से निकल गया।

"एण्ड आई एम अजित"---जैसे यह भी मेरे मुँह से निकलने वाला था......

और आज एक हफ्ते बाद......न मैं मर चुका हूँ न जिन्दा हूँ......न मेरे हाथ में पोटेशियम साईनाईट की शीशी है न लेटर पैड, न क़लम, न फीकी बिजली की रोशनी...न बिल्ली के बच्चे जैसा कंजी आँखों वाला अन्धेरा...न तब से क्रिस्टी ही आई है और न मेरे जंगले के सामने वाले जंगले पर कोई बैठ कर पियानो ही बजाता है.... ● ● ●

मृत्यु : एक माध्यम



(१)

अंग्रेजी साहित्य के अमरीकन 'पापा', अर्नेस्ट हेमिंग्वे, इसी मास चल बसे। 'चल बसे' भारतीय मुहावरा है जो जीवन के सतत आवागमन का द्योतक है। मालूम नहीं, स्वयं हेमिंग्वे 'बसने' के भाव को मानते थे या नहीं, लेकिन मृत्यु के छोर तक चलते रहना और वहाँ पहुँच कर ही दम लेना वह कहानी की कृतार्थता मानते थे : "सारी कथाएँ, यदि उन्हें दूर तक जारी रखा जाये, तो अन्त में मौत की घटना तक जा पहुँचती हैं। जो व्यक्ति कथा की इस परिसमाप्ति को आपसे छिपा रखे, वह सच्चा कहानीकार नहीं।"

हेमिंग्वे ने जीवन को मौत के माध्यम से ही जाना-पहचाना। लगभग ४५ वर्षों तक वह साहित्य पर छाये रहे। उनके प्रायः सभी उपन्यासों में उद्दाम, रूखे, सहज, सशक्त जीवन का चित्रण है, जिसे मौत का साहचर्य यथार्थ और पुष्ट बनाता है। हेमिंग्वे साहित्यकारों की उस पीढ़ी के अगुवा थे जो महायुद्धों की विभीषिका के बीच जिई और जिसने सामाजिक मूल्यों की अवमानना के बीच अपनी राह खोजी। राह खोजी और भटकी और खो गयी। और इस तरह जिसने 'लौस्ट जनरेशन' की संज्ञा पायी। हेमिंग्वे के कथा-नायक चाहे स्पेन में गृह-युद्ध लड़ते हों, या सांडों से मल्ल- युद्ध करते हों, या डाकुओं के साथ पिस्तौल का खेल खेलते हों या नारी नाम की लचीली, निस्तेज वस्तु से प्रणय करके अपने उद्धत पौरुष को अभिव्यक्ति देते हों या, इस सब के बीच युद्ध और हिंसा की अग्निवर्षा में दम तोड़ते कंकालों और लाशों को घृणाभरी ऊब के साथ लाँघते-लपकते निरुद्देश्य बढ़ते जा रहे हों—सब प्रकारान्तर से हेमिंग्वे के ही प्रतीक हैं, उसकी अपनी अनुभूतियों के साक्ष्य हैं।

प्रत्यक्ष अनुभूत स्थितियों के चित्रण को ही हेमिंग्वे ने साहित्य का प्राण माना है। लेकिन चित्रण और शैली के क्षेत्र में हेमिंग्वे ने जो दिया वह आधुनिक साहित्य की एक प्रमुख उपलब्धि है। सीधा, रूखा, सबल वाक्य जिसमें न विशेषणों की सजावट, न आवेगों की आरोपित गरमाई, फिर भी जिसका संघात अचूक और अद्भुत। दो पीढ़ियों ने इस शैली की नकल करने की चेष्टा की, खूब नक़ल की, किन्तु हेमिंग्वे अद्वितीय रहे। अलंकारों और अवगुण्ठनों में ढँकी अभिव्यक्ति के कटाक्षों को हम जानते हैं। लेकिन सानचढ़ी नंगी तलवार की काट का आनन्द कुछ और ही है, यह हमने हेमिंग्वे को पढ़ कर जाना। और जाना कि इस सरल-सबल, रुक्ष प्रांजलता के सृजन में हेमिंग्वे को इतना श्रम करना पड़ता था कि एक अध्याय का संशोधन कभी-कभी ३०, ४०, ५० बार भी हो जाता था।

हेमिंग्वे को जिस रचना पर साहित्य का नोबेल पुरस्कार मिला वह एक छोटा-सा उपन्यास है, 'द ओल्डमैन एण्ड द सी' जो कथ्य और शैली की दृष्टि से लेखक की सर्वोत्तम कृति है। इस उपन्यास का नायक बूढ़ा मछुआ सैंटियागो समुद्र पर मछली पकड़ने गया है। वह एक बड़ी मछली को पकड़ने के लिए तीन दिन तक उससे और समुद्र की लहरों से घोर संघर्ष करता है और विजयी होता है। मछली को पकड़ कर किनारे पर लाता है तो पाता है कि वह उससे प्यार करने लगा है। प्यार करने लगा है, इसीलिए वह उस मछली को निःसंकोच मार भी डालता है—'इफ़ यू लव हिम, इट इज़ नॉट ए सिन टु किल हिम!' बड़ी विकट बात है। लेकिन, न मालूम कैसे समूचे उपन्यास की पृष्ठभूमि में जीवन के सौन्दर्य की प्रतीक इस महान मछली का मृत्यु के माध्यम से किसी सर्वव्यापी सत्ता के साथ एकात्म हो जाना अस्वाभाविक नहीं लगता।

मौत का यह आकर्षण अजगर की आँखों के नगीनों का आकर्षण है कि दूरस्थ जानवर विवश होकर खिंचा चला आता है और उदरस्थ हो जाता है। कौन कह सकता है कि मौत का यही अनिवार्य आकर्षण जुलाई के उस रविवारीय प्रभात में स्वयं हेमिंग्वे को खींच कर बन्दूक घर में नहीं ले गया था। कहते हैं, हेमिंग्वे ने अपनी चाँदी-मढ़ी चिर-संगिनी दुनाली बन्दूक साफ़ करने के लिए निकाली थी। नली को ओठों में भींच गोली निकालने के लिए जब लिवर ऊपर उठाने लगे तो बन्दूक दग गई और खोपड़ी उड़ गई।

जीवन कितना लम्बा और जीवन को जीने का व्यापार कितना तूल-तवील, लेकिन मृत्यु? एक सिमटी-सी, क्षणिक-सी, चीज़; एक ऐसा पल जो अन्तिम होता है और सब कुछ समाप्त कर देता है। किन्तु कौन कह सकता है कि मौत सचमुच ही अन्त है। व्यक्ति का अन्त चाहे वह हो भी, किन्तु व्यक्तित्व के तो प्रसार का ही माध्यम है वह।

इसीलिए हम हेमिंग्वे की चर्चा आज विशेष रूप से कर रहे हैं। आज २१ जुलाई को वह तिरसठ वर्ष के हो गये होते। क्या हेमिंग्वे के उपन्यासों में वर्णित जीवन का बेलाग नैसर्गिक व्यापार और सर्वव्यापी मृत्यु के प्रति यह निर्भय निरपेक्ष दृष्टि, सचमुच उसकी अपनी दृष्टि और मान्यता है? तो फिर क्या है जो आदमी को अन्दर से तोड़ता है, भयाक्रान्त करता है, चिड़चिड़ा बनाता है

और अपनी उपलब्धियों की निःसारता का आभास दे देकर समूचे जीवन को निष्क्रिय और निष्फल बना देता है? जीवन क अन्तिम दिनों में हेमिंग्वे इसी प्रकार की स्थिति में पहुँच गये थे। क्या शरीर और स्नायुओं की सबल प्रक्रिया ही के संदर्भ में जीवनधारी अपने जीवन का मूल्य आँक सकता है? हेमिंग्वे की अपनी ही उक्ति है :

"मैन इज़ नॉट मेड फ़ॉर डिफ़ीट। ए मैन कैन बि डैस्ट्रोयड बट नॉट डिफीटेड।"

(२)

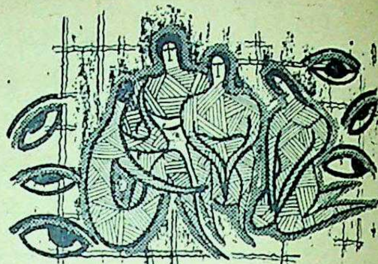
हेमिंग्वे की मृत्यु के प्रसंग में, एक दूसरी मौत का ध्यान आता है, विशेषकर इसलिए कि उस मृत्यु ने हेमिंग्वे को हिला दिया और उस की छीजती शक्तियों को आघात पहुँचाया। हाल ही में घटित यह मृत्यु हेमिंग्वे के आत्मीय मित्र, हॉलीवुड के विश्वविख्यात स्टार गैरी कूपर की थी। दोनों मित्रों ने जीवन के चलते हुए प्रवाह में अवगाह किया जिसके दोनों तटों पर प्रकृति का खुला प्रसार था—जहाँ घुड़दौड़, मल्लयुद्ध, शिकार, सूर्य-स्नान बन्दूकें और हुर्रा कहने वालों की कतारें थीं। हेमिंग्वे की दाढ़ी और गैरी कूपर का हैट, जनता के मन में दोनों के व्यक्तित्वों के संकेत-चिन्ह बन गये हैं। पिकासो ने बड़े प्यार से कूपर-स्टाइल का हैट गैरी कूपर से मांगा था और पाया था।

हेमिंग्वे और गैरी कूपर के कार्य-क्षेत्र यद्यपि अलग-अलग थे, दोनों ने अपनी शैली की विशेषता के लिए एक-से मानदण्डों को अपनाया और शैली के निजी माध्यम में अद्वितीय सफलता पाई। गैरी कूपर ने अभिनय को अधिक से अधिक सरल और सहज बनाने का प्रयत्न किया। नोकीले उभार उसे पसन्द नहीं थे। अति नाटकीयता से उसे चिढ़ थी। भावनाओं और आवेगों की सच्ची अनुभूति की सरल अभिव्यक्ति ही उसका लक्ष्य था। हेमिंग्वे की सृजन-प्रक्रिया भी यही थी।

लेकिन मौत का साक्षात्कार दोनों ने अलग-अलग ढंग से किया। गैरी कूपर मृत्यु से पहले लगभग एक साल तक कैन्सर के रोगी रहे। शुरू में डॉक्टरों ने उन्हें नहीं बताया कि रोग क्या है किन्तु जब रेडियो सक्रिय-कोबाल्ट का इलाज आवश्यक हो गया, तब गैरी कूपर को पता लग गया कि मौत अवश्यम्भावी है, और प्रत्येक पल मृत्यु की यात्रा की ओर उन्मुख है। बहुत धीरज और तटस्थ भाव से उसने मौत की प्रतीक्षा की। जिस दिन गैरी कूपर की मृत्यु का समाचार फैला, संसार शोक-मग्न हो गया।

स्वस्थ शरीर—दुर्बल मन, दुर्बल शरीर-स्वस्थ मन दोनों की अन्तिम परिणति मृत्यु है। जीवन के सन्दर्भ में मृत्यु का प्रकार और मृत्यु की पूर्ववर्ती परिस्थिति कितनी ही महत्वपूर्ण क्यों न हो, सबसे महत्वपूर्ण बात है यह कि किसी महापुरुष की मृत्यु के माध्यम से हम उसके व्यक्तित्व के किन पहलुओं को पहचानने का प्रयत्न करते हैं और जीवितों के लिए अनुभव के किन नये क्षितिजों की उद्भावना करते हैं।

—यथागत



प्रिय भाई !

'ज्ञानोदय' का जुलाई अंक मिला। अपनी रुचि के अनुकूल सर्वप्रथम कविताएँ उलट कर देखीं। इधर एक अरसे से डा० शम्भुनाथ सिंह की कुछ कविताएँ पढ़ कर जो ताज़गी और 'मुक्ति' महसूस हुई या होती रही है उसका एक नमूना इस बार प्रकाशित उनकी कविता 'निकोलस रोरिक का एक चित्र देखकर' भी है। 'मुक्ति' शब्द का प्रयोग मैंने आधुनिक कविताओं (विशेषकर पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाली कविताओं) को पढ़ने से उत्पन्न ऊब और बासीपन से मुक्ति के लिए किया है। यही कि हर महीने प्रकाशित होनेवाली कविताओं में से अधिकांश पढ़ी नहीं जातीं। जो बिल्कुल ही नये हैं और ध्वनि या शब्द का मर्म जिन्हें नहीं मालूम उनके लिए कविता और ख़ासकर आधुनिक कविता, अपने साथ कवि नाम जोड़ने के लिए बहुत सहज हो गई है। ऐसे में जहाँ कहीं भी कोई एकाएक 'मुक्त' कर देने वाली रचना मिलती है तो यह सब धूल-धक्कड़ झर जाती है। डा० शम्भुनाथ सिंह का गीतकार जहाँ भी आधुनिक कविता के छल से बरी है और सीधी अनुभूति को प्रत्यक्ष कथन से व्यक्त करता है वहीं उनकी कविता सच्चे अर्थों में आधुनिक काव्य का प्रतिनिधित्व कर पाती है। वैसे यह संतुलन उनकी हर कविता (जो इधर प्रकाश में आई हैं) में नहीं दीख पड़ता। उदाहरण के लिए 'ज्ञानोदय' में इस बार उनकी दो कविताएँ प्रकाशित हैं। पहली कविता सचमुच 'मुक्ति' का अहसास देती है और सम्पूर्ण भावेन कविता है। दूसरी कविता आधुनिक होने के मोह में --एक विचार-दम्भ का एक प्रतीक। दूसरी कविता आधुनिकता का

सृष्टि और दृष्टि

छल है—या आधुनिक कविता की जो धूल कवियों के दिमाग में बैठ गई है उसका धुँधला और वैचारिक नमूना है। इसी संदर्भ में 'कल्पना' में प्रकाशित उनकी दो कविताएँ और 'लहर' के किसी अंक में प्रकाशित उनकी एक कविता (जिसका भाव है 'मैं जानता था कि तुम एक दिन ज़रूर आओगी') मुझे याद आती है।

उनकी जिन कविताओं को ध्यान में रख कर मैं यह बात या अपनी यह प्रतिक्रिया दुहरा रहा हूँ—उनमें क्या ऐसा है जो मुझे इस तरह लिखने को बाध्य करता है? व्यक्तिगत रूप से इसमें किसी की आलोचना या समीक्षा मुझे नहीं करनी है। वह है काव्य-मर्म के तीखे क्षण को उतने ही तीखेपन के साथ उतनी ही सहजता और गतिमयता से व्यक्त कर देने की क्षमता। शायद यह कहने का अर्थ यह न निकाल लिया जाय कि मैं आधुनिक कविता (या कविता मात्र) को बहुत ही सहज चीज़ मानता हूँ। कविता में परिश्रम...काट-छाँट...एक-एक कविता को महीनों लिखना..काटते रहना—यह परिश्रम (कठोर परिश्रम) नहीं है। कठोर परिश्रम है काव्य-मर्म के तीखे क्षण को उतनी ही तत्पर उत्कटता के साथ व्यक्त कर लेना कि वह छूट न जाय। उस क्षण की नोक पर लदे बर्फ़ और हरियाली-भरे पर्वत को शब्दों में बाँध देना कि कहीं लुढ़क न जाय। यह नहीं कि उसे छीलते रहें...छीलते ही रह जायँ। और उसका स्वरूप भी बिगड़ जाय।

रचना के प्रति ईमानदारी का यही दबाव और यही पूर्णता इस कविता (निकोलस रोरिक का एक चित्र देखकर) में व्यक्त हुई है। और इस कविता के साथ कोई उपाधि लगाने की ज़रूरत नहीं। वह मात्र कविता है। पूर्ण कविता है। बस।

—दूधनाथ सिंह

पी० ३४, लेक गार्डेन्स, बांगुर पार्क
कलकता

प्रिय भाई,

'ज्ञानोदय' के जुलाई अंक में 'ये घाटियाँ: ये गूँजें' शीर्षक के अन्तर्गत शशिप्रभा शास्त्री की रचना 'एन. सी. सी. लेडी लेफ्टिनेंट की डायरी' बेहद पसन्द आई। १० नवम्बर '५८ तक की डायरी तो साधारण ही लगी—साधारण इस अर्थ में कि इसे कोई पुरुष भी लिख सकता था। पर बाद का अंश? जैसे कहीं बहुत कोमल स्थल पर बिच्छू ने डंक मार दिया हो—यह तिलमिलाहट, बेबस खीझ और आत्म-मंथन, पराजित संयम की आन्तरिक टीस, स्वीकृत मान्यताओं का अनपेक्षित दबाव और उसके नीचे काँच की तरह दरकती हुई मातृत्व की भूख और यौन-कुण्ठा। अतृप्ति की छटपटाहट को इतना सशक्त रूप देने के लिए शशिप्रभा शास्त्री को मैं बधाई देना चाहता हूँ।

—भगवान सिंह

१००।४ ई, काशीपुर रोड, कलकता-२

ज्ञानोदय के जुलाई १९६१ अंक में दूधनाथ सिंह की टिप्पणी के साथ "बंगला की चार आधुनिक प्रेम-कविताएँ" प्रकाशित हुई हैं। जहाँ तक एक भाव पर आधारित कुछ कविताओं और साथ में एक संक्षिप्त टिप्पणी वाली ज्ञानोदय की इस नयी योजना का सवाल है, मैं इसका स्वागत करता हूँ; लेकिन यहाँ

मुझे विशेषकर दूधनाथ सिंह द्वारा प्रस्तुत की गयी इस टिप्पणी और इस अनुवाद के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक बातें कहनी हैं।

टिप्पणी में बंगला कविता के विषय में कई भ्रामक बातें कही गयी हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने **"प्रेम भावना को महत, रहस्, ईश्वरीय आभास की प्रतीकात्मकता"** से नहीं, बल्कि अधिकांशत: **"सहज, साधारण, व्यक्तिगत और लौकिक"** आचार-व्यवहार में ही चित्रित किया है। 'संचयिता' और 'चयनिका' की सारी कविताएँ इस कथन का प्रमाण हैं।

दूसरी बात, दूधनाथ सिंह का यह कथन **"आधुनिक बंगला कविता को परोक्षत: जितनी प्रेरणा जीवनानन्द से मिली है, उतनी रवीन्द्र से नहीं"** अत्यन्त तथ्यहीन है। जीवनानन्द दास, सजनीकान्त दास, सुधीन्द्रनाथ दत्त, प्रेमेन्द्र मित्र, संजय भट्टाचार्य, बुद्धदेव बसु, और विष्णु दे, ये सभी समकालीन कवि हैं, और इन्होंने समान रूप से आधुनिक बंगला कविता को प्राणित-प्रेरित किया है, और ये सभी सापेक्ष-परोक्ष-प्रत्यक्षत: रवीन्द्रनाथ और मात्र रवीन्द्रनाथ से अनुप्रेरित हुए हैं। अगर, रवीन्द्र-प्रभाव से मुक्ति की बात करनी ही हो, तो हमें सुकान्त भट्टाचार्य का नाम लेना चाहिए, जीवनानन्द दास का कथमपि नहीं!

मुझे टिप्पणी से अधिक अनुवाद की बात करनी है। अबू सईद अयूब द्वारा सम्पादित 'पँचिश बछरेर प्रेमेर कोबिता' के पृष्ठ १६३ पर छपी किरण शंकर सेनगुप्त की कविता का शीर्षक है, **"तोमाके भूलिनि आमि"**। दूधनाथ सिंह ने इसका अनुवाद किया है **"मैं तुम्हें भूल चुका हूँ"** जबकि होना चाहिए **"मैं तुम्हें भूला नहीं हूँ"**।

यह तो इब्तदा है। पूरी की पूरी कविता का अनुवाद अज्ञान से भरा हुआ है। जाहिर है, सिनेमा-पोस्टरों और दूकानों के साइनबोर्डों से अनुवादक को अक्षर-ज्ञान तो हो गया है, अर्थ-ज्ञान की शून्यता ही शून्यता परिव्याप्त है। बानगी लीजिये :

किरण शंकर सेनगुप्त की कविता की थीम लाइन है, **"हृदय तोमार आजो कि उतला पाखि ?"** (अर्थात् **"तुम्हारा हृदय क्या आज भी, वही, चंचल पक्षी है ?"** मगर, अनुवादक ने इसे लिखा है, **"आज भी तुम्हारे हृदय में वही फड़फड़ाता हुआ पक्षी बैठा है क्यों ?"**

इसी कविता की पन्द्रहवीं-सोलहवीं पंक्ति है, **"आसे दुर्योग, तार चेये बेशी दामी। हयतो तोमार पुरानो प्रनय नय"**। (अर्थात्, **आता है दुर्योग; इससे अधिक मूल्यवान नहीं है, शायद, तुम्हारा पुरातन प्रणय**) मगर, अनुवादक ने इसे लिखा है, **"दुर्दिन मँडराता है, (मेरे प्यार !) तुमसे भी अधिक मूल्यवान है, तुम्हारा वह प्रथम प्रेम।"**

और १८वीं पंक्ति है, **"अबाधे छिंड़ेछे विमान कुआसा-जाल"**। (अर्थात्, **सहजता से छिन्न-भिन्न कर दिया है वायुयान ने कुहासे का जाल**) मगर, अनुवादक ने इसे लिखा है, **"विमान अबाध गति से बुन रहे हैं कुहासे का जाल"**।

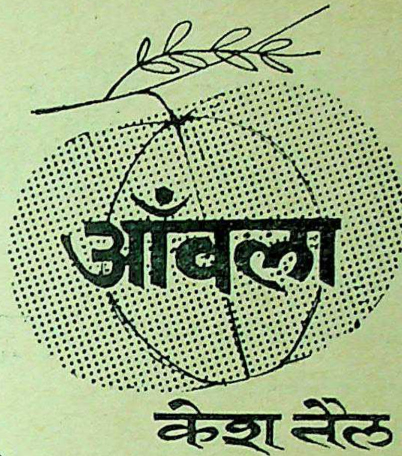
यह तो एक कविता की बात हुई। बाकी तीनों कविताएँ भी इसी तरह अनुवाद की गयी हैं और उनके अनुवाद की भूलें दिखाना चाहूँ, तो पूरी की पूरी कविताएँ अनुवाद करनी पड़ेंगी, जो यहाँ संभव नहीं है।

—राजकमल चौधरी

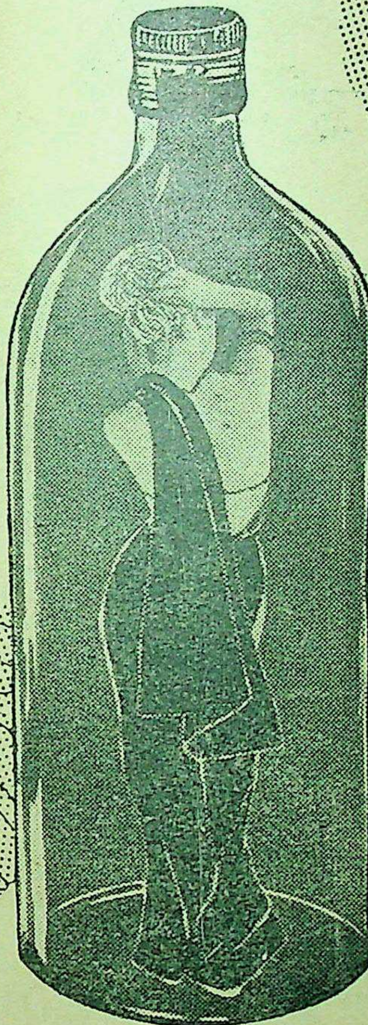
पियारा बगान, डा० पुतियारी पूर्व
कलकत्ता-३३

मनोहर सुगन्ध केश हितकारी

डाबर



केश तैल



केश तेल पसन्द करते वक्त चार बातें ध्यान रखें: सुगन्ध स्निग्धता हितकारिता पोषक तत्त्व

केश-तैलों में आँवले के प्रयोग से केश काले, घने सुदीर्घ और स्निग्ध होते हैं।

डाबर आँवला केश तैल अपनी उत्तमता के लिए सर्वथा वरणीय और स्मरणीय है।

डाबर

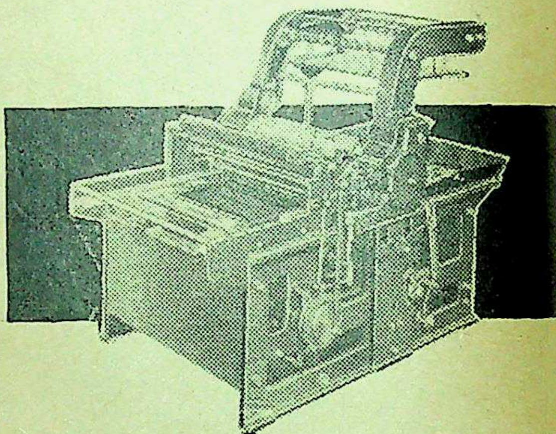
(डा॰ एस॰ के॰ बर्म्मन) प्राइवेट लिमिटेड • कलकत्ता—२६

बड़े काम के उपयुक्त

नई लेटरप्रेस प्रिंटिंग मशीन

ब्रिटानिया — डी. पी. ई. 'जाबर' इंगलेन्ड के डावसन, पाइन ऐन्ड इलियट लिमिटेड के सहयोग से भारत में पहले पहल तैयार की गई है जिसका निर्माण कम खर्च, अधिक दक्षता तथा मेन्टेनेन्स की सहूलियत पर विशेष ध्यान रखकर किया गया है।

यह मशीन एक सरल लगातार चलनेवाली मोटर से चलती है जिसमें चाल को कम या अधिक करने के लिये तीन तुरन्त बदलने लायक पुलियाँ लगी हैं। चलाने की जगह एक ही लिवर है जिससे स्टार्टिंग, इंचिंग और ब्रेकिंग के काम होते हैं। कागज की डेलीवरी चेन ग्रिपर से होती है जिससे छपा हुआ पहलू काम के समय अछूता रहता है।



स्पेसीफिकेशन

कागज की साइजें

स्टैण्डर्ड	: २०"×३०"	(५०८ मिमि.×७६२ मिमि.)
अधिक	: २०"×३३"	(५०८ मिमि.×८३८ मिमि.)
कम	: १०"×१५"	(२५४ मिमि.×३८१ मिमि.)

टाइप-बेड बीयररों के बीच की चौड़ाई	: ३४ १/२"	(८७६ मिमि.)
फार्म बारों के बीच की दूरी	: २६"	(६६० मिमि.)
कुल लम्बाई	: ७'११"	(२४१३ मिमि.)
कुल चौड़ाई	: ५'५"	(१६५१ मिमि.)
कुल ऊँचाई	: ५'८"	(१७२७ मिमि.)

दि ब्रिटानिया-डी० पी० ई०

जाबर



दि ब्रिटानिया इंजिनीयरिंग कम्पनी लिमिटेड

मैनेजिंग एजेन्टस : मैकलाउड ऐण्ड कं० लि०, ३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१

सोल सेलिंग एजेन्टस : इण्डो यूरोपियन मशीनरी कं० प्राइवेट लि०

सर पी. एम. रोड, बम्बई ५, बैंटिक स्ट्रीट, कलकत्ता चाँदनी चौक, दिल्ली ६, माउन्ट रोड, मद्रास

PSBE-15A

सफेद बाल के लिए प्रकृति को दोष मत दीजिये



"महाशय, जब प्रकृतिने ही मेरे बालोंको सफेद कर दिया है, तब किया ही क्या जा सकता है" हम लोग पुरुषोंको ऐसी ही बातों द्वारा विषाद की भावना व्यक्त करते हुए देखते और सुनते हैं। पर जो लोग सफेद बाल के लिए प्रकृति को दोष देते हैं, उन्हें यह जानना चाहिए कि बाल सफेद क्यों हो जाते हैं। अनुसंधान से यह पता चला है कि ९० प्रतिशत मामलों में बाल समय से पहले इस कारण सफेद हो जाते हैं कि उनकी उचित देख-भाल नहीं की जाती। इसके अलावा अस्वास्थ्यकर वातावरण तथा निम्न कोटि के तेलों का अंधाधुंध प्रयोग भी बाल सफेद होने के कारण है!

"लोमा" में, जो अहमदाबाद में सर्वाधिक आधुनिक कारखाने में वैज्ञानिक पद्धति से तैयार किया जाता है, बाल की सफेदी को खत्म कर देने के सभी तत्व मौजूद हैं। **"लोमा"** के लिए क्वालिटी सम्बंधी नियमों का पूरा-पूरा पालन किया जाता है। आज से ही **"लोमा"** का उपयोग करना प्रारंभ कर दें और आप को शीघ्र यह मालूम हो जायगा कि देश तथा विदेश में लाखों लोगों का **"लोमा"** में क्यों विश्वास उत्पन्न हो गया है। स्मरण रखिये
'लोमा' का अर्थ क्वालिटी है—वह क्वालिटी
जिसकी आप आशा रखते हैं।

आकर्षक व्यक्तित्व के लिए

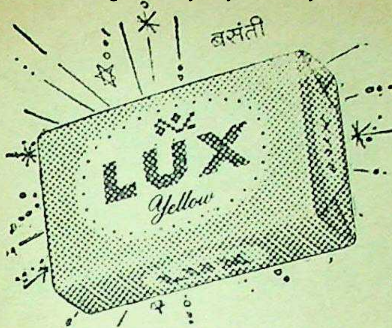


इस्तेमाल कीजिये



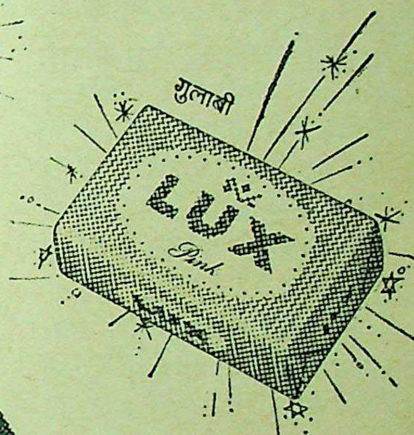
एकमात्र एजेंट और निर्यातक : एम. एम. खंभातवाला अहमदाबाद-१ (भारत)
एजेंट्स : सी. नरोत्तम एंड कम्पनी, बम्बई-२

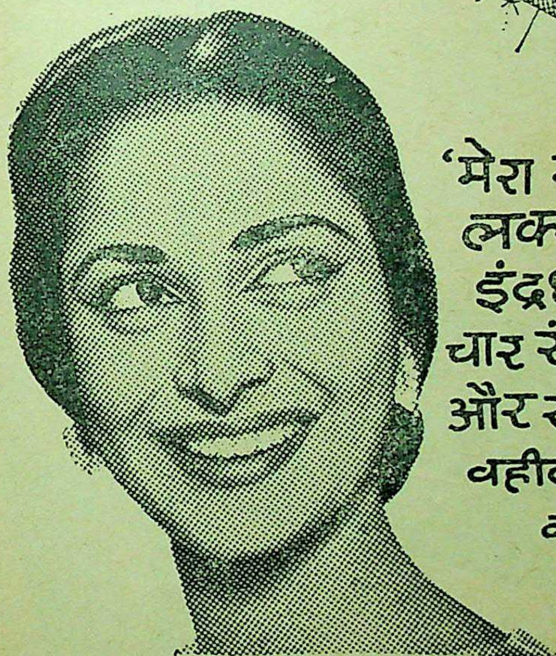
शाह बवीसी एण्ड कं०; १२९ राधाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता

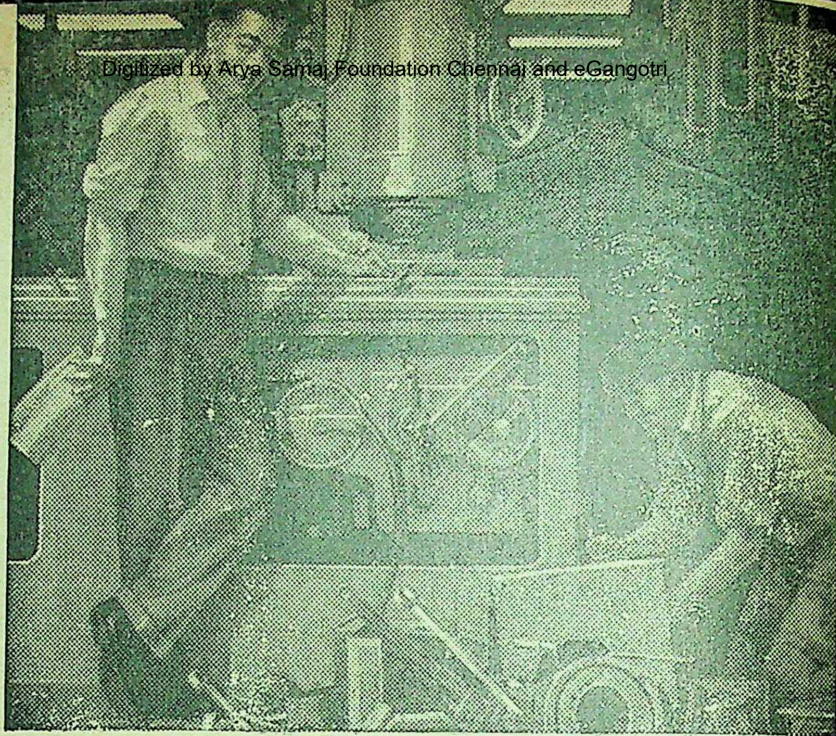

बसंती
LUX
Yellow


हरा
LUX
Green


नीला
LUX
Blue


गुलाबी
LUX
Pink





इस मास उसका खर्च बढ़ जायेगा......

क्योंकि उसकी मशीन बन्द हो गयी है और उसको कीमती पुर्जे बदलने पड़े हैं जो दोषयुक्त लुब्रिकेशन के कारण बर्बाद हो गये थे। ऐसा नहीं हुआ होता--कालटेक्स लुब्रिकेशन सर्वे से गड़बड़ी का पता लग जाता--समस्या का निदान हो जाता।

मशीनरी के बन्द हो जाने का मतलब होता है उत्पादन, समय एवं रुपये की क्षति। इसलिये कीमती मशीनरी के संरक्षण और कार्यक्षमता को बनाये रखने के लिये सही ढंग से लुब्रिकेशन अत्यन्त आवश्यक है। कम खर्च पर अधिक उत्पादन के लिये सुनियोजित लुब्रिकेशन जरूरी है।

आपके चाहते ही हम आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं--अपने कालटेक्स लुब्रिकेशन इन्जीनियर को बुलाइये--और अपने यंत्र के लिये सही लुब्रिकेशन कार्यक्रम तैयार करा लीजिये। आपके कलपुर्जे और रुपये बचाने में हमें सहयोग करने का मौका दीजिये।

कम्पनी के कार्याधिकारी अपने समीप के कालटेक्स आफिस को अपने कार्यालय के लेटरहेड पर पत्र लिख कर इस पुस्तिका की एक प्रति मुफ्त प्राप्त कर सकते हैं।





PLANNED LUBRICATION — A VITAL FACTOR IN COST CONTROL



आवाज़ तेरी है ३)

राजेन्द्र यादव

दुरूहता एवं अस्पष्टता से सर्वथा मुक्त और निर्भ्रान्त सामाजिक चेतना का निर्भीक वक्तव्य ।

ज्ञानगंगा (भाग २) ६)

नारायण प्रसाद जैन

विश्व की अनेक भाषाओं से महत्वपूर्ण सूक्तियों का संग्रह ।

वाणी ४)

सुमित्रा नन्दन पन्त

वाणी में पन्तजी के कवि का व्यक्तित्व अधिक प्रौढ़, परिणत तथा हृदयस्पर्शी होकर निखरा है ।

सौवर्ण २॥)

सुमित्रा नन्दन पन्त

मानव जाति के विगत सांस्कृतिक संचय का, जिसमें विकास अपेक्षित है, प्रतीकात्मक रूप से दिग्दर्शन ।

लेखनी बेला ३)

वीरेन्द्र मिश्र

गीतों का संकलन, जिनमें विभिन्न जीवनानुभूतियाँ और गहरी संवेदनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं ।

शाइरी के नये दौर [भाग १]

शाइरे-इन्क़िलाब 'जोश' मलीहाबादी की आत्म-विभोर कर देनेवाली नज़्में और रूबाइयात, जोश का परिचय एवं उनकी शाइरी पर विवेचन ।

[भाग २]

वर्तमानयुगीन शाइर आनन्दनारायण मुल्ला, रघुपति सहाय फ़िराक़, विश्वेश्वर प्रसाद 'मुनव्वर', गोपीनाथ अम्न, हरीश्चन्द्र अख़्तर, हफ़ीज़ जालंधरी का जीवन-परिचय एवं चुने हुए कलाम ।

[भाग ३]

सागर निज़ामी के सर्वप्रिय कलाम तथा परिचय ।

[भाग ४]

अख़्तर शीरानी, अबुल हमीद अदम तथा अहसान दानिश के कलाम तथा परिचय ।

प्रत्येक भाग का मूल्य तीन रुपये

शाइरी के नये मोड़ [भाग १]

१९४६ से मार्च १९५८ तक की नवीन शाइरी की गतिविधि का अध्ययन।

पृष्ठ २७२ मूल्य ३.००

[भाग २]

१९३५ से १९५८ तक की शाइरी पर एक नजर तथा चुने हुए शाइर अर्श मलसियानी, जगन्नाथ आजाद, गोपाल मित्तल, अहमद नदीम कासिमी, अख़्तर अन्सारी, रईस अमरोहवी के फड़कते हुए कलाम तथा जीवन-परिचय ।

सचित्र मूल्य ३.००

बना रहे बनारस

विश्वनाथ मुखर्जी

बनारस के गौरवमय सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और धार्मिक जीवन की जानकारी देने वाला अधिकारी ग्रन्थ ।

पृष्ठ १८८ मूल्य २.५०

पार उतरि कहँ जइहौ

(यात्रा संस्मरण)

प्रभाकर द्विवेदी

इस पुस्तक का प्रकाशन हिन्दी के यात्रा-साहित्य में एक नये क्षितिज का उद्घाटन है ।

मूल्य ३.००

शतरंज के मोहरे ६)

अमृतलाल नागर

सवा डेढ़ सौ वर्ष पहले की अवध की नवाबी और ईस्ट इंडिया कम्पनी की नीति में उत्पन्न गदर की पृष्ठभूमि पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास।

कालिदास के सुभाषित ५)

भगवतशरण उपाध्याय

भारतीय भाषाओं में महाकवि कालिदास की सूक्तियों की विशेष व्याख्या करने वाली पहली पुस्तक।

कहानी कैसे बनी २॥)

कर्तारसिंह दुग्गल

रेडियो के मँजे हुए रूपक-लेखक श्री दुग्गल के आठ एकांकी नाटकों का संग्रह।

अंगद का पाँव २॥)

श्रीलाल शुक्ल

हिन्दी में शिष्ट और उच्चस्तर के व्यंग्यात्मक निवन्धों के ख्यातिप्राप्त लेखक श्रीलाल शुक्ल के निबन्धों का प्रथम संग्रह।

मुर्ग छाप हीरो २)

केशवचन्द्र वर्मा

हास्यरस की कहानियों एवं लेखों का अनुपम संग्रह।

शह और मात ४)

राजेन्द्र यादव

नये लेखकों में जीवन के सत्य और दर्शन को समझने का सर्वाधिक निष्ठा-वान प्रयत्न राजेन्द्र यादव ने किया है। यह उनका चौथा उपन्यास है।

काठ की घंटियाँ ७)

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

अज्ञेय द्वारा सम्पादित इस ग्रन्थ में बीस कहानियाँ, इकहत्तर कविताएँ तथा एक लघु उपन्यास संग्रहीत है।

जनम क़ैद २॥)

गिरिजाकुमार माथुर

सफल और अभिनय योग्य सात एकांकियों का अमूल्य संग्रह।

वृन्त और विकास २॥)

शान्तिप्रिय द्विवेदी

वृन्त और विकास की लेखनशैली और विचारधारा पूर्णत: रचनात्मक है। राजनीति, समाज, साहित्य, संस्कृति, जीवन की सभी दिशाओं के छोटे-बड़े कृतियों के प्रयत्नों का इसमें सर्वेक्षण और संयोजन किया गया है।

मीर ६)

रामनाथ सुमन

श्रीवृन्दावन लाल वर्मा के शब्दों में "प्रस्तुत पुस्तक विद्वत्तापूर्ण और साथ ही मनोरंजक, बहुत मनोरंजक भी है। न केवल मीर की मीरता निखर गयी है, वरन् उस युग का समूचा चित्र ही आँखों के सामने आ जाता है।"

सीढ़ियों पर धूप में ५)

रघुवीर सहाय

रघुवीर सहाय आपके जाने-माने लेखक हैं। प्रस्तुत संग्रह में अज्ञेय द्वारा सम्पादित लेखक की प्रतिनिधि कविताएँ, निबन्ध और कहानियाँ संकलित हैं।

ठूँठा आम २)

भगवतशरण उपाध्याय

भावपूर्ण रचनाएँ।

सुन्दर रस १॥)

सूखा सरोवर २)

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के दो नाटक

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल एक बड़े ही जागरूक नाटककार हैं, जिनके नाट्य-लेखन के पीछे रंगमंच की व्यावहारिक अनुभूति उनकी नाटचकलागत धर्मिताओं को अदम्य बल देती है, ये दोनों नाटक इस सत्य के सफलतम उदाहरण हैं।

कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी ३॥)

भगवतशरण उपाध्याय

जिस अनुभूति, भाव और भाषा की यहाँ एकत्र परिणति हुई है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

भूमिजा १॥)

सर्वदानन्द

भूमिजा अर्थात् सीता को अपनी सजीव व्याख्या तथा प्रभावपूर्ण अवतारणा से अभिनव रूप प्रदान कर दो अंकों के इस नाटक को दो सारगर्भ दृश्यों में प्रस्तुत किया गया है।

राजसी २॥)

देवेशदास आई० सी० एस०

मरुभूमि राजस्थान की पृष्ठभूमि पर ऐतिहासिक उपन्यास।

अनुक्षण ३)

प्रभाकर माचवे

१९३३ से १९५८ के बीच लिखी हज़ारों पंक्तियों से यह संकलन तैयार किया गया है।

सांस्कृतिक निबन्ध ३)

भगवतशरण उपाध्याय

अव्यस्त क्षणों में ये निबन्ध पाठक के व्यापक ज्ञान और मनोरंजन के साधन होंगे।

सागर की लहरों पर ४)

भगवतशरण उपाध्याय

डॉ० उपाध्याय द्वारा विदेश यात्रा का सरस मनोहर वर्णन।

मानव मूल्य और साहित्य २॥)

धर्मवीर भारती

प्रस्तुत पुस्तक में तीन खण्ड हैं। पहले में मानवीय तत्त्व का विघटन, दूसरे में नयी मर्यादाओं का उदय और तीसरे में विविध सन्दर्भों में नये मूल्यों का दिग्दर्शन प्रस्तुत किया गया है।

एक परछाईं : दो दायरे ३)

गुलाबदास ब्रोकर

गुजराती के श्रेष्ठ कथा-लेखक ब्रोकरजी की सुन्दरतम पन्द्रह कहानियों का पहला हिन्दी अनुवाद।

माखनलाल चतुर्वेदी-जीवनी ६)

बरुआ

प्रस्तुत कृति हिन्दी के मूर्धन्य साहित्यिक देवता श्री माखनलाल चतुर्वेदी के शैशव व कैशोर काल की जीवनी प्रस्तुत करती है।

आत्मनेपद ४)

'अज्ञेय'

आत्मनेपद में समकालीन साहित्यकार की स्थिति, समस्याओं और सम्भावनाओं पर विशेष रूप से प्रकाश पड़ता है। इसका पठन हिन्दी के पाठक मात्र के लिए आवश्यक हो जाता है।

कहानियाँ

गहरे पानी पैठ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
जिन खोजा तिन पाइयाँ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
नये बादल	मोहन राकेश	२॥)
आकाश के तारे धरती के फूल	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	२)
खेल खिलौने	राजेन्द्र यादव	२)
अतीत के कम्पन	आनन्दप्रकाश जैन	३)
काल के पंख	आनन्दप्रकाश जैन	३)
जय दोल	अज्ञेय	३)
नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३)
मेरे कथागुरु का कहना है	रावी	३)
हरियाणा लोकमंच की कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	३)
अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२॥)
कर्मनाशा की हार	डॉ० शिव प्रसाद सिंह	३)

उपन्यास

मुक्तिदूत	वीरेन्द्रकुमार एम० ए०	५)
तीसरा नेत्र	आनन्दप्रकाश जैन	२॥)
रक्तराग	देवेशदास आई० सी० एस०	३)

इतिहास

हिंदी-जैन-साहित्य-परिशीलन (भाग १-२)	नेमिचन्द्र शास्त्री	५)

एकांकी : नाटक

रेडियो नाटय शिल्प	सिद्धनाथ कुमार	२॥)
तरकश के तीर	श्रीकृष्ण	३)
चेखव के तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४)
बारह एकांकी	विष्णु प्रभाकर	३॥)

संस्मरण

जैन जागरण के अग्रदूत	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

राजनीति

एशिया की राजनीति	परदेशी	६)

ललित निबन्ध : आलोचनाएँ

जिन्दगी मुस्करायी	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४)
गरीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	१)
हिन्दू विवाह में कन्यादान का स्थान	सम्पूर्णानन्द	१)

दर्शन

भारतीय विचारधारा	मधुकर एम० ए०	२)

ललित-निबन्ध, आलोचनादि

बाजे पायलिया के घुंघरू	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४)
माटी हो गयी सोना	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	२)
शरत् के नारी पात्र	रामस्वरूप चतुर्वेदी	४।।)
क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	रावी	२।।)
संस्कृत साहित्य में आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३)
वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	२।।)

ज्योतिष

भारतीय ज्योतिष	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)

आध्यात्मिक

वैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	६)

भाषा विज्ञान

संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन	भोलाशंकर व्यास	५)

पत्र-संकलन

द्विवेदी पत्रावली	बैजनाथ सिंह विनोद	२।।)

संगीत, प्रसाधन

ध्वनि और संगीत	ललित किशोर सिंह	४)
प्राचीन भारत के प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३।।)

अन्य सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

कविताएँ

मेरे बापू	हुकुमचन्द्र बुखारिया	२।।)
पंच प्रदीप	शान्ति एम० ए०	२)

सूक्तियां

ज्ञानगंगा (भाग १)	नारायणप्रसाद जैन	६)
शरत की सूक्तियां	रामप्रकाश जैन	२)

उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

उर्दू शायरी

१—शेरो शाइरी	अयोध्या प्रसाद गोयलीय	८)
२—शेरो सुख़न (पाँच भाग)	अयोध्या प्रसाद गोयलीय	२०)

कविता

वर्द्धमान (महाकाव्य)	अनूप शर्मा	६)
मिलन-यामिनी	बच्चन	४)
धूप के धान	गिरिजा कुमार माथुर	३)

कहानियाँ

कुछ मोती कुछ सीप	अयोध्या प्रसाद गोयलीय	२॥)
संघर्ष के बाद	विष्णु प्रभाकर	३)
पहला कहानीकार	रावी	२॥)
मोतियों वाले	कर्तारसिंह दुग्गल	२॥)

उपन्यास

संस्कारों की राह	राधा कृष्ण प्रसाद	२॥)
शतरंज के मोहरे	अमृतलाल नागर	६)

इतिहास

खण्डहरों का वैभव	मुनि कान्ति सागर	६)
खोज की पगडंडियाँ	मुनि कान्ति सागर	४)
चौलुक्य कुमारपाल	लक्ष्मीशंकर व्यास	४)
कालिदास का भारत (भाग १–२)	डॉ० भगवत शरण उपाध्याय	८)

एकांकी : नाटक

जनम क़ैद	गिरिजा कुमार माथुर	२॥)
पचपन का फेर	विमला लूथरा	३)
रजत रश्मि	डॉ० रामकुमार वर्मा	२॥)
और खाई बढ़ती गयी	भारतभूषण अग्रवाल	२॥)

संस्मरण : रेखाचित्र

हमारे आराध्य	बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
संस्मरण	बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
रेखाचित्र	बनारसीदास चतुर्वेदी	४)

सांस्कृतिक प्रकाशन

१	जैन-शासन (जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन प्रस्तुत करनेवाली पुस्तक)	३)
२	कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न (आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथों का संक्षिप्त सार)	२)
३	धर्मशर्माभ्युदय (पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का चरित)	३)
४	आधुनिक जैन कवि (वर्तमान जैन कवियों का परिचय एवं संकलन)	३॥)
५	हिन्दी-जैन-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास	२॥=)
६	महाबन्ध —भाग १,२,३,४,५,६,७ (कर्म सिद्धान्त का महान ग्रंथ)	७८)
७	सर्वार्थसिद्धि (विस्तृत प्रस्तावना और हिन्दी अनुवाद सहित)	१२)
८	तत्त्वार्थराजवार्तिक —भाग १, २, (संशोधित और हिन्दी-सार सहित)	२४)
९	तत्त्वार्थ वृत्ति (हिन्दी सार और विस्तृत प्रस्तावना सहित)	१६)
१०	समय-सार —अंग्रेज़ी (आध्यात्मिक ग्रंथ)	८)
११	मदन पराजय (जिनदेव द्वारा काम-पराजय का सुन्दर सरस रूपक)	८)
१२	न्यायविनिश्चय विवरण —भाग १, २ (जैन दर्शन)	३०)
१३	आदिपुराण —भाग १, २ (भगवान् ऋषभदेव का पुण्य चरित)	१०)
१४	उत्तरपुराण (तेईस तीर्थंकरों का चरित)	१०)
१५	वसुनन्दि-श्रावकाचार (श्रावकाचारों का संग्रह : हिन्दी अनुवाद सहित)	५)
१६	जिनसहस्र नाम (भगवान् के १००८ नामों का अर्थ : हिन्दी अनुवाद सहित)	४)
१७	केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि (ज्योतिष ग्रन्थ)	४)
१८	करलक्खण (सामुद्रिक शास्त्र) हस्तरेखा विज्ञान का अपूर्व प्राचीन ग्रंथ	॥)
१९	नाममाला सभाष्य (कोश)	३॥)
२०	सभाष्य रत्न-मंजूषा (छन्दशास्त्र)	२)
२१	कन्नड़ प्रांतीय ताड़पत्रीय ग्रन्थ-सूची	१३)
२२	पुराणसार संग्रह —भाग १, २ (छह तीर्थंकरों का जीवन-चरित्र)	४)
२३	जातकट्ठ कथा (बौद्धकथा-साहित्य)	६)
२४	थिरुकुरल (अंग्रेज़ी प्रस्तावना सहित तामिल भाषा का पंचम वेद)	५)
२५	व्रततिथि-निर्णय (सैकड़ों व्रतों के विधि-विधानों एवं उनकी तिथि निर्णय का विवेचन)	३)
२६	जैनेन्द्र महावृत्ति (व्याकरण शास्त्र का महत्वपूर्ण ग्रंथ)	१५)
२७	मंगल-मंत्र णमोकार : एक अनुचिन्तन	२)
२८	पद्मपुराण (भाग १-२-३)	३०)
२९	जीवधर चम्पू (संस्कृत हिन्दी टीका सहित)	८)
३०	जैन धर्मामृत	३)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

Price Annual Rs. 10|- per copy Re. 1|- for abroad postage extra 18 nP. per co

Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. C. 4123

लोकप्रियता में सर्वोपरि

क्यों कि

गुण में सर्वोत्कृष्ट





गुण और स्वाद
में अतुलनीय

विभिन्न किस्मों में प्राप्य।

लिलि बिस्कुट कम्पनी प्राइवेट लि०, कलकत्ता-४

Published by Shri Munishwarlal for Bhartiya Jnanpith Calcutta from 18-B. Brabo

ग्रामोदय

सितम्बर १९६१; मूल्य १)



अनुक्रम

१. रवीन्द्र-अर्चना : न्यायाधीश — रवीन्द्रनाथ ठाकुर २
२. मैं और मेरा जीवन-दर्शन — डॉ० जे. बी. एस. हाल्डेन ८
३. दूसरे देश में — अर्नेस्ट हेमिंग्वे ११
४. दो कविताएँ — डॉ० जगदीश गुप्त १७
५. आधुनिक कविता का जनक— — भगवान सिंह १९
६. मिस शिमला और ग्लैन की चट्टानें — देवेन्द्र इस्सर २७
७. एक बरसाती लोक-गीत — रामचन्द्र 'चन्द्रभूषण' ३५
८. झगड़ा : आदि और अन्त — प्रो० आनन्दनारायण शर्मा ३६
९. बातें, जिनमें सुगन्ध फूलों की (९) — अहमद सलीम ४२
१०. तीन असमिया कविताएँ — श्रीगोपाल माहेश्वरी ४७
११. ये घाटियाँ : ये गूंजें (४) — शान्ति मेहरोत्रा ५३

एक विशेष सूचना

इस वर्ष विजयादशमी और दीपावली की तिथियों को दृष्टिगत रखते हुए 'ज्ञानोदय' के पाठकों, लेखकों, विज्ञापन-दाताओं एवं एजेन्टों ने हमें जो सुझाव भेजे हैं, उनसे सहमत होते हुए हमने इस बार ज्ञानोदय का वार्षिक विशेषांक "भारतीय परिवार अंक" अक्तूबर मास के बजाय नवम्बर १९६१ में प्रकाशित करने का निश्चय किया है। अतएव अक्तूबर १९६१ में 'ज्ञानोदय' का साधारण अंक ही प्रकाशित होगा और विशेषांक "भारतीय परिवार अंक" नवम्बर १९६१ में प्रकाशित होगा।

——सम्पादक

लक्ष्मीचन्द्र जैन
शरद देवड़ा

संचालक

भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता

कार्यालय

१८ ए, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता–१

Sole Selling Agents : Bennett, Coleman & Co., Ltd., Bombay-1.

५. आधु
६. मिस
६. बातें
१२.
१३. अ
१४.
१७. भ

Sole

ज्ञान

अनुक्रम

१. रवीन्द्र-अर्चना : न्यायाधीश — रवीन्द्रनाथ ठाकुर २
२. मैं और मेरा जीवन-दर्शन — डॉ० जे. बी. एस. हाल्डेन ८
३. दूसरे देश में — अर्नेस्ट हेमिंग्वे ११
४. दो कविताएँ — डॉ० जगदीश गुप्त १७
५. आधुनिक कविता का जनक—— भगवान सिंह १९
६. मिस शिमला और ग्लैन की चट्टानें — देवेन्द्र इस्सर २७
७. एक बरसाती लोक-गीत — रामचन्द्र 'चन्द्रभूषण' ३५
८. झगड़ा : आदि और अन्त — प्रो० आनन्दनारायण शर्मा ३६
९. बातें, जिनमें सुगन्ध फूलों की (९) — अहमद सलीम ४२
१०. तीन असमिया कविताएँ — श्रीगोपाल माहेश्वरी ४७
११. ये घाटियाँ : ये गूंजें (४) — शान्ति मेहरोत्रा ५३
१२. दफ्तर का बाबू : एक एक्सीडेंट — अजित कुमार ५७
१३. अस्थिहीन शब्दों का त्यक्त केंचुल — इन्दु जैन ६३
१४. राम के राज्यारोहण की पहेली — निरंकुश ६४
१५. पुराने पेड़ की बातें — शरद जोशी ६८
१६. दो व्यंग कविताएँ — चन्द्रकान्त सोनवलकर ७२
१७. भारत के लोक-नृत्यों की झाँकी — राजेन्द्र निगम ७४
१८. एक इन्च मुस्कान (८) — मन्नू भण्डारी ८१
१९. साहित्यार्चन — प्रफुल्लचन्द्र ओझा, राजेन्द्र यादव ९७
२०. नये क्षितिज — यथागत १०५
२१. सृष्टि और दृष्टि — मैत्रेयी, गुलशन लाल सूरी १०९
२२. भारतीय परिवार अंक — एक सूचना ११३

सम्पादक

लक्ष्मीचन्द्र जैन

शरद देवड़ा

संचालक

भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता

कार्यालय

१८ ए, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता—१

Sole Selling Agents : Bennett, Coleman & Co., Ltd., Bombay-1.



पुण्य नगरे रघुनाथ राओ
पेशोया नृपति वंश,—
राजासने उठि' कहिलेन वीर—
"हरण करिब भार पृथिवीर,
मैसुरपति हैदरालिर
दर्प करिब ध्वंस ।"

देखिते देखिते पूरिया उठिल
सेनानी आशि सहस्र ।
नाना दिके दिके नाना पथे पथे
माराठार यत गिरिदरी हते
वीरगण येन श्रावणेर स्रोते
छुटिया आसे अजस्र ।।

उड़िल गगने विजय पताका,
ध्वनिल शतेक शङ्ख ।
हुलुरव करे अङ्गना सबे
माराठा नगरी काँपिल गरबे,
रहिया रहिया प्रलय आरवे
बाजे भैरव डङ्क ।।

रवीन्द्र - अर्चना

रवीन्द्रनाथ ठाकुर
अनु० यथागत

पुण्य नगरी (पूना) में रघुनाथ राव ने
जो पेशवा वंश का राजा था,
सिंहासन पर आरूढ़ होकर वीरता से कहा—
"पृथ्वी का भार हरण करने के लिए,
मैं मैसूर के नवाव हैदरअली का
दर्प ध्वंस करूँगा ।"

देखते-देखते जमघट भर गया
अस्सी हज़ार सैनिकों का ।
सभी दिशाओं-दिशाओं में, मार्ग-मार्ग में
मराठों की जितनी पहाड़ियाँ और घाटियाँ थीं
सब में स वीर योद्धा सावन की झड़ी की तरह
अजस्र वेग से उमड़ पड़े ।

आकाश में विजय पताका उड़ने लगी
सैकड़ों शङ्ख ध्वनित होने लगे
स्त्रियों ने मंगल-ध्वनि उच्चारी
मराठा नगरी गर्व से कम्पित हुई
रह रह कर प्रलय स्वर में
भैरव-डंके बजने लगे ।

न्या या धी श

धुलार आड़ाले ध्वज-अरण्ये
लुकाल प्रभाय-सूर्य ।
रक्त अश्वे रघुनाथ चले,
आकाश वधिर जय-कोलाहले,
सहसा येन की मन्त्रेर बले
थेमे गेल रणतूर्य ।।

सहसा काहार चरणे भूपति
जानाल परम दैन्य ।
समरोन्मादे छुटिते छुटिते
सहसा निमेषे कार इङ्गिते
सिंह-दुयारे थामिल चकिते
आशि सहस्र सैन्य ।

ब्राह्मण आसि' दाँड़ाल समुखे
न्यायाधीश रामशास्त्री ।
दुइ बाहु ताँर तुलिया उधाओ,
कहिलेन डाकि',—"रघुनाथ राओ,
नगर छाड़िया कोथा चले याओ,
ना ल'ये पापेर शास्ति ।"

नीरव हइल जय-कोलाहल,
नीरव समर-वाद्य ।
"प्रभु केन आजि"—कहे रघुनाथ—
"असमये पथ रुधिले हठात्
चलेछि करिते यवन निपात
योगाते यमेर खाद्य ।"

धूलाच्छादित ध्वजाओं के वन में
सूर्य की प्रभा छिप गई ।
लाल घोड़े पर चढ़ कर रघुनाथ राव चले,
जय-जयकार के कोलाहल से आकाश बहरा हो गया,
(किन्तु) ..न मालूम किस मंत्र के बल से
सारी रणोन्मुख सेना रुक गई ।

यह, सहसा किसके चरणों में राजा रघुनाथ राव
परम विनम्र भाव से झुक गए !
युद्ध के उन्माद में भरी आगे बढ़ती सेना
पल भर में किसके इशारे से
सिंहद्वार पर आश्चर्यचकित थम गई,
यह अस्सी हज़ार सैन्य दल ?

सामन खड़ा था एक ब्राह्मण—
न्यायाधीश रामशास्त्री,
जिसने अपनी दोनों बाहें ऊपर उठा कर
पुकार कर कहा—"रघुनाथ राव !
नगर छोड़ कर कहाँ चले जा रहे हो तुम,
बिना अपने पाप का दंड भोगे ?"

जय-जयकार का कोलाहल शान्त हो गया
शान्त हो गए युद्ध के बाजे ।
"विप्रराज, आज यह क्या ?"—रघुनाथ बोले,
"आपने बेमौके अचानक रास्ता रोक लिया,
मैं तो यवनों का हनन करने के लिए जा रहा था,
यमराज के लिए आहार जुटाने ।"

कहिल शास्त्री,—"वधियाछ तुमि
आपन भ्रातार पुत्रे ।
विचार ताहार ना हय य-दिन
ततकाल तुमि नह तो स्वाधीन,
वन्दी हयेछ अमोघ कठिन
न्यायेर विधान सूत्रे ।"

रुषिया उठिला रघुनाथ राओ,
कहिला करिया हास्य,—
"नृपति काहारो बाँधन ना माने,
चलेछि दीप्त मुक्त कृपाणे,
शुनिते आसिनि पथमाझखाने
न्याय-विधानेर भाष्य ।"

कहिला शास्त्री—"रघुनाथ राओ
याओ करो गिये युद्ध ।
आमिओ दण्ड छाड़िनु एबार,
फिरिया चलिनु ग्रामे आपनार,
विचारशालार खेलाघरे आर
ना रहिब अवरुद्ध ।"

बाजिल शङ्ख, बाजिल डङ्क
सेनानी धाइल क्षिप्र ।
छाड़ि दिया गेला गौरव पद,
दूरे फेलि दिला सब सम्पद,
ग्रामेर कुटीरे चलि गेला फिरे,
दीन दरिद्र विप्र ।

रामशास्त्री ने कहा—"तुमने हत्या की है
अपने भाई के बेटे की ।
जब तक उस पर विचार नहीं हो जाता,
उस समय तक तुम स्वाधीन नहीं हो,
तुम बन्दी हो दुर्निवार, कठोर
न्याय विधान की रज्जु में ।"

रघुनाथ राव क्रोध में भर गया—
ठहाका मार कर बोला—
"राजा किसी का बन्धन नहीं मानता,
वह चमकदार खुली तलवार लेकर चलता है,
बीच रास्ते में सुनने के लिए नहीं आया
न्याय विधान की टीका-टिप्पणी !"

रामशास्त्री बोले—"रघुनाथ राव
जाओ, जाकर युद्ध करो ।
मैं भी इस बार यह न्याय-दंड (पद) छोड़ता हूँ
वापिस अपने गाँव लौट जाता हूँ
अब और अदालत के इस तमाशाघर में
अवरुद्ध नहीं रहूँगा ।"

शंख बजने लगे, डंके बजने लगे,
सैनिक लोग तीव्रता से आगे बढ़ चले ।
छोड़ दिया अपना गौरवपूर्ण पद,
दूर फेंक दी अपनी सब सम्पदा,
और वापिस लौट गया गाँव की अपनी कुटिया में
दीन दरिद्र विप्र—रामशास्त्री !

मैं और मेरा जीवन-दर्शन

ज्ञानोदय के अगस्त अंक के इन्हीं पृष्ठों में आपने कार्ल यास्पर्स का एक विचारो-त्तेजक लेख पढ़ा था, जिसमें चित्र का एक पहलू दर्शाया गया था; प्रसि- अंग्रेज वैज्ञानिक हाल्डेन की प्रस्तुत रचना चित्र का दूसरा पहलू पेश करती है

मेरा दर्शन मार्क्स और एंगिल्स का, लेनिन और स्टालिन का दर्शन है। मेरा झुकाव इसकी ओर किस तरह हुआ, इसका यहाँ उल्लेख करना असंगत नहीं होगा। एक वैज्ञानिक के नाते, मेरा सम्बन्ध पदार्थ से था। मैंने स्वयं अपने ऊपर भी प्रयोग किये, और स्वयं को एक ऐसी वस्तु के रूप में गिना जो भौतिक और रासायनिक नियमों के अनुसार परिचालित होती है। अगर ये नियम मेरे लिए भी उतने ही सच नहीं साबित होते जितने कि एक शीशी के भीतर बन्द रसायन-पदार्थों के लिए होते हैं तो कदाचित् मैंने अपने जीवन का अन्त कर डाला होता। दरअसल, मैं अपने जीवन की बाजी लगा रहा था कि भौतिकवाद सत्य है।

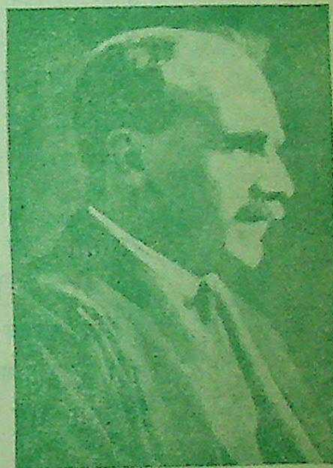
लेकिन मैं भौतिकवाद में अपनी आस्था कायम नहीं रख सका, क्योंकि मैंने जिस सिद्धान्त को पढ़ा उसके हर अक्षर ने मुझे एक मशीन में बदल दिया, या एक ऐसे पदार्थ में बदल दिया जो महज़ कार्य करता था; जिसके भीतर से महसूस करने, आकांक्षा करने और योजनाएँ बनाने की शक्ति नष्ट हो चुकी थी। तब मैंने एंगिल्स को पढ़ा और मैंने पाया कि एक ऐसे भौतिकवाद का भी अस्तित्व है जो पदार्थ और मस्तिष्क के बीच एक सेतु का कार्य करता है--जो दोनों के ही अस्तित्व को अस्वीकार नहीं करता। यहाँ तक तो ठीक था। लेकिन मैंने पाया कि जब यह द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद समाज पर लागू किया जाता है तो यह भविष्यवाणी करता है कि हमारी वर्तमान आर्थिक व्यवस्था अपना कार्य करना बन्द कर देगी; और



चूंकि आमूल परिवर्तन वाली यह बात हमारे शासक वर्ग को स्वीकार्य नहीं, इसलिए इस परिवर्तन का आविर्भाव मात्र श्रमिकों के क्रान्तिकारी संघर्ष द्वारा ही संभव होगा।

मुझे यह सिद्धान्त पसन्द नहीं था। एक प्रोफेसर के रूप में, मैं अन्य बहुत-से लोगों की अपेक्षा अधिक सुरक्षा की स्थिति में था। मैं आशा करता था कि अगर आवश्यकता हुई तो रेल, खदानें, जमीन और बैंकों के क्रमिक राष्ट्रीयकरण द्वारा समाजवाद की ओर यह परिवर्तन धीरे-धीरे लाया जा सकता है। मैं वैज्ञानिक के रूप में अपने धंधे को चालू रखना चाहता था, और केवल मत देने और आवश्यकतानुसार कभी-कभी भाषण देने के अतिरिक्त राजनीति की दलदल से स्वयं को दूर रखना चाहता था। राजनीति के प्रति मेरा रुख कुछ-कुछ उपेक्षा और अवहेलना का था, जैसा कि आज भी बहुत-से प्रोफेसरों का है।

और तभी वह तूफान आया : हिटलर ने मेरे जर्मन साथियों को महज़ इसलिए नौकरियों से हटाना शुरू कर दिया कि वे यहूदी, कैथोलिक्स, प्रोटैस्टैंट, समाजवादी और उदारवादी थे, याकि उनका अपराध मात्र इतना था कि वे ईमानदार थे। मुझे उनमें से कइयों के लिए नौकरी तलाशनी पड़ी। और ज्यों ही मैंने हिटलर-विरोधी प्रचार शुरू किया मैंने स्वयं को मार्क्सवादियों के सम्पर्क में पाया।



इसके अलावा, मैंने इंगलैण्ड में तेजी से बढ़ते भ्रष्टाचार को देखा जिसने मेरे वैज्ञानिक कार्यों में भी बाधा पहुँचानी शुरू कर दी। मैंने यह भी देखा कि ब्रिटिश सरकार योजनाबद्ध रूप से संधियों और अपने अन्य वादों को तोड़ रही थी—कुछ इस तरह कि हिटलर और मुसोलिनी को सहायता पहुँच सके।

दिसम्बर १९३६ में मैं स्पेन गया। मैंने पाया कि ब्रिटिश नीति के परिणामस्वरूप, वहाँ ब्रिटिश वालंटियर अपने हाथों में उन्नीसवीं सदी की कनाडियन राइफलें लिये अत्याधुनिक जर्मन टैंकों के सामने खड़े थे, और स्पेन के बन्दरगाह जर्मनों की जलसेना के अड्डे बन रहे थे;

यानी, जिन चीजों के पक्ष में मैं अब तक लड़ता आया था—जिनमें छोटे राष्ट्रों के अधिकार, और प्रजातंत्र की सुरक्षा भी सम्मिलित थे—वह सब जर्मन फौजी शासकों के हाथों में सौंपा जा रहा था। इसका कोई अर्थ नहीं था।

लेकिन मार्क्सवादी दृष्टिकोण से इसका भी अर्थ था। इसलिए मार्क्सवाद के राजनीतिक और आर्थिक पहलू को मुझे गंभीरता से लेना पड़ा। इस तरह मैं सिद्धान्त और व्यवहार दोनों से मार्क्सवादी बन गया।

संक्षेप में, इस दर्शन का निचोड़ यह है कि यथार्थ वह है जो होता है। प्रकृति के पीछे कुछ नहीं है, हालाँकि स्वयं प्रकृति में अभी भी ऐसा बहुत कुछ है जो हम जान नहीं पाये हैं। प्रेतात्मा या अध्यात्म जैसी किसी चीज़ का कोई अस्तित्व नहीं है। हमारे मस्तिष्क यथार्थ हैं, लेकिन मस्तिष्क के भी पहले पदार्थ का अस्तित्व था। हमारे मस्तिष्क में उत्पन्न होने वाली संवेदनाएँ और विचार इस यथार्थ के ही प्रतिबिम्ब हैं, हालाँकि वे हैं अपूर्ण प्रतिबिम्ब ही। पूर्ण सत्य के हम बराबर निकटतर होते जा रहे हैं।

परिवर्तन क्रमशः हो सकता है और आकस्मिक भी। जब कोई चीज़ एक खास 'प्वाइंट' से ऊपर बढ़ती है, तो उसमें आकस्मिक परिवर्तन आ जाता है। २१२ फर्नहाइट पर पानी उबलने लगता है। अन्तिम तिनका ऊँट की कमर तोड़ देता है। रचनात्मक परिवर्तन सदैव संघर्ष से ही उत्पन्न होता है। ऊन या कपास से ढँक कर रखने से इन्सान अच्छा नहीं बन जाता, बल्कि कठिनाइयों और बुराइयों से जूझता हुआ ही अच्छा बन सकता है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण संघर्ष और विपरीतताएँ आन्तरिक ही होती हैं और सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन भीतर से ही उद्भूत होते हैं।

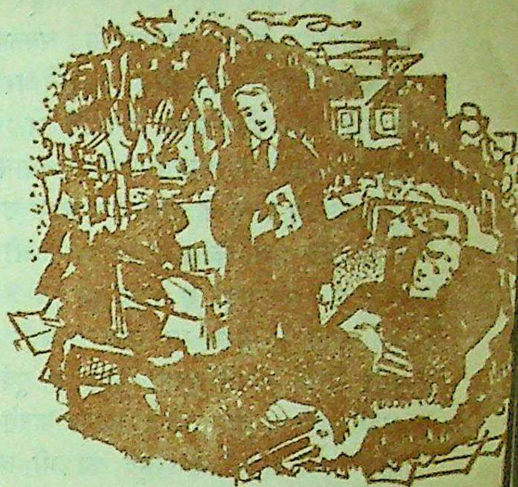
किसी भी समाज का मूलभूत आधार-तत्त्व उसके उत्पादन का तरीका है। पूंजीवाद का जन्म इसलिए नहीं हुआ कि पूंजीपतियों ने ज़मीन या मजदूरों के यंत्र चुरा लिए थे, बल्कि इसलिए कि सामन्तवाद की अपेक्षा यह अधिक योग्य और कुशल था। इसी तरह अगर पूंजीवाद का ह्रास होगा तो इसलिए कि न केवल यह समाजवाद से कम योग्य है बल्कि दर-असल इसके ह्रास के तत्त्व स्वयं इसी के भीतर निहित हैं।

हर आर्थिक व्यवस्था अपनी विचारधारा, अपने विधि-विधान और राजनीति का निर्माण और विकास करती है। हम आज मध्ययुगीन व्यक्ति की तरह नहीं सोच सकते—चाहें तो भी नहीं। फिर भी, यह तय बात है कि मनुष्य केवल आर्थिक या किसी भी और किस्म के भाग्य का दास नहीं है। स्वतन्त्रता आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है। यह एक विरोधी बात लगती है, लेकिन है सत्य।

—:o:—

मूल० अर्नेस्ट हेमिंग्वे
अनु० उर्मिला मलहोत्रा

युद्ध आज के मानव की सबसे विकट समस्या है। इस युद्ध ने इन्सान को किस तरह लँगड़ा और लूला कर दिया है, इसका मार्मिक चित्रण करने वाली हेमिंग्वे की एक अमर कहानी।



हिमपात में भी युद्ध जारी था, किन्तु अब हमको उसमें हिस्सा नहीं लेना था। वर्फ पड़ने के कारण मिलान में कड़ाके की सर्दी थी। अँधेरा शीघ्र गहरा जाता था और बत्तियाँ जल जाती थीं जो देखने में अत्यन्त सुहावनी लगती थीं। दूकानों के बाहर तमाशे का-सा दृश्य उपस्थित हो जाता। लोमड़ियों के कोमल लोम (फर) हिम-चूरे से भर जाते और तेज़ हवा उनकी पूँछों को कम्पित करती रहती। हिरन ठंड से अकड़ जाते, और उनकी चंचलता नष्ट हो जाती; लगता—मानो वे शक्ति-शून्य हो गये हों। उड़ते हुए छोटे-छोटे पक्षियों के पर हवा में दोहरे हो जाते। कड़ाके की बर्फ पड़ी थी और पहाड़ी हवा साँय-साँय चला करती थी।

हम सब दोपहर को अस्पताल में उपस्थित होते। शहर से अस्पताल तक पैदल जाने के विभिन्न रास्ते थे। दो रास्ते तो नहरों के साथ-साथ जाते थे, परन्तु वे लम्बे थे। अस्पताल पहुँचने के लिए सदा नहर का पुल पार करना आवश्यक होता, किन्तु हम तीन पुलों में से किसी को भी पार कर गन्तव्य स्थान पर पहुँच सकते थे। उनमें से एक पुल पर एक स्त्री चैस्टनट (चीना-बादाम की तरह के बादाम) भून कर बेचा करती थी। उसकी सिगड़ी के कोयलों की आँच के सामने ठहरने से हमें खूब गर्माई मिलती और फिर जेब में डाले चैस्टनटों की गर्माई प्राप्त होती रहती। अस्पताल अत्यन्त

दूसरे देश में

प्राचीन व भव्य था और एक द्वार से प्रवेश कर, आँगन पार कर, दूसरे द्वार से बाहर जाया जा सकता था। आँगन से अक्सर ही अर्थियाँ ले जायी जाती थीं। पुराने अस्पताल से परे, नये ईंट-निर्मित क्वार्टर्स थे; वही हमारा दोपहर के समय मिलने का स्थान था। हम सब नये यन्त्रों के सम्बन्ध में बहुत उत्साही थे। हम यंत्रों के पास बैठ जाते और इस तरह जैसे एक-दूसरे से बहुत दूर पड़ जाते।

जहाँ मैं बैठा था डाक्टर वहीं आया और उसने मुझसे पूछा, "युद्ध से पूर्व आप सबसे अधिक क्या चीज़ पसन्द करते थे? क्या कभी आपने खेल-कूद का भी अभ्यास किया था?"

मैंने उत्तर दिया, "जी हाँ! फुटबाल खेला करता था।"

"अच्छा!" उसने कहा, "आप पुनः फुटबाल खेलने योग्य हो जायेंगे।"

मेरा घुटना मुड़ता न था और घुटने से टखने तक पिंडली-शून्य टाँग सीधी रहती। मशीन घुटने को झुकाती और तीन पहियों वाली साईकिल पर सवार होने के समान उसे हिलाती किन्तु अभी भी वह झुकता न था, अपितु मशीन जब झुकने वाले भाग के पास आती तो अवस्खलित हो जाती। डाक्टर ने कहा, "आप एक भाग्यशाली युवक हैं, आप एक कुशल खिलाड़ी के समान पुनः फुटबाल खेल सकेंगे।"

अगली मशीन पर मेजर बैठा था; उसका हाथ बच्चे के हाथ के समान छोटा था। जब डाक्टर ने उसके हाथ की परीक्षा की तो उसने मुझे आँख से इशारा किया। उसका हाथ चमड़े की दो पट्टियों के बीच था जो उसे ऊपर-नीचे कर रही थीं। उसने कहा, "और कप्तान डाक्टर, क्या मैं भी फुटबाल खेल सकूँगा?" वह एक अत्यन्त वीर खड्गधारी था और युद्ध के पहले इटली का सर्वश्रेष्ठ खड्गधारी रह चुका था।

डॉक्टर अपने कार्यालय में गया, जो पिछले कमरे में था और एक चित्र (फोटो) ले आया। इस चित्र में एक हाथ दर्शित था जो मशीन-प्रक्रिया लेने के पूर्व क्षीण व लगभग उतना ही छोटा था, जितना कि मेजर का था। और तदनन्तर उससे कुछ बड़ा। मेजर ने अपने स्वस्थ हाथ से उसे पकड़ कर ध्यानपूर्वक उस पर दृष्टि दौड़ाई; और पूछा, "घाव हो गया था?"

"हाँ, एक औद्योगिक दुर्घटना से," डॉक्टर ने कहा।

"वाह, क्या खूब!" मेजर ने कहा और चित्र डॉक्टर के हाथ में लौटा दिया।

"क्या आपको विश्वास होता है?"

"नहीं", मेजर ने उत्तर दिया।

मेरी ही उम्र के तीन युवक वहाँ प्रतिदिन आया करते थे। तीनों मिलान के थे। उनमें से एक ने वकील और अन्य एक ने चित्रकार बनना निश्चित किया था; तीसरे का विचार सिपाही बनने का था। ज

गुनाह बेलज्जत

एक बार प्रसिद्ध लेखक सर वाल्टर स्काट को प्रिन्स रीजेन्ट ने अपने यहाँ शराब पीने के लिए आमंत्रित किया। लौटते समय श्री स्काट ने इस दिवस की स्मृति-स्वरूप प्रिंस रीजेन्ट का कीमती का

मशीनों से मुक्ति मिलती तो कभी-कभी हम कैफे कोवा, जो स्केला के पास ही था, साथ-साथ जाते। जब हम चारों इकट्ठे होते तो कम्युनिस्ट क्वार्टर के छोटे रास्ते से जाते। लोग हमसे घृणा करते थे; क्योंकि हम सैनिक अफसर थे और जब हम लोग शराब की दूकान

अपनी जेब में रख लिया पर उनकी चोरी उन्हें कुछ भी लाभदायक साबित नहीं हुई, क्योंकि घर आकर वे यह भूल गये कि उनकी जेब में गिलास रखा हुआ है, अतः ज्योंही वे कुर्सी पर बैठे, गिलास उनके नीचे आ गया और चकनाचूर हो गया।

—विश्वनाथ मुखर्जी

के सामने से गुज़रते तो कोई कोई तो हमें गाली देने से भी नहीं चूकता। एक अन्य युवक, जो कभी-कभी हमारे साथ होकर हमारी संख्या पाँच कर देता था, मुख के सामने एक ओर से दूसरी ओर तक एक काला रेशमी रूमाल बाँधता था क्योंकि उसके नाक नहीं थी और मुख का उपचार होना अभी शेष था। सैनिक अकादमी से वह लड़ाई पर भेजा गया था और पहली बार ही में सेना की पहली पंक्ति में जाने के पश्चात् एक घंटे के अन्दर घायल हो गया था। मुख का पुनर्निर्माण तो किया गया, किन्तु अत्यन्त प्राचीन वंश का होने के कारण वे उसके पूर्णतया उपयुक्त नाक न पा सके। वह एक बार दक्षिण अमरीका गया था और उसने वहाँ बैंक में नौकरी की थी; किन्तु यह बहुत पहले की बात थी। तब हममें से किसी को भी ज्ञात न था कि तदनन्तर क्या होने वाला था। हम तो तब केवल इतना जानते थे कि हालाँकि युद्ध का जल्दी अन्त नहीं होने वाला है, परन्तु हम उसमें अब कभी सम्मिलित नहीं होंगे।

केवल उस युवक के अतिरिक्त, जो मुख पर काली रेशमी पट्टी बाँधता था, हम सबके पास एक जैसे तगमे थे। वह युवक युद्ध में तगमा प्राप्त करने योग्य दीर्घ अवधि तक रहा भी नहीं था। जिस पीतमुख वाले दीर्घकायिक युवक की आकांक्षा वकील बनने की थी, वह अरदिति का लैफ्टीनेंट रह चुका था और उसके पास वैसे तीन तगमे थे जैसा कि हममें से प्रत्येक के पास एक था। वह मौत के निकट दीर्घ अवधि तक रह चुका था और जीवन के प्रति तनिक निर्लिप्त था। हम सब भी निर्लिप्त थे। नित्य दोपहर अस्पताल में मिलने के अतिरिक्त ऐसा कुछ नहीं था जो हम सबको आपस में बाँध कर रखता; हाँ, कोवा को जाते समय कभी-कभी जब हम किसी ऐसी गली में से गुजरते जहाँ दोनों ओर स्त्री-पुरुषों की भीड़ एकत्रित हो जाती और हमें उनके पास से गुज़रना पड़ता, तो ऐसे समय जो कुछ भी होता उसी के कारण हम अपने को संगठित अनुभव करते थे। वे लोग हमें पसन्द नहीं करते थे, और हम सबका विचार था कि वे हमें समझ नहीं पाये थे।

कोवा वहाँ खूब प्रसिद्ध था—बेहद उम्दा और आरामदायक; उसके भीतर मद्धिम रोशनी रहती थी। वहाँ दिन के कुछ खास-खास अवसरों पर खूब चहल-पहल और शोर-गुल रहता तथा वातावरण तम्बाकू के धुएँ से गमकता रहता। वहाँ मेजों पर लड़कियाँ सर्व करती थीं और दीवारों पर टँगे रैकों में सचित्र पत्रिकाएँ लगी रहती थीं। जो लड़कियाँ कोवा में काम करती थीं, वे बड़ी देशभक्त थीं; इटली में मुझे तो

सर्वाधिक देशभक्त कौवा की लड़कियाँ ही लगीं।

प्रारम्भ में लड़के मेरे तगमों का अत्यन्त सम्मान करते थे और उन्होंने जिज्ञासा भी की थी कि उन्हें प्राप्त करने के लिए मैंने क्या किया था। मैंने अत्यधिक सुन्दर भाषा में लिखे हुए और भ्रातृत्व व त्याग इत्यादि शब्दों से भरपूर वे सब पत्र उन्हें दिखाए, किन्तु वास्तव में उनके विशेषणों को हटा देने पर यह अर्थ निकलता कि मुझे वे तगमे महज़ इसलिए दिए गए थे क्योंकि मैं अमरीकी था। इसके बाद से मेरी ओर उनका व्यवहार तनिक परिवर्तित हो गया यद्यपि बाहरी लोगों के समक्ष में अब भी उनका मित्र ही था। लेकिन अब मैं उनके सम्मान का पात्र नहीं रहा; क्योंकि उनके साथ विभिन्न ही परिस्थितियाँ रही थीं और उन्होंने तगमे प्राप्त करने के लिए भिन्न कार्य किये थे। यह सच है कि मैं घायल हुआ था किन्तु हम सब को ज्ञात था कि घायल होना आखिरकार केवल अवसर की बात थी। हालाँकि मैं तगमों के कारण कभी लज्जित नहीं हुआ, लेकिन फिर भी कभी-कभी काकटेल के उपरान्त मैं विचारता कि क्या मैंने वह सब कुछ किया जो कुछ उन्होंने तगमे पाने के लिए किया था। रात के गहरे अँधेरे में, जब खूब ठण्डी हवा चलती होती, सभी दूकानें बन्द हो चुकी होतीं, और मैं गली की बत्तियों के निकटतम चलने का प्रयास करते हुए घर लौट रहा होता, उस समय मुझे महसूस होता कि मैंने कभी भी ऐसे काम नहीं किये थे; बल्कि मुझे तो मृत्यु से अत्यधिक भय लगता था और अनेक बार रात को अपने एकान्त बिस्तर पर पड़ा हुआ मैं भय और आश्चर्य के मिले-जुले भावों में डूबता-उतराता सोचा करता कि यदि मैं पुनः लड़ाई पर लौट जाऊँ तो मुझे कैसा लगेगा!

तगमे लगाये वे तीनों व्यक्ति शिकारी-बाज़ की तरह लगते थे, और मैं बाज़-सा था नहीं। इसी कारण हम परस्पर दूर हटते गए। लेकिन उस लड़के के साथ, जो युद्ध में जाने के उपरान्त प्रथम दिन ही घायल हो गया था, मेरी अच्छी दोस्ती बनी रही। मुझे वह पसन्द था क्योंकि मेरा खयाल था कि संभवतः वह भी बाज़ नहीं बन सकता था।

जब हम मशीनों के पास बैठे होते तो मेजर अपना अधिकांश समय मेरे व्याकरण को शुद्ध करने में व्यतीत करता। उसने मेरी प्रशंसा भी की कि मैंने इतनी जल्दी इतालवी भाषा सीख ली थी। हम अति सहजता व सुगमता पूर्वक इतालवी भाषा में बातें करते। एक दिन बातचीत के दौरान में मैंने कहा कि इतालवी भाषा मुझे ऐसी सुगम भाषा लगी कि मैं उसमें अधिक दिलचस्पी नहीं ले सका, क्योंकि इसमें प्रत्येक बात बोलनी सुगम थी। मेजर ने कहा, "तब क्यों न तुम व्याकरण का अभ्यास करो?" इस प्रकार हमने व्याकरण के प्रयोग लि

६ पैंस और १ शिलिंग

लन्दन में एक डिनर पार्टी में आगा खाँ ने अपने पास बैठे खाना खा रहे एक अतिथि से कहा, "मेरे पास इतना धन है कि मेरे लिए २००० पौंड का वही महत्त्व है

और तत्काल ही इतालवी भाषा इतनी कठिन हो गई कि मुझे उसके साथ बात करने में भी भय लगने लगा जब तक कि मुझे व्याकरण का खूब अच्छा अभ्यास नहीं हो गया।

मेजर इलाज के लिए अस्पताल में नियमित रूप से नित्य आया करता था। मुझे तनिक भी स्मरण नहीं कि कभी वह अनुपस्थित रहा हो यद्यपि मेरा पूर्ण विश्वास है कि उसको मशीनों पर आस्था नहीं थी। एक समय था जब हम में से किसी को भी मशीनों पर आस्था न थी और एक दिन मेजर ने कहा भी था कि वे सब निरर्थक हैं। मशीनें नई थीं और हमीं को उनकी उपयोगिता प्रमाणित करनी थी। मुझे तब तक व्याकरण का अच्छा ज्ञान नहीं हुआ था; उसने झुंझला कर कहा था कि मैं एकदम गधा हूँ और वह भी एक मूर्ख है जिसने नाहक मेरे साथ इतनी माथापच्ची की। वह छोटे कद का था और अपना दायाँ हाथ

जो एक साधारण व्यक्ति के लिए ६ पेन्स का।"

अतिथि महोदय भी चुप कैसे रह सकते थे। उन्होंने तुरन्त कहा, "तब क्या आप मुझे १ शिलिंग के बदले में ४ हजार पौंड देने की कृपा करेंगे?"

—विश्वनाथ मुखर्जी

मशीन में डाल कर कुर्सी में सीधा होकर बैठता था और जब पट्टियाँ उंगलियों सहित ऊपर-नीचे थपकती रहतीं तो वह सामने की दीवार को ताका करता।

"मान लो यदि युद्ध समाप्त हो गया तो तुम क्या करोगे?" उसने मुझसे पूछा और साथ ही आदेश दिया, "व्याकरणानुसार बोलना।"

"मैं अमरीका लौट जाऊँगा।"

"क्या तुम विवाहित हो?"

"नहीं, किन्तु विचार है शादी करने का।"

"तो तुम भी किसी मूर्ख से कम नहीं हो," उसने कहा। वह बेहद क्रोधित लग रहा था। जरा रुक कर फिर बोला, "मनुष्य को विवाह नहीं करना चाहिए।"

"क्यों, श्री मेग्गियोरी?"

"मुझे श्री मेग्गियोरी मत कहो।"

"भला मनुष्य को विवाह क्यों नहीं करना चाहिए?" मैंने दुबारा पूछा।

"वह विवाह नहीं कर सकता, हाँ, वह विवाह कर ही नहीं सकता।" उसने उसी तरह क्रोधावेश में कहा, "जब उसे पता है कि शादी करके उसे प्रत्येक वस्तु खो देनी होती है तो उसे अपने को ऐसी खो देने वाली स्थिति में डालना ही नहीं चाहिए, हाँ, उसे अपने को ऐसी स्थिति में बिल्कुल नहीं डालना चाहिए, उसे ऐसी वस्तु खोजनी चाहिए जो उसके पास रह सके, जिसे खोने का भय न हो।"

जितनी देर वह क्रोध व तिक्तता से बोलता रहा, बराबर अपने सामने वाली दीवार की ओर देखता रहा।

"क्या यह आवश्यक है कि उसे खोना ही होता है?"

"हाँ!" मेजर ने कहा। उस समय भी वह दीवार की ओर देख रहा था; अब उसने नीचे मशीन की ओर नजर डाली और पट्टियों में से खींचकर हाथ निकाल लिया और अपनी जाँघ पर जोर से पटक कर लगभग चिल्लाया, "वह अवश्य ही खोएगा...मेरे साथ बहस मत करो।" तब उसने परिचा-

रक को बुलाया जो मशीनों को चलाता था।

"इधर आओ और इस नामा-कूल मशीन को बन्द करो।"

तदन्तर विद्युत उपचार व मालिश के लिए वह एक अन्य कमरे में चला गया। मैंने उसे डाक्टर से पूछते सुना कि क्या वह उसके टेलीफोन का उपयोग कर सकता है और उसने द्वार बन्द कर लिया। जब वह कमरे में लौटा तो अपनी टोपी पहने हुए था और मैं एक अन्य मशीन के पास बैठा था। वह सीधा मेरी ओर आया और मेरे कन्धे को थपथपा कर बोला, "मुझे अफसोस है, मैं फिर कभी इतना रूखा नहीं होऊँगा। मेरी पत्नी की अभी-अभी मृत्यु हुई है। कृपया मुझे क्षमा कर दो।"

"ओह!" उसके लिए दुखित होते हुए मैंने कहा, "मुझे बहुत अफसोस है।"

वह अपने निचले होंठ को काटता रहा। "यह असह्य है," उसने कहा। "मैं अपने को सान्त्वना नहीं दे सकता।" और मेरी ओर देख कर फिर खिड़की के बाहर देखा और रोना आरम्भ कर दिया। "मैं अपने को सान्त्वना देने के सर्वथा अयोग्य हूँ," उसने कहा और उसका गला रुँध गया। फिर रोते हुए ही, गालों पर ढुलकते आँसुओं सहित, होंठों को काटते हुए, फौजी ढंग से सीधा बाहर निकल गया।

डॉक्टर ने बाद में मुझे बताया कि मेजर की पत्नी न्युमोनिया से चल बसी थी। वह अभी नवयुवती ही थी और मेजर ने युद्ध में घायल होने और भविष्य में युद्ध के लिए सर्वथा अनुपयुक्त करार दिये जाने के बाद ही उससे शादी की थी। वह केवल कुछ ही दिन बीमार रही थी और किसी ने सोचा तक नहीं था कि वह यूँ चल बसेगी। मेजर तीन दिन अस्पताल नहीं आया। चौथे दिन वह नियत समय पर अपनी वर्दी के बाजू पर काली पट्टी पहने अस्पताल आया। इस बार उसने देखा कि दीवारों पर चारों ओर समस्त प्रकार के घावों के फोटो—मशीन उपचार के पूर्व व पश्चात के फोटो—बड़े-बड़े फ्रेमों में मढ़े हुए टँगे थे। जिस मशीन का मेजर उपयोग करता था, उसके सामने उसके जैसे हाथों के तीन फोटो थे जो पूर्णतया स्वस्थ हो गये दिखाये थे। मुझे नहीं मालूम कि डाक्टर ने ये फोटो कहाँ से प्राप्त किये? मेरा तो यही खयाल था कि उन मशीनों का उपयोग करने वाले हमीं सबसे पहले रोगी थे। स्पष्टतः इन चित्रों का मेजर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा क्योंकि वह तो अब भी खिड़की के बाहर ही देख रहा था। ● ●

डॉ०

सूचना

सूचनार्थ निवेदन है कि हमारा कार्यालय १८ बी, ब्रेबोर्न रोड से १८... ब्रेबोर्न रोड पर आ गया है; अतएव कृपया तमाम पत्र-व्यवहार १८... ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता-१ के पते पर करें।

—व्यवस्थापक



डॉ० जगदीश गुप्त

गहरे जल पर तैरती हुई नावें मुझे अच्छी लगती हैं
इसीलिए जब किसी नाव के तल में—
रेत और रेत और केवल रेत का अनुभव करता हूँ
तब मुझे तुम्हारी याद आती है।

जल से भरी, चिकनी, छलकती हुई गागरें मुझे भाती हैं
इसीलिए जब उन्हें भीतर से खाली—
और ऊपर से टूटा,
ठीकरे बन-बन कर धूल में बिखरते हुए पाता हूँ
तब मुझे तुम्हारी याद आती है।

डाली पर ओस भरा फूल मुझे रुचता है
इसीलिए जब उसकी होठों-सी पंखुरियाँ
धरती पर इधर-उधर छितराई, मुरझाई देखता हूँ
तब मुझे तुम्हारी याद आती है।



लगता है इन सब में जैसे—
कहीं कोई एक नाता है।
याद में, तरलता में, इतनी संगति क्यों है?
प्रश्न यह अनजाने पीछे छूट जाता है।

याद के अवसर

पुनः सृष्टि

तूली की नोंक की तरह
तीखी दृष्टि विवश
फिरती रही फिरती रही
शिखरों को——
जलदों को——
अपने और उनके बीच आते
देवतरुओं को——
घेरती, सँवारती ।

मन ने ज्यों
विधि के बनाये
सब रूपों-आकारों को
फिर से रचा ;
जो कुछ भी शेष बचा
साहस बटोर कर,
अपने में सोये हुए स्रष्टा को
खुली बाँह छूकर जगाया,
कहा——"द्रष्टा बनो !
देखो यह शिखर, जलद, देवदारु से पूरित
दिशाकाश
जो भी है, सब कुछ तुम्हारी ही सृष्टि है

पृथ्वी-आकाश लो, अनिल जल लो, तेज लो ।
जैसे सहेज मिले इसको सहेज लो ।"

——डॉ० जगदीश गुप्त

भगवान सिंह

आधुनिक कविता का जनक वाल्ट ह्विटमैन

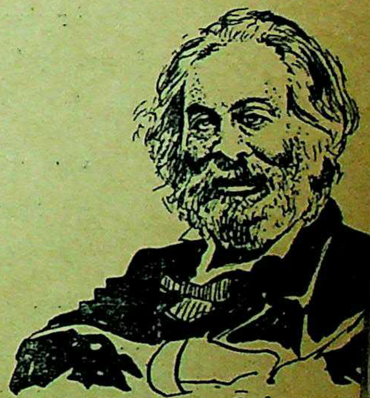
१८५५ में जब सर्वप्रथम 'लीव्ज आफ द ग्रास' का प्रकाशन हुआ, न्यूयार्क की जनता लांगफेलो की कवितायें पढ़ने में व्यस्त थी। यह महान् कृति एक लम्बे अरसे तक उपेक्षित रह जाती यदि इस पर इमर्सन की दृष्टि नहीं पड़ती। इमर्सन ने इस पुस्तक को पढ़ने के बाद इस अविश्रुत कवि को लिखा "मैं तुम्हें एक महान जीवन के प्रारम्भ पर तुम्हारा अभिनन्दन करता हूँ।" और फिर तो स्वयं ह्विटमैन भी इस वाक्य को पुस्तक के मुखपृष्ठ पर उद्धृत करके अरसे तक इसके सहारे अपना प्रचार करता रहा।

ह्विटमैन उन साहसी और आत्मविश्वास से भरे व्यक्तित्वों का प्रतिनिधि है जो जीवन से निरन्तर जूझते रहते हैं। संघर्षों के कारण लगता है कि वे थक जायेंगे, मिट जायेंगे, निराशा या पराजय की दिशा में चुक जायेंगे परन्तु एक अनन्त शक्ति का स्रोत उनमें से उमड़ कर बहने लगता है। हर विपत्ति उन्हें नया उन्मेष और नयी जीवन-दृष्टि दे जाती है।

आफिस में चपरासी, टाइप सेटर, अवसरोचित लेखक, स्कूल टीचर, समाचार पत्र का सम्पादक, फौज में मेल नर्स तथा फिर एक दफ्तर की बाबूगिरी का काम करने वाले, अपनी अन्तिम नौकरी से अपनी पुस्तक के

आधुनिक विदेशी साहित्य—(५)

उक्त लेखमाला के अन्तर्गत पाँचवीं क़िश्त जिसमें उस शक्तिशाली अमरीकी कवि का जीवन और कृतित्व प्रस्तुत किया गया है जिसे आधुनिक कविता के शुभारम्भ का श्रेय दिया जाता है।



अश्लील होने के नाम पर पदच्युत हो पक्षाघात का शिकार होकर अपने भाई के साथ जीवन के अन्तिम दिन बिताने वाले इस महान कवि ने जीवन से जो कुछ पाया विश्वास पूर्वक स्वीकार किया, जो कुछ स्वीकार किया उसे अधिक विश्वास पूर्वक समाज को लौटा दिया। जीवन के इस वैविध्य ने अनुभूतियों का एक अक्षय भण्डार कवि को दिया है और यही कारण है कि उसकी कविताओं में इतनी विशालता है, इतना विस्तार और इतनी अलंघ्य गरिमा है कि उसके आलोचक मम्फोर्ड को दी गोल्डेन डे में बाध्य होकर लिखना पड़ा, "वह एक लेखक से बहुत अधिक है, वह लगभग एक साहित्य है।" और न केवल लेविस मम्फोर्ड अपितु हर पाठक उसी के साथ यह अनुभव करता है कि अपने उत्तम क्षणों में उसने प्रथम श्रेणी की कवितायें लिखी हैं तथा उसकी कवितायें पवित्र साहित्य की कोटि में आती हैं। अश्लीलता के आरोप में पदच्युत किये जाने वाले इस कवि की कविताओं की यह सराहना पढ़ने पर एक विचित्र अन्तर्विरोध उत्पन्न होता है।

१८५५ के बाद का उसका सारा जीवन 'लीव्ज आफ द ग्रास' को दुहराने व उसकी अभिवृद्धि करने में लगा। पहले संस्करण में पुस्तक में केवल बारह कवितायें थीं जिसके साथ एक भूमिका इस आशय की जुड़ी हुई थी कि आदर्श कवि विश्व से प्रेम करेगा, अपनी सामग्री प्रकृति से लेगा, समस्त स्थानों व कालों की अविच्छिन्नता को व्यक्त करेगा, सामान्यजन का प्रतिनिधित्व करेगा, प्रकृत शैली में तुक मात्रा की रूढ़ि से मुक्त होकर लिखेगा, इत्यादि। १८५६ में द्वितीय संस्करण के साथ इसमें ३२ कविताएँ हो गईं, फिर तीसरे संस्करण में १८६० में १२२ कवितायें। तीसरे संस्करण में ही उसकी यौन धारणा अधिक स्पष्ट होकर आई जिसमें 'चिल्ड्रेन आफ आदम' और 'कैलेमस' नाम के दो अनुखण्ड जुड़ गये। फिर बाद के संस्करणों में भी इसका आकार बढ़ता गया।

ह्विटमैन अन्तर्विरोधों का कवि है। वह जिस बात का समर्थन करता है प्रायः उसी को काट देता है। शायद वह अपने अन्तर्विरोध से परिचित भी है :

क्या मैं अपने को काटता हूँ
तो ठीक, मैं अपने को काटता ही हूँ
(मैं विशाल हूँ मुझमें एक भीड़ समाहित है)

और तनिक ध्यान से देखने पर यह स्पष्ट आभासित होता है कि उसके अन्तर्विरोधों के मूल में उसकी यही विशालता है। चिड़ियों के दबे स्वर, पाँखों की गरमाहट, बच्चों की किलकारियाँ, नालों का कुलकुल, मिलों का

हड़-हड़, खड़-खड़, बिजली की कड़क, बादलों का गर्जन, नक्षत्रों की गति, अन्तरिक्ष का विस्तार, आत्मा का सार्वभौम विस्तार, ईश्वर के प्रति नया विश्वास, इच्छा, वासना, सहजानुभूति व विज्ञान सब तो उसमें भरा है।

'वाल्ट तुम में इतना कुछ तो भरा है, तुम इसे व्यक्त क्यों नहीं करते : वह अपने से पूछता है। और यह कवि जिसके भीतर विचारों और व्यापारों के ध्रुव आपस में मिलते हैं, यदि अपने को व्यक्त करेगा तो अन्तर्विरोधों का जन्म होगा कैसे नहीं?

मैं शरीर का कवि हूँ, और मैं आत्मा का कवि हूँ
स्वर्ग के सुख मेरे साथ हैं, और नरक की यातनायें मेरे साथ हैं

....

मैं स्त्रियों का कवि हूँ वैसे ही जैसे पुरुषों का
और मैं कहता हूँ स्त्री होना उतना ही महान है जितना पुरुष होना
और मैं कहता हूँ कि आदमी की माँ होने से बढ़ कर कुछ नहीं है।

× × ×

मैं मात्र शिवत्व का कवि नहीं हूँ, अशिवत्व का कवि होने को उन्मुख भी नहीं
बुराई मुझे उबाती है और बुराई का सुधार मुझे उबाता है मैं तटस्थ हूँ
मैं उस हर चीज़ की जड़ को सींचता हूँ जो उगा है

ह्विटमैन अभ्यासी कवि नहीं है। दूसरे कवियों की कविताएँ पढ़ कर कविता लिखने बैठने से उसे चिढ़ है। 'दूसरी कविताओं से निथरी हुई कवितायें सम्भवतः समाप्त हो जायेंगी' कायर निश्चय ही समाप्त हो जायेंगे। महान और जीवन्त की आशा महान और जीवन्त आचरण से ही हो सकती है।' यही कारण है कि ह्विटमैन किसी पूर्ववर्ती कवि के स्वर में स्वर मिला कर रिरियाता नहीं है। उसका स्वर ताजा है। उसकी आवाज सीधे उसके मन से निकलती है और निःसंकोच भाव से हमारे मन और आत्मा को छूती है।

ह्विटमैन कलावादिता का विरोधी है। सजावट से बचता है। उसकी दृष्टि में समस्त सौन्दर्य सुन्दर रक्त और सुन्दर मस्तिष्क से निसृत होता है। यदि किसी पुरुष या स्त्री में महानता का संयोजन है तो यह पर्याप्त है। ... जो अलंकार या प्रवाह की चिन्ता करता है वह समाप्त हो जाता है।... कवि अपना समय अनावश्यक काम के पीछे बर्बाद नहीं करेगा। ... वह सीधे सर्जना पर पहुँचेगा। उसका विश्वास उन सभी वस्तुओं के विश्वास पर काबू पा लेगा जिनका वह स्पर्श करेगा ..और सभी आसक्तियों पर कब्जा कर लेगा। ... कला की कला, अभिव्यक्ति की गरिमा और शब्दों के प्रकाश की धूप सहजता है। सहजता से अच्छी कोई चीज़ नहीं

है। अतिरंजना या नियन्त्रण के अभाव को किसी चीज़ से पूरा नहीं कि[illegible] जा सकता। यही कारण है कि अपनी सम्पूर्ण शक्ति और गति के [illegible] भी कलात्मक दृष्टि से उसकी कवितायें चण्डूल हैं। अच्छे, बुरे और नि[illegible] टुकड़े आपस में गुँथे हुए चले आते हैं और बुरे और निःसंग टुकड़े भी [illegible] नहीं मिलते। फिर भी उत्कृष्ट अंश बेजोड़ हैं।

'सांग आफ माई सेल्फ' उसके व्यक्तित्व को उभारने में सबसे [illegible] कविता कही जा सकती है जिसमें उसका परुष पर निर्भय और स्पष्ट [illegible] उसकी चौंका देने वाली मान्यतायें, व्यापक दृष्टि सब कुछ बहुत खुल[illegible] व्यक्त हुआ है। १३४५ पंक्तियों की यह कविता अपने भीतर एक म[illegible] काव्यात्मक गरिमा और विस्तार लेकर चलती है। इसमें उसका चिन्[illegible] बहुत सुलझा हुआ है और वह उस उदात्त भूमि का स्पर्श करता है [illegible] भारतीय चिन्तन की अपनी पूंजी है। ऐसा अनुमान किया जा सकता [illegible] कि इमर्सन और थारो की कृतियों और अपने समय में सर्वाधिक प्रच[illegible] जर्मन दार्शनिकों की कृतियों से, जो भारतीय दर्शन से सर्वाधिक प्रभा[illegible] थीं, वह इस दिशा में अग्रसर हुआ होगा। यद्यपि उसके सम्पूर्ण कृतित[illegible] अद्वैत वेदान्त की कुछ न कुछ झलक यत्र-तत्र मिल जाती है परन्तु [illegible] रचना में यह बहुत स्पष्ट है। ह्विटमैन के कलात्मक अभाव को उ[illegible] दार्शनिक पूरा करता है। उसमें वह गहराई और सूक्ष्मता प्राप्त होती [illegible] जो अन्य अमेरिकी कवियों में नहीं मिलती। यही वह दृष्टि है जो उ[illegible] मन को सम्पूर्ण ध्रुवों से जोड़ती है, विश्व के सम्पूर्ण क्रिया-व्यापार में [illegible] अन्तर्निहित लयात्मकता का दर्शन कराती है, उसे सुख-दुख से उठा कर [illegible] चिन्मय स्थिति में पहुँचाती है जहाँ वह अच्छाई, बुराई, तुच्छता, मह[illegible] सबके प्रति तटस्थ हो जाता है :

मेरा विश्वास है कि घास की एक पत्ती नक्षत्रों की परिक्रमा
श्रम से कम नहीं [illegible]

× × ×

घड़ी क्षण को व्यंजित करती है पर अनन्तता से क्या व्यक्त होता [illegible]

× × ×

मैं यह भी कहता हूँ कि पराजित होना अच्छा है, युद्ध उसी उत्साह में हारे जा[illegible]
जिसमें जीते जाते [illegible]

× × ×

मैं किसी व्यक्ति को घटाऊँगा नहीं, न छोड़ूँगा
रखेल औरत, परोपजीवी, चोर यहाँ आमन्त्रित हैं
भद्दे होठों वाला दास आमन्त्रित है...।

मैं किसी को छोटा और किसी को बड़ा नहीं कहता
जो अपने स्थान को भरता है वह किसी के बराबर है ।

उसकी संवेदनशीलता इतनी प्रबल हो जाती है कि वह समस्त विश्व से एक प्राण महसूस करता है :

जो किसी का अपमान करता है, मेरा अपमान करता है
और जो कुछ कहा या किया जाता है अन्ततः मुझे लौट कर मिलता है ।

लगता है यह किसी पाश्चात्य कवि की कविता नहीं है किसी भारतीय ऋषि का मंत्र है, वह स्थिति जहाँ वह कल्पना करता है 'मा कश्चित दुःखभा-ग्भवेत् ।'

परन्तु यह आध्यात्मिक दृष्टि उसको भौतिकता से खींच कर अलग नहीं करती। वह विश्व को भ्रम मान कर कुण्डली नहीं मार लेता। सचाई को वह स्वीकार करता है, उसकी पूजा करता है, उस पर प्रश्न-चिह्न लगाने का उसका साहस नहीं होता है :

मैं सचाई को स्वीकारता हूँ, और उस पर सन्देह करने का साहस नहीं करता
भौतिकवादिता प्रथम और अन्तिम रंग है ।

× × ×

मेरी खिड़की से प्रभात का एक सौन्दर्य मुझे अध्यात्म की पुस्तक से अधिक तोष देता है ।

फिर भी सचाई को पहचानने वाली दृष्टि उसकी अपनी है :

सभी सत्य सभी वस्तुओं में प्रतीक्षारत हैं
वे अपने जन्म के लिए उतावली नहीं करते, न उसे रोकते हैं,

× × ×

तुच्छ मेरे लिये उतना ही महान है जितना कुछ भी
(एक स्पर्श से अधिक या कम क्या है ?)

इसीलिये आत्मा और शरीर, ईश्वर और अपना अहं सब उसके लिए बराबर सिद्ध होते हैं :

मैंने कहा है कि आत्मा शरीर से बड़ी नहीं है
और मैंने कहा कि शरीर आत्मा से बड़ा नहीं है
और कोई भी चीज, ईश्वर तक, किसी के अहं से बड़ा नहीं है

× × ×

स्वच्छ और मधुर है मेरी आत्मा, और स्वच्छ और मधुर है वह सब
जो मेरी आत्मा नहीं है
एक का अभाव दोनों का अभाव है, और अदृश्य दृश्य द्वारा सिद्ध होता है ।

ईश्वर को हम नहीं देखते, ईश्वर की रचना को देखते हैं। ईश्वर की बुद्धि से परिचित हम नहीं हैं पर मनुष्य की बुद्धि और वैज्ञानिक उप... से हम परिचित हैं। जो दृश्य है वही अदृश्य का अनुमान देता है। भौ... जगत ह्विटमैन के लिए ईश्वर या आत्मा का स्थूल रूप है; बिना इ... पाये, इसके सौन्दर्य से परिचित हुए, इसके ऐश्वर्य का भोग किये हम ई... को पा नहीं सकते, आत्मा के सौन्दर्य से परिचित नहीं हो सकते। ... कारण है कि उसकी कविताओं में प्रायः स्थूलता का भी समान चि... मिलता है, वैज्ञानिक प्रगति में भी उसकी उतनी ही आस्था मिलती है ... मानवता--नव्य मानवता--के प्रति अपार मोह और सहानुभूति पाई ज... है। परन्तु यहीं आकर उसमें नीरसता का इतना बड़ा दोष पाया ज... है कि उसकी कविता कविता न रह कर व्याख्यान बन जाती है। वह... पर एक चीजों का नाम गिनाता चला जाता है, उदाहरण पर उदाह... रखता जाता है और फिर जब तक अपने मन में ही शंका करने ल... है कि कहीं वह व्याख्यान तो नहीं देने लग गया और वह उसे अस्वी... करता है। 'पैसेज टू इण्डिया' उसकी वैज्ञानिक आस्था को सबसे स्पष्ट रू... हमारे सामने रखती है :

एक नई प्रार्थना मैं गाता हूँ
ओ कप्तानों, जल यात्रियों, अन्वेषकों तुम्हारी
गुम इंजीनियरों, तक्षकों, यन्त्र चालकों तुम्हारी
तुम्हारी, मात्र व्यापार और यातायात के लिए नहीं
अपितु ईश्वर के नाम में, और तुम्हारे लिये ओ आत्मा !

× × ×

देखो मैं भाषण नहीं देता, नहीं एक छोटा दान
मैं देता हूँ तो पूर्णतः अपने को

यौन-भावनाओं को जितनी नग्न अभिव्यक्ति ह्विटमैन ने दी है ... शायद ही किसी कवि ने दी हो। उसकी आध्यात्मिक सम्मान के स... इस तथ्य को रख कर देखने पर यह कुछ अधिक विचित्र-सा लगता है ... ह्विटमैन का विश्वास ह्विटमैन का विश्वास है, "मेरा विश्वास महा... विश्वास है और तुच्छतम विश्वास।" फिर किस अन्य कवि से ... निर्भीकता की आशा की जा सकती है :

मुझसे फूटती है वर्जित आवाजें
आवाजें सेक्स और वासना की, पर्दे में छिपी आवाजें जिनका पर्दा मैं हटा देता...

अश्लील आवाजें, जिनकी मैं व्याख्या और रूपान्तर करता हूँ
मैं अपने मुँह पर उँगली नहीं दबाता

× × ×

मैं क्षुधा और त्वचा में विश्वास करता हूँ
देखने, सुनने, छूने को आश्चर्य मानता हूँ
और मेरा हर अंश एक आश्चर्य है
मैं अन्तर्वाह्य देव पूत हूँ, और जिसे छूता या जिससे छूया जाता हूँ उसे पवित्र कर देता हूँ

× × ×

तुम ओ मेरे समृद्ध रक्त, तुम्हारी दूधिया धार मेरे जीवन की नग्नता है
वक्ष जो दूसरे वक्षों को दबाता है यह तुम होगे।

× × ×

मुझे मात्र वह स्त्री याद है जो उत्तेजित होकर मुझसे लिपट गई

× × ×

'क्रासिंग ब्रूकलिन फेरी' में पुनरुक्तियों से उत्पन्न होने वाली संगीतात्मक ध्वनि, विषय वस्तु एवं संवेदना में परिवर्त्तन, अलंकरण, अंशों को देखा जा सकता है और साथ ही देखा जा सकता है उस आत्मीयता के बोध को जो वह देश-काल से परे होकर सम्पूर्ण मानवता के प्रति अनुभव करता है:

समय और स्थान से यह मुक्त है—मुक्त है दूरी से
मैं तुम्हारे साथ हूँ, तुम एक पीढ़ी के स्त्री-पुरुष या पहले की अनेक पीढ़ियों के

ह्विटमैन अमरीका का भक्त है। अमरीका जातियों में श्रेष्ठ जाति है। वहाँ की व्यवस्था, भाषा, संस्कृति, वन, नदी, समुद्र, पर्वत सब उसे अतुलनीय लगते हैं। धरती के किसी युग के समस्त राष्ट्रों में अमेरिकी लोगों की संभवतः पूर्ण काव्यात्मक प्रकृति है। संयुक्त राष्ट्र स्वयं में ही महानतम कविता है। 'अंग्रेजी भाषा ने उदात्त अमेरिकी अभिव्यक्ति से सख्य जोड़ा है...यह प्रतिरोध की सशक्त भाषा है...यह सामान्य बोध की बोली है। यह गर्वोन्नत और निराश जातियों तथा उन लोगों की भाषा है जो उच्चाकांक्षा रखते हैं। यह वृद्धि, विश्वास, आत्मसम्मान, स्वतन्त्रता, न्याय, समता, बन्धुता, समृद्धि, दक्षता, निर्णय तथा साहस को अभिव्यक्त करने वाली चुनी हुई भाषा है।' और लिंकन अमेरिकनों में भी सर्वोत्कृष्ट। लिंकन की मृत्यु पर लिखी गई कविता 'ह्वेन लिलक्स लास्ट इन डोल्यार्ड ब्लूम्ड' ह्विटमैन के मन की पूरी व्यथा को उभार कर सामने लाती है। यह उस व्यथा के समानान्तर कही जा सकती है जो आदि कवि को क्रौंच वध के अवसर पर अनुभव हुई थी:

खून फेंकते हुए कंठ का गीत
मृत्यु की अभिव्यक्ति जीवन का गीत (क्योंकि मेरे प्रिय मित्र मैं जानता हूँ यदि तुम्हें यह गाना बदा नहीं होता तो तुम निश्चय ही मर जाते।)

इस महान कविता में कवि ने दो महान विषयों को एक कर दिया है। अमेरि[...] से उसने महान राष्ट्रपति लिंकन को तथा 'काली माँ' से मृत्यु को अभिव्यं[...] किया है। नक्षत्र को लिंकन, लिलक को प्रेम तथा कुटीर की झाड़ को मृ[...] गीत गाते हुए कवि ने प्रतीक रूप में लिया है। इस तरह यह महान कवि[...] न केवल लिंकन की मृत्यु से सम्बन्धित एक विशेष देश की कविता बन क[...] रह गई है अपितु सभी देशों व सभी कालों की कविता बन कर आई है।

'प्रेयर आफ कोलम्बस' को, जैसा फोर्स्टर का मत है, ह्विटमैन की प्रार्थ[...] माना जा सकता है। यह उस दारुण स्थिति की रचना है जब वह स[...] पक्षाघात का शिकार होकर बुढ़ौती के सामने खड़ा था। 'ओल्ड, पूअर ए[...] पैरलाइज' पंक्ति ह्विटमैन की ओर अधिक संकेत करती है बनिस्पत, को[...] म्बस के और काव्य के क्षेत्र में ह्विटमैन अपने को कोलम्बस ही तो म[...] सकता है——नये दिगन्तों को खोलने वाला :

मैं वेदना से अतिशय भरा हूँ
मैं एक दिन भी प्रसन्न नहीं रह सकता
मैं चैन नहीं ले सकता ऐ प्रभु, मैं खा, पी या सो नहीं सकता,
जब तक मैं तुम्हारे सम्मुख अपने को, अपनी प्रार्थना को न रख लूँ

× × ×

सभी लक्षणों, वर्णनों, भाषाओं से परे
इस बात के लिए ओ प्रभु, यह मेरा नवीनतम चाह हो यहाँ अपने घुटने टे[...]
मैं बूढ़ा, दीन, पंगु, तुम्हें धन्यवाद देता हूँ

ह्विटमैन को मात्र कवि की दृष्टि से ही नहीं आधुनिक जीवन-द्रष्टा [...] दृष्टि से, उस महान व्यक्ति की दृष्टि से जो काल, स्थान, मानवता सब [...] अखण्डता और अविभाज्यता की उस भूमि पर पहुँचा देता है जहाँ [...] क्षण की धड़कन अनन्तता को स्पन्दित कर देती है, एक क्षीण स्वर अन्त[...] के छोरों को हिला देता है, देखने पर ही उसका सही मूल्यांकन किया ज[...] सम्भव है। वैसे ह्विटमैन उतना नया भी नहीं रह गया है, उसकी दार्श[...] मान्यता या सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि भी नयी नहीं है परन्तु उसका आत्मविश्वास [...] है और नया रहेगा। वैसे तो नया सृष्टि में दृष्टि को छोड़ कर कुछ है ही नह[...]

किसी भी शक्ल में होता, यह क्या है ?
(हम चक्राकार घूमते हैं, हम में सभी, और फिर वहीं लौट आते हैं।)



देवेन्द्र इस्सर

नारी मन की गुत्थियाँ समझना यों ही आसान नहीं होता, फिर वह तो एक अत्याधुनिक नारी थी......एक ऐसी नारी जिसने मिस शिमला के मुकुट को ठुकरा कर ग्लैन की पथरीली चट्टानों को चुनना बेहतर समझा था....आखिर क्यों ?

● ● ●

"कल हम ग्लैन जा रहे हैं," रोबन ने कहा।

"कल ?"

"हाँ।"

"कल नहीं जा सकते। कल मिस शिमला का चुनाव है", मैंने कहा।

"ओह। तो फिर मैं ही चला जाऊँगा।"

"तुम्हें मिस शिमला के चुनाव में कोई दिलचस्पी नहीं ? क्या बोर आदमी हो!" मैंने कहा।

"दिलचस्पी तो बड़ी है। लेकिन इस मौसम में मैं शिमला का सौन्दर्य देखना चाहता हूँ। मिस शिमला तो हर शहर में मिल जाती है," रोबन ने कहा और किताब पढ़ना शुरू कर दिया।

"बात वास्तव में यह है रोबन, तुम अब मर चुके हो। वरना इस अँधेरे कमरे में बन्द, सुबह से शाम और फिर रात गये तक किताब पढ़ते रहने में कौन-सा आनन्द है ?...... और फिर किताबें भी तो शिमला नहीं," मैंने कहा।

"ठीक कहते हो। लेकिन हर किताब पढ़ने के लिए एक विशेष वातावरण होता है। कुछ किताबें सर्दियों की रात को आतशदान के निकट पढ़ी जाती हैं, कुछ पेड़ की छाया में, कुछ बिजली के खम्भे के नीचे, कुछ बस-स्टाप पर इन्तज़ार करते हुए, कुछ रेल के सफ़र में, कुछ वर्षा में भींगते हुए और कुछ......"

मिस शिमला और ग्लैन की चट्टानें

"और कुछ ?"

"प्रेयसी के पहलू में," वह मुस्कराया और फिर किताब पढ़ने में मग्न हो गया।

"लेकिन 'लेडी चेटरलीज़ लवर' तो तुमने दिल्ली में ही पढ़ ली थी। अब दोबारा पढ़ने की क्या ज़रूरत पड़ गई ?" मैंने पूछा।

"एक किताब को दूसरे वातावरण में पढ़ने से प्रायः उसका अर्थ बदल जाता है", उसने कहा, "अब इसी किताब को लो, जब मैंने इसे दिल्ली में पढ़ा था तो मेरा नारा था, शरीर की पुकार सुनो। यही सत्यता है। जीवन को शरीर के स्पर्श से महसूस करो। लेकिन आज शिमले की इस बर्फ़ानी हवाओं में, तनहाई के क्षणों में, दिल्ली से दूर, इसे पढ़ते हुए कुछ यूँ अनुभव होता है कि शरीर से परे भी कुछ आवाज़ें हैं, रंग हैं, दायरे हैं......" वह एकदम मौन हो गया।

"यह कविता है या दर्शन......कोरी कल्पना", मैंने कहा, "सूचना प्राप्त हो कि मिस शिमला का चुनाव शिमले की एक विशेष घटना होती है और तुम कल ग्लैन जा रहे हो", मैंने सिगरेट सुलगाते हुए कहा।

रोबन ने कोई उत्तर न दिया और उसी तरह किताब पढ़ता रहा। मैंने कपड़े बदले और बाहर चला आया।

मेरे शरीर में एक विचित्र बेचैनी-सी, एक आशा, एक अस्पष्ट-सा डर हिलोर रहा था। आज डाली ने मुझे डान्स के लिए निमंत्रित किया था। साँवले रंग, छरहरे बदन, लहराते बालों वाली लड़की का नाम डाली था। शिमले में इस बार उसकी बड़ी चर्चा थी। बाल रूम में, बार में, काफ़ी हाउस में, स्केटिंग रिंक में, थियेटर में, जैसे डाली एक नहीं, उसके कई रूप हैं। लोग स्कैंडल प्वाइं पर इस तरह खड़े हो जाते, डाली के इन्तज़ा में, जैसे वह सुमेरु पर्वत की पवन है। दू से शोले की तरह लपकती हुई कोई लड़ दिखाई दी कि आँखों ने समझा डाली आ गई। सुना है कनॉट प्लेस की सड़कों से फिसल क डाली के सौन्दर्य के साये शिमले की पहाड़ि पर फैलने लगे हैं और इस साये से लिपटने के लिए, इसमें साँस लेने के लिए, सड़कों पर लो के साये घटते-बढ़ते रहते थे।

जब मैं डेविको पहुँचा तो डाली कैप्टे मलिक के साथ बैठी काफ़ी पी रही थी मुझे देखते ही उसने संकेत किया और मैं महसूस किया कि डाली जैसे कैप्टेन मलि के शरीर को चीर कर निकल आई हो औ प्याली के रिम पर खड़ी मुझे पुकार रही हो मैं उसके सामने कुर्सी पर बैठ गया। उस कैप्टेन मलिक से मेरा परिचय कराया गोरा, चिट्टा, लम्बा, सुन्दर, सुडौल युवक कैप्टेन मलिक और डाली के कथनानु उसका व्यक्तित्व मैगनेट है; कैप्टेन मलि पेरिस की नाईट क्लब्स की रंगीनियाँ बता थे, सिगरेट के धुएँ के गुब्बार में, छलकते प्याले, और मुग्ध नारियाँ, थिरकते हुए क और आदमी को अनुभव होता है--ईश्वर नहीं, आत्मा कल्पना है, शरीर ही सत्य शरीर ही परमात्मा है। आग उगलते शरीरों के परस्पर लिपटने से बड़ा सत्य नहीं, कोई आनन्द नहीं--कैप्टेन मलिक रहे थे। उनके चेहरे पर मैली-मैली आग चमक थी। डाली चुप थी। लें मैली मटियाली आग उसके चेहरे पर भी रही थी। शायद मेज़ पर गुबार हुए सि के धुएँ के कारण मुझे उनके चेहरे कुछ

दिखाई दिये। इस गुब्बार के पीछे से दरवाज़े पर मिसेज़ प्रेमिंदा की मूर्ति उभरी। कैप्टेन मलिक उसे देखते ही मुस्कराये और उठ खड़े हुए। डाली भी उठ खड़ी हुई। डाली कैप्टेन मलिक के इतने निकट थी कि मुझे महसूस हुआ कि कैप्टेन मलिक का व्यक्तित्व मैगनेट है। लेकिन मैगनेट जा चुका था और डाली सोफ़े पर गुमसुम बैठी नया सिगरेट सुलगा रही थी। काफ़ी का अन्तिम घूँट उँड़ेलने के बाद मैंने डाली को डान्स के लिए निमन्त्रित किया। वह जैसे एकदम चौंक पड़ी। उसने अर्द्ध-जला सिगरेट काफ़ी की प्याली में फेंक दिया। एक अजीब-सी आवाज़ आयी—सिगरेट के बुझने की।

मैं और डाली नाच रहे थे। उसकी कमर के गिर्द मेरी बाँहों का दायरा तंग होता जा रहा था और दूसरे हाथ में उसका नर्म सफ़ेद हाथ था। उसकी उँगलियों के किनारों से मीठी आग फूट रही थी। शरीरों की परिक्रमा में अनुभूति के दायरे फैलते-सिमटते जा रहे थे। उसके बदन की आँच, सुगन्ध, रंग और स्पर्श की आवाज़ मेरे शरीर में विलीन हो रही थी। धीरे-धीरे हम एक-दूसरे के निकट होते जा रहे थे। उसका चेहरा मेरी गर्दन के दायरे में सुलग रहा था और मेरी छाती पर नर्म-नर्म-सी आँच लिपट रही थी। कभी निकट, कभी दूर और एक तीव्र कामना थी एक-दूसरे में विलुप्त हो जाने की। प्रकाश था मंद-मंद और मदोन्मत्त-से हम थे।

"भूमि का अक्ष क्या है, डाली", मैंने पूछा और उसने मेरी गर्दन पर जलते हुए अधर रख दिये। और मुझे ज्ञान मिला कि बर्फ़ को आग कैसे लगती है।

मुझे एक पंक्ति याद आई और मेरे होंठों पर मुस्कान फैल गई।

"क्या बात है डार्लिंग?" डाली ने आँखों के इशारे से पूछा।

"कविता की एक पंक्ति।" मैंने कहा।

"क्या?"

"ऐ मेरी हम-रक्स मुझको थाम ले,
ज़िन्दगी से भाग कर आया हूँ मैं।"

"ब्यूटीफुल", उसने कहा।

"लेकिन यदि यह पंक्ति यूँ होती तो बेहतर था,

ऐ मेरी हम-रक्स मुझको थाम ले।
रोबन से भाग कर आया हूँ मैं।

मीटर बिगड़ गया लेकिन बात ठीक है", मैंने कहा।

"रोबन कौन है?" उसने पूछा।

"एक मित्र है, शिमले में ही मुलाक़ात हुई है। बड़ा दिलचस्प आदमी है, और बड़ा बोर भी।" मैंने कहा।

डाली का चेहरा प्रकाश से हट चुका था। गति इतनी मन्द थी कि मालूम होता था कि प्रकाश के सामने चेहरा आते-आते युग बीत जायेंगे। आँच थी मिटती-मिटती और फिर जैसे शरीर नहीं था, बर्फ़ की सिल थी मेरी बाँहों में।

"क्या बात है डाली?" मैंने पूछा।

"मुझे कुछ बूँदें शराब चाहिए। शायद बाहर बर्फ़ पड़ रही है।" उसने कहा और उसके पाँव रुक गये।

हम काउण्टर की ओर बढ़े। शराब के दो गिलास हमारे सामने आ गये। काउण्टर पर रोबन भी खड़ा था। शराब का गिलास उसके सामने पड़ा था और वह कोई किताब पढ़ रहा था।

"हैलो रोबन, यहाँ भी किताब ?" मैंने पूछा, "क्या पढ़ रहे हो ?'

"श्रीमद्भगवद्गीता।"

"भगवद्गीता" जैसे मेरा साँस सहसा रुक गया हो। मैंने एक दृष्टि शराब पर डाली और एक रोबन पर।

"आर यू सोबर ?"

"येस।"

"तो तुम पूर्ण रूप से प्रोफेन हो ?" मैंने कहा।

"इसमें आश्चर्य की क्या बात है ? भगवद्-गीता पढ़ने के लिए इससे अधिक उचित स्थान मुझे कोई नहीं मिला। मदिरा, सौन्दर्य, नृत्य, कामना, आसक्ति और आकर्षण और आनन्द-लिप्सा तुम्हें पुकार रही है और तुम शान्त खड़े हो--स्थिर-प्रज्ञ। वन के एकाकी-पन में संसार से दूर तो हर कोई योगी बन सकता है", उसने शराब का गिलास उठाया और एकदम खाली कर दिया और गीता को हिप-पाकेट में रख लिया। हम सोफे पर आकर बैठ गये।

"यह नया कुरुक्षेत्र है। इसमें हम ही अर्जुन हैं और हम ही कृष्ण।" रोबन ने कहा। और सिगरेट सुलगाने लगा।

मैंने डाली और रोबन का परिचय कराया।

"सिगरेट।" रोबन ने डाली से पूछा।

"नो, थैंक्स।" उसने कहा।

"यह तराशे हुए अधर और लम्बी सफ़ेद उँगलियाँ और आप सिगरेट नहीं पीतीं ?" रोबन ने डाली से कहा। वह चुपचाप गिलास पर झुकी रही।

"अधरों और उँगलियों के सौन्दर्य से सिगरेट का क्या सम्बन्ध ?" मैंने पूछा।

"डाली जैसी रूपसी के निकट आकर तो आदमी कवि हो जाता है और तुम निरे पत्रकार ही रहे।" उसने कहा।

"रोबन, तुमने सुना है--

ऐ मेरी हम-रक्स मुझको थाम ले;
ज़िन्दगी से भाग कर आया हूँ मैं।"

मैंने कहा।

"ज़िन्दगी से भाग कर आया हूँ मैं एक्सीलेंट !" वह उछल पड़ा।

"मैंने इसमें संशोधन किया है।"

"क्या ?"

"रोबन से भाग कर आया हूँ मैं।'

वह खिलखिला कर हँसा।

"रोबन भी किसी से भाग कर आया है" उसने कहा, "और शायद आप भी मिसेज़ डाली।" रोबन ने कहा।

"जीवन में सभी पलायन करते हैं" डाली ने उत्तर दिया।

"हाँ, यही तो मुसीबत है कि फिर मिल जाते हैं", रोबन ने सिगरेट की राख झटकते हुए कहा, "पलायन तब ही संभव है यदि एक अपने स्थान पर स्थिर रहे।"

डाली ने कोई उत्तर न दिया और गिलास को अधरों से लगा लिया।

"देखिए न मेरा मित्र मुझसे भाग कर आया था और मैं फिर उसे मिल गया।"

रोबन बातें कर रहा था। मैं और डाली सुन रहे थे। डाली ने मुझसे सिगरेट माँगा। मैंने दियासलाई जलाई। दियासलाई के प्रकाश में डाली का चेहरा चमका। उसने एक लम्बा कश लिया। बड़ी देर तक धुआँ मेज़ पर फैला रहा।

"धुएँ के गुब्बार में डाली का चेहरा कितना अर्थपूर्ण, कितना दिलकश नज़र आता है जैसे कोई किताब खुल जाये और शब्द डाली के रूप में ढल जाएँ।" रोबन ने अनजाने में डाली के चेहरे पर धुआँ छोड़ते हुए कहा। शायद डाली ने इसका बुरा माना। वह सहसा बोल उठी: "मिस्टर रोबन! जीवन किताब नहीं। न बन्द, न खुली। बल्कि जीवन है। इसमें शरीर की गर्मी और रक्त का ज्वारभाटा होता है।" डाली ने कहा।

"सुना है, हृदय की धड़कन भी होती है।" रोबन बोला।

"लेकिन वह किताब कदाचित् नहीं होतीं," डाली की आवाज़ में आक्रोश था।

"शायद", रोबन ने कहा और हिप-पाकेट से भगवद्गीता निकाल कर एक श्लोक पढ़ने लगा।

"जीवन किताब नहीं, शराब है छलकती हुई", डाली ने गिलास लहराया और शराब रोबन के चेहरे पर बिखर गई।

"हाँ, लेकिन जब शराब छलकती है तो कमबख़्त रोबन के चेहरे पर आ बिखरती है", रोबन ने कहा। डाली के हाथ से गिलास छूट गया और मेज़ पर से फ़िसलता हुआ फ़र्श पर जा गिरा। रोबन ने गिलास उठाया और मेज़ पर रख दिया। उसने गिलास की ओर देखा और फिर डाली के चेहरे की ओर। डाली का चेहरा खाली गिलास की तरह था।

"एक पेग और?" रोबन ने पूछा। डाली ने इन्कार कर दिया। वह उठ खड़ी हुई। उसने अपनी साड़ी से शराब की बूँदें साफ़ कीं और सीढ़ियाँ उतरने लगीं। मैं भी उसके साथ हो लिया। रोबन ने सिगरेट सुलगाया और नीचे उतर आया। हम तीनों मौन सीढ़ियाँ उतर रहे थे जैसे अँधेरे में किसी सुरंग में दाख़िल हो गये हों। बिजली के खम्भे के नीचे हम तीनों खड़े थे। रोबन ने कोट का कालर उठाया। डाली ने उससे हाथ मिलाते हुए कहा: "रोबन साहब, कल सीसल आइएगा। मिस शिमला का चुनाव है।"

"मिस शिमला का चुनाव तो हो गया", रोबन ने कहा।

"कौन?" डाली ने पूछा।

"मिसेज़ डाली वाडिया," उसने सिगरेट को बिजली के बल्ब की ओर फेंकते हुए कहा।

"कल मैं ग्लेन जा रहा हूँ", उसने 'गुडबाई' कहा और चला गया। मैं चकित था कि यह तमाशा क्या हुआ? मैं और डाली धीरे-धीरे डाली के होटल की ओर चल पड़े। रास्ते भर हम ख़ामोश रहे। डाली जब शराब पी लेती है तो बिल्कुल ख़ामोश हो जाती है। जब मैंने उसे उसके होटल छोड़ा तो वह एक सहमी हुई, ठिठुरी हुई-सी लड़की थी। दरवाज़े पर वह रुकी। उसने अपनी बाँहें मेरी गर्दन में डाल दीं।

"कल सुबह आऊँगा", मैंने कहा।

"प्लीज़ डू।" उसने कहा और दोनों हाथों से मेरा चेहरा थाम कर मेरे होंठ छू लिये।

"कल मेरे जीवन का स्वर्ण-दिवस है—मिस शिमला।" उसने कहा और अन्दर चली गई।

मैं वापस चला आया। रास्ते भर मेरे मन में डाली की तस्वीरें उभरती रहीं। कितनी सुन्दर है डाली, युवा और मोहक और कभी-कभी तेज़ भी! लेकिन कभी-

कभी वह अचानक [illegible] हो जाती है और फिर शराब पीने लगती है और खूब पीती है और फिर खामोश हो जाती है जैसे उसका अस्तित्व मिट गया हो।

जब मैं अपने होटल पहुँचा तो रोबन, अभी तक वापस नहीं लौटा था। उसकी किताब बिस्तर पर 'मिलन के बाद' प्रेयसी की तरह बिखरी पड़ी थी। थोड़ी देर मैंने उसकी प्रतीक्षा की और जब वह नहीं आया तो मैं सो गया। जब सुबह उठा तो रोबन सोया हुआ था और किताब उसके वक्ष पर खुली पड़ी थी। शायद वह रात देर तक पढ़ते-पढ़ते सो गया था। मैंने जल्दी-जल्दी कपड़े बदले, स्टोव जलाया और चाय बनाई। चाय रोबन के सिरहाने रख कर मैंने उसे आवाज़ दी। जब मैं बाहर जाने लगा तो उसने आँखें खोलीं और मुझे पुकारा :

"आज मैं ग्लैन जा रहा हूँ। तुम शायद सीसिल जाओगे, और, हाँ डाली से कहना आज शराब कम पिये। आज उसे मिस शिमला का मुकुट पहनना है।"

रोबन ने करवट बदली और फिर सो गया।

जब मैं डाली के होटल पहुँचा तो दरवाजा बन्द था। मैंने दस्तक दी, लेकिन कोई जवाब न आया। मैंने धीरे से दरवाज़ा खोला। वह अभी तक सोई हुई थी। उसके सिरहाने चाय ठंडी हो चुकी थी। फर्श पर शराब की बोतल, खाली गिलास और सिगरेट के अर्द्ध-जले टुकड़े बिखरे पड़े थे। काफ़ी धूप निकल चुकी थी और वह मदोन्मत्त पड़ी थी।

"बहुत देर हो गयी है", मैंने कहा।

उसने आँखें खोलीं। बड़ी मुश्किल से बोली, "आज कौन-सा दिन है ?"

"रविवार और आज तुम्हारे जीवन का स्वर्ण-दिवस है। आज तुम्हें मिस शिमला का मुकुट पहनना है।" मैंने उसे उठाते हुए कहा।

"मिस शिमला! बर्फ़ की रानी!!" उसने अँगड़ाई ली। फ़र्श पर शराब की बोतल, खाली गिलास और सिगरेट के जले हुए टुकड़ों पर उसकी दृष्टि पड़ी।

"मैंने रात कितनी आग उँड़ेली शरीर के अन्दर और बर्फ़ पिघलती ही नहीं", उसने कहा।

"तुम स्वप्न देख रही हो।" मुझे कुछ विचित्र-सा महसूस हुआ। डाली जो संगीत, रंग, सुगंधि और अग्नि की मूर्त्ति थी उसमें कैसे स्वप्न-सी लहरें कैसी ?

"अब तुम तैयार होना शुरू कर दो और समय पर पहुँच जाना। कल हर अखबार में पहले पृष्ठ पर तुम्हारा चित्र होगा—मिस डाली वाडिया—मिस शिमला।" मैंने नारा लगाते हुए कहा। डाली उठ बैठी। थोड़ी देर बैठने के बाद मैं वापस चला आया।

दिन भर मैं प्रेस के कार्य में व्यस्त रहा। शाम को सीसिल पहुँचा। एक हंगामा था। सारा शिमला जैसे सीसिल में उमड़ आया था। सौम्य और सुगन्ध के चित्र घूम रहे थे और मिस शिमला बनने की कामना में मालिन मनो बनते-बनते रह गये थे। रोबन ने ठीक कहा था कि इस फ़ेस्टीवल का सबसे बड़ा दोष यह है कि सौन्दर्यविज्ञ शरीर के रंग, रूप-रेखा और लिबास की तराश-खराश पर सौन्दर्य का निर्णय करते हैं और कोई भी 'वाइटल स्टैटिस्टिक्स' का ध्यान नहीं रखता। इस सौंदर्य संसार में मेरी आँखें डाली की तलाश कर रही

थीं। लेकिन वह अभी तक नहीं पहुँची थी। कैप्टेन मलिक और मिस प्रेमिंदा भी आ गये थे। उन्होंने पूछा, "डाली कहाँ है?"

"शायद आ रही होगी।" मैंने कहा।

वे मंच की ओर बढ़ गए। हर बार घड़ी की सूई जब एक जम्प के साथ एक मिनट आगे बढ़ती, मेरी दृष्टि दरवाज़े की ओर मुड़ जाती। शायद डाली आई। लेकिन हर बार निराश लौटती। प्रोग्राम शुरू होने में केवल पन्द्रह मिनट शेष थे। मैंने बाहर जाकर दूर तक दृष्टि दौड़ाई, लेकिन डाली दिखाई न दी। लगभग सब लोग आ चुके थे। कहकहों, मुस्कराहटों और प्रकाश-किरणों में स्वर्ग का दृश्य बन गया था। लेकिन डाली दिखाई न दी। कहीं उसने फिर शराब न पी ली हो और नशे में पड़ी हो। लेकिन वह एकदम इतनी शराब क्यों पीने लगी? जब सौन्दर्यविज्ञ भी पहुँच गये और डाली नहीं आई तो मैं कुछ परेशान हो गया। डाली के चित्र और उसके बारे में फीचर स्टोरी जो मैं कई दिनों से तैयार कर रहा था इस रंग-रूप की माया में बिखरते दिखाई दिये। मैं उसके होटल की ओर लपका। रास्ते भर देखता गया, शायद वह आ रही हो। उसके होटल पहुँच कर मैंने दरवाज़े पर दस्तक दी। लेकिन कोई उत्तर नहीं मिला। दरवाज़ा आधा खुला था। मैं भीतर दाखिल हुआ। वह कमरे में नहीं थी। शराब की बोतल, खाली गिलास, सिगरेट के अर्द्ध-जले टुकड़े, लिपस्टिक और पाउडर फ़र्श और बिस्तरे पर बिखरे पड़े थे। मैंने बाथरूम में देखा, वह नहीं थी, होटल के हर कमरे में तलाश किया, वह नहीं थी। मैनेजर से पूछा, उसने बताया कि सीसल गई है। शायद वह सीसल पहुँच गई हो। मैं दौड़ा-दौड़ा सीसल पहुँचा। फेस्टीवल शुरू हो चुका था। सारे हॉल में मेरी निगाहें घूम गईं लेकिन डाली नहीं थी। मैं हारा हुआ एक कुर्सी पर बैठ गया। चुनाव में भाग लेने वाली सब स्त्रियाँ एक ओर बैठ चुकी थीं। प्रदर्शन समाप्त हो चुका था, और सौन्दर्यविज्ञ परस्पर परामर्श कर रहे थे। थोड़ी देर में निर्णय सुनाने के लिए जज साहब सामने आये। वातावरण एकदम निस्तब्ध हो गया। मिस प्रेमिंदा को मिस शिमला का मुकुट पहनाया गया। हॉल तालियों से गूँज उठा और मिस प्रेमिंदा की ओर लोगों का दायरा सिमटने लगा। कैप्टेन मलिक उसका हाथ उठा कर हिला रहे थे। यह षड्यंत्र है प्रेमिंदा और मलिक का। उन्होंने डाली को रात से शराब पिलाना शुरू किया है और मालूम नहीं अब वह नशे में चूर कहाँ पड़ी होगी। मैंने सोचा और बाहर निकल आया। हॉल के भीतर से तालियों और कहकहों की आवाज़ें आ रही थीं।

मैं अपने होटल वापस आकर लेट गया। जैसे जीवन एक शून्य है। मुझे एकाकीपन का तीव्र एहसास हुआ। काश इस समय रोबन होता। मेरे मस्तिष्क में रोबन के कई चित्र उभरने लगे। लाल शर्ट, नीली जीन पहले अधलेटा-सा किताब पढ़ता हुआ रोबन। सिगरेट का धुआँ उसके गिर्द जाल की तरह लिपटता जा रहा है। मैंने चाय बनाई और जब पीने लगा तो मुझे अनुभव हुआ कि रोबन के साथ बैठ कर चाय पीने से चाय कभी कड़वी और कभी मीठी हो जाती है। एक ही क्षण में रोबन की आयु बदल जाती है। कभी वह एक निरीह बालक की तरह उत्सुकता से आपकी ओर देखने लगता है और फिर दूसरे

ही क्षण एक नवयुवक पीर की तरह हरकत करता हुआ, और फिर सहसा वह अपनी ठोड़ी के नीचे पुस्तक रख कर गौतम बुद्ध बन जाता है। चाय की प्याली खाली पड़ी थी। ऐश-ट्रे में सिगरेट के टुकड़े पड़े थे। सामने दीवार पर माईकेल एन्जेलो का 'आदम और ईव' चित्र लटक रहा था और इन सब में मैं गुम हो रहा था।

मैं घबरा कर बाहर निकल आया और सड़क पर बिना लक्ष्य के बहने लगा। मैं ढलान पर नीचे और नीचे फिसलता जा रहा था। मैं उस समय चौंका जब मुझे आभास हुआ कि मैं ग्लैन में हूँ। पत्थरों पर फिसलता हुआ पानी धीरे-धीरे बह रहा था। एक निस्तब्धता थी। सम्पूर्ण शान्ति। सूर्य अस्त हो रहा था। ग्लैन में अँधेरे के स बढ़ रहे थे। जैसे चट्टानें ऊपर उठती जा र हैं। मेरी निगाहें रोबन को तलाश कर र थीं। दूर एक पत्थर पर मुझे किताब पृष्ठ उड़ते दिखाई दिये। स्पष्ट है, रोबन उ निकट कहीं होगा। पत्थर के पीछे रोबन का चेहरा दिखाई दिया। मैं क़दमों से उसकी ओर बढ़ा। मुझे अनाय सूझा कि चुपके से उसके चरणों में जाकर जाऊँ और पूछूँ--'क्यों गुरुदेव, निर्वाण प्र हो गया ?' जब मैंने चट्टान पर से नीचे कर देखा तो मेरे आश्चर्य की सीमा न रही- बुद्ध के वक्ष पर सिर रखे अजन्ता की सिगरेट पी रही थी।

--:०:--

रामचन्द्र

घुटे हुए

एक गायक ने दूसरे गायक से कहा, "भाई, एक अनुरोध है। हम ने एक गोष्ठी कर रहे हैं, वहाँ आपको भी आना है।"

"कब ?" दूसरे गायक ने पूछा।

"आगामी २ जनवरी को।"

"नलिनी बाबू ! मैं पहली तारीख़ को बाहर जा रहा हूँ, खेद है उस दिन आपकी गोष्ठी में नहीं आ सकूँगा।"

"ख़ैर, कोई बात नहीं। आप अपने नाम का निमन्त्रण-पत्र तो लीजिये।" नलिनी बाबू ने कहा।

निमंत्रण लेकर पढ़ते ही दूसरे गायक अर्थात् आज के प्रसिद्ध फि संगीतकार सचिन देव बर्मन चौंक उठे, "क्यों जी, तुम तो कह रहे थे प्रोग्राम दो तारीख़ को होगा और इसमें छपा है कि २७ दिसम्बर को होगा

"जी हाँ, दो जनवरी जान-बूझ कर ही बताया। अगर सही तारी बताता तो शायद आप यह कहते कि मैं २६ दिसम्बर को बाहर जाऊँगा

"बड़े घुटे हुए हो यार !"

--विश्वनाथ मुख



रामचन्द्र 'चन्दभूषण'

बदरी बरसी उस पार कि पियवा बेदर्दी,
पिछवाड़े गिरा अनार कि पियवा बेदर्दी !

खोंइछ के बिखरे धान
उगे डीभी बन के
पक गया सेंदुरिया आम
फुनगियों पर तन के
पछुवा में उड़ा मलार कि पियवा बेदर्दी !

नाचती नटिनियाँ मुग्ध
बिजुरिया रह-रह के
खोजती नयन में द्वीप
झिंझरिया बह-बह के
यूँ ही बिखरी कचनार कि पियवा बेदर्दी !

खोंपे के गुथे न केश
निबुक निंबुई ढुलकी
चंपा के उबटन गिरे
चमेली की बुलकी
झटके से खुला किंवाड़ कि पियवा बेदर्दी !



एक बरसाती लोकगीत

प्रो० आनन्द नारायण शर्मा

पात्र

हरीश : एक प्राइवेट कॉलेज का प्रोफेसर, डॉ० मेहरा : हरीश के मित्र
रेखा : हरीश की पत्नी, बैंजू : हरीश का नौकर।

(हरीश का कमरा साधारण ढंग से सजा, मगर किताबें बेतरतीब, कुछ मेज़ पर खुली और कुछ सोफे पर। हरीश एक ईजी चेयर पर बैठा अखबार पढ़ने का नाटच कर रहा है। रेखा टहल रही है। रह-रह कर जैसे उसे कुछ याद हो आता है और वह भीतर घर में चली जाती है, लेकिन फिर तुरत ही लौट आती है। दोपहर का वक्त।)

हरीश : मगर रेखा, ठहरो तो। आखिर तुम्हें हो क्या गया है ?

रेखा : (नज़दीक आती हुई) और पूछते हो, मुझे हो क्या गया है ? मैं पागल हो गई हूँ, पागल। यही न ; कर लो चाहे जितना आज मेरा अपमान। फिर ऐसा मौका जल्द नहीं आयेगा। मैं इसीलिए तो घर में लाई ही गई हूँ।



हरीश : (समझने जैसी आवाज़ में) रेखा, तुम तो आज जैसे बोलने भी नहीं दोगी। मैं कहता क्या चाहता हूँ और तुम मेरी हर बात का उल्टा ही अर्थ लगा लिया करती हो।

रेखा : हूँ; तो तुम कहना चाहते हो कि सारा-का सारा कसूर मेरा ही है। तुमने कुछ नहीं किया। तुमने मेरे माता-पिता को कुछ भी बुरा-भला नहीं कहा, न मुझे ही कुछ कह रहे हो। मुझे ही लड़ना आया है

झगड़ा : आदि और अन्त

है, जो मैं सारा आसमान सिर पर उठाए हूँ। अच्छा बाबा, यही सही या और भी कुछ...?

हरीश : (शान्त स्वर में) रेखा, अगर तुम शांत होकर सोचो तो मैंने एक भी बात ऐसी नहीं कही, जो ग़लत हो या जिससे तुम्हारे माता-पिता का अपमान होता हो। मैं ऐसी गुस्ताख़ी कर भी कैसे सकता हूँ? मैं तो सिर्फ़ यह कह रहा था.....

रेखा : बस-बस; रहने भी दो। दुबारा कह कर जले पर और नमक न डालो। एक बार की चोट ही क्या कम है? मैंने कह दिया, अब इस घर में एक दिन भी हमारा-तुम्हारा साथ-साथ गुज़ारा नहीं हो सकता। मैं आज यहाँ से बाहर निकल कर ही पानी की एक बूँद गले से नीचे जाने दूँगी।

(फिर टहलने लगती है)

हरीश : अगर ऐसी बात है तो लो मैं ही चला जाता हूँ।

रेखा : (दूर से ही) तुम क्यों जाओगे? तुम्हारा घर, तुम्हारी गृहस्थी। तुमको तो किसी ने कुछ कहा नहीं। तुम्हारा तो अपमान नहीं किया गया। जायगी तो वह जो नौकरानी है, जिसे रात-दिन एड़ी-चोटी का पसीना एक कर खटना पड़ता है और ऊपर से दो बात भी पकड़ाई जाती है।

हरीश : (खीझ कर) ओफ़ रेखा! तुम्हारा दिमाग़ ख़राब हो गया है और तुम मुझे भी पागल बना कर रहोगी। भला यह भी कोई बात है?

रेखा : इसीलिए तो कह रही हूँ कि मुझे जाने दो। एक पागल को घर में जगह देकर तुम क्यों बला अपने सिर मोल लेते हो?

(दरवाजे पर दस्तक। साथ ही 'हरीश बाबू हैं?' की पुकार।)

हरीश : कौन मेहरा?

(उठ कर दरवाजा खोलता है। डॉ० मेहरा का हल्के आसमानी सर्ज का सूट पहने, आँखों पर चश्मा चढ़ाये प्रवेश। उसकी टाई की गाँठ ढीली पड़ी है, बालों का एक गुच्छा माथे पर लटक आया है, पर चेहरे से 'कुछ परवा नहीं' जैसा भाव छलक रहा है।')

डॉ. मेहरा : (प्रवेश करते हुए) हाँ, भाई। मैं ही हूँ। इतना बेवक्त भला और कौन आ सकता है? दवाख़ाने से लौटा तो सोचा, ज़रा क्रिकेट की कमेण्ट्री तुम्हारे ही यहाँ बैठ कर सुनी जाए। लेकिन इस सर्दी के मौसम में आज इस कमरे का पारा इतना चढ़ा हुआ क्यों है?

रेखा : (कठोर स्वर में) देखिए, डॉ. मेहरा! माना आप प्रोफ़ेसर साहब के बहुत जिगरी दोस्त हैं। लेकिन हर वक्त मज़ाक का नहीं होता। कम-से-कम मुझे इसकी आदत नहीं।

डॉ. मेहरा : (उसी सहज प्रसन्न भाव से) भाभी, यह आपका मेरे प्रति सरासर अन्याय है। मैं कसम खाकर कह सकता हूँ कि हर वक्त तो क्या इस वक्त भी मैं हरगिज़-हरगिज़ मज़ाक नहीं कर रहा। आप ही बताइए, अगर एक डॉक्टर भी मज़ाक करने लगे तो उसके मरीज़ों को कहाँ जगह मिलेगी? अब तो सुनता हूँ,

कमबख़्त चाँद पर भी ज़मीन की खरीद-बिक्री शुरू हो गई। मैं तो सिर्फ़ इतना पूछ रहा था कि आज के इस वाद-विवाद का विषय क्या है,जिसमें मुझे भी पक्ष और विपक्ष में से कोई एक सम्हाल लेने का शुभ अवसर प्राप्त हो।

रेखा : ओह, तो आप भी गोया मुझे नीचा दिखाने के लिए तैयार होकर आए हैं। अच्छी बात है, मैं ज़ल्दी-से-जल्दी यह घर खाली किए देती हूँ, तब आप लोग प्रेम से बैठ कर योजनाएँ बनाइएगा और पक्ष-विपक्ष में से एक नहीं, दोनों सम्हाल लीजिएगा। **(ऊँचे स्वर से)** बैजू, ओ बैजू...ऊ...।

बैजू : (दूर से आती आवाज़) जी, आया बहू जी।

रेखा: (चिढ़ कर) जी आया बहू जी के बच्चे, जब देखो जाने कहाँ मरा रहता है ? चल, जल्दी कर।

बैजू : (प्रवेश कर) क्या करना है, बहू जी ?

रेखा : करना है तेरा सिर। देखिए न, कितना बनता है ? जैसे इसको कुछ मालूम ही न हो।

हरीश : रेखा, तुम सचमुच आपे में नहीं हो। भला नौकर पर बिगड़ने की क्या बात है ? उसने तो कोई कसूर नहीं किया।

रेखा : नहीं-नहीं, वह क्यों कसूर करेगा ? कसूर करने का ठेका तो मैं लिखा लाई हूँ। इस घर में एक मुझको छोड़ और कोई कसूर नहीं करता, कर ही नहीं सकता। इसीलिए मैं ऐसा इंतजाम कर रही हूँ कि अब यहाँ कसूर करने वाला रहे ही नहीं। न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी। **(बैजू की ओर घूम कर)** चल बे, तू क्या देखता है ? ले आ भीतर से मेरा सारा सामान।

बैजू : बहू जी, कौन सारा सामान ?

रेखा : तुझे इतना भी नहीं मालूम। **(कुछ धीमी आवाज़ में)** सब मिले हुए हैं। मालिक से नौकर तक सब का एक हाल है। कर लें मुझसे चाहे जितना मज़ाक......।

बैजू : मालकिन, मेरा कोई हाल नहीं। आप हुकुम दीजिए, मैं तैयार हूँ।

रेखा : अच्छा बस, तू मेरा बक्स बाहर निकाल। मैं अपना सामान खुद ही रख लेती हूँ।

बैजू : (कुछ सहमे स्वर में) लेकिन बहू जी मेरी मानो तो एक बात कहूँ। मालिक के कहे का कौनो बुरा नहीं मानना चाहिए। घर-गिरहथी में ऐसा तो रोजे होता है।

रेखा : (बिफर कर) चुप रहता है कि नहीं बदतमीज़ ! चला है मुझी को उपदेश देने। आग लगे तुझमें और तेरी गिरहथी में। यहाँ सब लेक्चर देने वाले ही बन गए हैं। जा, जो काम कहा है, एक मिनट में कर।

बैजू : बहुत अच्छा, बहू जी। हमें का! जो कहो, हाजिर हैं।

(बैजू भीतर जाता है और एक बड़ा-सा ट्रंक और एक अटैची उठाए लाकर कमरे में रख देता है।)

रेखा : (तेज़ आवाज़ में) अरे, यह किसका बक्स उठा लाया और अटैची तुझसे किसने माँगी थी। बड़ा होशियार की दुम बनने चला है। जा, इसे वहीं रख आ जहाँ से लाया है और मेरा काला वाला

बक्स लाना। कमबख़्त, इतना भी नहीं जानता! बेईमान कहीं का?

(बैजू का बड़बड़ाते हुए पुनः प्रस्थान।)

डॉ. मेहरा : लेकिन हरीश, तुमने आखिर कौन-सी बात कह दी जो यह तूफ़ान खड़ा हो गया।

हरीश : (सफ़ाई देने के ढंग से) भाई, मैंने जान-बूझ कर कहाँ कुछ कहा है? वह तो एक बात निकल आई। उसी पर जरा-सा मैंने भी कह दिया। मगर मेरा मक़सद क़तई बुरा नहीं था।

डॉ. मेहरा : नहीं-नहीं, यह बात नहीं हो सकती। तुम मुझसे बेकार छिपाने की कोशिश कर रहे हो। मैं भाभी के स्वभाव से पिछले पाँच साल से बहुत निकट से परिचित हूँ और मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि इतनी सहनशील और नेक दिल औरत मैंने आज तक नहीं देखी। तुमने जरूर कोई ऊँची-नीची बात कह दी होगी। तभी इन्हें इतनी टीस है।

हरीश : इन्हीं से पूछ देखो, मैंने क्या कहा है?

डॉ. मेहरा : मैं इनसे क्या पूछूँ, तुम खुद क्यों नहीं बताते?

रेखा : (बात काट कर) देखिए डॉक्टर साहब, मैंने एक बार कह दिया, मेरे सामने आप लोग मेरे बारे में कोई चर्चा न करें। मैं इतनी नादान नहीं कि इन चिकनी-चुपड़ी बातों में बहलाई जा सकूँ। मैं अभी इस घर से जा रही हूँ। उसके बाद चाहे हाथ में सुमिरनी लेकर बैठ जाइएगा।

डॉ. मेहरा : हाथ में सुमिरनी तो लेनी ही पड़ेगी, भाभी। अभी आप हैं, तब न कोई आप का महत्त्व नहीं समझता। मैं सच कहता हूँ, आप एक हफ्ते के लिए भी कहीं चली जाइए तो इस मकान में उल्लू बोलने लगेंगे, उल्लू। और प्रोफ़ेसर साहब बाज़ार नापते नज़र आएँगे।

रेखा : कोई बाज़ार नापे या दूकान, मुझे इससे कुछ मतलब नहीं। समझ लीजिए, इस घर के लिए मैं मर चुकी। **(जोर से)** अबे ओ बैजू के बच्चे, फिर कहाँ मर गया?

बैजू : (भीतर से ही) आ ही तो रहा हूँ बहू जी। ओह, बाप रे! आपका बक्सा इतना भारी है कि अकेले दम सधता ही नहीं था।

रेखा : हाँ नासपीटे, देख ले, उसमें सिर्फ़ सोने और चाँदी की सिल्लियाँ ही तो भरी हैं। कामचोर कहीं का। खा-खा कर मुस्टंड हो गया है और एक छोटा-सा बक्स इनसे नहीं सधता। **(बैजू आता है)** अच्छा, जा अब दौड़ कर एक ताँगा तो ले आ।

बैजू : ताँगा क्या होगा बहू जी?

रेखा : उसका घोड़ा खोल कर उसमें तुझे जोता जायगा और क्या होगा?

डॉ. मेहरा : (हँसते हुए) बहुत अच्छे, बहुत अच्छे। क्या बात कही है? इसी को कहते हैं विट। थूक दो भाभी, सारा गुस्सा इसी एक बात पर।

बैजू : मालकिन, खेत खाए गदहा और मार खाए जोलाहा।

रेखा : हाँ-हाँ, जान लिया सब पंडित बन गए हैं। जाता है कि नहीं, अभागे!

बैजू : लेकिन बहू जी, ई तो कौनो गाड़ी का टैम नहीं है।

रेखा : (बिगड़ कर) मैं कहती हूँ, बहस मत कर। जा, अपना काम देख।

(बैजू कमरे से बाहर जाता है, पर कुछ सोच कर बाहर ही रुक जाता है।)

हरीश : तो रेखा, तुम सचमुच जा रहीं हो?

रेखा : हाँ-हाँ, मैं एक नहीं सौ बार जा रही हूँ। **(बक्स खोल कर फिर से सहेजने लगती है।)** अब मेरे लिए इस घर में एक पल भी रहना हराम है।

हरीश : मगर जरा सोचो तो। तुम्हारे इस तरह चले जाने से लोग-बाग क्या कहेंगे और मेरी इज्ज़त का क्या होगा?

रेखा : जब मेरी इज्ज़त का किसी को ख़्याल नहीं तो मुझे किसी की इज्ज़त की क्यों परवाह होने लगी? तुम्हें अपनी इज्जत इतनी प्यारी है तो तुम भी नौकरी से इस्तीफ़ा दाखिल कर कहीं जा रहो।

हरीश : लेकिन......

रेखा : लेकिन...लेकिन...लेकिन... इस लेकिन से तो मैं आजिज़ आ गई। क्या इसके अलावा कहने को कोई दूसरी बात...

(अचानक दरवाज़े पर दस्तक।)

बाहर से पुकारने की आवाज़ : प्रोफेसर साहब हैं? टेलिग्राम है।

(टेलिग्राम का नाम सुन कर रेखा की आधी बात मुँह में रह जाती है। कपड़ा सहेजना बन्द हो जाता है। हरीश दरवाजा खोल कर बाहर निकलता है। फार्म पर दस्तखत कर वह टेलिग्राम हाथ में लिए वापस लौटता है। डाकिए का जाना। हरीश लिफ़ाफ़ा फाड़ कर टेलिग्राम पढ़ता है और एक मिनट चुप हो जाता है।)

रेखा : (पास आकर) क्या है?

हरीश : (उपेक्षा से) तार है।

रेखा : (अधीर होकर) वह तो देख ही रही हूँ। मगर कहाँ से आया है? लाओ, मुझे दो।

(हरीश तार उसकी ओर बढ़ा देता है। रेखा हरीश के हाथ से लेकर तार पढ़ती है।)

डॉ. मेहरा : क्या बात है, भाभी? ख़ैरियत तो है न?

रेखा : हाँ-हाँ, सब ठीक है। इन्होंने एक जगह प्रिंसिपलशिप के लिए दरख़्वास्त भेजी थी। उसी का बुलावा है। कल ही इंटरव्यू है। **(तार दे देती है।)**

डॉ. मेहरा : भाभी, बड़ा शुभ शकुन है। मिठाई खिलाओ। तार भेज कर इंटरव्यू के लिए बुलाया जाना कोई मामूली बात नहीं।

रेखा : अरे, पहले हो भी जाए तब न। यह मरी रोज़ की खिचखिच छूटे। आज इनकी खुशामद, कल उनकी बेगार।

हरीश : होने का क्या सवाल है? मैं जाऊंगा ही नहीं। प्रोफेसर बन कर तो यह भुगत रहा हूँ। प्रिंसिपल बन जाने पर तो घर में पता नहीं और क्या गुल खिलेगा? और ऐसे प्रिंसिपल की क्या इज़्ज़त होगी जिसकी पत्नी मित्रों के सामने उसे रोज़ सुबह-शाम उल्टी-सीधी सुनाया करे?

रेखा : देखिए, डॉक्टर साहब। यही बात मुझे बुरी लगती है। एक तो मेरे घरवालों को बुरा-भला कहना और ऊपर से कुछ बोलने भी न देना। अच्छा बाबा, मुझसे निपटने को तो सारी जिंदगी पड़ी है। पहले इंटरव्यू से तो

हो आओ।

हरीश : ना-ना, मैं नहीं जाता।

रेखा : क्यों नहीं जाते ?

हरीश : ऐसे ही।

रेखा : आखिर कोई बात भी हो।

हरीश : बात क्या रहेगी ? समझ लो, मुझसे प्रिंसिपली का बोझ नहीं ढोया जायगा।

रेखा : वह सब कुछ नहीं होगा। तुम्हें जाना है और ज़रूर जाना है।

हरीश : **(कुछ रुक कर)** मगर अब जा भी कैसे सकता हूँ ? कल नौ बजे इंटरव्यू है और अब तक न तो सामान ठीक हुआ है और न अभी कोई गाड़ी ही है।

रेखा : इससे क्या होगा ? तुमने अब तक नहाया नहीं है। नहा कर कपड़े बदलो। इतनी देर में मैं तुम्हारा सामान ठीक किए देती हूँ। और अभी गाड़ी नहीं है तो कोई हर्ज नहीं। ताँगे से बरौनी चले जाओ। वहाँ से तो कोई-न-कोई गाड़ी मिलेगी ही। ऐसे अवसर जिन्दगी में बार-बार नहीं आया करते।

डॉ. मेहरा : हाँ हरीश, मेरी भी यही राय है। इस वक्त तुम्हें भाभी की बात माननी ही पड़ेगी। यही तुम्हारी सबसे खराब आदत है कि तुम उनकी हर अच्छी-बुरी बात काट दिया करते हो।

हरीश : ठीक है भई, जब सब लोगों ने मेरे खिलाफ़ साजिश ही कर ली है तो मैं अकेला किस-किस मोर्चे को देखूं। मगर मैं फिर कहे देता हूँ कि......

रेखा : **(बीच में)** अच्छा, कहना-सुनना बाद में, पहले जल्दी जाने की तैयारी करो। **(जोर से)** बैजू, ओ बैजू।

बैजू : **(दूर से)** आया, बहू जी।

रेखा : अरे गदहे, तू अभी तक गया नहीं ? कोढ़ी कहीं का ! मैंने कितनी देर पहले तुझसे ताँगा लाने को कहा था ?

बैजू : **(पास आकर)** अभी लाया, बहू जी। एक लाऊँ कि दो ?

रेखा : बदतमीज। मज़ाक करता है ? पहले जाकर मेरा ट्रंक भीतर रख आ और साहब का होल्डॉल और अटैची लाकर दे।

(बैजू रेखा का ट्रंक घसीट कर ले जाता है और होल्डॉल और अटैची लाकर देता है।)

बैजू : तो अब मैं भाग कर ताँगा ले आऊँ न ?

रेखा : हाँ-हाँ, जरा एक तेज ताँगा लेना। और देख, ये रहे दो आने पैसे। **(पैसे देती है)** लौटते हुए इनसे दही भी ले लीजो। **(मेहरा की ओर घूम कर)** कहते हैं, दही की यात्रा अच्छी होती है।

डॉ. मेहरा : और भाभी, झगड़े की भी। हा-हा......!

(समवेत हँसी)

सूचना

लेखकों से सूचनार्थ निवेदन है कि केवल स्वीकृत रचनाओं की ही सूचना दी जाती है, और केवल वही अस्वीकृत रचनाएं लौटायी जाती हैं जिनके साथ आवश्यक टिकट होता है। —सम्पादक

अहमद सलीम

बातें, जिनमें सुगन्ध फूलों की—(९)

उक्त लेखमाला की नौवीं क़िश्त, जिसमें ख़्वाजा हसन निज़ामी के कुछ दिलचस्प पत्र प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

३१ जुलाई १९५५ का दिन था, दर्गाह निज़ामुद्दीन औलिया से एक हृदय-विदारक चीख़ उठी और सारी दिल्ली में एक करुणा उमड़ पड़ी, लाल क़िला और कुतुब मीनार पर ग़म की घटाएँ छा गयीं, यमुना की मौजें सर पटकने लगीं।

और फिर देखते-देखते भारत का साहित्य-जगत शोक में डूब गया—

'......कि आज
तहज़ीब का नमूना,
५०० से अधिक किताबों का लेखक,
और इन सबसे बढ़ कर....
अलबेली उर्दू का जनक
"ख़्वाजा हसन निज़ामी"
मौत की नींद सो गया।'



लेकिन जिस हसन निज़ामी की मौत पर लोग आँसुओं के दरिया बहा रहे थे वह ख़ुद ज़िन्दगी भर क़हक़हों के फूल बिखेरता रहा। मैं उसकी अलबेली उर्दू के दूसरे नमूनों की बात नहीं कर रहा हूँ, वह मेरा विषय नहीं। मैं तो उसके ख़तों की बात कर रहा हूँ जो १००-२०० वर्ष की मार खाकर भी

ख़्वाजा हसन निज़ामी के कुछ पत्र

शायद ज़िन्दा रहें।

१९३७ का यह वह ज़माना है जब इंडिया ऐक्ट के अन्तर्गत काँग्रेस ने विधान सभा के लिए चुनाव लड़ने का फ़ैसला किया। ख्वाजा हसन निज़ामी उस चुनाव के खिलाफ़ थे। उन्होंने नेहरू जी के नाम (जो उस समय सभापति थे) यह पत्र लिखा :

"अल्लाहाबाद के दिलदार, दिल का सलाम लो,

और फिर ये पयाम[1] सुनो कि तुम भी दिल्लीवाले हो। नहर सआदत खाँ देहली के पास तुम्हारे बुज़ुर्ग रहते थे, इसलिए नेहरू कहलाते हो। मेरे बड़े भी साढ़े ६ सौ बरस से दिल्ली में रहते आये हैं। इस वास्ते मुझे हम-वतनी और हम-शहरी होने का जज़बा जुरअत दिलाता है कि भाइयों और आपस में मुहब्बत का रिश्ता रखने वालों की तरह तुमको मुख़ातिब करूँ।

तुम हिन्दुस्तान के दिलों पर हुकूमत करते हो, क्योंकि तुम्हारे दिल पर ख़ुलूस और सच्चाई और बे-ग़रज़ी हुकूमत करती है, तुम्हारे महकूम दिलों में एक मेरा दिल भी है। तुम अल्लाहाबाद में पैदा हुए, अल्लाह तुम्हारे बोल को हमेशा बाला और आबाद रखेगा, तुम मज़हब की असली रूह के साथ चल रहे हो जिसका दूसरा नाम बे-ग़रज़ खिदमते-खल्क़ है। इसलिए अपने मन की बिरह और लगन और सोज़ को इस ख़त के बोलते हुए हर्फ़ों में मैं तुम्हारे पाक और बेबाक दिल के सामने पेश करता हूँ। इस ख़त में कोई चाल नहीं है जिसकी आजकल सारी दुनिया में हवा फैली हुई है। इसमें कोई तब्लीग़ी हिकमत भी नहीं है क्योंकि हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तान वालों और हिन्दुस्तान की हुकूमत को देखते-देखते मेरी सारी तब्लीग़ी हिकमतें[2] बिरह की आग में जल-भुन कर खाक हो चुकी हैं।

इस ख़त में अपने मज़हब या अपनी क़ौम या फ़िर्क़े की तरफ़दारी भी नहीं की है। इस ख़त में ग़ैर-मुस्लिम क़ौमों से चाहे वह हाकिम हो या महकूम, नफ़रत और दुश्मनी भी नहीं है; और इस ख़त में नमूद-व-नुमाइश[3] की कोई ज़ाती ख्वाहिश भी नहीं है। और इस ख़त को खल्क़-अल्लाह में[4] आम करने की वजह भी महज़ यह है कि शायद और कोई हिन्दुस्तानी भी मेरे इस दर्दे-दिल में शरीक हो जाए; जिसके तकाज़े ने मुझसे यह ख़त लिखवाया है। क्योंकि इस ख़त की तहरीर के वक्त मुझे ऐसा महसूस होता है कि इस खयाल में मेरा कोई भी साथी नहीं है, न हिन्दू न ईसाई, न कोई और। रात बहुत सुनसान ढल रही है, तीन बज चुके हैं। सारी दुनिया सोती है, मैं लिख रहा हूँ और काटने वाले मच्छरों और घंटे की आवाज़ के सिवाय किसी को अपना शरीके-हाल नहीं पाता। खयालात और तसव्वरात बहुत हैं, मगर इन नातवानियों को देखता हूँ तो यह भी कुछ कम नज़र नहीं आतीं।

मुझे बहुत कुछ कहना है, लेकिन दिल कहता है अल्लाहाबाद का दिलदार पहले ही सब कुछ जानता है। जानी-पहचानी, समझी-समझायी बातों को दुहराना बेकार है, एक हर्फ़ बस है। एक अल्लाह के नाम पर आबाद शहरी को बस एक ही बात लिखनी काफ़ी है। और वह ये है कि हिन्दुस्तानियों को दुख भरी क़ैद से नजात[5] दिलवाने की कामना

१. सन्देश

२. प्रचार के साधन ३. दिखावा

४. अल्लाह के लोगों में ५. मुक्ति

और चाहत रखने वाला इन औज़ारों से दुःख-भरी बेड़ियाँ काटना चाहता है जो दुःख पैदा करने वालों ही ने ईजाद किये हैं, जिनके साथ आपस की दुश्मनी चिमटी हुई है और जिन्होंने दुनिया भर के आज़ादों को ज़ाती ग़ुलाम बना रखा है।

जब एक ही हर्फ़ कहना है और पाक और बेबाक होकर कहना है तो मैं गोल-मोल क्यों कहूँ। साफ़-साफ़ क्यों न कहूँ कि ये कांग्रेस और ये मुस्लिम लीग और ये इलेक्शनबाज़ी सब दुख बढ़ाने और क़ैद रखने के सामान हैं। इनसे सूबा सूबे से, शहर शहर से, क़ौम क़ौम से, घर घर से, बाप बेटे से, बेटा बाप से जुदा हो रहा है। यहाँ तक कि हिन्दुस्तानी अपनी असली ज़रूरतों और सच्ची ख़्वाहिशों से भी जुदा हो रहे हैं।

तुम अँग्रेजी में रूसी बोलते हो। हिन्दी ज़ुबान में उर्दू बोला करो, जिसका पहला हर्फ़ 'अल्लाह', 'ओम' और 'आदमीयत' की याद दिलाता है। और दूसरा 'राम', 'रहीम' और 'रोटी' का इशारा करता है। और तीसरा 'दीन', 'धर्म' और 'दिल' को सामने लाता है। और चौथा 'वतन', 'वस्ल' और 'विचार' का हुक्म देता है।

ज़ुल्फ़े-यार के उलझाव से मुल्क को बचाना चाहते हो और फिर उसी नागिन के पेचो-ख़म में उलझे जाते हो......

प्यारे दिलदार, यह इलेक्शन, हैज़ा और ताऊन से भी डरावनी वबा है। यह हम सब को आपस में टकरा-टकरा कर मार डालेगा, इससे पहले कि हम इस ग़लत-फ़हमी से आज़ाद हों कि आज़ादी का बस यही एक रास्ता है।

मैं कमइल्म हूँ और जिस इल्म से इलेक्शन-बाज़ी पैदा हुई है उसको तो जानता ही नहीं। एक अनजान आदमी जिस तरह सोचता होगा, उसी तरह मैं सोच रहा हूँ और इस सारे सोच-विचार से बस यही एक हर्फ़ सामने आता है कि कांग्रेस और लीग की ये सब बातें बीमार को और ज़्यादा बीमार करने वाली हैं फिर तुम जैसा मसीहा[६] किधर जा रहा है? तुम तो एक ख़ालिस हिन्दुस्तानी सड़क बनाते जो रेलों और मोटरों की सड़क से निराली सड़क होती और जिस पर किसी की रेल और किसी की मोटर न आ सकती।

अप्रैल की पहली को ये लोग दूसरों को बेवक़ूफ़ बनाया करते हैं और अब हमको आज़ादी भी अप्रैल की पहली को देने का ज़िक्र करते हैं। तो क्या हम 'फ़ूल' बनाये जायेंगे?

मनमोहन, तुम में शरीर की सुन्दरता भी है और मन का सलोनापन भी है और विचार का तेज़ भी और तुम कर्म रूप में महावीर हो। इस प्रेम-पत्र को ध्यान से पढ़ लो तो मेरा-तुम्हारा अल्लाह तुमको वह सीधा रास्ता बता देगा जो हिन्दुस्तान की नजात का असली रास्ता होगा।

तुम्हारे दिल के मनोहर बोल सुनने की चाहत रखने वाला :

हसन निज़ामी"

पत्रोत्तर के रूप में नेहरू जी के मनोहर बोल हसन निज़ामी ने सुने या नहीं, यह तो मुझे मालूम नहीं; लेकिन खुद ख़्वाजा साहब के बोल भी तो कुछ कम मनमोहक नहीं। ऐसे ही चन्द बोल और :

६. हज़रत ईसा की उपाधि, पारिभाषिक अर्थ : चिकित्सक

"जनाब मैनेजर साहब होटल-डि-हार्ट,

किसी बोआए को आवाज़ दीजिए कि कमरा नम्बर एक का मुसाफ़िर नाश्ता माँगता है।

सूरते-हाल यह है कि १३ अप्रैल का ख़त आज १५ को मिला। जब आप यह ख़त लिख रहे थे मैं अपने घर से दस मील दूर इन्कम-टैक्स ऑफ़िसर से मिलने जा रहा था। लाखों औरत-मर्द जमना स्नान करके घरों में वापस जा रहे थे। क़दम-क़दम पर अन्देशा होता था कि किसी से टक्कर हो जायेगी।

मुझे मालूम नहीं था कि बैसाखी क्या चीज़ होती है क्योंकि इसका चर्चा पंजाब में ज़्यादा है। अब पंजाब के पाँचों दरिया देहली के कूज़े में बन्द हैं। इन्कम-टैक्स ऑफ़ीसर हिन्दू हैं। मुझे देख कर कहने लगे कि आज नया साल है, शगून बहुत अच्छा है, सास ने सोने की घड़ी कलाई पर बाँधी है और ख़ुदा ने आपको घर बैठे भेज दिया। यह सुन कर कि बैसाखी हिसाब का नया साल है मुझे इसलिए दिल-नवाज़ मालूम हुआ कि मैं भी अपने इन्कम-टैक्स का हिसाब समझने-समझाने गया था।

मुझे आपके बच्चों के नाम पढ़ कर ऐसी ख़ुशी हुई गोया होटल-डि-हार्ट में ठहर गया हूँ और मेरी नवासी 'गुलेराना' आपकी नवासी के साथ बातें बना रही है।

यह बताना कि ये मुसाफ़िर होटल-डि-हार्ट में कब आयेगा, मुश्किल है क्योंकि बीमारियों ने इतना ज़ोर पकड़ा है कि कल दोपहर से आज तीसरे पहर तक कुछ नहीं खाया और पान छोड़े हुए सात दिन से ज़्यादा हो गया। ख़याल आया अगर लखनऊ जाऊँगा और ममानी लखनऊ के पान की गिलोरी मुझे भेजेंगी तो क्योंकर इन्कार करूँगा।

हज़रत अकबर कहा करते थे कि आने-वाले इन्क़िलाब के सैलाब में सब बह जायेंगे सिर्फ़ सूफ़ी (अध्यात्मवादी) बाक़ी रहेंगे। आपकी किताब 'तसव्वुफ़' को जब पढ़ता हूँ अकबर याद आते हैं। आपके शुरू के कुछ मुसव्वदे कहीं हों तो मैं उनको देखना चाहता हूँ ताकि आपकी ज़िन्दगी के इर्तक़ाई दर्जों को समझ सकूँ। न आपके लिए, न अपने लिए, न कौम के लिए, न मुल्क के लिए बल्कि होटल-डि-हार्ट के लिए।

मेरी बीनाई बहुत कमज़ोर है। दायीं आँख से कुछ थोड़ा-सा नज़र आता है, बायीं से कुछ नज़र नहीं आता। हर वक्त हल्का-हल्का बुख़ार रहता है। गुर्दा, मेदा, जिगर ख़राब है। आँतें भी ख़राब हैं। नींद भी कम आती है। मगर ग़ुस्सा ज़्यादा आता है। और यह क़ुरआन की बतायी हुई मोमिन[७] की शान नहीं है, बाक़ी सब सिफ़ाते-मोमिन[८] मेरे अन्दर हैं। एक कोताही मेरे ज़ेहन और दिमाग़ में पैदा हो गई है कि मैं चारों तरफ़ देख कर कहता हूँ कि लोग काम कर रहे हैं। मगर उनको काम करना नहीं आता। मुझे काम करना आता है लेकिन काम लेना नहीं आता। इस वास्ते मेरे किसी काम में तरतीब और मौज़ूनियत[९] बाक़ी नहीं।"

डरता हूँ कहीं मेरी बातों में भी क्रम और सन्तुलन बाक़ी न रहे और फिर ये कि बात भी तूल न पकड़ जाए। फिर भी यह पत्र तो आप सुन ही लें। इसकी तवालत से आपको

७. आस्तिक
८. ईश्वरवादियों के गुण
९. क्रम और सन्तुलन

तकलीफ़ तो होगी, लेकिन शायद सुन लेने से भला भी हो आपका। हाँ, ये पत्र भी उन्हीं मौलाना वहीद अहमद साहब के नाम हैं जिन्हें आप अभी होटल-डि-हार्ट के सिलसिले में जान चुके हैं :

"सलाम और मुहब्बत के पैगाम के बाद मालूम हो कि ८ अप्रैल का खत आज ११ को मिला। जी चाहता था कि इसका जवाब भी अपने हाथ से लिखूँ मगर पिछली रात तहरीरा काम जरा ज्यादा था इसलिए खत लिखवाता हूँ।

एक दफ़ा अमीनाबाद लखनऊ में हज़रत अकबर इलाहाबादी ठहरे हुए थे और मैं उनसे मिलने गया हुआ था। नौकर ने आकर खबर दी मौलाना अबुल कलाम साहब मिलने आ रहे हैं। हज़रत अकबर ने मुझसे कहा, चलिये "अबुलहिलाल" आ रहे हैं, हम कहीं भाग चलें। मैंने कहा--भागने की क्या ज़रूरत है आने दीजिये। कहा, मेरे एसाब[१०] कमज़ोर हैं, आपके एसाब मज़बूत हैं। मगर बहस का वक्त नहीं है, जल्दी चलिए।

हम दोनों बालाखाने से नीचे उतरे और एक इक्केवाले को बुलाया। एक तरफ़ मैं बैठा और एक तरफ़ अकबर। इक्केवाले ने लखनवी तमीज़दारी से पूछा, 'हुजूर कहाँ चलियेगा।' फर्माया, 'जल्दी चल यह पूछने का वक्त नहीं है।' इक्का चला, सड़क मुड़ी, इक्केवाले ने फिर पूछा, 'कहाँ ले चलूँ ?' फ़र्माया, 'हुज्जत न करो, जहाँ जी चाहे ले चलो।' इक्केवाला हैरान कि अजब सवारी मिली है। मुझे भी तअज्जुब कि मौलाना अबुल कलाम से इस क़दर घबराने की क्या ज़रूरत है। आखिर अमीनाबाद की एक दुकान के सामने उतरे और इक्केवाले को किराया दिया और दुकानदार के पास पहुँचे। वह वाकिफ़ था, ताज़ीम के लिए खड़ा हो गया। उन्होंने कहा, मैं दुकान के आखिरी हिस्से में जाना चाहता हूँ। दुकान के तीन दरजे थे, हज़रत अकबर आखिरी तीसरे दरजे में जाकर बैठ गये औ मुझसे पूछा, 'यहाँ तो अबुल हिलाल साहब नहीं आ जायेंगे ?' मैंने कहा, 'यह जगह बिल्कुल महफ़ूज़ है, लेकिन आखिर उनसे डरने और बचने की वजह क्या है ?' फ़र्माया, 'जब आपका 'सर जेम्स मिस्टन' से झगड़ा हुआ था तो मुझ पर आपसे तअल्लुक़ रखने के कारण बड़ी यूरश[११] हुई थी। अब अँग्रेजों के दुश्मन अबुल कलाम से मिलूँगा तो खबर नहीं ज़िले के अफ़सर कितना ज्यादा सतायेंगे।'

यह क़िस्सा इसलिए लिखा कि हर दौर में ख़ुदा की ज़ात किसी न किसी खौफ़ की शकल में तजल्ली[१२] दिखाया करती है, मगर मैं हमेशा इस तजल्ली की जियारत से महरूम रहा यानी किसी डरने की चीज से कभी नहीं डरा।

खबर नहीं अमीनाबाद में अब भी होटल है या नहीं। क्योंकि मैं होटल के क़ियाम[१३] को आज़ादी और राहत का ज़रिया समझता हूँ। हवाई जहाज में आऊँगा और दो रात अमीनाबाद के होटल में ठहरूँगा और आपसे मिल कर चला आऊँगा।"

●

१०. रग, पुट्ठे

११. आक्रमण
१२. झलक
१३. निवास



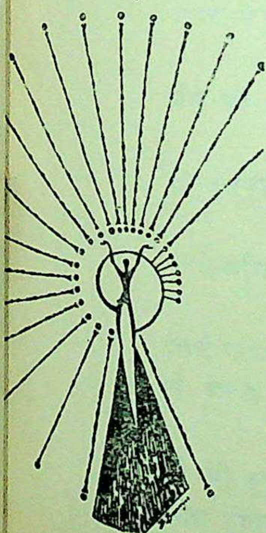
श्रीगोपाल माहेश्वरी 'प्रताप'

असमिया कविता के क्रिया-कल्प और विषय-वस्तु में आज स्पष्ट अन्तर पड़ गया है और अतीत से किसी भी कवि-वर्ग का इतना भेद कभी नहीं रहा जितना आज के असमिया कवि-वर्ग का है। परवर्ती रोमानी कवियों की वाणी में आवद्ध होकर कविता का जो यान्त्रिक स्वरूप हो गया था तथा काव्य-कला में जो जड़ता आ गई थी, उसके उपचार का इन कवियों ने सचेष्ट प्रयत्न किया। इस सदी के तीसरे दशक के उत्तरार्द्ध में 'जयन्ती'-वर्ग के युवा-कवियों द्वारा असमिया-कविता के नये युग का सूत्रपात हुआ। 'जयन्ती' उन दिनों की एक मासिक पत्रिका थी, जिसने निश्चय ही प्रगतिशील तत्वों का उन्नयन किया। 'जयन्ती'-वर्ग के कवियों में श्री अमूल्य बरुआ, श्री हेम बरुआ, श्री नीलमणि फूकन तथा श्री डिम्बेश्वर निओग आदि के नाम प्रमुख हैं; इन्होंने अकिंचन एवं दलितों को अपने काव्य का विषय बनाया था।

'जयन्ती'-वर्ग के बाद 'आवाहन'-वर्ग आया। जयन्ती-वर्ग के प्रसिद्ध कवि हेम बरुआ ने ही 'आवाहन' मासिक का प्रकाशन शुरू किया था। इस काल में असमिया कविता ने अभूतपूर्व उन्नति की तथा इसका श्रेय पूर्णरूपेण श्री हेम बरुआ को प्राप्त है।

टी. एस. इलियट, एज़रा पाउण्ड, डायलन टॉमस आदि समसामयिक विदेशी कवियों का आधुनिक असमिया कविता पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा है। आधुनिक असमिया कवियों में प्रसिद्ध हैं—सर्वश्री हेम बरुआ, नवकान्त बरुआ, महेश्वर निओग, महेन्द्र बरा, सैयद अब्दुल मालिक, होमेन बरगोहाँजि आदि।

प्रस्तुत कविताएँ आज के तीन श्रेष्ठ असमिया कवियों की हैं। वर्तमान से असन्तोष तथा उस असंतोष को संतोष में बदल डालने का सही उपाय ही इन तीनों कविताओं का मूल स्वर है। कविताएँ अगले पृष्ठों पर प्रस्तुत हैं।



आधुनिक असंतोष की तीन असमिया कविताएँ

मैं कृपण हूँ : | नवकान्त बरुआ

तुम मुझे क्षमा करो, हे पृथ्वी !
मैं कृपण हूँ
तुम्हारे सारे दान ग्रहण करते हुए भी
तुमको मैं सचमुच
प्यार नहीं कर सका...........
यह मेरी अकुण्ठित स्वीकृति है
मैं अकृतज्ञ हूँ ।
तुम्हारे आषाढ़ के आँसुओं को देखा उससे
तुम्हारे बादल के वक्ष पर चित्र अंकित किए
तुम्हारी नदियाँ जीवन के गीत सुनाना चाहती हैं
जो नियमों में नहीं बोल सकतीं ।
तो भी तुम्हारा दान विपुल-स्नेह
मैं सिर्फ अस्वीकार करता आया हूँ
मैं तो इस पृथ्वी का कोई नहीं हूँ ।
यह नीलाकाश के
किसी एक अदृश्य देश में
मानों इन्तजार कर रही है
मेरी प्रिया, मेरी ही प्रिया,
और मेरा घर, मेरा प्रेम ।

आहूत चैतन्य ने मुझे ला दिया छाया-सा मायामय
हरियाला चित्र—वह तुम्हारा ही था हे पृथ्वी !
हरी पृथ्वी का आदिम अरण्य
मैं उसका आदिम मानव ।
डाइनौसौर के साथ मेरा अविराम युद्ध है,
(सभ्यता की सृष्टि का संग्राम है)
हरे-भरे दूर्वा-दल में मैमथ की रक्त-बूँद है
और सभ्यता की अल्पना है ।
मेरा मत्त हुंकार सभ्यता का विजयोल्लास है
इतिहास का स्वप्न-भंग होता है
कहीं से मेरे विक्षिप्त प्राणों में बह कर

आता है एक सुर, एक वाणी, एक कोमलता।
दुर्बल हूँ दुर्बल, मैं अक्षम हूँ,
क्लान्त है मेरे जीवन की आदिम उग्रता,
शक्तिहीन है मेरा प्रेम।

अकस्मात मेरी समझ में आया है, प्रिया, हे पृथ्वी!
मैं कृपण हूँ
मैं लोभी महाजन हूँ।
तुम्हारे रूप से मैं अरूप का विलास कर रहा हूँ।
तो क्या मैं झूठमूठ ही कवि हूँ
पृथ्वी का प्रथम प्रेमी?
मुझे माया नहीं है, मोह नहीं है
प्रेम भी नहीं है
उड़ते हुए पक्षी का विश्राम-नीड़ नहीं है
सिर्फ आकाश है,
अन्तर का उपगुप्त मरकर भूत हो गया है।
दरिद्र-दुखित रोगग्रस्त बोध से
मैं दूर हट आया
आकाश के लिए तृषातुर हाथ उठा-उठा कर
अगर अमृत-मन्थन से गरल निकालता
उसके लिए क्या किया जाय!
अगर मेरी तृषा के लिए आँसू भी नहीं निकालेगी
तो स्नेह का समुद्र सूख जायगा।
प्रेम की जाह्नवी ने आकर जीवन धो दिया
तो भी क्लेद नहीं छूटा
अमृत-स्पर्श से भी अमर नहीं हुआ
यही मेरा खेद है।
परश-मणि भी मुझे सुनहरा नहीं बना सकी
मेरी कालिमा से
सिर्फ मणि को कलंकित किया
मैं अन्धा हूँ, मैं दस्यु हूँ, मैं लोभी
मैं कृपण हूँ
तो भी दूर से बाँसुरी के स्वरों का भास होता रहता है—
भास होता है, अन्तहीन सान्त्वना के सुर हैं।

अथच मानों यह विष है
यह मेरी आत्मा का अपमान है।
हे पृथ्वी : एक भूल, पहले एक रोज की थी
एक दिन किया था अंकित मानव ललाट पर
कवि की हैसियत से प्रेम का तिलक
रूप से तुमने उसका सरल विश्वास
अरूप की स्वप्नपुरी की तरफ़
खींचने के लिए कोशिश की थी
तुमने अधरों में लगा दी थी स्वर्गीय अतृप्ति।

आज दुःख की निशा में हे पृथ्वी,
मुझे नीलकण्ठ बनाओ (जिससे)
में इस विष का पान कर सकूँ।
जब से मिट्टी और आकाश का चिरन्तन सिन्धु-मंथन
कह सकते हैं कि तुम्हारा प्रेम मुझे
तनिक भी दुर्बल नहीं करेगा।
सिर्फ मुझे मुझसे परिचित कराएगा
हे पृथ्वी, मेरी प्रिया
तुम मेरी प्रिया......
अथच पृथ्वी
में कृपण हूँ!

हम जारज सन्तान हैं | सैयद अब्दुल मालिक

इस पृथ्वी को पहचानते हुए मुझे पैंतीस वर्ष हो गए।
इससे पहले भी पृथ्वी थी—
कवि का एक स्वप्न!

सम्राटों के व्यभिचार की लीला-भूमि
और—
मेरे जैसे वीरों का, आज की तरह ही
रोष अभियुक्त खाक हुआ क्षेत्र :
किन्तु में नहीं था!

अणुबम सो रहा था सुदर्शन वायु-चक्र में—
वन्ध्या नहीं है, चिर-उर्वरा है यह पृथ्वी
गर्भकोष में है लक्ष-लक्ष, कोटि-कोटि नए पिता के आशीर्वाद।
हम जारज सन्तान हैं इस पृथ्वी के;
अवांछित किन्तु अवश्यम्भावी!
मातृ-गोद में हमारे लिए स्थान नहीं है,
मातृ-स्तन में हमारे लिए मधु नहीं है;
तो भी हम आते हैं।
मुझसे मुलाकात नहीं हुई, पैंतीस वर्ष पहले की
पीढ़ियों से। किन्तु यह जानता हूँ (कि)
उन्होंने अपने निश्वासों से इस पृथ्वी को
कलुषित किया है।
मैंने भी किया है!

आज से शत वर्ष बाद
हम एक उप-कथा होंगे।
उन दिनों के नवीन इतिहास में
हमारा नाम पादटीका में नहीं
अध्याय की पहली पंक्ति में होगा।

हम—
जारज-दल भविष्य के उत्तराधिकारी हैं।
जारज अशुचि हाथों में
गंगाजल लेकर—
उसकी एक अंजली से आज के अपने परिचय की
कालिमा धो लेंगे।
और एक अंजली से सिंचन करेंगे नूतन का
उर्वरा क्षेत्र में।
पृथ्वी शस्य-श्यामला होगी।

मेरे जीवन में स्वप्न की जगह नहीं है | महेश्वर निओग

हे कवि!
मेरा कवि कौन है? युग-युग में (शायद कल्प-कल्प में)

पूत भूमि भेदकर लांगल की खण्डित भूमि में
मैं सृष्टि करता हूँ सीता—सोने की फसल !
मेरी रामायण, मेरा कीर्तियश कौन रचेगा ?
मेरे वाल्मीकि या व्यास कहाँ अगर उनको
मैंने ही जन्म नहीं दिया तो, क्या वे नरक अयोनि-सम्भव हैं !

कुरुकुल-ध्वंस की क्रीड़ा अठारह अक्षौहिणी
उनके धनुर्गुण कहाँ, उनके बाहु-बल कहाँ ?
अगर मेरे खेत में नहीं, हल के फाल में नहीं, तो ?
परन्तु मेरा नाम कहाँ है ? महाभारत के उन्नविंशपर्व में क्या ?
सैंकड़ों युगों की तुम्हारी गठरी के भार से
प्यारे लांगल के कुटिल आकर्षण से
मेरी पीठ टेढ़ी हो गई, लांगल की तरह टेढ़ी—
आज मेरा लांगल पृथ्वी की सीता के लिए नीचे तक हाथ नहीं बढ़ाता।

देवता को अन्न देते हो, आमिष चढ़ाते हो न ?
देवता के जीभ भी नहीं है, कैसे चखेगा ?
देवता के लिए भक्ति के गीत ?
मानव के लिए नहीं, हाय ! मेरे लिए नहीं !
मेरे लिए कविता की एक पंक्ति भी नहीं लिखते हो।
सैंकड़ों युगों की लम्बी दृष्टि से देखो
मैं ही तुम्हारा जन्मदाता हूँ।

प्यारे-प्यारे, मीठे-मीठे बोल......
उनके सुनहरे कम्पन में कल्पना नहीं जगाता
आशा की कल्पना ?
तब अगर मेरे जीवन में स्वप्न की जगह नहीं है—
जीवन के उस पार मरण का निःसार गोदाम ज़रूर है।
मेरे जीवन के फाँसी-काष्ठ के गीत :
'पार करो रघुनाथ संसार-सागर।'

●



● शान्ति मेहरोत्रा

स्टेनो टाइपिस्ट : एक एकालाप

जाफ़री की जाली से छन-छन कर धूप मेज़ पर पड़ रही है। पिछले साल उस पर पड़ा रंगीन टाट एक तरफ से फट गया था, लेकिन उसके सिलवाये जाने की नौबत आज तक न आ पाई। टाइपराइटर पर पड़ती धूप की चमक से आँखों में दर्द होने लगता है। गुप्ता जी से कई बार कहा भी, लेकिन उन्हें तो न जाने क्यों मेरी हर बात ज़हर लगती है। जो कुछ कहती हूँ उसका ठीक उल्टा करना चाहते हैं। बस चलता तो शायद मेरी तरफ़ का सारा टाट निकलवा कर फिकवा देते!

चन्दनशाह, टाइप होने के लिए आई चिट्ठियाँ पेपरवेट से दबा कर, दीनानाथ से कुछ सलाह-मशविरा कर रहा है; वही दूसरों की जड़ काटने वाले षड्यंत्र! आजकल उसकी दृष्टि मेरे ऊपर नहीं जमी रहती, इससे खुल कर साँस ले पाती हूँ। न जाने कैसी आदत है कम्बख्त की! मन घृणा से भर उठता है, जी चाहता है मुँह नोच लूँ उसका; लेकिन यह मेरा घर नहीं, दफ्तर है। यहाँ जब तक कोई भूल काग़ज़ पर अंकित नहीं होती तब तक वह भूल

ये घाटियाँ : ये गूँजें—(४)

नहीं मानी जा सकती। एक बार इन्चार्ज से कहा कि मेरी कुर्सी-मेज़ किसी ऐसे कोने में डलवा दीजिए जहाँ एकान्त हो। उन्होंने व्यंगपूर्ण स्वर में उत्तर दिया था। "यहाँ आप एकान्तवास के लिए नहीं, काम करने के लिए आती हैं!"

सच ही तो है। यदि मैं अपने होठों पर हर समय नक़ली मुस्कान नहीं जड़े रह सकती, यदि मैं सुमधुर वाणी में घंटों उनकी कार्य-कुशलता की प्रशंसा नहीं कर सकती, तो और कर ही क्या सकती हूँ?

अभी से पीठ जकड़ने लगी। सारा बदन दर्द से टूटा जा रहा है। इस तरह कैसे काम चलेगा? अभी तो चार घंटे और इसी कुर्सी पर बैठना है, इसी तरह टाइपराइटर पर उँगलियाँ दौड़ानी हैं।.....समय जैसे मरियल टट्टू की तरह थक कर अड़ जाता है, आगे बढ़ता ही नहीं!....सब अपना-अपना भाग्य है! इन्हीं गुप्ता साहब की श्रीमती जी की जब गोद भरी जाने वाली थी तब निमंत्रण पाकर मैं भी गई थी। रानी जी बैठी-बैठी हुक्म चला रही थीं। बात-बात में इतरा कर कहती थीं:

"हाय, मुझसे तो आज कल उठ कर खड़ा भी नहीं हुआ जाता। इतनी कमज़ोरी महसूस होती है कि बता नहीं सकती। लगता है अब गिरी, कि अब गिरी। दिन-रात चक्कर, सिर में दर्द, कमज़ोरी। वे तो कहते हैं कि तुम किसी काम में हाथ मत लगाया करो, मैं सब सम्हाल लूँगा; मगर सामने काम बिगड़ते देखा भी तो नहीं जाता। किसी दिन नौकर के न आने पर जब वे ज़ीरे की जगह अजवाइन से तरकारी छौंकने लगते हैं तो उठ कर जाना ही पड़ता है।"

मक्कार कहीं की! कितना पाखण्ड रचती है!!......और यह गुप्ता भी कैसा बना हुआ है! घर में तो भीगी बिल्ली बना रहता है और दफ्तर में भूखा शेर! कुछ ही दिन की तो बात है, मैंने उनसे प्रार्थना की थी कि आपकी आज्ञा हो तो मैं अपना कार्य समाप्त करके कुछ जल्दी घर चली जाया करूँ, दस से पाँच तक बैठी-बैठी बहुत थक जाती हूँ।

"क्यों?" उन्होंने प्रश्न किया, फिर मेरी ओर देख कर जैसे उत्तर पाकर बोले, "देखिए कुछ ही दिनों में आप लम्बी छुट्टी लेंगी। उसके बाद भी बच्चे के कारण कभी देर से आयेंगी, कभी जल्दी जाना चाहेंगी और कभी कैज़ुअल-लीव लेकर घर बैठ रहेंगी। तब क्या दफ्तर का काम अनिश्चित काल तक इसी तरह चलता रहेगा? जब तक आप ठीक हैं, मन लगा कर काम करिये। हर मौक़े से लाभ उठा कर कन्सेशन चाहना मुझे तो कोई अच्छी आदत नहीं जान पड़ती। इससे देखा-देखी दूसरे लोग भी बिगड़ जाते हैं।"

मुझे न जाने क्या हो गया! गुस्से में भरी हुई बोली, "जी हाँ! कन्सेशन चाहना तो बुरा है ही, फिर रियायत की भी उन्हीं लोगों के साथ जाती है जो आपकी व्यक्तिगत चिट्ठियाँ टाइप कर दें; जो दफ्तर का काम रोक कर आपके भाइ की थीसिस टाइप कर दें; मेरे साथ रियायत आप भला क्यों करने लगे?"

गुप्ता जी का चेहरा तमतमा उठा। मुझे अपने ऊपर खीझ आई कि, क्यों मैं ऐसी दो-टूक बात अफ़सरों से कह देती हूँ? क्यों नहीं नारी-सुलभ धैर्य और संकोचवश मौन रह पाती?......लेकिन जिस व्यक्ति को घर की सुरक्षा से बाहर निकल कर अन्याय, कठोरता, ईर्ष्या, चाटुकारिता, झूठ और

अविश्वास से घिरे रह कर जीविका के लिए संघर्ष करना पड़ता हो, उसके मौन रह कर सब कुछ झेलने की भी एक सीमा होती है। मैं उस सीमा को पार कर चुकी थी। गुप्ता जी ने आग्नेय दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए कहा : "जितनी दिलचस्पी आप झूठी ख़बरें इकट्ठी करने में लेती हैं, उतनी अपने काम में लेतीं, तो वह दफ्तर के लिए भी हितकर होता और आपके लिए भी।"

इतना कह कर वे सामने रक्खी फ़ाइल पर झुक गये। मैंने उनसे अपनी कही बातों के लिए क्षमा माँगनी चाही, लेकिन खोजने पर भी इसके लिए शब्द नहीं मिल पाये और मैं अपनी सीट पर वापस लौट आई। इसके बाद से वे मेरे पास पहले से भी ज़्यादा काम भिजवाने लगे। साधारण पत्रों के बारे में बताने के लिए भी वे मुझे व्यर्थ ही बुला भेजते। परिचितों-अपरिचितों के बीच से बार-बार निकलते इतनी लज्जा का अनुभव होता कि जी चाहता दफ्तर की दीवारें टूट कर मेरे ऊपर गिर पड़ें और मैं उनसे दब कर ढँक जाऊँ।

अच्छा, अगर नौकरी छोड़ दूँ ?...... नहीं, तब काम कैसे चलेगा। सुना है सालाना इम्तहान के बाद इस साल भी स्कूल की ओर से 'इन्हें' जवाब मिल जायगा। प्राइवेट स्कूल ठहरा, चार-पाँच साल से यह क्रम चल रहा है, फिर भी निश्चित रूप से तो नहीं कहा जा सकता कि जुलाई में फिर से काम मिल ही जायगा। उन लोगों को कोई अपना आदमी रखना हुआ तो कोरा जवाब भी दे सकते हैं।

कोई सम्बन्धी भी तो पास रहने को राज़ी नहीं। बुआ को लिखा था, उन्होंने जवाब दे दिया कि उनकी लड़की की तबियत ठीक नहीं रहती इसलिये उनका लम्बे अर्से के लिए मेरे पास आकर रहना संभव नहीं। चचिया-सास शहर में ही हैं। बच्चे की देख-रेख में मदद करने के लिए उनसे कुछ कह पाती इससे पूर्व ही तुनक कर उन्होंने उपदेश दिया : "बहू रानी, बहुत दिन मौज कर चुकीं। बच्चे ऐसे नहीं पलते कि तुम मज़े से दफ्तर की कुर्सी तोड़ती रहो और वह बेचारा घर में लुढ़कता रहे। नौकरों-चाकरों के भरोसे कहीं बच्चे पले हैं ? यह तो तपस्या है रानी, तपस्या ! अब नौकरी का मोह छोड़ो और लच्छन से अपनी घर-गृहस्थी देखो। नन्हें-मुन्नों के हर घड़ी दस काम लगे रहते हैं, भला माँ के अलावा इतना कौन कर सकता है ? कौन पराये बच्चे की ज़िम्मेदारी लेगा ?"

सच है। मगर चाची जी से यही मैं और पूछना चाहती थी कि मेरे नौकरी छोड़ देने के बाद अगर उनके भतीजे की भी नौकरी छूट गई तो कितने दिन वे हम लोगों को अपने पास रख सकेंगी ?

कोई राह दिखाई नहीं पड़ती। समझ में नहीं आता कि क्या करूँ ? किससे मदद माँगूँ ?......

मातृत्व की गरिमा से जगमगाते चेहरे मैंने देखे हैं। जानती हूँ कि शिशु के आगमन की प्रतीक्षा मधुर होती है, अत्यन्त मधुर। किन्तु न जाने क्यों जब मैं भावी-शिशु के लिए लोरी गुनगुनाने की सोचती हूँ तो उसकी कड़ियाँ याद नहीं आतीं, चन्दन के पालने को कल्पना की रेशमी डोर से झुलाने लगती हूँ तो दफ्तर और घर के बीच का रास्ता और भी लम्बा हो जाता है और वह पतली,

नन्हीं-सी डोर मेरे हाथ से छूट-छूट जाती है, पालने में किलकता मेरे जीवन को सार्थक करने वाला अंश टुकुर-टुकुर मेरी ओर देखता है तो मेरी फैली बाहों और उसकी आतुर ममता के बीच बन्द दरवाज़े पर पड़ा मज़बूत ताला हम दोनों का उपहास करने लगता है और मैं उदासीन भाव से मुड़ कर रिक्शे में बैठ जाती हूँ।

तब मेरा ही मन मुझे धिक्कारता हुआ कहता है कि ओ निर्मम माँ! क्या तेरी सूनी आँखों में कोई सपने नहीं जागते? क्या तेरा कठोर मन परियों और राजकुमारों की सारी कहानियाँ भूल गया? क्या तुझे सोते-जागते अपने आस-पास मीठी किलकारियाँ सुनाई नहीं पड़तीं?......

नहीं। मेरे पास सपने नहीं हैं, कहानियाँ नहीं हैं, गीत नहीं हैं। मैं तो महज़ एक टाइपराइटर हूँ, मशीन हूँ।

●

पादुका - महिमा

२८ जनवरी सन् १८७४ ई० को भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और पं० ईश्वरचन्द्र विद्यासागर कलकत्ता म्यूज़ियम देखने गये। उन दिनों म्यूज़ियम और एशियाटिक सोसायटी का दफ्तर पार्क स्ट्रीट स्थित एक ही बिल्डिंग में था।

भारतेन्दु चोंगा-चपकन-पगड़ी और बूट पहने हुए थे। विद्यासागरजी हमेशा की तरह धोती, चद्दर और एक मामूली चप्पल पहने हुए थे। फलस्वरूप भारतेन्दुजी तो भीतर चले गये, लेकिन विद्यासागरजी को रोक दिया गया। उनसे कहा गया कि आप जैसे उड़िया (उड़ीसा निवासी) को चप्पल खोल कर जाना पड़ेगा।

इस आपत्ति पर विद्यासागरजी बिना किसी प्रकार का प्रतिवाद किये वापस लौटने लगे। उन्हें भीतर आते न देख भारतेन्दुजी भी वापस लौट पड़े। तुरत यह समाचार एशियाटिक सोसायटी के सहायक मंत्री के पास पहुँचा। बेचारे दौड़े हुए आये।

परन्तु विद्यासागरजी भीतर नहीं गये। बोले, "मैं नहीं जा सकता। पहले अधिकारियों से यह जानलूँ कि ऐसा कोई नियम है या नहीं। अगर है तो उसका प्रतिकार कर लेने के बाद ही आऊँगा, उसके पहले नहीं।"

इतना कह कर वे भारतेन्दुजी को साथ ले चले आये। काफी दिनों तक लिखा-पढ़ी चलती रही। अन्त में, सोसायटी के अधिकारियों ने विद्यासागरजी के तर्क को मानने से अस्वीकार कर दिया। फलस्वरूप अपने जीवन में फिर कभी वे म्यूज़ियम में नहीं गये।

—विश्वनाथ मुखर्जी



अजित कुमार

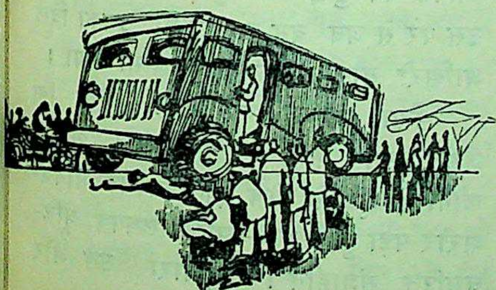
दफ्तर का बाबू : एक एक्सीडेंट

"उसके धीरज का बाँध टूट गया। मेज़ पर सर रख कर वह बिलख-बिलख कर रो पड़ा। मेज़ पर जड़ा काला, चमकीला शीशा उसके फीके, निष्प्रभ आँसुओं से मैला होने लगा।"

रोज़-रोज़ दफ्तर देर से जाना अच्छा नहीं लगता। आज वह साढ़े नौ बजे ही बस-स्टाप पर पहुँच गया। थोड़ी देर में बस भी आती दिखी। और बड़ी देर से धैर्यपूर्वक इन्तज़ार करने वाले बाबुओं की क़तार विचलित हो उठी। बस के नज़दीक़ आते-न-आते भगदड़ मच गई और सीधी पंक्ति वक्राकार होकर वृत्ताकार हुई और फिर पंक्ति के सारे बिन्दु सिमट कर एक ही केन्द्र पर इकट्ठे हो गए, यानी बस के प्रवेश-द्वार पर।

वह दूसरों की बनिस्वत देर में चढ़ पाया, लेकिन एक परिचित सज्जन की बग़ल में उसे जगह मिल गई। वहाँ बैठते हुए उसने अनुभव किया कि यह व्यक्ति मात्र परिचित नहीं, मित्र है क्योंकि इसने मेरे लिए अपने पास एक सीट सुरक्षित रखी और मुझे काफ़ी देर तक खड़े रहने के संभावित कष्ट से बचाया।

उसने सोचा कि अब इस मित्र के लिए भी टिकट लेना पड़ेगा। या कौन जाने, मित्र ने जैसे उसके लिए जगह रखी, वैसे ही टिकट भी ख़रीद ले! पर दोनों ही संभावनाएँ उसे अच्छी नहीं लगीं, क्योंकि एक के द्वारा दोनों के टिकट लिए जाने का अर्थ होता, घनिष्टता। और घनिष्टता स्थापित करने की इच्छा उसमें भले ही हो, निभाने की सामर्थ्य नहीं है। सच तो यह है कि वह किसी को मित्र भी नहीं बना पाता। लोग उससे केवल परिचित होकर रह जाते हैं। बहरहाल, टिकटवाली दुविधा उस मित्र ने ज्यादा देर नहीं रहने दी। अपना टिकट ले लिया उसने।



वह कुछ हतप्रभ हो गया। यह भी न कह सका कि "मैं ले तो रहा हूँ टिकट आपका।" उधेड़बुन में अपना भी टिकट न ले सका। कण्डक्टर आगे बढ़ गया। उसने उन मित्र से बातचीत शुरू कर दी जो

अब फिर परिचित की श्रेणी में पहुँच गए थे ।

अगले स्टाप पर बस रुकी, लेकिन जगह कहाँ थी ! तीन-चार लोगों को लेने के बाद कंडक्टर दरवाज़े पर अड़ गया । "बाक़ी लोग मेहरबानी करके बस छोड़ दें," उसने कहा और क्षणिक आशा से दीप्त कितने ही चेहरे उसके इन शब्दों को सुन कर बुझ गए । लेकिन भीड़ में जो सबसे आगे थे, उनमें कुछ उम्मीद बची थी । उनकी अनुनय-विनय सुनने ही नहीं, देखने लायक़ थी । ऐसा लगता था कि उनके जीवन की एकमात्र आशा का आधार यह बस है । यह न मिली तो मानो उनका सब कुछ छिन जाएगा ।

लेकिन कुछ कंडक्टर होते ही ज़ालिम हैं । उन्हें बेचारे मुसाफ़िरों पर दया नहीं आती । वे महज़ क़ायदा-क़ानून जानते हैं । वे एक बार अड़ते हैं तो फिर अड़े ही रह जाते हैं । निदान, किन्हीं और लोगों को लिए बग़ैर--किन्तु काफ़ी झिकझिक के बाद--बस चली और अगले स्टाप पर रुकने का आभास देकर भी रुकी नहीं ।

वह देख रहा था कि बस को रुकता जान स्टाप पर खड़े लोगों की उत्कंठा बेहद बढ़ गई थी, न रुकता देख वे व्यग्र हो उठे थे, और जब बस उन्हें पीछे छोड़ कर बढ़ गई तो वे सब कैसे निर्जीव पड़ गये थे । उसने सोचा कि इस नगर के व्यस्त, नियमित एकरस जीवन में यही क्या कम है कि हर बस-स्टाप पर लोग प्रतीक्षा करते हैं, व्याकुल और विह्वल होते हैं, बस में प्रवेश पाने का प्राणपण से यत्न करते हैं, सफल होने पर मुस्कराते और आँखों में चमक ले आते हैं, अन्यथा विवश और असहाय होकर छटपटाते हैं । यह क्या कुछ कम है ?

हवा से बातें करती हुई बस चली जा रही थी । उसे लगा कि इस जीवनहीन नगर में यदि कहीं जीवन है तो केवल बस और उसके मुसाफ़िरों में । और तभी शायद हार्न बजा या टायर फटा । ज़ोर का धमाका हुआ, बस डगमगा कर एक ओर झुकी, खड़े हुए लोग एक-दूसरे पर गिरे, पास में बैठे परिचित महाशय का सर खिड़की से टकराया, बस दूसरी बार डगमगाई, फिर सँभली और टेढ़ी होकर खड़ी हो गई ।

यह एक अजीब घटना थी । क्या हुआ, यह कोई न जान सका था । लेकिन घबड़ाए हुए सभी थे । सब उतरने लगे बस से । वह भी उठा । शायद बस का कोई पहिया निकल गया है, उसने सोचा, लेकिन ख़ुशक़िस्मती तो यह है कि बस उलटी नहीं ।

क्षण भर में बस ख़ाली हो गई । और उसी क्षण यह मालूम हुआ कि एक आदमी बस के नीचे आ गया है ।

उसका दिल ज़ोरों से धड़क उठा । वह समझ न सका कि क्या करे, क्या नहीं । फिर काँपते हुए हाथों से उसने दूसरों के साथ ही साथ बस को धक्का देना शुरू किया । बस जैसे-जैसे आगे बढ़ी, उसके दिल की धड़कन भी बढ़ती गई, और नीचे पड़े जिस व्यक्ति को कुछ लोग झुक कर देख रहे थे उस पर से जब बस हट गई तो उसका दिल आख़िरी बार भभक कर बुझ-सा गया ।

कैसा दारुण दृश्य था ! ऐसा दृश्य जैसा उसने कभी न देखा था । तमाशबीन लोगों के झुंड के बीच एक निश्चल मानव शरीर पड़ा हुआ था--ख़ून से लथपथ, धूलि-धूसरित, संज्ञाहीन । दुबारा उस ओर

देखने का साहस न हुआ उसे। घबड़ा कर वह लोगों के घेरे से बाहर हट आया और 'हे राम!' कहते हुए उसने अपने को नितान्त दीन, विपन्न और असहाय अनुभव किया।

लेकिन उसको सँभालने की वहाँ किसे फ़ुरसत थी! सब लोग बस से कुचले व्यक्ति के गिर्द खड़े थे और पानी, डाक्टर, पुलिस वग़ैरह की ज़रूरत महसूस कर रहे थे। कुछ लोग पास पड़ी एक मुड़ी-तुड़ी-पिचकी-बदशक्ल चीज़ को देख रहे थे, जो अभी कुछ देर पहले तक एक नई, क़ीमती और ख़ूबसूरत मोटर साइकिल थी।

मोटर साइकिल पर निगाह जमाए हुए उसने सुना...लोग कह रहे थे कि तेज़ रफ़्तार से मोटर साइकिल भगाता हुआ वह आदमी बग़ल की एक सड़क से आया और बड़ी सड़क पर पहुँचा ही था कि बस से टक्कर हो गई। मोटर साइकिल समेत वह बस के नीचे आ गया।...

यह वर्णन सुन कर उसके शरीरमें झुरझुरी-सी दौड़ गई। अपनी शंकित और भयभीत दृष्टि उसने दबे-दबे उस ओर फेरी, जहाँ वह कुचला हुआ व्यक्ति पड़ा था। और इसके पहले कि वह घबरा कर अपनी आँखें मींच लेता, यह दिख ही गया कि उस मानवाकार मांसपिंड ने एक हिचकी भरी और ढेर-सा गाढ़ा-गाढ़ा, लाल ख़ून उसके मुँह से निकल कर गालों और गर्दन पर फैल गया।

कैसा मर्मभेदी अनुभव था! विचलित हो उठा वह। रक्त का कसैला, घिनौना स्वाद मानो उसके मुँह में भर गया था। उसे लगा कि यदि वहाँ और रुका रहा तो उसे उबकाई आ जायगी। फिर भी वह उस जगह से हट नहीं सका। लोगबाग आहत व्यक्ति को उठा कर अस्पताल ले गए। दफ़्तरों के बाबू दुर्घटना-स्थल पर आकर रुकने वाली अन्य बसों में सवार होकर जाने लगे। कुछ क्षणों के लिए उस स्थान-विशेष पर जीवन की जो गति केंद्रित हो गई थी, वह फिर सर्वत्र बिखरने लगी। लेकिन वह बड़ी देर तक, न जाने क्यों, एक किनारे खड़ी बस, दूसरे किनारे पड़ी टूटी मोटर साइकिल और सड़क के बीचोबीच सिमेंट पर अंकित ख़ून के धब्बों को ताकता खड़ा रहा।

उसका ध्यान तोड़ा बस कंडक्टर ने। बोला, "बाबूजी। एक बस आ रही है। उससे आप चले जाइए। हमें तो अभी यहाँ रुकना पड़ेगा। पुलिस आएगी, फिर बयान होंगे। आप क्यों दफ़्तर की देर कर रहे हैं।"

दफ़्तर। ओह! दफ़्तर!!

यंत्रचालित-सा वह बस की ओर बढ़ा और यद्यपि उसमें काफ़ी जगह थी, फिर भी ऐसी हड़बड़ी में भीतर घुसा मानो अपनी ओर से तनिक भी ढील दी नहीं उसने कि कंडक्टर बाहर ही रोक देगा।

दफ़्तर पहुँचने पर मालूम हुआ कि हाज़िरी का रजिस्टर साहब के पास जा चुका है, वहीं जाकर दस्तख़त करने होंगे। लेकिन इस सूचना को उसने आज कुछ विशेष महत्त्व न दिया और साहब के कमरे की चिक हटा कर भीतर दाख़िल हो गया। साहब ताज़ा अखबार पढ़ रहे थे। निगाह उठा कर उन्होंने पहले अपनी कलाई घड़ी को, और फिर उसे देखा। बोले, "आज भी आप देर से आ रहे हैं।"

"सर !" उसने कहा, "आज मुझे एक बस छोड़ कर दूसरी से आना पड़ा। बात यह थी कि मेरी बस का ऐक्सीडेंट हो गया।"

साहब का ध्यान अबतक किसी दिलचस्प ख़बर में लग चुका था। बोले, "आई सी !" लेकिन यह देखते हुए भी, वह पूरी घटना उन्हें सुना गया। अन्त में जब उसने कहा, "सर ! उस आदमी का बचना मुश्किल ही है। कौन जाने, अब तक मर ही गया हो।" तो साहब ने अनिच्छापूर्वक अपनी दृष्टि क्षण भर के लिए अख़बार से हटाई और टेलीफ़ोन को निहारते हुए बोले, "वेरी सैड ! अच्छा, देखिए, आप दफ्तर वक्त से आ जाया कीजिए।"

और वह चिक उठा कर सर झुकाए हुए अपनी कुरसी पर आ बैठा। न जाने क्या उसके मन में घुमड़ रहा था : शायद एक विशिष्ट घटना का निजी बोध, अथवा उस बोध को सब तक पहुँचा देने की आकुलता। अपने निकट बैठने वाले एक सहयोगी से उसने पूछा, "पुलिस के 'फ्लाइंग स्क्वाड' का टेलिफ़ोन नंबर मालूम है आपको ?"

सहयोगी बोला, "नहीं तो ! लेकिन 'फ्लाइंग स्क्वाड' की ऐसी क्या ज़रूरत आ पड़ी ?"

उसका कुंठित मन व्यग्र हो उठा कि कैसे एक ही शब्द में सारी कथा बता दे। "उफ़ !" वह बोला, "बड़ा भयानक दृश्य था।"....और जल्दी से घटना का विवरण सुना कर, टेलिफ़ोन डाइरेक्टरी के पन्ने उलटते हुए उसने बताया कि इसके बावजूद बस का ड्राइवर पेड़ के नीचे बैठा इस तरह बीड़ी पी रहा था मानो कहीं कुछ हुआ ही न हो।

सहयोगी साइकिल से दफ्तर आता था और स्वभावतः बस-व्यवस्था का विरोधी था। ड्राइवरों को गाली देकर बोला, "शराब पीकर बस चलाते हैं, और राहगीरों को कुचलते फिरते हैं। लेकिन आप पुलिस के चक्कर में बेकार ही पड़ रहे हैं। पुलिस क्या आपके फ़ोन का इंतजार कर रही होगी। अब तक वहाँ जाकर उसने कार्रवाई शुरू भी कर दी होगी।"

उसने कहा, "पन्द्रह मिनट पहले तक तो वहाँ कोई पहुँचा न था।"

सहयोगी ने समझाया, "फ़ोन कीजिएगा तो गवाही में फाँस देगी पुलिस आपको। दौड़ते-दौड़ते दम निकल जाएगा।"

समस्या के इस पहलू पर उसका ध्यान गया ही न था। और एक बार ध्यान चले जाने के बाद इसकी उपेक्षा करना असंभव था। पर इस कारण उसकी उद्विग्नता बढ़ी ही, कम न हो सकी। एक ज़रूरी कागज़ कई दिनों से निबटाने को पड़ा था किन्तु उसमें हाथ डालने की भी इच्छा न हुई। उस दृश्य से अपने को हटाने का जितना ही यत्न वह करता, उतना ही मन उस ओर जाता। सादे कागज़ पर वह बड़ी देर तक आड़ी-तिरछी रेखाएँ बनाता रहा। तभी एक मित्र आ गए। अनमना-सा उठ कर उनके साथ चाय पीने चल दिया। वहाँ उखड़ी-उखड़ी-सी बातें होने लगीं। यहाँ तक कि मित्र पूछ बैठे, "क्यों, क्या बात है ? सब ठीक-ठाक तो है न !"

इतनी देर से उसको शायद इसी प्रश्न की प्रतीक्षा थी। बोल पड़ा, "आज मैं बहुत दुखी हूँ। आज मैंने एक व्यक्ति को अपनी आँखों के सामने दम तोड़ते देखा है।

और वह सारी कहानी एक साँस में सुना गया। शायद उसे भय था कि बीच में तनिक रुकते ही मित्र कोई दूसरी बात छेड़ देंगे। हुआ भी कुछ ऐसा ही। मित्र ने दुख भी न प्रकट किया। बोले, "यह क्या है। मैंने इससे कहीं ज़बर्दस्त ऐक्सीडेंट देखे हैं। पिछले ही साल मेरे कज़िन की गाड़ी का एक सीरियस ऐक्सीडेंट हो गया..."

इन शब्दों ने उसके मन पर क्या आघात किया, इसका कोई ख़याल किये बग़ैर मित्र उत्साहपूर्वक दुर्घटना का हाल बताते रहे, मानो वह कोई चुटकुला हो। यहाँ तक कि वह और अधिक न सुन सका। "भई, मेरी तबीयत कुछ ठीक नहीं है। अब चलूँगा", कह कर वह बीच में ही उठ पड़ा।

दफ्तर में बाकी समय काटना दूभर हो गया। जैसे-तैसे पाँच बजे। अब फिर बस की कतार में खड़ा होना पड़ेगा! यह विचार आज और दिनों की अपेक्षा कहीं अधिक दुखदायी था। किन्तु जब सभी लोग बस के अड्डे की ओर भागते-से जा रहे हों तो वही कैसे रुकता! क़तार में लग कर सोचने लगा कि कहीं सुबह वाली बस में ही न लौटना पड़े। इन तमाम लोगों में से किसका चेहरा सुबह वाले व्यक्ति से मिलता-जुलता है, यह जानने के लिए उसने अपनी दृष्टि चारों ओर फेरी, लेकिन थोड़ी ही देर में यह अनुभव किया कि यहाँ उस जैसा कोई नहीं। जीवनहीन, थके और उदास मुख तो अनेक या शायद अधिकांश थे, पर वैसा निरीह और विकृत एक भी न था।

क़तार धीरे-धीरे सरक रही थी। उसका नम्बर भी आख़िरकार आ ही गया। जगह भी अगली सीट पर मिल गई। बस अपनी पुरानी गति से भाग चली, शायद इसलिए कि आगे वाली बसों को पीछे छोड़ जाए और पीछे वालियों को आगे न निकलने दे। वह धीमे से मुस्कराया......ख़ूब, शहर की बसों में यह अच्छी दौड़ हो रही है!

तभी एक हल्की-सी चीख़ उसके मुँह से निकली। किलकारी भरते हुए दो बच्चे सामने के घर से निकले और सड़क पार करते हुए पार्क में घुस गये। न उन्होंने बस की कोई परवाह की और न बस ने ही उनकी। अभी कुचल जाते तो!—सहानुभूति पाने की इच्छा से उसने दूसरे मुसाफिरों को निहारा, लेकिन वे सब या तो अपने में या दुनिया की फ़िक्रों में डूबे हुए थे।

शाम के रंग अभी चटख़ न हुए थे। धूप के सिरे जहाँ-तहाँ उलझे नज़र आते थे। बस एक मोड़ पर घूमी तो सामने एक घर औरों से भिन्न दिखा। लाउडस्पीकर एक दुखभरा फ़िल्मी गीत गुँजा रहा था और बिजली के रंग-बिरंगे बल्बों की झालरें उदास रोशनी छितरा रही थीं। पलक झपकते में यह दृश्य ओझल भी हो गया।

बस उसके घर के निकट वाले स्टाप पर रुकी। उतर कर उसने मकानों की दो क़तारें पार कीं। तीसरी में उसका घर था। खिड़की से झाँकती हुई पत्नी लॉन में उधम मचाते बच्चों को ताक रही थी। उसे आते देख कर पत्नी के होठों पर अभ्यस्त मुस्कुराहट खेल गई। दरवाज़ा खोलते हुए बोली, "आज बड़ी जल्दी आ गये!"

जितनी देर में उसने हाथ-मुँह धोया, पत्नी ने चाय तैयार कर दी। कहा, "थके हो। एक प्याला चाय पी लो। कपड़े बाद में बदलना।"

दफ्तर से लौटने पर पत्नी को दिन भर का अपना सारा कार्यक्रम सुना देना उसकी पुरानी आदतों में शामिल था। शायद इसीलिए आज भी पत्नी आधी पढ़ी किताब में उँगली लगा कर उसके पास बैठ गई। वह सोच रहा था कि बात शुरू किस तरह की जाए। फिर उसने निश्चय किया कि बिल्कुल शुरू से ही बताना ठीक होगा। बिना किसी भूमिका के वह कह उठा, "बस तो आज मुझे समय से मिल गई थी। तनिक भी इन्तज़ार न करना पड़ा। लेकिन दफ्तर पहुँचने में आज भी देर हो गई। बात यह थी कि इधर बस जा रही थी......उधर एक मोटर साइकिल वाला तेज़ी के साथ आया और उसने बस से पहले सड़क पार कर लेने की कोशिश की। फिर क्या! वह गाड़ी के नीचे आ गया।"

पत्नी विचलित हो उठी, "हाय! चोट तो नहीं लगी उसे?"

"चोट! तुम चोट की कहती हो! अरे, यह पूछो कि ज़िन्दा कितनी देर बचा!"

दोनों कुछ क्षण चुप रहे। फिर पत्नी बोली, "उसके घर भी किसी ने ख़बर पहुँचाई कि नहीं?"

"मालूम नहीं। उस समय तक तो उसके नाम-धाम का कुछ ठीक पता चला न था।"

पत्नी ने व्यग्र होकर कहा, "कौन जाने, उसके घर वाले अभी इन्तज़ार कर रहे हों कि वह दफ्तर से लौटता होगा!"

वह चुप रहा। इस संभावना पर उसने ग़ौर किया ही न था। अचानक पत्नी बोल उठी, "ये मोटर साइकिल की सवारी तो बड़ी ख़राब है। रोज़ ही अख़बार में ऐसी कोई न कोई ख़बर छपती है।"

कुछ रुक कर पत्नी ने कहा, "सुनो! जो रुपये हमने जोड़े-बचाए हैं, उनसे मेरे लिए जड़ाऊ कंगन बनवा दो। मोटर साइकिल तो अब मैं तुम्हें खरीदने न दूँगी। इस सवारी का क्या भरोसा!"

"हूँ" से अधिक और कुछ उससे नहीं कहा गया। ठीक ही तो था पत्नी का विचार! मोटर साइकिल की सवारी सचमुच ही ख़तरनाक है। कब आदमी की जान पर आ बने, नहीं कहा जा सकता। चाय का प्याला उसने रख दिया। मेज़ पर जड़े काले, चमकदार शीशे से टकरा कर प्याले ने एक बेसुरी आवाज़ पैदा की। काले शीशे में उसके चेहरे का अक्स झलक रहा था। किस की शक्ल है यह?—उसने पहचानने की कोशिश की। धूल से सने, रक्त से लथपथ एक धुंधले अपरिचित और विकृत मुख ने जैसे कुछ बताने की कोशिश की, लेकिन शब्दों की जगह निकली सिर्फ़ लाल, गाढ़े ख़ून से भरी एक हिचकी!

उसके धीरज का बाँध टूट गया। मेज़ पर सर रख कर वह बिलख-बिलख कर रो पड़ा! मेज़ पर जड़ा काला, चमकीला शीशा उसके फीके, निष्प्रभ आँसुओं से मैला होने लगा।

उधर रसोई घर में, पत्नी खट-खट, खट-खट स्टोव में हवा भर रही थी और आँच जितनी तेज़ हो रही थी, उसी अनुपात में स्टोव की भरभराहट भी बढ़ती जाती थी।

●

अस्थिहीन शब्दों का त्यक्त केंचुल

इन्दु जैन

गीत की असह्य साधारणता
और
उभरा हुआ दर्द ।
उस दर्द की परिणति
यहीं है
बस यहीं ।
चम्पा की जड़ का मधुहीन रस—
फुनगी तक पहुँच नहीं पाया ।

अस्थिहीन शब्दों के इन त्यक्त केंचुल में
मुझे मत भरो ।
एक व्याकृति तुमने दी
एक व्याकृति तुम हो—
सब मेरी आस्था
सब मान्यताओं की ।

कभी-कभी लगता है—
'लो, बस अब उतर गया—
असावधानी की खूँटी पर टँग गया
भ्रम का लबादा ।'
लेकिन फिर
वही ;
वही भूल ।
तुम तो यही हो—आवरण से अभिन्न ।
व्यथा के शीत से सिहर कहाँ पाओगे ?



एक दिन बेला के फूलों की दृष्टि खुली :
आसमान ताँबे-सा तपा हुआ
झूठे सलमे के तारे और
चाँद
टूट कर टपक रहे ।

हमारी परम्परागत मान्यता के अनुसार राम-राज्य एक आदर्श राज्य-व्यवस्था और राम एक आदर्श चरित्र हैं। लेकिन आज का तो युग ही शंकाओं और प्रश्नों का युग ठहरा! फिर भला राजा राम ही इसके अपवाद-स्वरूप क्यों बचे रह जाएँ।

अयोध्यापति महाराज दशरथ के इस निश्चय पर कि मर्यादा पुरुषोत्तम राम का राज्याभिषेक कर दिया जावे रानी कैकेयी ने उनसे दो प्रसिद्ध वर माँगे जिनके अनुसार भरत को राज्य देने और राम को चौदह वर्ष के वनवास का प्रस्ताव किया गया। जिस समय दशरथ ने युवराज पद के लिए राम के पक्ष-समर्थन को तत्कालीन शासकों की सभा आयोजित की उस अवसर पर उनके दो प्रमुख सम्बन्धी कैकेय नरेश और मिथिलाधिपति उपस्थित नहीं थे। एक स्थान पर उस युग के कवि इतिहासकार श्री वाल्मीकि ने इस अनुपस्थिति का कारण शीघ्रता में भेजे गये निमंत्रण लिखा है जो सन्तोषप्रद नहीं लगता। प्राय: किसी भी मांगलिक कार्य में भाग लेने के लिए यथा-सम्भव नातेदारों, बन्धु-बान्धवों और इष्ट-मित्रों आदि को बुलाया जाता है पर इतने महत्त्व के अवसर पर दशरथ जी अपने दोनों पुत्रों भरत और शत्रुघ्न को बुलाना भी भूल गये, यह आश्चर्यजनक प्रतीत होता है। घटनाओं के क्रम से ऐसा लगता है जैसे यह सब जान-बूझ कर किया गया हो। उनकी यह उक्ति :

विप्रोषितश्च भरतो यावदेव पुरादितः।
तावदेवाभिषेकस्ते प्राप्तकालो मतो मम॥

(भरत इस समय अपने मामा के घर है, सुतरां उसके लौटने से पूर्व ही तुम्हारा अभिषेक हो जाय, मेरी यही इच्छा है।)

राम के राज्यारोहण की पहेली

इस विचार की पुष्टि करती दीखती है। इससे मंथरा का यह कथन कि भरत को समझा-बुझा कर ननिहाल भेजा गया है ताकि रामाभिषेक का कार्य निर्बाध गति से सम्पन्न हो जावे सत्य प्रतीत होता है। जब भरत को जान-बूझ कर उत्सव स्थल से हटाया गया था तो कैकेय नरेश को सूचना देने का प्रश्न ही नहीं उठता था। यह तो वही बात होती कि आ बैल मुझे सींग मार। विदेहराज संभवतया इसलिये नहीं आमंत्रित किये गये होंगे कि वह सब कुछ जानते हुए अनीति के कार्य में दशरथ का समर्थन नहीं कर सकेंगे। यह ध्यान देने योग्य बात है कि राज्याभिषेक से कुछ पूर्व दशरथ जी ने रामचन्द्र जी को अपने पास बुलाया और उनसे एकान्त में बातचीत की। उस बातचीत में ही पूर्वोक्त श्लोक आया है। उस अवसर पर श्रीराम ने एक बार भी यह नहीं कहा कि इस कार्य को इतने शीघ्र सम्पन्न करने की कौन-सी आवश्यकता है। कम से कम भरत और शत्रुघ्न को तो समाचार भेज कर बुला लिया जावे। ऐसा प्रतीत होता है कि इस विचार-विमर्श के दौरान में ही दशरथ जी ने उत्तराधिकार के सम्बन्ध में कैकेय नरेश को दिये हुए अपने आश्वासन का ज़िक्र किया जिसे आगे चल कर बनवास काल में रामचन्द्र जी ने भरत के सम्मुख इन शब्दों में दुहराया—

पुरा भ्रातः पिता नः स मातरं ते समुद्वहन्।
मातामहे समाश्रोषीद्राज्यशुल्कमनुत्तमम्॥

(पूर्वकाल में जब हमारे पिता दशरथ जी तुम्हारी माता कैकेयी से विवाह करने गये थे तब तुम्हारे नाना से उन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी कि तुम्हारी माँ के गर्भ से जो पुत्र उत्पन्न होगा वही उनके राज्यसिंहासन पर बैठेगा।)

इन घटनाओं के संदर्भ में यह सोचने की आवश्यकता उत्पन्न होती है कि राम ने पिता को कर्त्तव्य पालन की ओर प्रेरित क्यों नहीं किया और अपने अभिषेक के लिए कैसे उद्यत हो गये। यदि इस प्रकार की कोई प्रतिज्ञा न की गई होती तो प्रचलित उत्तराधिकार के नियमों के आधार पर युवराज पद उन्हें ही मिलना था। इससे मिलती-जुलती घटना ही द्वापर युग में हुई जब महाराज शान्तनु मत्स्यगंधा सत्यवती पर आसक्त हुए और उसके पिता ने विवाह की स्वीकृति उसी दशा में देने को कहा जब सत्यवती के पुत्र को सिंहासनारूढ़ होने का वचन दिया जावे। जितेन्द्रिय भीष्म को जब इस बात का पता चला तो उन्होंने स्वेच्छा से राज्य पद प्राप्ति के लिए अपने मौलिक अधिकार को त्याग दिया और सत्यवती के पुत्र के राजतिलक का आश्वासन दिलवा दिया। पिता की मृत्यु पर उन्होंने अपने वचन को निबाहा और सत्यवती की सन्तान ने ही राज्य का सुख भोगा।

ज्येष्ठ पुत्र को, जब तक कि वह किन्हीं कारणों से अयोग्य न प्रतीत हो, राज्य देने की प्रथा सामन्तकालीन युग की एक विशेषता रही है। कैकेयी ने एक वर द्वारा अयोध्या का राज भरत को दिलवा दिया। देखने की बात यह है कि उसने दूसरा वर क्यों माँगा? राम के बनवास की याचना करने में क्या रहस्य छिपा है? आगे चल कर पाण्डवों को भी इसी प्रकार का दुःख झेलना पड़ा है। बन ही नहीं कैकेयी ने एक विशिष्ट बन दण्डकारण्य के निवास का प्रस्ताव

किया है। ऐसा लगता है इस प्रकार की आवास व्यवस्था उन व्यक्तियों के लिए की जाती थी जिन्होंने कोई गंभीर अपराध किया हो। भरत, जिनकी शिक्षा-दीक्षा रामचन्द्र के साथ ही हुई थी, वनवास का समाचार सुन कर इस प्रकार कहते हैं--

कच्चिन्न परदारान्वा राजपुत्रो भिमन्यते।
कस्मात्स दण्डकारण्ये भ्रूणहेव विवासितः॥

अथवा

कच्चिन्न ब्राह्मणधनं हृतं रामेण कस्यचित्।
कच्चिन्नाढचो दरिद्रो वा तेनापापो सिंहिंसितः॥

(यानी क्या मेरे भाई अर्थात् राम ने किसी परस्त्री की ओर कुत्सित दृष्टि से देखा था या अन्य कोई जघन्य अपराध किया था जिसके कारण उन्हें दण्डकारण्य जाने की आज्ञा हुई अथवा उन्होंने किसी विप्र का धन छीना था या किसी सेठ साहूकार या रंक की निर्मम हत्या कर डाली थी।)

राम ने प्रत्यक्ष में कोई अपराध नहीं किया था जिसके लिए उन्हें इस प्रकार दण्डित किया जाता। अधिक से अधिक यही समझा जा सकता है कि सिंहासन-प्राप्ति की योजना में उन्होंने भरत का पक्ष-समर्थन नहीं किया और अपने लिए बात को चल जाने दिया पर तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह इस षड्यंत्र में सक्रिय रूप से सम्मिलित थे। खींचातानी से यदि इस निष्कर्ष पर पहुँचा भी जावे तो दण्डकारण्य वास जैसी कठिन सज़ा का भागी बनना न्यायोचित नहीं ठहराया जा सकेगा। चूँकि इस प्रकार के वनवास अथवा अज्ञातवास की व्यवस्था उत्तरगामी काल में भी हुई है इससे ऐसा लगता है जैसे नव-निर्वाचित राजा के कल्याण की दृष्टि से ऐसा किया जाता हो। आजकल भी सज़ायाफ्ता व्यक्ति किसी उच्च पद पर शीघ्रता से नहीं पहुँच पाता। दण्डितों को चुनाव में भाग लेने की भी मनाही है। इस बात की अधिक संभावना प्रकट होती है कि भरत के राज्य को दृढ़ बनाने के उद्देश्य से कैकेयी ने यह उचित समझा हो कि राम को निर्वासित कर दिया जावे। एक बार वह दण्डकारण्य रह आवेंगे तो सदा के लिए उनका सिंहासनारूढ़ होने का स्वप्न देखना बन्द हो जावेगा। यदि कैकेयी के इस व्यवहार से उत्पन्न क्षोभ के स्थलों पर पहुँचा जावे तो विदित होगा कि राम के हितैषियों को भरत के लिए राज्य माँगने से इतना खेद नहीं हुआ जितना राम को वनवास की आज्ञा पाने से। दूसरे के जरिए एक निर्दोष को सज़ा मिल रही थी जबकि पहले के द्वारा अतीत में की हुई किसी प्रतिज्ञा का पालन होता था। सच यह है कि महाराज दशरथ भरत को राजगद्दी पर बैठा देख सकते थे किन्तु न्याय का गला घुटता उनसे न देखा गया और उनका प्राणान्त हो गया।

इतना विचार करने पर एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न हमारे सामने आ खड़ा होता है और वह है राम की राज्यासक्ति से सम्बन्धित। घटनाओं का यह क्रम इस प्रकार रहा है कि अन्त में अयोध्या के सिंहासन पर राम ही बैठे। विचारणीय बात यह है कि किस आधार पर रामचन्द्र को राजगद्दी मिली।

वाल्मीकि के ग्रंथ से यह बात स्पष्ट झलकती है कि रामचन्द्र को अपने युवराज न हो सकने का खेद रहा जैसा कि इन पंक्तियों से प्रकट होता है--

न राज्याद्भ्रंशनं भद्रे न सुहृद्भिर्विनाभवः।
मनो मे बाधते दृष्ट्वा रमणीयमिमं गिरिम्॥

(श्री रामचन्द्र जी बोले—हे भद्रे! इस

रमणीय पर्वत की शोभा देखने से राज्यनाश एवं सुहृदवियोग जन्य दुःख मुझे अब नहीं सताता।)

अहं तु हृतदारश्च राज्याच्च महतश्च्युत ।
नदीकूलमिव क्लिन्नमवसीदामि लक्ष्मणः ।।

(किन्तु हे लक्ष्मण ! मैं स्त्री को गँवा और इतने बड़े राज्य से वंचित हो धार से कटते हुए नदी के तट की तरह इस समय दुःखी हो रहा हूँ।)

बनवास काल में उन्होंने समय-समय पर राज्य के सम्बन्ध में जो दुःख प्रकट किया है और जिसकी कुछ झलक ऊपर दी जा चुकी है वह असंगत ही नहीं हास्यास्पद हो जाता है। तुला धारण करने पर जिस पलड़े में उनकी राज्यासक्ति रखी जाती है वही नीचे को जाता दीख पड़ता है। युद्ध के उपरान्त सीता मिलन पर उन्होंने अयोध्या लौटने की योजना बनाई क्योंकि बनवास की अवधि भी पूरी होने जा रही थी। उस समय महाराज रामचन्द्र जी ने आगे-आगे हनुमान को भेजा भरत की नब्ज टटोलने को जिसका पता इन पंक्तियों से चलता है :

तत्वेन मुखवर्णन दृष्टया व्याभाषणेन च ।
सर्वकामसमृद्धं हि हस्त्यश्वरथसंकुलम् ।।
पितृपैतामहं राज्यं कस्य नावर्तयेन्मनः ।
संगत्या भरतः श्रीमान्राज्यार्थी चेत्स्वयं भवेत् ।।
प्रशास्तु वसुधां कृत्स्नामखिलां रघुनन्दनः ।
तस्य बुद्धिं च विज्ञाय व्यवसायं च वानर ।।
यावन्न दूरं याताः स्म क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ।
इति प्रतिसमादिष्टो हनुमान्मारुतात्मजः ।।

(इस प्रकार मेरे आने का समाचार सुन भरत के मुख की रंगत और निगाह कैसी हुई और उन्होंने क्या कहा इन बातों की यथार्थ जानकारी प्राप्त करना क्योंकि इष्ट पदार्थों से परिपूर्ण और हाथी, घोड़ों और रथों से भरा-पूरा बाप-दादों का राज्य पाकर किसका मन नहीं बदल जाता। बहुत दिनों तक राज्य करने से यदि श्रीमान् भरत जी अब स्वयं ही राज्य करने के अभिलाषी हों तो वह ही समस्त पृथ्वी का पालन करें। हे हनुमान, जब तक मैं यहाँ से बहुत दूर अर्थात् अयोध्या पहुँचूं तब तक उससे पूर्व ही तुम भरत के मानसिक विचारों का भेद मालूम करो और यदि वह मेरे विरुद्ध दिखलाई पड़ें तो तुम तुरंत लौट आना। इस प्रकार पवननन्दन हनुमान को मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने आज्ञा दी।)

इससे राम की राज्य पाने की इच्छा स्पष्ट हो जाती है और साथ ही यह भी कि बनवास काल में भरत राज्य करते रहे ! यह कल्पना करना कि खड़ाउँओं ने शासन किया, कोरा मज़ाक़ होगा। यह पहले ही कहा जा चुका है कि दण्डकारण्य वास सज़ा भोगने के समान था और निःसंदेह एक दण्डित व्यक्ति के नाम का खुतबा नहीं पढ़ा जाता होगा। संक्षेप में इसे स्वीकार करने में ही भलाई दीखती है कि अयोध्या के शासक हर मानी में भरत थे।

लेकिन यह समझ में नहीं आता कि राज्य-सत्ता भरत से छिन कर राम के हाथों में कैसे पहुँच गई ? उसका एक रूप हो सकता है भरत का राज्य-त्याग। राज्य-त्याग करने का किसी भी सिंहासनारूढ़ शासक को अधिकार है पर किसी एक व्यक्ति के पक्ष में उसका त्याग होना उचित नहीं दीखता। फिर तो राज्य क्या एक लड्डू हो जायगा जिसे क ने नहीं खाया, ख को गटकने के लिए दे दिया।

इसके अलावा विचार करने का एक और

(शेष पृष्ठ ७१ पर)

शरद जोशी

"उस शाम हमने कसम खाई कि 'हेड ऑफ द डिपार्टमेन्ट' से नये साहित्य का कभी चर्चा नहीं करेंगे, उन्हें कोई पुस्तक नहीं देंगे, प्रश्न नहीं उठाएंगे। एक पेड़ मर गया था, दूसरा पेड़ नहीं मरने देंगे।"

● ●

तभी एकाएक पेड़ से आवाज़ आई--"साहित्य समाज का दर्पण है।"

सब चौंक पड़े। होस्टल की मेस से खाना खाने के बाद टहलने निकल गये थे। चाँदनी रात। शहर की ओर जाने वाली सड़क विशेष अच्छी लगती थी, चाँदी की लकीर की तरह। हवा में पेड़ ऐसे झूमते जैसे कव्वाली की धुन पर तालियाँ बजा रहे हों। जिस विषय में बातें चल रही थीं वह खाना खाने के पूर्व छिड़ गया था--एक सद्य प्रकाशित उपन्यास को लेकर। बहस इतनी बढ़ गई कि साहनी चीख कर बोला--"आखिर साहित्य क्या है?"

तभी सड़क के किनारे के पुराने पेड़ ने कहा--"साहित्य समाज का दर्पण है।"

हमने चारों ओर देखा, उत्तर देने वाला कोई व्यक्ति नहीं। पेड़ के पीछे या पेड़ के ऊपर कोई नहीं था।

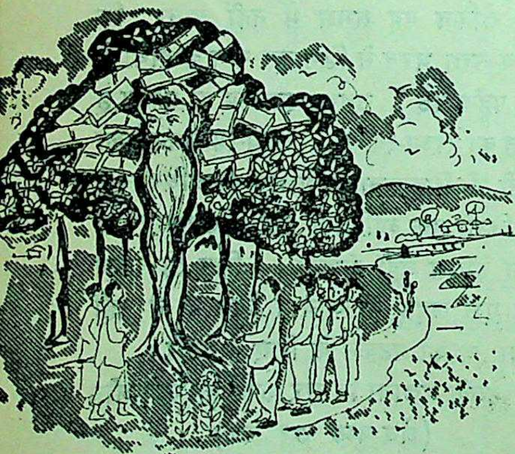
साहस करके गुप्ता ने कहा--"कौन है बे।"

कोई जवाब नहीं है। लगता था किसी भूतहा कहानी की शुरूआत हो रही है।

"भूत है रे यहाँ!"

और तेजी से एक ओर भाग लिये कि पुलिया पर जा दम लिया।

लगभग आधा घंटा पेड़ के जादू पर सोचते



पुराने पेड़ की बातें

रहे और फिर साहस कर वापस पेड़ के निकट आये। साहनी ने जोर से कहा--"आखिर साहित्य क्या है ?"

और पेड़ से गंभीर वाणी सुनाई दी--"साहित्य समाज का दर्पण है।"

सब आश्चर्य से एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

"नई कविता क्या है ?"--वर्मा ने कहा।

"उँ...ऽऽ !"--और पेड़ निरुत्तर हो गया। कुछ देर हमने प्रतीक्षा की पर वह चुप रहा।

"काव्य क्या है ?"

"वाक्यं रसात्मकं काव्यं !"--गंभीर उद्घोष हुआ।

जब कॉलेज में यह अनुभव सुनाये गये तो सब हँसे। किसी ने मूर्ख कहा, किसी ने डाँटा। जहाँ जाते स्वागत में ठहाके लगते कि ये आये पेड़ से आवाज़ें सुनने वाले।

विश्वविद्यालय प्रेस के अधीक्षक शर्माजी अपने को बड़ा साइन्टिस्ट लगाते हैं। खबर उन तक भी पहुँच गई तो रात को वे होस्टल आये और कहने लगे--"बताइये कौन से पेड़ से आवाज़ आती है, मैं अभी भूत भगाता हूँ।"

हम उन्हें पेड़ तक ले गये। प्रश्न किया--"काव्य क्या है ?" और उत्तर मिला--"वाक्यं रसात्मकं काव्यं।" शर्माजी ने चिल्ला कर कहा--"कौन हो तुम बोलने वाले ?"

कोई उत्तर नहीं आया।

"और कुछ प्रश्न पूछो भाई इससे।"

"प्रगतिवाद क्या है ?"

"हिन्दी की नवीनतम प्रवृत्ति।"--आवाज़ आई।

पुराना खूसट पेड़ था। प्रगतिवाद को नवीनतम प्रवृत्ति कहने वाला !

"और प्रयोगवाद क्या है ?"

"ऊँ ऽ ऽ ऽ...।"--पेड़ इतना कह कर चुप हो गया।

"छायावाद क्या है ?"

"स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह।"--उत्तर मिला।

शर्माजी हैरान खड़े इस अलौकिक वार्तालाप को सुन रहे थे। कहने लगे--"बिल्कुल अजीब बात है कि पेड़ बोलता है। मैं इस पेड़ को बरसों से जानता हूँ। यूनिवर्सिटी प्रेस जब नई इमारत में नहीं गया था और सामने के इस मकान में था, तब से।"--फिर सोचते हुए कहने लगे--"बात तो कुछ विचित्र होगी पर ऐसा हो सकता है कि किसी रासायनिक प्रक्रिया के अन्तर्गत पेड़ विद्वान हो गया हो।"

"क्या मतलब ?"

"पहले इस पेड़ के पास एक गड्ढा था जिसमें हमारे प्रेस के रद्दी कागज, प्रुफ आदि डाल दिये जाते थे। कुछ थीसिसें और हिन्दी साहित्य का इतिहास जो उस समय छपे थे इस पेड़ की जड़ में पड़े हैं और यह पेड़ विद्वान हो गया।"

"पर इसकी आवाज क्यों आती है ?"

"पेट में किताब पड़ी है तो मुँह से आवाज तो निकलेगी ही। विद्वान है तो बोलेगा जरूर। चुप थोड़े रहेगा"--गुप्ता ने समाधान किया।

पेड़ से एक प्रश्न और पूछा--"हिन्दी की सर्वश्रेष्ठ कृति कौन-सी है ?"

उत्तर मिला--"कामायनी ।"

"सर्वश्रेष्ठ नाटककार कौन हैं ?"

"भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ।"

"उनके बाद ?"

"प्रसाद जी ।"

"उनके बाद ?"

"ऊँ ऽ ऽ ऽ...!"--पेड़ चुप हो गया ।

"प्रेमचन्दजी के विषय में क्या जानते हैं ?"

"वे ग्राम-जीवन के चतुर चितेरा थे ।"

"सूर और तुलसी में कौन श्रेष्ठ है ?"

"सूर सूर, तुलसी ससी, उड़गन केसव दास । अबके कवि खद्योत सम जँह तँह करत प्रकास ।"

"डब्ल्यू. एच. ऑडेन का नाम सुना है ?"

"ऊँ...ऽ ऽ ऽ !"--कह कर पेड़ चुप हो गया ।

अब यह निश्चित हो गया था कि क्लासिक ढंग के प्रश्न पूछिये, क्लासिक उत्तर मिलेंगे । नयी समस्या पर पूछेंगे पेड़ चुप हो जावेगा । शर्माजी का विश्लेषण ठीक था । पेड़ की जड़ में पुरानी थीसिसें पड़ी हैं, जिनका रस पीकर पेड़ विद्वत्ता भरे उत्तर देता है ।

कुछ दिनों बाद हम सबने यह निश्चय किया कि पेड़ को वैचारिक रूप से अप-टु-डेट किया जावे । कुछ नई पुस्तकें इकट्ठी की गईं । सभी नये साहित्य पर थीं । स्वयं शर्माजी ने पेड़ के आसपास एक-एक फुट गड्ढा किया और उसमें वे किताबें रख दी गईं । नई थीसिस की पुस्तकों की खाद से पेड़ विद्वान हो जाता है, यह बात सिद्ध हो जाती तो विज्ञान जगत में शर्माजी का भी आठ-दस इंच स्थान हो जाता ।

दूसरे रोज हमने आकर पेड़ से प्रश्न किये परन्तु कोइ उत्तर नहीं मिला । निश्चित था पेड़ इस समय मनन कर रहा था, और क्लासिक प्रश्नों के उत्तर देने के मूड में नहीं था । तीसरे-चौथे रोज भी यही रहा । हमें डर लगा कि पेड़ सदैव के लिए चुप हो जाय ।

"शर्माजी, नये साहित्य के संसर्ग में आकर पेड़ की सिट्टी-पिट्टी गुम हो गई है, वह मौन हो गया है । अच्छा यही है कि नई पुस्तकें वापिस निकाल लें ताकि कम से कम उत्तर सुनने का चमत्कार तो नष्ट न हो ।"

रात को शर्माजी के नेतृत्व में कुदाली लेकर पेड़ के पास जब पहुँचे तो देख कर दंग रह गये कि पेड़ नीचे गिरा हुआ था । हमें दुख हुआ--जैसे हमने पेड़ की हत्या कर दी हो ।

वर्मा ने कहा--"इस बूढ़े पेड़ के संपर्क में नया साहित्य नहीं आना चाहिए था । बिचारे से पचा नहीं और शॉक लग गया । हम सब--इसके हत्यारे हैं ।"

संगीत के प्रेमी पेड़ तो बहुत से हैं जो गीत सुन कर विकसित होते हैं, साहित्य का प्रेमी वृक्ष एक यही था जो धराशायी हो गया ।

हम सब वापिस लौट आये--सिर झुकाये हुए ।

माह भर बाद जब हमारे हिन्दी के 'हेड ऑफ द डिपार्टमेंट', जो उन दिनों छुट्टी पर थे, वापस लौटे तो हमने सारा किस्सा सुनाया । शुरू में आश्चर्य हुआ पर बाद

में आपने स्वीकार किया कि ऐसी दैविक शक्ति हो सकती है और वृक्ष भी ऐसे उत्तर दे सकता है।

साहनी ने हँस कर कहा--"सर, बड़े क्लासिक उत्तर देता था वह पेड़। हमने पूछा--सर्वश्रेष्ठ नाटककार कौन है तो बोला भारतेन्दु हरिश्चन्द्र। पूछा--काव्य क्या है तो कहता था वाक्यं रसात्मकं काव्यं। हमने पूछा--प्रगतिवाद क्या है तो कहने लगा हिन्दी की नवीनतम प्रवृत्ति। सुन कर बड़ी हँसी आती थी।"

"इसमें गलत क्या बोला वह?"--हेड ऑफ द डिपार्टमेंट ने कहा--"ठीक ही तो है। प्रगतिवाद हिन्दी की नवीनतम प्रवृत्ति ही तो है। काव्य की सर्वश्रेष्ठ परिभाषा पंडितराज जगन्नाथ की ही है।"

"और प्रयोग...!"--पर साहनी अधूरे में रुक गया।

"ऊँ...ऽऽऽ!"--हेड ऑफ द डिपार्टमेंट ने कहा और फिर जाने क्या सोचते चुप हो गये।

हम सब उनके कक्ष से बाहर चले गये। उस शाम हमने कसम खाई कि हेड ऑफ द डिपार्टमेंट से नये साहित्य पर कभी चर्चा नहीं करेंगे, उन्हें कोई पुस्तक नहीं देंगे, प्रश्न नहीं उठावेंगे। उनकी दीर्घायु की कामना करते हुए हमने यह निश्चय किया था।

एक पेड़ मर गया था, दूसरा पेड़ मरने नहीं देंगे।

●

(पृष्ठ ६७ का शेष : राम के राज्यारोहण की पहेली)

महत्त्वपूर्ण पहलू भी है। वह है राम का राजगद्दी पर बैठने के लिए तैयार होना। यदि उन्हें पिता की आज्ञा का पालन करने के लिए बन जाना पड़ा तो यह भी जरूरी था कि उन्हीं के आदेशानुसार भरत को राज्य करते रहने देते और बड़े भाई के नाते उन्हें अपने सत्परामर्श से फ़ायदा पहुँचाते। अगर भरत ज़िद में आकर सिंहासन छोड़ देते तो उस युग में प्रचलित नियमों के अनुसार जो कोई राज्य का अधिकारी होता उसे बैठा देते। स्वयं राज-पाट संभाल लेना कुछ समझ में नहीं आता। इसका कारण जन-रंजन भी नहीं सोचा जा सकता क्योंकि जनमत तो राम के पक्ष में उस समय भी था जब दशरथ ने उन्हें राजच्युत कर बन जाने की आज्ञा दी थी।

चूंकि आजकल रामराज्य की चर्चा बहुत होती है इसलिए इस प्रकार की शंकाएँ अक्सर मन में उठ खड़ी होती हैं। प्रत्यक्ष में तो यह लगता है कि भीष्म पितामह और कैकेयीनन्दन भरत अपने इरादों में कहीं ज्यादा अटल निकले। यह बात और है हम उन्हें यथोचित सम्मान प्रदान करना न जानें या जान-बूझ कर उनके प्रति उदासीन रहें। ●

चन्द्रकान्त सोनवलकर

● टेलीफोन

कल शाम जब
मेरा दिल
बहुत छटपटाया था,
तो मैंने अपने दिल का
टेलीफोन उठा कर
खटखटाया था,

पर तुम्हारे यहाँ से
कोई जवाब नहीं मिला,
शायद दिल के तारों का
टूट गया था सिलसिला,

शायद अपना एक्सचेञ्ज
'गॉड मेड' था,
अथवा तुम्हारे दिल का फोन
कहीं और 'एंगेज्ड' था !



● नयी पिक्चर

अभी तो,
अपने प्रेम-पिक्चर की
दो रीलें भी न देख पाया
न रोया, न मुस्कराया
और रील कट गई
कम से कम 'दी एण्ड' न सही
'इंटरवल' तो हो जाने देते
भगवान तुम सब कुछ हो
पर अच्छे आपरेटर नहीं !

●

भारत के लोक-नृत्यों की एक झाँकी

भारत की शास्त्रीय नृत्य-परम्परा काफ़ी प्राचीन तथा समृद्ध है। किन्तु जिस प्रकार लोक-भाषा से साहित्यिक-भाषा का तथा लोक-गाथाओं से कथा-साहित्य का विकास होता है उसी प्रकार शास्त्रीय नृत्यों के आदि-पूर्वज लोक-नृत्य हैं। हमारे शास्त्रीय नृत्य भी, वास्तव में, हमारे लोक-नृत्यों के परिमार्जित संस्करण हैं। हमारे देश की विशालता और तज्जनित विभिन्नता हमारे लोक-नृत्यों में भी परिलक्षित होती है। काश्मीर से कन्याकुमारी तथा आसाम से सौराष्ट्र तक, आदिकाल से चले आ रहे, सैकड़ों प्रकार के लोक-नृत्य भारत के जन-जीवन की विविधता की व्याख्या करते हैं।

अधिकांश लोक-नृत्य प्रदेश अथवा जाति-विशेष के जातीय जीवन के अंग हैं। उनमें उनका सामाजिक जीवन प्रतिबिम्बित हो उठा है। जाति-विशेष के काम-धंधों, उत्सवों, पर्वों तथा उसकी प्रवृत्तियों तक की झलक उसके लोक-नृत्य में हमें मिलती है। लोक-नृत्यों द्वारा विभिन्न जातियों के ऐतिहासिक विकास का रोचक अध्ययन किया जा सकता है। नागाओं के लोक-नत्यों का आवेश और बिहार के संथालों के फसली लोक-नृत्यों की स्निग्धता उनके इतिहास की व्याख्या करती है।

नवीन सभ्यता ने जीवन के अन्य क्षेत्रों की भाँति लोक-नृत्यों को भी प्रभावित किया और लोक-नृत्य-परम्परा को क्षति पहुँचाई। फलतः बहुत-सी जातियों में अब नर्तकों की पृथक् टोलियाँ भर रह गई हैं, जो पर्वों, त्योहारों आदि पर मन्दिरों, देवस्थानों तथा मठों में नृत्य करती हैं। कुछ घुमक्कड़ टोलियाँ घूम-घूम कर मेलों और हाटों में पैसा लेकर भी नाच दिखाती हैं।



छोटा नागपुर का 'कर्मा' नृत्य

हाल ही में प्रकाशित एक पुस्तक के अनुसार १७६ लोक-नृत्य भारत में आज भी प्रचलित हैं। यह संख्या अन्तिम नहीं मानी जा सकती, और सम्भव है कि अधिक खोज करने पर बहुत-से अन्य लोक-नृत्यों का पता चले।

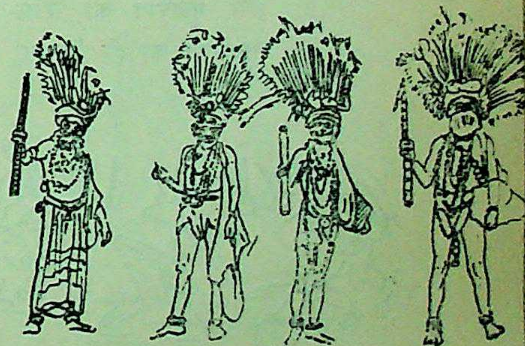
राजेन्द्र निगम

विषय की दृष्टि से, सामान्यतया, इन नृत्यों को पाँच श्रेणियों में रखा जा सकता है : उद्यम-परक, संस्कार-सम्बन्धी, धार्मिक, सामरिक तथा उत्सव-सम्बन्धी ।

उद्यम-परक नृत्य

प्रथम श्रेणी के लोक-नृत्य काम-धंधों पर आधारित होते हैं । इनमें से अधिकांश कृषि तथा फसली त्योहारों से सम्बन्धित हैं । बिहार में नव-वर्ष दिवस पर प्रथम अन्न देवताओं को समर्पित किया जाता है । इस अवसर पर लोक-नृत्यों को महत्त्वपूर्ण स्थान मिलना स्वाभाविक है । कुर्ग (मैसूर) की 'कोडवा' जाति का 'बलाकाट नृत्य' फसल की कटाई पर (कुछ अन्य त्योहारों पर भी) होता है । यह नाच अपनी उल्लासमयता, लय तथा वेश-भूषा के लिए विख्यात है । बंगाल और बिहार के संथालों के नृत्यों का, जिनमें धान की बुवाई से कटाई तक की प्रक्रिया प्रदर्शित की जाती है, सादापन देखने योग्य होता है । छोटा नागपुर (बिहार) में पौधा रोपने के दिनों 'कर्मा' नृत्य सर्वत्र दिखाई पड़ता है जिसके बाद सब मिल कर उत्साह से चावल की मदिरा पीते हैं । जम्मू काश्मीर का 'कुद' नृत्य फसल काटने के समय नाचा जाता है और अच्छी फसल पर होने वाले उल्लास और आनन्द को व्यक्त करता है ।

अन्य उद्यमों से सम्बन्धित नृत्य भी कम नहीं हैं । आसाम की 'बोड़ो-कछारी' जाति के 'कैजामापनई' नृत्य में जंगल में लकड़ी काटने या पेड़ के नीचे से लाल चीटियों को हटाने का अभिनय किया जाता है । गोंड लोग दो लम्बे बाँसों पर पैर टेक कर, लम्बे-लम्बे डग भर कर जंगल पार करते हैं, जिसकी सुन्दर झलक उनके 'लकड़ी के नाच' में मिलती है । सौराष्ट्र के 'तिप्पनी' नाच में, जो श्रमिक स्त्रियों का कलात्मक सृजन है, मुगरियों से फर्श कूटने का अभिनय किया जाता है । महाराष्ट्र का 'मछुआ' नृत्य हाव-भाव द्वारा प्रस्तुत मछुओं के उद्यमी तथा साहसी जीवन की झाँकी है ।



हैदराबाद का 'दण्डाड़ी' नृत्य

संस्कार-नृत्य

संस्कार-नृत्यों के अन्तर्गत जो नृत्य आते हैं वे भी जीवन के बहुत निकट हैं। यद्यपि वर्तमान युग में समाज का ढाँचा चरमरा गया है, तथापि हमारे विभिन्न संस्कारों को अभी तक पूरी तरह अपदस्थ नहीं किया जा सका है। जन्म, मुण्डन, कर्ण-छेदन, विवाह, गौना तथा अन्त्येष्ठि आदि अवसरों पर संस्कार-नृत्यों का आज भी सर्वत्र प्रचलन है।

आसाम के 'बऊ नृत्य' का, जो नव-विवाहितों का नृत्य है, आमोद-प्रमोद दर्शनीय होता है। उत्तर बिहार के 'नटुआ' बच्चे के जन्म के अवसर पर एक खास नाच नाचते हैं। मध्यप्रदेश की मेरिया जाति में विवाह पर सिर पर भैंसे के सींग लगा कर नाचने की प्रथा है। नृत्य के बाद भोज होता है, तथा वर-वधू पर पानी डालने की धमा-चौकड़ी होती है। आसाम का 'हबजानी' नृत्य 'बोडो' आदिवासियों का नृत्य है, जिसमें विवाह के अवसर पर कुँआरी लड़कियाँ वधू के घर एकत्र होकर नाचती हैं। साथ में गीत चलते हैं, जिनमें वर-वधू का गुण-बखान होता है और उन पर मीठे व्यंग किये जाते हैं।

धार्मिक-नृत्य

धर्म को आज भी हमारे देश में जो सर्वोपरि स्थान प्राप्त है उसे दृष्टि में रख कर धार्मिक-नृत्यों की बहुलता की बात सरलता से समझी जा सकती है। अनेकानेक धार्मिक-नृत्य भारत में प्रचलित हैं। ऐसे नृत्य दो उप-श्रेणियों में विभक्त किये जा सकते हैं। एक तो वे जिनका देव-पूजन, अर्चना-वन्दना से सम्बन्ध रहा है; दूसरे वे जो मंत्र-तंत्र तथा चमत्कार-चिकित्सा में जनता के विश्वास के कारण जन्मे।

गुजरात का 'रास-नृत्य' कृष्ण-लीला की झाँकियाँ प्रस्तुत करता है। गुजरात का ही 'गरबा' नृत्य मातृ-शक्ति की आराधना के निमित्त होता है। इसमें प्रयुक्त मिट्टी का कलश मातृ-शक्ति का प्रतीक है। मणिपुर का 'लाइहराओबा' नृत्य: मूलत: उर्वरता के अनुष्ठान का नृत्य था। कालान्तर में शिव तथा कृष्ण-लीला आदि की कथाएँ इसके वर्ण्य विषय बन गईं। उड़ीसा का 'चढ़ैया नृत्य' शिव-पार्वती की अर्चना में रचित नृत्य है। एक चढ़ैया (बहेलिया) किसी महात्मा के शापवश [illegible]



गुजरात के 'रास' नृत्य का एक दृश्य

दंश से मर जाता है। उसकी पत्नी शिव-पार्वती को स्तुति द्वारा प्रसन्न कर, मृत-पति का जीवन पुनः पा लेती है। यह नृत्य इसी कथा को अभिनीत करता है। भावगहनता इस नृत्य का उल्लेखनीय लक्षण है। मणिपुर का 'औगरी-हंगल-चोवा' नामक एक अन्य नृत्य 'मैटी' आदिवासियों के एक प्राचीन धार्मिक विश्वास से गुँथा हुआ है। उनके अनुसार यह नृत्य सृष्टि के आरम्भ के साथ जन्मा था और मूल रूप में अब तक चला आ रहा है। इसका विषय किसी प्राचीन गुरु के दो पुत्रों की प्रतिद्वन्द्विता है।

चमत्कार, मंत्र-तंत्र से सम्बन्धित नृत्य भी अनेक हैं। आसाम के 'देवधानी' तथा राजस्थान के 'तेरा-ताली' नृत्यों में देवता के अवतरण का प्रदर्शन होता है। इसमें प्रारम्भ में नर्तक के हाव-भाव सहज तथा गति धीमी होती है। शनैः-शनैः आवेश और तेजी बढ़ते जाते हैं यहाँ तक कि एक स्तर पर नर्तक विक्षिप्त-सा लगने लगता है। आसाम में, जहाँ लोग मलेरिया से त्रस्त रहत हैं, मच्छरों को भगाने के लिए 'महाहन' नृत्य नाचा जाता है। मिथिला की स्त्रियाँ अकाल-निवारण के लिए बड़ी आस्था से 'जट-जटनी' नृत्य नाचती हैं।

सामरिक-नृत्य

प्रजनन, उदर-पालन की चेष्टाएँ और युद्ध की प्रवृत्ति आत्म-रक्षण तथा जाति-रक्षण के आधार-स्तम्भ हैं। आदिम-युग में, जब सुरक्षा का अभाव था, मनुष्य को प्रत्येक क्षण युद्ध के लिए सन्नद्ध रहना पड़ता था। सम्भवतः उस सन्नद्धता और जागरूकता को बनाये रखने के लिए ही सामरिक-नृत्यों की सृष्टि की गई होगी। ऐसे नृत्यों का प्रचलन अधिकतर देश के सीमा-प्रान्तों में रहनेवाली लड़ाकू जातियों में है।

नागाओं के युद्ध-नृत्य अपनी कोटि के श्रेष्ठतम उदाहरण हैं। इम्फाल के निकट उखरूल के 'तंगखुल' आदिवासियों के 'खामा-होनथोहे' नृत्य में भालों तथा अन्य शस्त्रास्त्र द्वारा शत्रु को परास्त करने तथा विजय के उल्लास का प्रदर्शन किया जाता है। तुएन-सांग ज़िले (नगालैंड) के 'चेखसांग' नागाओं का 'तेरीलोपफुकले' नृत्य मूलतः वीर योद्धाओं द्वारा युद्ध जीत कर गाँव लौटने पर किया था। अब यह फसल की कटाई पर होता है। साथ गाये जाने वाले गीतों में खारे



नागाओं का 'युद्ध' नृत्य

और दांसा नामक पुराण वीरों की वीरता का बखान होता है। उत्तर-पूर्वी सीमा-अभिकरण (नेफ़ा) का 'आदि (गैलोंग) नृत्य' भी सामरिक नृत्य है। इस नृत्य के तीन अवान्तर या टुकड़े होते हैं। पहले में युद्ध-देवता की पूजा, दूसरे में शत्रु पर आक्रमण और तीसरे में विजयोत्सव के उल्लास को अभिव्यक्त किया जाता है। केरल के 'वैलक्किली' नृत्य में महाभारत के युद्ध का प्रदर्शन किया जाता है। विजयी पाण्डवों के विशाल पुतले खड़े किये जाते हैं और पराजित कौरवों का अभिनय करने वाले ढाल-तलवार लेकर नाचते हैं।

सामरिक नृत्यों की विशेषता यह है कि नर्तक उतने समय के लिए सचमुच योद्धाओं की मनःस्थिति में आ जाता है। उसकी आकृति की भीषणता और हाव-भाव देख कर दर्शक भूल जाता है कि वह अभिनय मात्र है।

उत्सव-नृत्य

भारत में उत्सवों की बहुलता के विषय में क्या कहा जाये? अनेकानेक धर्मों,. जातियों तथा प्रदेशों के—यहाँ तक कि गाँवों, मुहल्लों के—अपने-अपने पर्व-उत्सव हैं। इनमें से अधिकांश रबी या खरीफ कटने के ठीक बाद पड़ते हैं। एक ओर अन्न से भरे कोठों को देख कर किसान को निश्चिन्तता का अनुभव होता है और दूसरी ओर फ़सल कट चुकने के बाद के अवकाश का—मोद मनाने, नाचने, गाने का इससे अधिक उपयुक्त समय और क्या हो सकता है?



राजस्थान का 'घूमर' नृत्य

वसन्तोत्सव पर बिहार में 'करमा जादुरा' नृत्य कहीं भी देखा जा सकता है। इसमें स्त्रियां एक-दूसरे का हाथ पकड़, पंक्ति बाँध कर खड़ी होती हैं और पुरुष ढोल की हर थाप पर तेज़ी से कूद-कूद कर उनकी ओर बढ़ते हैं। तुएनसांग (नगालैण्ड) का 'तेरहून्ये (नव-वर्ष) नृत्य' नये वर्ष के आगमन की घोषणा करता है। इस नृत्य के साथ के गीतों में ईश्वर से अच्छी फसल, विजय, शान्ति तथा समृद्धि की प्रार्थना की जाती है। इन्हीं लोगों का 'सेकेरेनी नृत्य' सामूहिक भोजों के अवसर पर नाचा जाता है, जिसमें गाँव का हर व्यक्ति

आमंत्रित होता है। नर्तक एक तिकोनी शिला 'गेरा' के चारों ओर घूम-घूम कर नाचते हैं।

बंगाल में चड़क-त्योहार पर पुरुष धूपदान लेकर 'गंजन' नृत्य नाचते हैं। जौनसर-बावर (उत्तर-प्रदेश) का 'सैना' नाच दीपावली पर नाचा जाता है। इसमें त्योहार पर नातेदारों से मिलन-जन्य हर्ष को व्यक्त किया जाता है। इस नृत्य का एक पूरक भाव और है : वह है पत्नी के मैके चले जाने पर पतियों की वियोगावस्था।

राजस्थान में, होली-दीवाली पर स्त्रियाँ मोहक सज्जा में 'घेर घूमर' नृत्य नाचती हैं। इस नृत्य के सीधे- सादे हाव-भाव मनोहर होते हैं। हिमाचल प्रदेश का 'खार' नृत्य दशहरा, दीवाली आदि पर्वों पर मन्दिरों में नाचा जाता है। स्त्री-पुरुष आपस में स्थान बदलते हैं और गीत गाते हैं। पंजाब में, बैसाखी का त्योहार और भांगड़ा तो जैसे पर्याय बन गये हैं। 'भांगड़ा' के नर्तकों का उत्साह और स्फूर्ति दर्शनीय होते हैं।



पंजाब का भांगड़ा नृत्य

लोक-नृत्यों का कला-पक्ष

लोक-नृत्यों का कला-पक्ष तीन बातों से पूर्ण होता है। प्रथम बात है, खड़े होने का ढंग तथा अंग-संचालन जो भिन्न-भिन्न नृत्यों में भिन्न होता है। कुछ नृत्य मंडल बना कर नाचे जाते हैं, कुछ कतार में। इन मंडलों और पंक्तियों के भी विविध रूप हैं। तालियाँ बजाने और अंग-संचालन की विविधता भी विभिन्न लोक-नृत्यों को उनकी अपनी विशेषता प्रदान करती है।

दूसरी बात है, वे वाद्ययंत्र और गीत जिनकी लय पर नृत्य होते हैं। लोक-नृत्यों का संचालक वाद्य-यंत्र सामान्यतया ढोल है। ढोल के अतिरिक्त बाँसुरी, चिमटा, तुरही तथा मंजीरे भी नृत्यों को लय एवं ताल प्रदान करते हैं। गीतों की असमर्थता और स्वरलहरी भी बहुत मोहक एवं मधुर होती है।

नर्तकों के वस्त्र तथा सज्जा तीसरी महत्त्वपूर्ण बात है जो लोक-नृत्यों के सौन्दर्य को पूर्ण करती है। नर्तक कहीं रंग-बिरंगी पगड़ियाँ बाँधते हैं, कहीं बहुरंग चमकदार अंगरखे पहनते हैं, कहीं नंगे शरीर पर मोतियों, मूंगों और सीपों की मालायें; कहीं सींग धारण करते हैं और कहीं रंगीन पंखों का

मुकुट। किन्तु परिधान अथवा रूप-सज्जा चाहे जो हो वह इतनी कलात्मकता से की जाती है कि उससे लोक-नृत्यों की दर्शनीयता में वृद्धि हो जाती है।

यह हर्ष का विषय है कि लोक-नृत्यों के सांस्कृतिक पक्ष का मूल्याङ्कन सरकारी स्तर पर काफ़ी गम्भीरतापूर्वक होने लगा है। गणतन्त्र दिवस पर भारत की राजधानी, दिल्ली में होने वाला 'लोक-नृत्य समारोह' इस दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम है और आशा है कि इसके द्वारा सम्पूर्ण देश के सांस्कृतिक एवं भावनात्मक एकीकरण को बल मिलेगा। ● ● ●

तुम्हारी पत्नी

महारानी विक्टोरिया के पति प्रिंस अलबर्ट में एक विचित्र आदत थी कि जब वे विक्टोरिया या और किसी से नाराज हो जाते, तो अपने कमरे में जाकर भीतर से दरवाजा बन्द कर लेते थे।

एक बार महारानी विक्टोरिया और प्रिंस अलबर्ट में गरमागरम बहस हो गई। फलस्वरूप प्रिंस नाराज़ होकर अपने कमरे में आये और भीतर से दरवाजा बन्द कर लिया। थोड़ी देर बाद महारानी क्रोध से भरी हुई आईं और दरवाजे पर धक्का देने लगीं। भीतर से अलबर्ट ने पूछा, "कौन?"

"मैं—इङ्गलैण्ड की रानी।"

भीतर से कोई जवाब नहीं मिला और न दरवाजा ही खुला। थोड़ी देर बाद पुनः विक्टोरिया ने दरवाज़े पर दस्तक दी। भीतर से फिर वही प्रश्न हुआ, "कौन?"

"इङ्गलैण्ड की रानी।"

इस बार भी सन्नाटा रहा। कुछ देर बाद पुनः दरवाजे पर दस्तक हुई और पूर्व-प्रश्न फिर पूछा गया। इस बार रानी ने कहा, "अलबर्ट, मैं हूँ, तुम्हारी पत्नी।"

तुरत दरवाजा खुल गया और अलबर्ट बाहर आ गये!

—विश्वनाथ मुखर्जी

राजेन्द्र य

एक इञ्च मुस्कान

नित-नूतन प्रयोगों की साहसिकता 'ज्ञानोदय' की सहज स्वाभाविक परम्परा रही है जिसके कारण अपने पाठकों में वह सदा से नित-नवीन आकर्षण का केन्द्र रहा है। इसी परम्परा की नवीनतम कड़ी है प्रस्तुत धारावाही सहयोगी उपन्यास 'एक इञ्च मुस्कान'—हिन्दी की नयी पीढ़ी के सर्वाधिक लोकप्रिय कथाकार-दम्पत्ति राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी द्वारा प्रणीत—जिसके अब तक आप निम्नलिखित ७ अध्याय पढ़ चुके हैं :

१. सागर संगम अरुण-नील (जनवरी अंक) : राजेन्द्र यादव
२. कुहासा और आँधियाँ (फरवरी अंक) : मन्नू भण्डारी
३. धुँधलके के आरपार (मार्च अंक) : राजेन्द्र यादव
४. डूबते सूरज के लहर-भीगे किनारे (अप्रैल अंक) : मन्नू भण्डारी
५. बन्द दरवाज़ा और दुहराती दस्तकें (मई अंक) : राजेन्द्र यादव
६. एक विन्दु और दो अलग-अलग रेखाएँ (जून अंक) : मन्नू भण्डारी
७. निर्णय का एक दिन (जुलाई अंक) : राजेन्द्र यादव

अब इस अंक के अगले पृष्ठों में पढ़ें मन्नू भण्डारी लिखित 'पुकारती मंज़िलों की मरीचिकाएँ'



पूर्व - कथा

पत्रों के आधार पर अमला की जो तस्वीर अमर ने अपने मन में आँक रखी थी, उस अमला और वास्तविक अमला में कितना अन्तर था! कभी जब एकदम निकट आ जाए तो पत्रों वाली चिर-परिचित अमला-सी लगे और दूसरे ही क्षण इतनी दूर चली जाए कि नितान्त अपरिचित-सी लगने लगे।

अमला अमर को प्रेरित करती है कि यदि अमर को अपनी अद्भुत प्रतिभा और कला को चरम विकास पर ले जाना है तो वह विवाह के चक्कर में न पड़े, अपनी कला के साथ कभी समझौता न करे।

अमर अजब उलझन में फँस गया। लेकिन उसने आखिर तय कर ही लिया और जुहू के उस लहर-भीगे किनारे की संध्या में रंजना को स्पष्ट कह दिया कि वह शादी के बन्धन में नहीं बँधेगा, अपनी कला के साथ समझौता नहीं करेगा। रंजना के सपनों का महल ढह गया। जिस अमर के लिए उसने अपने घर वालों से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया था और शादी के सब अच्छे-बुरे प्रस्ताव ठुकरा दिये थे, वही अमर....वही....और अब तक के हमसफ़र अब दो अलग-अलग राहों के राही थे। रंजना से कट कर अमर ने स्वयं को अपने कमरे में बन्द कर लिया और दत्तचित्त होकर उपन्यास के निर्माण में लग गया। उपन्यास की समाप्ति के दिन उसने पाया कि वह तेज़ बुखार में तप रहा था। मन्दा भाभी उसे बुखार की हालत में ही टैक्सी में डाल कर अपने घर ले आती है जहाँ उसकी सेवा-सुश्रुषा के लिए रंजना भी उपस्थित है।

इधर अमला के साथ इसी बीच क्या-क्या नहीं घट गया?—कार में कैलाश से इस क़दर झड़प हुई कि सदा के लिए उससे सम्बन्ध टूट गया;—पिताजी सफ़र से लौटे तो एक विचित्र प्रस्ताव लेकर कि वह अपने पति किशोरी बाबू को अब क्षमा कर दे जिनसे लड़ कर दस वर्ष पहले वह चली आयी थी; या अमला चाहे तो कैलाश से विवाह कर ले, या जिससे भी चाहे उससे......लेकिन अमला अपने जीवन के इन पिछले दस वर्षों को कैसे झुठला दे? वह किनारों में बँधे हुए तालाब या पोखर के पानी की तरह सड़ना नहीं चाहती, चाहती है स्वच्छ जल की उन्मुक्त धारा की तरह बहते रहना......

"अमला को, जिसके परिचय ने यह उपन्यास लिखा लिया......!" अपने उपन्यास की पाण्डुलिपि पर यह समर्पण लिखते ही अमर को लगा कि उसने मन ही मन एक बहुत बड़ा निर्णय ले लिया है...., फिर टण्डन के साथ हुई अपनी विस्तृत बातचीत के दौरान में उसने अपना यह निर्णय उस पर प्रकट भी कर दिया कि वह रंजना से शादी कर लेगा।

कन्धे पर शॉल डाल कर अमला वाहर निकल आयी और रेलिङ्ग के सहारे खड़ी होकर शून्य नज़रों से आसमान की ओर देखने लगी। काले-कजरारे बादल घिर-घिर आए थे और लगता था शायद इस बार वर्षा हो ही जाएगी!

हर साल इस दिन, इसी समय अमला तैयार होना शुरू करती थी। आज उसे न तैयार होना है, न कहीं जाना है।

बिन-बरसे ही धीरे-धीरे बादल चले गए। अमला का मन अनायास ही बेहद खिन्न हो गया। यों तो इस बार वह जब से शिमला आई है, एक दिन भी उसका मन प्रसन्न नहीं रहा--शिमला की शीतल हवा एक दिन के लिए भी उसके संतप्त मन को नहीं सहला सकी, पर आज उदासी बेहद घनी हो आई थी।

सुबह उठी तो उसे तनिक भी ध्यान न था कि आज उसका जन्म-दिवस है। टेलीफ़ोन की घंटी घनघनाई और पिताजी ने जब उसे आशीर्वाद दिया, तो उसे इस बात का ख्याल आया और तब से पिछले वर्षों की पार्टियों के चित्र टुकड़ों-टुकड़ों में उसकी आँखों के सामने तैर-तैर गए। दोपहर में खाना खाने बैठी, तब तक उसे लगता रहा कि अभी-अभी कुछ अप्रत्याशित घटेगा—कुछ ऐसा होगा कि इतने दिनों की उसकी उदासी धुल-पुँछ जाएगी; मन पर लदा यह बोझ अपने आप ही हट जाएगा और हल्की-फुल्की होकर वह आज ही शिमला से चल देगी। बार-बार उसने अपने मन से ही पूछा—आखिर ऐसा क्या हो सकता है? और मन की अतल गहराइयों से एक दबा-छिपा अस्पष्ट-सा उत्तर भी उसने सुना है—शायद कैलाश का पत्र ही आ जाए, कोई उपहार ही आ जाए और यह दिन उनकी टूटी मैत्री में सेतु बन जाये। पर सुन कर भी वह अनसुना करती रही, अनजान बनी रहने का प्रयत्न करती रही। मानो इस बात की स्पष्ट रूप से कल्पना

पुकारती मंज़िलों की मरीचिकाएँ

करने से ही इसे नज़र लग जाएगी और जिसके होने की सम्भावना है वह अनहुआ ही रह जाएगा। धीरे-धीरे समय बीतता गया तो अमला को अपने आप ही लगने लगा कि ऐसा कुछ भी नहीं होगा। हर दिन की तरह यह दिन भी बहुत ही उदास, बहुत ही मनहूस-सा बीत जाएगा। आसमान से श्वेत पक्षियों का एक झुंड उड़ता हुआ गुज़र गया।

कैलाश ने बड़े आग्रह और बड़ी उमंग से उसके जन्म-दिवस पर एक पार्टी का आयोजन किया था। इसके पहले किसी ने कभी अमला का जन्म-दिवस नहीं मनाया था। उसके जीवन का भी कोई दिन इतना महत्वपूर्ण हो सकता है कि उसे धूमधाम से मनाया जाय, यह बात परिवार वालों के साथ-साथ उसकी भी कल्पना से परे थी, और कैलाश था कि ज़िद किए चला जा रहा था। यह सब उसे बड़ा अजीब-अजीब-सा लग रहा था। फिर भी वह प्रसन्न थी——बहुत प्रसन्न थी। सारी अलमारी में भूचाल-सा मचा कर उसने वस्त्र चुने थे। आज भी उसे माली की परेशानी की बात याद है। कैसी विचित्र सनक सवार हुई थी उसे उस दिन कि वह जूड़े के चारों ओर गुलाब के फूल नहीं, सफ़ेद गुलाब की कलियाँ ही लगाएगी। आदमक़द शीशे में पड़ता प्रतिबिम्ब एक बार ज्यों का त्यों उसकी आँखों के सामने उभर आया। यह कितने साल पहले की बात थी! एकाएक उसका मन हुआ अभी जाकर वह शीशा देखे।

वह अच्छी तरह जानती है कि इन चन्द वर्षों में वह बहुत-बहुत बदल गयी है। चन्द वर्षों में क्या——चन्द महीनों में ही जाने कैसा परिवर्तन आ गया है, कि मन हमेशा एक अनजाने अवसाद से भरा रहता है और सदा प्रसन्नता से चमकने वाली आँखें जब-तब चुप-चुप आँसू बहाया करती हैं।

साड़ी का पल्ला ज़मीन से घसीटते हुए और सफ़ेद मोर के पंखों का बड़ा-सा पर्स हाथ में लिए सीढ़ियाँ उतरी तो मासी ने ऐसी चुभती बात कह दी थी कि पार्टी में जाने का उसका सारा उत्साह ही जाता रहा। एक क्षण वह अवाक्-सी मासी का मुँह देखती रही थी, पर उससे जवाब देते न बना था। बाद में तो उसने ऐसी बातों की न कभी परवाह की और न कहने वालों को जवाब देने से ही चूकी। रुकी वह उस दिन भी नहीं थी पर गाड़ी में बैठे-बैठे बराबर मासी के शब्दों को दोहराती रही थी और कुढ़ती रही थी।

पार्टी में पहुँची तो कैलाश के स्वागत और लोगों के अनेकानेक रिमार्क्स ने उसके मन के आक्रोश को धो दिया था।

"अमला जी, यों यह नाम भी आपकी वेश-भूषा के साथ खूब फबता है, पर मन होता है कि आज आप का नए सिरे से नामकरण कर दूँ——श्वेताम्बरा।" मेजर कपूर ने कहा तो हर बात में अँगरेज़ियत बघारने वाले मि. धवन झिड़कते हुए बोले——"डैम योर श्वेताम्बरा! नाम ही रखना है तो स्नो ह्वाइट रखो।" और अनायास ही अमला की नज़रें कैलाश की ओर घूम गई थीं शायद वह भी कुछ कहे, पर वह मन्द-मन्द मुस्काता-सा एकटक अमला को निहारे जा रहा था।

वही तो दिन था जब पहली बार उसके मन की शंका निश्चय में बदल गई थी।

खेल चल रहा था। कैलाश अपनी चिट पढ़ कर बड़े असमंजस में पड़ा हुआ था

और चारों ओर से प्रश्नों की बौछार लगी हुई थी—क्या लिखा है—क्या लिखा है? एक क्षण रुक कर कैलाश ने पढ़ा "डाँस विद द परसन, हूम यू लव।" तालियों की गड़गड़ाहट के बीच में, 'चलो करो—चलो करो', सुनाई दे रहा था और अमला ने कैलाश की नज़रों को अपने चेहरे पर गड़ा पाया था। उस दिन उन नज़रों ने उसे बेहद सकुचा दिया था, और बार-बार मन धड़क उठता था—कहीं कैलाश उसके पास न आ धमके। तभी कैलाश ने हाथ की चिट को एक ओर फेंक कर किस कुशलता से सारी बात को ढक दिया था—"लैट माई लव एफ़ेयर बी सीक्रेट।" पर बात शायद ढक नहीं पाई थी। अमला के साथ-साथ जैसे सभी ने इस बात को महसूस किया था कि अमला और कैलाश की मैत्री बहुत जल्दी ही किसी मधुर सम्बन्ध में परिवर्तित हो जाएगी।

तभी से तो मेजर कपूर का सारा व्यवहार ही बदल गया था और धीरे-धीरे उनकी प्रशंसा, उनका अपनत्व एक खीझ-भरी विरक्ति में बदल गया। हालाँकि बाद में उसे स्वयं यह सारा खेल, यह सारी बातें निहायत बचकानी और बहुत ही हलके स्तर की लगी थीं, पर उस दिन तो घर लौट कर वह बहुत देर तक कैलाश की उन नज़रों में ही खोई रही थी।

उसके बाद अमला के लाख मना करने पर भी कैलाश ने हर साल उसके जन्म दिवस पर पार्टी दी—उसे उपहार दिया। अमला केवल कैलाश का मन रखने के लिए पार्टी में चली जाती थी, पर उसे धीरे-धीरे यह सब बहुत ही निरर्थक लगने लगा था।

आज न कैलाश का आग्रह है और न किसी पार्टी का आयोजन। और अमला का मन है कि बार-बार कहीं जाने को ललक रहा है। सुन्दर वस्त्रों में सजने के लिए मचल रहा है।

आसमान के एक कोने से फिर काले-काले मेघ उमड़ आए। हर बार की तरह इस बार भी अमला को लगा कि बड़ी ज़ोर से वर्षा होगी और सारी पृथ्वी जल से भीग उठेगी। हर बार की तरह उसने फिर सोचा कि यदि वर्षा हुई तो वह उसमें नहाएगी। अपने मन की जलन को शीतल करेगी। पर इस सर्दी में ठंडे जल में नहाने की कल्पना ने उसे भीतर तक बुरी तरह कँपा दिया और उसने शॉल को कस कर चारों ओर लपेट लिया। वह जानती है बारिश हो भी गई, तो वह नहा नहीं सकेगी। नहाना तो दूर शायद उससे बाहर भी नहीं खड़ा रहा जाएगा। वह कमरे में खिड़की दरवाज़े बन्द करके बैठ जाएगी।

एकाएक ही उसे अमर के पत्र का खयाल आया। उसे जवाब देना है। पत्र के साथ भेजा हुआ अपना चैक देख कर अमला को दुःख के साथ-साथ अमर पर क्रोध भी आया था। उसे लगा था मानो अमर ने चैक को अस्वीकार करके उसके सम्बन्ध को ही अस्वीकार कर दिया है। पर दूसरे ही क्षण दुःख और क्रोध की यह भावना जाती रही थी और एक बहुत ही मधुर भावना ने जन्म लिया था। अमर का यह अहं उसे भीतर ही भीतर सहलाता रहा—अमर को उसके बहुत निकट खींच लाया। आज तक सब उसे पैसे की वजह से ही तो मान-सम्मान और प्यार देते रहे हैं—मेजर कपूर, कैलाश और किशोरी भी क्या उसे इसीलिए अपनाना

नहीं चाहता, कि आज वह अनेक मिलों का डाइरेक्टर है ? पर अमर उसके पैसे की परवाह नहीं करता, उसके पैसे को प्यार नहीं करता ।

तो क्या अमर उसे प्यार करता है ?

और तभी अमला के सामने अमर की अन्तिम पंक्तियाँ उभर आईं--"उपन्यास समाप्त हो गया है और अब बहुत ही खाली-खाली महसूस कर रहा हूँ । बीमारी के दौरान में रंजना दो दिन तक मेरे पास रही । उसके हाथ से रखी हुई यूडीकोलन की पट्टियों ने मेरे शरीर से अधिक, मेरे मन को राहत पहुँचाई थी, और एक बात मैं अच्छी तरह समझ गया था--रंजना मेरे जीवन की पूरक है । उसके बिना मैं अधूरा हूँ, अपूर्ण हूँ । वह मेरी आत्मा का अंश है । और इस सत्य को मैं शायद अब अधिक दिन तक नहीं झुठला सकूँगा । कितनी विचित्र बात थी कि दो दिन साथ रह कर भी हम एक शब्द न बोले, पर मौन रह कर ही जिन भावों का आदान-प्रदान हो गया उन्हें हज़ार-हज़ार शब्द भी अपने में नहीं समेट सकेंगे । उपन्यास लिखने के दौरान में हर क्षण मैंने एक अजीब-सी बेचैनी महसूस की, एक विचित्र-सा दर्द मुझे पल-पल टीसता रहा और मैं समझता रहा कि यह दर्द, यह बेचैनी, सृजन-प्रक्रिया का परिणाम है । किन्तु जब आधी बेहोशी की स्थिति में मन्दा भाभी मुझे अपने कमरे के पलंग पर लिटा कर चली गईं और क्षणांश के लिए मैंने अपने माथे पर रंजना के अधरों का स्पर्श महसूस किया तो लगा, जैसे उसने मेरी सारी बेचैनी सारे दर्द को ही पी लिया । दो दिन रह कर वह चली गई, पर लगता है, बहुत जल्दी ही मुझे उसे फिर से लाना होगा--अपने जीवन में, अपने घर में । मुझे तुम्हारी बात याद है कि हर प्रकार का समझौता कला को पथ-भ्रष्ट कर देता है । विवाह, जिम्मेवारियाँ कलाकार के लिए घातक हैं, वे उसे मार देती हैं । मैं इस बात की सच्चाई को झुठला दूँ, इतना साहस भी नहीं, फिर भी इतना तो तुम स्वीकारोगी ही कि कला के सृजन के लिए कलाकार का जीवित रहना आवश्यक है और मैं शायद रंजना के बिना जीवित ही नहीं रह सकूँगा । एक ओर यह सब महसूस करता हूँ और दूसरी ओर कहीं बहुत भीतर से मुझे कोई बराबर चेतावनी देता रहता है कि विवाह करके मैं अपने लेखक की हत्या कर दूँगा । सच मानना अमला, दुविधा और असमंजस की इस स्थिति में अब एक पल भी गुज़ारना भारी पड़ रहा है। एक ओर रंजना और अमर के व्यक्ति को जीवित रखने का प्रश्न है तो दूसरी ओर अमर के लेखक को । बड़ा ही निर्णय-दुर्बल व्यक्ति हूँ । पल-पल मन की स्थिति बदलती है और साथ ही निर्णय भी बदल जाते हैं। तुम बताओ और खूब सोच कर बताओ, मैं क्या करूँ ।"

बादल फिर धीरे-धीरे बिखर गए और पानी की एक बूँद भी न गिरी । वातावरण में साँझ का धुँधलका कुछ गहरा हो चला था । अमला की इच्छा हो रही थी, वह एक बार जैसे भी हो कुछ देर के लिए बाहर घूम आए ।

अमर के पत्र का जवाब तो अब कल देगी ।

क्या लिखेगी अमर को ? लिख दे कि रंजना से विवाह कर लो ?

नहीं, जाने क्यों मन बार-बार कहता है, ऐसा मत लिखना —ऐसा मत लिखना। पर क्यों? क्या वह अमर से कुछ आशा रखती है। नहीं। फिर भी वह नहीं चाहती कि अमर रंजना का हो, किसी एक का हो। जैसे वह सबकी होकर किसी की भी नहीं है, वैसे ही अमर भी सबका रहे, केवल रंजना का न हो। उसे लगा वह कहीं नहीं जाएगी, अभी बैठ कर अमर को पत्र लिखेगी :

"हो सकता है रंजना तुम्हारे जीवन की पूरक हो, तुम्हें उससे प्यार हो, फिर भी मैं यही कहूँगी उससे विवाह न करना। विवाह को तुम जैसे व्यक्ति भी आवश्यक समझो, इतना महत्त्व दो, यह बात गले नहीं उतरती। मैं तो सोचती हूँ विवाह केवल एक बन्धन है, एक फन्दा है जो प्यार का गला घोंट देता है। विवाह कर लोगे तो तुम मर जाओगे, वह मर जाएगी, तुम लोगों का प्यार मर जाएगा। तुम्हारे जीवन में रह जाएगा एक मानसिक तनाव और उसके जीवन में रह जाएगी अविरल अश्रुधारा। तुम रंजना से पूछो, यह सब उसे मंजूर है?

बहुत सम्भव है अमर, इस सबसे तुम सहमत न होओ। हो सकता है तुम्हें कुछ दुःख भी हो, तुम मुझे कुछ ग़लत भी समझो, पर मैं जो महसूस करती हूँ वही लिख रही हूँ। जाने क्यों कभी इस बात से सहमत नहीं हो पाई, कि व्यक्ति अपने में अपूर्ण होता है, उसे किसी पूरक की आवश्यकता होती है। फिर यदि तुम जैसे व्यक्ति को भी —जिसकी ऐसी सशक्त लेखनी है और प्रखर कल्पना—अपूर्णता महसूस हो तो जान लो तुम्हारे जीवन की पूरक तुम्हारी कला-कृतियाँ ही होंगी, रंजना नहीं।"

और भी अनेक बातें, अनेक तर्क अमला के दिमाग़ में आए। पर बराबर उसे लगता रहा कि अमर इन सब बातों को स्वीकार भले ही कर ले, मान्यता नहीं देगा। वह रंजना से विवाह कर लेगा।

सामने के दृश्य और अधिक धुँधले हो चले तो अमला एकाएक घूम पड़ी। नहीं, वह अमर को कुछ नहीं लिखेगी, कम से कम अभी तो नहीं ही लिखेगी, अपने जन्म-दिवस की साँझ चाहे कितनी ही सूनी और वीरान क्यों न हो उसे वह बाहर जाकर ही बिताएगी। रोज़ की तरह कहीं पहाड़ियों में भटक-भटका कर आ जाएगी।

एकाएक खयाल आया क्यों न नीचे वाले चावला साहब को साथ ले ले। दो बार पहले भी वह साथ-साथ घूम चुके हैं। चावला साहब बोलते बहुत हैं, पर बोर नहीं हैं। साथ रहने से कुछ समय अच्छा ही कट जाता है। यह तो अमला ने ही अधिक बढ़ावा नहीं दिया वरना वे तो रोज़ साथ चलने को भी तैयार थे। पर आज अमला ख़ुद किसी का साथ चाहती है। जिस शान्ति और एकान्त के लिए शिमला चली आई थी, वह एकाएक ही असह्य हो उठा।

नीचे उतरी तो देखा चावला साहब पहले ही कहीं जा चुके थे। वह अकेले ही चल पड़ी।

लौटी तो काफ़ी अँधेरा हो चुका था। बँगले में घुसते ही चैस्टर पहने हुए चावला साहब दिखाई दिए! वे चुरुट पी रहे थे और शायद किसी विचार में डूबे हुए थे। अनायास ही अमला के पैर उधर ही बढ़

गए। कुर्सी से उठ कर बड़े तपाक से चावला साहब ने उसका स्वागत किया तो सारे दिन में पहली बार अमला के होठों पर तनिक-सी मुस्कुराहट खेल गई।

"आज किधर घूम आईं अमला जी ?"

"यों ही भटकने निकल गई थी।"

"फिर भी आखिर किधर ?"

अमला फिर मुस्कराई, "मैं निश्चय करके कभी नहीं निकलती, मुझे तो बस अदेखे-अजाने रास्तों में भटकना अच्छा लगता है। सोचती हूँ राह निश्चित हो, मंज़िल मालूम हो, तो चलने का आनन्द ही क्या भला ?"

कमरे में बहुत हलके रंग की नीली रोशनी फैली हुई थी। चावला साहब को लगा मानो अमला उनसे नहीं अपने आपसे बोल रही है। कुछ अजीब-सा खोया-खोयापन था उसके चेहरे पर।

"मैं कभी सूचना देकर या एपाइंटमेंट करके किसी से नहीं मिलती। हाँ कभी-कभी मन-चाहे व्यक्ति से न मिल पाने के कारण निराश अवश्य होना पड़ता है।"

और तभी अमला को खयाल आया अमर का। दिल्ली आते समय उसने अचानक प्रकट होकर अमर को चौंका देने की कितनी-कितनी कल्पनाएँ की थीं, उसके साथ पूरा दिन गुज़ारने के कितने प्रोग्राम बनाए थे, पर जब अमर के कमरे पर पहुँच कर मालूम हुआ कि बीमार होकर वह अपने किसी मित्र के यहाँ चला गया है, तो उसे एक बार अपनी इस आदत पर बड़ी खीझ आई थी। पहले से ही सूचना दे देती तो कम से कम अमर से मुलाकात ही हो जाती। कौन जाने, अमर उसके साथ शिमला आने को तैयार ही हो जाता और शिमला में बिताए ये दिन इतने नीरस और मनहूस न होते।

"अजानी, अदेखी राहों में भटकने का एक आकर्षण अवश्य होता है, पर आखिर कब तक ? मनुष्य को लौटना तो अपनी मंज़िल पर ही होता है, जो उसके लिए पहले से ही निश्चित है।"

चावला साहब की बात ने अमला को कुछ चौंका दिया। सचमुच बात उसने चावला साहब से कही भी नहीं थी, अपने से ही कही थी और इसीलिए वह किसी उत्तर की अपेक्षा नहीं कर रही थी। चावला साहब ने उठ कर कमरे की तीनों बत्तियां जला दीं और सारा कमरा आलोक से भर गया। कुर्सी पर बैठते हुए वह बोले—"इस भटकन के चक्कर में ही मैंने सारा हिन्दुस्तान देख डाला है अमला जी! पत्नी की मृत्यु को बारह वर्ष हुए और तब से लेकर आज तक मैं इसी तरह भटक रहा हूँ। पर कहीं भी मन को शान्ति नहीं मिलती और लौट-लौट कर फिर उसी घर में जाना पड़ता है। सोचता हूँ यह भटकन मन की बेचैनी को और अधिक बढ़ाती ही है।"

अमला को एकाएक सन्देह हुआ, क्या चावला साहब उसके बारे में सब कुछ जानते हैं, पर कैसे? उसने तो कभी कुछ बताया नहीं। अमला ने बात बदली, "आज आप किधर घूमने गये थे चावला साहब? मैं तो यह सोच कर नीचे उतरी थी, कि आज आप को भी अपने साथ ले चलूँगी। आज अकेले जाने की ज़रा-सी भी इच्छा नहीं थी।"

"क्यों, आज कोई खास बात है क्या ?"

"हाँ आज मेरा जन्म-दिन है, [illegible] बहुत दूर यहाँ अकेली हूँ, इसीलिए मन कर रहा था, कि कोई तो मिले, जिसके साथ घंटे दो घंटे घूम ही लूँ ।"

"आज आपका जन्म-दिन है ?" चावला ने कुछ इस ढंग से यह बात कही मानो अमला के साथ न घूम सकने का उन्हें बड़ा दुःख हो। फिर एकाएक तपाक से उठते हुए बोले, "इस समय और कुछ नहीं तो कम से कम एक प्याला कॉफ़ी तो साथ बैठ कर पी ही जा सकती है ।"

उन्होंने नौकर को आदेश दिया और फिर वहीं बैठ गए ।

"आप सवेरे ही कहलवा देतीं तो कहीं बाहर ही खाना खाते, सैर करते और आपके जन्म-दिन का जश्न मनाते ।"

अमला कुछ नहीं बोली, केवल मुस्कराती रही। उसके रूखे केशों और अस्त-व्यस्त कपड़ों को लक्ष्य करते हुए चावला ने कहा, "क्या बात है, आज आप कुछ अधिक ही उदास और सुस्त दिखाई दे रही हैं। आज के दिन तो आपको अधिक प्रसन्न होना चाहिए ।"

अमला के होंठ कुछ और अधिक फैल गए पर फिर भी उसने जवाब नहीं दिया ।

नौकर कॉफी ले आया। अमला कॉफी बनाने को उठने लगी तो चावला साहब ने ट्रे को अपनी ओर सरकाते हुए कहा, "यों यह काम आप लोगों का ही है; लेकिन आज इसे मैं करूँगा ।"

करीब घण्टे भर तक अमला, चावला साहब के कमरे में बैठी रही और चावला साहब लगातार बातें करते रहे—पत्नी की मृत्यु के बाद, जीवन कितना नीरस और बोझिल हो गया है—यह अनेक बातों से, अनेक तरह से उन्होंने बताया। आखिर अमला ऊब कर उठ गई। जब चलने लगी तो चावला साहब ने कार्निस पर रखे बड़े से फूलदान में से गुलाब का एक फूल निकाल कर अमला की ओर बढ़ाया और मुसकराते हुए कहा—"इस समय तो मेरी ओर से इसे ही स्वीकार कीजिए ।" अमला ने फूल ले लिया, पर चावला के चेहरे के भाव को पढ़ कर उसे लगा, कि इतनी देर से वे जीवन की नीरसता और उदासीनता की जो बातें करते आ रहे थे—उन सबके पीछे मानो एक अर्थ था—एक संकेत था। इस उपहार से जैसे उन्होंने इस संकेत को और अधिक स्पष्ट करने का प्रयत्न ही किया है ।

अमला ऊपर आई, साइड टेबल पर रक्खे फूलदान के फूलों को फेंक कर वह अकेला फूल वहाँ लगा दिया। और उसे ही देखती हुई वह पलँग पर लेट गई। ऐसा ही एक गुलाब का फूल उसे कैलाश ने भी दिया था—पर दिया कहाँ था, जिद करके अपने हाथ से उसके जूड़े में खोंस दिया था। उस दिन गुलाब की सुगन्ध के साए में ही उसने रात बितायी थी, आज भी गुलाब उसके सामने है, पर क्या आज की रात भी वैसी ही मादक हो सकेगी ?

जब अमर उसके यहाँ आया था, और वह पार्टी से लौट कर उसके कमरे में गई थी तो उसने भी अपने जूड़े का गुलाब निकाल कर उसकी गोद में उछाल दिया था। कहने को अमर ने एक छोटा-सा 'धन्यवाद' दिया था, पर वह अच्छी तरह जानती है कि उस दिन सारी खीझ और आक्रोश को दरकिनार करके अमर उसके सामने परास्त हो गया था।

चावला साहब के इस गुलाब को देख कर उसके मन में न मधुरता जाग रही है न मादकता, फिर भी वह है कि उसे देखे ही चली जा रही है और उसका मन चाह रहा है कि इसमें से भी वह स्नेह की, आत्मीयता की खुशबू पा सके।

× × ×

दो मिनिट तक अमला पैकेट को उलट-पुलट कर देखती रही, वह जानती है कि इसमें अमर के उपन्यास की पाण्डुलिपि है, उस उपन्यास की जिसको पूरा करवाने के लिए अमला ने उसे अनेक उपदेश दिये थे, लम्बी-चौड़ी बातें समझाई थीं, फिर भी जाने क्यों उसे खोल कर पढ़ने का उत्साह वह अपने में नहीं पाती। पिछले कुछ दिनों से उसे बराबर ही महसूस हो रहा है कि अमर उसकी बातों का विरोध भले ही न करे, लेकिन मानेगा नहीं। अमला का अपना मन ही उससे पूछ बैठता है—आखिर अपनी बात मनवाने का इतना आग्रह क्यों? और न माने तो इतनी निराशा क्यों? क्या सचमुच उसके मन में केवल अमर के लेखक को, अमर की कला को ही जीवित रखने की लालसा है? और कुछ नहीं?

अमला ने कस कर आँखें मूँद लीं।

क्या होता जा रहा है उसे आजकल! वह अब अधिक नहीं सोचेगी। अपने मन की अधिक छान-बीन भी नहीं करेगी, नहीं तो सचमुच ही वह किसी दिन पागल हो जायगी। जीवन ज्यों-ज्यों निष्क्रिय होता जा रहा है, मन और कल्पना उतनी ही क्रियाशील होते जा रहे हैं पर कितना घातक है यह सब—इस बात को वह दो-तीन महीने में ही समझ गई थी।

सोचना! ...... सोचना! ...... सोचना! सचमुच वह बहुत ऊब गई है रात-दिन के इस सोचने से और चाहती थी कुछ ऐसा काम उस पर आ पड़े कि रात-दिन के लिए वह उसमें जुट जाय। शारीरिक परिश्रम उसने कभी किया नहीं था, और कर भी नहीं सकती थी; पढ़ने से उसे आजकल बेहद अरुचि हो गई थी तब फिर वह क्या करे?

अमला ने बड़े ही निरुत्साहित हाथों से पैकेट खोला और जैसे ही पन्ना पलटा, देखा—

"अमला को—जिसके परिचय ने यह उपन्यास लिखा लिया।"

अमला अवाक्-सी इस समर्पण को देखती रही और एक विचित्र-सी पुलक उसके तन-मन को सिहरा गई। कैलाश के दिये हुए अनेकानेक उपहारों की चमक एकाएक ही धुँधली पड़ गई और आज तक के सारे आदान-प्रदान, इस समर्पण के सामने बहुत ही तुच्छ लगने लगे। सच, उसने कभी भी कल्पना नहीं की थी कि अमर अपनी रचना को उसे ही समर्पित कर देगा। बार-बार वह उस समर्पण को ही पढ़ रही थी और लग रहा था, जैसे अमर ने अमला के आगे अपने को ही समर्पित कर दिया है। इस उपहार में न वैभव का प्रदर्शन था, न अमला को प्रसन्न करने का प्रयत्न, किन्तु इसमें अमर की आत्मा का निचोड़ था, जिसे उसने क़लम के माध्यम से बूँद-बूँद करके उन नीरस, शुष्क कागज़ के पन्नों पर उँड़ेल दिया था। अमला की आँखें भीग आईं।

तभी कागज़ की एक छोटी-सी स्लिप सरक कर नीचे गिर गई। अमला ने झुक कर उठाया तो अमर का पत्र था—

—"अमला, तुम्हारी प्रेरणा जिस रूप में

साकार हुई है उसके समर्पण की एकमात्र अधिकारिणी तुम ही हो। चाहता था, समर्पण की पंक्तियों में कुछ मन की बातें लिख सकूँ, पर भय है तुम्हारे आसपास के लोग, तुम्हारे वर्ग के लोग, तुम्हारे 'निकटतम मित्र' उसे सहज भाव से नहीं ले सकेंगे और तुम्हारे लिए अजीब-सी उलझन पैदा हो जाएगी, इसीलिए बहुत ही औपचारिक ढंग से एक पंक्ति लिख दी है।

पढ़ कर बताना कैसा लगा, कहाँ तक सफल हो सका हूँ? तुम्हारी राय ही मेरे लिए सबसे महत्त्वपूर्ण होगी, क्योंकि वह कम से कम व्यक्तिगत राग-द्वेषों से तो दूर होगी।

एक बात और—एक उपन्यास की तुमने प्रेरणा दी, अब चाहता हूँ एक उपन्यास की सामग्री भी दो! पहले ही कह दूँ इस मामले में भयंकर स्वार्थी आदमी हूँ, और क्रूर भी। तुम्हारे व्यक्तित्व ने, जीवन ने मुझे बहुत आकृष्ट किया है, पर उसके बारे में विशेष कुछ नहीं जानता! जान पाऊँ तो सोचता हूँ तुम्हारे जीवन और अपनी कल्पना के संयोग से एक ऐसे चरित्र का निर्माण कर सकूँगा कि अमर सचमुच ही अमर हो जाए!

पर तुम्हारा सहयोग अपेक्षित है......बोलो मिलेगा?"

'मन की बात.....उसका चरित्र...व्यक्तित्व, जीवन'.... ये ही शब्द आड़े-तिरछे अमला की आँखों के आगे तैरने लगे।

क्या थी अमर के मन की बात ...कागज़ पर ही लिख भेजता, वह जान तो लेती! यों न जानने का भी एक आनन्द है....जो चाहे कल्पना करो....

उसने अभी तक अमर को पहले वाले पत्र का उत्तर भी नहीं दिया! आज ही पाण्डु-लिपि पढ़ कर एक बड़ा-सा पत्र लिखेगी। अमर से उसे लिखवाना है....वह प्रेरणा देगी; सामग्री भी देगी, जो कुछ अमर चाहेगा, सब कुछ देगी, पर अमर को बाध्य करेगी कि वह सब प्रकार की चिन्ताओं से तटस्थ होकर, और सब प्रकार की ज़िम्मेदारियों से मुक्त होकर लिखे। दिल्ली रह कर यदि यह सब सम्भव नज़र न आता हो तो दिल्ली छोड़ दे।

वह अमर की प्रेरणा है, एक सशक्त लेखक की प्रेरणा है। वह उसे प्रेरित करेगी.... चाहे अमर उसे ग़लत समझे या सही!

सोचा था संध्या को बैठ कर सबसे पहले उपन्यास ही समाप्त करेगी, पर जब खोल कर बैठी तो मन फिर समर्पण और पत्र की पंक्तियों में ही बँध कर रह गया। थोड़ी देर तक जाने किन विचारों में खोई रही और फिर बाहर निकल गई।

मान लो उसे अपने बारे में ही लिखना पड़े तो वह क्या लिखे? वह अच्छी तरह जानती है कि मन की जिन अतल गहराइयों में झाँकना चाह कर भी कैलाश नहीं झाँक सका; जिसको उसने हमेशा बड़े यत्न से सबकी नज़रों से बचा कर, छिपा कर रखा, वह सब जैसे आज उसकी अपनी पकड़ से भी बाहर हो गया है। आज तो जैसे उसमें भी इतना साहस नहीं है कि मन की परत-परत को उधेड़ कर देखे। सच पूछा जाए तो इन दिनों में वह सबसे अधिक भय शायद अपने से ही खाती रही है।

पर नहीं वह देखेगी....बहुत भीतर तक देखेगी और निःसंकोच भाव से, बहुत ही ईमानदारी से सब कुछ अमर के सामने उँड़ेल देगी। अमर उससे सृजन करेगा.....

अमला के मन की अतृप्त नारी-सुलभ

सृजन-भावना इस कल्पना से ही पुलकित हो उठी।

याद आया जन्म-दिवस के दूसरे दिन ही तो उसने अपनी डायरी में लिखा था--

'कल मैंने जीवन के अट्ठाइस वर्ष पूरे किये... और अकेले घूम कर चुपचाप अपना जन्म-दिवस मना लिया। न किसी का उपहार आया, न स्नेह-सिक्त शुभकामनाएँ। मन बहुत-बहुत उदास हुआ था और चावला साहब का दिया हुआ गुलाब का फूल रात बड़ी देर तक मन को टीसता रहा था। पहाड़ियों में अकेले भटकते हुए मैंने बार-बार अपने मन से प्रश्न किया था कि स्नेह और अपनत्व का दावा करने वाले, उसकी हर बात की प्रशंसा करने वाले सब के सब व्यक्ति क्यों एक-एक करके छूटते चले गये....क्योंकि अपने को किसी एक में बाँध नहीं पायी। दोष उनका नहीं.... शायद उसका अपना ही है।

'पति के घर से आने के कुछ समय बाद से ही एक बात मेरे मन में धीरे-धीरे घर करती गई थी कि मुझे सब प्रकार की सीमाओं को तोड़ना है; सब प्रकार के बन्धनों से मुक्त होना है। पति और परिवार ही नारी का सबसे सशक्त बन्धन होता है, जब वही टूट गया तो और किसी बन्धन में मैं अपने को क्यों बँधने दूँ? मुझे सामान्य से ऊपर उठ कर विशिष्ट बनना है।

'और विशिष्ट मैं बन गई....साधारण लोगों के बीच अपने वर्ग के कारण और अपने वर्ग के लोगों के बीच अपनी बौद्धिकता और अपने साहस के कारण!

'पर विशिष्ट बनने की भावना से प्रेरित होकर जहाँ मैं अनेकानेक बन्धन तोड़ती चली गई, सीमाओं का अतिक्रमण करती चली गई, वहीं अनजाने ही उससे भी सशक्त बन्धन अपने चारों ओर लपेटती चली गई--मिथ्याभिमान और झूठे अहं की दीवारें अपने चारों ओर खड़ी करती चली गई।

'सोचती थी इन दीवारों को पार करके 'हर कोई' मेरे पास नहीं आ सकेगा, पर कितनी बड़ी ट्रेजेडी है यह मेरे जीवन की कि आज चाह कर भी मैं 'किसी के' पास जा नहीं सकती। ये दीवारें मेरा मार्ग रोक कर खड़ी हो जाती हैं।

'सारी शक्ति इन दीवारों को बनाने में ही ख़र्च कर दी, इन्हें तोड़ने की शक्ति अब कहाँ से लाऊँ?

'यह एकाकी जीवन बहुत बोझिल और निरर्थक-सा लग रहा है।'

नहीं उसका जीवन निरर्थक नहीं....आज भी उसमें ऐसा कुछ है जिससे लोग प्रेरणा प्राप्त कर सकें।

वह पत्नी भी बनी है, प्रेयसी भी और मित्र भी.....पर न वही किसी के जीवन को सँवार सकी न कोई उसके जीवन को सँवार सका--और सारे सम्बन्ध एक असफल प्रयोग की तरह मन पर एक असह्य बोझ-सा छोड़ कर टूटते चले गये!

अब वह अमर की प्रेरणा बनेगी....इस प्रयोग में चाहे सम्बन्ध टूट जाये, चाहे वह स्वयं टूट जाए पर यह टूटना सार्थक होगा क्योंकि यह सृजनात्मक होगा।

तेज़-तेज़ क़दम रखती अमला लौट पड़ी...घूम-फिर कर वह घर की ओर आ रही थी।

× × ×

अमर का उपन्यास आये चार दिन हो गये थे और अमला ने उसे अभी तक नहीं पढ़ा था। जाने क्या था कि पढ़ने से अधिक वह उसके पास कुछ भेजने के लिए उत्सुक थी......अपने बारे में सब कुछ लिख कर भेजने

के लिए। वह दिन भर घूमती थी....बाहर निकल कर अनेकानेक बातें उसके दिमाग़ में आती थीं...और रात में बैठ कर वह उन सबको लिखती थी, और फिर तृप्तियुक्त शान्ति के साथ सो जाया करती थी

वह बाहर निकल ही रही थी कि फाटक पर चावला साहब के नौकर ने एक लिफ़ाफ़ा पकड़ाते हुए कहा, "जी ! आपका पत्र है।"

अमर का पत्र था--अमला ने वहीं खड़े-खड़े उसे फाड़ डाला। ज़रूर उलाहना होगा, वह उसे कुछ लिख ही नहीं रही है। पर ऐसा कुछ भी नहीं था, केवल लिखा था :

"जिस दिन तुम्हारे पास उपन्यास की पाण्डुलिपि भेजी थी उसी दिन रात को एकाएक अन्तिम निर्णय ले डाला कि रंजना से विवाह करना है, और साथ ही यह भी तय कर डाला कि एक ही सप्ताह में कर डालूँगा..... तुम्हारे पत्र की, तुम्हारी राय की प्रतीक्षा थी.....ख़ैर अब तो तीन दिन बाद विवाह ही है। निर्णय लेने के बाद से ही बहुत हल्का महसूस कर रहा हूँ। लगता है व्यर्थ ही इतने दिनों तक बोझ लादे रहा, निर्णय पहले ही ले लेना चाहिए था।

विवाह की तरह विवाह नहीं हो रहा है, सो तुम्हें निमंत्रण भी क्या दूँ....पर हाँ अपनी शुभकामनाएँ अवश्य भेजना। उपन्यास पर राय कब मिल रही है ? उत्सुक हूँ....."

अमला ने पत्र वापस लिफ़ाफ़े के अन्दर रख दिया और फाटक पर खड़े-खड़े सामने की ओर देख कर सोचने लगी--आज वह किधर जाए ?

× × ×

रंजना स्वयं अपने में एक ऐसा मानसिक परिवर्तन महसूस कर रही है कि आसमान की ओर ताकती है तो सतरंगी इन्द्रधनुष खिल उठते हैं और नीचे की ओर निहारती है तो क्यारियों में खिले रंग-बिरंगे फूल झूम-झूम कर मुस्करा उठते हैं। बहुत दिनों बाद फिर उसकी बाल-सुलभ चंचलता लौट आई है और मन है कि उड़ा-उड़ा फिरता है।

वह स्वयं जानती है कि यह सब अमर के साथ दो दिन रहने का परिणाम है....पर क्यों ? अमर उससे एक शब्द भी नहीं बोला और न उसने नये सिरे से उसे कोई आश्वासन ही दिया है....तब ?

मुख से चाहे अमर ने कुछ न कहा हो.... पर आँखों से बहुत कुछ कहा है, कम से कम उसने तो बहुत कुछ समझा है। अमर की आँखों की भाषा से वह अपरिचित नहीं......और उन दो दिनों में चुप-चुप उसकी ओर निहारती आँखों में उसने अमर के मन के पश्चाताप को, उसके दुख को देखा है, समझा है।

कितनी बार मन हुआ कि वह फिर अमर को देख आए....वहाँ से आए आज छः दिन हो गए ; अमर की उसे कोई ख़बर नहीं मिली है, उसे यह भी नहीं मालूम कि वह मन्दा भाभी के यहाँ है या अपने कमरे को लौट गया--पर वह गई नहीं। फिर भी उसे न किसी प्रकार की चिन्ता थी, न उद्विग्नता ! हाँ, हर साँझ को उसने मन्दा भाभी की प्रतीक्षा अवश्य की थी।

उस दिन वह कपड़े बदल कर बाहर निकलने को ही थी कि टण्डन भाई ने मन्दा भाभी के साथ प्रवेश किया। हमेशा की तरह भाभी दरवाज़े से ही कुछ-न-कुछ बोलती हुई घुसीं।

"अरे रंजना, चल मिठाई खिला तो एक खुश-ख़बरी सुनाऊँ।"

रंजना, भाभी का मुँह देखते हुए सोच रही थी कि भाभी क्या अमर को अपने साथ लेकर आई हैं....शायद बाहर खड़ा करके मिठाई

माँग रही हैं.....और तब एकाएक उसे खयाल आया कि जिस अमर के साथ वह रोज़ घूमती थी, घंटों बातें किया करती थी उसका आज उसके कमरे पर आना मात्र इतनी बड़ी बात हो गई है कि उससे मिठाई माँगी जाए....क्या सचमुच अमर इतने-से दिनों में उससे बहुत-बहुत दूर चला गया था ?

"अरे गुमसुम-सी क्या देख रही है, मिठाई खिला न ?" और फिर टण्डन को देखती हुई बोली, "हमेशा मनहूस-सा चेहरा लिये रहने वाली इसी रंजना को देखना अब कैसी चहकेगी !"

टण्डन सोच रहा था कि वह बड़ी गम्भीरता से यह सारी बात करेगा....घरवालों को कैसे सूचित करना होगा, कैसे सारा प्रबन्ध करना होगा.....यह सारा उत्तरदायित्व उसी पर तो है जिसे बड़ी बुज़ुर्गियत से उसे निभाना हैं.... और यह मन्दा है कि इसे मज़ाक सूझ रहा है। अब वह क्या ख़ाक बात करे !

"तुझसे तो मिठाई खिलाई नहीं जाएगी, चल उठ मैं तुझे मिठाई खिलाती हूँ.....चल जल्दी तैयार हो।"

और तब रंजना ने पहली बार पूछा, "आखिर किस बात की मिठाई माँग रही हो भाभी ?"

मन्दा कुछ कहती उसके पहले ही टण्डन ने गम्भीर स्वर में कहा, "रंजना तुमसे कुछ ज़रूरी बातें करनी हैं....तुम ज़रा बाहर चलो।"

टण्डन की गम्भीरता पर मन्दा खिलखिला पड़ी, "तुम तो ऐसे कह रहे हो जैसे उसे कहीं मातमपुरसी पर ले जाना चाहते हो।"

रंजना अवाक्-सी उन दोनों के मुख देख रही थी--मन्दा का खिला हुआ चेहरा और टण्डन की गम्भीर मुख-मुद्रा....दोनों की मुद्राएँ किसी एक ही बात का परिणाम हो सकती हैं यह उसे समझ ही नहीं आ रहा था। इतना वह जान गई थी कि अमर उन लोगों के साथ नहीं आया है।

"ऐ रंजना, तूने अमर की जो सेवा की न उससे प्रसन्न होकर अमर साहब ने तुझे अभय-दान दिया है, यही सन्देश......"

बात बीच में ही काट कर टण्डन बोला, "रंजना ! देखो बात यह है कि अमर ने अन्तिम निर्णय ले लिया है कि वह तुमसे ही विवाह करेगा और बहुत जल्दी ही विवाह करेगा।" फिर एक क्षण रुक कर बोला, "सोचता हूँ नये सिरे से तुम्हारा मत जानने की तो कोई आवश्यकता नहीं है.....अब तो सिर्फ़ साथ बैठ कर यही सोचना है कि कैसे सारी व्यवस्था करनी होगी.....इसी सप्ताह के अन्दर-अन्दर सब कुछ समाप्त कर डालना है ! उसने तो सब कुछ मुझ पर ही छोड़ दिया है।"

"और ये हैं कि बिचारे बोझ से दबे जा रहे हैं....इनकी तो हँसी ही जाती रही !"

टण्डन सोच रहा था कि उसकी बात की रंजना पर बड़ी ज़बर्दस्त प्रतिक्रिया होगी, पर रंजना के चेहरे का भाव ज्यों का त्यों ही बना हुआ था--उसे न आश्चर्य हो रहा था, न प्रसन्नता--मानो यह सब तो वह बहुत पहले से ही जानती थी....जानती क्या थी यह घटना घटेगी यह विश्वास मानो एक दिन के लिए भी उसने नहीं छोड़ा था। उसने स्वयं चाहे टूटा-टूटा महसूस किया हो.....पर इस विश्वास को कितने यत्न से सहेज कर रखा था।

× × ×

चारों बैठे थे। टण्डन ने पिछली तारीख डलवा कर दोनों से फॉर्म भरवाये थे और यह

तय हो चुका था कि रजिस्ट्रार घर पर ही आयेगा—वे लोग कोर्ट नहीं जायेंगे! निकटतम मित्रों को टण्डन ने स्वयं जाकर ही सूचना दे दी थीं, और जो कुछ करना है उसकी एक निश्चित रूप-रेखा भी बना ही ली थी.... और सब कुछ करके टण्डन बड़ा हल्का-हल्का महसूस कर रहा था। अमर और रंजना को यों चुपचुप बैठा देख कर टण्डन बोला, "ये दोनों तो यों शरमा रहे हैं जैसे सचमुच के ही दूल्हा-दुल्हन हों।"

"और क्या, ये तो ऐसे कर रहे हैं जैसे कभी एक-दूसरे को देखा ही नहीं हो—या जानते ही नहीं हों!" मन्दा ने अमर को परसों से इतना छेड़ा और बनाया है कि उसकी बोलती बन्द कर रखी है।

"जानते नहीं हैं!" सिगरेट को एक ओर फेंक कर टण्डन बोला, "बेट्टा! दुनिया भर में तो मटरगश्ती करते फिरते थे....अरे इन लोगों का क्या ब्याह करवाना, बस कह दो साथ रहना शुरू कर दें!" रंजना और अमर दोनों ही मुस्करा दिये!

"माफ़ करो! तुम्हारे इन अमर साहब का कोई भरोसा है? लेखक आदमी ठहरे.... आज मूड बना तो शादी कर ली, कल मूड बने तो छोड़ दें और कह दें मैंने तो शादी ही नहीं की......सो प्रमाण तो रहना चाहिए....."

"ए मन्दा! बन्द करो यह बकवास!" टण्डन को बुरा लगा कि शादी के समय यह छोड़ने की बात क्यों कर रही है? टण्डन शादी करवाने के साथ-साथ यह भी महसूस करने लगा था कि उन दोनों के सुखी-जीवन का उत्तर-दायित्व भी जैसे उसी पर है। यह बन्धन अटूट हो....दोनों के व्यक्तित्व को निखारने-चमकाने वाला होना ही चाहिए, नहीं तो अमर चाहे उसे क्षमा कर दे, वह स्वयं अपने को कभी क्षमा नहीं कर सकेगा!

× × ×

तारकशी के काम की लाल शिफ़ॉन की साड़ी में लिपटी रंजना को अमर के पास छोड़ कर जब मन्दा उठी तो उसका मन बार-बार यही आशीर्वाद दे रहा था—यह बन्धन अटूट हो, यह जोड़ी अमर रहे।

कमरे से निकल कर बड़ी दुष्टता से मुस्करा कर उसने दरवाज़ा धीरे से बन्द कर दिया।

पहली बार ट्यूब-लाइट के दूधिया आलोक में क्षण भर को रंजना और अमर की आँखें मिलीं....और अमर ने विभोर भाव से कस कर उसे अपनी बाँहों में जकड़ लिया!

रंजना को लगा जैसे उसकी सारी भटकन ही समाप्त हो गई....उसने अपनी मनोवांछित मंज़िल पा ली......................................

● ●

यदि...

"डियर विंस्टन"—एक पार्टी में लेडी ऑस्टर ने अपने सामने बैठे सर विंस्टन चर्चिल से कहा, "यदि मैं तुम्हारी पत्नी होती तो तुम्हारी चाय की प्याली में जहर मिला देती।"

"डार्लिंग नैन्सी"—चर्चिल ने उत्तर दिया, "यदि मैं तुम्हारा पति होता तो उस जहर को बखुशी पी जाता!"

१४४
१६
२३०५

साहित्यार्चन

'उर्वशी'

कवि : दिनकर; प्रकाशक : उदयाचल, आर्यकुमार रोड, पटना; मूल्य १२ रु०

बीज जब अंकुरित होकर डाल-पात फैलाता है तो पौधा बन जाता है। पौधा देखने में अच्छा लगता है। वह लोक-लोचन को सुख पहुँचाता है। किन्तु पौधे का चरम उत्कर्ष है उसका पुष्प। पुष्प केवल नयन-सुख का ही कारण नहीं होता, वह अपने सौन्दर्य से मन को मोहित करता है, अपने आमोद से अंतरात्मा को आमोदित करके उसे एक अतीन्द्रिय लोक में पहुँचा देता है। विकास के क्रम में वह पौधे की अन्तिम परिणति होती है। 'दिनकर' का नवीन काव्य 'उर्वशी', हिन्दी काव्य-वृक्ष का सुमन है—निस्संदेह इसे हिन्दी काव्य-साधना का चरम उत्कर्ष कहा जा सकता है।

'उर्वशी' में प्रतिष्ठानपुर के राजा पुरूरवा और देवलोक की अप्सरा उर्वशी की प्रेम-कथा वर्णित है। यह एक वैदिक कथा है। यह कथा पुराणों में भी आयी है। महाकवि कालिदास ने इसे अपने नाटक 'विक्रमोर्वशीय' में विस्तार दिया है। दिनकर का काव्य किंतु इन सबसे विलक्षण और अनूठा है। कालिदास ने जहाँ इस वैदिक कथा को पल्लवित करके प्रेम के भाव पक्ष को उभारा है, वहाँ दिनकर ने उसके आध्यात्मिक पक्ष को सँवार कर उसे एक अतींद्रिय आनन्द-लोक में पहुँचा दिया है। दिनकर की 'उर्वशी' हिन्दी काव्य की लोकोत्तर उपलब्धि है।

पुरूरवा और उर्वशी के प्रेम को कवि ने सनातन नर-नारी का प्रेम माना है। कवि की यह भी मान्यता है कि 'नारी के भीतर एक और नारी है, जो अगोचर और इंद्रियातीत है। इस नारी का संधान पुरुष तब पाता है, जब दैहिक चेतना से परे वह प्रेम की दुर्गम समाधि में पहुँचता है।' कवि 'पुरुष के भीतर भी एक और पुरुष की स्थिति' मानता है, जो 'शरीर के धरातल पर नहीं रहता, और जिससे मिलने की आकुलता में नारी अंग-संज्ञा के पार' पहुँचना चाहती है।

इसी मूल भावना की भित्ति पर 'उर्वशी' का मणिकुट्टिमोज्ज्वल विराट् स्वर्ण-सौध निर्मित हुआ है। उर्वशी देवलोक की अप्सरा है। किन्तु स्वर्ग की एकरस अमरता और शीतलता उसे सन्तोष नहीं दे पाती। इसी प्रकार पुरूरवा भी मर्त्य के क्षणिक भोगों से सन्तुष्ट नहीं हो पाता। वह प्रेम के आनन्द की कल्पना उस विराट् सत्ता के निकट करता है, जहाँ देह की संज्ञा लुप्त हो जाती है। कवि हमें प्रेम के उस अशरीरी और वायवीय धरातल पर पहुँचा देता है, जहाँ काम 'भोग' नहीं होता, तपस् बन जाता है, जहाँ मानव की चेतना का चरम उत्कर्ष प्रकट होता है।

अपने आप में स्वर्ग भी अपूर्ण है, मर्त्य भी; देवत्व भी फीका है, मनुष्यत्व भी। मनुष्य देवत्व पाना चाहता है, देवता मनुष्य को प्राप्य सुखों के लिए ललचाते हैं। मानसिक द्वंद्व की इसी भाव-भूमि पर 'उर्वशी' काव्य का आरंभ होता है। पहले सर्ग में रंभा, मेनका, सहजन्या आदि अप्सराओं के वार्तालाप के माध्यम से पुरूरवा और उर्वशी के प्रेम का रहस्य उद्घाटित होता है। वार्तालाप के क्रम में एक जगह मेनका देवताओं के अमरत्व से मनुष्य की नश्वरता को अधिक अपेक्ष्य बताती हुई कहती है—

क्या है यह अमरत्व ? समीरों-सा सौरभ पीना है,
मन में धूम समेट शान्ति से युग-युग तक जीना है।
पर, सोचो तो, मर्त्य मनुज कितना मधु-रस पीता है !
दो दिन ही हो, पर, कैसे वह धधक-धधक जीता है !
इन ज्वलंत वेगों के आगे मलिन शांति सारी है,
क्षण भर की उन्मद तरंग पर चिरता बलिहारी है !

तीसरे सर्ग में, परिवर्तित प्रसंग में, उर्वशी भी कुछ ऐसी ही बात पुरूरवा से कहती है। पुरूरवा, उर्वशी के संग-सुख से ही तृप्त न होकर प्रेम के उस ऊर्ध्व-उत्स तक पहुँचने के लिए विकल हो जाता है, जिसकी विराट् सत्ता त्रिभुवन में, तीनों कालों में व्याप्त है, जो इंद्रियातीत है, जो लघुता से महत्ता की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, नश्वरता से अमरता की ओर उन्मुख है। उर्वशी इससे घबरा कर कहती है—

यह भी कैसी द्विधा ? देवता गंधों के घेरे से
निकल नहीं मधुपूर्ण पुष्प का चुंबन ले सकते हैं।
और देहधर्मी नर फूलों के शरीर को तज कर
ललचाता है दूर गंध के नभ में उड़ जाने को।

पाँच सर्गों के इस काव्य में कवि ने कथा-भाग को उतना महत्त्व नहीं दिया, जितना विचार-भाग को। वस्तुतः वैचारिक धरातल पर वह बहुत आगे बढ़ गया है। उसने काम को लौकिकता के कर्दम से उठा कर अध्यात्म के उच्च सिंहासन पर प्रतिष्ठित कर दिया है। तृतीय सर्ग को, जिसमें गंधमादन पर्वत पर पुरूरवा और उर्वशी के विहार का प्रसंग आया है, इस काव्य की आत्मा कह सकते हैं। आरम्भ से अन्त तक इसमें पुरूरवा और उर्वशी का संवाद है। कई संवाद तो काफ़ी लम्बे हैं, लेकिन भावों के उत्कर्ष, भाषा के प्रवाह और शब्दों के सुष्ठु चयन के कारण ऐसे संवाद भी कहीं बोझिल नहीं प्रतीत होते, वे अपने सहज

प्रवाह में पाठक को बड़ी ऊँचाई तक पहुँचा देते हैं। इस काव्य की सबसे बड़ी विशेषता मुझे यह लगती है कि बड़ी से बड़ी बात अधिक से अधिक सहजता से कही गई है। विचार कहीं क्लिष्ट नहीं हुए, भाषा कहीं दुरूह-दुर्बोध्य नहीं हुई—यद्यपि विचारों ने चरम उत्कर्ष पाया है और भाषा सर्वत्र बड़ी सजीव और तेजस्विनी है।

इस प्रसंग में, सहज ही, कामायनी का स्मरण हो आता है। कामायनी खड़ी बोली हिन्दी का महत्तम काव्य मानी गयी है। उसकी महत्ता अस्वीकार किसे है? किन्तु उसकी अनगढ़ भाषा की शिथिलता और प्राणहीनता देख कर आश्चर्य होता है। इसके विपरीत 'उर्वशी' की भाषा में अपेक्षित ओज और प्राणवत्ता है। प्रसंग के अनुसार इसकी भाषा, शक्ति और झंकार ग्रहण करती है। कहीं निस्तरंग सागर की गंभीर शान्ति है और कहीं उच्छल निर्झर के समान वेग और बल है। भाषा और भाव का यह मणिकांचन संयोग उर्वशी काव्य को अत्यन्त ऊँचाई पर आसीन करता है।

दिनकर की भाषा पर अपूर्व अधिकार है। वे कुशल भाषा-शिल्पी हैं। वे भाषा की भूल-भुलैया में पाठक को गुमराह नहीं करते—राजमार्ग से उसे लक्ष्य तक पहुँचा देते हैं। भाषा का यह शिल्प-नैपुण्य उर्वशी में पग-पग पर मिलता है। उदाहरण मात्र के लिए यहाँ कतिपय पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं। उक्ति उर्वशी की है—

मैं नाम-गोत्र से रहित पुष्प,
अंबर में उड़ती हुई मुक्त आनंद-शिखा
इतिवृत्त हीन,
सौंदर्य-चेतना की तरंग ;
सुर-नर-किन्नर-गंधर्व नहीं,
प्रिय ! मैं केवल अप्सरा
विश्व नर के अतृप्त इच्छा-सागर से समुद्भूत।

× × ×

मैं कला-चेतना का मधुमय, प्रच्छन्न स्रोत,
रेखाओं में अंकित कर अंगों के उभार,
भंगिमा, तरंगित वर्तुलता, बीचियाँ, लहर,
तन की प्रकांति रंगों में लिये उतरती हूँ।
पाषाणों के अनगढ़ अंगों को काट-छाँट
मैं ही निवडस्तननता, मिष्टमध्यमा,
मदिरलोचना, कामलुलिता नारी
प्रस्तरावरण कर भंग
तोड़ तम को उन्मत्त उभरती हूँ।

'उर्वशी' वर्तमान युग की अद्भुत उपलब्धि है काव्य-जगत् में। यह कवि की सिद्ध साधना का पुण्य-फल है, काव्य-संसार का शिरोभूषण है। रस और साधना के समन्वय से समद्भुत इस काव्य को एक शब्द में लोकोत्तर ही कहा जा सकता है।

—प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त'

• •

पाँच लघु उपन्यास

टाल्स्टाय, बाल्ज़ाक ज़ोला इत्यादि के युग में उपन्यास जीवन का सम्पूर्ण चित्र माना जाता था और उसमें एक पूरा युग झाँकता था। समाज के अनेक पक्ष और व्यक्ति आते थे। इसलिये उपन्यास प्रायः विराटकाय हुआ करते थे। उन्हीं लोगों ने कहानी से बड़ी और उपन्यास के

प्रचलित आकार से छोटी कहानियों को लघु उपन्यासों का रूप दिया था। केवल एक समस्या, एक व्यक्ति और एक ही घटना को समग्रता में अनेक पक्षों से रख पाना कहानी के लिए सम्भव नहीं होता, साथ ही वह इतना विविध और विशद भी नहीं होता कि बड़े उपन्यास का आकार घेरे——तब साहित्य में लघु उपन्यास आते हैं।

लेकिन हिन्दी में इधर अचानक लघु उपन्यासों की बाढ़ आ गयी है। इस बाढ़ के पीछे लेखक की यह मजबूरी या आग्रह नहीं है कि उसे अपनी बात कहने के लिए साहित्य की इसी विधा की आवश्यकता है, बल्कि जेबी पुस्तकों का अचानक बाज़ार में छा जाना है। पाकेट-बुक्स या जेबी-पुस्तकों ने जहाँ सुरुचिपूर्ण सुन्दर साहित्य को सर्व-सुलभ और लोकप्रिय बनाया है वहीं अनजाने ही लेखकों को नियंत्रित भी करना शुरू कर दिया है। आर्थिक प्रलोभन के कारण आज हर लेखक पाकेट-बुक के आकार में कुछ न कुछ लिखने की बात सोचता है। बुरे पक्ष के साथ इसके कुछ अच्छे पक्ष भी सामने आये हैं। इस माँग के परिणाम-स्वरूप प्रतिष्ठित लेखकों के साथ-साथ और भी नयी-नयी प्रतिभाएँ सामने आयी हैं, जिन्हें शायद अन्यथा सामने आने की उतनी सुविधा नहीं मिल पाती। देश की व्यापक जागृति और हिन्दी के प्रति बढ़ती हुई रुचि ने अनेक प्रान्तों और अनेक वर्गों के लेखकों को हिन्दी में लिखने को प्रेरित किया है——और हिन्दी के जाने-माने कथाकारों को एक बड़ी अजब चुनौती का सामना करना पड़ रहा है।

संक्षेप में, उस चुनौती का रूप भी समझ लें। प्रेमचन्द के बाद ही हिन्दी-कथा-साहित्य में एक विशेष प्रकार का गतिरोध आ गया था। सारे उपन्यास प्रायः उत्तर प्रदेश के कुछ मध्यवर्गीय लोगों की कहानी प्रस्तुत करते थे, और उनका घटना-स्थल भी लखनऊ-इलाहाबाद-बनारस इत्यादि हुआ करता था। प्रायः लेखकों का इन्हीं नगरों से परिचय था। स्वतन्त्रता के बाद यह गतिरोध टूटा और प्रगतिशील आन्दोलन ने एक ओर निम्न और सर्वहारा वर्ग को लिया तो दूसरी ओर प्रेमचंद के गाँवों को नई दृष्टि से देखा। आंचलिकता और स्थानीय संस्कृति के दौर ने तो उपन्यास को अनेकमुखी विविधता, और रोचक संभावनाओं से भर दिया।

इन नये-नये प्रान्तों और आंचलिक इकाइयों से आनेवाले कथाकारों और कथा-कृतियों में मँजावट और खरापन चाहे अभी न हो, लेकिन जो चीज़ इनमें सबसे पहले हमारा ध्यान खींचती है वह है अनुभूति की ईमानदारी और दृश्य की सचाई। हर लेखक ने अपनी मानसिक, सामाजिक समस्या को अपने समय और स्थान के संदर्भ में पाने की कोशिश की है——और इस विविधता तथा विस्तार के ज्वार में उत्तर प्रदेश के कुछ शहरों की मध्यवर्गीय प्रेम कहानियाँ लिखनेवाला कथाकार खो-सा गया है। वह प्रायः चुप है। अनुभव, अनुभूतियों, जानकारी और सब मिला कर अनेक दिशाओं से आनेवाली प्रतिभाओं के सामने वह अपने को हताश पाता है।

उदाहरण के लिए, पाकेट-बुक संस्करणों में निकले हुए इन पाँच छोटे उपन्यासों को ही लीजिये : **रजनी पनिकर** का **एक लड़की दो**

रूप[1], मीरा महादेवन का सो क्या जाने पीर पराई[2], गिरीश अस्थाना का धूल भरे चेहरे,[3] बिन्दु अग्रवाल का मोहल्ले की बुआ[4] और शानी का कस्तूरी[5]। रजनी जी के उपन्यास को छोड़ कर शेष सभी इन कथाकारों के ये पहले उपन्यास हैं। ये पाँचों, समाज के अनेक पक्षों को अनेक संवेदना धरातलों से छूते हैं; कहीं नयी परिस्थितियों में जीनेवालों की नई समस्याएँ हैं तो कहीं नयों के बीच में पुरानों की ट्रैजेडी है। कहीं दूर-दराज़ के आदिवासियों का शहरी-कृत होता हुआ गाँव है, तो कहीं गाँव से नगर में आया नौजवान है...

शानी का उपन्यास 'कस्तूरी' वस्तुतः धान-माँ के माध्यम से एक गाँव की कहानी है--बस्तर इलाक़े के आदिवासी गाँव की। धान-माँ ने दुबारा किसी के साथ रहना मंजूर नहीं किया और गाँव के बाहर ही छोटी-सी झोपड़ी में चाय की दूकान खोल कर पाली हुई लड़की डोली के साथ रहती है। सड़क के किनारे बने इस चाय घर में ट्रक लेकर इधर से उधर जाने-आनेवाले ड्राइवर रुकते हैं--चाय, कभी-कभी शराब पीते हैं--और आगे बढ़ जाते हैं। धान-माँ का लड़का है दयासिंह--गाँव के एक हीरासिंह से धान-माँ के सम्बन्ध का परिणाम। वह शहर से आता है तो धान-माँ सब कुछ भूलकर उसका लाड़ करने लगती है। दण्डकारण्य योजना के कारण इसी ओर से पक्की सड़क बन गयी है और गाड़ियाँ, सरकारी ट्रैक्टर इत्यादि सब उधर से जाने लगे हैं। यह सड़क प्रायः सूनी हो गयी है। इस बार वह दया आकर माँ से जेवर-रुपया माँगता है कि शहर में जाकर होटल खोलेगा। धान-माँ इनकार कर देती है। दया इन दिनों डोली से भी बहुत घनिष्ठ हो गया है। माँ से नाराज़ होकर लड़का शहर चला जाता है; डोली किसी और के घर जा बैठती है। हीरासिंह की मृत्यु पर धान-माँ बिलकुल अकेली रह जाती है। स्पष्ट ही धान-माँ के माध्यम से यह कस्तूरी गाँव की कहानी है--और बीच-बीच में दलसाय-ज़ैनी, नरेन्द्र और ताहर-खान तथा दिलावर सिंह जैसे ड्राइवरों के आख्यान भी हैं। ये सारे आख्यान और चरित्र उपन्यास में ऊपरी रूप से भले ही गुंथे न लगते हों; आन्तरिक प्रभाव चित्र के प्रमुख अंग बन कर आते हैं। यों बिखराव तो है ही। अलग-अलग लोगों के जीवन और अन्तर में उतर कर गाँव की सम्पूर्णता को प्रस्तुत करने का एक बहु-चर्चित प्रयत्न नोबुल पुरस्कार विजेता रोज़र मार्टिन डू गार्ड ने अपने लघु उपन्यास 'पोस्टमैन' में किया था। एक फ्रेंच गाँव के हर व्यक्ति के इतिहास और असलियत को डाकिया जानता है--और वही उन चरित्रों के बिखराव को जोड़नेवाला अन्तर्सूत्र है। लेकिन 'कस्तूरी' में गाँव की आत्मा का प्रतीक धान-माँ प्रभाव का सूत्र भले ही जोड़ दे, कहानी का सूत्र नहीं जोड़ पाती। शायद शानी आदिवासियों की संस्कृति, रहन-सहन, मेले-त्योहारों के अनेक

१. हिन्द पाकेट बुक्स, दिल्ली; मूल्य १ रुपया
२. राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, दिल्ली; मूल्य १ रुपया
३. सरस्वती प्रेस, इलाहाबाद; मूल्य २ रुपये
४. राजकमल प्रकाशन प्रा० लि०, दिल्ली; मूल्य १ रुपया
५. हिंदी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी; मूल्य १ रुपया

पक्ष देना चाहते थे—ऐसा इसलिये हुआ हो। शानी अपनी भाषा के प्रवाह और सूक्ष्म निरीक्षण के लिए नये कथाकारों में अलग दिखाई देते हैं। यह सूक्ष्म निरीक्षण दृश्य-चित्रण की बारीकी को आँखों के सामने ला खड़ा करने और व्यक्तियों के चरित्र और हाव-भाव, मुद्रा-क्रिया सभी के अध्ययन के रूप में आता है। उनकी भाषा, इस निरीक्षण शक्ति, संवेदना और भावनाशीलता में बड़ी संभावनाएँ निहित हैं।

गाँव से रोजी की तलाश में आनेवाला दया कभी होटल खोलता है और कभी 'होरी' का गोबर बन कर मज़दूरी करता है, और कभी **गिरीश अस्थाना** के **'धूल भरे चेहरे'** का भगवती बनकर रिक्शा चलाता है। और यों ही एक दिन टी. बी. का मरीज़ बन कर गुमनाम मर जाता है। अस्थाना ने छोटे-से उपन्यास में बहुत बड़े कथानक—या कहूँ युग की ट्रैजेडी—को बाँधने की कोशिश की है—इसलिये घटनाएँ जल्दी-जल्दी लेकिन क्रमबद्ध रूप में घटित होती जाती हैं। दूसरे महायुद्ध में रंगरूटों की भरती से लेकर ज़मींदारी उन्मूलन तक की पृष्ठभूमि पर, किसान के मज़दूर बनने तक की कहानी है। गाँव का ज़मींदार भगवती के गाँव छोड़ने का कारण बनता है और शहर का महाजन उसकी जान लेने का। महाजन के बोझ को ढोते-ढोते बीमार होकर मर जाने की कहानी प्रतीक रूप में ज़रूर कही गयी है—लेकिन अस्थाना की सामाजिक जागरूकता कभी-कभी प्रचारक का रूप ले लेती है। कहानी में रोचकता इसलिये है कि वह बाहरी घटनाओं पर ही चलती है। भगवती के माध्यम से आज के नवयुवक की ट्रैजेडी को केवल एक ही कोण से न देखकर अनेक संदर्भों और स्तरों पर देखा जाता तो शायद कहानी अधिक मन को छूती। भाषा में प्रवाह और स्थानीय रंगत है। अगर उपन्यास का पैटर्न मुल्कराज आनन्द के 'कुली', 'अछूत' इत्यादि की तरह सीधा-सपाट न रख कर कुछ भिन्न होता और सामाजिक असंगतियों में जीनेवाले व्यक्ति भगवती के अन्तर्बाह्य का चित्रण प्रस्तुत करता तो शायद अधिक प्रभावशाली होता। उपन्यास की कथा और व्यक्ति टाइप ही अधिक हैं।

लेकिन टाइप चरित्र का निर्वाह कितना कठिन है यह **बिन्दु अग्रवाल** की **मोहल्ले की बुआ** को देख कर लगता है। कहानी की गति के अभाव में ये चरित्र केवल व्यक्ति का संस्मरण या स्केच बन कर रह जाते हैं। नये परिवार के बीच पुरानी बुआ अपने को कैसे मिस-फिट पाती है और लड़ती, नाराज़ होती या प्यार देती है—इसी के संस्मरण बिन्दु अग्रवाल ने दिये हैं। बुआ को रूढ़ियों, अन्ध विश्वासों, परम्पराओं और रीतियों से भी प्यार है और नारी-सुलभ सहज मानवीय संवेदना भी उनके पास है। नये लोगों, नयी परिस्थितियों को वे सचमुच नहीं समझ पातीं। 'बूँद और समुद्र' की ताई जैसे खूंख़ार अन्तर्विरोध बुआ में कम हैं। उनकी ज़िन्दगी भी अधिक सीधी रही है। बुआ तेज़ी से ग़ायब होते पुराने लोगों का ही चित्रण नहीं, एक बीतती हुई संस्कृति का सहानुभूतिपूर्वक दिया गया चित्र है। उस नारी की जीवनी है जो घर के भीतर ही पैदा हुई और भीतर ही मर गयी। उसने बाहर न कभी

झाँका, न झाँकनेवालियों को सराहा ।

इसीलिये दिल्ली, बम्बई की उस मध्य-वर्गीया नारी के दर्द और चिन्ताओं को बुआ शायद कभी जान ही नहीं पायेगी जो इस दफ्तर से उस दफ्तर में चक्कर काटती है—रोज़ी और नौकरी की तलाश में सुबह से शाम तक खटती है। एकादशी व्रत में क्या-क्या खाया जाता है न तो उसे इसका ज्ञान है और न खिड़की से झाँक कर आँखें लड़ाने की फुर्सत है। उसे तो टिफ़िन टाइम में केण्टीन में चाय निकालनी है और बसों में धक्के खाते हुए घर लौट जाना है; उस घर को लौट जाना है जो टूट ज़रूर जा रहा है लेकिन उस काम करनेवाली लड़की को कहीं कोई सान्त्वना या सहानुभूति नहीं दे पाता। **मीरा महादेवन और रजनी पनिकर** दोनों के उपन्यास **'सो क्या जाने पीर पराई'** और **'एक लड़की दो रूप'** इसी प्रकार की अन-समझी वर्किंग-गर्ल की व्यथा को लेकर चलते हैं। मीरा की नायिका है माधवी और रजनी जी की है माला। दोनों स्टैनो हैं और दोनों को घर से कोई सहानुभूति नहीं है। दोनों को कुछ मिलता है तो अपने छोटे भाइयों से—जिनके लिए ये कुछ नहीं कर पातीं।

दोनों के सामने समस्या नौकरी की ही नहीं है—एक और भी है जो उन्हें इस दफ्तर से उस दफ्तर में भटकाती है। मालिक या बॉस उससे कार्य नहीं, 'काम' की पूर्ति चाहता है। वह उसका श्रम नहीं शरीर चाहता है। लेकिन नारी के अपने सम्पर्क और सपने भी हैं और उनकी पूर्ति के लिए समझौता करते-करते वह पाती है कि माधवी के रूप में वह घोष की रखैल है तो माला के रूप में कानोडिया की। खोयी, दिग्भ्रान्त और हताश नारी इस छीना-झपटी में श्रम को बचाती है तो शरीर जाता है और शरीर को बचाती है तो श्रम।

रजनी जी ने 'एक लड़की दो रूप' में नारी के इस द्वन्द्व को बड़े कौशल और कलात्मकता के साथ चित्रित किया है। माला के अन्तर के अनेक स्तरों को उन्होंने ऐसी सहजता से उद्घाटित कर दिया है कि सुखद आश्चर्य होता है। मीरा महादेवन के उपन्यास का कथानक अपेक्षाकृत अधिक तेज़ी से चलता है। शायद बम्बई और दिल्ली की गति का अन्तर है। मीरा में भाषा की कचाई और आत्मविश्वास की कमी तो है लेकिन युवा नारी की तरल स्वप्निल-संवेदना सहज ही मन को छू जाती है। कथा की द्रुत-विलम्बित गति में ऐसे अनेक स्थल हैं जो बाद में भी छाये रहते हैं।

सब मिला कर यह शुभ लक्षण ही है कि नारी अपने को पुरुष की आकांक्षा भरी आँखों से नहीं अपनी कमज़ोरियों और शक्तियों को स्वयं अपनी निगाह से देखने लगी है। सचमुच, उसकी पीर को कोई पराया जान भी कैसे सकता है?

—राजेन्द्र यादव

पक्ष देना चाहते थे––ऐसा इसलिये हुआ हो। शानी अपनी भाषा के प्रवाह और सूक्ष्म निरीक्षण के लिए नये कथाकारों में अलग दिखाई देते हैं। यह सूक्ष्म निरीक्षण दृश्य-चित्रण की बारीकी को आँखों के सामने ला खड़ा करने और व्यक्तियों के चरित्र और हाव-भाव, मुद्रा-क्रिया सभी के अध्ययन के रूप में आता है। उनकी भाषा, इस निरीक्षण शक्ति, संवेदना और भावनाशीलता में बड़ी संभावनाएँ निहित हैं।

गाँव से रोजी की तलाश में आनेवाला दया कभी होटल खोलता है और कभी 'होरी' का गोबर बन कर मज़दूरी करता है, और कभी गिरीश अस्थाना के **'धूल भरे चेहरे'** का भगवती बनकर रिक्शा चलाता है। और यों ही एक दिन टी. बी. का मरीज़ बन कर गुमनाम मर जाता है। अस्थाना ने छोटे-से उपन्यास में बहुत बड़े कथानक––या कहूँ युग की ट्रैजेडी––को बाँधने की कोशिश की है––इसलिये घटनाएँ जल्दी-जल्दी लेकिन क्रमबद्ध रूप में घटित होती जाती हैं। दूसरे महायुद्ध में रंगरूटों की भरती से लेकर ज़मींदारी उन्मूलन तक की पृष्ठभूमि पर, किसान के मज़दूर बनने तक की कहानी है। गाँव का ज़मींदार भगवती के गाँव छोड़ने का कारण बनता है और शहर का महाजन उसकी जान लेने का। महाजन के बोझ को ढोते-ढोते बीमार होकर मर जाने की कहानी प्रतीक रूप में ज़रूर कही गयी है––लेकिन अस्थाना की सामाजिक जागरूकता कभी-कभी प्रचारक का रूप ले लेती है। कहानी में रोचकता इसलिये है कि वह बाहरी घटनाओं पर ही चलती है। भगवती के माध्यम से आज के नवयुवक की ट्रैजेडी को केवल एक ही कोण से न देखकर अनेक संदर्भों और स्तरों पर देखा जाता तो शायद कहानी अधिक मन को छूती। भाषा में प्रवाह और स्थानीय रंगत है। अगर उपन्यास का पैटर्न मुल्कराज आनन्द के 'कुली', 'अछूत' इत्यादि की तरह सीधा-सपाट न रख कर कुछ भिन्न होता और सामाजिक असंगतियों में जीनेवाले व्यक्ति भगवती के अन्तर्बाह्य का चित्रण प्रस्तुत करता तो शायद अधिक प्रभावशाली होता। उपन्यास की कथा और व्यक्ति टाइप ही अधिक हैं।

लेकिन टाइप चरित्र का निर्वाह कितना कठिन है यह **बिन्दु अग्रवाल की मोहल्ले की बुआ** को देख कर लगता है। कहानी की गति के अभाव में ये चरित्र केवल व्यक्ति का संस्मरण या स्केच बन कर रह जाते हैं। नये परिवार के बीच पुरानी बुआ अपने को कैसे मिस-फिट पाती है और लड़ती, नाराज़ होती या प्यार देती है––इसी के संस्मरण बिन्दु अग्रवाल ने दिये हैं। बुआ को रूढ़ियों, अन्ध विश्वासों, परम्पराओं और रीतियों से भी प्यार है और नारी-सुलभ सहज मानवीय संवेदना भी उनके पास है। नये लोगों, नयी परिस्थितियों को वे सचमुच नहीं समझ पातीं। 'बूंद और समुद्र' की ताई जैसे खूंखार अन्तर्विरोध बुआ में कम हैं। उनकी ज़िन्दगी भी अधिक सीधी रही है। बुआ तेज़ी से ग़ायब होते पुराने लोगों का ही चित्रण नहीं, एक बीतती हुई संस्कृति का सहानुभूतिपूर्वक दिया गया चित्र है। उस नारी की जीवनी है जो घर के भीतर ही पैदा हुई और भीतर ही मर गयी। उसने बाहर न कभी

झाँका, न झाँकनेवालियों को सराहा ।

इसीलिये दिल्ली, बम्बई की उस मध्य-वर्गीया नारी के दर्द और चिन्ताओं को बुआ शायद कभी जान ही नहीं पायेगी जो इस दफ्तर से उस दफ्तर में चक्कर काटती है—रोज़ी और नौकरी की तलाश में सुबह से शाम तक खटती है। एकादशी व्रत में क्या-क्या खाया जाता है न तो उसे इसका ज्ञान है और न खिड़की से झाँक कर आँखें लड़ाने की फ़ुर्सत है। उसे तो टिफ़िन टाइम में केण्टीन में चाय निकालनी है और बसों में धक्के खाते हुए घर लौट जाना है; उस घर को लौट जाना है जो टूट ज़रूर जा रहा है लेकिन उस काम करनेवाली लड़की को कहीं कोई सान्त्वना या सहानुभूति नहीं दे पाता। **मीरा महादेवन** और **रजनी पनिकर** दोनों के उपन्यास **'सो क्या जाने पीर पराई'** और **'एक लड़की दो रूप'** इसी प्रकार की अन-समझी वर्किंग-गर्ल की व्यथा को लेकर चलते हैं। मीरा की नायिका है माधवी और रजनी जी की है माला। दोनों स्टैनो हैं और दोनों को घर से कोई सहानुभूति नहीं है। दोनों को कुछ मिलता है तो अपने छोटे भाइयों से—जिनके लिए ये कुछ नहीं कर पातीं।

दोनों के सामने समस्या नौकरी की ही नहीं है—एक और भी है जो उन्हें इस दफ्तर से उस दफ्तर में भटकाती है। मालिक या बॉस उससे कार्य नहीं, 'काम' की पूर्ति चाहता है। वह उसका श्रम नहीं शरीर चाहता है। लेकिन नारी के अपने सम्पर्क और सपने भी हैं और उनकी पूर्ति के लिए समझौता करते-करते वह पाती है कि माधवी के रूप में वह घोष की रखैल है तो माला के रूप में कानोडिया की। खोयी, दिग्भ्रान्त और हताश नारी इस छीना-झपटी में श्रम को बचाती है तो शरीर जाता है और शरीर को बचाती है तो श्रम।

रजनी जी ने 'एक लड़की दो रूप' में नारी के इस द्वन्द्व को बड़े कौशल और कलात्मकता के साथ चित्रित किया है। माला के अन्तर के अनेक स्तरों को उन्होंने ऐसी सहजता से उद्घाटित कर दिया है कि सुखद आश्चर्य होता है। मीरा महादेवन के उपन्यास का कथानक अपेक्षाकृत अधिक तेज़ी से चलता है। शायद बम्बई और दिल्ली की गति का अन्तर है। मीरा में भाषा की कचाई और आत्मविश्वास की कमी तो है लेकिन युवा नारी की तरल स्वप्निल-संवेदना सहज ही मन को छू जाती है। कथा की द्रुत-विलम्बित गति में ऐसे अनेक स्थल हैं जो बाद में भी छाये रहते हैं।

सब मिला कर यह शुभ लक्षण ही है कि नारी अपने को पुरुष की आकांक्षा भरी आँखों से नहीं अपनी कमज़ोरियों और शक्तियों को स्वयं अपनी निगाह से देखने लगी है। सचमुच, उसकी पीर को कोई पराया जान भी कैसे सकता है ?

—राजेन्द्र यादव

४ अक्तूबर १९५७ को रूस ने जब पहला उपग्रह (स्पूतनिक) छोड़ कर संसार को स्तब्ध कर दिया था और मनुष्य की कल्पना को सचमुच के पंख दे दिये थे कि वह चाँद-तारों की दुनिया में सदेह विचरण करे, तब इस रोमांचक संभावना ने अनेक विकट प्रश्न वैज्ञानिकों के सामने उपस्थित कर दिये थे :

१. मनुष्य यदि अपने स्पूतनिक-यान को पृथ्वी का उपग्रह बना कर उसके चारों ओर चक्कर काटने का उपक्रम करे तो वापिस पृथ्वी पर सुरक्षित लौटने के लिए यान को ठीक स्थान पर उतारा जा सकेगा या नहीं ?

२. मनुष्य भार-हीनता की स्थिति में जब पहुँचेगा तब उसके हृदय की गति, अवयवों का संचालन, मांस-पेशियों की क्रिया, रक्तचाप, श्वासोच्छ्वास आदि की अवस्थाएँ इतनी अस्त-व्यस्त तो न हो जायेंगी कि वह अपनी बुद्धि से काम ही न ले सके और अचेतन अवस्था में ही पृथ्वी की परिक्रमा करता रहे ? ऐसी स्थिति में मृत्यु की संभावना स्पष्ट थी।

१२ अप्रैल १९६१ को २७ वर्षीय रूसी युवक यूरी गागारिन अपने 'वोस्तोक' नामक अन्तरिक्ष-यान में बैठ कर १७,४०० मील प्रति घंटा की अधिकतम गति से, १,८७,७५ मील तक की यात्रा करके और पृथ्वी की परिक्रमा देकर १०८ मिनिट बाद वापिस जीवित और स्वस्थ लौट आया। मनुष्य की वैज्ञानिक उपलब्धियों की यह चरम सीमा थी।

इस उड़ान के प्रति शंकालु अनेक अमरीकन बाद में स्वयं चकित रह गये, जब उनके देशवासी शेपर्ड ने ५ मई १९६१ को अपना 'फ्रीडम' यान ४,५०० मील प्रति घंटा की अधिकतम गति से ११६,५ मील की ऊँचाई पर ले जाकर १५ मिनिट बाद वापिस पृथ्वी पर उतार लिया। २१ जुलाई १९६१ को एक दूसरे अमरीकन युवक ग्रिसम ने ठीक इसी प्रकार की यात्रा द्वारा (इसके 'लिबर्टी' यान का अधिकतम वेग ५,३१० मील प्रति घंटा था) मानव के अन्तरिक्ष-अभियान के अन्तर्राष्ट्रीय रूप को उजागर किया।

और अब..,

६ अगस्त को रूस ने यह निश्चित रूप से प्रमाणित कर दिया कि अन्तरिक्ष-यात्रा का युग प्रयोग की प्रारम्भिक मंज़िलें पार करके यथार्थता के व्यावहारिक क्षेत्र में आ गया है। इस दिन २६ वर्षीय गेरमन स्तेपनोविच

नये क्षितिज

तितोव ने अपने विमान वोस्तोक-२ की उड़ान को अन्तरिक्ष में १७,७५० मील प्रति घंटा की गति से २५ घंटों तक जारी रखा और पृथ्वी के एक-दो या पाँच-सात नहीं, बल्कि १७ से कुछ अधिक चक्कर लगाये।

विज्ञान ने अन्तरिक्ष-यात्रा के कठिन प्रतिरोधों पर विजय पा ली है क्योंकि तितोव की मानव-काया २५ घंटों तक भार-हीनता की स्थिति में रही और इतनी लम्बी उड़ान के बाद जब फिर गुरुत्वाकर्षण के क्षेत्र में लौटी तो इतनी सहजता से कि स्वयं तितोव आश्चर्य-चकित हो गया। "मुश्किल तो यह है कि यह सब इतना सहज-स्वाभाविक था, जब कि आशा यह लगाई हुई थी कि बहुत ही असामान्य स्थिति का सामना करना पड़ेगा।"

निश्चय ही, स्थिति तो असामान्य होती है। क्या कोई भी साधारण मनुष्य जिसने अन्तरिक्ष में भार-हीनता की स्थिति को झेलने की ट्रेनिंग नहीं ली है, ५ मिनिट भी वहाँ होश-हवास कायम रख सकेगा? लेकिन यदि गागारिन, शेपर्ड, ग्रिसम और तितोव ट्रेनिंग लेकर अन्तरिक्ष-यात्रा को सहज-स्वाभाविक बना सकते हैं तो हम-आप-सब के लिए चाँद-सितारों के लोक की उन्मुक्त यात्रा सुलभ हो गयी!

सुलभ इस सीमा तक कि, तितोव ने पूर्व-निश्चित कार्यक्रम के अनुसार लञ्च लिया, काग़ज़-पेन्सिल लेकर रिपोर्ट लिखी, औटोग्राफ अंकित किये, झपकियाँ लीं, विभिन्न देशों के संदेश ब्रौडकास्ट किये, अपने देश, अपनी पार्टी, और अपने 'पितातुल्य नेता ख्रुशोव' द्वारा दिये गये उत्तरदायित्व की गंभीरता पर पुलकित होकर चिन्तन किया, गागारिन से रेडियो पर संदेश-विनिमय किया, अपनी प्यारी पत्नी तमारा के बारे में--उसके मैडिकल कौलेज में भर्ती होने के बारे में--सोचा, पृथ्वी के बहुत सारे फ़ोटो लिये,...।

"केबिन में हवा का दबाव समान रहा। टैम्प्रेचर २० डिग्री, ह्यूमिडिटी (हुमस) ७० प्रतिशत। नाड़ी की गति ८० से १०० प्रति मिनिट, श्वासोच्छ्वास २० से २८ प्रति मिनिट।"

"भारहीनता की स्थिति में मैं उड़ रहा था, टाँगें ऊपर किये हुए...यह बताना मुश्किल है कि मैं किस अवस्था में सोया--बैठे हुए या लेटे हुए--क्योंकि इस बात का निश्चय करना कठिन है कि ऊपरी भाग, निचला भाग या कौन छोर कहाँ है।"

"आदमी परदेश में होता है तो उसे 'घर की याद' आती है, मुझे नया अनुभव हुआ--'अपनी पृथ्वी की याद' का।"

"संसार में अपनी मातृभूमि से अधिक प्यारी भला और कौन-सी धरा होगी--जिस पर आदमी खड़ा हो सकता है, जहाँ काम कर सकता है, और खेतों की हवा की गन्ध ले सकता है।"

और आकाश?

"अन्तरिक्ष बहुत ही विस्मयकारी है। इससे बढ़िया दृश्य और सोचा ही नहीं जा सकता। अन्तरिक्ष अपने कवि और चित्रकार की प्रतीक्षा में है।"

तितोव ने पृथ्वी की परिक्रमा १७ बार से कुछ अधिक क्यों की ? इसलिए कि १७,७५० मील प्रति घंटा की गति से उड़ने वाले यान में उसे लगभग २५ घंटे उड़ कर ४ लाख मील से अधिक की यात्रा कर लेनी थी। क्यों ? क्योंकि चन्द्रमा पृथ्वी से लगभग दो लाख चालीस हज़ार मील है और वहाँ तक जाने-आने में ४ लाख मील से अधिक की यात्रा करनी पड़ेगी। उतनी लम्बी यात्रा का अनुभव तितोव ने प्राप्त कर लिया।

इसका अर्थ यह है कि रूस चन्द्रमा तक पहुँचने के कार्यक्रम में इस सीमा तक आगे बढ़ गया है। रूस का अन्तरिक्ष-अभियान विज्ञान का अभियान है। विज्ञान की प्रगति मानव-ज्ञान और मानवीय क्षमताओं की प्रगति है। किन्तु मानव का भाग्य उतनी ही पाताल की गहराइयों में उतरता जा रहा है, जितनी ऊँचाइयों पर अन्तरिक्ष-यान राजनीति के रॉकेटों के बल पर आकाश में ऊँचा उठ रहा है।

रूस के लिए अभिमान स्वाभाविक है। उसके गर्वोन्नत मस्तक को देख कर वसुधा को प्रसन्न होना चाहिए। किन्तु जब स्वदेश की उपलब्धि का स्वाभिमान राजनीति के क्षेत्र का दर्प बन जाता है तो वह स्वयं भी डूबता है और दूसरों को भी डुबाता है। स्वाभिमान हो तो तितोव और ग्रिसम अपनी उपलब्धि को मानव-मात्र में बाँट कर इस तरह प्रसन्न होंगे जैसे हर्ष के अवसर पर कोई मिठाई बाँटे। दर्प हो तो उसी उपलब्धि को डंडा बना कर आदमी एक दूसरे का सिर तोड़ देगा।

कठिनाई एक और भी है। तितोव और ग्रिसम दोनों बेचारे दो सत्ताओं की शतरंजी बाजी की प्रतिपक्षी गोट हैं। खेलने वाले कोई दूसरे हैं। और, खेलने वाले विज्ञान की उपलब्धि में तथा मानव की विकासशील क्षमताओं में आज इसलिए अधिक रुचि ले रहे हैं कि ये उनके दर्प की, अहंकार की, सत्ता और मद की ज्वाला के लिए मज्जा की आहुतियाँ हैं।

क्षितिज वह जहाँ पृथ्वी और आकाश मिल कर एक होते हैं—विज्ञान और अन्तरिक्ष युग में आज वह दोहरा दृष्टि-भ्रम हो गया है—अभिधा के अर्थ में भी और प्रतीकार्थ में भी।

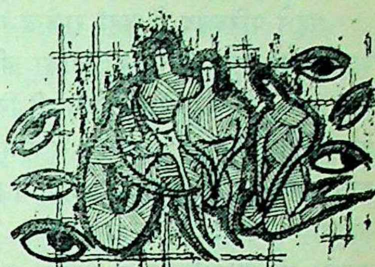
और, बर्लिन की सीमाओं पर मोर्चाबन्दी हो रही है !

और, तितोव ने कहा है, "आक्रमणकारी होशियार रहें, हमारा अन्तरिक्ष-यान पृथ्वी के किसी भी भाग में पलक झपकते पहुँच जायेगा और बम बरसा देगा।" बम की किस्में हमें पता हैं। हिरोशिमा के बाद अणु-विज्ञान बहुत आगे बढ़ गया है।

—यथागत

■

एक इञ्च मुस्कान : दो प्रतिक्रियाएँ



जब से 'एक इंच मुस्कान' ज्ञानोदय में प्रकाशित होना शुरू हुआ है, मैं उसे पढ़ रही हूँ। कहूँ कि यह 'मुस्कान'--'पोपले मुँह की मुस्कान' है। अर्थात् यह वही दो नारियों और एक पुरुष की घिसी-पिटी कहानी है। चूँकि पुरुष लेखक है इसलिए सभी उस पर मरते हैं। एक नारी--अमला--उसे पूजती है और दूसरी--रंजना--सती या साक्षात् शील की प्रतिमा की तरह उसकी भक्त है। दरअसल, उसे अमर से शादी की बात ही नहीं सोचनी चाहिए, बल्कि बड़े सहज भाव से मित्रता निभाते चले जाना चाहिए। मैं तो कम से कम यही करती......मैं ही क्या...बुद्धू से बुद्धू लड़की भी ऐसी स्थिति में इसी तरह का उदासीन रुख अख़्तियार करती। लेकिन ये बुद्धिशून्य भावुकतावादी लेखक और कवि सोचते हैं कि लड़कियाँ इन्हीं के लिए मरी जा रही हैं। यों, कल्पना मनोहर है!

मन्नू जी स्वयं भी काफी सूझ-बूझवाली हैं। क्या उनके मन में भी कभी नहीं आया कि अब पुराना समय बहुत बदल गया है और आजकल की नारियाँ इतनी अधिक शिक्षिता और विदुषी हैं कि बैठी-बैठी लकीर ही नहीं पीटतीं... मैं लेखक महोदय की इस भ्रान्ति को तोड़ देना चाहती हूँ और यक़ीन मानें उन्हें ज्ञान-प्राप्ति होगी!

इस पत्र को लिखने के पीछे मात्र यही उद्देश्य रहा है कि नारीत्व के सदियों पुराने आदर्शवाद के ख़िलाफ़ आवाज़ उठायी जाय और नारी की आज की सही दृष्टि को सामने रखा जाय। इस दिशा में इधर काफी दिमाग़ी कूड़ा-करकट साफ किया जा चुका है। मैं चाहती हूँ कि लेखक नामक प्राणी भी उसके महत्त्व को स्वीकार करें। **--मैत्रेयी, सी. २, स्लीटर रोड, बम्बई-१**

(पत्र अंग्रेजी में प्राप्त हुआ था; यहाँ उसका हिन्दी-रूपान्तर दिया जा रहा है।
--सम्पादक)

सृष्टि और दृष्टि

ज्ञानोदय में अब तक प्रकाशित 'एक इंच मुस्कान' के सातों अध्याय मैंने पढ़े हैं। मेरी स्पष्ट प्रतिक्रिया कुछ इस प्रकार है :

पहले परिच्छेद में जहाँ राजेन्द्र यादव ने कहानी का एक धुँधला-सा खाका खींचा है, वहाँ बहुत कुछ कहानी की शैली भी निर्धारित कर दी है। दूसरे परिच्छेद में मन्नू जी ने कहानी को बड़े अच्छे ढंग से उठाया व हमें एक अछूता विषय दिया। 'ट्रीटमेन्ट' व 'एप्रोच' उनका भी रोमाण्टिक व कल्पना प्रधान ही रहा। ठीक ही था; अगर वे आगे विकसित होने वाली इस 'थीम' को यथार्थवादी आधार देतीं तो सारा ढाँचा ही चरमरा कर गिर पड़ता। लेकिन अगर ऐसा हो पाता तो अमर के जीवन की ट्रेजेडी एक वास्तविक ट्रेजेडी होती।

मन्नू जी ने दूसरे परिच्छेद में अमर व अमला के बीच के अन्तर को कम करने तथा वातावरण की सहजता व स्वाभाविकता बनाये रखने के लिए जिन आत्मीयतापूर्ण, पुलकन भरे, भाव-विह्वल वार्तालापों का सहारा लिया है, उन्हें तीसरे परिच्छेद में यादव जी को इच्छा या अनिच्छा पूर्वक निभाना पड़ा है। ऐसा करना सिर्फ अस्वाभाविक ही नहीं लगता बल्कि अमर व अमला के चरित्र में एक प्रकार का उथलापन ला देता है। ऐसा लगता है जैसे कि अमला व अमर इसी प्रतीक्षा में बैठे थे कि कब मिलें व एक-दूसरे की मीठी रसभरी चुटकियाँ लेनी शुरू कर दें।

इस प्रकार के सहयोगी उपन्यास में घटनाओं का विकास-क्रम स्वाभाविक रखा जा सकता है मगर पात्रों के साथ न्याय नहीं बरता जा सकता। दूसरे परिच्छेद में मन्नू जी के लिखे हुए शब्दों को याद कीजिए, "तुमने ये सब क्यों किया अमला? क्यों मुझे इतने दिनों तक धोखे में रखा? क्यों नहीं मुझे अपना असली परिचय दिया?" ... किस बात की शिकायत है? ये शब्द क्या कहते हैं? आप इन शब्दों को—"अभी तक अविवाहित हूँ इसका मतलब ही है कि नहीं मिला (जीवन साथी)" तो नजर अन्दाज कर सकते हैं मगर पूर्व व्यक्त गहरे मनोद्गारों को नहीं। इन उच्छ्वासों को किसी दूसरे सन्दर्भ में लिया ही नहीं जा सकता!

इस पृष्ठभूमि में यादव जी रंजना को बीच में ले आये। शायद उन्होंने यह सोचा हो कि अमर को अपने वातावरण में लौट चलना ही ठीक होगा। मगर मन्नू जी को यह स्वीकार नहीं हुआ कि अमर को अमला से इस तरह दूर छिटका दिया जाय। 'कला के प्रति कलाकार का उत्तरदायित्व' के प्रश्न को बीच में लाया गया व इसने सारे व्यापार को अस्वाभाविक बना दिया। प्रत्येक पाठक यही सोचेगा कि अमर ने अमला के प्रति अपने आकर्षण व मोह को आदर्शवादिता की आड़ में छिपाया है। बात भी यही थी मगर इसे प्रभावशाली ढंग से उचित अवसर पर व्यक्त करने की आवश्यकता थी। घटनाओं के अब तक के विकास-क्रम को देखते हुए यह तो एक दिन होना ही था। मगर लेखिका ने इसमें बहुत जल्दी की। इस तरह से उन्होंने कथानक को अस्वाभाविक व कमज़ोर ही बनाया है।

'बन्द दरवाज़े और दोहराती दस्तकें' इस कड़ी का सबसे महत्त्वपूर्ण व सशक्त परिच्छेद है। इसमें यादव जी ने अब तक के हवाई कथानक को यथार्थ की भूमि पर उतारने का प्रयत्न किया है व चौथे परिच्छेद में हुई ग़लती को सुधारने

का बीड़ा भी उठाया है। संक्षेप में पूरा परिच्छेद बहुत सजीव व हृदयग्राही बन पड़ा है। छठे परिच्छेद में कथानक एकाएक जटिल हो गया है व उसने नई गुत्थियाँ सामने ला रखी हैं। इसे पढ़ कर पहले के कई एक निष्कर्ष बेकार मालूम होने लगते हैं।

मन्नू जी ने अमला के पति के प्रश्न को बीच में लाकर कथानक को एक चौंका देने वाला मोड़ दिया मगर एक अनोखी समस्या भी पैदा कर दी। (अब वे जानें इस समस्या को कैसे निभाएँगी ?) मेरे ख़याल में तो अमला के जीवन में इस 'अतिरिक्त ट्रेजेडी' को लाने की आवश्यकता न थी। बहरहाल, इससे पाठकों को एक गहरी साँस छोड़ कर यह कहने का अवसर तो मिला कि "हाँ, अब देखिये क्या होता है ?" इससे जहाँ पाठकों का ध्यान मुख्य समस्या से स्थानान्तरित हो गया वहाँ कथानक में एक तब्दीली व नवीनता भी आई। फिर अमला व 'अमला के मन लायक मित्र' (नाम भूल गया हूँ) के सम्बन्धों की निकटता का आभास व उनका टूट जाना सब एकाएक ही हो गया। ये सारे प्रसंग एक ही परिच्छेद में समाप्त हो जाने से पाठकों को 'इन सम्बन्धों' के महत्त्व या इस प्रकार के अन्त पर किसी प्रकार की संवेदना का अनुभव नहीं हो पाता। ऐसा अनुभव होता है कि अमला व 'मन लायक साथी' के हास्यास्पद सम्बन्धों को इतना महत्त्व देना ही उचित न था।

'निर्णय का एक दिन' बहुत महत्त्वपूर्ण रहा। यादव जी ने इसमें कई ज़रूरी प्रश्न उठाये हैं। अमर व अमला के वर्तमान सम्बन्धों का क्या आधार है ? अमर अमला से क्या चाहता है या वे दोनों एक-दूसरे से क्या चाहते हैं ? यादव जी ने अमर-अमला के सम्बन्धों को बड़ा ही उपयुक्त नाम दिया है। दोनों अपने-अपने वातावरण, परिस्थितियों से ऊपर उठना चाहते हैं। लेकिन उसके बाद ? इसका उत्तर तो स्वयं उन दोनों के पास भी नहीं। दोनों एक-दूसरे के प्रति अदम्य मानसिक आकर्षण से बँधे हुए हैं, फिर भी वे एक-दूसरे के पास नहीं आ सकते, एक-दूसरे को पूर्णरूपेण आत्म-समर्पण नहीं कर सकते। यानी वे कुछ न खोकर भी सब कुछ पा लेना चाहते हैं। दोनों अपने-अपने वातावरण से ऊपर उठना चाहते हैं मगर अपने-अपने वातावरण में बने रह कर। यही तो इस स्थिति की असाध्यता है।

लेकिन आज के लेखक से यह पूछा जा सकता है कि आखिर इस भ्रम को गहराई देने की क्या जरूरत है ? क्या इस भ्रम को निर्ममता के साथ तोड़ देना ज़रूरी नहीं ? इसी से यह प्रश्न भी उठता है कि आज लेखक की बौद्धिक-विचार-धारा किस दिशा की ओर जा रही है ? क्या यह नहीं कहा जा सकता कि यह पीछे की ओर लौटना है ? 'थर्टीज़' व उसके बाद के प्रगतिवादियों के प्रयत्नों में कच्चापन, सतहीपन, उथली भावुकता या कोरी बौद्धिकता चाहे जितनी रही हो, मगर यह तो कहा ही जा सकता है कि उसके पीछे एक कड़वी, सच्ची हक़ीकत थी।

टण्डन-अमर के वार्तालाप में यादव जी ने एक बड़ी नाज़ुक व अकथनीय भावना या स्थिति को रूप व आकार दिया। निश्चय ही इसमें यादव जी को अपनी सारी दक्षता खर्च करनी पड़ी होगी (किसी की तारीफ़ करने का आदी नहीं हूँ मगर अच्छी चीज़ की तारीफ़ तो की ही जाती है !)। टण्डन की ज़रा-सी बात पर उद्विग्न हो उठने पर यादव जी ने जो निष्कर्ष

निकाला है वह जितना चौंका देने वाला है उतना ही सत्य भी। टण्डन अपने जीवन की असफलता के अहसास को अपने-आपको मन्दा में विलीन कर भुला देना चाहता है, लेकिन वह जीवन में सफलता मानता किसको है? अजीब उलझन है! आज का शिक्षित व्यक्ति (बौद्धिक न भी कहिए) व्यावहारिक जीवन का लाभ भी चाहता है व आदर्शवाद का मानसिक सन्तोष भी। जीवन में असफलता के अहसास का यही कारण है न? सबूत के तौर पर अमर को ले लीजिए। जो टंडन न पा सका वह पाकर भी अमर असन्तुष्ट है। उसे अपने जीवन की उपलब्धि में पूर्ण विश्वास नहीं। यह स्पष्ट होते हुए भी कि वह रंजना से जो पा सकता है उतना अमला से कभी नहीं पा सकता, वह अमला का मोह नहीं छोड़ सकता। जीवन में जो प्राप्य है, सहज व स्वाभाविक व कल्याणकारी है उसके प्रति विरोध की भावना क्या दिखाती है? यह भी तो पलायन का ही एक रूप है। प्रस्तुत यथार्थ को ठुकरा कर अधिक सुन्दर, अधिक पूर्ण का मोह आज के व्यक्ति को कहाँ ले जाएगा? यह भावना संघर्ष-विमुखता की भावना है। अमर को रंजना के साथ एक कर्मशील व्यक्ति का जीवन बिताना पसन्द नहीं, मगर मानस पटल पर अमला की सन्निकटता के कल्पना-चित्र बनाते-बनाते मानसिक रुग्णता का शिकार बनना स्वीकार है!

एक बात कह दूँ। टण्डन-अमर का वार्तालाप (मतलब है वार्तालाप के आयोजन से) बहुत स्वाभाविक नहीं लगता। ऐसा मालूम होता है कि यादव जी ने कुछ 'प्वाइंट्स' को स्पष्ट करने के लिए ही उसका समावेश किया है।

अमर के निर्माण के लिए यादव जी उत्तरदायी हैं जबकि अमला की रचना का सारा श्रेय मन्नू जी को देना पड़ेगा। अमला का चित्र मेरे मस्तिष्क में अधिक स्पष्ट है, जबकि अमर के रूप में कुछ स्थितियाँ, दृश्य व विचार ही बार-बार उभर कर सामने आते हैं। और क्या लिखूँ? मस्तिष्क में एक बड़ा-सा शून्य उभरता जा रहा है।

—गुलशन लाल सूरी

रेलवे स्टेशन, काठ गोदाम



ज्ञानोदय के ग्राहकों से

'ज्ञानोदय' का अगला अंक विशेषांक होगा और उसकी प्रति प्रत्येक ग्राहक को अण्डर सर्टिफिकेट आफ पोस्टिंग से भेजी जायगी। हमारी पूरी कोशिश रहेगी कि उक्त विशेषांक प्रत्येक ग्राहक को सुरक्षित रूप से मिल जाय। किन्तु जो ग्राहक अधिक सुरक्षा की दृष्टि से विशेषांक रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से मंगाना चाहें वे ५० नये पैसे या उतनी कीमत के डाक-टिकट या पोस्टल आर्डर १५ सितम्बर तक भेज दें। साथ में ग्राहक-संख्या लिखना न भूलें।

—व्यवस्थापक

ज्ञानोदय का आगामी अंक होगा

भारतीय परिवार अङ्क

विस्तृत सूचना आप पिछले अंकों में पढ़ते रहे हैं ; यहाँ शीर्षकों और लेखकों की एक छोटी-सी बानगी प्रस्तुत है :

१. प्रागैतिहासिक चित्रों में भारतीय परिवार : डॉ० जगदीश गुप्त
२. वैदिक परिवार की झाँकी : डॉ० भगवत शरण उपाध्याय
३. परिवार के प्रतीक—हमारे शब्दों का वैभव : डॉ० भोलानाथ तिवारी
४. पाण्डु का परिवार : डॉ० सत्यव्रत सिंहा
५. रामायण युग का परिवार : विष्णु प्रभाकर
६. न स्त्री दुष्यति जारेण : हर्ष नारायण
७. राजपूतों की परिवार-गाथा : मेघराज 'मुकुल'
८. हरम की पृष्ठभूमि में मुगल-परिवार की महिला : सैयद अतहर अब्बास रिजवी
९. मोहिनी-कथा : डॉ० लक्ष्मी नारायण लाल
१०. घर से पागलखाने तक : आनन्द प्रकाश जैन
११. परिवार-नियोजन—एक परिचर्चा : भँवरमल सिंघी
१२. देसी परिवार में विदेशी बहू : इन्दु जैन
१३. स्वर्ग के खण्डहर : विनोद रस्तोगी
१४. भरत नाट्यम : तीन रोजनामचे और एक फैन्टेसी : राजकमल चौधरी
१५. आँचल में है दूध और आँखों में पानी : डॉ० रवीन्द्र भ्रमर

१६. घूमता हुआ कैमरा और गाँव की पारिवारिक तस्वीरें : भगवान सिंह
१७. हम तो बाबुल तेरे पिंजरे की चिड़िया : विष्णुकान्त शास्त्री
१८. बदलती प्रथाएँ : हरिशंकर परसाई
१९. परिवार ही समाज की आधार-शिला है : महावीर अधिकारी
२०. लकीरों का धुआँ : कृष्ण किशोर श्रीवास्तव
२१. परिवार की परिकल्पना--आधुनिक राजनीतिक वादों की दृष्टि में : नरेन्द्र गोयल
२२. धीरे धीरे नच कुड़िये : देवेन्द्र इस्सर
२३. जहाँ आज भी माताएँ राज करती हैं : पद्मा उपाध्याय
२४. भारतीय पारिवारिक जीवन--फिल्मों के परिप्रेक्ष्य में : शशिजंबुभ
२५. भविष्य का परिवार--एक परिकल्पना : भिक्खु

आपने अपनी प्रति सुरक्षित करवाली होगी ! अन्यथा स्थिति को देखते हुए कोई आश्चर्य नहीं, अगर पिछले विशेषांकों की तरह इस बार भी आपको बाद में निराश होना पड़े।

मूल्य २) रु०

हमारे कलकत्ता कार्यालय को लिखकर तत्काल वार्षिक ग्राहक बनने वालों को यह अंक ७७ नये पैसे में प्राप्त हो सकता है। आज ही लिखें :

ज्ञानोदय-कार्यालय

१८-ए, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता-१

प्रमुख वितरक : बेनेट कोलमैन एण्ड कम्पनी, लिमिटेड, बम्बई-१

सर्वतोमुखी विकास के लिए बिहार के प्रयास

कृषि—प्रथम और द्वितीय आयोजनाओं की अवधि में क्रमशः ७.२ लाख और ११ लाख अतिरिक्त खाद्य-उत्पादन की क्षमता बढ़ी। तृतीय आयोजना के लिए लक्ष्यांक ३०.२७ लाख टन है।

उद्योग—सिन्दरी-स्थित सुपरफास्फेट फैक्टरी और रांची-स्थित हाई टेन्शन इन्सुलेटर फैक्टरी का विकास किया जायगा। द्वितीय आयोजना-काल में, विभिन्न औद्योगिक प्रशिक्षण-संस्थानों में ५००० शिल्पी प्रशिक्षित हुए। तृतीय आयोजना में, ऐसे प्रशिक्षण के लिए, ८९४८ अतिरिक्त स्थानों की व्यवस्था होगी।

सिंचाई—प्रथम आयोजना-काल में ५.१३ लाख एकड़ की अतिरिक्त सिंचाई-क्षमता उत्पन्न की गयी। द्वितीय आयोजना-काल में ७.५५ लाख एकड़ की अतिरिक्त सिंचाई-क्षमता का लक्ष्यांक था और तृतीय आयोजना-काल में ३२.५८ लाख एकड़ की अतिरिक्त सिंचाई-क्षमता की सृष्टि लक्ष्यांक है।

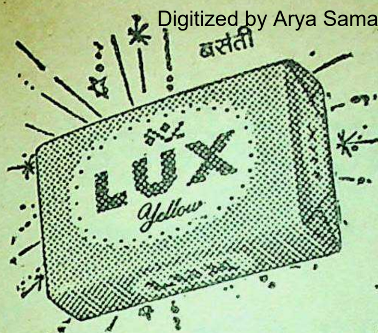
विद्युत—तृतीय आयोजना में विद्युत के विकासार्थ ७९.६५ करोड़ रुपये का व्यय अनुमित है। बिजली की सुविधा से सम्पन्न शहरों और गाँवों की संख्या १९६१ ई० में १९३५ थी और १९६२ ई० में बढ़ कर ३१८५ हो जाने की संभावना है।

शिक्षा—पंचवर्षीय आयोजनाओं के पूर्व बिहार में प्राथमिक और माध्यमिक विद्यालयों में छात्रों की कुल संख्या १५,०४,००० थी। यह संख्या बढ़ कर प्रथम आयोजना के अन्त तक २०,२१,८१४ और द्वितीय आयोजना के अन्त तक ३५,८८,००० थी।

ग्राम-पंचायत—द्वितीय आयोजना के अन्त में बिहार में ११ हज़ार से अधिक ग्राम-पंचायतें हैं। तृतीय आयोजना में पंचायत-सेवकों और अन्य सदस्यों के प्रशिक्षण की सुविधा बढ़ायी जा रही है। रिखिया में एक प्रशिक्षण-संस्थान स्थापित करने की योजना है।

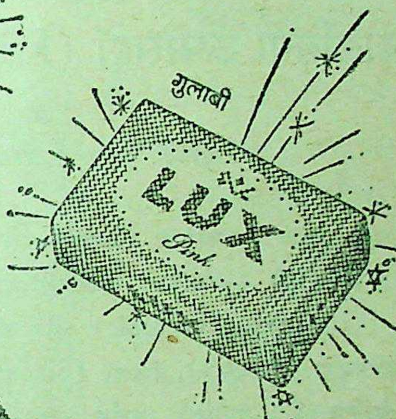
सहयोग—आयोजना-पूर्व अवधि में १४,६०१ प्राथमिक सहयोग समितियाँ थीं और उनकी सदस्य-संख्या ६,३५,८९८ थी। ये संख्याएँ बढ़ कर प्रथम आयोजना के अन्त तक क्रमशः २२,२११ और ६,२७,०६१ तथा द्वितीय आयोजना के अन्त तक क्रमशः २६,३६२ और १३,०८,०६३ तक पहुँच गयीं।

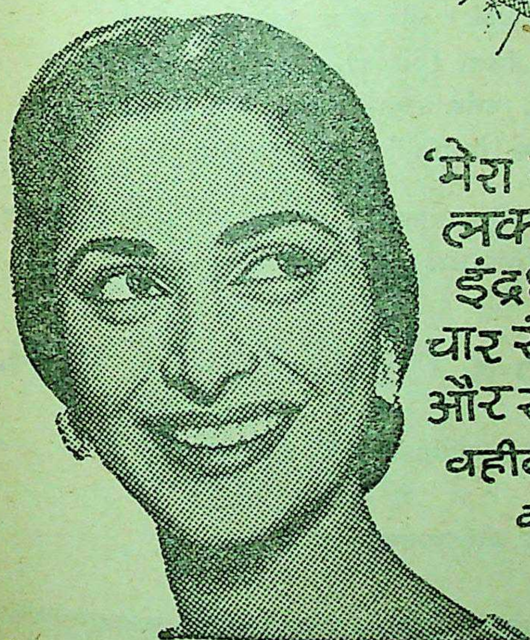
—ज० स० वि०


बसंती
LUX
Yellow


हरा
LUX
Green

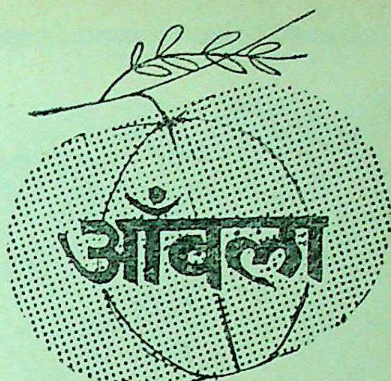

नीला
LUX
Blue


गुलाबी
LUX
Pink



मनोहर सुगन्ध केश हितकारी

डाबर



केश तैल



केश तेल पसन्द करते वक्त चार बातें ध्यान रखें: सुगन्ध स्निग्धता हितकारिता पोषक तत्त्व



केश-तैलों में आँवले के प्रयोग से केश काले, घने सुदीर्घ और स्निग्ध होते हैं।



डाबर आँवला केश तैल अपनी उत्तमता के लिए सर्वथा वरणीय और स्मरणीय है।



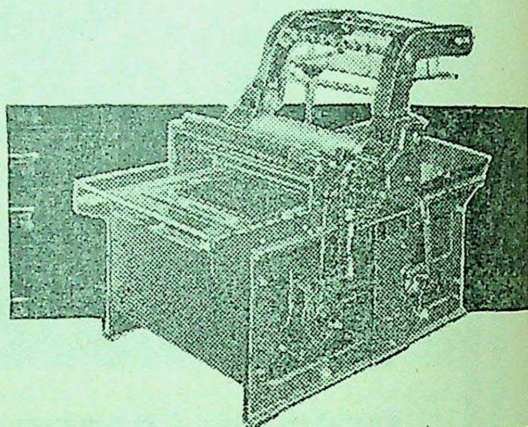
डाबर

(डा० एस० के० बर्म्मन) प्राइवेट लिमिटेड • कलकत्ता—२६

बड़े काम के उपयुक्त

ब्रिटानिया — डी. पी. ई. 'जाबर' इंगलैण्ड के डावसन, पाइन ऐण्ड इलियट लिमिटेड के सहयोग से भारत में पहले पहल तैयार की गई है जिसका निर्माण कम खर्च, अधिक दक्षता तथा मेन्टेनेन्स की सहूलियत पर विशेष ध्यान रखकर किया गया है।

नई लेटरप्रेस प्रिंटिंग मशीन



यह मशीन एक सरल लगातार चलनेवाली मोटर से चलती है जिसमें चाल को कम या अधिक करने के लिये तीन तुरन्त बदलने लायक पुलियाँ लगी हैं। चलाने की जगह एक ही लिवर है जिससे स्टार्टिंग, इंचिंग और ब्रेकिंग के काम होते हैं। कागज की डेलीवरी चेन ग्रिपर से होती है जिससे छपा हुआ पहलू काम के समय अछूता रहता है।

स्पेसीफिकेशन

कागज की साइजें

स्टैण्डर्ड	: २०"×३०"	(५०८ मिमि.×७६२ मिमि.)
अधिक	: २०"×३३"	(५०८ मिमि.×८३८ मिमि.)
कम	: १०"×१५"	(२५४ मिमि.×३८१ मिमि.)
टाइप-बेड बीयररों के बीच की चौड़ाई	: ३४ १/२"	(८७६ मिमि.)
फार्म धारों के बीच की दूरी	: २६"	(६६० मिमि)
कुल लम्बाई	: ७'११"	(२४१३ मिमि)
कुल चौड़ाई	: ५'५"	(१६५१ मिमि)
कुल ऊँचाई	: ५'८"	(१७२७ मिमि.)

दि ब्रिटानिया-डी० पी० ई० जाबर



दि ब्रिटानिया इंजिनीयरिंग कम्पनी लिमिटेड

मैनेजिंग एजेन्टस : मैकलाउड ऐण्ड कं० लि०, ३, नेताजी सुभाष रोड, कलकत्ता-१

सोल सेलिंग एजेन्टस : इण्डो यूरोपियन मशीनरी कं० प्राइवेट लि०

सर पी एम रोड, बम्बई ५, बैंटिक स्ट्रीट, कलकत्ता चाँदनी चौक, दिल्ली ६, माउन्ट रोड, मद्रास

PSBE-15A

भारतीय ज्ञानपीठ के नये प्रकाशन

हिन्दी नवलेखन ४)
रामस्वरूप चतुर्वेदी
हिन्दी में अपने विषय की सर्वथा पहली पुस्तक।

सूने आँगन रस बरसै ३)
लक्ष्मीनारायण लाल
लेखक की चुनी हुई कहानियों का संग्रह जो आपको रस-विभोर कर देगा।

रूपाम्बरा १२)
सम्पादक : अज्ञेय
पिछले सौ वर्षों में प्रसूत हिन्दी के प्रकृति-काव्य का प्रतिनिधि संकलन।

तीसरा सप्तक ५)
सम्पादक : अज्ञेय
तार सप्तक और दूसरा सप्तक की परम्परा में अज्ञेय द्वारा सम्पादित नया कविता संकलन।

कनुप्रिया ३)
धर्मवीर भारती
अत्यन्त मधुर और भावपूर्ण काव्य-रूपक। भारती की प्रतिभा का नवीनतम चमत्कार।

सात गीत वर्ष ३)
धर्मवीर भारती
नवीन कविताओं का दमकता हुआ, महकता हुआ संकलन।

काग़ज़ की किश्तियाँ २॥)
लक्ष्मीचन्द्र जैन
प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य के अनेक पक्षों तथा आधुनिक जीवन की रंग-बिरंगी विविधताओं का मोहक शैली में चित्रण।

देशान्तर १२)
धर्मवीर भारती
इक्कीस पाश्चात्य देशों की आधुनिक कविताओं का अनूठा काव्य-संग्रह।

ग्यारह सपनों का देश ४)
सम्पादक : लक्ष्मीचन्द्र जैन
'ज्ञानोदय' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हिन्दी का बहु-चर्चित सहयोगी उपन्यास।

अरी ओ करुणा प्रभामय ४)
अज्ञेय
१९५६ से १९५८ तक की कविताओं का भव्य संकलन।

दीप जले शंख बजे ३)
कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर
लघुता के अणु में महत्ता के विराट का प्रदर्शन करनेवाले प्रकाश तथा जागरण से पूर्ण पच्चीस संस्मरण।

गुनाहों का देवता ५)
धर्मवीर भारती
मध्यमवर्गीय जीवन की अत्यंत मार्मिक कथा। भारती की लोकप्रिय रचना।

पत्थर का लैम्प-पोस्ट ३)
शरद देवड़ा
लेखक की चुनी हुई बारह गद्य-रचनाएँ, बारह राजस्थानी विरह चित्र और बारह लम्बी कविताएँ।

आवाज़ तेरी है ३)

राजेन्द्र यादव

दुरूहता एवं अस्पष्टता से सर्वथा मुक्त और निर्भ्रान्त सामाजिक चेतना का निर्भीक वक्तव्य ।

ज्ञानगंगा (भाग २) ६)

नारायण प्रसाद जैन

विश्व की अनेक भाषाओं से महत्वपूर्ण सूक्तियों का संग्रह ।

वाणी ४)

सुमित्रा नन्दन पन्त

वाणी में पन्तजी के कवि का व्यक्तित्व अधिक प्रौढ़, परिणत तथा हृदयस्पर्शी होकर निखरा है ।

सौवर्ण २॥)

सुमित्रा नन्दन पन्त

मानव जाति के विगत सांस्कृतिक संचय का, जिसमें विकास अपेक्षित है, प्रतीकात्मक रूप से दिग्दर्शन ।

लेखनी बेला ३)

वीरेन्द्र मिश्र

गीतों का संकलन, जिनमें विभिन्न जीवनानुभूतियाँ और गहरी संवेदनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं ।

शाइरी के नये दौर [भाग १]

शाइरे-इन्क़िलाब 'जोश' मलीहाबादी की आत्म-विभोर कर देनेवाली नज्में और रूबाइयात, जोश का परिचय एवं उनकी शाइरी पर विवेचन ।

[भाग २]

वर्तमानयुगीन शाइर आनन्दनारायण मुल्ला, रघुपति सहाय फ़िराक़, विश्वेश्वर प्रसाद 'मुनव्वर', गोपीनाथ अम्न, हरीश्चन्द्र अख़्तर, हफ़ीज़ जालंधरी का जीवन-परिचय एवं चुने हुए कलाम ।

[भाग ३]

सागर निज़ामी के सर्वप्रिय कलाम तथा परिचय ।

[भाग ४]

अख़्तर शीरानी, अबुल हमीद अदम तथा अहसान दानिश के कलाम तथा परिचय ।

प्रत्येक भाग का मूल्य तीन रुपये

शाइरी के नये मोड़ [भाग १]

१९४६ से मार्च १९५८ तक की नवीन शाइरी की गतिविधि का अध्ययन।

पृष्ठ २७२ मूल्य ३.००

[भाग २]

१९३५ से १९५८ तक की शाइरी पर एक नज़र तथा चुने हुए शाइर अर्श मलसियानी, जगन्नाथ आजाद, गोपाल मित्तल, अहमद नदीम कासिमी, अख़्तर अन्सारी, रईस अमरोहवी के फड़कते हुए कलाम तथा जीवन-परिचय ।

सचित्र मूल्य ३.००

बना रहे बनारस

विश्वनाथ मुखर्जी

बनारस के गौरवमय सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और धार्मिक जीवन की जानकारी देने वाला अधिकारी ग्रन्थ।

पृष्ठ १८८ मूल्य २.५०

पार उतरि कहँ जइहौ

(यात्रा संस्मरण)

प्रभाकर द्विवेदी

इस पुस्तक का प्रकाशन हिन्दी के यात्रा-साहित्य में एक नये क्षितिज का उद्घाटन है ।

मूल्य ३.००

शतरंज के मोहरे ६)

अमृतलाल नागर

सवा डेढ़ सौ वर्ष पहले की अवध की नवाबी और ईस्ट इंडिया कम्पनी की नीति में उत्पन्न गदर की पृष्ठभूमि पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास।

कालिदास के सुभाषित ५)

भगवतशरण उपाध्याय

भारतीय भाषाओं में महाकवि कालिदास की सूक्तियों की विशेष व्याख्या करने वाली पहली पुस्तक।

कहानी कैसे बनी २॥)

कर्तारसिंह दुग्गल

रेडियो के मँजे हुए रूपक-लेखक श्री दुग्गल के आठ एकांकी नाटकों का संग्रह।

अंगद का पाँव २॥)

श्रीलाल शुक्ल

हिन्दी में शिष्ट और उच्चस्तर के व्यंग्यात्मक निबन्धों के ख्यातिप्राप्त लेखक श्रीलाल शुक्ल के निबन्धों का प्रथम संग्रह।

मुर्ग छाप हीरो २)

केशवचन्द्र वर्मा

हास्यरस की कहानियों एवं लेखों का अनुपम संग्रह।

शह और मात ४)

राजेन्द्र यादव

नये लेखकों में जीवन के सत्य और दर्शन को समझने का सर्वाधिक निष्ठावान प्रयत्न राजेन्द्र यादव ने किया है। यह उनका चौथा उपन्यास है।

काठ की घंटियाँ ७)

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

अज्ञेय द्वारा सम्पादित इस ग्रन्थ में बीस कहानियाँ, इकहत्तर कविताएँ तथा एक लघु उपन्यास संग्रहीत है।

जनम क़ैद २॥)

गिरिजाकुमार माथुर

सफल और अभिनय योग्य सात एकांकियों का अमूल्य संग्रह।

वृन्त और विकास २॥)

शान्तिप्रिय द्विवेदी

वृन्त और विकास की लेखनशैली और विचारधारा पूर्णतः रचनात्मक है। राजनीति, समाज, साहित्य, संस्कृति, जीवन की सभी दिशाओं के छोटे-बड़े कृतियों के प्रयत्नों का इसमें सर्वेक्षण और संयोजन किया गया है।

मीर ६)

रामनाथ सुमन

श्रीवृन्दावन लाल वर्मा के शब्दों में "प्रस्तुत पुस्तक विद्वत्तापूर्ण और साथ ही मनोरंजक, बहुत मनोरंजक भी है। न केवल मीर की मीरता निखर गयी है, वरन् उस युग का समूचा चित्र ही आँखों के सामने आ जाता है।"

सीढ़ियों पर धूप में ५)

रघुवीर सहाय

रघुवीर सहाय आपके जाने-माने लेखक हैं। प्रस्तुत संग्रह में अज्ञेय द्वारा सम्पादित लेखक की प्रतिनिधि कविताएँ, निबन्ध और कहानियाँ संकलित हैं।

ठूँठा आम २)

भगवतशरण उपाध्याय

भावपूर्ण रचनाएँ।

सुन्दर रस १॥)

सूखा सरोवर २)

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के दो नाटक

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल एक बड़े ही जागरूक नाटककार हैं, जिनके नाट्य-लेखन के पीछे रंगमंच की व्यावहारिक अनुभूति उनकी नाटचकलागत धर्मिताओं को अदम्य बल देती है, ये दोनों नाटक इस सत्य के सफलतम उदाहरण हैं।

कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी ३॥)

भगवतशरण उपाध्याय

जिस अनुभूति, भाव और भाषा की यहाँ एकत्र परिणति हुई है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

भूमिजा १॥)

सर्वदानन्द

दो अंकों के इस नाटक को दो सारगर्भ दृश्यों में प्रस्तुत किया गया है।

अनुक्षण ३)

प्रभाकर माचवे

१९३३ से १९५८ के बीच लिखी हजारों पंक्तियों से यह संकलन तैयार किया गया है।

मानव मूल्य और साहित्य २॥)

धर्मवीर भारती

प्रस्तुत पुस्तक में तीन खण्ड हैं। पहले में मानवीय तत्त्व का विघटन, दूसरे में नयी मर्यादाओं का उदय और तीसरे में विविध सन्दर्भों में नये मूल्यों का दिग्दर्शन प्रस्तुत किया गया है।

सांस्कृतिक निबन्ध ३)

भगवतशरण उपाध्याय

अव्यस्त क्षणों में ये निबन्ध पाठ[illegible] के व्यापक ज्ञान और मनोरंजन [illegible] साधन होंगे।

सागर की लहरों पर ४)

भगवतशरण उपाध्याय

डॉ० उपाध्याय द्वारा विदेश या[illegible] का सरस मनोहर वर्णन।

एक परछाईं : दो दायरे ३)

गुलाबदास ब्रोकर

ब्रोकरजी की सुन्दरतम पन्द्रह कहानियों का पहला हिन्दी अनुवाद।

माखनलाल चतुर्वेदी-जीवनी ६)

बच्चा

प्रस्तुत कृति श्री माखनलाल चतुर्वे[illegible] के शैशव व कैशोर काल की जीवनी प्रस्तुत करती है।

आत्मनेपद ४)

'अज्ञेय'

समकालीन साहित्यकार की स्थिति, समस्याओं और सम्भावनाओं पर विशेष रूप से विचार।

राजसी २॥)

देवेशदास आई० सी० एस०

मरुभूमि राजस्थान की पृष्ठभूमि पर ऐतिहासिक उपन्यास।

ग़ालिब ८)

ले० रामनाथ 'सुमन'

'सुमन' जी ने प्रस्तुत ग्रन्थ में इस महाकवि की रहस्य में छुपी ऊँचाइयों को अपनी परख प्रतिभा से पूरी तौर पर अफ़शाँ कर दिया है।

कहानियाँ

गहरे पानी पैठ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२।।)
जिन खोजा तिन पाइयाँ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२।।)
नये बादल	मोहन राकेश	२।।)
आकाश के तारे धरती के फूल	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	२)
खेल खिलौने	राजेन्द्र यादव	२)
अतीत के कम्पन	आनन्दप्रकाश जैन	३)
काल के पंख	आनन्दप्रकाश जैन	३)
जय दोल	अज्ञेय	३)
नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३)
मेरे कथागुरु का कहना है	रावी	३)
हरियाणा लोकमंच की कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	३)
अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२।।)
कर्मनाशा की हार	डॉ० शिव प्रसाद सिंह	३)

उपन्यास

मुक्तिदूत	वीरेन्द्रकुमार एम० ए०	५)
तीसरा नेत्र	आनन्दप्रकाश जैन	२।।)
रक्तराग	देवेशदास आई० सी० एस०	३)

इतिहास

हिंदी-जैन-साहित्य-परिशीलन (भाग १-२)	नेमिचन्द्र शास्त्री	५)

एकांकी : नाटक

रेडियो नाट्य शिल्प	सिद्धनाथ कुमार	२।।)
तरकश के तीर	श्रीकृष्ण	३)
चेखव के तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४)
बारह एकांकी	विष्णु प्रभाकर	३।।)

संस्मरण

जैन जागरण के अग्रदूत	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

राजनीति

एशिया की राजनीति	परदेशी	६)

ललित निबन्ध : आलोचनाएँ

जिन्दगी मुस्करायी	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४)
गरीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	१)
हिन्दू विवाह में कन्यादान का स्थान	सम्पूर्णानन्द	१)

दर्शन

भारतीय विचारधारा	मधुकर एम० ए०	२)

ललित-निबन्ध, आलोचनादि

बाजे पायलिया के घुंघरू	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४)
माटी हो गयी सोना	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	२)
शरत् के नारी पात्र	रामस्वरूप चतुर्वेदी	४।।)
क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	रावी	२।।)
संस्कृत साहित्य में आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३)
वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	२।।)

ज्योतिष

भारतीय ज्योतिष	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)

आध्यात्मिक

वैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	६)

भाषा विज्ञान

संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन	भोलाशंकर व्यास	५)

पत्र-संकलन

द्विवेदी पत्रावली	बैजनाथ सिंह विनोद	२।।)

संगीत, प्रसाधन

ध्वनि और संगीत	ललित किशोर सिंह	४)
प्राचीन भारत के प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३।।)

अन्य सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

कविताएँ

मेरे बापू	हुकुमचन्द्र बुखारिया	२।।)
पंच प्रदीप	शान्ति एम० ए०	२)

सूक्तियां

ज्ञानगंगा (भाग १)	नारायणप्रसाद जैन	६)
शरत की सूक्तियां	रामप्रकाश जैन	२)

उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

उर्दू शायरी

१—शेरो शाइरी	अयोध्या प्रसाद गोयलीय	८)
२—शेरो सुखन (पाँच भाग)	अयोध्या प्रसाद गोयलीय	२०)

कविता

वर्द्धमान (महाकाव्य)	अनूप शर्मा	६)
मिलन-यामिनी	बच्चन	४)
धूप के धान	गिरिजा कुमार माथुर	३)

कहानियाँ

कुछ मोती कुछ सीप	अयोध्या प्रसाद गोयलीय	२॥)
संघर्ष के बाद	विष्णु प्रभाकर	३)
पहला कहानीकार	रावी	२॥)
मोतियों वाले	कर्तारसिंह दुग्गल	२॥)

उपन्यास

संस्कारों की राह	राधा कृष्ण प्रसाद	२॥)
शतरंज के मोहरे	अमृतलाल नागर	६)

इतिहास

खण्डहरों का वैभव	मुनि कान्ति सागर	६)
खोज की पगडंडियाँ	मुनि कान्ति सागर	४)
चौलुक्य कुमारपाल	लक्ष्मीशंकर व्यास	४)
कालिदास का भारत (भाग १–२)	डॉ० भगवत शरण उपाध्याय	८)

एकांकी : नाटक

जनम क़ैद	गिरिजा कुमार माथुर	२॥)
पचपन का फेर	विमला लूथरा	३)
रजत रश्मि	डॉ० रामकुमार वर्मा	२॥)
और खाई बढ़ती गयी	भारतभूषण अग्रवाल	२॥)

संस्मरण : रेखाचित्र

हमारे आराध्य	बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
संस्मरण	बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
रेखाचित्र	बनारसीदास चतुर्वेदी	४)

सांस्कृतिक प्रकाशन

१ जैन-शासन (जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन प्रस्तुत करनेवाली पुस्तक) ३)
२ कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न (आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथों का संक्षिप्त सार) २)
३ धर्मशर्माभ्युदय (पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का चरित) ३)
४ आधुनिक जैन कवि (वर्तमान जैन कवियों का परिचय एवं संकलन) ३॥)
५ हिन्दी-जैन-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास २॥।=)
६ महाबन्ध —भाग १,२,३,४,५,६,७ (कर्म सिद्धान्त का महान ग्रंथ) ७८)
७ सर्वार्थसिद्धि (विस्तृत प्रस्तावना और हिन्दी अनुवाद सहित) १३)
८ तत्त्वार्थराजवार्तिक —भाग १, २, (संशोधित और हिन्दी-सार सहित) २४)
९ तत्त्वार्थ वृत्ति (हिन्दी सार और विस्तृत प्रस्तावना सहित) १५)
१० समय-सार —अंग्रेजी (आध्यात्मिक ग्रंथ) ८)
११ मदन पराजय (जिनदेव द्वारा काम-पराजय का सुन्दर सरस रूपक) ८)
१२ न्यायविनिश्चय विवरण —भाग १, २ (जैन दर्शन) ३०)
१३ आदिपुराण —भाग १, २ (भगवान् ऋषभदेव का पुण्य चरित) १०)
१४ उत्तरपुराण (तेईस तीर्थंकरों का चरित) १०)
१५ वसुनन्दि-श्रावकाचार (श्रावकाचारों का संग्रह : हिन्दी अनुवाद सहित) ५)
१६ जिनसहस्र नाम (भगवान् के १००८ नामों का अर्थ : हिन्दी अनुवाद सहित) ४)
१७ केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि (ज्योतिष ग्रन्थ) ४)
१८ करलक्खण (सामुद्रिक शास्त्र) हस्तरेखा विज्ञान का अपूर्व प्राचीन ग्रंथ ॥)
१९ नाममाला सभाष्य (कोश) ३॥)
२० सभाष्य रत्न-मंजूषा (छन्दशास्त्र) २)
२१ कन्नड़ प्रांतीय ताड़पत्रीय ग्रन्थ-सूची १३)
२२ पुराणसार संग्रह —भाग १, २ (छह तीर्थंकरों का जीवन-चरित्र) ४)
२३ जातकट्ठ कथा (बौद्धकथा-साहित्य) ६)
२४ थिरुकुरल (अंग्रेजी प्रस्तावना सहित तामिल भाषा का पंचम वेद) ५)
२५ व्रततिथि-निर्णय (सैकड़ों व्रतों के विधि-विधानों एवं उनकी तिथि निर्णय का विवेचन) ३)
२६ जैनेन्द्र महावृत्ति (व्याकरण शास्त्र का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ) १५)
२७ मंगल-मंत्र णमोकार : एक अनुचिन्तन २)
२८ पद्मपुराण (भाग १-२-३) १०)
२९ जीवंधर चम्पू (संस्कृत हिन्दी टीका सहित) ८)
३० जैन धर्मामृत ३)

भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

GYANODAY, September, 196
Price Annual Rs. 10|- per copy Re. 1|- for abroad postage extra 18 nP. per copy

Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. C. 4123

Published by Shri Munishwarlal for Bharatiya Jnanpith Calcutta from 18-A, Brabourne Road, Calcutta 1 and Printed by him at Binani Printers Private Ltd., 38, Strand Road, Calcutta 1.





ज्ञानोदय

अक्तूबर '६१; मूल्य १)





"विश्वासपूर्वक —

मैं जो अच्छा भोजन पकाती हूँ
उसका रहस्य पाक-माध्यम है।
मेरा सारा परिवार भोजन का
आनन्द उपभोग करता है और
मैं उनके स्वास्थ्य एवं
प्रसन्नता के लिये
गौरव-बोध करती हूँ।"



हनुमान

वनस्पति

विटामिन 'ए' और 'डी' से सद्

स्वास्थ्यप्रद ढंग से भरे गये १ किलो
२ किलोग्राम और ४ किलोग्राम के
सुविधाजनक टिनों में प्राप्य

332

रोहतास इन्डस्ट्रीज लिमिटेड
डालमियानगर, बिहार

SAHU JAIN INDUSTRIES

यदि आप अपने ४ किलोग्राम टिनों में भाग्य से एक कूपन पा जाँय तो उसके बदले में एक अपूर्व उपहार ले लें

अनुक्रम



१. रवीन्द्र-अर्चना : मूल्य-प्राप्ति	रवीन्द्रनाथ ठाकुर २
२. विकास के तीन पहलू	डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री ६
३. शकुन्तला के यात्रा-पथ	डॉ० रमेश कुन्तल मेघ १२
४. ये घाटियाँ : ये गूंजें—५	प्रेमलता वर्मा १७
५. जब नींद नहीं आती	सत्यदेव नारायण सिन्हा २९
६. चार पंजाबी कविताएँ	राजकमल चौधरी ३५
७. ये नयी-नयी योजनाएँ	पन्नालाल पटेल ४१
८. विटामिन की खोज	हर्षनाथ ४७
९. कहीं कुछ खो गया है	दूधनाथ सिंह ५०
१०. बहनें दो : अनुभव एक	हृदयेश ५२
११. बातें, जिनमें सुगंध फूलों की—१०	अहमद सलीम ५९
१२. दो कविताएँ	ममता अग्रवाल ६४
१३. झील डल की एक शाम	वेद राही ६५
१४. दिनों का नामकरण	कन्हैयालाल ओझा ६९
१५. नवलेखन—२	रामस्वरूप चतुर्वेदी ७५
१६. मृत्यु-कथा	उदयशंकर भट्ट ८३
१७. एक इञ्च मुस्कान—६	राजेन्द्र यादव ८५
१८. नये क्षितिज	डॉ० प्रभाकर माचवे १०७
१९. साहित्यार्चन	राजकमल, सुकीर्ति, सुरेश ११०
२०. सृष्टि और दृष्टि	दूधनाथ, डॉ० भटनागर ११७

सम्पादक

लक्ष्मीचन्द्र जैन

शरद देवड़ा

संचालक

भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता

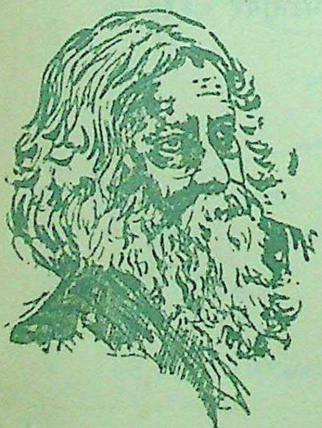
कार्यालय

१८ए, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता-१

Sole Selling Agents : Bennett, Coleman & Co., Ltd., Bombay-1.

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

अघ्राने शीतेर राते निष्ठुर शिशिरघाते
पद्मगुलि गियाछे मरिया ;
सुदास मालीर घरे काननेर सरोवरे
एकटि फुटेछे की करिया ।
तुलि' लये, बेचिबारे गेल से प्रासाद-द्वारे
मागिल राजार दरशन,—
हेन काले हेरि फुल आनन्दे पुलकाकुल
पथिक कहिल एकजन :—
"अकालेर पद्म तव आमि एटि किनि लब,
कत मूल्य लइबे इहार ।
बुद्ध भगवान् आज एसेछेन पुरमाझ
ताँर पाये दिब उपहार ।"
माली कहे, "एक माषा स्वर्ण पाव मने आशा"—
पथिक चाहिल ताहा दिते,—
हेनकाले समारोहे बहु पूजा अर्घ्य ब'हे
नृपति बाहिरे आचम्बिते ।
राजेन्द्र प्रसेनजित् उच्चारि मङ्गल गीत
चलेछेन बुद्ध दरशने—
हेरि' अकालेर फुल— शुधालेन "कत मूल ।
किनि दिब प्रभुर चरणे ।"



रवीन्द्र - अर्चना

अनु० यथागत

अगहन की ठंडी रात में, शिशिर ऋतु के निष्ठुर आघात के कारण
सारे कमल-पुष्प मर गए थे ।
सुदास माली के वन-स्थित घर में, उसके तालाब में
न मालूम कैसे एक कमल उग आया ।
उसे तोड़, बेचने के लिए, राजमहल के द्वार पर वह गया
राजा के दर्शनों की प्रार्थना की--
तभी उसके फूल को देख कर, आनन्द से पुलकित होकर
एक पथिक बोला--
"तुम्हारा यह बिना-मौसम का कमल ! मैं इसे खरीद लेता हूँ
कितना मूल्य लोगे इसका ?
आज बुद्ध भगवान नगर में पधारे हैं
उनके चरणों में मैं यह उपहार दूँगा ।''
माली ने कहा, ''एक माषा स्वर्ण पाने की आशा मेरे मन में है''
पथिक वही देने के लिए राजी हो गया
उसी समय, समारोह के साथ, विपुल पूजा का अर्घ्य उठाये हुए
राजा अकस्मात बाहर आ निकले
राजेन्द्र प्रसेनजित् मंगलगान उच्चारण करते हुए
बुद्ध भगवान के दर्शनों के लिए चले थे--
असमय का फूल देख कर, उन्होंने पूछा, ''कितना मूल्य है ?
इसे खरीदकर मैं भगवान के चरणों में अर्पित करूँगा''

मूल्य - प्राप्ति

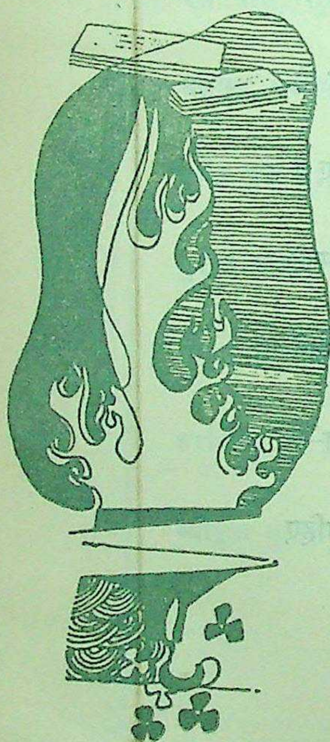
माली कहे "हे राजन् स्वर्ण माषा दिये पण
किनेछेन एइ महाशय।"
"दश माषा दिब आमि"— कहिला धरणी-स्वामी
"बिश माषा दिब"—पान्थ कय।
दोंहे कहे "देह देह" हार नाहि माने केह,
मूल्य बेड़े ओठे क्रमागत।
माली भावे याँर तरे ए दोंहे विवाद करे
ताँरे दिले आरो पाब कत।
कहिल से करजोड़े, "दया क'रे क्षमो मोरे—
ए फुल बेचिते नाहि मन।"
एत बलि' छुटिल से येथा रयेछेन बसे
बुद्धदेव उजलि' कानन।
बसेछेन पद्मासने प्रसन्न प्रशान्त मने,
निरञ्जन आनन्द मुरति।
दृष्टि हते शान्ति झरे, स्फुरिछे अधर 'परे
करुणार सुधाहास्य-ज्योति।
सुदास रहिल चाहि, नयने निमेष नाहि,
मुखे तार वाक्य नाहि सरे।
सहसा भूतले पड़ि, पद्मटि राखिल धरि'
प्रभुर चरणपद्म 'परे।
बरषि अमृतराशि बुद्ध शुधालेन हासि'
"कह वत्स, की तव प्रार्थना।"
व्याकुल सुदास कहे "प्रभु आर किछु नहे,
चरणेर धूलि एक कणा।"

माली ने कहा, हे राजन्, एक माषा स्वर्ण-मुद्रा का सौदा करके
इन महाशय ने खरीदा है।"
"मैं दस माषा दूंगा"— पृथ्वी के स्वामी ने कहा
"बीस माषा (सोना) दूंगा"—पथिक बोला।
दोनों ही कहने लगे—"देखो, देखो", कोई भी हार नहीं मानता था,
क्रम-क्रम से मूल्य बढ़ उठा।
माली सोचने लगा, "जिसको लेकर ये दोनों विवाद कर रहे हैं
उसी को देने का ऐसा अवसर मुझे और कब मिलेगा?"
वह हाथ जोड़ कर बोला— "दया करके मुझे क्षमा कर दें—
इस फूल को बेचने का मेरा मन नहीं है।"
यह कह कर सीधा पहुँचा वह वहाँ, जहाँ भगवान बुद्ध बैठे थे,
समुज्ज्वल कानन में—
पद्मासन लगाये बैठे हुए थे, प्रसन्न शान्त मन से
निरञ्जन आनन्द-मूर्त्ति!
उनकी दृष्टि से शान्ति प्रवाहित हो रही थी, अधरपट खिले हुए थे
करुणा की अमृतभरी मुस्कान की ज्योति से।
सुदास देखता ही रह गया, आँखों की पलक नहीं झपकी
उसके मुख से वाक्य ही नहीं निकला।
सहसा पृथ्वी पर लेट कर, दंडवत् करके, कमल रख दिया उसने
प्रभु के पादपद्म में।
अमृतराशि की वर्षा की तरह, बुद्ध भगवान ने सस्मित पूछा—
"कहो वत्स, तुम्हारी क्या प्रार्थना है?"
भावना से अभिभूत होकर सुदास बोला— "प्रभु, मुझे कुछ नहीं चाहिए
आपकी चरण-रज का केवल एक कण।"

डॉ० इन्द्रचन्द्र शास्त्री

विश्व की आध्यात्मिक परम्पराएँ ईश्वर को दो रूपों में उपस्थित करती हैं। १--विश्व के आदिकारण के रूप में तथा २--विकास की पूर्णता के रूप में। प्रथम रूप की मीमांसा तत्व-विद्या या दर्शन-शास्त्र करता है और दूसरे रूप की साधना या योग-शास्त्र। प्रस्तुत लेख में दूसरे रूप की चर्चा की जायेगी।

योग-शास्त्र में ईश्वर का स्वरूप बताते हुए कहा है कि वह ऐसा पुरुष है जिसे क्लेश, कर्म, विपाक तथा आशय नहीं छूते[1]। जो इन चारों से असंसृष्ट है, सर्वथा शुद्ध है। क्लेश पाँच हैं--अविद्या, अस्मिता अर्थात् अहंकार, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश अर्थात् मिथ्या आग्रह। कर्म तीन प्रकार के माने गये हैं--शुभ, अशुभ तथा मिश्रित। कर्मों का अपना फल देने की ओर उन्मुख होना विपाक है और जब तक वे वासना रूप में पड़े रहते हैं फलदान की ओर उन्मुख नहीं होते तब तक सुप्त कर्म या आशय कहे जाते हैं। इसका अर्थ है ईश्वर उस स्थिति का नाम है जहाँ दोष या उनके प्रभाव का सर्वथा अभाव है। जो विकास की चरम सीमा है। जो साधकों का लक्ष्य है। जिसे प्राप्त करना विश्व की समस्त साधना-पद्धतियों का सार है।



यदि मानवता के विकास का विश्लेषण एवं वर्गीकरण किया जाय तो तीन धाराएँ सामने आती हैं। वे हैं--ज्ञान, शक्ति और ऐश्वर्य। विश्व के सभी महत्त्वाकांक्षी इन तीनों में से किसी एक को अपना प्रधान लक्ष्य बनाकर आगे बढ़ने का प्रयत्न करते हैं। वे उन्नति की परिभाषा भी

१. क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः।
—योगदर्शन

विकास के तीन पहलू

उसी लक्ष्य को सामने रख कर करते हैं। बुद्धिवादी वर्ग ज्ञान को महत्त्व देता है और सत्य की जिज्ञासा में विश्व के सभी वरदानों को त्यागने के लिए उद्यत रहता है। उसके लिए सत्य का ज्ञान ही सत्य की प्राप्ति है। वहीं मुक्ति है, वहीं साधना की पराकाष्ठा। उसके लिए अविद्या या अज्ञान ही बन्धन है।

दूसरा वर्ग उन लोगों का है जो शक्ति को मुख्यता देते हैं। शक्ति का अर्थ है स्वयं सामर्थ्य अर्थात् परावलम्बन का अभाव। व्यक्ति अपने अस्तित्व, सुख एवं अन्य अनुभूतियों के लिए जितना परतन्त्र है उतना ही निर्बल है। सबलता की पराकाष्ठा वहाँ है जहाँ किसी बात के लिए दूसरे पर निर्भर नहीं रहना पड़ता। शरीर आत्मा से भिन्न है। यदि आत्मा अपने अस्तित्व के लिए, अपने सुख-दुःखादि की अनुभूतियों के लिए शरीर पर आश्रित है तो यह भी दुर्बलता है। शरीर से आगे बढ़ कर कुटुम्ब, परिवार, समाज आदि तत्वों पर ज्यों-ज्यों निर्भरता बढ़ती जाती है उतनी ही निर्बलता में भी वृद्धि होती जाती है। निर्भरता का आश्रय जितना दूर है उतना ही अधिक परावलम्बन है और उतनी ही अधिक दुर्बलता। इस परम्परा में मुक्ति का अर्थ है पराधीनता से छुटकारा। पराधीनता के मुख्य कारण हैं—अस्मिता अर्थात् अहंकार एवं राग और द्वेष। अस्मिता का अर्थ है दूसरे की अपेक्षा अपने को उत्कृष्ट समझने तथा प्रकट करने की भावना। यदि दूसरा अपने आप को हमसे छोटा नहीं समझता, अथवा हमको अपनी श्रेष्ठता नहीं प्रकट करने देता तो अस्मिता को ठेस पहुँचती है। अतः अस्मिता की रक्षा दूसरे से समझौता किये बिना अथवा उस पर निर्भर हुए बिना नहीं हो सकती। राग और द्वेष भी इसी प्रकार परापेक्ष हैं। उनसे अभिभूत व्यक्ति शक्ति सम्पन्न नहीं हो सकता।

तीसरी परम्परा ऐश्वर्यवादियों की है। वे लोग ऐश्वर्य अर्थात् आनन्द को सर्वोपरि मानते हैं। आनन्द की पराकाष्ठा तभी होती है जब वह शाश्वत हो और अपराभूत हो। जिस आनन्द में दुःख मिला हुआ है

सृष्टि के आरंभ से ही मनुष्य के लिए ईश्वर एक गूढ़ पहेली रहा है; और मनुष्य ने हर युग में इस पहेली को सुलझाने का अथक प्रयत्न किया है। आज का युग भी इसका अपवाद नहीं। प्रस्तुत रचना की सहज-सरल विवेचना ने इस गूढ़ विषय को भी सुबोध बना दिया है।

या उसकी सम्भावना बनी हुई है उसे परमानन्द नहीं कहा जा सकता। यह आनन्द तभी सम्भव है जब वह अपना स्वाभाविक गुण हो। पराश्रित सुख शाश्वत नहीं बन सकता। इसी प्रकार जो आनन्द किसी अन्य शक्ति द्वारा कुण्ठित, अभिभूत या तिरस्कृत कर दिया जाता है वह भी परमानन्द नहीं है। यहाँ मुक्ति का अर्थ है आत्मा के स्वाभाविक आनन्द की अभिव्यक्ति। इस आनन्द की अभिव्यक्ति के लिए आत्मा को अपनी मिथ्या धारणाओं से ऊपर उठने की आवश्यकता है। जब तक व्यक्ति आत्मा को स्वयं आनन्द रूप न मान कर बाह्य वस्तुओं को आनन्द का कारण मान रहा है तब तक परमानन्द का अभिव्यक्ति नहीं होती।

वैदिक आर्य अपनी सन्ध्या प्रार्थना में इन्हीं तीनों आकांक्षाओं का प्रकट करता है। वह किसी दिव्य शक्ति से प्रार्थना करता है कि मुझे असत् से सत् की ओर ले जा, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जा, और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जा[२]। असत् का अर्थ है—दुर्बल या शक्तिहीन। सत् को प्राप्त करने का अर्थ है शक्ति सम्पन्न होना। अन्धकार का अर्थ है अविद्या या अज्ञान और प्रकाश का अर्थ है ज्ञान। मृत्यु दुःख का प्रतीक है और अमरत्व सुख का। इस प्रकार वैदिक आर्य अशक्ति, अज्ञान तथा दुःख से शक्ति, ज्ञान एवं सुख की ओर बढ़ना चाहता है।

उपनिषदों में ईश्वर को सच्चिदानन्द कहा है। यह उस तत्व का नाम है जहाँ विकास पूर्ण हो जाता है। जो साधना का चरम लक्ष्य है। उपनिषदों में समुद्र तथा पानी की बूँद की उपमा देते हुए इस तथ्य को स्पष्ट किया है। ईश्वर समुद्र के समान है और जीव पानी की बूंद के समान। समुद्र अथाह है, असीम है और शाश्वत है। हजारों तूफान उठे किन्तु उसके ऊपरी स्तर को छूकर रह गये। लाखों सूर्य चमके किन्तु उसे सुखा न सके। उसके साथ मिली हुई, उसके अस्तित्व को अपना अस्तित्व समझनेवाली बूंद भी शाश्वत है किन्तु जैसे ही वह अलग होती है दुर्बल एवं सीमित बन जाती है। हवा का हल्का-सा झोंका उसे उड़ा ले जाता है। सूरज की हल्की-सी किरण उसे सुखा देती है। इस कष्टपूर्ण स्थिति से छुटकारा पाने के लिए वह पुनः समुद्र से मिलने के लिए छटपटाती है और अपनी साधना प्रारम्भ कर देती है। भाप बन कर बादलों में पहुँचती है, वहाँ से बरस कर नदी की धारा को प्राप्त करती है और समुद्र की ओर दौड़

आज के विश्व की स्थितियों का अध्ययन करने से यह विश्वास होता है कि समकालीन औद्योगिक समाज सांस्कृतिक रूप से इतना अधिक उन्नत और विकसित है, जितना पिछले किसी युग में किसी भी देश का मानव

२. असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय।

पड़ती है। विषम परिस्थितियाँ आने पर भी वह अपने लक्ष्य को नहीं भूलती। हिमशिखर पर गिर कर वह भी जड़ीभूत हो जाती है किन्तु पिघल कर फिर बहने लगती है। सरोवरों एवं जलाशयों में पड़ने पर उसकी प्रगति रुक जाती है। किन्तु वह फिर वाष्प बनकर बादलों में जा पहुँचती है। उसका यह प्रयत्न तब तक चलता रहता है जब तक वह नदी की धारा में नहीं मिल जाती अथवा साक्षात् समुद्र को नहीं प्राप्त कर लेती। इसी प्रकार जीव भी अपनी सच्चिदानन्द-अवस्था को प्राप्त करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है।

भागवत में बताया गया है कि एक ही अद्वय तत्व ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान शब्द से कहा जाता है। बुद्धिवादी दार्शनिक उसे ब्रह्म कहते हैं, क्रियाप्रधान कर्मयोगी परमात्मा कहते हैं और उसके ऐश्वर्य पर नृत्य करने वाले भावना प्रधान भक्त उसे भगवान कहते हैं। भगवद्गीता में ज्ञान, भक्ति और क्रिया रूप जो साधना के तीन मार्ग बताये गये हैं उनके उपरोक्त तीन लक्ष्य हैं।

जैन-परम्परा में आत्मा को अनन्त चतुष्टय रूप माना गया है अर्थात् वह अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख तथा अनन्त वीर्य रूप है। इनमें से प्रथम दो अनन्त ज्ञान के ही अन्तर्गत हैं। एक साकार ज्ञान है और दूसरा अर्थात् अनन्त दर्शन निराकार ज्ञान है। इस प्रकार ज्ञान, सुख और वीर्य तीन ही तत्व रहते हैं जो कि ऊपर बताये गये तीन तत्वों के ही नामान्तर हैं। चित्त, ब्रह्म या ज्ञान सबका एक ही अर्थ है। सुख और आनन्द में कोई भेद नहीं है। वीर्य सत्ता या ऐश्वर्य का ही नामान्तर है। इन चार अनन्तों की पूर्ण अभिव्यक्ति ही साधना का चरम लक्ष्य है। जो साधक उस चरम लक्ष्य पर पहुँच गये हैं वे ही जैन-परम्परा में देव अथवा परमात्मा शब्द से कहे जाते हैं। साधक उन्हीं को आदर्श मान कर आगे बढ़ता है। उस लक्ष्य पर पहुँचने के लिए जो मार्ग है, वह भी तीन तत्वों से बना है—सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र्य। आत्मा की अनन्त शक्ति में विश्वास तथा बाह्य वस्तुओं की निर्भरता को त्यागने की अभिलाषा ही सम्यक् दर्शन है। यह विश्वास जितना पुष्ट होगा तथा बाह्य निर्भरता से जितनी उपेक्षा होगी उतनी ही आनन्द की वृद्धि होगी। चरित्र की तरतमता भी आत्म-निर्भरता पर आश्रित है। क्रोध, मान, माया तथा लोभ रूप कषाय जितने उत्कट होंगे उतना ही चरित्र की दृष्टि से अविकास या पतन

समाज नहीं रहा है। आज हमारी संस्कृति का अध्याय इतिहास के किसी भी अध्याय से अधिक ऊँचा और महत्त्वपूर्ण है—इसमें मुझे तनिक भी शंका नहीं है।

—सी० पी० स्नो

माना जायेगा। जैसे-जैसे ये मन्द होते जाते हैं और आत्मा उत्तरोत्तर आत्म-निर्भर एवं निर्मल बनती जाती है, चरित्र का भी विकास होता जाता है। उसका पूर्ण विकास वहां होता है जब कषाय या बाह्योन्मुखता सर्वथा समाप्त हो जाती है। वही सुख की परिपूर्णता है।

जैन कर्मसिद्धान्त की दृष्टि से आत्मा के गुणों का घात करने वाले चार कर्म हैं--ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय। ये क्रमशः अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य का घात करते हैं। इनका नाश हो जाने पर चारों अनन्त प्रकट हो जाते हैं।

जैन दर्शन आचार प्रधान है और आचार की आधारशिला अहिंसा है। वह अहिंसा दो प्रकार की है--बौद्धिक अहिंसा तथा व्यावहारिक अहिंसा। बौद्धिक अहिंसा का अर्थ है, दूसरे के विचारों को आघात न पहुँचाना। उसके दृष्टिकोण को पूरी तरह समझने की कोशिश करना और उसमें रहे हुए सत्यांश को स्वीकार करने के लिए तैयार रहना। दूसरे के विचारों को उतना ही महत्त्व देना जितना अपने विचारों को दिया जाता है। व्यावहारिक अहिंसा का अर्थ है ऐसा कोई कार्य न करना जिससे दूसरे को ठेस पहुँचे। बौद्धिक अहिंसा का ही दूसरा नाम सम्यक् ज्ञान है अथवा स्याद्वाद है। इसका अर्थ है, प्रत्येक वस्तु के भिन्न-भिन्न दृष्टियों स अनेक रूप हैं। एक ही स्त्री माता भी है, बहन भी है, पत्नी भी है और पुत्री भी है। इनमें से किसी एक ही पक्ष को पकड़ कर बैठ जाना और यह कहना कि वह माता ही है, या पत्नी ही है, बौद्धिक हिंसा है। इसी को एकान्त दृष्टि या मिथ्यात्व शब्दों से भी कहा जाता है।

व्यावहारिक अहिंसा का ही दूसरा नाम सम्यक् चारित्र है। सम्यक् ज्ञान और सम्यक् चारित्र का आविर्भाव जिस दृष्टि से होता है तथा जिसे वे उत्तरोत्तर विकसित करते हैं उसका नाम सम्यक् दर्शन है।

बौद्ध परम्परा के अनुसार साधना के तीन तत्व हैं—शील, समाधि और प्रज्ञा। ये तीनों क्रमशः चरित्र, मन की एकाग्रता अर्थात् निष्ठा तथा ज्ञान से सम्बन्ध रखते हैं।

साङ्ख्य-दर्शन में मानवता का विभाजन तीन गुणों के आधार पर किया गया है। १. जिन व्यक्तियों में सत्त्वगुण का प्राधान्य होता है वे बुद्धिवादी होते हैं। उनका उपास्य ज्ञान है। २. जिनमें रजोगुण का प्राधान्य है वे क्रियावादी होते हैं और शक्ति की उपासना करते हैं। ३. तमोगुण की प्रधानता वाले अज्ञानी होते हैं। वे ऐश्वर्य या वैभव की खोज में रहते हैं। आत्म-कल्याण के लिए वे श्रद्धा या भक्ति मार्ग अपनाते हैं। इसके विपरीत रजोगुण वाले योग साधना का और सत्त्व की प्रधानता वाले

दार्शनिक चिन्तन की।

पुराणों में ईश्वर के तीन रूप प्रसिद्ध हैं— १. ब्रह्मा, २. विष्णु और ३. महेश। ब्रह्मा सृष्टि के रचयिता हैं और रजोगुणी माने जाते हैं। रचनात्मक कार्य के लिए रजोगुण अर्थात् क्रियाशक्ति का होना आवश्यक माना गया है। विष्णु सत्त्व के प्रतीक हैं और जगत् की स्थिति के कारण हैं, विश्व की व्यवस्था करना बुद्धि का काम है। महेश अर्थात् शंकर में तमोगुण की प्रधानता मानी जाती है, और वे संहार के देवता हैं। विनाश को वरदान बनाना उनका कार्य है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सभी धर्मों तथा दर्शनों में विकास के तीन तत्व हैं और उनकी परिपूर्णता ही ईश्वरत्व है। उसी को विविध शब्दों एवं पद्धतियों के द्वारा प्रकट किया जाता है।

दर्शन मुख्यतया ज्ञान पर बल देता है, धर्म क्रिया या साधना पर और कला अनुभूति अथवा आनन्द पर। दर्शन का लक्ष्य ब्रह्म है, धर्म का परमात्मा और कला का भगवान। चरम अभिव्यक्ति को प्राप्त करके तीनों तत्व एक ही सर्वोच्च सत्ता में विलीन हो जाते हैं। वही जीवन का चरम लक्ष्य है।

• • •



डॉ० रमेश कुन्तल मेघ

शकुन्तला के यात्रा-पथ

(देश-काल के आयाम में प्रतीकात्मक ध्वनि-रूपक)

पात्र :

कालिदास : भारत के महाकवि ईस्वी प्रथम (संभवत: शुंग-काल)

शकुन्तला : कालिदास कृत 'अभिज्ञान शाकुंतलम्' की नायिका।

गोएथे : जर्मनी के महाकवि (१९ वीं शती), शकुंतला के प्रशंसक।

डॉ. फास्टस : गोएथे कृत 'फौस्ट' का नायक।

मार्गरेट : डाक्टर फास्टस की प्रेमिका जिसे उसने नारकीय यंत्रणाएँ भोगने को विवश किया।

मैफिस्टोफिलीज : शैतान, जो फास्टस की आत्मा खरीद कर उसे सारी ऋद्धियाँ-सिद्धियाँ उपलब्ध कराता है।

भीड़, अन्य पात्र, मृग, आदि।

◉

शकुन्तला : **ओफ़...**

गोएथे, तुम कहाँ हो ?

अट्टहास कर अभी बड़े जोर से सोफोक्लीज हँस रहा था,...और...

मैं वाइमर के दालानों में खड़ी हूँ।

ओफ़...गोएथे...
मुझे ठंड लग रही है
मुझे ओवरकोट पहिना दो :
ऊपर
कतरी हुई गरी-सी बर्फ गिर रही है।
गोएथे, तुम मेरे दूसरे सूत्रधार जो ठहरे...
यूरोप में मुझे मार्गरेट से
मिला रहे हो न--
कल ?

समवेत!..समवेत!!
मेरे अकेले कंठ की पुकार--समवेत!
आश्चर्य!!!

अरे!!..ए ऽ-ऽ-ए-ऽ-ए!
स्वर्गमृगों के चर्मवस्त्र
मेरे नहीं रहे!
देखो, मैं नॉइलन के हल्के लिबास पहिने हूँ।
तुम मुझे टेलीविज़न के सामने लिये जा रहे हो न?
सुनो :
मुझे आश्रम के पालतू हरिण ढूंढ़ रहे होंगे
चम्पा की वल्लरी सूख गई होगी
ओफ़!
मेरी तन्वंगी काया यह सब कैसे सहने लगी है?
(मृग-चौकड़ियों की आवाज़ें : वापस जाते हुए भारी पाँवों की ध्वनियाँ)

(स्वल्प विराम)

कालिदास : शकुन्तला!
ओ, शकुंतला!!
मैं कालिदास?......नहीं...
कालिदास की कामना की छाया हूँ!
हिमवान ऊँचाइयों में मैं प्रलयंकर शंकर का गरल-पात्र थामे हूँ;
वे समाधिस्थ हैं अभी—
वरना

तिबार। अणुयुद्ध शुरू हो जाएगा।
चलो...हाँ, चली चलो...
देखो :
वहाँ जमी हुई नदियों पर, झीलों पर,
युवक-युवतियाँ यौवन की क्रीड़ाएँ कर रहे हैं;
वहाँ, गणतंत्र की घोषणा को मैं सुन रहा हूँ
वहाँ, खट्टी शेम्पेन की गंध मैं सूँघ रहा हूँ
हाँ, वहीं--
बड़े-बड़े रंगमंच सजाए जा रहे हैं,
ज्ञान की उपासना हो रही है;
साथ-साथ वहाँ संहार-उपासना भी हो रही है।
शिव और शव दोनों वहाँ रहते हैं।
मैं तो केवल अर्द्धनारीश्वर को खोजता चला आ रहा हूँ
अनंत युगों से। अपूर्ण लगता हूँ आज मैं।
शकुंतला, मुझे पहचानती हो?
शकुंतला!...शकुंतला!!...ओ ऽऽऽऽश ऽऽ कुऽन्त ऽऽ

(आवाज़ खामोश हो जाती है)

\+ \+ \+

(दीर्घ विराम)

(हवाई जहाजों की घरघराहट : मैदानों में नृत्योल्लास की मदिर गूंजें—हँसी : मादक कोलाहल)

मैफिस्टोफिलीज : फास्टस, जीवन को इतना भोगने के बाद अब भी--
अब भी
क्या तुम भोग चाहते हो?

फास्टस : रहम करो! मैफिस्टो! प्यारे मैफिस्टो! अभी एक नृत्य और बाकी है,
आत्मा को चूस लेने वाला एक चुंबन अभी शेष है;
रेस्तराँ में शराब की वे बोतलें रखी हैं;
अभी एटामिक प्लांटों के जादू मुझे सीखने हैं...
प्यारे मैफिस्टो! रहम करो!

मैफिस्टो : फास्टस, देखो! नृत्य करते-करते मोनालिसा-सी मार्गरेट के जूतों के फीते टूट चुके हैं।

फास्टस : मैफिस्टो, जीवन के भोग के बीच मुझे व्यथा के, रोदन और विरागों से बहुत दूर रखो।...काश,

मैफिस्टो : फास्टस, तुम्हारे सूत्रधार की छटपटाती आत्मा मुझे बुलाती है...
तो, लो !
मैं चमगादड़ों के पंखों को छोड़े जाता हूँ
(निस्तब्धता : मैफिस्टो की दूरागता ध्वनियाँ)
(प्रस्थान)

(स्वल्प विराम)

एक अचीन्हा
नारी-स्वर : डॉक्टर फास्टस,
जरा टार्च तो दिखाओ
मेरे चारों ओर अँधेरा है।
जाँचो : मैं बीमार हूँ। रेडियम-किरणों से मेरे कैंसर का उपचार करो।
फास्टस में विश्वास के आनंद में अमर होकर मरना चाहती हूँ !
......................मरना चाहती हूँ......
.............................चाहती हूँ........
.....................................हूँ !........

फास्टस : यह किसकी दुहरी-तिहरी आवाज़ें हैं
मेरे अंतर्जगत को डरा-डरा देती हैं,
मेरे फेफड़ों में हज़्ज़ारों मोमबत्तियाँ जला देती हैं ?
ओफ़्फ़...तुम ! ..गो—ए—थे ! मेरे सूत्रधार !
अमर गोएथे,
साथ में मार्गरेट लाए हो क्या ?
मेरे पापों की सुन्दर पवित्रता !!
हाय, क्या करूँ ?
(घायल-सी कराहें)

गोएथे : फास्टस, तो, तुम मुझे पहचानते हो अब तक ?
देखो :
दूर—मैफिस्टोफिलीज़ ने रीख़ताग में आग लगा दी है,
फ्रांस का चौथा रिपब्लिक-भवन भी जला दिया है...
वह बढ़ता आ रहा है लकवे-सा हम तक...
यूरोप पेट्रोल का खौलता कड़ाहा हो जाएगा।
मेरे प्रतिरूप !
उठो !!
जीवन को भोगने वाले तुम

आज भोग को भी जीवन का लक्ष्य दो।
आज तुम्हीं बचाओ इस यात्रा-पथ से।
इस पथ में शकुंतला अपने सूत्रधार के साथ आती ही होगी।
देखो : वहाँ : वे भयंकर ज्वालाएँ।
देखो : वे जलती हुई कला-वस्तुएँ !
देखो : वे जलते हुए शहर, सिसकती-कराहती नदियाँ,
मोम के इंसान—धू-धू करके सभी जले जाते हैं।
ओफ़ फास्टस...
यह मैत्री ??...

(विराम)

+ + +

शकुन्तला : हाँ, यह मैत्री !!
कालिदास मेरे ! शिवशंभु को सोने दो।
अपने देश की रेलगाड़ियाँ आज अलका और भिलाई को मिलाती हैं:
हिमालय में एयरोड्रम बने हैं।...
कह दो पुरूरवा से
कि
उर्वशी एक बैले-नृत्य रचा रही है बर्लिन में।
हाँ, कालिदास !
मार्गरेट मेरा प्रोग्राम रख रही है
टेलीविज़न में।
हम दोनों शतियों से संघर्ष करते-करते अब पुनः जीवंत हो उठी हैं।
यह मैत्री उन जलते हुए नगरों पर मेघों को बरसाएगी,
उन आश्रमों के अभावों को भावपूर्ण बनाएगी।
संहाररत् नटराज के डमरू वहाँ बजते हैं,
यहाँ वीणापाणि की उपासना मैं करती हूँ !
दोनों ही श्रुतियाँ हैं।
हाँ, मैं हूँ तुम्हारी अर्धनारीश्वर प्रिया।
मैं हूँ द्वंद्वों की बीच डोर—
धनुष-सा क्रांति-युग तना है।
आज तक मुझे यात्रा का अन्त नहीं दिखा।
आह,
चारों ओर नृत्य के उल्लास गूँज उठे हैं (शेष पृष्ठ ८२ पर)

प्रेमलता वर्मा

ये घाटियाँ : ये गूँजें—(५)

उक्त लेखमाला के अन्तर्गत पाँचवीं क़िश्त जिसमें एक गृहिणी-लेखिका के विषम संघर्षों की करुण कथा अंकित है ।

● ● ● ●

१५ अक्तूबर, १९५—

आँखें नहीं....छोटी-सी नीली झील में नन्हें तारों की झलमलाहट.....और उस पर भी नीलिमा की एक रुई जैसी पर्त.....आकाश के अन्दर जैसे एक और आकाश.....

ऐसी भी आँखें होती हैं ? आँखें आँखें ही होती हैं ? और रूप ?—इतना कि आँखों में समा न सके ?......

उस नन्हें सजीव संगमरमर का जादू मोह-निद्रा-सा छाने लगा । किसी अजानी महामंत्र शक्ति से जकड़ी जा रही थी मैं । उस संगमरमरी पुतले की देह से जैसे हर लिबास मेरी दृष्टि से ओझल होता गया । रूप, और बस रूप—अनावृत, शाश्वत ।



अभिभूति का आवेश किंचित थमा तो मेरे बँधे कण्ठ से किसी ने पुकारा—ओ देवदूत !

तभी निर्झर का स्वप्न भंग हुआ जैसे । चर्रचर्र-चूं-चरर्र....! वे दफ्तर से आ गये थे ।

हथेलियाँ जो अजाने खिड़की के सीखचों पर कस गई थीं, एकदम ढीली पड़ गईं ।

"कौन-सा चिन्तन-मनन चल रहा है, लेखिका-जी ?"

आटे का दिया : एक डायरी

"कुछ नहीं ! मुहल्ले में नये किरायेदार आये हैं। आज ही देखा--उनका ये बच्चा है। कितना अद्‌भुत !......"

न चाहते हुए भी अचानक मेरे मुख से निकला, यह भूल कर कि उन्होंने 'लेखिका' शब्द से सम्बोधन किया था।

"अद्‌भुत ?" उन्होंने होंठ कुछ टेढ़े कर दुहराया, "यह 'अद्‌भुत' क्या होता है, भाई ?"

"मतलब कि इतना सुन्दर, कि कभी देखा नहीं ; और आँखें शेक्सपियर के उस पात्र...." --अचानक चुप हो गई। उनके चेहरे पर खेलने वाले व्यंग्य पर पहली बार दृष्टि अटकी। और मुझे याद आया कि मैं अभी-अभी अपनी स्थिति और उनको भूल कर इतना सब कह गयी। और वे कह रहे थे--

"दुनिया में ख़ूबसूरती की कमी नहीं। बहुत लोग होते हैं ख़ूबसूरत; पर कवि और लेखक के सिवा किसे इतनी फ़ुर्सत है कि वह उनका जायज़ा ले, उन पर थीसिस तैयार करे। इसी में रहे तो चल चुकी गाड़ी। ...तुम्हें भी क्या सूझता है, सुन्नी ! अब कुछ लिखने बैठ जाओगी आधी रात तक, और मैं अगोरता रहूँगा बुद्धू की तरह !.....भाई, जिसे दीन-दुनिया से मतलब न हो, बीवी-बच्चों से कोई सरोकार न हो, वह लिखे दुनिया भर का पचड़ा। यहाँ तो दम मारने की फ़ुर्सत नहीं, नोन-तेल-लकड़ी में सारा दिन गुजर जाता है......"

वे बड़बड़ाये जा रहे थे, जूते उतारते-उतारते।

मेरा सारा समय दूसरों के लिए है, वह स्वयं मेरी वस्तु नहीं। मेरे अपने समय में मेरा कोई हिस्सा नहीं। और बात सिर्फ इतनी भी नहीं है।

विवाह से पूर्व जो कुछ था, जो कुछ मेरा स्वजात था, वह सब एक झटके से तोड़ देने का यत्न बराबर होता है। पर अभी वह टूट नहीं पाया हो जैसे। इस डेढ़ वर्ष में सौन्दर्य-बोध अभी मरा नहीं। इसीलिए तो जब भी कुछ 'अद्‌भुत'-सा देखने या सुनने को मिल जाता है, तो जैसे सूखती जड़ों में पानी पड़ जाता है। क्षण भर को वर्तमान मुझसे कट कर अलग हो जाता है।......

तभी एक तेज़ जला-कटा स्वर कानों में पड़ा--जैसे जलती हुई चीड़ फट्-फट् करती है ; उसने एकदम चौंका दिया, जैसे पानी में किसी ने सहसा आग छोड़ दी हो--

"सुनती हो कि नहीं ! बहरी हो क्या? कान के भीतर खूँटे ठोंक लिये हैं ? मरा-खपा आया हूँ तो तुमसे चाय की भी आशा न करूँ, और सब तो भर पाये !....आज सरो होती तो !!"

और उनका गला भर्रा-सा आया। हद है, क्या बेबस बच्चों की तरह रूठते हैं! न जाने क्यों, मुझे बजाय ग़ुस्से के उन पर तरस ही आया। पर जब हर जगह मेरी तुलना उनकी दिवंगता पत्नी से की जाती है, तो मन अजब कड़ुवाहट से भर जाता है। क्या मैं कम कोशिश करती हूँ कि ये खुश रहें? वर्ष भर से टिकी हुई इनकी बहन और उनके पाँच बच्चों की कौन इतनी खिदमत करेगा? वह भी उल्टी-सीधी नसीहतों और शिकायतों को सर पर ओढ़ कर एक बेज़ुबान पशु की तरह। यहाँ तक कि नौकर भी 'बड़ी बहूजी' का ताना देते हुए, काम से जी चुरा कर निकल जाते हैं। मैं तो भौंचक रह जाती हूँ! ....मेरे हाथ का खाना भी इन्हें सरोजी के जोड़ का नहीं लगता, जबकि माँ के घर मुझे 'उस्ताद जी' की उपाधि मिली हुई थी। मेरा सजाया

ड्राइंग रूम इन्हें नहीं पसन्द आता, क्योंकि सरोजजी द्वारा लगाये गये 'शिव-पार्वती' टाइप के सिनेमा एक्ट्रेसों के चित्र हटा कर ईसा का क्रास वाला चित्र लगाया है, और मजूमदार का 'श्रमिक' शीर्षक चित्र।

सरोजी शायद पूर्णतया पतिपथानुगामिनी थीं। पर मेरी रुचि तो इनसे किसी शर्त पर मेल नहीं खाती। फिर दो दिन में अपने ये बीस वर्ष के संस्कार बदल भी कैसे डालूँ! प्रत्येक अवसर पर सरोजी नमूने के तौर पर खड़ी हो जाती हैं—एक आदर्श नमूना! जिसके आधार पर मैं भी वैसा ही दूसरा नमूना बन जाऊँ या मुझे वैसा होना अनिवार्य हो! क़दम-क़दम पर वही दृष्टि। जैसे सरोजी बाट हों, और मुझे उससे तोला जाता है और घोषित किया जाता है कि मैं उनके बराबर नहीं हूँ।

वे नाश्ता कर टहलने चले गये। और तब से मैं बराबर यही सोच रही हूँ।

१ नवम्बर

वह बच्चा! बच्चा आज फिर दिख गया। उसकी बहन को पास बुला कर उस नन्हें एंजिल का नाम पूछा।

"टुनटुन"—बोली वह।

"और तुम्हारा?"

"नीना।"

"अच्छा, नीना, इस नन्हें एंजिल को ले आया करो कभी-कभी।"

"जी, यह नहीं है इसका नाम, इसका नाम टुनटुन है।" आँखें फैला कर हाथ उठाते बोली नीना।

तभी बच्चे की माँ उधर से गुजरी—"बहनजी, आप तो कभी दिखाई नहीं देती हो! बच्चा आपका ही है। जब कभी जी चाहे, रख लो।"

माँ काफ़ी सुन्दर थी। सिर्फ़ यही इस बच्चे की माँ हो सकती है; होना चाहिये। साफ़-सुथरे पर मामूली वस्त्रों में परिश्रमी लंबी देह, और पूरे व्यक्तित्व में आत्मविश्वास और स्वावलम्बन, और निष्कपट खुलापन।... 'नूरजहाँ'—मुझे उसके लिए एक नाम याद आया। अतीत की नूरजहाँ इन फटे-पुराने कपड़ों में उतर आयी थी......

बच्चे को उसने देह से सटा लिया, तो वीनस की बग़ल में खड़े पंख वाले नन्हें देवदूत का चित्र आँखों में तैर गया।

रुद्रपुर से आये हैं। पंजाबी हैं, देहाती पंजाबी। शहर अच्छा नहीं लगता। अपने जैसे लोग नहीं मिलते। इस मुहल्ले का मुखिया तो हरदम यूँ घूर कर देखता है कि जैसे खा जायगा। मुस्कराता है तो जी होता है, कस के थप्पड़ जड़ दिया जाय। इन शहरियों की बोली ठीक से समझ में नहीं आती। तभी मुखिया अपना बक-बका कर दरवाज़े के सामने से चला जाता है। नहीं तो वह भी समझ लेता कि पंजाब की शेरनी का पंजा कैसा होता है। पर मजबूरी है, अपना देश छोड़ कर आना पड़ा। इत्यादि, इत्यादि।

कुछ देर उससे और बात करती कि तभी रामसुख रोती हुई सुबू (मेरी सौतेली बेटी) को गोद में लेकर आया।

"बहूजी के बच्चन का खेलाव लिहो बाद में, पहिल आपन बिटिया का देखौ! गोड़े मा मोच आय गय है। सड़क पर ऐसे खेलै बरे छोड़ि देत हौ। बड़ी बहूजी रहीं, तो घर माँ से निकसै नाहीं देत रहीं। पर का कहा जाय! जब आपन भाग खराब

होत है तो केकर बस ! तब आपन संग महतारी कुसमय छोड़िके सुरग धावत है। मुला––"

"रामसुख !"––मैंने पूरी शक्ति से चीख कर कहा। और बच्ची को गोद में ले लिया।

"हम कौनो बेजा कहत अहीं, नई बहू ! कौनो अपराध हुइ गवा होय तो छिमा करो।" रामसुख का स्वर अब की कुछ सहमा हुआ-सा था।

नौकर-चाकर सब ऐसे हैं। मेरी इस घर में जैसे कोई सत्ता नहीं।....इस गृहस्थी को मैंने अपना क्या नहीं सौंपा ? अपना तन, अपनी प्रतिभा, अपना शौक़, अपना उन्मुक्त स्वभाव, पहनने-ओढ़ने की अपनी व्यक्तिगत रुचि।....इन्हें नरगिसी रंग पसन्द नहीं, जबकि वह मेरा सबसे प्रिय रंग है। मैंने पीली साड़ियाँ पहननी छोड़ दीं। सुबह से शाम तक काम में हड्डियाँ तोड़ती रहती हूँ, पर किसको ध्यान है ! कभी कुछ लिखने बैठ जाती हूँ, तो वह भी सबको ज़हर। अब तो लिखना भी छूट ही गया है। चोरी-छुपे डायरी के पन्नों पर अपना दर्द उँड़ेल लेना ही शेष बचा है। किसी को क्या मतलब, कि अलग से इसके पास अपना भी दिल है।

१८ नवम्बर

जिनके पास अपनी दृष्टि, सूझ-बूझ नहीं है, वे रुख देख कर चलते हैं। गो वे अपनी ओर से, अपने अन्दर से, अनुकूल नहीं होते, पर हवा के रुख में अपने को बहा देने में ही वे अपनी अनुकूलता समझते हैं, और शायद ऐसों को उसी में अपनी इष्ट-सिद्धि हो भी जाती है।

और फिर नौकरों का क्या ! इनसे बढ़ कर भी क्या कोई अवसरवादी होता होगा ? अब तो लगता है, नौकर भी एक जात होती है, जिसके अन्दर अपनी कुछ विशेष प्रवृत्तियाँ काम करती हैं, जो अन्य सामान्य व्यक्तियों में न मिलेंगी। इन्हें दुधारी तलवार की दोनों धारों पर चलना आता है। यहीं कमाल वह दिखाते हैं, और दिखाना चाहते हैं। हाँ, झुनमुनिया भी नौकरानी थी ; मगर उसकी बात अलग है। वह हवा में ही भटकती रह गयी : न उसे मालकिन (सासुजी) की कृपा मिली, न किसी की सहानुभूति। मैं थोड़ी-सी ममता कर सकी थी, तो उसी से। मगर इसका अधिकार भी तुरत छीन लिया गया था।....नौकर जात की थी न वह !

पर यह रामसुख, हवा का रुख देख कर चलने वाला, उस दिन दस रुपये उधार के नाम पर ले गया था ; और काम की छुट्टी का बहाना अलग से,––कल ज़रूरत पड़ने पर, रुपये की याद दिलाने पर बोला :

"बहूजी, आप तो पढ़ी-लिखी हैं, हम गरीबन के दुख-सुख समझ सकत हैं। आपके लेखे रुपया-पैसा क्या ? जाहिल आदमी दाँत से रुपया पकड़त है। आप जइसी लच्छमी के हाथ से दस रुपिया दै दिया गवा, तो वाकर चौगना ईस्वर आपका दैहैं। असन हिसाब से चला लैहैं कि बाबूजी का पतो ना लागी। अरे हाँ, कौनो आप बेपढ़ी हैं !" उसकी मक्खनबाजी में छुपे हुए तीर से आहत होकर भी क्या बोलती, सोचा, जाने दो।

और आज––

विभा की चिट्ठी का उत्तर देना था। क़लम लाने सीढ़ियाँ चढ़ रही थीं कि कानों में कुछ पड़ा, जिससे पाँव फिर जम-से गये वहीं

की तरह। आवाज़ रामसुख की ही थी—

"छोटी बहू का जाने घर संभाले! ढेर पढ़ि लेय के बाद, सिवा किताबन में मूड़ मारै के और अंग्रेजी में गिटिर-पिटिर करे से बखत मिलै तो गिरस्ती संभाली जाय। बड़ी बहूजी ढेर नाही पढ़े रहीं; कब्भौ हमते न पूछिन कि रामसुख केता के लाये तेल, केता के नून। अब तौ......। खैर छोड़ि देव; बड़ी बहूजी कै एक निसानी बच रही, तो वाहू की दुर्गति होव के लच्छन प्रगट होत हैं। अरे होवै करी। जाने कवन कुकरम करै रहि बिटिया।......"

कनपटी पर जैसे किसी ने गरम-गरम जलता आयरन छुआ दिया हो। मेरे भार से रेलिंग इतनी भार-बोझिल-सी प्रतीत हुई, जैसे इसको साथ लिये-दिये मैं नीचे गिरूँगी। अधिक सुनने की असमर्थता से मैंने खट् की आवाज़ की, और कुछ हाँफती-सी लड़खड़ाते क़दमों से नीचे लौट आयी।

तभी नन्हीं-सी सुबू ने आकर धीमे से कहा—"अम्मा!"

उसे कस कर भींचती हुई सुबक पड़ी। सुबू अपनी बात बताने की उतावली में भौंचक रह गई यह देख कर। बड़ों को कभी रोते देखा न था उसने।

"रोती हो? मैं तो तुमसे एक बात पूछने आई थी। रामसुख कहता है कि तुम हमारी अम्मा नहीं हो। मेरी अम्मा तो भगवान के पास चली गयी। राम्सुख यह भी कहता है कि तुम सौतेली अम्मा हो, और सौतेली अम्मा किसी को प्यार नहीं करती। सौतेली क्या होता है अम्मा? और तुम, तुम तो अच्छी हो; रामसुख क्यों कहता है कि......"

"रामसुख झूठा है"—मैंने उसके होंठ पर उँगली रख दी।

आगे बात वहीं रह गयी, कि वे आये, बोले—"किसे झूठा बनाया जा रहा है?"

"कुछ नहीं, बच्चों में कुरूप धारणा नहीं बनने देना चाहिए। और ये नौकर...."

बीच में ही काट कर बोले, "किसको? रामसुख को कहती हो? क्या किया उसने?

> **नारी का वास्तविक मूल्य तो उस समय था, जब वह पुरुष के मुख से 'देवी' संबोधन सुन कर गद्गद नहीं हो जाती थी, बल्कि मुंह से कही हुई बात को कार्य रूप में परिणत करने के लिए पुरुष को विवश करती थी।**
>
> —शरत्चन्द्र चटर्जी
>
> (संकलन: सत्यदेवनारायण सिन्हा)

वह तो घर का बहुत पुराना नहीं, तो भी सात साल पुराना नौकर है, और हमेशा उसने ठीक ही खिदमत की है। अभी तक तो किसी को शिकायत का मौका नहीं मिला!"

हूँ; पुराना है। तभी तो घर के हरेक प्राणी की वृत्ति को पहचान गया है और नाच नचाता है। पर मैं कहती क्या। मेरी किसी बात का सही उत्तर उनके पास न था।

थोड़ी देर बाद जब आते ही उन्होंने मुझे अपनी ओर खींचा तो मैंने घृणा से हाथ झिटक दिया। मुँह के भीतर ही जैसे ज़हरीला फोड़ा फूट गया हो, मैंने थूक दिया। बोले कुछ नहीं, पर गुस्से में आँखें तरेरते, पैर पटकते चले गये।

हुँह; जैसे कि मैं आटे का लोंदा हूँ,

जिस तरह चाहे कोई खींचे, तोड़े ; --जो रूप दे वही बन जाऊँ !

फरवरी २५

सुबह की ठंडी, ताज़ी हवा ने सिहरन-सी भर दी है। आकाश बहुत ही स्वच्छ। बुढ़िया के सफ़ेद कटे बालों की तरह के बादलों को भी झाड़ू लगा कर जैसे साफ़ कर दिया हो। पुरातन मोह है मुझे राग-विरागहीन और खुलापन उपजाने वाले इस नीले - नीले विस्तार से।....बचपन की मुझे माँ की डाँट याद आती है--

"आसमान में ही आँखें टाँगे चलेगी ! चाहे ठोकर लगे चाहे मोटर के पेट में भेजा समा जाये इसका। पर डर-भय छू गया हो, तब न ! अरी शैतान की पूँछ, धरती पर भी देखा कर !"

तब आकाश की ओर देखते रह कर चलने की आदत थी। माँ को आज इसका उत्तर देने की इच्छा हो आई है। पर मैं क्यों सोचूँ कि माँ की बात में कोई और भी अर्थ हो सकता है।.....सोचूँ कि सिर्फ़ आकाश है, और मुझे मेरे संग छोड़ देता है। यह उन्मुक्त पावनता, औदार्य, हृदय का फैलते जाना.... न जाने क्यों लोग आकाश को देख कर भी कुछ नहीं सीखते। पर आकाश ने मुझे ही यह सब सिखाया तो उससे क्या निकला !

आकाश स्वयं कितना निरपेक्ष है ! सूर्य ने अभी उसे रँगा नहीं है : अर्थात्, वह किसी दूसरे के भाव से रंजित नहीं है--किसी दूसरे का तनिक भी नहीं है--सिर्फ़ अपना है, इस क्षण ; और इसी से मेरा भी है।

आकाश फ्रेम में जड़ा कोई शीशा लगता है, जिसमें मैं अपने अतीत और भविष्य को देख रही हूँ (वर्तमान से उसे काट कर)।

पर आकाश, सच में, स्वयं कितना निरपेक्ष है, जैसे कि दर्पण। सूर्य ने अभी उसे रंगा नहीं है।....वह सिर्फ़ अपना है, इस क्षण ; और इसी से वह मेरा भी है।

सन्ध्या

जी होता है कि वह जो एक नन्हा-मुन्ना तारा निकल आया है आकाश के सीने को फोड़ कर, उससे सब कुछ कह दूं।

और मैंने एक कविता लिख डाली।

मार्च १०

उफ्, कितना सताया है इन्होंने मुझे!.... कभी गहरी भांग, कभी शराब, कबाब और कालिख !....कितने असंस्कृत हैं ये सब! राग और रंग को भी विकृत कर डालते हैं। जलती अंगारों-सी आँखें, पान-भरे वीभत्स ढंग से मुस्कराते होंठ ; और दिमाग फोड़ देने वाली बू ! उन्होंने खींचा तो लगा-- मैं इन्सान के हाथों में नहीं, संरक्षक पति के हाथों में नहीं, किसी पशु के पंजों में हूँ। ....खूबसूरत ? तुम्हारे जैसों के हाथ में खूबसूरती ? यह सिर्फ़ नारा है। खूबसूरती नहीं, विकृति !

पिछले वर्ष होली में माँ के घर थी तो नहीं जानती थी कि यहाँ नंगा नाच न हो तो त्योहार माफ़िक नहीं आता।

मैं अपनी कोमल और सुन्दर कही जाने वाली देह को देखती हूँ.....जिसे मैदे की तरह माँडा गया है। ढूँढ़ती हूँ, क्या कहीं अब भी कुछ शेष बचा है ?

ओह, मेरे अन्दर से सोचने की शक्ति को जैसे हर क्षण डाकू की तरह लूटा जा रहा है।

जुलाई १०

कल रात खूब जोर की आँधी आई थी--इतनी, कि लगा जैसे मैं इस आँधी में उड़ जाऊँगी, और क्षण भर को तृप्त-सी हो उठी मैं।....मगर आँधी मुझे उड़ा नहीं ले गयी।

कितना मोह है मुझे आँधी से! यों रिस-रिस कर, धीरे-धीरे सुलग-सुलग कर क्षार होना क्या अच्छा है! एक खूब ज़ोर की आँधी आये और उड़ा ले जाये।

प्रेम की आँधी, क्रोध की आँधी, करुणा की आँधी, घृणा की आँधी।....

और यह कैसी असह्य विवशता है कि स्त्री घृणा नहीं कर सकती; क्योंकि वह उसका पति है। उस पर हर प्रकार से माना हुआ एकमात्र हक़दार। और वह मुझे त्याग भी नहीं सकते। इस विकट तनाव को किसी एक झटके से तोड़ नहीं सकते, अपने विचित्र संशय के बावजूद भी।

हाँ, उस दिन क्या था ऐसा जिसने उन्हें एकबारगी इतने नीचे गलीच में झाँक कर सोचने को विवश किया, और मेरी उदासीन-सी होती जाती मनोवृत्ति को इस तरह झकझोरने पर मजबूर कर दिया, जैसे कि पेड़ को इतनी ज़ोर से हिला दिया जाय, कि उसकी सूखी, अधसूखी और हरी पत्तियाँ सभी झर जायें और पेड़ खाली हो जाय। मैं वैसी ही रिक्त हो उठी हूँ।....दिमाग़ को जैसे पाला मार गया है।

कितनी साधारण घटना थी, जिसने उखाड़ कर निःसत्व कर दिया!--

मेरे हाथ का बना भोजन उन्हें नहीं रुचता। न मैं उनकी हर शारीरिक भूख को मन से तृप्त कर पाती हूँ; उनकी बेटी को उन लोगों की दृष्टि में 'माँ-जैसा' व्यवहार नहीं दे पाती हूँ; उनकी बहन और बहन के बच्चों की उतनी खातिरदारी नहीं कर पाती चाकरानी बन कर; 'उनके' नौकर का हर उल्टा-सीधा काम पसन्द नहीं कर पाती। यहाँ तक तो ठीक था, सिद्ध भी था--मान लिया। पर उससे आगे जो कभी नहीं हुआ....उसका इतना गन्दा आरोप!

उस दिन खाने पर दो हाथ मार कर ही उठने लगे तो यही सोच कर कि शायद कुछ जी ख़राब है, पूछ लिया--

"तबीयत तो ठीक है न? खाते क्यों नहीं?"

आँखें तरेरते बोले--"जिस घर में तुम्हारी जैसी 'महालक्ष्मी' आ जायँ......" फिर थोड़ा चुप होकर एकदम से तन्नाते हुए बोले, "घास-भूसा खाऊँ? अस्तबल का घोड़ा समझ लिया है--जिस तरह ट्रीट करोगी, वही क़बूल?"

स्पष्ट ही ध्वन्यार्थ कुछ दूसरा था।

मसाला अधिक डालती हूँ, घी के इस्तेमाल का तरीक़ा नहीं मालूम, सब्जी तल-तल कर उसका सारा विटामिन नष्ट कर डालती हूँ--ये सारी शिकायतें मेरी "उस्तादजी" वाली उपाधि को धूल चटा चुकी हैं; बल्कि और भी बहुत कुछ। और इसकी तो मैं अभ्यस्त हो चुकी हूँ। पर इस आज के कथन में शिकायत का वह अंश बिल्कुल न प्रतीत हुआ। उनकी कड़ी पड़ी मुद्रा और भूरी आँखों का उतार-चढ़ाव और टोन कुछ और ही संकेत दे रहा था।

सत्यजीत जी घर पर आये थे। न जाने किस मुहूर्त्त में उस दिन बाज़ार में मिल गये थे। विवाह से पूर्व सम्पादक और लेखक होने के नाते परिचय हुआ था। आँख बचा कर निकल जाना चाहा, पर वे आगे बढ़

ही आये। इधर-उधर की औपचारिक बातों के बाद न जाने कैसे घर आने की बात तय हो गयी। मुझसे 'ना' भला कैसे निकलता और वे भी कैसे, कि सचमुच ही चले आये। सब कुछ तो मज़े में चलता रहा, इन्होंने भी ख़ूब बातें कीं, पर उनके जाते समय जाने कैसी दृष्टि से मेरी ओर ताका था.....परखने-जाँचने जैसी दृष्टि से : भवें कुछ कुंचित और मुखमुद्रा अशान्त।

सोचा, शायद वही तो कुछ नहीं? क्योंकि मायके के लोगों से मेरा मिलना-जुलना इन्हें पसन्द नहीं। यही सोच मैं भीतर से कुछ आतंकित-सी हो आयी। बिना खाए जो गये तो फिर उस दिन होटल में ही रात को भी खाया और काफ़ी देर से लौटे। और बाहर ही सोये। दीदी (उनकी बहन) ने इस पर मुझे एक छोटा-सा लेक्चर दे डाला।

बात आई-गई हुई-सी लग रही थी। तनाव कुछ ढीला-सा पड़ गया, और स्वाभाविकता आने लगी थी घर में। उनके व्यवहार में वैसे अब भी थोड़ी कठोरता और बदलापन-सा था।

इस बीच बच्चों ने गंगा-किनारे पिकनिक और साथ ही गंगा-स्नान का कार्यक्रम बनाया। रविवार था। वे भी गये साथ में। मेरा जाना आवश्यक समझा गया। लहरों के उतार-चढ़ाव को आँखों से पीना, उसी में डूबना, और देखते हुए बिल्कुल खो जाना....इतना प्रिय है, कि बहुत अधिक; किन्तु किसी धार्मिक मतामत से प्रेरित हो इतनी भीड़ में अजीब भोंडी दृष्टियों के मध्य स्नान झेल जाना कभी मुझसे सम्भव न हुआ।

और वे इस पर तुले थे कि मुझे गंगा का पुण्य-लाभ लेना ही होगा। "ऐसे पुण्य-लाभ से तो मैं बाज़ आयी!"—हाथ जोड़ मैंने अस्वीकार कर दिया। पर उनमें एक अजब तरह की हठधर्मी समा गई थी उस दिन। मैं घबरा-सी गयी। फिर उनकी ज़बरदस्ती अच्छी न लगी, और दीदी द्वारा मैंने तबीयत खराब होने का बहाना बना कर छुट्टी ली।

जब तक वे लोग नहाते रहे, गंगा के किनारे-किनारे चलती हुई मैं कुछ दूर निकल गयी; और फिर ठहर कर लहरों का उठना-गिरना देखती रही। एक-एक लहर जैसे एक-एक चमकती-बिछलती मछली।....

डूब गयी मोहाविष्ट-सी!

कन्धे पर कड़ा स्पर्श पाकर पीछे मुड़ी। वे कह रहे थे—

"हो गयीं समाधिलीन! मधुर स्मृतियों को जगाने का इससे सुन्दर स्थल और कौन मिलेगा! क्यों? क़ीमती बातें सँजोई जा रही हैं, या क़ीमती अनुभव? हाँ भाई, लहरों का सौन्दर्य भला हम सामान्य जन कैसे देख सकते हैं। और आप तो इतनी लीन कि भूल गयीं, कि घर-द्वार और बच्चे भी हैं, और एक भाग्य का मारा पति भी है। हम इतने भाग्यशाली कहाँ हैं कि हमारे बारे में भी सोचा जाय!" बड़ी ज़हरीली मुस्कान थी उनके चेहरे पर।

"हाँ भाई, लिखने के लिए बहुत कुछ ज़रूरी है।" 'बहुत कुछ' पर बल था। "और प्रेम करना तो निहायत ज़रूरी, क्यों सुनीता?" फिर कुछ रुक कर—"और नहीं तो, पुरुषों की मित्रता भी ज़रूरी चीज़ है! नहीं तो अनुभव आयेंगे कहाँ से? अनुभवों का स्टाक तो समाप्त होता रहता है। और स्टाक की पूर्ति के लिए कुछ न कुछ 'खास'

करना जरूरी। और उनसे फिर दूसरों को प्रेरणा मिलती रहती है!"

"मैं आपका मतलब समझी नहीं!"

--आकस्मिक वार से मैं विमूढ़ हो उठी थी।

अबकी बार वे अपने तीखे स्वर में पूरा विद्रूप भर कर होंठ टेढ़े करके बोले--"कैसे समझियेगा! जिस पवित्र जल में लाखों स्त्रियाँ नहाती हैं, उसमें नहाने में आपको शर्म आती है। लेखिका, कवयित्री हैं न आप! सबसे अलग। इसलिए कोई विधान आपके लिए नहीं है। क्यों?" उनका संयम टूट चुका था, फिर भी मैं ठीक न समझी कि पूरे कथन का वास्तविक अर्थ क्या है। इसका सन्दर्भ कहाँ है। किन्तु किसी भीतरी आशंका से काँप गयी।

> सद्गृहस्थ वही है जो अपने पड़ोसी की स्त्री के सौन्दर्य और लावण्य की परवाह नहीं करता।
>
> —तिरुवल्लुवर
>
> (संकलन : सत्यदेवनारायण सिन्हा)

दूसरे दिन धोबी को कपड़े देते समय उनकी आलमारी खोली। गंदी पैन्ट की जेब से एक काग़ज़ का टुकड़ा मिला, फटा हुआ--

'तुम्हारी कही बातें अक्सर याद करता हूँ; तुम्हारी बातें ही क़ीमती होती हैं। उनसे प्रेरणा मिलती है। और कुछ करने का मन होता है। तुम्हारा पिछला पत्र यत्न से रख दिया है।'

बीच में पानी से अक्षर मिट गये थे, और नीचे 'सुनील' का हस्ताक्षर था। वह एक पत्र का आखिरी अंश था। सुबू ने उस दिन फाड़ डाला था, और लेकर भाग गयी थी। मैं पूरा पढ़ भी न पायी थी। सुनील मेरा ममेरा भाई था, मुझसे काफ़ी छोटा।

और मेरे समक्ष गंगा-किनारे का, और उस दिन खाना खाते समय के उनके वाक्य और मुखमुद्रा--सब एकदम कौंध गये।.....

तब से चुप हूँ; क्योंकि निर्दोष हूँ। दोषी आदमी ही बकझक कर सकता है, सफ़ाई दे सकता है। फिर सफ़ाई देने का मेरे पास आधार क्या है? किसे दूं? उन्हें जो कि मुझे नहीं देखते, लेखिका को देखते हैं; जिसके लिए नैतिक होना ही अनैतिक है--एक अनिवार्य तथ्य की तरह; जो पुरुष को सिर्फ़ पुरुष मानते हैं (भाई, मित्र या कुछ और नहीं) और स्त्री को सिर्फ औरत मान कर चलते हैं (बहन, माँ, मित्र, बेटी, कुछ नहीं), उनसे फिर कहने की गुंजाइश कहाँ रह जाती है। ये भी तो वही हैं।

और कौन विश्वास लेकर मैं चलूं। विश्वास की जड़ों पर खौलता पानी डाल देने के बाद फिर क्या जड़ पनपेगी?......और वे मुझे त्याग भी तो नहीं सकते; क्योंकि इससे उनकी इज्ज़त में बट्टा लगेगा; और फिर उनकी बेदाम की निर्बाध दैहिक तृप्ति.....

नहीं तो वे क्या करते, नहीं जानती; पर जो करते वह इस स्थिति से अच्छा होता। लगातार तनाव और दुहरे विष के धक्के खाते जाने से अच्छा होता दर-दर की खाक छानना.... अच्छा होता कि मैं समर्पित होती पहले से ही। तब इस बन्धन में, इस बेरहम घुटती फ़िज़ा में भी एक तोष होता—आत्मतोष। सोचने को होता कि कोई अपना है जो समक्ष न होने

पर भी अपने अस्तित्व का सबसे गहनतम अंग है, और हर ओर से झाँकता है। वही एक समूचे विष को सोख लेता।....तब इनके और इनकी नियामक दुनिया के लादे अनृत को सह जाने की क्षमता मुझमें होती। कितना पूँजीभूत अमूल्य आधार होता वह, संघर्ष के लिए!

पर अब किससे लड़ूँ, किसके लिए? जैसे कोई ज़हरीला डंक मार कर निकम्मा कर दे और तमाम शरीर सुन्न हो जाय, वैसे ही इन्होंने भी मुझे पंगु बना दिया, जाने-अनजाने हर भावना पर डंक मार-मार कर।

सच, आज़ादी कितनी प्यारी चीज़ थी मेरे लिए--बिल्कुल मेरे व्यक्तित्व का अभिन्न अंग! आँधी में हवा कितनी आज़ाद है! मगर यह पिंजड़े का पंछी क्यों सोचे कि आँधी कितनी प्यारी वस्तु है, और आकाश कितना मुक्त!

दिसम्बर १५

मेरे मेज़ की दराज़ में सम्पादक की चिट्ठी पड़ी है। मैं दराज़ में ताला लगा देती हूँ; जैसे कि वह सम्पादक का पत्र न हो, प्रेमी का हो, और सम्पादक ने रचना न माँगी हो, प्रेमी ने संग भाग चलने का प्रस्ताव किया हो.......

मैं क्या लिखूँ--कि सम्पादकजी, सुनीता नाम की कोई लेखिका हुई भी थी, याद नहीं आता? याद भी कैसे आये, मेरी बुद्धि पे ताला पड़ गया और भावना कुंद हो गयी है। सुबह दूध गरम करने से लेकर रात उनकी शैय्या गरम करने, सर में तेल लगाने और संशय के सर्प से लड़ते रहने तक में सब कुछ खत्म हो चुका है।

एक पत्र

प्रिय नीरा,

तेज़ आँधी में अकेली बैठी हूँ। चेहरा गर्द और गुबार में अटता जा रहा है, और मैं मजबूर हूँ। बस, अनवरत आँधी का शोर सुनती हूँ। पेड़ की सूखी ठठरियों की खड़खड़ाहट निरन्तर बजती रहती है।

और तेरा पत्र मेरे सामने खुला रखा है; हवा के इशारे से फड़फड़ाता है, जैसे तुम्हारी सारी शिकायतें अपनी फड़फड़ाहट से व्यक्त किये दे रहा हो।

सोचती हूँ, नीरा, ये शिकायतें तू आज कर रही है, जब कि वे दिन अदृश्य के कुहासे में खो गये जब हम दस-दस बारह-बारह पृष्ठ पत्र लिखा करते थे, खूब मज़े ले-ले कर, डूब-डूब कर। वे दिन पीले पत्तों की तरह झर गये। सोचती हूँ, तेरी शिकायत का क्या जवाब दूँ। जहाँ नश्तर लगा था, उसी को पकड़ कर तूने खींचा है।

एक-एक कर देखूँ तेरी बातें, तो शायद कुछ कहते बने।

रचना? किसी पत्रिका में? यदि भेजूँ ही नहीं--और सच तो यह, कि लिखूँ ही नहीं--कुछ भी नहीं, पत्र तक नहीं, जैसा कि तेरा आरोप है....तो देखने को क्या मिलेगा! 'जीजाजी' के प्रेम ने तो नहीं 'भुलाया' बल्कि ....किसे कहूँ--नियति को तो कभी माना नहीं, पर दोष किसे दूँ--पर दोष किसे दूँ, यह भी समझ नहीं आता।

तूने बड़ा मोहक शब्द-प्रयोग किया--'इशारा'। हाँ, नाचती हूँ उनके इशारे पर--उनके मूड के इशारे पर।....

नीरू, रात के अँधेरे ने एक रंग का आभास

दिया था। मान लिया कि रंग जो जैसा है वैसा ही है। पर सुबह होते ही वह रंग उड़ गया। रंग का यथार्थ—नहीं, मिथ्यात्व—प्रकट हो गया; उसका फीकापन।

और मैं समझ गयी कि वह तो एक नशा था—मूड था। हाँ, नीरू, तू चौंकेगी; पर सच यही है। उस एक रंग के स्थायित्व के लिए मैंने अपने सारे रंग घोल देने चाहे; चाहा कि वह एक असली रंग सबसे अधिक प्रभामय बन जाय। पर ऐसा भी क्या होता है?

तू कहेगी, मैं पहेलियाँ बुझा रही हूँ। हर पहेली का कोई न कोई हल होता है। पर मेरी यह पहेली अबूझ ही रही।

भाई-बहनों में निरन्तर उलझे रहते हुए अक्सर मेरे पास एक धैर्य, एक आशा रहा करती थी, कि कभी समय मेरा अपना होकर रहेगा, कि अपनी अपूर्णता और व्यस्तता के बीच से कोई सार्थक रूप पा लूँगी; अपने अन्तर्भूत प्रयास में समय से न्याय माँगूँगी तो मिलेगा...

पर सपना भी देखने की एक निश्चित अवधि होती है, यह अब जान पायी हूँ।

जब मैं आयी ससुराल में, तो मेरे पास देने को सब कुछ था। सोचा था, कैसे भी होंगे, उनके हर मनोविज्ञान को फूलों की तरह चुन कर अंजुलि में बटोर लूँगी, सँवार लूँगी—उसे एक सुन्दर, पूर्ण रूप दे लूँगी। और हुआ यह कि कोई भी अवसर नहीं छोड़ा गया जब एक बार स्वतंत्र होकर मैं अपनी चेष्टा को कोई रूप दे दूँ और देखूँ कि जो रचा गया है वह क्या है, कैसा है। (वे क्वाँरे रह कर मुझे ले आते तो शायद कोई अंश सच हो सकता!) पहले से अनिच्छा होने पर भी मैं वहाँ समर्पित होने के लिए अपने को तैयार करके आई थी। किन्तु जहाँ कुछ समर्पित होने को था, वहाँ तब तक भावनाओं की मासूमियत ख़त्म हो चुकी थी......और जो कुछ मिल सका—उसकी ओर से तो मैं विमुख ही रही—वह थी विशुद्ध वासना। (और कहाँ मैं प्रेम की पूजामयी भावना लिये थी!)

और अन्ततः मैं असमर्पित ही रह गयी। पूजा का थाल लेकर मन्दिर के द्वार पर मौन और विह्वल भाव से खड़ी ही रह गयी, और भीतर देवता नहीं, पिशाच था जो निकला। उसने कहा, 'थाल मुझे चढ़ा दे!' उसने मेरा थाल छीन तो लिया, पर मेरी पूजा न पा सका।

शायद वे मुझे स्नेह देते (मगर, शायद) अगर मैं कुछ लिखती-पढ़ती न होती।

नीरू, वे हरदम चाहते हैं कि मैं जो कुछ सोचूँ उन्हीं के बारे में हो। हँसूँ तो उनकी हँसी में, रोऊँ तो उनके आँसू में; जबकि वे स्वयं सरोजी के गुण गाते रहे। मैं क्या कहूँ, नीरू, सरोजी के प्रति भी आदर-भाव नहीं बन पाता, कोशिश करके भी। सोचती हूँ, कैसी थीं वे, जो इनमें कोई सही एहसास न जगा पायीं; नारी के प्रति सनातन दृष्टिकोण का तनिक भी मार्जन न कर सकीं। फिर भी उनके गुण गाये जाते हैं। किन्तु मुझे लगता है, वह महज़ एक आड़ है। उस आड़ को लेकर, अपनी असंस्कृत आदिम भावना को मुझ पर थोपा जाता है, ताकि विरोध में मैं 'सी' तक न कर सकूँ।

एक बार मैंने सोचा कि नौकरी कर लूँ—मार्क्स ने आर्थिक स्वतंत्रता को ही सब चीजों का मूलमंत्र माना है। सोचा, कम से कम इनके व्यंग्य से तो बची रहूँगी (कि वे मेरे लिए कमाते हैं, वर्ना उन्हें क्या ज़रूरत थी!) किन्तु बाहर भी वही दृष्टियाँ—एक असम्भव-सी

चाह लेकर, अनोखी प्यास ! अन्ततः चुपके-चुपके बहुत दौड़-धूप करने के बाद भी हाथ कुछ नहीं आया।

नौकरी के एवज़ में वे जिस तरह की घूस चाहते थे, वह घूस मेरे द्वारा असम्भव थी। अन्त में, 'जिमि जहाज को पंछी उड़ि जहाज पे आवे !' (यह उपमा कुछ ठीक नहीं जँची, पर खैर....) और भीतर ? वहाँ भी इससे अलग क्या ! मेरे तन को भोग कर वह सन्तुष्ट नहीं हो जाते, मानसिक क्रीड़ा का आनन्द भी......

विषकन्या को जिस तरह विष के सिवा कुछ नहीं पीना होता, न और कुछ माफ़िक आता है, उसी तरह पुरुष चाहता है, नारी पर केवल उसी का विष तन-मन सभी पर चढ़ कर बोले ; उसे कोई और रूप देने में उसकी सत्ता की हेठी हो जाती है न !

कितनी अजब बात है कि अब भी नारी की मुक्ति किसी ओर से नहीं हुई। सुरुचि-सम्पन्नता में भी भोग ही वरणीय रहा, और शिक्षा में भी। स्त्री के लिए तो अपनी सुरक्षा के लिए जैसे कुछ भी नहीं बचा, कहीं नहीं अन्तराल रखा गया अपने लिए, जहाँ वह अपनी सत्ता को अपनी मान कर रख सके।

रक्षा न बाहर है न भीतर। स्वयं स्त्रियों ने भी अपने को भोग-रूप में ही सत्य मान लिया है। फिर वह चाहे शारीरिक रूप का हो चाहे मानसिक रूप का। और जो इसे स्वीकार कर नहीं चलती, वही विद्रोह में जल-जल कर खत्म हो जाती है--उसके लिए सारे रास्ते अवरुद्ध हो जाते हैं।

मुझे पंजाब की एक कहावत याद आती है, कि औरत तो आटे का दिया है, बाहर रखो तो कौए चुग जायेंगे, और अन्दर रखो तो मूस खा जायेगा। एक पंजाबन थी मुहल्ले में, उसी ने बताया था। खूबसूरती ने उसे भी नहीं रहने दिया था। उसका एक खूबसूरत-सा बच्चा भी था। लोग खूबसूरती का जितना नारा लगाते हैं, उतना ही उसे रहने नहीं देते।

सोचती हूँ, नीरा, कि क्या इसका समाधान नहीं है ? अभी तक सोच कर ही थक गयी हूँ। प्रश्न-चिह्न का यह घेरा टूटता नहीं देखती हूँ।

पहले-पहल आयी थी तो यह सब देख कर अचरज होता था। फिर यह अचरज पीड़ा में बदल गया। पीड़ा गहनतर होती गयी और धीरे-धीरे जड़ता छाती गयी। और फिर अचरज होता है (पर कभी ही कभी) कि यह क्या हुआ !....पर सच पूछो तो अब कुछ नहीं होता। जो 'वे' देते हैं, झेल लेती हूँ; ...और भी जो देते हैं, वह भी झेले लेती हूँ।

उस प्रश्न के माध्यम से भी मेरी सारी पिछली स्थितियाँ दूर से जैसे मुझे आवाज़ देती हों तो मैं उन्हें लौटा देना चाहती हूँ। जबरन उस आवाज़ की ओर से कान बहरा कर लेती हूँ।

ऐसा लगता है जैसे गाइड किसी को ले जाकर भूल-भुलैया में छोड़ दे और कह दे कि मुझे पुकार लेना। फिर थक कर जब उसे पुकारा जाय तो प्रतिध्वनि ही पास लौट कर आये, वह नहीं। तो, बाहर निकलने का रास्ता इसी तरह न मिलन पर व्यक्ति अन्त में हार कर, सिर पकड़ कर बैठ जाय। कुछ ऐसी ही स्थिति मेरी हो गयी है। उस हारे-थके पराजित व्यक्ति-सी।

बस।

सस्नेह—
तुम्हारी सुनीता

सत्यदेवनारायण सिन्हा

कल्पना कीजिये कि जब साहित्यकारों को नींद नहीं आती होगी तो वे क्या करते होंगे; और फिर अपनी उस कल्पना से मिलान करिये यहाँ दिये गये रोचक, अद्भुत उदाहरणों से। हमें विश्वास है, आपकी सर्वत्रविहारिणी कल्पना भी इन यथार्थ दृष्टान्तों के सामने हार मान जायेगी।

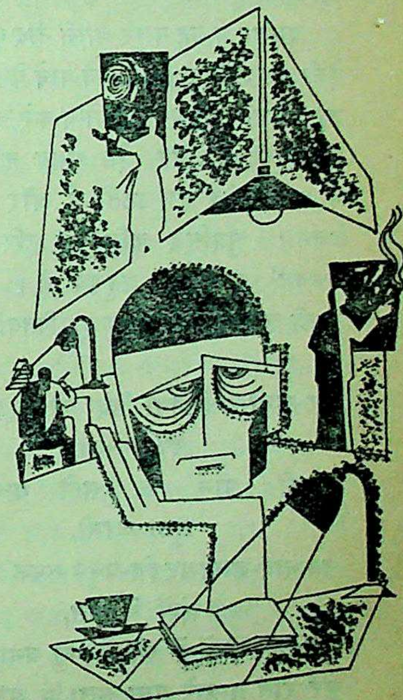
• • •

जब नींद नहीं आती, तब आप क्या करते हैं? यह एक अजीब-सा प्रश्न है। साधारणतः नींद न आने का कारण यही बतलाया या अनुमान लगाया जाता रहा है कि नियमित रूप से जो हमारे सोने का समय है, उसके पूर्व ही अधिक सो लेने के कारण हमें नींद नहीं आती। यह आम-धारणा की बात हुई। लेकिन, नींद न आने पर तरह-तरह के लोगों के मन में मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ होती हैं और शारीरिक प्रतिक्रियाएँ मानसिक प्रतिक्रियाओं के रूप पर परदा डालने के लिए ही होती हैं।

कल्पना और सृजन के लोक में निरन्तर विचरने वाले हमारे साहित्यकारों को भी कभी-कभी नींद नहीं आती और तब ऐसी स्थिति में, उनकी मनः-स्थितियों में भी परिवर्तन होते हैं।

अब आप सम्पादकाचार्य श्री बनारसीदास चतुर्वेदी को ही लीजिये। ३ जुलाई, १९२० से आप नियमित रूप से दोपहर में दो-ढाई घंटे के लिए मीठी नींद का आनन्द लेते रहे हैं जिसके कारण रात में आपको गंभीर नींद नहीं आती, लेकिन रात में सोने के लिए नींद का आना जरूरी है। अतः, आप तीस-बत्तीस वर्षों से जवाकुसुम तेल का प्रयोग करते हैं और इससे आपको अच्छी नींद आने में मदद मिलती है।

प्रकृति अपने अनुपम सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध है।



जब नींद नहीं आती

इसकी शोभा को निहारते समय मानव सब कुछ भूल जाता है और थपकियाँ देकर प्रकृति उसे अपनी गोद में सुला देती है। हिन्दी के वाल्टर स्काट, ऐतिहासिक उपन्यासकार, श्री वृन्दावनलाल वर्मा जिन दिनों किसी उपन्यास की रचना नहीं करते, उन दिनों जब रात के समय नींद नहीं आती, तब किसी जंगल या पहाड़ के रमणीक दृश्य में मन को चलाने की क्रिया अपनाते हैं। दिन के किसी भी झंझट को पास न आने देने का प्रयत्न करते हैं। बस मन जहाँ प्रकृति की किसी 'फितरत' पर रमा नहीं कि आपको नींद आई। लेकिन जब आप किसी उपन्यास की रचना करते होते हैं, और रात्रि में नींद नहीं आती, तब अपने ही उपन्यास के किसी अंग पर --पात्र, घटना इत्यादि पर मन दौड़ाते हैं और आपको नींद आ जाती है।

वास्तव में यह नखरे वाली नींद कभी-कभी ऐसी रूठ जाती है कि इसको पाने के लिए चाहे आप कितना भी प्रयत्न क्यों न करें, आपसे दूर ही रहेगी। लेकिन, ऐसे समय कवियों की भावनाएँ तीव्र हो उठती हैं और कल्पनाएँ सजग। सुप्रसिद्ध कवि श्री हरिवंश राय 'बच्चन' का यही अनुभव है। लीजिए, उनकी एक कविता की कुछ पंक्तियाँ देखिए :

पर कभी-कभी क्या निद्रा को हो जाता है
रूठा करती,
तुमको पाने के सारे यत्नों को
झूठा करती,
तब भाव-जलद पर इंद्र-धनुष रूपक धर कर,
छंदों से कस,
तुम तक गीतों के सौ-सौ सेतु बनाता हूँ।
हर रात तुम्हारे पास चला मैं आता हूँ।

विदेश प्रवास में लिखी गयी यह कविता बच्चन जी की कलम से उस समय निःसृत हुई जब आपकी आँखों से नींद गायब थी। जब-जब रात में आपको नींद नहीं आती, कविता-कामिनी आपकी कल्पना में आ विराजती है और आपसे कुछ लिखवा लेती है।

"रात को भोजन के उपरान्त, शैय्या पर लेटे-लेटे जब घंटों नींद नहीं आती, तब इसका कोई विशेष कारण होता है। या तो किसी भावना का ऊर्जस्वित् रूप मन को आन्दोलित करता रहता है--क्षोभ या हर्षातिरेक के कारण उत्तरंग मानस ही सोने नहीं देता--या फिर किसी चिन्ता के कारण नींद नहीं आती।

जब कभी ऐसी स्थिति में पड़ जाता हूँ, तो चारपाई से उठ कर पहले सिगरेट पीता हूँ फिर कोई विदेशी उपन्यास उठा कर बीच से पढ़ना प्रारंभ कर देता हूँ। दस-बीस पृष्ठ पढ़ लेने पर फिर लेट जाता हूँ। यों तो नींद आ ही जाती है। लेकिन, अगर फिर भी नहीं आती, तो अपने ही किसी उपन्यास के किसी अंश को पुनः पढ़-पढ़ कर देखता हूँ, तौलता हूँ कि कैसा चल रहा है। इससे नयी प्रेरणा तो मिलती ही है। अपने-आप में डूबते-तैरते, उतराते हुए पलकें झपकने लगती हैं और मिनटों में नींद आ जाती है।"

नींद लाने का यह अपना नुस्खा है प्रसिद्ध साहित्यकार श्री भगवती प्रसाद वाजपेयी का।

नींद न आने के कारणों में एक कारण है---चिंतित मन। ऐसे समय रात्रि में नींद का आह्वान करना बड़ा कठिन हो जाता है। मन भटकता रहता है। हिन्दी के जाने-माने नाटककार और प्रसिद्ध कथाकार श्री विष्णु प्रभाकर बताते हैं--"ऐसे समय

अपने को निर्द्वन्द्व समझने का प्रयत्न तो मैं बराबर करता हूँ और कभी-कभी सफलता भी मिलती है। लेकिन सदा ऐसा होता है, यह बात नहीं। तब मैं अपने-आपको किसी काम में व्यस्त करने का प्रयत्न करता हूँ। उन कामों में टहलना, खुले आसमान में तारों का अध्ययन करना, कहानी-नाटक आदि के प्लाटों पर विचार करना, सभी सम्मिलित हैं। आकाश से मुझे विशेष प्रेम है। अकेले घूमने के लिए निकल जाना भी मुझे अच्छा लगता है। उस समय मैं किसी को साझीदार बनाना अच्छा नहीं समझता। एक बार अचानक किसी रोग के कारण मुझे नींद नहीं आई थी और ऐसा लगा कि जैसे अब जीवन का अन्त आ गया है, उस समय मैं बिल्कुल शान्त हो गया। आकाश को देखने लगा, रात्रि के मौन ने मुझे बल दिया। अपनी पत्नी तक को नहीं जगाया और यह सोच लिया कि अगर यही होना है, तो शान्ति के साथ हो। होमियो-पैथी की एक दवा मेरे पास थी, उसे विश्वास के साथ लेता रहा और सहसा मुझे नींद आ गयी।"

सरल-सहज भाषा में हृदय को छूने वाले कथानकों के स्रष्टा श्री द्विजेन्द्रनाथ मिश्र 'निर्गुण' को अक्सर कई कारणों से रात में नींद नहीं आती। जब आप कहानी लिखते हैं और किसी कारणवश वह अपूर्ण रह जाती है, तो उस समय आपको नींद नहीं आती। इसके अतिरिक्त कहानी के किसी पात्र की मृत्यु हो जाये (लेकिन ऐसा कम ही होता है) तो चिन्ता के कारण आपको नींद नहीं आती। आपका कहना है—"बादल छाये हों, तब भी मुझे नींद नहीं आती। बादलों को निहारने में मुझे अतीन्द्रिय सुखानुभूति होती रहती है।... नींद न आने पर मैं कभी उठ कर नहीं टहलता, न कभी कोई काम लेकर बैठता हूँ। न गाना गाता हूँ, न ताश खेलता हूँ। चाँदनी रात हो, तो चाँद को देखते रहने की मेरी आदत है...।"

किसी समय प्रसिद्ध क्रान्तिकारी, पर अब कलम के धनी श्री मन्मथनाथ गुप्त को दिन भर की थकान के बाद रात्रि में बिस्तर पर जाते ही नींद आ जाती है। हाँ, आपको नींद उस समय नहीं आती थी, जब आप जेल में थे। आपने बताया—"जेल की बात याद है। जब कभी-कभी नींद नहीं आती थी, विशेषकर अनशन के दिनों में, तब बहुत लम्बी-चौड़ी बातें सोचा करता था।... यही सोचता था कि अबकी बार तो लम्बी सजा हुई, यदि छूट गया, तो ऐसा कुछ करूँगा जिससे शायद फाँसी हो जाये। बाद को जब जेल में रचना करने लगा, तो अनशन के दिनों में नींद नहीं आने पर उपन्यास का कथानक या कविता की पंक्तियाँ भी सोचने लगा।"

साँझ घिरते ही अगर उदासी घेरने लगे और वह भी इसलिए कि अब तो पीठ चारपाई पर टेकनी होगी, तो हिन्दी की जानी-पहिचानी लेखिका और कवियित्री श्रीमती सुमित्राकुमारी सिन्हा दफ्तर से घर देर से पहुँचेंगी; क्योंकि स्नान करने के पश्चात् स्वच्छ धुले चादर के बिछावन पर जाते ही आपको नींद आ जाती है। यों कवि-सम्मेलन के मंच पर भी सो जाने में आपको ज्यादा देर नहीं लगती। परन्तु जब कभी शारीरिक पीड़ा, मानसिक चिन्ता या किसी अन्य कारण से आपको नींद नहीं आती, तो आप क्या करती हैं,

सुनिए—"इस स्थिति में यदि मैं एकान्त में हुई, तो शैय्या पर पड़े-पड़े ही गाने लगती हूँ। न मैं उठ कर टहलती हूँ, न आसमान निहारा करती हूँ, न कहानी, कविता, उपन्यास का प्लाट सोचती हूँ और न कोई काम ही ले बैठती हूँ। बस मैं कोई फिल्मी गीत, या किसी की भी सुन्दर कविता, रोमांटिक लोक-गीत गाना शुरू कर देती हूँ। नींद को बुलाने का यह मेरा गायन धीरे-धीरे गुनगुना कर नहीं होता, काफी स्वर-आरोह के साथ में गाती हूँ और गाते-गाते निद्रा देवी की शरण में पहुँच जाती हूँ।"

अन्य साहित्यकारों के विपरीत नींद न आने के क्षणों में, प्रसिद्ध कवि श्री गोपालदास 'नीरज' न तो कविता करते हैं, न पढ़ते ही हैं; चाँद-तारों को निहारना भी आपको अच्छा नहीं लगता। नींद बुलाने के लिए टहलना आपको बेकार लगता है। अतः आपकी आँखों से जब नींद गायब हो जाती है, तो आप धूम्रपान करते हैं। असर नहीं होने पर एक से सौ तक की उलटी गिनती या फिर कल्पना की दुनिया में विचरण। इन तीनों उपायों में से किसी एक के द्वारा ही आप निद्रा देवी को रिझा पाते हैं।

'बनारसी एक्का' और 'लफटंट पिगसन की डायरी' के लेखक श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ (बेढब बनारसी) को भला आप कैसे भूल पायेंगे? इनको जब नींद नहीं आती, तो उसे बुलाने का उपाय उन्हीं के शब्दों में सुनिये—"मेरा तो ऐसा अभ्यास है कि जब कभी रात में नींद नहीं आती, तब कोई ऐसी पुस्तक चारपाई पर लेट कर पढ़ने लगता हूँ जिसका विषय कठिन हो, भाषा दुरूह हो और वह बहुत अ-मनोरंजक ढंग से लिखी गयी हो। दर्शन, राजनीति, आलोचना आदि की अनेक पुस्तकें मेरे सौभाग्य से अंग्रेजी और हिन्दी में लिखी गयी हैं, जो मेरे कठिन समय काम आती हैं।"

प्रसिद्ध गीतकार श्री गोपालसिंह नेपाली को जब कभी नींद नहीं आती, तो तन्द्रा की ताना-री-री को छोड़ कर आप अधूरे गीत पर कविता सम्पूर्ण करने लग जाते हैं। अधूरी रचना न हुई तो नई रचना का निर्माण भी आपको प्रिय है। अगर इस पर भी नींद नहीं आये, तो किसी की याद में, नींद के साथ आप अक्सर रात भी उड़ा देते हैं।

श्री फणीश्वरनाथ 'रेणु' रात में सोना नहीं, लिखना चाहते हैं। लिखते समय आपको ऐसा लगता है कि रात सिर्फ मेरी है, मेरी ही। १९५१ ई० की अगस्त की एक रात से आपकी रात की नींद गायब हो चुकी है। आप दिन में सोते हैं और काफी रात गये तक लिखते हैं। 'मैला आँचल' का शायद ही कोई पृष्ठ आपने दिन में लिखा हो। यों दिन में आप किसी के पत्र का उत्तर भी नहीं लिखते। आपने बताया—"...और कुछ चाहूँ या नहीं, पर मैं सोना नहीं लिखना चाहता हूँ। लिखने लगा, तो समझा, रात लिखने के लिए होती है और दिन सोने के लिए। इसी विश्वास के साथ दुनिया में जीने लगा।

नौकरी में आने के बाद दिन की नींद गई। चार से आठ तक की 'ब्राह्मनिद्रा' छूटी। जाहिर है, रात का लिखना कम हुआ। बहुत बुरा हुआ। इधर परीक्षा करके देखा—अभी भी मेरी रात लिखने के लिए है। ...इसलिए मैंने निश्चय किया है कि अब फिर दिन में सोऊँ—रात में चार

साढ़े चार बजे तक लिखूँ...।

रात को लिखते समय ऐसा लगता है—रात सिर्फ मेरी है। मेरी ही !!"

यह कोई आवश्यक नहीं कि साहित्यिक जीवन के साथ नींद का कोई न कोई रोमांचक सम्बन्ध ही हो। रचना के समय रचना, और नींद के समय नींद—इस क्रम से भी तो साहित्यकारों का कार्यक्रम चल सकता है। श्री ब्रजकिशोर 'नारायण' जी का अनुभव हमें यही बताता है। लेकिन, कभी-कभी, कतिपय कारणों से नींद आपसे रूठ जाया करती है। ऐसे समय में आप अपनी या दूसरों की पूर्व-लिखित रचनाएँ गुनगुनाते हैं या संगीत की पृष्ठभूमि से दिल को बहलाने का पूरा प्रयास करते हैं। टहलने या आसमान की ओर देखने के बजाय निश्चल-सा होकर बैठे रहना और उसी चिन्तन में ऊभ-चूभ होते रहना आपको विशेष प्रिय है और यह सब आप इसलिए करते हैं कि ((शायद)—'जिसने दिया है दर्दे दिल, वही मेरी दवा करे।'

'दवा' का नाम याद आते ही मुझे याद आते हैं श्री रमेश बक्षी। आप अनिद्रा के मरीज हैं। नींद लाने के लिए दवा के इस्तेमाल से पूर्व, आपने विशेषज्ञों द्वारा बताये गये कुछ प्रयोग किये। एक प्रयोग था—'एक ऐसे बादल की कल्पना करो जो बिल्कुल काला है और धीरे-धीरे तुम्हें पूरी तरह ढँक लेता है। जैसे ही बादल मस्तिष्क पर छा जाएगा कि नींद आ जायगी।' इस प्रयोग का परिणाम बक्षी जी की जुबानी सुनिए—"जब ऐसी कल्पना की, तो काले बादल में चमकती बिजलियाँ दिखने लगीं और मैं भय के मारे रात भर जगता रहा।" आपके कई प्रयोगों में एक यह है—सोचिये कि आपकी मनचीती प्रेमिका आपके साथ है और आप में उड़ने की शक्ति है। आप दोनों साथ-साथ फूलों वाले बागों के ऊपर उड़ते हुए इन्द्रधनुषी कल्पना में खोये हैं। यह मीठी कल्पना मीठी नींद होगी। जब आप दोनों उड़े तो ये बार-बार नीचे गिर जाते, उधर प्रेमिका का दुपट्टा काँटों में फँसता रहा। कई बार दुपट्टा छुड़ाने की परेशानी से कल्पना में ही उड़ने का 'आयडिया' आपने 'ड्राप' कर लिया।

कई प्रयोगों द्वारा नींद लाने में असफल रहने पर आपका कहना है—"नींद न आने का कारण किसी के द्वारा नींद का चुराया जाना है। मुश्किल यह है कि चोर का नाम मालूम हो जाए, तो फिर जीवन भर नींद नहीं आती...।"

प्रसिद्ध व्यंग्यकार श्री राधाकृष्ण (घोष-बोस-बनर्जी-चटर्जी) को जब नींद नहीं आती तो आप गूढ़ पुस्तकों के अध्ययन की ओर प्रवृत्त होते हैं जैसे, उपनिषद्, आइंस्टीन की रिलेटिव्हिटी थियोरी या क्वान्टम थियोरी की बातें...अक्सर इससे आपको नींद आ जाती है। अगर इससे भी लाभ न हुआ तो आँखें बन्द करके आप यह सोचने लगते हैं कि मैं जंगल में हूँ और शेर के साथ मेरी कुश्ती हो रही है। ऐसी दशा में शेर को परास्त करने के बाद ही आपको नींद आती है।

संसार में हर रंग और हर रुचि के लोग हैं। कहानी, उपन्यास के साथ-साथ और भी बहुत कुछ लिखने वाली, हिन्दी पाठकों की सुपरिचिता लेखिका श्रीमती रजनी पनिकर नींद नहीं आने के समय लिखती कभी नहीं, केवल पढ़ती हैं। जिस रात आपको नींद नहीं आती, बाल्कनी में आरामकुर्सी पर बैठी-

बैठी रात्रि के नीरव वातावरण में आप चांद-सितारों से बातें करती हुई दुनिया भर की कुछ ऐसी सुखद बातें सोचती हैं, जो आपको विशेष प्रिय है। कल्पना-लोक में प्रवेश करते ही आपको नींद आ जाती है।

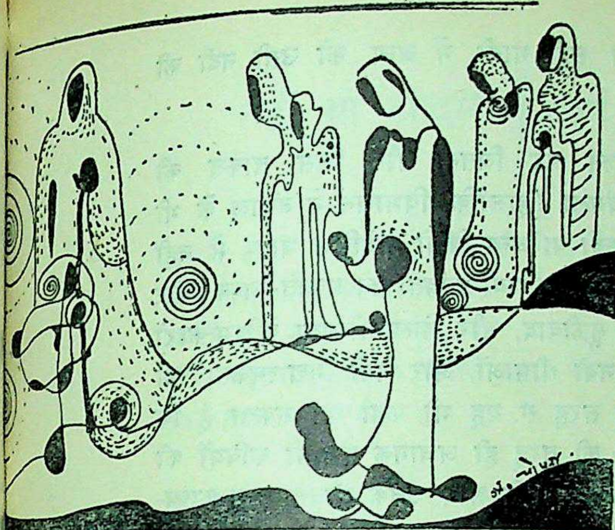
नौकर यदि छुट्टी पर जाने या नौकरी छोड़ देने की नोटिस दे दे, गृहस्वामी किसी बात पर रुष्ट हो जायें, काम की अधिकता हो, घर में कोई बीमार हो, पत्र-पत्रिका में समय पर कोई लेख भेजना हो, तो पारिवारिक समस्याओं एवं विविध विषयों की लेखिका श्रीमती सावित्री देवी वर्मा की आँखों से नींद गायब हो जाती है। और, तब आप उसी विषय पर लेख लिखना शुरू करती हैं, जिसकी चिन्ता के कारण आपको नींद नहीं आती। वैसे समय लेख बनता भी खूब बढ़िया है—अनुभूति, कसक सभी होती है उसमें। रात के एक-दो बजे तक लेख पूरा करने के बाद भी अगर आपको नींद नहीं आती, तो आप बेहद घबरा जाती हैं और तब आप इष्टमंत्र जपती हैं। आँखों पर तौलिया रख लेती हैं। अगर इससे भी नींद न आयी तो अन्त में नींद लाने वाली गोलियों का व्यवहार आपको करना पड़ता है।

युवक कथाकार श्री राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित' पिछले आठ-दस वर्षों से अनिद्रा के शिकार हैं। आपने बताया—"नींद न आना मेरा एक पुराना रोग है। मेरे पहले कथा-संग्रह 'मकड़ी के जाले' की प्रायः सभी कहानियाँ कुछ विचित्र ढंग से लिखी गयी हैं। मैं बिस्तर पर पड़ा-पड़ा प्रायः कोई पूरी कहानी अपने मन में कह जाता था और ज्यों ही कहानी का कहना समाप्त कर लेता, उठ कर लिखने लगता था। कुछ कविताएँ भी इसी तरह मैंने लिखी हैं। जब मुझे नींद नहीं आती, तो मैं परेशानी का अनुभव नहीं करता, कारण इस तरह कुछ लिखा कर, वह वरदान साबित होती है। जब लिखने का मूड नहीं होता, तो मैं प्रायः बाहर आकर बैठ जाता हूँ, दूर हल्के अन्धेरे में पहाड़ों की क्षितिज से मिलती संधि-रेखा भी मुझे आकर्षित करती है।.... बीती घटनाएँ भी याद आती हैं और तब यह सब सोचते-सोचते मुझे नींद आ जाती है।"

हिन्दी की प्रतिभा संपन्न लेखिका वसन्त-प्रभा जी को जब नींद नहीं आती, तो आप खुले आसमान की ओर निहारती हुई, बचपन की वे सभी घटनाएँ याद करती हैं जिनका प्रभाव आपके जीवन पर गहरा पड़ा है। कभी-कभी आप किसी कहानी के प्लाट में डूब जाती हैं। कहानी का पूरा चित्र जब आपके सामने तैर जाता है, तो आपको नींद आ जाती है। मनमुटाव, लड़ाई-झगड़ा, कुंठा और प्रतिशोध की घड़ियों में जब आपको नींद नहीं आती, तो ऐसे समय आप उसी प्रकार की कहानियों का प्लाट सोचती हैं।

जैसा कि मैंने पहले कहा है, यह कोई आवश्यक नहीं कि साहित्यकारों का नींद के साथ कोई न कोई रोमांचक सम्बन्ध ही हो। हमारे कुछ साहित्यकार ऐसे भी हैं जो बिस्तर पर जाते ही गहरी नींद में सो जाते हैं। ऐसे सौभाग्यशाली साहित्यकार हैं—सर्वश्री अमृत राय, धर्मवीर भारती, प्रफुल्लचन्द्र ओझा 'मुक्त' आदि..।





राजकमल चौधरी

नगर-जीवन : चार पंजाबी कविताएँ

एक भाव पर आधारित कई कविताओं वाली इस सीरीज के अन्तर्गत आप अब तक 'ज्ञानोदय' के पिछले जुलाई, अगस्त, सितम्बर अंकों में क्रमशः 'बंगला की चार आधुनिक प्रेम-कविताएँ', 'संस्कृत काव्य के छः वर्षा-चित्र', और 'आधुनिक असंतोष की तीन असमिया कविताएँ' पढ़ चुके हैं ; यहाँ प्रस्तुत हैं पंजाबी काव्य के नगर-जीवन से सम्बन्धित चार कविताएँ ।

● ● ● ●

राजनीति के प्रपंचों और प्रपंच से उत्पन्न परिवर्तित जीवन-स्थिति की ज्वालामुखियों, और ज्वालामुखी से निरन्तर बहते हुए गर्म लावे का जितना असर पंजाब के प्रकृति-गीतों और प्रकृति-कविताओं पर हुआ है, देश के किसी अन्य क्षेत्र की भाषा पर नहीं हुआ है। उन्नीस सौ उन्तालीस के महायुद्ध, उन्नीस सौ छियालीस के सम्प्रदायिक दंगों, उन्नीस सौ सैंतालीस के देश-विभाजन और स्वाधीनता ने पंजाबी कविता की प्रकृति ही बदल दी है। वारिसशाह के 'हीर' के देश की कविता, हरी वादियों और ऊदी हवाओं, और अल्हड़ किसान लड़कियों, और मस्त पहाड़ी चरवाहों, और दूध के निर्मल झरनों, और खेतों-खलिहानों की कविता हाथ-पाँव बाँध कर ज्वालामुखी के शिखर

पर बैठा दी गयी। और, ज्वालामुखी से निरन्तर गर्म लावा बह रहा था। आग की नदी बह रही थी।

और, आज की पंजाबी कविता सही मानी में आग की उसी नदी की कविता है।

सम्प्रदायिक फसादों और विभाजन पर जितनी और जिस ताकत की कविताएँ पंजाबी में लिखी गयीं, बंगला (हालाँकि, विभाजन ने बंगाल के भी दो टुकड़े कर दिये थे।) या हिन्दी या अन्य किसी प्रादेशिक भाषा में नहीं लिखी गयीं। और, इन कविताओं ने पंजाबी कविता को प्रकृति-काव्य, और रूमानियत, और आध्यात्म, और सूफ़ीवाद, और शिल्प-सौम्यता के चमत्कारों से हटा कर, नये यथार्थों, और नयी सीमाओं, और नयी 'गद्यात्मकता' की मरुभूमि में ला पटका। दूसरी तरह से यह भी कहा जा सकता है कि असमिया और तेलुगु और बंगला की तरह ही अचानक पंजाबी कवियों की नयी पीढ़ी अपनी पुरानी पीढ़ी के कवियों से और उनके जीवन तथा काव्य-मूल्यों से छुटकारा पा गयी।

पंजाबी की नयी कविता आधुनिक जीवन की कविता है। सही शब्दों में, नगर-जीवन की कविता है। कविता पहाड़ों, नदियों, झरनों, फूलों, मैदानों, पक्षियों, वृक्षों और शमाँ-परवानों से रास्ता अलग कर चुकी है। कविता के सामने महानगरों का मशीनी जीवनक्रम है। कविता के सामने स्टेट ट्रान्सपोर्ट की बसें हैं, टैक्सियाँ हैं, बेरोजगारी है, फैक्ट्रियाँ हैं, दफ्तर हैं, किरानीगिरी है, मजबूरियाँ हैं, और मजबूरियों के घेरे में कैद; छटपटाती हुई; अवकाश के लिए, सुविधा के लिए, शान्ति के लिए, प्यार के लिए, पहाड़ों और झरनों और फूलों के पौधों की दुनिया में लौट जाने के लिए तड़पती हुई, मनुष्य की आत्मा है। पंजाबी की नयी कविता इसी तड़पती हुई आत्मा की कविता है। और,

'ज्ञानोदय' के लिए पंजाबी कविताएँ चुनते हुए मैंने इसी कविता को ध्यान में रक्खा है। हो सकता है, प्रस्तुत कविताओं के कवि पंजाब के प्रतिनिधि कवि नहीं हों—लेकिन, इतना अवश्य है कि इन कविताओं का स्वर पंजाबी कविता का प्रमुख स्वर है, प्रतिनिधि स्वर है।

ये कविताएँ क्रमशः 'पड़ाव', रुत्ता राँगलियाँ', 'शहराह' और 'अजनबी' संग्रहों से ली गयी हैं। उक्त संग्रहों के कवियों के प्रति आभार प्रदर्शन करना मेरा कर्त्तव्य है।

नहीं था आदमी | मोहन सिंह

कंटीले तारों के बाड़े में क़ैद थी मेरी जिन्दगी
मैं पागल और लावारिस कुत्ते की तरह
अन्धेरे में भागता फिरता था
और, सहता रहता था कंटीले तारों का जख़्म !
तब, तुम आ गयीं,

छन भर को लगा : ये बाड़ा हसीन फूलों का जंगल है
तुम्हारा पास होना ही मेरा एकमात्र मंगल है
छन भर को लगा : यह रात कट ही जाएगी
और, सुबह सारे शहर के साथ
मैं भी जागूँगा
अपने प्यार के सपनों को याद करता हुआ
मैं भी जागूँगा
तुम्हारी आँखों में ठहरी हुई रोशनी को थामे हुए
जिन्दगी के शहराह तय कर लूँगा
सामने मंजिल होगी
हसरतों की सजी हुई महफिल होगी
मगर,
यह सब छन भर की बातें थीं,

तुम एक ख़याल थीं, सच्चाइयाँ तो अन्धेरी, बेख़्वाब रातें थीं
और, मैं पागल और लावारिस कुत्ते की तरह
भागता फिरता था,—इस दफ्तर से उस दफ्तर
इस अफ़सर से उस अफ़सर की टेबुल तक
मैं कोई फटा हुआ बही-खाता था,

नहीं था आदमी !

लुधियाने की लड़की | जगतार पपीहा

लुधियाने की लड़की बहुत परीशान है

अकेली इंडिया गेट तक घूमने कैसे जाए
अकेली बाज़ार से साग-सब्जियाँ कैसे लाए
अकेली सारा दिन कैसे रहे एक कमरे में बन्द
अकेली कैसे ढोलक पर गीत गाए
लुधियाने की लड़की बहुत परीशान है

शौहर दस बजे रात को दफ्तर से आता है
अक्सर ही साथ में दोस्त कोई लाता है
करता रहता है मोटी किताबों की भारी-भारी बातें
इतना कूड़ा दिमाग में कैसे समाता है
लुधियाने की लड़की बहुत परीशान है

इतनी तेज़ी में कहाँ भागते हैं सड़कों पर इतने लोग
जीवन में मिलता नहीं, कहीं रुकने का संयोग
टैक्सी के नीचे एक बूढ़ी औरत दब जाती है
मौत ही दवा है, इतना कठिन है शहर का रोग
लुधियाने की लड़की बहुत परीशान है

आओ, आज घर में ही बैठो, कुछ बात करें
टप्पे गा-गाकर आँगन में फूलों की बरसात करें
लोग पागल कहेंगे, कहें, अपना क्या बिगड़ता है
गीतों की शादी रचाएँ, प्यार की बारात करें
लुधियाने की लड़की बहुत परीशान है

मगर, कबतक ? किसलिए ? | प्रभजोत कौर

कितने बेरहम हैं आप
ज़ेहन की तंग, तिरछी, ख़ामोश गलियों में
क़ैद करते हैं पनपती पौध !
कितने बेरहम हैं आप
दिल को, ख़ून को, धड़कनों को, दर्द को, आवाज़ को
लैबोरेटरी में नापते हैं, तौलते हैं

मगर कबतक ? किसलिए ?
पौध फूटेगी। सुगन्ध कोई रोक पाएगा नहीं !
दिल बुलाएगा—तो, कौन आएगा नहीं ?

आवाज़ गूँजेगी। टूट जाएगा अन्धेरे का तिलिस्म
आप भी तब रूह ढूँढ़ेंगे
भूल जाएँगे बरफ़ में बन्द लाशों का सर्द जिस्म
भूल जाएँगे ज़ेहन
दिल बुलाएगा,—तो आप जाएँगे नहीं ?

कितने बेरहम हैं आप
धड़कनों को, दर्द को, याद को, तनहाई को
लैबोरेटरी में तौलते हैं

मगर, कबतक ? किसलिए ?

अजनबी / दर्शन सिंह आवारा

यहीं की मिट्टी (या, सिमेन्ट ?) मेरी माँ है
यहीं के पार्कों के पेड़-पौधे मेरे साथ बढ़े हैं
यहीं के फूल (या, पेट्रौल की गन्ध ?) मेरी साँसों में
यहीं की सड़कें मेरी हमसफ़र
यहीं की किसी लड़की के लिए
मैंने एक गीत लिखना चाहा था।

इसी घर की दीवारें मेरी जुबान समझती हैं
इसी घर का शीशा मेरा चेहरा पहचानता है
इसी घर के दरवाज़े मेरे लिए बन्द नहीं होते हैं
इसी घर में मेरी किताबें
इसी घर में मेरी नींद
और, नींद में मैंने अपने लिए
सपनों का एक जाल बुनना चाहा था।

यहीं की मिट्टी में आग जलती है
यहीं के पेड़-पौधों को धरती निगल गयी है
यहीं की कोई लड़की अब बेवा है
और, गीतों की कब्र पर रो रही है।

इसी घर का शीशा अब टूट गया है
इसी घर की किताबें फुटपाथों पर बिकती हैं
इसी घर में मुझे नींद नहीं आती है
और, मेरे सपनों की तस्वीर खो गयी है।

मैं अपनी ही दुनिया में अजनबी हूँ।

●

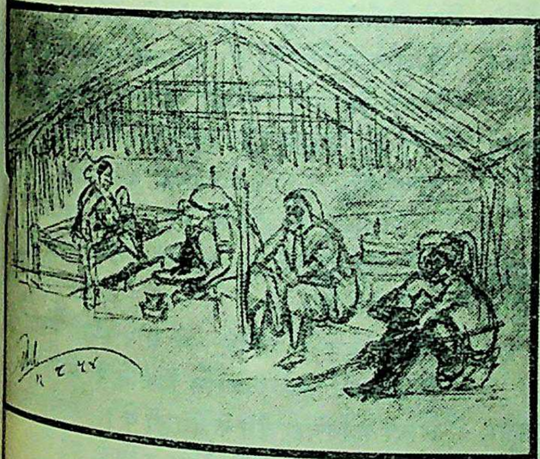
पन्नालाल पटेल
अनु० अरविन्द जोशी

ये नयी - नयी योजनाएँ !

साहब ने 'नेशनल सेविंग सर्टिफिकेट' के लाभ बताये और एक छोटा-सा भाषण देकर अर्थशास्त्र के सिद्धान्त भी समझाये, लेकिन नादान धरती-पुत्रों की समझ में कुछ न आया ; सिवाय इसके कि राजा को रुपये देने के लिए उन्हें या तो अपने ढोरों को बेचना पड़ेगा, या फिर खेतों को रेहन रखने की नौबत आयेगी ।....एक सशक्त व्यंग्य-प्रधान गुजराती कहानी का हिन्दी-रूपान्तर ।

◉ ◉ ◉

गाँव का चौपाल । चौपाल के सामने एक मोटर खड़ी है । चौपाल के पिछले भाग से उठता हुआ धुआँ गवाही दे रहा है कि सवेरे की रसोई तैयार हो रही है । हवा में फैलती हुई सुगन्ध इस बात की चुगली कर रही है कि मूठिये तले जा रहे हैं । कोई हरी मिर्च लेकर आ रहा है तो कोई सब्जी लेकर । एक आदमी लहसून के छिलके निकाल रहा है तो दूसरा मसाला पीसने का पत्थर धो रहा है । नाऊ दही लेकर आ रहा है और कुँभार सिर पर पानी के घड़े लिये हाजिर हो रहा है । दो-तीन अफ़सर इस शोर-गुल में अभिवृद्धि कर रहे हैं ।



चित्र : डॉ० जगदीश गुप्त

चौपाल के सामने वाले भाग में एकदम शान्ति है । इससे यह न समझा जाए कि वहाँ कोई है ही नहीं । पिछले भाग की अपेक्षा आगे की संख्या ही अधिक है । चौपाल में गद्दी-तकिये लगे हैं । एक नौजवान अफ़सर बैठा है और अखबार पढ़ रहा है । उसी के पास तीनेक क्लर्क बैठे हैं ।

सामने, गद्दी के बिल्कुल पास एक

जाजम बिछी है। बीच में काफ़ी जगह छोड़ कर, जाजम के एक सिरे पर दो-चार किसान संकोचपूर्वक बैठे हैं। इनके पीछे धोती-पगड़ी वाले लगभग चालीस-पचास भील कृषक एक-सी पोशाक पहने बैठे हैं। नीचे धूल और कँकरी है, ऊपर से सिर पर कुँआर की धूप पड़ रही है। लेकिन इनमें से न तो कोई जाजम पर बैठना चाहता है और न कोई चौपाल की खुली जगह में बैठने की इच्छा रखता है। यदि इच्छा हो भी तो किसी में हिम्मत नहीं है।

साहब ने सामने बैठे हुए वृद्ध किसान की ओर लक्ष्य कर कहा, "बैठे क्यों हो मुखिया? सारे गाँव की ख़बर लेना हमारे लिए संभव नहीं है।"—पास ही बैठे हुए क्लर्क से नामावली का कागज लेकर अन्तिम आँकड़े पर नज़र घुमाते हुए बोले, "पहली बात तो यह है कि आधे नाम तुमने छिपाये हैं। दूसरी बात यह कि इकहत्तर घरों के बदले तुमने केवल पैंसठ ही लिखाये हैं।"

"ठीक है, बाप जी! राज के वही-खाते में जो निकले सब सही है। लेकिन यहाँ तो छप्पर तीन-बीस हैं। न मानते हों, तो गिन लीजिये।"

"अच्छा, अच्छा! बोलो, तुम कितने लिखाते हो?"

"क्या लिखाऊँ अन्नदाता?"

"फिर वही बात? एक बार मैंने तुमसे कह दिया कि इसमें आगा-पीछा करने से काम नहीं चलेगा।"—क्लर्क की ओर संकेत कर कहा, "लिखो मुखिया के पचास।"

मुखिया ने सिर की पगड़ी उतार कर कहा, "अन्नदाता, गजब हो जायगा! पचास तो मेरे छप्पर पर खपरैल भी नहीं हैं माँ-बाप।"

मुखिया का साथ देते हुए साथ के सभी लोगों ने कहा, "नहीं सा'ब नहीं। हम मर ही जायेंगे।"

साहब हँसे, "अरे पगले! मुखिया होकर ऐसी बात करता है?"—साहब ने विश्वास दिलाया कि "ये पैसे बारह वर्ष में तुम्हें ब्याज सहित वापस मिल जायेंगे। दस के पन्द्रह और बीस के तीस मिलेंगे।"

उन्होंने एक छोटा-सा भाषण देकर अर्थ-शास्त्र के कुछ सिद्धान्त भी समझाये। लेकिन बैठे हुए लोगों को न तो यह समझ में आ रहा था कि खरीद-शक्ति क्या है और न यह कि महँगाई दूर होने का क्या अर्थ है। वे तो केवल इतना समझ रहे थे कि राजा को रुपये देने के लिए या तो ढोरों को बेचना पड़ेगा या किसी के यहाँ साझीदार रहने की नौबत आयेगी।

साहब ने 'नेशनल सेविंग सर्टिफिकेट' का दूसरा फायदा बतलाते हुए कहा, "इस बहाने से तुम लोग सुख-दुःख सहन करके खूब रुपया इकट्ठा कर सकोगे। घर का एक व्यक्ति हर-महीने दो ही आने बचाये और यदि घर में आठ व्यक्ति हों तो प्रतिमाह एक रुपये की बचत हो जाए। वर्ष के बारह रुपये हुए और इस प्रकार यदि दस वर्ष तक चलता रहे तो छे-बीस (१२०) जितनी बड़ी रकम.....

मुखिया को हँसी आ गई, "अरे अन्नदाता! यदि ऐसे ही पैसा बचता तो लोग कर्जदार ही क्यों होते?"

साहब के भाषण देने और रुपया वापस मिल जाने का विश्वास दिलाने के बाद भी लोगों के विचार वैसे के वैसे ही थे। वे मानते थे कि पैसा वापस मिले या न मिले, इस समय बिना पैसे दिये काम नहीं चलेगा। मुखिया

ने बात आगे बढ़ाई, "जरा हमारी शक्ति देख कर ही लिखिये बाप जी ! लिखिये दो रुपये ।"

"क्या मूर्ख हो गये हो मुखिया ?"—क्लर्क ने कहा और एक कागज को उसके सामने रखते हुए बोला, "यह देखो, दूसरे गाँव के मुखिया ने कितने लिखाये हैं ? हैं न पच्चीस रुपये ?"

"होंगे बाप जी ! यहाँ कौन जानता है पढ़ना ? पर आप झूठ थोड़े ही बोलेंगे !"

"बस, तब बोल"—कहते हुए क्लर्क ने कलम उठा ली। साहब ने कहा, "लिखो बीस रुपये।" लेकिन जब मुखिया को फिर से पगड़ी उतारते हुए देखा तो पन्द्रह करा दिये और अन्तिम बात कह दी—"अब कुछ बोलने की जरूरत नहीं है मुखिया ! हाँ, अब किसका नम्बर है ?"

क्लर्क नाम बोलने लगा। जैसे-जैसे नाम आते गये, कभी साहब लिखाते गये और कभी क्लर्क अपने मन से लिखता गया, किसी के पांच, किसी के दस ! पाँच रुपये से कम की गुंजाइश सर्टिफिकेट में नहीं थी।

साहब जानते थे कि इन लोगों के पास पैसा नहीं है, और यह सब परेशानी ही है। लेकिन करें क्या ? चिट्ठी के चाकर जो थे ! जहाँ सारी प्रजा ही गरीब हो वहाँ किस-किस को छोड़ा जाय ?

साहब ने एक गरीब भील की अरज की ओर ध्यान देकर उसे छोड़ देने का विचार किया ही था कि क्लर्क ने उस भील के अंग पर पड़े हुए कपड़े को उतरवा लिया। काली काया पर चाँदी की चूड़ी चमकने लगी। क्लर्क ने कहा, "देखा ! कहता है कि गरीब हूँ !"

साहब को क्लर्क की बात जँच गई। उन्हें ऐसा भी लगा कि जब लंगोटीधारी प्रजा तीन-तीन कपड़े पहनती है, ढोर रखती है तब अवश्य ही ये लोग पैसेदार होने चाहिए न ?

इस भील की मदद के लिए उसके बाद के नाम वाला भील दौड़ा "यह तो सा'ब इसकी बेन की है।"

साहब चिढ़ गये "ठीक, तो लिखो इसके पाँच और इस होशियारी बताने वाले के लिखो दस।"

"अरे बाप रे ! गजब हो जायेगा मा-बाप"—उस भील को मानो सचमुच ही बुखार चढ़ गया।

क्लर्क को एक पर बिन्दी रखते कितनी देर लगती ? उसने कहा "राव जी ! लगा अँगूठा।"

बेचारा राव जी अभी तक इसे मजाक ही समझ रहा था। संकट के समय भक्त जैसे भगवान की ओर देखता है वैसे ही राव जी ने मुखिया की ओर देखा। मुखिया इस भील की सिफारिश किये बिना न रह सका। उसने कहा, 'हाँ, अन्नदाता, यह बिल्कुल गरीब है। औरत मर गई है और दो-तीन छोटे-छोटे बच्चे.........."

साहब समझ गये कि ढिलाई से काम नहीं चलेगा। कड़कते हुए बोले, "यह बच्चों का पालन कैसे करता है ? राजा के नाम पर इससे दस रुपट्टी नहीं दी जाती ?—लगवाओ इसका अँगूठा। जल्दी करो !"

अब क्या था ? क्लर्क सभी के नाम पाँच-पाँच रुपया लिखता चला गया। गड़बड़ तथा आरज़ू-मिन्नत करने वाले के लिए दस का आँकड़ा तैयार ही रहता था।

काम पूरा होने पर साहब ने कहा, "जब

कोई अमलदार पैसा लेने आये और बदले में 'नेशनल सेविंग सर्टिफिकेट' दे तो उसे सँभाल कर रखना।"

मुखिया ही नहीं सारे गाँव के लोगों को लग रहा था कि साहब गप मार रहे हैं। वे समझ रहे थे कि यह सब राजा की धोखा देने की तरकीब है।

एक ही महीने में वसूलने वाला अमलदार आ पहुँचा। किसी ने घाँची की दुकान से एक रुपये पर एक आना प्रतिमाह ब्याज की दर से रुपया कर्ज लिया तो किसी ने धान बेच कर रुपया इकट्ठा किया। किसी-किसी ने तो पहले से ही घी अथवा बकरे-मुर्गे बेच कर जमा कर रखे थे।

परन्तु राव जी की कठिनाई भयानक थी। रुपये पर रुपया ब्याज देने पर भी घाँची उसे पैसा उधार देने को तैयार नहीं था। घर में अनाज भी नहीं था। मिल्कत में मानो या न मानो—केवल एक बकरी और तीन छोटे-छोटे बालक थे। उसने इस नये अमलदार के सामने अर्ज की "सा'ब कुछ नहीं है, क्या दूँ?"

इस बात को सुन कर अमलदार काटने दौड़ा। पाँच सात गालियाँ देकर ऊपर से एक लात जमा दी, "उठ साले सुव्वर! पैसा नहीं है तो बेच दे औरत, पर......"

"लेकिन सा'ब औरत तो मर गई है। क्या बेचूँ?"

"क्या बेचूँ? बताऊँ?"—कहते हुए अमलदार का नौकर आगे धँस आया।

मुखिया को बीच में पड़ना पड़ा। उसने राव जी को घर भेजते हुए कहा, "एक बकरी है, उसे ही बेच दे, जा!"

इस समय गरज राव जी की थी इससे पन्द्रह की बकरी के दस रुपये देने के लिए भी कोई तैयार नहीं था। अन्त में उस दुकानदार को ही 'महेरबानी' करनी पड़ी। उसने आठ रुपये बकरी के दिये और दो रुपये दिये दो आने प्रतिमाह प्रति रुपया ब्याज की दर से।

राव जी के हाथ में दस रुपये का 'नेशनल सेविंग सर्टिफिकेट' आ गया। लेकिन सर्टिफिकेट हाथ में आते ही एक महाभारत समस्या खड़ी हो गई। वह सोचने लगा, "इस कागज को रखूँ कहाँ?"

पलाश के पत्तों से बने घर में न तो कोई पेटी थी और न था कोई मिट्टी का छोटा-सा बर्तन ही। अनाज भरने की कोठी भी टूटी हुई थी। और फिर एकाध महीने सँभालने का प्रश्न होता तो कुछ किया भी जाता, पर यहाँ तो प्रश्न था बारह-बारह वर्ष तक सँभालने का।

राव जी को हँसी आ गई। सोचने लगा, 'वास्तव में यह कागज सँभालने जैसा है भी या नहीं?' इस बारे में पूरी जाँच करने के लिए दो-चार लोगों के साथ वह भी दुकानदार के यहाँ गया।

दुकानदार पढ़ा-लिखा नहीं था। मामूली गुजराती पढ़ लेता था; अँग्रेजी की बात तो दूर रही। लेकिन जब उसने सर्टिफिकेट पर नोट जैसी आकृति देखी और देखा अँग्रेजी राज्य का सिक्का तब कुछ साहस करने का निश्चय किया। हँसते हुए उसने उन भीलों से पूछा, "आठ-आठ आने में देना है यह कागज?"

"अरे, जा-जा सेठ, पाँच रुपये का कागज आठ आने में? खूब ठगना जानता है! चलो सब यहाँ से।"—कहते हुए सब चले गये, पर राव जी नहीं उठा। उसने आज

इस दुकानदार को ठगने का विचार कर लिया था। वह बोला, "इन सबके तो पाँच-पाँच के हैं, और मेरा कागज है दस का।"

"तब तेरा रुपया। बोल देना है?"

"ऊहूँ"--राव जी ने मना कर दिया।

"चल डेढ़। देना हो तो दे, नहीं तो सँभाल इसे।"--कागज देते हुए इतना और जोड़ दिया, "घर जाकर भाजी में डाल देना, खटास आ जायगी।"

राव जी ने दुकानदार के मन की बात जान ली थी और दुकानदार ने राव जी की मरजी को भाँप लिया था। इसीलिये जब राव जी जाने लगा तो दुकानदार ने मना नहीं किया। उसे रोका नहीं। लेकिन राव जी फिर इस कागज को सँभालने की चिन्ता में उलझ गया। इस झंझट से बचने के लिए उसने कहा, "सेठ! कर्ज के दो रुपये ब्याज और मूल सभी चुकता कर लेना है? बोलो है मरजी?'

दुकानदार ने दो रुपये दिखाये और ब्याज के आठ आने तुरन्त ही माँगे, "दो-रुपये का ब्याज आठ आने, ला, रख हाथ में!"

पुनः राव जी को ठंड चढ़ गई, "ओ हो! रुपया लेने में एक बीड़ी पीने जितनी देर नहीं हुई और इतने में हो गया आठ आना ब्याज।"

दुकानदार हँसा, "यही तो बात है। कर ले हिसाब, दो रुपये की दलाली चार आने, और चार आने, एक महीने का ब्याज। यहाँ तो वही-खाते में लिखा नहीं कि महीना हो गया...।"

राव जी जिद पर चढ़ गया, "हिसाब चुकता करो तो दूँ, नहीं तो...।"

"अरे भाई चुकता। चल, ला।" कहते हुए दुकानदार ने कागज लिया, दो-तीन बार उलट-पलट कर देखा। अन्त में निर्णय कर लिया, "पड़ा रहेगा। बारह साल में राजवाला देगा तो ठीक नहीं तो समझूँगा बकरी दस में ही पड़ी थी। धंधा चेख कर तो किया नहीं जाता।" सर्टिफिकेट पर राव जी का अँगूठा लगवाया और वही-खाता खोल कर उसका हिसाब चुकता करते हुए कहा, "बस, अब तो--खुश है न?"

दुकान से बाहर निकलते समय राव जी बेहद खुश था। यही कारण है कि घर जाने के पहले मुखिया को खुश-खबरी सुनाने के लिए उधर मुड़ गया। बाहर से ही अपनी प्रशंसा करते हुए कहने लगा, "मैंने तो उस कागज के ढाई रुपये पैदा कर लिये मुखिया।"

मुखिया को ही नहीं, चिलम फूंकते बैठे हुए अन्य पन्द्रह-बीस लोगों को भी राव जी पर गुस्सा आया। मुखिया ने कहा, "अरे बन्दर, दस रुपये की मार से तो मरा नहीं, ढाई रुपये की मार से मर रहा था क्या?"

क्षण भर राव जी को लगा कि उसने भारी भूल कर दी है और वह ठग लिया गया है। परन्तु दूसरे ही क्षण उसे अपनी कठिनाई याद आ गई। लाचारी दिखाते हुए कहने लगा, "मैं तो नहीं मरूँगा मुखिया, लेकिन बकरी के दूध के बिना लड़का मर जायगा। खैर, इसे भी मैं तो कुछ नहीं मानता। लेकिन"--आसपास बैठे हुए लोगों की ओर नजर घुमाते हुए कहा, "बारह-बारह वर्ष तक तुम सब लोग सँभाल रखोगे इस कागज को?"

अब खुली सबकी आँखें और आँख खुलते ही कागज सँभालने की समस्या विकट दिखाई देने लगी। न पेटी-वेटी है और न

है करंडिया। यहाँ तक कि डंठल से बनी दीवार में ताक जैसा भी नहीं है। सभी को लगा कि राव जी का काम बन गया। उसने कागज के कूड़े में से मोती निकाल लिया।

निस्सन्देह एक-आध-दो लोगों ने चाँटा मार कर गाल लाल रखने जैसी बात भी अवश्य कही, "अरे बाँस की फूँकनी में ही कागज को घुसेड़ कर रखा जा सकता था।" परन्तु उस फूँकनी को कैसे सँभाल कर रखना, यह प्रश्न भी कागज को सँभालने जितना ही कठिन था।

और इसीलिये तो पन्द्रह-बीस के झुंड में से एक के बाद एक खिसकने लगा। सभी भाग-दौड़ और जल्दबाजी करने लगे। सोच रहे थे, देरी करने से कदाचित दूसरा अधिक लाभ में रहेगा। विचारने लगे, "मरने दो, जो मिल जाय ले लेना चाहिये। पाँच सेर नमक भी मिल जाय तो काफी है।" किसी-किसी ने तो यहाँ तक मान लिया कि, "आधा सेर तमाकू मिल जाय तो भी गनीमत है।"

दार्शनिक

एक दार्शनिक को कभी-कभी गर्मी में भी सर्दी लग जाती थी। एक दिन वे छींकते-काँपते अपने डॉक्टर के पास पहुँचे और बोले, "डाक्टर साहब, मुझे सर्दी बहुत सताती है, सारा शरीर ठंडा और शिथिल है—कोई अचूक इलाज आप मुझे बताइये।"

डॉक्टर उनके स्वभाव से परिचित था। उसने जाँच की, तो पता चला कि उनके शरीर में कोई दोष नहीं है।

अतः डॉक्टर ने उनसे कहा, "आप यदि नित्य यह सोचा करें कि आपके सिर पर सूर्य की कड़ी धूप पड़ रही है, तो आपको सर्दी में भी गर्मी का अनुभव होगा और आप बिल्कुल चंगे हो जायेंगे।"

दार्शनिक महोदय को बिल्कुल सस्ता नुस्खा मिल गया। वे डॉक्टर के बताये तरीके पर अमल करने लगे। पर दो ही चार दिन बाद उनके घर से डॉक्टर के पास फोन आया, "डॉक्टर साहब! कृपा करके शीघ्र आइये – दार्शनिक महोदय बहुत सख्त बीमार हैं।"

डॉक्टर ने पूछा, "क्या हुआ?"

उत्तर मिला, "उन्हें घर में बैठे-बैठे एकाएक लू लग गयी है।"

—सत्यदेवनारायण सिन्हा

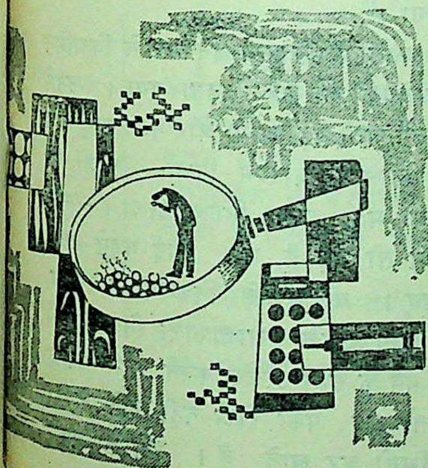
हर्षनाथ

यों तो खोज का प्रारंभ पृथ्वी पर प्राणियों के प्रादुर्भाव के साथ ही हो गया होगा ; लेकिन आधुनिक युग की अनगिनत दिलचस्प खोजों की तो बात ही निराली है । उन्हीं में से एक है यह विटामिन की खोज ।

◎ ◎ ◎ ◎

खोजों का क्रम कब से प्रारम्भ हुआ ; इसका कोई क्रम-बद्ध इतिहास नहीं । किन्तु क्रम-बद्ध इतिहास के अभाव में भी इतना तो निःसंकोच कहा जा सकता है कि धरती पर प्राणियों के प्रादुर्भाव के साथ ही खोज का क्रम प्रारम्भ हो गया—खाने-पीने की चीज़ों की खोज, रहने की जगहों की खोज, पहनने-ओढ़ने की चीज़ों की खोज, शत्रु-मित्र की खोज और यह खोज प्रारम्भ हुई तो आज अन्तरिक्ष की खोज तक पहुँच गई ।

खोजों का प्रारम्भिक इतिहास उपलब्ध नहीं है ; फिर भी जितना ज्ञात है उसके आधार पर हम कह सकते हैं कि सबसे प्रामाणिक खोज हनुमान जी ने की जब वह राम के दूत के रूप में सीता जी की खोज में निकल पड़े थे और लंका में अशोक वाटिका में उन्हें ढूँढ़ निकाला था । हनुमान जी द्वारा सीता जी की इस खोज के पश्चात् प्रामाणिक खोज का वृत्तान्त महाभारत काल में मिलता है ; जब पांडव अज्ञातवास कर रहे थे और कौरव उन्हें खोज रहे थे । दुर्भाग्यवश कौरव इस महत्त्वपूर्ण खोज में असफल रहे ; जिसका दुष्परिणाम सारे भारतवर्ष को भोगना पड़ा । इतिहासज्ञों का यह निश्चित मत है कि अगर उस अज्ञातवास में पाण्डवों को कौरवों ने ढूँढ़ निकाला होता तो वह महाविनाशकारी महाभारत टल गया होता । किन्तु दुर्भाग्य की बात कि कौरव अपने इस सद्प्रयत्न में असफल रहे । इसके पश्चात् अन्य छोटी-बड़ी



विटामिन की खोज

खोजें होती रहीं--अमेरिका की खोज, भारत के समुद्री मार्ग की खोज, जवाहरलाल नेहरू द्वारा 'भारत की खोज' और अब मेजर यूरी गैगरिन द्वारा अन्तरिक्ष की खोज।

किन्तु ये खोजें स्थूल और भौतिक हैं। आध्यात्मिक खोज ब्रह्म के विषय में हुई और तत्वदर्शियों ने 'नाम-रूप-गुण-हीन' ब्रह्म की खोज कर डाली। इस खोज की विशेषता यह है कि इसका अन्वेषण करने वाले ही इसका दर्शन कर पाते हैं एवं वे ही इसकी प्रामाणिकता के विषय में बता सकते हैं। यहीं ब्रह्म खोजने वाले आगे बढ़ते गये और ऐसे ही मनीषियों ने विटामिन की खोज की। अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर उन्होंने कहना प्रारम्भ किया कि यह शरीर विटामिनों के अस्तित्व पर ही निर्भर है। यदि शरीर में विटामिन सन्तुलित रूप से न हों तो इस शरीर में प्राण का रहना असम्भव हो जायेगा। दाँत, आँख, श्रवण-शक्ति आदि तो पल मारते चली जायेंगी।

किसी बुद्धिमान ने कहा है कि सत्य का मार्ग एक है और झूठ के हजार रास्ते हैं। इसके प्रमाणस्वरूप इन विटामिन के आविष्कारकों ने विटामिन के अस्तित्व की घोषणा करने के पश्चात् उनके नामकरण की योजना बनाई। ए. से प्रारम्भ करके बी. सी. डी. और इस तरह वर्णमाला के अन्तिम अक्षर तक पहुँचा दिया। पण्डितों के मतानुसार ब्रह्म की माया से तो त्राण मिल सकता है; विटामिनों की माया से मूर्ख भले ही बच जायें; किन्तु शिक्षितों के लिए कोई त्राण नहीं।

इन विटामिनों की माया ने विचित्र प्रभाव दिखाया। पहले जो चीजें उपेक्षित थीं, जिन्हें कोई टके सेर भी नहीं पूछता था, वह सोने के मूल्य विकने लगीं। गाजर पहले बैलों के खिलाने के काम आता था; जब से उस पर विटामिन की मुहर लगी, वह अनमोल हो गया। भक्त जिस भावना से ईश्वर को देखता है, उससे भी अधिक आदर की भावना से विटामिन-प्रेमी गाजरों को देखने लगे। टमाटर पहले अछूत था, अब विटामिन की कृपा से सभी उसके प्रेमी बन गये। मटर पहले मारी-मारी फिरती थी, चने को कोई पूछता नहीं था, उसकी उपेक्षा व्यंजित करते हुए 'चना चवेना' कर दिया था। अब विटामिन की महिमा ने उसे दुर्लभ पदार्थ बना दिया। विटामिनों की खोज से परम्पराएँ भी बदल गईं। पहले लोग चावलों को अच्छी तरह धोकर पकाते थे, अब विटामिन के ठेकेदारों ने चेतावनी दी--"सावधान, यदि प्राणों का मोह है तो चावलों को धोओ मत, विटामिन नष्ट हो जायेंगे। दाल को ज्यादा उबालो मत, विटामिन उड़ जायेंगे। जौ-गेहूँ की भूसी मत निकालो--शरीर एक दिन में गल जायेगा।"

जनता के इस अन्ध-अनुकरण से विटामिन के अन्वेषकों का साहस बढ़ता गया। उनमें एक वर्ग आगे बढ़ आया और गला फाड़-फाड़ कर चिल्लाना प्रारम्भ किया--"चीज़ों को पकाओ मत, कच्चा निगल डालो।"--यह दुनिया तो भेड़ है, उसे कोई मूड़ने वाला चाहिए। बस मुँह से निकलने की देर थी, कुछ लोग उनके आज्ञाकारी निकल आये और गर्व के साथ उल्लेख करने लगे--"भाई, हम तो अब पकी रोटी नहीं खाते, कच्चा गेहूँ भिगो कर खाते हैं। चने का अंकुर

निकल जाने पर खाइये, देखिये कैसी शक्ति आती है।"

फिर तो अब कुछ लोग कच्चा बैंगन, लौकी, कुम्हड़ा, गोभी, साग-पात बकरियों की तरह चबाने लगे। विटामिन डी के मोह में शरीर पर सरसों का तेल लगा कर घण्टों शरीर को धूप में सुखा डालते हैं; ताकि उनकी हड्डियाँ फौलाद की बन जायें। फिर भी इन विटामिन-प्रेमियों का शरीर हवा के झोंके से कच्चे बाँस की तरह लचक जाता है।

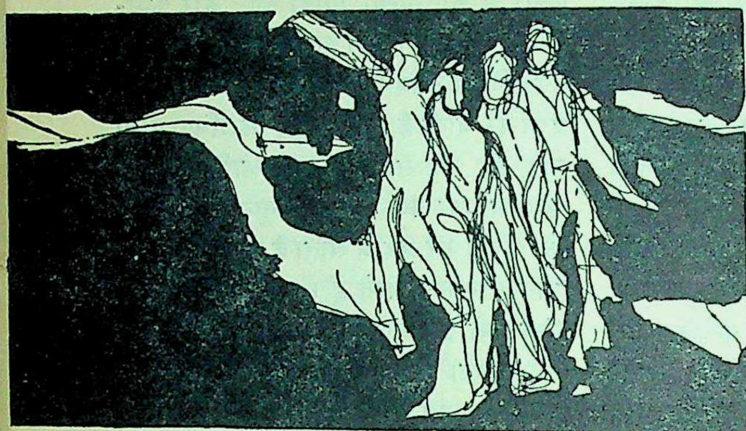
वास्तव में ये विटामिन के अन्वेषक और उसके प्रेमी बुद्धि से काम नहीं लेते। सीधी-सी बात उनकी समझ में नहीं आती कि विटामिन यदि साग-सब्जी, अनाज की भूसी और चोकर में होता तो उनके खाने वालों ने अब तक पहाड़ खोद डाले होते, पर शायद ही किसी विटामिन-प्रेमी में मूली तोड़ने की भी शक्ति हो। अतएव यदि मनुष्यों के शरीर को पुष्ट करना ही है तो हमें प्राणीमात्र के सब का अध्ययन करना पड़ेगा। साथ ही इस बात पर भी विचार करना पड़ेगा कि संसार में कौन प्राणी ज्यादा तगड़े और कष्ट-सहिष्णु हैं एवं उनकी खाद्य-सामग्री क्या है। इस दृष्टि से सर्वप्रथम हमारी दृष्टि गधों और बैलों पर जाती है, जो विशुद्ध निरामिष-भोजी होते हुए भी सशक्त हैं। आखिर इनकी खाद्य-सामग्री क्या है? मनुष्य नफ़ासत के फेर में पड़ कर अनाज खाता है और ये जानवर घास और भूसा खाते हैं। यदि कोई विटा-मिन-प्रेमी इस ओर झुके तो वह काफ़ी काम कर सकता है। इन्हीं पदार्थों को खाकर घोड़े, बैल, गधे आदि हमसे अधिक शक्तिशाली हैं। अतएव यदि मनुष्यों को अपनी शारी-रिक-शक्ति बढ़ानी है तो इन चीजों की ओर झुकना ही पड़ेगा। इस विषय में विटामिन-प्रेमियों के लिए मैंने दिशा का इंगित भर किया है, अब उनका कार्य है कि वे इस रास्ते पर आगे बढ़ें। ● ● ●

दोहरी बहस

अब्राहम लिंकन अपनी युवावस्था में वकालत करते थे। एक बार उन्हें एक ही दिन दो अलग-अलग मुकदमों में वकालत करनी थी। एक में वे वादी की तरफ से वकील थे तथा दूसरे में प्रतिवादी की ओर से। पहला मुकदमा उन्होंने जीत लिया। दोपहर को दूसरे मुकदमे के समय न्यायाधीश ने मुस्कराते हुए पूछा, "आपने आज सुबह जो कुछ कहा है उसके विपरीत अब क्यों बोल रहे हैं?"

लिंकन ने निःसंकोच जवाब दिया, "मैंने सुबह जो कुछ कहा था, वह भले ही ग़लत रहा हो, लेकिन इस मुकदमे में मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह पूर्णतया सही है।"

—विश्वनाथ मुखर्जी



कहीं कुछ खो गया है
ऐसा जो कभी नहीं था, कहीं नहीं था ।
हर चीज़ एक खोखले अट्टहास में गूँजती हुई
अनिद्रित, आशंकाग्रस्त.....। सन्न-सन्न––
हवा चलती है । सब कुछ जहाँ का तहाँ ; जैसा का तैसा––
रूप, रंग, अवस्थाएँ । पृथ्वी––पूर्ववत, व्यवस्थित, असहाय ।
लेकिन कहीं कुछ खो गया है ज़रूर
और यह महसूस करना, स्वयं
उपहसित होना है ।

नींद में अचल एक मकान, एक नदी, एक नगर
कहीं साँझ, कहीं रात, कहीं सुबह––एक ही क्षण के
अन्तराल में
अनेक छायाएँ ।
एक मचान पर बैठी सहानुभूति
चिड़ियों के झुण्ड उड़ाती है ।

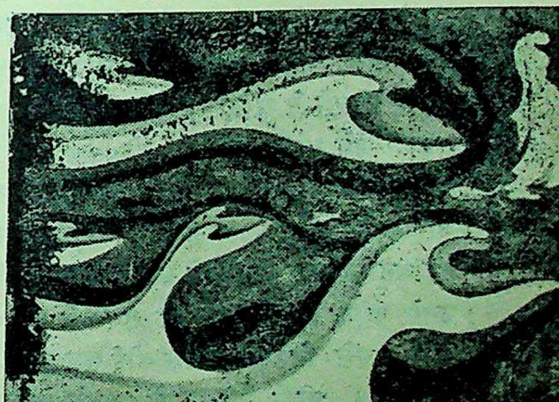
कहीं कुछ खो गया है !

अर्थहीन प्रारम्भ के पूर्व ही विलीन होती एक चीख़
और यह सब महसूस करना—स्वयं
उपहसित होना है ।

सृजन—जैसे एक मासूम चेहरे पर चमड़े के गोल-गोल लट्टू उग आयें
मरे हुए इकलौते शिशु की अनन्त खिलखिलाहटों की झाँझ
पिघलते हुए लोहे-सी बारिश का स्वर, या अन्तरिक्ष पाऽर
एक अजनबी धूप के बहने का शोर ।

कथित, अकथित—घुले हुए रंगहीन रंग
सूनेपन को पुकारती, सूनेपन की आवाज़
घाटी, पर्वत या गुफ़ा या मज़ार
धधकती आग, और आदमी को फ़तह करती
वही—वही आदिम प्यास ।
और यह सब महसूस करना—स्वयं
उपहसित होना है ।

कहाँ हो ओ तुम ! ओ तुम खोये हुए
ऐसे, जो कभी नहीं, कहीं नहीं थे
ओ तुम ! कहाँ हो ??





हृदयेश

•

बहनें दो : अनुभव एक

'दोनों की निगाहें एक-दूसरे पर जम गयी हैं। दोनों एक-दूसरे का अनकहा पढ़ लेना चाहती हैं।......दोनों के हृदय की धड़कनें सन्नाटे में उन दो परिन्दों के पंखों की फड़फड़ाहट सरीखी गूँज रही हैं, जो अँधेरे में भटक रहे हों।'

•

जलती रेत जैसी धूप अभी आँगन में बिखरी ही है और गर्म हवा उखड़ी साँस की किसी रोगिणी जैसी वैसी ही हाँफ रही है कि कमला चलने की तैयारी करने लगी। तैयारी का मतलब सिर्फ यह है कि वह कपड़े बदल डाले, चादर ओढ़ ले और पैरों में चप्पल डाल ले। आँगन के पार दूसरी कोठरी से घर्रर्-घर्रर् खिट्-खिट् की आवाज़ आ रही है, सोता हुआ सन्नाटा जैसे घर्राटे भर रहा हो।

"कहती हूँ कि दुपहरी में कुछ छन आराम कर लिया करो। पर आराम तो उसे काटता है।" कमला बड़बड़ायी। लेकिन दूसरे क्षण उसे यह अनुभव हुआ कि अभी सामना होते ही विमला घुमा-फिरा कर यही बात उससे कहेगी। विमला यह समझती क्यों नहीं है कि लू-तपासों में इतनी जल्दी घर से निकलने में उसे कोई सुख नहीं मिलता है। मजबूरी ही कोई होती है। बीबी जी आज लड़के के पास जा रही हैं। बोली थीं कि

कमला कुछ लड्डू, मठरी और नाश्ता तैयार करता है, जल्द ही आ जाना। नौकरी कर क्या वह इन्कार कर सकती थी, भले ही ऐसा रोज़ चलता हो।

धूप में इतनी तपन है कि गली पार कर सड़क पर आते-आते कमला का गोरा चेहरा तमतमा आया। हवा के थपेड़ों से बार-बार अलग होती चादर को उसने कस कर लपेट लिया है। वह रोज़ चप्पल में कील दाबती है, पर रोज़ वह उभर आती है और चलने में अड़चन डालती है। उसकी अपनी चप्पल यों नई-सी है, पर वह विमला के लिए छोड़ आती है और उसके मना करने पर भी उसकी पहन आती है।

कमला ने सोच लिया है कि वह बीबी जी से आज दो बातें कहेगी, एक तो यह कि वह अब महीना बढ़ा दें, काम वह उसका देख ही चुकी हैं, जिस वक्त कहा उसने हाज़िरी दी। और दूसरी बात यह कि कानपुर में वह विमला के लिए किसी अच्छे लड़के पर नज़र रखें।

विमला की शादी में कमला अपनी इच्छाओं-आकांक्षाओं की पूर्ति देखना चाहती है। विमला वैसी किसी लाचारी-मजबूरी का शिकार न बने जैसी वह बनी थी। माँ की असहायता और निर्धनता जन्य वह विवशता ही तो थी जिसने उसे एक निर्धन, संग्रहणी के पुराने रोग से आक्रान्त पुरुष के साथ बाँध दिया, जो दो वर्ष के अन्दर ही उसे सधवा से विधवा बना गया। अब माँ भी नहीं है और विमला, अपनी छोटी बहन, का सारा भार उस पर है।

कोठी के अन्दर आकर कमला ने चादर उतार कर सिदरी की खूँटी पर टाँग दी। बीबी जी नौकर छोकरे रमलू से बिस्तर बँधवा रही थीं। वह समय से आ गयी है, बीबी जी यह जान कर प्रसन्न हैं, यह उनके चेहरे की फैल गयी रेखाओं से स्पष्ट हो गया था। जब तक अंगीठी दहके-दहके कमला ने मठरी के लिए मैदा मल डाला, घी का अच्छी तरह मोइन दे दिया ताकि मठरी सख्त न पड़ें, और अन्दाज़ से नमक और अजवाइन छोड़ दी।

मठरी बन गयी हैं। लड्डू भी तैयार हो गये हैं। समय भी खिसक चुका है। बीबी जी की गाड़ी छः पर जाती है। साढ़े पाँच बजे बीबी जी घर से चली जायेंगी। दूकान से लाला जी आ गये थे। लाला जी स्टेशन तक ही जायेंगे, कानपुर तक मुनीम जायेगा।

महीना बढ़ा देने की बात सुन कर बीबी जी कुछ गुस्सा गयीं कि अच्छा मौका छाँटा। वहाँ जाकर क्या वह लौटेंगी नहीं? फिर जितना वह दे रही हैं, दूसरे घरों में औरों को उतना दिया भी नहीं जाता। वक्त आयेगा तो वह कुछ और भी बढ़ा देंगी। कहा है तो मुकरेंगी नहीं।

कमला बिना उत्तर दिये काम करती रही। कुछ देर बाद बीबी जी का गुस्सा जब ठंडा गया उसने विमला की बात कह दी। इसमें गुस्साने की कोई वजह थोड़े है।

बीबी जी गुस्साई भी नहीं। दाँत चमकाते हुए बल्कि प्रसन्नता ही प्रकट की—"पर उस दिन तो तू कह रही थी कि विमला अभी छोटी है।"

"...यों उम्र तो उसकी छोटी ही है बीबी जी, पर अगर लड़का अच्छा मिल जाय तो मैं शादी कर दूं।"

बीवी जी चली गयी हैं। जाते हुए आगाह कर गयी हैं कि लौट कर उन्हें सुनने को कोई शिकायत न मिले। भला वह शिकायत सुनवाना क्यों पसन्द करेगी ?

खाना अब तीन प्राणियों का ही बना करेगा। एक लाला जी का, एक उन छोटे लाला जी का, जो दोनों जून खाने के वक्त पर ही घर आते हैं, वैसे बराबर दूकान पर ही बने रहते हैं; और एक बूढ़ी माता जी का, जिन्हें न दिखायी देता है और न सुनायी, बस जहाँ बैठाल दो वहीं बैठी रहेंगी। यों तीन प्राणियों के खाने में अधिक समय नहीं लगना चाहिए, पर इस घर में खटराग यह है कि दस तरह की सब्जियाँ बनेंगी, भले ही ज़रा-ज़रा-सी, और खाने के लिए जो भी आये उसकी थाली में रोटी या पराँठा गर्म पड़े।

शाम को सात बजे दूकान पर ताज़ा नाश्ता भी बन कर जाता है और उसने उसे नौकर छोकरे रमलू के हाथ भेज दिया है।

अन्धेरा घिरने लगा है और कमला कतरी हुई सब्ज़ियाँ छौंकने लगी है। सब्जियाँ बनाने में कम से कम दो घंटे लग जायेंगे। छोटे लाला जी पहले आकर खा जाते हैं, करीब नौ पर। खाकर जब वह दूकान सोने जा लेते हैं तब बड़े लाला आते हैं।

जब कोई काम नहीं होता, अँगीठी के पास बैठी कमला घुटनों पर ठोड़ी रख कर पलकें झुकाये अपने में सिमट जाती है। कमला ने कुछ रूप ऐसा पाया है और उसके शरीर की काठी कुछ ऐसी है कि न जानने वाले धोखा खा जाते हैं कि वह उसी घर की कोई लड़की-बहू है न कि खाना बनाने वाली महाराजिन।

सब्ज़ी पकने की गन्ध, भाप की सूँ-सूँ की आवाज़, कमला को कल्पना-लोक से वापस खींच लाती है और कमला फुर्तीले हाथों से सब्ज़ी परखती है, उतारती है और दूसरी चढ़ा देती है और फिर अपने में सिमट जाती है।

घर में यह पहला ही मौका है कि बीवी जी नहीं हैं। बीवी जी के न होने से घर में कितना सूनापन हो गया है। इस सूनेपन से कमला को न जाने क्यों भय लग रहा है, शरीर में एक कँपकँपी-सी दौड़ती है। वह चौके के आगे की सिदरी में माता जी की खाट घसीट लायी है। पराये घर में एक आदमी पास में हो, भले ही वह चाहे जैसा हो, तो सूनेपन का भय कुछ कम हो जाता है। इतनी बड़ी कोठी है और अकेली वह। सब ओर ताले पड़े हैं। उनकी ताली पहले बीवी जी के पास रहती थीं, अब लाला जी के पास होंगी।

छोटे लाला खाना खाकर चले गये हैं।

बड़े लाला को खाना खिला और समेटा-बटोरी कर जब वह चलेगी तब दस बज चुके होंगे। घर पहुँचते-पहुँचते पन्द्रह-बीस मिनट और लग जाते हैं। खा-पीकर ग्यारह तक ही वह सो पाती है। सुबह पाँच पर उठना और सात बजे फिर काम पर आ जाना।

बड़े लाला भी आ गये। थाली लगा कर उसने उनके आगे रख दी है। चौके के आगे एक लम्बा-सा तख्त पड़ा है और लाला जी वहीं बैठ गये हैं।

लाला ने उसके बनाये खाने की प्रशंसा की है। वह क्या कहे, सिवा इसके कि उसकी कोशिश यही होती है कि खाना इच्छानुसार बने।

लाला ने पूछा है कि बीवी जी से जो वह पगार बढ़ाने के लिए कहती थी तो वह कितना चाहती है।

कमला को कुछ कहते हुए भय लगा। कुछ देर तो वह हृदय की बढ़ गयी धड़कन को ही दबाती रही, फिर मुस्कराते हुए लाला को अपनी ओर ताकते पाकर बोली—"बीवी जी पर है। उन्होंने कहा था सो मैंने याद दिलायी थी।"

कमला ने गरम पराँठा थाली में डाला है। लाला ने उसकी कलाई पकड़ ली है। उसके बदन में सिहरन दौड़ गयी और सारा शरीर पसीने से भीग गया। जैसे वह नहायी हो और तन न पोंछा हो।

अपने आप ही मुँह से एक चीख छूटी, हाथ ने एक झटका मारा और वह अलग हो गयी। लाला सिटपिटा-से गये। होश-हवास खोयी-सी उसने चादर उतारी और बाहर आ गयी। गनीमत यह हुई थी कि लाला ने फिर कोई और कोशिश नहीं की थी, बस खिसियाई-सी हँसी हँसते रहे थे।

लाला के घर से कमला के घर तक का रास्ता कम नहीं है। पैरों की तेज़ी के साथ विचारों की भी तेज़ी रही। पहले तो यह इरादा बना कि वह अब यह नौकरी छोड़ देगी, पर यह इरादा धीरे-धीरे पिघलता गया। नयी जगह काम मिलने में दिक्कत होती है। बीवी जी चार ही रोज़ के लिए गयी हैं। पाँचवें रोज़ वह आ जायेंगी। न होगा वह इतने दिनों काम पर न जायेगी। बीमारी का बहाना कर लेगी। फिर विचारों की यही गति उसे विमला की स्थिति पर ले आयी। वह भी अकेली घरों में घूमती-डोलती है। यह दुनिया है, दुनिया। अब धर्म, हया-शर्म उठ गयी है। उस बेचारी पर भी कोई बुरी निगाह डाल सकता है। वह तो अभी पूजा के फूल जैसी है। किसी ने स्पर्श भी किया कि अपवित्र, देवता पर चढ़ने के अयोग्य। किसी की बदनी-यती जितना विमला का बिगाड़ सकती है उतना उसका नहीं। उसका अब बिगड़ने को रह ही क्या गया है! पर विमला के पास अभी सब कुछ है, सब कुछ।

: २ :

विमला चाह रही है कि जीजी जल्द ही आ जायँ। यों अभी उसके आने की बेला नहीं हुई है, पर फिर भी उसे लग रहा है कि जीजी ने आने में बहुत देर कर दी है। जहाँ चौके में वह बैठी है, वहाँ ढिबरी रह-रह कर भभक उठती है। या तो ढिबरी के कल्ले में ही कोई खराबी हो गयी है या दूकान से आये तेल में पानी मिला है।

विमला के जिस्म को कोई छूता तो अब भी गर्म पाता। कुछ देर पहले तो वह और भी गर्म था और उससे कुछ पहले और भी, जैसे शिराओं में रक्त की जगह तेज़ाब दौड़ने लगा हो।

हवा का एक झोंका आया है और राख में लिपटे अंगारे पर से राख झड़ गयी है और वह अँधेरे में जुगनू जैसा चमकने लगा है।

दोपहर को जीजी को गये एक घंटा ही बीता होगा कि विमला ने मशीन बन्द कर दी थी। जितने कपड़े सिलना थे, सिल गये थे। सिलाई थी ही कितनी? दो ब्लाउज थे, दो बचकाने जाँघिये और चार बनियानें। वैद्य जी की बीवी ने कहा था कि इतने कपड़े सिल कर वह दे जाय फिर और ले जायं।

राधे बाबू, गोपीचन्द लाला और टोपी

वालों के यहाँ भी उसे जाना था। वहाँ भी सिलाई मिलने की सम्भावना थी।

विमला सिलाई पाकर खुश होती है। दो-ढाई घंटे की भी सिलाई मिल जाय तो हाथ में रुपया-बारह आना आ जाता है। पैसे आते हैं तो वह जीजी के हाथ में रख देती है। रख कर वह और भी प्रसन्न होती है। अन्तर की यह भावना उसे असीम परितोष देती है कि वह जीजी के लिए कुछ कर रही है। उसकी जीजी दुखी, पीड़ित आत्मा है। बेचारी को सुबह से शाम तक पराये घर में पिसना पड़ता है। आय का एक ऐसा स्थायी साधन हो जाय कि जीजी को यों न पिसना पड़े। पर उतना काम उसे मिल कहाँ पाता है। कभी-कभी तो कुछ भी नहीं मिलता है। मशीन किश्तों पर ली है। अभी उसी का रुपया निबटने को बाकी है।

वैद्य जी के घर कपड़े लेकर जब वह गयी तो वहाँ उसे दूसरे कपड़े लेने के लिए दो घंटे बाद बुलाया गया। वैद्य जी की लड़की किसी सहेली के यहाँ गयी हुई थी। कपड़ा उसी के पास था और उसे ही अपना पेटीकोट सिलवाना था।

वह वहाँ से उठ कर टोपी वालों के यहाँ आ गयी। यहाँ उसे काम न मिला। गोपीचन्द लाला के यहाँ भी नहीं मिला। वहाँ कपड़ा दूसरे दिन आयेगा। पर गोपीचन्द लाला के लड़के की बहू बड़ी चुलबुली है। बोली थी—"तुम जो धूप में इतना दौड़ती हो तो रंग काला पड़ जायगा और दूल्हा बेचारा घाटे में रहेगा।"

विमला लजा कर हँस दी थी।

भाभी ने बिठला कर और बातें करना चाहा। भाभी की बातें यों बड़ी दिलचस्प और रसीली होती हैं, पर विमला के पास जब अवकाश हो तब न! सिलाई का काम बटोर कर उसे घर का काम देखना होता है। अन्धड़ के दिन हैं। एक दिन भी अगर सफाई रह जाय तो दीदी लौट कर अपने हाथों करती हैं। वह किसकिसाती जगह में उठ-बैठ ही नहीं सकतीं। फिर वह खाना पकाती है। थकी-माँदी जीजी को लौट कर कोई काम न करना पड़े, उसे बराबर यह ध्यान रखना होता है।

राधे बाबू की पत्नी पीठी पीस रही थी। पूछने पर कहा कि हाँ भैया को अपनी दो बनियानें सिलवानी हैं, वह तो बुलवाने वाली थी। भैया ऊपर हैं, सिर में कुछ दर्द है। वह ऊपर जाकर कपड़ा ले ले। राधे बाबू के साले राधे बाबू के पास रहते हैं। अकेले हैं और यहाँ काम देखते हैं और यहीं पड़े रहते हैं। एक पैर में उनके पैदाइशी नुक्स है। चालीस के हो रहे हैं।

वह नीचे आँगन में ही खड़ी रही। अकेले ऊपर जाते उसे झिझक हुई।

राधे बाबू की पत्नी ने पीठी पीसते हुए ऊपर मुँह उठा कर आवाज़ लगायी—"विमला आयी है। बनियानें सिलवाने को कहते थे। सिलवाओगे?"

ऊपर से एक मोटी आवाज़ आयी—"हाँ, सिलवानी है, ऊपर भेज दीजिओ।"

राधे बाबू की पत्नी ने उससे ऊपर जाने को फिर कहा और वह ऊपर चली गयी।

उसे देखते ही राधे बाबू खाट से उठ कर बैठ गये। एक बनियान टँगी हुई थी, उसे उतार कर दिखलायी। दर्जी के यहाँ की सिली हुई है, पर उसे पसन्द नहीं। उसे

उसके सिले हुए कपड़े पसन्द आते हैं। वह मोटे ओंठ फैलाते हुए हँसने लगे।

सीधे मर्दों से बातचीत करते हुए उसे झिझक और भय लगता है। वह सर झुकाये, सीधे पैर के नाखून से धरती खुरचती हुई खड़ी रही और कहना सुनती रही।

राधे बाबू के साले ने अल्मारी से मारकीन का पैकेट निकाल कर दे दिया। मारकीन देते हुए एक भद्दी मुस्कराहट फिर मुस्करा दिये—"बजाज बड़े बेईमान होते हैं। घर पर जाकर अच्छी तरह कपड़ा ज़रूर नाप लेना। नाप में डेढ़ गज होना चाहिए। बनियान भले ही देर-सबेर से देना पर कपड़ा आज ही ज़रूर नाप लेना।"

वह जल्दी से नीचे उतर आयी। राधे बाबू की पत्नी ने पूछा कि भाई ने कपड़ा दे दिया और उसने कहा हाँ। वह पूछने लगी फिर कि वह कहाँ-कहाँ हो आयी और उसने उसे बता दिया। उन्होंने उसकी जीजी को देखने की इच्छा प्रकट की। कभी समय हुआ तो वह उसे भेज देगी।

घर पहुँच कर उसने पैकेट खोल डाला। जब राधे बाबू के साले ने इतना ज़ोर दिया तो फीते से अभी कपड़ा नाप ही डाले ताकि बाद में कोई इल्ज़ाम उस पर न आये।

यह क्या? कपड़े में लिपटा एक कागज! कागज नहीं पत्र। उसे लिखा गया पत्र। वह पत्र पढ़ती जाती थी और उसका शरीर गर्म होता जाता था। सारा रक्त जैसे सर की ओर दौड़ चला हो—'विमला तुम बहुत खूबसूरत हो।—विमला तुम मेरे दिल की रानी हो। विमला मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।—विमला मेरे इस पवित्र प्रेम को न ठुकराना...।'

विमला ने पत्र मोड़-तरोड़ कर फाड़ डाला। माचिस उठाई, फिर उसे जला दिया। इस पत्र को कोई और देख लेता? उसकी सारी इज्जत धूल में मिल गयी होती। वह कपड़ा घर न ले जाकर वैद्य जी के यहाँ ही सिलाई लेने चली गयी होती, जिन्होंने दो घंटे बाद बुलाया था, और वहाँ ही किसी ने देखने के लिए खोल डाला होता। और मान लो राधे बाबू के साले ने यों पत्र न देकर वहीं उसके साथ कोई बेजा हरकत की होती। वहाँ वह अकेली ही तो थी! हाय राम!

विमला का शरीर गर्म होता ही गया।

विमला नहाने बैठी तो नहाती ही गयी। नहा कर उठी तो लगा कि जैसे वह नहायी ही नहीं। शरीर और मन दोनों ही तो वैसे ही गर्म थे।

चूल्हा सुलगाया। सब्जी राँधी तो चख कर देखना पड़ा कि नमक छोड़ा था या नहीं। गूँधते हुए आटे में पहले तो यह लगा कि पानी ज़्यादा गिर गया है और फिर लगा कि वह सख्त है।

न जाने कहाँ-कहाँ विमला का दिमाग गया। उस समय से बराबर भटक ही रहा है। सच में आजकल इज्ज़त से जीना दूभर है। औरत जाति को न जाने कितनी मुश्किलें हैं। उसकी जीजी रात-बिरात आती जाती है। दिन भर पराये घर में रहती है। उसकी भी अभी उम्र क्या? पाँच-छः साल ही तो उससे बड़ी है। क्या लोग उससे कुत्सित व्यवहार करने से चूकेंगे? जीजी बेचारी वैसे ही दुखी, सतायी हुई हैं। उसका दिल और भी न टूटेगा? कोई ऐसी घटना घटी और लोगों ने जाना तो जीजी शर्म के मारे किसी को मुँह न दिखा सकेंगी।

मुश्किल यह भी है कि बग़ैर काम किये जिया भी नहीं जा सकता। इस घर में वही दोनों मर्द हैं और वही दोनों औरतें।

: ३ :

कमला आ गयी है। दोनों बहनें चौके में बैठी हैं और खाना खा रही हैं। दोनों साथ ही खाना खाती हैं, भले ही एक को दूसरे की काफ़ी प्रतीक्षा करनी पड़े। एकाएक कमला बहुत आहिस्ते से बोली—"विमला, मैं तुमसे एक बात कहना चाहती हूँ।"

विमला ने डरते हुए उतने ही आहिस्ते से कहा—"जीजी ! मैं भी तुमसे एक बात कहूँगी।"

"विमला ज़माना बहुत बुरा लगा है। तेरा अकेला घरों में सिलाई के लिए जाना ठीक नहीं है। जितना मैं लाती हूँ उतने में क्या गुज़र-बसर नहीं हो सकती?"

"जीजी ! मैं भी यही कहना चाहती थी।" विमला ने काँपती आवाज़ में कहा—"मेरी मानिए, आप खाना बनाने का काम छोड़ दें। सिलाई से कैसे ही गुज़ारा कर लेंगे।"

दोनों की निगाहें एक दूसरे पर जम गयी हैं। दोनों एक दूसरे का अनकहा पढ़ लेना चाहती हैं। पढ़ कर स्तम्भित और त्रसित हैं। भकभकाती ढिबरी बुझ गयी है। अँधेरे में सन्नाटा और भी गहरा हो गया है। दोनों के हृदय की धड़कनें सन्नाटे में उन दो परिन्दों के पंखों की फड़फड़ाहट सरीखी गूंज रही हैं, जो अँधेरे में भटक रहे हों। ●●

एक रूपक

मेरे सपनों की सीता !
सुधियों के दंडकारण्य में
भटकता-भटकता आ पहुँचा हूँ।
गीतों का हनुमान
चाहों की मुद्रिका लिये
आ रहा है।
आशा है—
इसके रोम-रोम में
दर्द की प्रतिच्छाया जो कि मेरा है
परिलक्षित होगी।
जुदाई के रावण से
युद्ध की योजना बना रहा हूँ।

—रमेश चन्द्र जोशी

बातें, जिनमें सुगंध फूलों की—[१०]

ये कुछ निहायत ही दिलचस्प पत्र हैं उन चौधरी मुहम्मद अली रदूलवी के जिनके बारे में नियाज़ फतहपुरी ने कहा था : 'वह लिखते नहीं, बात करते हैं, और जिसने उन्हें बात करते सुना है वही समझ सकता है कि मुंह से फूल झड़ना किसे कहते हैं !'

◎ ◎ ◎

"......चन्द रोज़ हुए हज़रतगंज से गुज़र रहा था, रास्ते में चन्द जानने वाले नौजवान लड़के मिल गये। उनके साथ कुछ देर एक क़हवाख़ाने में जाकर बैठे। उनसे इधर-उधर की बातें की। जवानी की झलक देखी, अपना बुढ़ापा भूले। फिर लड़के अपनी राह चले गये। सामने से एक बूढ़ा आता नज़र आया। ख़याल आया कि अब फिर बुढ़ापा दिखलायी पड़ा। बड़ी कोफ्त हुई कि अब दो घड़ी रुक कर इनसे मिलना पड़ेगा। सूरत-आश्ना[1] मालूम होते हैं, लेकिन जी नहीं चाह रहा था कि इनसे मिलें, बहुत ही बुरे दिल से उनकी तरफ़ बढ़े। दो क़दम क़रीब पहुँच कर देखा तो सामने क़द्दे-आदम आईना था........."



ये थे 'चौधरी मुहम्मद अली रदूलवी', जिनके बारे में कभी नियाज़ फ़तहपुरी ने कहा था कि : "वह लिखते नहीं बात करते हैं।" और ये कि : "जिसने उन्हें बात करते सुना है वहीं समझ सकता है कि मुँह से फूल झड़ना किसे कहते हैं।"

उर्दू साहित्य का वह बैकग्राउण्ड जिसमें अवध की भरपूर जिन्दगी की सारी गहमागहमी मौजूद थी, उसकी झलक हमें

१. सूरत पहचानी हुई।

चौधरी मुहम्मद अली रदूलवी के कुछ पत्र

पंडित रतन नाथ सरशार, रुस्वा, और अवधपंच की फ़ाइलों में दिखाई देती रही है। उन लोगों के अतीत में 'तिलिस्म होशरुबा' की वह दास्तानें भी थीं जिन्हें आग़ा मीर की डेवढ़ी वाले अफ़ीमची दास्तान-गो महफ़िलों में सुनाया करते थे। दूसरी ओर अलीगढ़ में मुसलमानों ने अँगरेज़ी पढ़ना आरम्भ कर दिया था। मौलाना हाली मुनाजात (ईश-गुण-गाथा) लिखते थे और अकबर इलाहाबादी ज़माने के इन्क़लाब पर कड़वी हँसी हँसने में लगे थे। सामाजिक पृष्ठभूमि बहुत ही उलझी हुई थी। पंडित रतन नाथ सरशार मुसलमानों के उज्ज्वल भूतकाल का चित्रण कर रहे थे, जिसमें हर विजयी हीरो अन्त में ईसाई हिरोइन को मुसलमान बना लेता था। हालाँकि सच बात यह थी कि अभी चन्द रोज़ पहले ईसाई फ़ौज एक बादशाह को रंगून और दूसरे को मटियाबुरुज़ में क़ैद कर चुकी थी। क़ौम के पास ख़ून के आँसू रोने और रुलाने के सिवा और कुछ बाक़ी न था। हिन्दू-मुसलमानों की मिलावट भी हमारे बुज़ुर्गों को व्याकुल करने लगी थी। परन्तु ये राजनीतिक प्लैटफ़ॉर्म के झगड़े थे। रोज़-मर्रा की ज़िन्दगी में तो हिन्दू-मुसलमान दोनों को अँगरेज़ डिप्टी कमिश्नर के सामने जूते उतार कर जाना होता था।

हिन्दुस्तान की नई जागृति के हरावल दस्ते के लोग बंगाल में योरुप के बौद्धिक-ज्ञान से उन्नीसवीं शताब्दी के पहले आधे ही में परिचित हो चुके थे। माईकल मधुसूदन और उनके साथी योरूप के रोमानी विद्रोहियों से प्रभावित होकर उस वक्त अँगरेज़ी में कविताएँ, नाटक और नावेल लिख रहे थे जिस वक्त अभी लखनऊ में शमा की रौशनी में रानी केतकी[२] की दास्तान ही पढ़ी जा रही थी। फिर कैसरबाग़ की बारादरी की इन्द्र सभा उजड़ गयी और सर सैयद ने इंगलिस्तान के यात्रा-विवरण में लिखा कि आज वह मुबारक दिन आया जब मैं बकिंघम पैलेस में हाज़िर हुआ। वास्तव में यह ख़ून के आँसू रोने और रुलाने का ज़माना था।

हमारी अपनी सभ्यता थी जो देहातों और कस्बों में देखी जाती थी और जिसकी नींव मानवता की विशाल परम्परा पर रखी गयी थी। और उसी सभ्यता के नामलेवा चौधरी मुहम्मद अली भी थे।

चौधरी मुहम्मद अली ज़िला बारहबंकी (अवध) के प्रसिद्ध क़स्बे रदूली के रहने वाले थे। ये भी उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त वाली उस नई नस्ल से सम्बन्धित थे, जिसकी चर्चा मैंने अभी की है। मुहम्मद अली उस नस्ल में अकेले नहीं थे। 'सज्जाद हैदर यल्दरम' उसके एक व्यक्ति थे और उनके सारे दोस्त और साथी मुन्शी प्रेमचन्द, मुन्शी दयानारायण निगम, सर मुहम्मद याक़ूब, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद, हसरत मोहानी, सर तेज बहादुर सप्रू, अब्दुल क़ादिर सभी तो थे उसमें। और मुहम्मद अली का अन्दाज़ इन सबों से अछूता, इन सबों से अनोखा था :

"माई डियर मौलाना ! एक औरत थी, वह बड़ी हँसमुख थी। जिस मर्द को देखती थी, हँस देती थी। उसके शौहर को यह बात पसन्द न थी। उसने अपने शौहर को इत्मीनान दिलाया :

---

२. रानी केतकी : उर्दू की पहली कहानी, प्रसिद्ध कवि इन्शा अल्ला खाँ 'इन्शा' ने १८०३ में लिखी (अ. स.)

हँसना मेरा स्वभाव है, बालम तुम चिन्ता न करियो। यही हाल मेरी कोताह-क़लमी[3] का है। आप अपने ख़तों का जवाब देर में पाकर उलझा न कीजिये। अगर मैं रोज़-रोज़ ख़तों का जवाब दिया करूँ तो इतनी तम्हीदें[4] कहाँ से पाऊँ....।"

एक और साहब को बहुत दिनों से ख़त नहीं लिखा। उन्होंने एक ख़त का जवाब न पाकर दूसरा लिखा है। इस पर मुहम्मद अली उन्हें लिखते हैं :

"भाई ख़ुर्शीद! सलामे-शौक़। आपका मोहब्बत-नामा आया था और जहाँ तक याद पड़ता है मैंने जवाब भी लिखा था। मगर क़सम नहीं खाऊँगा। मुमकिन है लिखने का इरादा ही करते-करते रह गया हूँ। बहरहाल अगर वह ख़त मैंने न भी लिखा हो तो आप डाकख़ाने से दूर रहे हों, लेकिन दिल से दूर कभी नहीं रहे। इस दूसरे ख़त का भी शुक्रिया क़बूल फरमाइये। मैं ज़िन्दा हूँ और अभी तक चला जाता हूँ, मगर हालत ये है कि एक दिन अगर बिल्कुल ही चला जाऊँ तो अफ़सोस कर लीजियेगा, तअ-ज्जुब की गुंजाइश न होगी।"

एक दोस्त की बीवी का देहान्त हो गया है। उसे शोक-पत्र लिखते हैं। और देखिये कैसा अनोखा तरीक़ा निकाला है हमदर्दी जताने का :

"मैं नातजरबाकारी के ज़माने में ताज़ियत और पुर्से[5] पर हँसा करता था। मेरी एक लड़की जो बहुत दिनों से बीमार थी, वह गुज़र गयी। सुबह को एक साहब ताज़ियत को आये। बेचारे कम-सुख़न[6] थे, आकर चुप बैठ गये। मैंने कहा—"हाँ तो फिर शुरू कीजिये। बच्ची क्या बीमार थी? मुझको ख़बर भी नहीं हुई, ख़ुदा आपको सब्र दे।" इतना ही कहा और वह बेचारे परीशान हो गये। उसके बाद मेरा इकलौता लड़का गुज़र गया तो एक देहाती जाहिल मुलाक़ाती ने हमदर्दी की। अजब भोंड़े तरीक़े से उसने मुझे तस्कीन दी। मगर ये मालूम हुआ कि ज़ख्म पर किसी ने मरहम रख दिया। उसने कहा, "वह लड़का तुम्हारा था ही नहीं। अगर तुम्हारा होता तो तुम्हारे पास रहता न। वह जिसका था उसने ले लिया, तुम क्यों रंज करते हो?"

हाशमी साहब, इस वक्त भी वह ज़ख्म हरा है और इस वक्त भी वह मरहम अपना काम कर रहा है। उसके बाद से मैं हर पहलू से ताज़ियत की क़ीमत समझने लगा और इसी वजह से ये सफ़ा सियाह किया कि शायद दिली हमदर्दी ग़म में कुछ कमी करे। ख़ुदा आप हज़रात को सब्र दे, आमीन!...."

स्वास्थ्य अच्छा नहीं और कमर में दर्द है। इसकी सूचना एक साहब को यों देते हैं :

"आजकल अलावा रूहानी तकलीफ़ के एक जिस्मानी तकलीफ़ भी बढ़ गयी है। यानी कमर में सख्त चुक आ गयी है। आप कहेंगे कि यह कौन ऐसी मुसीबत थी जिसको बिना पर दोस्तों से हमदर्दी का लगान वसूल किया जाय। हज़रत, बात ये है कि एक बार दो कायस्थ मेरे पास एक ग़रज़ लेकर आये और बहुत चालाकी से अपना मतलब निकालने में लग गये। मैंने कहा, "हो न कायस्थ,

३. कम लिखने का है
४. भूमिका
५. मृतक के प्रति उसके सम्बन्धियों से शोक प्रकट करना
६. कम बोलने वाले थे

अपना मतलब निकालने के लिए दूसरों के नुक़सान की परवाह नहीं करते।" उन्होंने जवाब दिया, "हम वह कायस्थ नहीं हैं जो आप समझते हैं।" इसी तरह मेरी कमर की चुक वह नहीं है जो आप समझ रहे हैं। यह ऐसी चुक है जो नमाज़ में पटखनी बता देती है....."

मुहम्मद अली लोगों को होम्योपैथिक दवाएँ मुफ्त दिया करते थे। लेकिन अगर किसी भले-चंगे मरीज़ ने इनके प्रश्नों का उत्तर मूर्खता से दिया तो फिर इनका क्रोध देखने योग्य होता था और अगर कोई अच्छा-भला आदमी ज़रा भी नासमझी कर बैठता तो उसे ये ऐसी-ऐसी चौकस झुकाइयाँ देते कि दूर से जो सुने तो हँसते-हँसते पेट में बल पड़ जायें और जिस पर गुज़रे उस ग़रीब से धरते-उठाते न बने। हाँ तो, एक बेगम साहबा ने बस ज़रा यों ही सा कहला कर अपने लिए दवा मँगवायी। हालाँकि होम्योपैथिक दवा देने के लिए विस्तार पूर्वक रोग-लक्षण मालूम किये जाते हैं, तब कहीं सही दवा दी जाती है। बेगम साहबा ने यह भी कहलाया कि इस्तख़ारा[७] सिर्फ तुम्हारी दवा इस्तेमाल करने पर आता है। मुहम्मद अली ने बेगम साहबा को दवा तो भिजवा दी लेकिन साथ ही ये पत्र भी भेजा :

"मोहतरमा, क़रीब था कि मुझको भी दवा देने को इस्तखारा मना आ जाए, इसी वजह से मैंने इस्तखारा नहीं देखा। आखिर कुछ इन्साफ़ है? घर घोड़ी, नख़्ख़ास। कैसे दवा तज्वीज़ करूँ और कैसे मरज़ की जाँच करूँ? बड़े गाँव के तमाम सादातुल-ख़ैरात का यही हाल है, मगर क्या करूँ। दवा देने का काम ही अपने सर लिया है, दवा न दूँ तो क्या करूँ? यह गोलियाँ इसी तरह भेजी जा रही हैं जैसे बाज़ शरीर लड़के रात को ढेले फेंकते हैं। लग गया तो वाह-वाह, न लगा तब भी लोग परीशान तो होंगे ही। अगर ख़ुदा-नख़ास्ता इस दवा से आपको दो हज़ार दस्त या दो हज़ार कै आ जायें, या नसीबे-दुश्मनां आपका ख़तरा टल गया तो मुझसे शिकायत न कीजियेगा। अन्धे की दाद न फ़रियाद। इन गोलियों को सुबह-शाम खाइये और घंटा भर पहले और घन्टा भर बाद पान तम्बाकू न हो। और जब फ़ायदा हो तो दवा बन्द कर दीजियेगा। इस दवा में ख़ुशबू, बदबू न लगे। किसी ऐसे ताक पर रखियेगा जहाँ धुआँ न भरता हो।"

यह पत्र भी कुछ इसी तरह का है। मुहम्मद अली ने इसे अपने उस दोस्त को लिखा था जिससे मुलाक़ात हुए बहुत दिन हो गये थे और जिसने खैर-खैरियत का भी कोई ख़त नहीं लिखा था :

"ज़माना और अस्बाबे-ज़माना इतने दूसरे हो गये हैं कि न मालूम कितने हैं जिनसे मिलकर जी ख़ुश होता था और अब बरसों ख़बर भी नहीं होती। ख़ुद हमारे साथी तो क़रीब-क़रीब ख़त्म हो चुके, भले को हमने अपने से कमसिन लोगों से रस्म बढ़ा ली थी। गोया सींग कटा कर बछड़ों में दाख़िल हो गये थे। मगर ख़ुदा का करना ऐसे है कि उनसे भी वास्ता न रहा। अब दो-एक बुड्ढे रह गये हैं। उनसे कभी मुलाकात हो जाती है तो आपस में ऐसी बातें होती हैं जैसे हमलोग एराफ़[८] में बैठे हैं......"

चौधरी मुहम्मद अली की किताब

७. शकुन

८. एराफ़ : मुसलमानों के धर्मशास्त्र के अनुसार उस स्थान का नाम है जो नरक और स्वर्ग के बीच में है : (अ. स.)

"सलाहकार" पढ़ कर तम्कीन काज्मी ने इन्हें एक पत्र लिखा जिसमें इस किताब की बहुत खुल कर दाद दी थी। मुहम्मद अली ने जवाब में लिखा :

"हज़रत, आपने मेरी नाचीज़ चीज़ों की दाद दी, मेरे दिल को मसरूर किया। इसका अजर[९] आपको वहाँ से मिले जहाँ किसी का एहसान ज़ाया नहीं होता। किताब की तरफ़ से मैं बड़ा बदक़िस्मत हूँ। यह रिसाला दो बरस से लिखा पड़ा है। दो बार कापियाँ लिखी गयीं, तीसरी बार छपी भी तो सफ़े के सफ़े ग़ायब, मज़ामीन ख़ब्त, मानो कुछ के कुछ हो कर रह गये। और मैं दिल थाम कर बैठ गया। मेरे इनायत-फ़रमा डॉक्टर सैयद आबिद हुसैन अब दोबारा छपवा रहे हैं, देखिये कब तक तैयार हो।

जनाब ने मेरी हिम्मत बढ़ायी, आपकी जगह मेरे दिल में है, गो, नौबत यक-जहती और हम-कलामी[१०] की नहीं आयी। आपका दुआगो हूँ और इसी वजह से दिल चाहता है कि हमदर्द पाकर थोड़ा-सा दुखड़ा भी रो लूँ। मैंने चार किताबें छोटी-छोटी लिखी हैं। एक इनमें की तीसरी छप रही है, एक अब मिलती नहीं। लेकिन कभी ऐसा न हुआ कि किताब किसी को देकर छापने वालों से शिकायत न होती। एक साहब ने पहली छपाई उम्दा करायी दूसरी में सिर्फ़ यही नहीं कि काग़ज़ बोदा कर दिया हो, लिखाई सस्ते दामों वाली कर दी हो, बल्कि इस्लाहें[११] भी दे दीं। इसी पर बस नहीं किया; मेरा दीबाचा[१२] जो मुझको बहुत अज़ीज़ था वह भी रह गया। इसलिए कि काग़ज़ का तर्क पीटना था, दीबाचा भी रखा जाता तो दो-चार दस्ते काग़ज़ और खप जाते। फ़िलहाल एक किताब जूता बनाने पर लिखने का सामान इकट्ठा कर रहा हूँ, देखिये कब पूरा हो। तारीफ़ किसको बुरी लगती है, ओछापन किसमें नहीं! किताब के बहुत सारे ऐब मेरी नज़र में हैं...."

बुरी लिखाई-छपाई से इन्हें चिढ़ थी। इनकी किताब "कश्कोल मुहम्मद अली शाह फ़क़ीर" का भी क़ातिबों और प्रकाशकों ने सत्यानाश कर दिया है। उसकी खबर एक दोस्त को देते हैं :

"कश्कोल मुहम्मद अली शाह फ़क़ीर" उम्मीद है ढाई बरस के बाद प्रेस से आ जाए। जैसे ही आ गयी हाज़िर करूँगा। मगर सलाहुद्दीन साहब छापने वाले ने क्या ज़ुल्म किया है। छपाई ऐसी है जैसे यतीम बच्चे का मुँह होता है। ग़लतियाँ ऐसी हैं जैसे बुरे घर की लौन्डी होती है। किताब मस्ख़ होकर रह गयी है और हम हैं कि बेबस, बेइख़्तियार, दम-बख़ुद बैठे हैं।"

अनोखी उपमाएँ देख लीं आपने? उम्मीद करता हूँ कि अब तो मेरी तरह आप भी 'नियाज़' की उस राय से सहमत होंगे कि मुँह से फूल झड़ना इसे कहते हैं!

९. बदला
१०. मिल बैठने और बातें करने का अवसर न आया।
११. संशोधन
१२. भूमिका

B. Samarth...

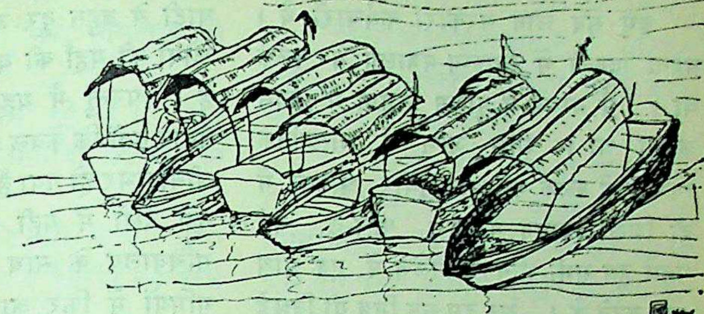
दो कविताएँ : ममता अग्रवाल

प्यासों के बिम्ब

मैंने तुम्हें चाहा
पर पाया नहीं।
तुमने मुझे पाया
पर चाहा नहीं।
इन विडम्बनाओं का
निषेध करके भी,
हम
एक होने के भ्रम को
सहर्ष जीते रहे।
अपनी
अबुझी प्यासों को
स्वयं में पीते रहे।
इन्हीं प्यासों के बिम्ब,
जब भी कभी,
अजाने अचाहे में
आँखों की कोर
या
अधर के कगारों पर
उमग-उमग आने को
चंचल हो उठते हैं।
हम
एक दूसरे को
बाँहों में समेट
विवश......हँस लेते हैं
"हम कितने सुखी हैं!"

अनकहा

झील में झाँकती
काँपती परछाइयों-सा
झीना प्यार
मैंने तुम्हें दिया
तुमने उसे जाना नहीं।
हवा का उलाँकता
गंध को तराशता
गदराया उन्माद
तुमने मुझे दिया
मैंने उसे माना नहीं।
जिसे हमने
जाना नहीं
या
--जानबूझ
माना नहीं
उसे
--प्यार
कैसे कहें!
न कहें प्यार
कह दें
तक़रार!
पर इतना बड़ा आरोप
अजाने
अमाने
अबोध
दो मन
भला क्यों सहें!



• वेद राही

झील डल की एक शाम

इस शीर्षक के अन्तर्गत आपने अनेकों रोमानी कथा-कहानियाँ पढ़ी होंगी; लेकिन यहाँ आपको वैसा कुछ नहीं मिलेगा। यह उन सब से अलग, एक अजीब शाम है झील डल की!

◉ ◉ ◉

कई वर्षों के बाद हम सब मित्रों को एक साथ मिल-बैठने का सुयोग प्राप्त हुआ था। महेन्द्र दिल्ली से आया था, मैं बम्बई से, शशि जम्मू से; और सुधीर तो रहता ही श्रीनगर में है। उस दिन सुधीर ने हम मित्रों को झील डल के बीच टापू जैसे बने हुए नेहरू पार्क के रेस्तराँ में 'डिनर' पर बुलाया था।

हम रेस्तराँ के बरामदे में बैठे हुए थे।

उस समय संध्या के झुटपुटे में झील पर धुँधलके छा रहे थे। सामने ऊँचे पहाड़ों से सटे हुए कजरारे बादलों पर संध्या की अन्तिम लालिमा का झीना-सा आँचल फैला हुआ था। झील के तट अँधेरे हो रहे थे। पार्क में बिजली की बत्तियाँ जलने का समय हो रहा था। यही वह समय होता है जब हृदय प्रसन्न हो तो सभी ओर प्रसन्नता छाई दिखती है, और मन उदास हो तो उदासी और भी बढ़ जाती है।

खाना खाने में अभी कम से कम दो घंटे शेष थे। और तब तक सुधीर भी तो नहीं आया था, जिसकी ओर से दावत थी। हम बार-बार पर्यटकों से भर कर आती हुई नावों की ओर देख

रहे थे कि शायद किसी मोड़ से सुधीर निकल आए। उसके आने पर 'डिनर' से पहले चाय का एक दौर तो चलता ही।

हम सब लोग सरकारी कर्मचारी थे। महेन्द्र दिल्ली में स्वास्थ्य-मंत्रालय में क्लर्क था। मैं बम्बई में पुलिस विभाग में काम करता था। शशि जम्मू में सांस्कृतिक विभाग में क्लर्क था, और सुधीर श्रीनगर में ही शिक्षा विभाग में था। पाँच-छः वर्ष पहले हम सभी श्रीनगर कॉलेज में एक साथ पढ़ा करते थे। अब हम सब मित्र यों विछुड़े हुए थे जैसे विवाह के बाद गली की लड़कियाँ अपने-अपने ससुराल चली जाती हैं। पुनः मिलने का यह प्रथम संयोग था। उस दिन सभी के हर्ष का पारावार न था। हमें लग रहा था कि हमने उस लोक-गीत के सत्य को झुठला दिया है, कि--"एक नाव में पार उतरने वाले लोग फिर कभी एक साथ नाव में नहीं बैठते।"

महेन्द्र ने कहा, "भई तुम तो जानते हो, जब मैं दिल्ली गया था तो कितना उत्साह था मुझ में। सोचा था एक नई दुनिया में जा रहा हूँ, तब तक मैं अपनी इस घाटी से कभी बाहर नहीं गया था। रेल गाड़ी तक भी तो नहीं देखी थी मैंने। परन्तु दो वर्षों में ही उस जीवन से तंग आ गया हूँ। मन ही नहीं लगता। जीवन तो जैसे गाड़ी की गति से दौड़ता है वहाँ।"

"तुम सच कहते हो महेन्द्र" मैंने समर्थन-भरे लहजे में कहा, "मुझे भी बम्बई जाकर ही इस बात का अनुभव हुआ है कि अपने कश्मीर में क्या है। अरे, उस महानगरी के भीड़-भड़क्के में तो मेरा दम घुटता है। मैं तो उस एक-एक क्षण को तरसने लगा हूँ जो हमने यहाँ बिताया है।"

"मित्रो" अनायास शशि ने बोलना शुरू किया, "यह सच है कि तुम दोनों अपनी इस घाटी से बहुत दूर जा पड़े हो। और तुम लोगों को यहाँ की याद आना स्वाभाविक ही है। परन्तु मैं यह बात मानने के लिए तैयार नहीं कि केवल इसी कारण वहाँ तुम्हारा जीना दूभर हो गया है कि तुम यहाँ से दूर हो। मुझे देखो मैं यहीं रहता हूँ। सर्दियों में सचिवालय के साथ जम्मू चला जाता हूँ, गर्मियों में फिर आ जाता हूँ। परन्तु मैं भी उतना ही उदास हूँ, जितने तुम। जिस कुंठा और अभाव के शिकार तुम हो, मैं भी हूँ। वास्तव में प्रत्येक व्यक्ति असंतुष्ट है, अपनी परिस्थितियों से। और इन परिस्थितियों में डाला है हमें समय ने। यह कुंठा, यह अभाव समय की देन है।"

"शायद तुम सच ही कह रहे हो।" महेन्द्र ने कहा, "दिल्ली में जो लोग वहीं के रहने वाले हैं, वे भी तो संतुष्ट नहीं। उनके दिल भी तो कुंठित हैं। मेरे विचार में हम जिस संक्रान्ति काल में--"

बात अधूरी ही रह गई। सहसा उस कुहासे में चारों ओर बिजली के कुमकुमे जल उठे। झील के किनारे-किनारे मीलों तक रोशनियाँ जगमगा उठीं। पार्क के लैम्प-पोस्ट जीवित-प्राणी-से लगने लगे। रेस्तराँ में बैठे हुए लोगों को एक दूसरे की ओर देखने का बहाना मिल गया।

उसी समय 'हलो' कह कर सुधीर ने कॉरीडोर में प्रवेश किया। सभी मित्रों के चेहरे जैसे खिल उठे।

"माफ़ी चाहता हूँ",--मेरे साथ सोफ़े पर बैठते हुए कहा, "भई, ऑफिस में ही आज

बहुत देर तक बैठना पड़ गया। वहाँ से छूटते ही भागता हुआ सीधे यहाँ पहुँचा हूँ।"

टेबुल को बिल्कुल खाली पाकर उसने विस्मय प्रकट किया, "अरे, चाय-वाय तो मँगवा ली होती।"

"तुम्हारी राह देख रहे थे।" मैंने कहा, "और फिर बातों-बातों में चाय का ध्यान ही न आया।"

"तो क्या बातें हो रही थीं? जरा हम भी सुनें।" सुधीर ने सिगरेट का पैकेट टेबुल पर रखते हुए कहा।

महेन्द्र ने एक सिगरेट निकाल कर होठों में दबाते हुए कहा, "हम सोच रहे थे, जीवन आज इतना कुंठित क्यों हो गया है? सभी उदास, सभी परेशान क्यों हैं?"

शशि ने भी एक सिगरेट सुलगाते हुए कहा, "मेरे विचार में तो स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हमारे जीवन में जो उत्तरदायित्व-हीनता आ गई है, उसने हम में भ्रष्टाचार लादिया है, और उसी से हम कुंठाग्रस्त हो गये हैं।"

"अरे-अरे", सुधीर शशि के भाषण से सचमुच ही घबरा गया, "झील डल के इस रंगीन वातावरण में आकर यह क्या दर्शन बघारने लगे तुम लोग?"

"यह दर्शन नहीं, आज का सत्य है।" शशि ने टेबुल पर हाथ मारते हुए कहा। वैसे सभी को इस बात का ज्ञान था कि बहस में पड़ शशि अपने कहे शब्दों को कभी व्यर्थ नहीं जाने देता।

अब तक चाय-वाय कुछ नहीं आई थी। मैंने सुधीर की उपेक्षा कर बात को जरा आगे बढ़ाना ही उचित समझा। शशि की ओर देख कर मैंने कहा, "तुम्हारी बात सच है। मैंने तो बम्बई में देखा है एक चवन्नी से लेकर एक लाख रुपए तक घूस चलती है। जब तक आप घूस न दें, किसी भी सरकारी कार्यालय में आपका काम नहीं हो सकता।"

"दिल्ली में भी यही हाल है।" महेन्द्र ने कहा, "बिना रिश्वत दिए आप किसी कार्यालय में घुस भी नहीं सकते।"

"दोस्तो, यह तुम्हें क्या हो गया है?" सुधीर ने फिर वातावरण के तनाव को दूर करना चाहा, "तुम तो यों बातें कर रहे हो, जैसे सारे राष्ट्र का भार तुम्हारे ही कन्धों पर आ पड़ा है। अब इस बहस को छोड़ो। हलके हो जाओ। मैंने तुम्हें खाने पर बुलाया है, किसी पोलिटिकल-स्टेज पर नहीं कि तुम भाषण दो। मैं खाने का आर्डर देता हूँ—"

"अरे अभी खाना?" मैंने कहा, "आठ तो बज लेने दो।"

"तो फिर चाय ही मँगवाता हूँ।" कह कर सुधीर ने बैरे को पुकारा। परन्तु बैरा दूसरी ओर व्यस्त था।

शशि को पुनः अवसर मिला।

"आज देश को जिस सबसे बड़े संकट का सामना करना पड़ रहा है, वह है भ्रष्टाचार!"

"मैंने स्वयं कई बार इसी समस्या पर सोचा है," महेन्द्र ने कहा, "और इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि सरकारी नौकर रिश्वत ले-देकर बहुत बड़े पाप के भागी बन रहे हैं।"

"उफ़! तौबा है भई।" सुधीर ने खिन्न होकर कहा, "अब छोड़ो भी इस राम कहानी को।

"भई इसमें ऐसी बात ही क्या है जो तुम इतने चिढ़ रहे हो?" शशि ने भी तनिक गर्म होकर कहा, "क्या तुम्हारे सामने आज की यह ज्वलंत समस्या नहीं है? क्या

तुम्हारे ऑफिस में तुम्हारे आसपास ऐसा वातावरण नहीं ?"

"मैं जिस चीज से सारा दिन 'बोर' होता रहता हूँ, वही तुम झील डल के इस रंगीन पार्क में भी मेरे सामने ला रहे हो ?" सुधीर का स्वर ऊँचा हो गया था।

"तुम कहीं भी चले जाओ, समस्याएँ तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ सकतीं," शशि ने अपना दृढ़ विश्वास प्रकट करते हुए कहा।

"हीअर, हीअर यूआर," मैंने दूसरे ढंग से बातचीत को ज़रा 'लाईट' बनाने का यत्न किया। मुझे महेन्द्र द्वारा प्रोत्साहन मिला, जब उसने कहा, "अच्छा आओ यहाँ बैठ कर हम एक दूसरे को बताएँ कि हम में से कौन-कौन रिश्वत लेता है।"

शशि ने उसी आवाज में कहा, "मैं तो रिश्वत लेने वाले को कुत्ते से भी नीच समझता हूँ।"

सुधीर ने घूर कर उसकी ओर देखा।

"मेरे विचार में भी रिश्वत लेना पाप है," मैंने अपना मत प्रकट किया।

"महापाप", महेन्द्र ने टेबुल पर हाथ मारा।

अचानक सुधीर उठ खड़ा हुआ, "तुम बैठो, मैं अभी दो मिनट में आता हूँ।" कह कर वह कॅरीडोर से निकल गया। मुझे लगा कि रंग में भंग पड़ गया है।

महेन्द्र ने कहा, "अब हमें इस बहस को समाप्त कर देना चाहिए।"

"मैं भी यही समझता हूँ," शशि ने एक नया सिगरेट सुलगाते हुए कहा। उसका प्रतिद्वन्द्वी मैदान छोड़ गया था। उसके चेहरे पर गर्व की लाली थी।

दस मिनट में ही वातावरण बिलकुल शान्त हो गया। अँधेरे में डूबी हुई झील, और मीलों लम्बे तट पर जगमगाती रोशनियाँ भली लगने लगीं।

"सुधीर कहाँ गया ?" एकाएक हमें खयाल आया।

सहसा एक बैरे ने एक पत्र-सा हमारे टेबुल के बीच लाकर रख दिया। मैंने उठा कर पढ़ना शुरू किया ; सुधीर ने लिखा था,

"दोस्तो, मुझे खेद है आज आप यहाँ 'डिनर' नहीं खा सकेंगे। आपकी बातें सुन कर मुझे अपनी भूल का अनुभव हुआ। जो रुपये खाना खिलाने के लिए मैं लाया था, वे रिश्वत में लिए रुपये हैं। इन्हें प्राप्त करने के लिए ही आज मुझे ऑफिस में देरी हो गई। इन पैसों का 'डिनर' खाकर आप महापाप के भागी बनेंगे। अच्छा है कि आप अपने-अपने घरों में जाकर ही खाना खाएँ।"

हम सभी क्रोध में पागल हो गए। विशेष कर शशि का बुरा हाल था। रिश्वत तो हम सभी लेते थे, यह अलग बात थी कि शशि को बातों में हारने की आदत नहीं थी।

सूचना

लेखकों से सूचनार्थ निवेदन है कि केवल स्वीकृत रचनाओं की ही सूचना दी जाती है, और केवल वही अस्वीकृत रचनाएं लौटायी जाती हैं जिनके साथ आवश्यक टिकट होता है —सम्पादक

कन्हैयालाल ओझा

बहुत विचित्र है इसका इतिहास! खूब उलझा हुआ भी, लेकिन साथ ही रोचक भी उतना ही!

◉ ◉ ◉

आप जरूर रविवार की बड़ी बेचैनी से प्रतीक्षा करते होंगे, क्योंकि उसी दिन आपको छुट्टी ही नहीं, छुट्टी का 'मूड' भी रहता है। कब कौन-सा दिन होगा उसके लिए आप चाहें तो पंचांग या पत्रा देख सकते हैं, या चाहें तो कैलेण्डर। तिथियों, तारीखों, महीनों आदि में जगह-जगह फर्क देखा जा सकता है, मगर आपको यह देख कर आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता कि दिनों की संगति में दुनिया में कहीं पर भी मतभेद नहीं है। अगर यहाँ पर रविवार है तो दुनिया के हर मुल्क में रविवार ही होगा, नाम चाहे उसका उस भाषा के अनुकूल दूसरा हो। विश्व में जहाँ कोई भी दो चीजें समान नहीं मिलतीं, वहाँ सप्ताह के दिनों के नामों में यह समानता सचमुच किसी भी व्यक्ति को आश्चर्यान्वित किए बिना नहीं रहती। आइए, आज आप को यही किस्सा सुनाते हैं कि सप्ताह के इन दिनों की उत्पत्ति का क्या रहस्य है?

ऊपर कहा गया है कि दुनिया में सात दिन के सप्ताह तथा उनके नामकरण के बारे में अद्भुत समानता है; पर यह बात आंशिक रूप में ही सच है। पश्चिम अफ्रीका के घने जंगलों में एक गाँव में हर चौथा दिन काम से छुट्टी का दिन होता है, उसी दिन वहाँ हाट लगती है, और जरूरत की चीजों की खरीद-फरोख्त होती है। शाम को राग-रंग, पीना-पिलाना, और खेल-क्रीड़ाएँ होती हैं, जैसा कि सप्ताहान्त (Weekend) पर होता है, पर यह सात दिन में नहीं, हर चौथे दिन होता है। पर यह गाँव सभ्यता से भी दूर है। आसपास के गाँवों में हाट के जिस दिन दूकानदार और ग्राहकों के एक जगह एकत्र होने की जरूरत होती है, वही उनका सप्ताह का दिन होता है। इन गाँवों

दिनों का नामकरण

में अलग-अलग हाट के दिन होते हैं, ताकि दूकानदार हर रोज कभी इस गाँव, कभी उस गाँव में जाकर अपनी तिजारत कर सके। इसी तरह कुछ और गाँवों में हाट का दिन हर तीसरा, पाँचवा, छठा, आठवाँ या दसवाँ भी पाया जाता है। किन्तु दुनिया भर के सभी सभ्य देशों में अब सात दिन का ही हफ्ता होता है, और एक जगह का रविवार हर देश में रविवार ही होता है।

सप्ताह कोई नैसर्गिक वस्तु नहीं है, जैसे कि वर्ष या मास होते हैं। अगर कोई यह भूल जाए कि वह वर्ष की किस ऋतु में है तो वह नक्षत्रों की स्थिति से सहज ही मालूम कर सकता है। हर स्थान के लिए नक्षत्रों की यह स्थिति भिन्न हो सकती है, पर वर्ष के चक्र में किसी एक स्थान के लिए वह दूसरे चक्र में उसी स्थान पर होगी। इसके लिए मनुष्य ने स्थान-स्थान पर ऐसी वेधशालाएँ बनाईं, जहाँ सूर्य की परछाईं या नक्षत्रों की स्थिति से ऋतुओं का अनुसंधान किया जा सकता। प्राचीन काल में इंग्लैण्ड में बना स्टोनहेंज (Stonehenge) का मन्दिर इसी उद्देश्य से बनाया गया था। उसका दरवाजा ठीक उस स्थान पर था जिधर जून में ग्रीष्मकालीन सूर्यावस्थान (Solstice) के प्रथम दिन सूर्योदय होता। यही इमारत उनका पंचांग थी। उन्हीं दिनों फ्रांस में तथा मिस्र में कार्नाक के मन्दिरों का निर्माण हुआ था, जो वृत्ताकार थे, और जिनका मुँह उस दिन ठीक सूर्योदय की दिशा में होता था। भारतवर्ष में कोणार्क का प्रसिद्ध सूर्य-मन्दिर भी एक ऐसा ही मन्दिर है। भारतवर्ष में ऐसे सूर्य-मन्दिर और भी कई जगह हैं। मेवाड़ के एक गाँव में जैनियों का एक मन्दिर है, जिसके बारे में कहा जाता है कि पौष शुक्ल दशमी के दिन सूर्य की प्रथम रश्मियाँ, मन्दिरस्थ मूर्ति के चेहरे पर पड़ती हैं। चीन में भी शीतकालीन सूर्याभिमुख मन्दिर के निर्माण का प्रयत्न किया गया था।

महीनों की माप का आधार इन देशों में चन्द्रमा था, जिसे चान्द्रमास कहा जाता है। नया चाँद कब उदय होता है, और कब पूरा दिखाई देकर क्षीण होते-होते पुनः क्षीण हो जाता है, यह सभी कोई देखते हैं, समझते हैं। सो, मास, ऋतु आदि का पता तो सरलता से लग सकता है, किन्तु सूर्य या चन्द्रमा को देख कर सप्ताह के दिन का तो पता नहीं लगाया जा सकता। इसका पता तो हम एक ही साधन से लगा सकते हैं—कि हमने इस बात का लेखा रक्खा हो कि कब कौन-सा दिन था, और उस गणना के अनुसार आज दिन के बाद दिन बीतने पर, कौन-सा दिन है। इसी गणना का फल है कैलेण्डर, पंचांग या पत्रा।

इतवार हमारा छुट्टी का दिन होता है। क्यों? यह ईसाइयत की देन है। ईसाइयत के धर्म-ग्रन्थ बाइबिल में उल्लेख है कि परमात्मा ने छः दिन में दुनिया का निर्माण किया और सातवें दिन उसने विश्राम किया। वेद में कहीं इस तरह का उल्लेख है या नहीं, मुझे नहीं मालूम। बाइबिल की इस साक्ष से यह तो मौजूँ लगता है कि सप्ताह में सात दिन हों, छः दिन काम के और एक दिन विश्राम का; किन्तु उसमें भी दिनों के नामों का कोई उल्लेख नहीं है।

पता लगता है कि सप्ताह के दिनों को अपना नाम प्राचीन बेबीलोनिया में मिला। प्राचीन बेबीलोन में नक्षत्र-विद्या में लोगों की

बहुत रुचि थी। यह देश प्राचीनतम सभ्यताओं के देशों में से है। दजला और फरात की उपत्यका में बसे इस चौरस और उपजाऊ क्षेत्र में हर चीज की प्रचुरता थी। आबोहवा शुष्क थी, आसपास की छोटी-छोटी पहाड़ियों से मीलों दूर का दृश्य दिखाई देता। मौसम बड़ा ही साफ रहता। ऐसे क्षेत्र में आकाश बड़ा स्वच्छ पाया जाता, शुक्र ग्रह को तो वे दिन के समय भी देख सकते थे।

यदि हम प्रति रात्रि आकाश की ओर देखते रहें, तो हमें मालूम होगा कि आज रात को नक्षत्रों का जो समूह हमारे सिर पर है, तीन माह बाद उसी समय वह नक्षत्र-समूह क्षितिज के पास पश्चिम की ओर दिखाई देगा, और फिर उसके बाद उस समय शीघ्र ही वह आँखों से ओझल रहेगा। नौ माह के बाद रात के उसी समय वही नक्षत्र-पुंज पूर्वाकाश के क्षितिज पर दिखाई देगा, और १२ माह के बाद ठीक सिर पर उसी जगह। प्रायः सभी नक्षत्र इसी तरह घूमते प्रतीत होते हैं, अतः इन्हें 'स्थिर' नक्षत्र कहा जाता है, उनकी पारस्परिक सापेक्ष्य स्थिति सदैव प्रायः एकरस रहती है। प्राचीन बेबीलोन, अरब और मिस्र के पुरोहितों ने यह खोज की कि सभी नक्षत्र प्रायः ३६५ दिन में एक पूरा चक्कर घूम लेते हैं; और मिस्र वालों ने सबसे पहले वर्ष के ३६५ दिनों को बारह महीनों में विभाजित करके एक नया कैलेण्डर बनाया। ४२४१ ई. पूर्व में तत्कालीन फेरो ने यह घोषणा की थी कि यह कैलेण्डर सरकारी मान्यता प्राप्त होगा।

किन्तु अरब के पुरोहितों ने एक नया अनुसन्धान किया। उन्होंने देखा कि यद्यपि प्रायः सभी आकाशीय पिण्ड एक दूसरे से समान रूप से अपनी स्थिति बनाए रखते हैं, किन्तु कम से कम तीन पिण्ड इसके अपवाद हैं—एक सूर्य, दूसरा चन्द्र और तीसरा एक और नक्षत्र। चन्द्र काफी जल्दी घूमता है। सूर्यास्त के समय आज यदि चाँद का आधा बिम्ब शीर्ष पर है तो सात दिन बाद सूर्यास्त के समय पूर्वी-क्षितिज पर पूर्ण चन्द्र दिखाई देगा। जब कि सात दिन में चन्द्रमा आधा आकाश तै कर लेता है, अन्य दूसरे नक्षत्र बहुत ही कम स्थान बदलते हैं, और वह भी विपरीत दिशा में पश्चिम की ओर। इसी तरह सूर्य भी प्रत्येक संध्या को अस्त होते समय उसी जगह रहता है, जबकि अन्य नक्षत्र धीरे-धीरे स्थान बदल देते हैं। उसी तरह चमकीला शुक्र भी अपना एक अलग ही मार्ग लिये हुए है। अरब-निवासी इन तीनों आकाश-पिण्डों की प्रार्थना किया करते थे। जब अरब निवासियों ने बेबीलोन पर आक्रमण किया तो इनका ज्योतिष्क-सम्बन्धी ज्ञान बेबीलोन के ज्ञान से पारस्परिक रूप से प्रभावित हुआ।

उल्लेख मिलता है कि ३८०० ई. पूर्व अक्काद के बादशाह सारगोन के शासनकाल में बेबीलोन-निवासी ज्योतिष के बड़े कुशल गणक माने जाते थे। उन्होंने यह खोज की थी कि तीन नहीं, बल्कि सात ऐसे पिण्ड थे जो स्वच्छन्द घुमक्कड़ थे।

इन सात पिण्डों की खोज उन लोगों के लिए इतनी महत्त्वपूर्ण थी कि उन्होंने इसे अपने धर्म में सम्मिलित कर लिया और इन ग्रहों का नामकरण अपने धार्मिक देवताओं के नामों के अनुसार कर डाला। बेबीलोन के ये नाम इस प्रकार हैं :

हिन्दी नाम	बबीलोनिअन नाम	अंग्रेजी नाम
चन्द्र	सिन	मून
बुध	नीबो	मरक्यूरी
शुक्र	ईस्टर	ह्वेनस
सूर्य	शम्स	सन
मंगल	नर्गल	मार्स
वृहस्पति	मार्डुक	जूपिटर
शनि	निनुर्त्ता	सैटर्न

बेबीलोनिया में समय की गणना चान्द्र-मास से होती थी। पूर्णचन्द्र (पूर्णिमा) के दिन बहुत बड़ा उत्सव होता। नवचन्द्र के दिन और कहीं-कहीं अर्धचन्द्र के दिन भी उत्सव होते। ये घटनाएँ हर सातवें या आठवें दिन होतीं, अतः तत्कालीन सप्ताह कभी सात दिन के और कभी आठ दिन के होते। इसी बीच किसी पुरोहित ने देखा कि हमारे सात देवता हैं, अतः इस सात दिन की अवधि को सात दिन के ही रूप में नियमित क्यों न कर दिया जाए। नए चाँद का दिन महीने का पहला दिन होता था, अब वह सप्ताह का भी पहला दिन माना जाने लगा। वर्द्धमान अर्द्धचन्द्र आठवाँ दिन, या दूसरे सप्ताह का पहला दिन हो गया। पन्द्रहवाँ पूर्णचन्द्र का दिन तीसरे सप्ताह का पहला दिन हुआ। इस तरह चौथे सप्ताह का प्रथम दिन माह का बाईसवाँ दिन होता, जो ह्रासमान अर्धचन्द्र के दिन से एकाध दिन आगे-पीछे होता। इस चन्द्र का उदय मध्यरात्रि के बाद होता अतः वे इस बात की चिन्ता नहीं करते कि चौथे सप्ताह का प्रथम दिन एकाध-दिन आगे-पीछे है। सप्ताह का पहला दिन जहाँ खुशी का होता, अन्तिम दिन अशुभ माना जाता। ईसा के २३०० वर्ष पूर्व लगश शहर के प्राप्त विवरणों में लिखा मिलता है, "सातवें दिन किसी को चाबुक से नहीं मारा जाता था। काम की छुट्टी रहती थी। कब्र में किसी को दफनाया नहीं जाता था। मन्दिरों में संगीत या प्रार्थनाएँ नहीं होती थीं। शोकाकुल नारियों को रोने नहीं दिया जाता था। लगश नगर के राज्य में सातवें दिन कोई न्यायाधिकरण में नहीं उपस्थित होता था।"

किन्तु सात दिन का सप्ताह तब भी दो अर्थों में अपूर्ण था। पहला यह कि हर चौथे सप्ताह के बाद नया चाँद उदय होने तक एक या दो दिन बच जाते। चन्द्र-कला के कारण मास कभी २९ दिन का और कभी तीस दिन का होता। दूसरी अपूर्णता इन दिनों के नामों का अभाव थी। कुछ ने इन्हें कोई नाम नहीं दिया, वे इन्हें सप्ताह का पहला, दूसरा, तीसरा आदि नामों से सम्बोधन करते। कुछ ने अपने सात देवताओं के नामों के आधार पर उन्हें देवताओं के नामों से अभिषिक्त कर यह मत प्रचारित किया कि उस दिन उस नाम के देवता का शासन रहता है अतः उस दिन उस देवता की पूजा का प्राधान्य होना चाहिए। चूंकि हर नगर का प्रधान देवता अलग था, अतः दिन के नामों में समानता का न होना स्वाभाविक था। क्रम में भी समानता न थी। कहीं पर सूर्य के बाद चन्द्र और फिर मार्डुक आ जाता, तो कहीं पर चन्द्र, चन्द्र के बाद शम्स, और शम्स के बाद नीबो, आदि।

समाज में पुरोहितों का सम्मान बढ़ रहा था। चमत्कारों में लोगों की घनी आस्था थी, और जो तथ्य सामान्य बुद्धि से परे होता, वहीं चमत्कार का आरोपण कर दिया जाता, उसे धर्म में शरीक कर लिया जाता

और धर्म की व्यवस्था पुरोहितों के हाथ में थी। ज्योतिष का ज्ञान पुरोहितों की प्रतिष्ठा बढ़ाने में बड़ा सहायक हुआ। उन्होंने अपना प्रभाव बढ़ाने के लिए यह मान्यता प्रचारित की कि आकाशमण्डल के देवता बारी-बारी से इस भूलोक पर अपना प्रभाव प्रक्षिप्त करते रहते हैं, ताकि इस विशिष्ट प्रभाव-काल में पैदा हुए प्राणी के लिए किसी देवता की दृष्टि शुभ होती है और किसी देवता की अशुभ। हर देवता को एक-एक दिन पहले ही बाँट दिया गया था, इसके अतिरिक्त दिन के घंटों (दिनमान) को भी इसी तरह प्रभाव-विभाग में बाँटा गया; और यह सारी प्रक्रिया इतनी जटिल कर दी गई कि सामान्य व्यक्ति इसे समझ भी न सके। स्पष्ट है कि पुरोहितों को, जो कि इस फन में माहिर होत थे, इससे बड़ी आमदनी होती थी और समाज में उनका सम्मान बहुत बढ़ गया था। ईसा के ६५० वर्ष पूर्व यह सारी प्रक्रिया उपलब्ध हो चुकी थी।

बेबीलोन-निवासियों को घण्टों का ज्ञान न था। उनकी संख्या-गणना छः के समूह से होती थी, अतः उन्होंने सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक की अवधि को छः भागों में विभाजित कर लिया था—तीन भाग दिन के और तीन भाग रात्रि के, जैसा कि मछुए अब भी करते हैं। किन्तु जब बेबीलोन में व्यापार बढ़ा तो इस एक भाग को और छोटा करना जरूरी हुआ ताकि एक व्यक्ति अधिक व्यक्तियों से समय तै करके मिल सके। अतः इस विभाग को दो भागों में बाँट कर छः हिस्से दिन के और छः हिस्से रात्रि के कर दिए गए।

मिस्र में व्यापार और अधिक उन्नति पर था, वहाँ दिन चौबीस भागों में विभाजित था, जब बेबीलोन में यह बात मालूम हुई तो उन्होंने यह विभाजन शीघ्र ही स्वीकार कर लिया। इस घण्टे के विभाग को वे चक्र कहते थे; घण्टे को उन्होंने ६० भागों में बाँट कर हर भाग को मिन्टि की संज्ञा दी, और फिर हर मिनिट को ६० सेकण्डों में विभाजित किया। पंचांग में अब भी होरा चक्र के नाम से समय-विभाग की गणना की जाती है। मिस्र में तब जलघड़ी का प्रचार हो चुका था, जिससे घड़ी पल-विपल आदि को मापा जा सकता था। तब घण्टों की गणना सूर्योदय से होती। बाइबिल में अब भी उल्लेख मिलता है, 'दिन के तीसरे घण्टे में', जिसका तात्पर्य होता है, दिन के ९ बजे।

ज्योतिषियों ने इन घण्टों को भी नामों से अभिषिक्त किया, ताकि समय-सारिणी की जटिलता बढ़ सके। उन्होंने सोचा कि जो ग्रह सबसे धीमे चलता है, वह सबसे ऊँचा होगा, इस तरह उन्होंने अपने ग्रहों को इस तरह क्रमबद्ध किया,

निनुर्त्ता	**शनि**
मार्डुक	**वृहस्पति**
नर्गल	**मंगल**
शम्स	**सूर्य**
ईस्टर	**शुक्र**
नीबो	**बुध**
सिन	**चन्द्र**

इस तरह दिन के पहले घण्टे का नाम शनि, दूसरे का वृहस्पति, तीसरे का मंगल, चौथे का सूर्य, पाँचवे का शुक्र, छठे का बुध और सातवें का चन्द्र; आठवें का फिर शनि, नवें का वृहस्पति—इस तरह क्रमबद्ध चलता

रहेगा। चूँकि सूर्य आकाशीय पिण्डों में मनुष्य का सबसे पहला आकर्षण-बिन्दु है, इसलिए उन्होंने प्रारंभ सूर्य के घण्टे से किया। दिन का अन्तिम घण्टा इस क्रम के अनुसार बुध होता है। अतः दूसरे दिन का पहला घण्टा इस क्रम में चन्द्र के हिस्से में पड़ता है। उन्होंने उस दिन को उसी ग्रह के नाम से अभिहित किया, जिसके नाम के घण्टे से इस क्रम के अनुसार वह दिन शुरू होता है। इस क्रम से सूर्य के घण्टे से प्रारम्भ होने वाला दिन बुध के घण्टे से समाप्त होता है, और दूसरे दिन का पहला घण्टा चन्द्र का घण्टा पड़ता है। अतः पहले दिन को सूर्य का दिन कहा गया और दूसरे दिन को चन्द्र का दिन। यदि यह क्रम बराबर चलता चला जाए, तो चन्द्र का दिन वृहस्पति के घण्टे से समाप्त होगा और अगला दिन मंगल के घण्टे से प्रारंभ होगा। उसके आगे का दिन बुध के घण्टे से, उसके बाद वृहस्पति के घण्टे से, फिर शुक्र और शनि के घण्टे से शुरू होंगे। बस, उस दिन का नामकरण उसके पहले घण्टे के नाम के अनुसार स्वीकृत कर लिया गया, और वही ग्रह उस दिन का स्वामी माना जाने लगा।

इस पद्धति के स्पष्ट लाभ भी थे। अब तक जो माह के अन्त में एक-दो दिन बच जाते थे, उनका भी निपटारा हो गया और दिनों में क्रमबद्धता भी आ गई। पहले 'रिक्त' दिनों में पैदा होने वाले किसी शिशु के भाग्य-विधान का भाष्य करने की ज्योतिषियों के सामने एक समस्या ही थी। फिर अलग-अलग शहर में दिनों का क्रम भी अलग-अलग था। एक बार क्रमबद्धता आने पर सभी नगरों ने इस पद्धति की उत्तमता को स्वीकार किया गया और धीरे-धीरे सभी ने यह पद्धति अपना ली। तब से लगभग ३००० वर्ष से दिनों का यह क्रम सारी दुनिया में अभंग चला आ रहा है। ■

●

अनुभव-हीनता

२१ वर्ष की युवती किसी ऑफिस की लिफ्ट चलाने की नौकरी चाहती है। इस कार्य का अनुभव नहीं है, इसीलिए कम मंजिल की बिल्डिंग का लिफ्ट चलाना चाहती है।

—पेन्सिलवेनिया के एक अखबार में छपा विज्ञापन

रामस्वरूप चतुर्वेदी

नवलेखन—(२)

उक्त लेखमाला के अन्तर्गत दूसरी रचना।

●

किसी भी विभावन को परिभाषित और समग्रतः वर्णित करना कठिन होता है, और फिर आधुनिकता तो अपने आप में एक गत्यात्मक प्रक्रिया है। उसकी प्रकृति का अंतिम विश्लेषण निश्चय ही दुःसाध्य है। पर यदि आधुनिकता के विभिन्न आयामों का हम परीक्षण करना चाहें तो शायद उसकी प्रकृति को किसी हद तक समझा जा सकेगा। आधुनिकता के विभावन को लेकर एक बहु-प्रचलित भ्रम यह जान पड़ता है कि वह सर्वतः समय-सापेक्ष है; अर्थात् ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता है, हम आधुनिक होते जाते हैं। इसी से यह निष्पत्ति की जाती है कि अगली पीढ़ी अपनी पिछली पीढ़ी की तुलना में आधुनिक होती ही है। या यह कि हर पीढ़ी अपने काल में अपने मानदंडों से आधुनिक होती है।



यहाँ पर भ्रम आधुनिक शब्द के अर्थ को लेकर है। सामान्य ढंग से हम आधुनिक शब्द का अर्थ करते हैं—नया, वर्तमान, समसामयिक। इसीलिए हर प्रकार के इतिहास का काल-विभाजन प्राचीन, मध्य-कालीन और आधुनिक इन तीन खंडों में किया जाता है। आधुनिक का यह अर्थ बराबर सापेक्ष होता है। संस्कृत और

आधुनिक भाव-बोध का स्वरूप और संक्रमण

पाली की तुलना में हिन्दी एक आधुनिक भारतीय भाषा है, और स्वयं हिन्दी भाषा के इतिहास में आधुनिक काल का प्रारम्भ १८०० ई० से माना जाता है। इस तरह से 'आधुनिक में आधुनिक' का यह क्रम कुछ दूर तक चलाया जाता है। पर जैसा मैंने कहा, आधुनिक का यह अर्थ बहुत ही लचीला है, सुविधा-निष्पन्न। यूरोप के इतिहास में 'रिनेसाँ' से आधुनिक काल का प्रारम्भ माना जा सकता है, अंग्रेज़ी कविता में इलियट से और यूरोपीय कला के क्षेत्र में सेज़ाँ से आधुनिक काल का सूत्रपात कर सकते हैं। यहाँ आधुनिक शब्द इतिहास के काल-विभाजन की एक प्रणाली है, स्वयं जिसका अपना कोई अर्थ नहीं।

आधुनिक समय में (यह शब्द का सामान्य प्रयोग है--अर्थात् वर्तमान काल में) आधुनिकता एक विशिष्ट मूल्य-दृष्टि के रूप में समझी जा रही है। वह काल का अजस्र प्रवाह न होकर एक विशेष प्रकार का भाव-बोध है, जिसे समझने की चेष्टा कई बिंदुओं से की जा सकती है। यहाँ आधुनिकता वर्तमान के भाव को द्योतित नहीं करती और न समसामयिकता को ही। दोनों में (समसामयिक और आधुनिक के बीच) मूल अन्तर यह है कि एक वर्तमान से संतुष्ट है, जब कि दूसरा उसकी उपलब्धियों को सार्थक मान कर भी उसकी अपूर्णताओं को पहिचान कर भविष्य की नई सम्भावनाओं का आवाहन करता है। और अंततः यह कि आधुनिकता मात्र नयापन नहीं है, क्योंकि नया तो एकदम सापेक्ष शब्द है, जब कि आधुनिक संवेदना का किसी सीमा तक निश्चित स्वरूप-संघटन है।

यही कारण है कि हमारा युग (मोटे तौर पर बीसवीं शताब्दी को ले सकते हैं) विशिष्ट रूप से आधुनिक है। उसकी आधुनिकता हर युग की तथाकथित 'आधुनिकता' से भिन्न है। आधुनिक भाव-बोध का यह उदय ऐतिहासिक शक्तियों के दबाव के कारण माना जा सकता है। इतिहास तो अनवरत रूप से चलता रहा, पर स्वयं इतिहास की प्रक्रिया के प्रति हम बहुत बाद में सचेत हुए हैं। हर्डर, हीगेल और मार्क्स तथा बाद में स्पेंगलर और टॅवायनबी जैसे मनीषियों के साथ हमने ऐतिहासिक प्रक्रिया को समझने की चेष्टा की है। इतिहास की शक्तियों के प्रति १९ वीं शती की यह जागरूकता लगभग देवतावाद के धरातल पर प्रतिष्ठित होती है। इतिहास पहली बार एक नियामक शक्ति के रूप में हमारे सम्मुख आता है। ऐतिहासिक प्रक्रिया के इस अध्ययन में सबसे महत्त्वपूर्ण और प्रायः उतना ही जटिल प्रश्न था व्यक्ति और समाज के पारस्परिक सम्बन्ध का। व्यक्ति कहाँ तक और कैसे समाज की पद्धतियों को प्रभावित करता है और इतिहास का नियमन करता है तथा फिर समाज और इतिहास व्यक्ति के व्यक्तित्व को किस प्रकार मोड़ते हैं, यह अन्तर्सम्बन्ध बड़े-बड़े विवादों का विषय रहा है। यहीं पर इतिहास और महापुरुष के पारस्परिक सम्बन्ध की विवेचना आती है। महापुरुष का उदय कब, कैसे और किन परिस्थितियों में होता है, और वह इतिहास को किस प्रकार से अनुशासित करता है, इस प्रसंग में अनेक अध्ययन हुए हैं, और यह क्रम आगे ही बढ़ रहा है।

इतिहास के प्रति जागरूकता के इस

भाव ने व्यक्ति को अपने प्रति भी पहले की अपेक्षा कहीं अधिक चेतन बनाया है। मनोविश्लेषणशास्त्र के प्रचार और प्रसार से इस दिशा में सहायता मिली, और आज व्यक्ति की स्वचेतनता (Self consciousness) जितनी गहरी है उतनी इसके पूर्व कभी नहीं थी। इतिहास और व्यक्ति दोनों के प्रति यह जागरूकता, और व्यक्ति की अपनी स्वचेतनता आधुनिक भाव-बोध के प्रमुख नियामक तत्व हैं। व्यक्ति-मन की अपेक्षा कलाकार की स्वचेतनता का और अधिक गहरा होना स्वाभाविक है। रचना-प्रक्रिया के एक-एक क्षण का वह विश्लेषण करना चाहता है, प्रेरणा का एक दिव्य क्षण मान कर उसे संतोष नहीं होता।

१९वीं शताब्दी में इतिहास के दबाव का अनुभव किया गया और उसे समझने की कोशिश भी हुई। पर आधुनिक भाव-बोध का प्रारम्भ वहीं से नहीं हो जाता। उस युग के मनीषियों के तर्कों और निष्कर्षों ने अगली पीढ़ियों को आधुनिक बनाया। इतिहास दार्शनिकों का अपना समय तो प्रधानतः उदारतावादी (liberal) था। उदारतावादी लोग मत को प्रधानता नहीं देते, व्यक्तिगत सम्बन्धों को अधिक महत्त्वपूर्ण मानते हैं। इसके विपरीत आधुनिकता मूलतः मतयुक्त दृष्टिकोण है। यही कारण है जिससे आज भी उदारतावादी व्यक्ति आधुनिक नहीं हो पाते। उनके लिए सत्य यहाँ भी है, वहाँ भी किन्तु 'कमिटमेंट' कहीं नहीं। पर, क्योंकि आधुनिकता किसी हद तक समय-सापेक्ष होने पर भी सबसे पहले एक मूल्य-दृष्टि है, अतः उसमें मत का महत्त्व है। इसीलिए आधुनिक पद्धति में 'कमिटमेंट' की चिंतना अधिक है। आधुनिक दृष्टि से संपृक्त कलाकार 'एंगेजमेंट' और 'कंसर्न' का बराबर अनुभव करता है। वस्तुतः उदारतावाद दयायुक्त साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद से निःसृत था, जिसका विशेष रूप से प्रचार पिछली शती के इंग्लैण्ड में हुआ। इस उपनिवेशवाद की समाप्ति के साथ-साथ प्रजातन्त्र की पद्धतियों का उदय होता है, जो निश्चित रूप से अपने को किन्हीं विशिष्ट मूल्यों और मानों पर आधारित करती हैं। और यहीं आधुनिक दृष्टि में, जो प्रजातन्त्र युग की उपज है, मूल्यों और मत की चिंता इतनी महत्त्वपूर्ण हो जाती है। इंग्लैंड में, जहाँ की उपनिवेशवादी और साम्राज्यवादी भाव-भूमि में उदारतावाद का बड़ा रचनात्मक विकास हुआ, मूलतः परंपराओं और परिपाटी पर बल दिया जाता है। वहाँ का प्रजातंत्र भी, जो तुलनात्मक दृष्टि से काफी पुराना है, परिपाटियों पर ही आधारित है। मूल्यों और प्रतिमानों के आधार पर अपना नया संविधान अपेक्षाकृत नये प्रजातंत्रों ने निर्मित किया। यही कारण है जिससे आज भी इतना पुराना प्रजातांत्रिक देश इंग्लैंड परिपाटियों से अधिक बँधा है; और आधुनिक विचार-धाराओं में कभी-कभी असुखद तनाव का अनुभव करने लगता है। वहाँ के 'क्रुद्ध नवयुवक' जो मुकुट के सांकेतिक राज्य-चिह्न को भी समाप्त कर देना चाहते हैं, इसी असुखद तनाव के सूचक हैं। जो भी हो, आधुनिक प्रजातंत्र की व्यवस्था में मत का असाधारण महत्त्व है, सामान्य अर्थ में भी और विशिष्ट अर्थ में (मतदान) भी। इसी के अनुरूप आज 'विचारों के साहित्य' की नयी और महत्त्वपूर्ण विधा जन्मी है।

इंग्लैंड में २० वीं शती के प्रारम्भ में एक ओर तो साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद अपने विकास की पराकाष्ठा पर थे, और दूसरी ओर उदारतावाद की धूम थी। यहाँ स्मरणीय है कि १९ वीं शती का अंग्रेज़ी का रोमांटिक साहित्य इस उदारतावादी युग की ही उपज है। ह्यूगो ने तो रोमांटिसिज़्म की परिभाषा ही दी है—"रोमांटिसिज़्म इज़ लिबरलिज़्म इन लिटरेचर"—रोमांटिसिज़्म साहित्य में उदारतावाद है। बाद का हिन्दी छायावादी काव्य भी इस उदारतावाद की भाव-भूमि में ही पनपा है। पिछले चर्चा-सूत्र को बढ़ाते हुए कहा जा सकता है कि अंग्रेज़ी उदारतावाद ने भारतीय स्वाधीनता को आसान बनाया। और यह भी कि सन् १९४७ के पूर्व के शासक और शासितों के बीच में गहरा दुर्भाव न पनप कर मैत्री सम्बन्ध ही अधिक दृढ़ हुआ। समूचा ब्रिटिश-साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और नव स्वतन्त्र देशों का एक 'कौमनवेल्थ' बना जहाँ सभी देशों की बराबर स्थिति है। इस आधुनिक प्रजातांत्रिक भाव-बोध के विकास के पीछे दो महायुद्धों का काल है। २०वीं शती के प्रारंभिक दशकों में ही, विशेष रूप से युद्ध के दौरान में, जनता की सजगता बढ़ी और तानाशाही, सर्वसत्तावाद तथा फ़ासिज़्म के विरोध में प्रजातांत्रिक मनोवृत्तियों का उदय हुआ। यह आधुनिकता के विकास की पहली महत्त्वपूर्ण स्थिति है, जहाँ व्यक्ति को सतत निर्णय लेना होता है, मत देना होता है; जिसे कुल मिला कर एक मूल्य संपृक्त दृष्टि कहा जा सकता है।

आधुनिकता को मैंने 'स्वचेतन रूप से इतिहास-चक्र को तेज़ी से चलाने की प्रक्रिया' कहा है। उदार मानस में इतनी कर्मठता और संकल्प भावना न थी। उसने इतिहास से संघर्ष किया, पर बहुत कुछ उसकी प्रक्रिया को बिना समझे। आधुनिक मानस इतिहास के भविष्य का नियमन करता है और उसे वर्तमान में प्रतिष्ठित कर देना चाहता है। एक भविष्य को अपने आप अपनी गति से आने देने में विश्वास करता है, दूसरा उसे सोद्यम रूप से वर्तमान में खींच लेना चाहता है। वर्तमान की जीर्णता से असंतोष और भविष्य का नियमन तथा बलात् आवाहन अभूतपूर्व स्वचेतनता की माँग करते हैं। और इतिहास के प्रति जागरूकता के साथ यह स्वचेतनता आधुनिक भाव-बोध का दूसरा महत्त्वपूर्ण तत्व है। जब मैं आधुनिकता को वर्तमान के संदर्भ में भविष्योन्मुखी दृष्टि कहता हूँ[1] तो मेरा तात्पर्य यही है। वह संस्कृति के विकसनशील तत्वों के प्रति सजग रूप से उन्मुख दृष्टि है।

आधुनिकता की चर्चा करते समय समूची जीवन-पद्धति की बात हमारे सामने आती है। यह सही है कि, कलाकार की अतिरिक्त सजगता और स्वचेतनता के कारण विभिन्न कला-रूपों की आधुनिकता समाज के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा अधिक विकसित होती है। फिर भी जीवन के सभी क्षेत्रों की आधुनिकता में कुछ न कुछ तारतम्य अवश्य होता है। पर भारतीय जीवन के कई ऐतिहासिक व्यतिक्रमों के कारण यहाँ की आधुनिकता में कुछ विभ्रम है जिसका विश्लेषण आवश्यक है। वस्तुतः जब भारतीय जीवन इतिहास के प्रति जागरूक हुआ तो उसे लगा कि संसार के सभ्य देशों की

१. देखें—"हिन्दी नवलेखन"

तुलना में वह काफ़ी पिछड़ गया है। पचास वर्षों से लेकर एक शताब्दी तक के इतिहास का अन्तराल उसने यूरोप की तुलना में अनुभव किया। इस व्यवधान को कैसे पूरा किया जाए, यही आज के भारतीय जीवन की प्रमुख समस्या है। न तो वह अफ्रीका अथवा एशिया के कुछ अन्य देशों की तरह इतना पिछड़ा है कि दूसरों के समकक्ष आने की बात न सोच सके। और दूसरी ओर इतिहास की तीव्र गति में आज वह अन्यों की तुलना में इतना व्यवधान पा रहा है कि उसे दूर करना आसान नहीं लगता। ऐसा जान पड़ता है जैसे इतिहास के कई कालों में वह एक साथ रह रहा हो। देश की जलवायु के बारे में तो यह स्थिति थी ही—हमें प्रायः ७५ डिग्री तापमान का उतार-चढ़ाव (४० से लेकर ११५ फ़ैरनहीट) सहना होता है। पर इतिहास के इस तनाव ने हमारे व्यक्तित्व में गहरे स्तर पर कई प्रकार के अंतर्विरोध उत्पन्न कर दिये। बैल-गाड़ी और जेट,—बीच में साइकिल और मोटर—इन सभी के युगों को हम एक साथ साधे हुए हैं। इन अंतर्विरोधों से कोई शक्ति-पुंज विकसित हो सकेगा, इसे वही बता सकता है जिसने, मानवीय शास्त्रों और प्राकृतिक विज्ञानों, दोनों का एक साथ गहरा अध्ययन किया हो।

भारतीय जीवन के प्रसंग में पाश्चात्य विज्ञान के संपर्क की बात प्रायः की जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारे देश के जीवन में व्याप्त गहरे तनाव के पीछे विज्ञान और प्रविधि का अपेक्षाकृत देर से आना है। धर्म का विघटन और विज्ञान की स्थापना इस युग की दो बड़ी असाधारण महत्त्व की स्थितियाँ हैं। धर्म का नया स्थानापन्न विज्ञान को माना जाता है। पर वस्तुतः विज्ञान ने तो दर्शन का स्थान ग्रहण किया है—क्योंकि मूलतः ये दोनों चिन्तन प्रक्रियाएँ हैं, जब कि धर्म का सम्बन्ध प्रधानतः आचरण से है। विज्ञान से प्रसूत प्रविधि शायद धर्म का स्थान ग्रहण कर सकती है, पर निर्वैयक्तिक होने के कारण उसमें आचरण का नियमन करने वाले मूल्यों-मानदंडों का प्रादुर्भाव नहीं हुआ। इस प्रकार धर्म को अस्वीकार कर देने पर उसका स्थानापन्न हमें अभी आविष्कृत करना है। हमारे देश में यह स्थिति इसलिए और विषम हो गई है कि एक ओर तो यहाँ विज्ञान और प्रविधि का अपेक्षाकृत कम विकास हुआ है, और दूसरी ओर धर्म का प्रभाव-क्षेत्र अब भी विस्तृत है; बहुत से स्थलों पर तो वह अंधविश्वास के स्तर पर ही प्रतिष्ठित है। ऐसी परिस्थिति में आस्था और संस्कारों के अभाव ने एक मूल्यगत संक्रांति उत्पन्न कर दी है। या तो विज्ञान की सृजनात्मकता इस समस्या का कोई हल देगी, या फिर आचारों से अलग धार्मिक आस्था की पुनर्प्रतिष्ठा मानवीय व्यक्तित्व को एक सुदृढ़ धरातल प्रदान करेगी। इस संदर्भ को लेकर पश्चिम का संघर्ष धीरे-धीरे अपनी चरम सीमा पर पहुँच रहा है। वहाँ का वरण किसी हद तक अन्यों को भी प्रभावित कर सकता है। हमारे यहाँ तो संप्रति-प्रविधि और सर्वोदय के बीच का तनाव उभर रहा है। दोनों में आधुनिक कौन है, इसका निर्णय हमें अपने अनुभव से ही करना होगा।

विशेषतः कला और साहित्य के क्षेत्र में

आधुनिक वृत्तियों की प्रक्रिया स्वतन्त्र अध्ययन की अपेक्षा रखती है। इन माध्यमों से आधुनिक भाव-बोध का संक्रमण और संचरण शायद सबसे अच्छे ढंग से समझा जा सकता है। आधुनिकता सांस्कृतिक चक्र को तेज़ी से चलाने की प्रक्रिया है, इस धारणा को यहाँ और पुष्टि मिलती है। किन्तु प्रसंगवशात् एक अन्य स्थिति की चर्चा पहले अपेक्षित है। कम्यूनिस्ट आन्दोलन ने भी इतिहास-चक्र को तेज़ी से चलाना चाहा था। प्रोलेतेरियत का शासन उनके सिद्धान्तों के अनुसार एक अपरिहार्य स्थिति है, पर उस भावी स्थिति को शीघ्रतर उपलब्ध करना उनके आन्दोलन का मूल लक्ष्य था। इस प्रकार से ऐतिहासिक संचरण के दबाव का अनुभव करके उन्होंने काफ़ी पहले आधुनिक होना चाहा था। पर इस आधुनिक वृत्ति की परिचालना वे ठीक से न कर पाएं। उन्होंने बल इतिहास पर न लगा कर व्यक्ति-मानस को अवरुद्ध करने में लगा दिया। यहीं उनकी सांघातिक भूल थी जिससे वे फिर उबर ही न सके। आधुनिकता प्रधानतः मूल्य-बोध की दृष्टि है, जो निश्चय ही व्यक्ति-मानस की अपनी समस्या है, इसे उन्होंने नहीं समझा।

कलाओं में मूल्य-बोध की यह आधुनिक दृष्टि बड़ी तेज़ी से स्वीकृत हुई है। आधुनिकता आज विभिन्न कलाओं की विशेषता न होकर उनकी कसौटी है, एक मानदंड है जो रचना की सफलता-असफलता का निर्णय करता है। और यह स्थिति किसी विशेष भौगोलिक क्षेत्र में सीमित न रह कर प्रायः एक अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए हम अमूर्त कला और नयी कविता को ले सकते हैं जो यूरोप, अमेरिका तथा जाग्रत एशिया के हिस्सों में अपने-अपने ढंग से विकसित हुई हैं। न्यूयार्क से लेकर टोकियो तक—यूरोप और एशिया होते हुए—कलाओं की एक परिचित भाषा का उदय हुआ है, जिसे विभिन्न भौगोलिक और सांस्कृतिक क्षेत्रों के निवासी समझ रहे हैं, समझने की कोशिश कर रहे हैं। सच तो यह है कि आज कलाएँ और साहित्य के विभिन्न माध्यम एक दूसरे को स्पष्ट करने में जितना सहयोग दे रहे हैं उतना इसके पूर्व कभी कल्पित नहीं किया जा सकता था। यही कारण है कि आज अमूर्त कला की प्रकृति को जाने बिना नयी कविता का आस्वादन पूरे तौर पर नहीं हो पाता।

आधुनिकता के स्वरूप का आभास शिल्प-पद्धतियों के माध्यम से आसानी से होता है। इसीलिए आज की चित्रकला आधुनिकता के संचरण का अधिक अच्छे ढंग से परिचय कराती है। साहित्य-रूपों में कलाओं की अपेक्षा संवेदना का अधिक महत्त्व होता है, जब कि शिल्प का परिवर्तन दृश्य-रूपों में अधिक स्पष्ट ढंग से समझा जा सकता है। इसीलिए कला-क्षेत्रों की आधुनिकता हमारी दृष्टि को पहले आकृष्ट करती है। फिर यह भी कि आधुनिक कला की स्वचेतन वृत्ति के कारण हम आज यह नहीं मान पाते कि संवेदना अपने आप से रूपाकारों का नियमन करती चलती है। स्वचेतन कला में शिल्प का स्वतन्त्र महत्त्व कम नहीं है। वह मात्र संवेदना का अनुसरण करने वाला तत्व नहीं रह गया है।

आधुनिकता किसी एक रचना अथवा कलाकृति विशेष की नहीं होती। वरन्

वह रचनाकार के समूचे व्यक्तित्व का अंग है। इसीलिए किसी कलाकार ने पहले एक आधुनिक कविता लिखी, इससे यह सिद्ध नहीं हो जाता कि उसमें आधुनिकता गहरे पैठी है। क्योंकि आधुनिकता की उन्मुक्त व्यवस्था में मौलिकता के लिए सबसे अधिक गुंजाइश है, अतः पूर्णतः आधुनिक कलाकार का व्यक्तित्व अपने आप में अद्वितीय होता है। पर आधुनिकता के आन्दोलन में इन अद्वितीय कलाकारों के सहकार का महत्त्व है। अंग्रेजी तथा हिन्दी के नवलेखन इसका पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हैं, जहाँ पर पूरे आन्दोलन की उपलब्धियाँ व्यक्तिगत की अपेक्षा सामूहिक अधिक हैं। ये मानो प्रजातन्त्र युग में साहित्य के 'कौमनवेल्थ' हैं, जहाँ सबकी सार्थकता बराबर है।

तीव्र संचरण के इस युग में आधुनिक कलाओं के अनुकरण बहुत बड़ी संख्या में हुए हैं। कभी-कभी तो आशंका होती है कि अनुकरणों की इस भीड़ में मूल कला-रूप ही कहीं खो न जाएँ। हिन्दी नयी कविता के मिथ्या अनुकरण में चक्रव्यूह, बौने और कुंठाओं के अभिप्राय घुस गये हैं। कहानी में काबरे नर्तकी और रात्रिकालीन कॉफ़े का चित्रण करके उसे आधुनिक बनाने की चेष्टा होती है। विज्ञान की प्रकृति के निकट पहुँचने के लिए वैज्ञानिक उपकरणों का नामोल्लेख पर्याप्त समझ लिया जाता है। आधुनिक कलाओं में यह 'स्वशब्दवाच्यत्व दोष' की प्रवृत्ति बढ़ रही है, शायद प्रचार और विज्ञापन के माध्यमों के कारण। इस मिथ्या आधुनिकता के प्रसार से यह स्पष्ट होता है कि इस तथ्य की ओर तो लोग जागरूक हैं कि आधुनिक माध्यमों के बिना कला और साहित्य के क्षेत्र में सफलता नहीं प्राप्त की जा सकती; पर आधुनिकता के नुस्खे नहीं हो सकते, क्योंकि कलाकार का आधुनिक व्यक्तित्व पहले की अपेक्षा और भी अधिक अद्वितीय है। उसकी अनुभूति का खरापन और प्रखरता इस बात से भी सिद्ध होती है कि आज का आधुनिक कलाकार प्रायः कई माध्यमों से अपने को अभिव्यक्त करता है। मात्र कविता या कथा-साहित्य या केवल साहित्य-रूप ही उसके लिए पूरे नहीं पड़ते। यह एक आसान ढंग है जिससे मिथ्या आधुनिकता की जाँच हो सकती है, क्योंकि अनुकरण करने वाले कलाकार (?) प्रायः अपने को एक ही माध्यम तक सीमित रखते हैं। जब कि अधिकांश वस्तुतः आधुनिक कलाकार कई माध्यमों का प्रयोग करते दिखाई देते हैं।

आधुनिक कलाकृतियों के मूल्यांकन को लेकर कई प्रकार की समस्यायें सामने आती हैं। इस प्रसंग में आधुनिक कला की तुलना क्लैसिकल रचना-पद्धतियों से की जाती है। और यही सबसे अधिक विवाद का विषय है। कुछ कलाकारों और विचारकों की यह शंका है कि आधुनिक कलाकृतियाँ शायद स्थायी महत्त्व की सिद्ध न हो सकें। विश्व की श्रेष्ठ कृतियों में उनकी गणना हो सकेगी, इसमें उन्हें सन्देह है। आधुनिक कला की श्रेष्ठता और उसके स्थायी महत्त्व के बारे में यह चिन्ता अस्वाभाविक नहीं कही जा सकती। पर प्रश्न यह है कि इतिहास के प्रजातांत्रिक दौर में क्या क्लैसिकल प्रणाली के भव्य और महान साहित्य का सृजन सम्भव है? हो सकता है कि आधुनिक कला और साहित्य की उपलब्धि व्यक्तिगत कृतिकारों की न होकर सामूहिक प्रकार

की हो। और फिर यह भी संभव है कि आधुनिक जटिल और स्वचेतन पद्धतियों से श्रेष्ठ कला की सर्जना संभव न देख कर आने वाली पीढ़ी किसी दूसरे ही अपेक्षाकृत सहज मार्ग को अपनाए (हक्सले ने इस तीव्र स्वचेतना को भुलाने के लिए ही शायद मादक द्रव्य का सेवन करके 'डोर्स ऑफ़ परसेप्शन' लिखा था)। किन्तु ये सब अभी खुले प्रश्न हैं, जिन पर विचार किया जा सकता है, सहसा किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता। पर एक बात अवश्य है, कोई भी साहित्य तब तक क्लैसिकल प्रौढ़ता तक नहीं पहुँच सकता जब तक कि वह पूरे तौर से अपने युग से संपृक्त न हो। आधुनिक कला-कृतित्व अपने युग से संपृक्त है, यह स्पष्ट है, पर वह स्थायी हो सकेगा, यह भविष्यवाणी की ही कैसे जा सकती है! वर्तमान समय में आधुनिक रचना-प्रक्रिया सर्वाधिक सशक्त और संगत है। अपने आप में यह उसके लिए कम महत्त्व की स्थिति नहीं।

(पृष्ठ १६ का शेष : शकुन्तला के यात्रा-पथ)

कादंबिनी की महक फैल गई है,
चारों ओर, चारों ओर, पावक की लपटें उठीं व्योम तक
चारों ओर, चारों ओर, संस्कृति के कक्ष खड़े हो रहे,
चारों ओर, चारों ओर, हृदय के राग मदिर हँस रहे,
औढ़र यह यात्रा है
केवल अकेली मैं बची हूँ :
खड़ी हूँ!

(कई पगध्वनियाँ)

कहाँ हो तुम सब...
मार्गरेट, तुम हो!
फास्टस, तुम हो!
गोएथे, तुम हो!
कालिदास, तुम हो!
तो क्या तुम सब साथ हो?
(समवेत स्वर) : साथ हैं!!

(समाप्त)



मृत्यु - कथा

उदयशंकर भट्ट

•

हर रोज देखता हूँ—
हर रोज,
न जाने कौन—
शिकार के लिए सतर्क बिल्ली-सी मौन,
चिन्ता से काले अँधेरे के लबादे में,
बिजली-सी अचूक,
तेज घूरती आँखों से रास्तों को फूँक-फूँक,
बिना हिले, बिना डुले
कोई आती है,
कहानी-सी साँसें निगल जाती है।
उस समय,
उस समय,
एक, दो, तीन, कई लंबी आवाजें—
पानी से भरी
बिखर कर फैल जाती हैं।
किन्तु.........
उस महाकाल के सागर में
बादल की हल्की फुहार की तरह,
जिन्दगी में एक हार की तरह,
एक सिहरन फैल जाती है।
मैं पूछता हूँ क्या है यह,
होता है रह-रह,
लेकिन पूछने पता लगाने और उतर पाने से पहले ही
जीवन की नदी की तहें,
इससे पहले कि कोई कुछ कहे
जैसे कुछ भी न हुआ हो—
सब बराबर हो जाती हैं;
जैसे बस, यही एक, एक ही दुआ हो
और फिर एक बार...
और फिर दूसरी बार...
और फिर तीसरी बार...
मैं फिर भी नहीं जान पाता
यह कौन है कहाँ से आता?
लगता है जैसे मैं भी हूँ एक उम्मीदवार।
लेकिन जब वह आयेगी या आयेगा,
क्या मेरे पास इतना वक्त रह जायेगा—
कि तुम से कुछ कहूँ,
तुम्हारी प्रश्न भरी आँखों में बहूँ?
नहीं,
शायद नहीं,
कभी नहीं
वह वक्त नहीं आयेगा;
बिना कहे ऐसे ही रह जायेगा,
जैसे अब तक रहा—
किसी ने कुछ भी न कहा।

•

राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी का धारावाही सहयोगी उपन्यास

एक इञ्च मुस्कान

नित-नूतन प्रयोगों की साहसिकता 'ज्ञानोदय' की सहज स्वाभाविक परम्परा रही है जिसके कारण अपने पाठकों में वह सदा से नित-नवीन आकर्षण का केन्द्र रहा है। इसी परम्परा की नवीनतम कड़ी है प्रस्तुत धारावाही सहयोगी उपन्यास 'एक इञ्च मुस्कान'—हिन्दी की नयी पीढ़ी के सर्वाधिक लोकप्रिय कथाकार-दम्पत्ति राजेन्द्र यादव और मन्नू भण्डारी द्वारा प्रणीत—जिसके अब तक आप निम्नलिखित ८ अध्याय पढ़ चुके हैं :

१. सागर संगम अरुण-नील (जनवरी अंक) : राजेन्द्र यादव
२. कुहासा और आँधियाँ (फरवरी अंक) : मन्नू भण्डारी
३. धुँधलके के आरपार (मार्च अंक) : राजेन्द्र यादव



४. डूबते सूरज के लहर-भीगे किनारे (अप्रैल अंक) : मन्नू भण्डारी
५. बन्द दरवाज़ा और दुहराती दस्तकें (मई अंक) : राजेन्द्र यादव
६. एक विन्दु और दो अलग-अलग रेखाएँ (जून अंक) : मन्नू भण्डारी
७. निर्णय का एक दिन (जुलाई अंक) : राजेन्द्र यादव
८. पुकारती मंज़िलों की मरीचिकाएँ (सितम्बर अंक) : मन्नू भण्डारी



अब इस अंक के अगले पृष्ठों में पढ़ें राजेन्द्र यादव लिखित 'छोटी-छोटी बातें'

पूर्व-कथा

पत्रों के आधार पर अमला की जो तस्वीर अमर ने अपने मन में आँक रखी थी, उस अमला और वास्तविक अमला में कितना अन्तर था! कभी जब एकदम निकट आ जाए तो पत्रों वाली चिर-परिचित अमला-सी लगे और दूसरे ही क्षण इतनी दूर चली जाए कि नितान्त अपरिचित-सी लगने लगे।

अमला अमर को प्रेरित करती है कि यदि अमर को अपनी अद्भुत प्रतिभा और कला को चरम विकास पर ले जाना है तो वह विवाह के चक्कर में न पड़े, अपनी कला के साथ कभी समझौता न करे।

और अमर ने रंजना को स्पष्ट कह दिया कि वह शादी के बन्धन में नहीं बँधेगा, अपनी कला के साथ समझौता नहीं करेगा। रंजना के सपनों का महल ढह गया। जिस अमर के लिए उसने अपने घर वालों से सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया था और शादी के सब अच्छे-बुरे प्रस्ताव ठुकरा दिये थे, वही अमर....वही....। रंजना से कट कर, अमर ने स्वयं को अपने कमरे में बन्द कर लिया और दत्तचित्त होकर उपन्यास के निर्माण में लग गया। उपन्यास की समाप्ति के दिन उसने पाया कि वह तेज़ बुखार में तप रहा था। मन्दा भाभी उसे बुखार की हालत में ही टैक्सी में डाल कर अपने घर ले आती है जहाँ उसकी सेवा-सुश्रूषा के लिए रंजना भी उपस्थित है।

इधर अमला के साथ इसी बीच क्या-क्या नहीं घट गया?—कार में कैलाश से इस क़दर झड़प हुई कि सदा के लिए उससे सम्बन्ध टूट गया;—पिताजी सफ़र से लौटे तो एक विचित्र प्रस्ताव लेकर कि वह अपने पति किशोरी बाबू को अब क्षमा कर दे जिनसे लड़कर दस वर्ष पहले वह चली आयी थी; या अमला चाहे तो कैलाश से विवाह कर ले, या जिससे भी चाहे उससे......लेकिन अमला अपने जीवन के इन पिछले दस वर्षों को कैसे झुठला दे?

"अमला को, जिसके परिचय ने यह उपन्यास लिखा लिया......।" अपने उपन्यास की पाण्डुलिपि पर यह समर्पण लिखते ही अमर को लगा कि उसने मन ही मन एक बहुत बड़ा निर्णय ले लिया है....., फिर टण्डन के साथ हुई अपनी विस्तृत बातचीत के दौरान में उसने अपना यह निर्णय उस पर प्रकट भी कर दिया कि वह रंजना से शादी कर लेगा।

उधर शिमला में अमला को उपन्यास की पाण्डुलिपि मिलती है, और मिलता है अमर का पत्र;—और उधर उसके तीसरे ही दिन रंजना और अमर शादी के बन्धन में बँध जाते हैं।

अमर की डायरी

हनीमून

टण्डन ने सुझाव दिया, "तुमलोग कहीं घूम आओ कुछ दिनों को। 'हनीमून' मनाओ.."

रंजना ने मना कर दिया, "अभी संभव नहीं है छुट्टी मिलना। बीमारी के लिए, बम्बई वाले ट्रिप के लिए, मैंने पहले ही बहुत ले रखी हैं।"

मैंने कहा, "इन दिनों कुछ ऐसा जोश आ गया है कि एक छोटा-सा उपन्यास और पूरा कर डालूँ। शादी के चक्कर में जो ऊपर से और कर्जा कर लिया है वह भी बराबर हो जायेगा।"

"हाँ हाँ और क्या!" रंजना तपाक से बोली, "बहुत जिन्दगी है अभी तो टंडन भाई साहब, जब इच्छा होगी तभी हनीमून मना लेंगे....।"

"मैंने तो इसलिए कहा कि कम से कम तुम यह तो महसूस करो कि शादी हो गयी है...." टंडन ने बात साफ़ की।

"अरे यहाँ तो 'दिन को होली, रात दिवाली रोज मनाती मधुशाला' है...." मैं उत्साह में रंजना का कन्धा भींचकर बोला।

लेकिन सच बात है मुझे लगता ही नहीं जैसे मेरा विवाह हो गया है। जैसा रंजना के साथ व्यवहार तब था वैसा ही अब है। उसमें कहीं कोई ऐसा विशिष्ट नहीं हुआ है कि जिसकी ओर ध्यान आकर्षित हो।

कनॉट प्लेस के दो-तीन होटलों में दोस्तों के साथ हाहा-हूहू करने के बाद जब हस्बमामूल मद्रास होटल से आखिरी बस लेकर आया तो लगा, घर में बड़ा बोझ है। मेज पर खाना रखा था। मेरे आते ही नौकर औंधी प्लेटों को सीधा करने लगा। मैंने पूछा, "रंजना सो गयी क्या?"

"भैन जी बहुत नाराज़ हैं....उन्होंने खाना नहीं खाया।" नौकर ने बताया।

"नाराज़? अरे लो....ये भी कोई बात हुई?" मैं भीतर वाले कमरे में गया। वह पलंग पर करवट लेकर लेटी थी। जाकर

छोटी-छोटी बातें

ज़ोर से पीठ पर हाथ मारते हुए अतिरिक्त उत्साह में कहा, "अरे उठो श्रीमतीजी, यह पहले ही दिनों नाराज़ी....!" बत्ती नहीं जली थी। कोई जवाब भी नहीं।

कन्धा अपनी ओर खींच कर सीधा किया तो गर्दन एक तरफ़ मोड़ ली....सूँ-सूँ के साथ सुबकियाँ तेज हो गयीं। रंजना रो रही थी। मैं सन्नाटे में आ गया।

"रंजना. .रंजना, क्या बात है ?"

"कुछ नहीं।"

"तो भी ..."

"आप अपने घूमो-फिरो...भटको...आपको क्या है !" और रंजना बच्चों की तरह रोने लगी।

मैं हँस पड़ा। दोनों हाथ खींच कर उसे उठाने लगा।

"आपको हँसी आ रही है, यहाँ भूखे-प्यासे मर गये....।" रंजना बोली।

"माफ़ करो यार, ग़लती हो गयी....अब आगे से नहीं करेंगे।"

मैंने उसके हाथ छोड़कर अपने कान पकड़े, एक बार उठक-बैठक की तो रंजना हँस पड़ी, "अरे...अरे....नौकर क्या कहेगा ?.. तब तो खयाल आया नहीं, अब ये सब कर रहे हैं।"

"मेरी समझ में नहीं आता कि आपको अकेले घूमना अच्छा कैसे लगता है ? आपको ये नहीं लगता कि कोई और भी है ?" खाते समय उसने पूछा।

"भई मैं तो चाहता हूँ कि तुम भी चलो, घूमो !" मैंने कहा।

"आपने तो कह दिया, चलो-घूमो ! दिन भर थककर चूर-चूर आओ तो घूमने की सूझती है या मन होता है कि आध-पौन घंटे आदमी आराम करे...?" रंजना ने कहा तो मुझे लगा कि वह आरोप कर रही है।

बात सच थी। मैं चुप हो गया। जब वह कोई बात ज़ोर देकर कहती है तो डिबेट के अन्दाज़ में एक हाथ को दूसरी हथेली पर झटकते हुए बोलती है।

खाने के बाद जब हमलोग पान खाने, घूमते हुए सिनेमा के पास गये तो गली में यह. वहाँ चारपाइयाँ बिछाये लोग सो रहे थे। रंजना ने फिर कहा, "इस गली में यहाँ से वहाँ तक आप देख लीजिये, सब लोग छः-सात बजे तक घर लौट आते हैं। खाया-पिया और घूमने निकल गये...।"

लौटते हुए उसने मेरा हाथ पकड़ लिया और हाथ झुलाते हुए हमलोग चहलकदमी करते चलने लगे, 'मेरी समझ में नहीं आता, आपका मन कैसे लगता है ? आपको घर आने की इच्छा नहीं होती....? मुझे तो कहीं अच्छा नहीं लगता। हमेशा मन करता रहता है, आपके साथ रहूँ- -आपके पास रहूँ......हमलोग साथ घूमें, साथ सिनेमा जायें.....।"

रास्ते भर मैंने लिखने की बात सोची थी, अब हुआ--फिर कभी लिखेंगे। ज़िन्दगी में ये बातें ज़्यादा ज़रूरी हैं। हमलोग बहुत धीरे-धीरे आ रहे थे। रंजना की बात समझ कर मैंने सोचते हुए कहा, "हमलोगों के साथ यह समस्या सचमुच बड़ी विकट है, मैं सारे दिन बन्द होकर लिखना-पढ़ना करता हूँ और तीन-चार बजे घूमने-भटकने निकल जाता हूँ--यह मेरी वर्षों की आदत है। ख़ैर आदत बदली भी जा सकती है। लेकिन मैं सचमुच सारे दिन इतना ऊब जाता हूँ कि घूमने-फिरने को मन तड़पने लगता है। तब तुम थकी-माँदी चूर-चूर आती हो। तुम्हें

आराम चाहिए। यह न संभव है, न मुझसे इतना अत्याचार हो ही पायेगा कि दिन भर खट-पिसकर तुम आओ, और तब मैं कहूँ कि तुम मुझे कनॉट प्लेस में कहीं मिलो....।"

"हाँ, उस वक्त क्या इतनी हिम्मत रह जाती है....?"

"तो फिर क्या हो? इस गली के सारे लोग दिन भर नौकरी करने दस-दस मील दूर दफ्तरों में जाते हैं और उन्हें घर आने की जल्दी रहती है--मुझे सारे दिन घर में काम करना होता है और बाहर निकलने को तबीयत छटपटाती रहती है।"

रंजना भी सोच में पड़ गयी। और मैं गंभीरता से विचार करने लगा कि सचमुच इस समस्या का हल क्या हो? यही हो सकता है कि रंजना से नौकरी छुड़ा दी जाये--लेकिन यह न वह स्वयं चाहेगी....; न इतनी बड़ी ज़िम्मेदारियों के साथ संभव होगा..?

दोस्त

कल एक घटना हो गयी।

रविवार था और दोपहर की गर्मियों से बचने के लिए हमलोगों ने सुबह से ही कमरा बन्द करके पानी भर रखा था। फिर भी नींद नहीं आ रही थी। देर तक हमलोग विचार करते रहे कि दिल्ली में आजकल जो बहुत सस्ते कूलरों का विज्ञापन हो रहा है; उनमें से एक लगाया जाय या नहीं। ऐसे में तो न लिखा-पढ़ा जा सकता है, न सोया। टप्-टप् पसीना गिरता है, सिर तपता रहता है। दस कमरों के भीतर भी पंखा लू ही फेंकता है।

तीन बजे होंगे कि दरवाज़े पर खट-खट हुई। झल्लाते हुए उठ कर देखा तो नाथ और शंकर थे। नाथ मेरा पुराना मित्र है--हम दोनों एक समय एक ही साप्ताहिक में सहायक थे। शंकर नया-नया दिल्ली आया था और अक्सर अपने नगर को 'हिन्दी साहित्य का गुटका' कहता था। उसकी गर्वोक्ति थी कि उस नगर का हर साक्षर, साहित्यकार होता है। इसी कारण उन्हें अपने से बाहर जाने की जरूरत नहीं पड़ती। वे लोग अपने आप ही आन्दोलन चला लेते हैं, और अपने आप ही एक दिन उसे 'आउट-डेटेड' घोषित कर देते हैं। एक दूसरे के स्कैण्डलों पर कहानी-उपन्यास लिखते हैं--फिर किसी चेले को आलोचक बनाकर उस लेखन के लिए मूल्य और मानों का निर्माण करवा डालते हैं...अब वे राजधानी विजय करने आये थे। नाथ उन्हें पकड़ लाया। हमलोग घण्टों बैठे साहित्य और व्यक्तियों की निन्दा-प्रशंसा करते रहे।

लेकिन इस 'असमय' में उन्हें देखते ही रंजना का माथा ठनका। मैंने रंजना को बुलाया भी। चाय हमलोगों ने एक बार साथ पी, एक बार अलग से। उनलोगों ने बधाइयों के साथ औपचारिक रूप से मेरी रचनाओं, घर, पत्नी की प्रशंसा की--लेकिन रंजना शायद एकाध बार ही मुस्करायी, फिर भीतर जाकर अपनी कॉपियाँ जाँचने लगी। मैंने दो-एक बार ऐश-ट्रे शंकर के हाथ के नीचे रक्खी, लेकिन वह बहस के दौरान में कभी सिगरेट इस हाथ में लेता था, कभी उसमें और चुटकी बजाकर राख झाड़ता था। बहरहाल, बातचीत बड़ी जोरदार थी और योजनाएँ बड़ी दिलचस्प!

"कैसे हैं आपके मित्र?" उनके जाते ही रंजना ने अपने कमरे की 'हालत' देख कर कहा, "लगता है जैसे बनमानुष आ गये हों--सारे

कमरे में दियासलाई, सिगरेट की राख भरी है... किताबें उलट-पलट दी हैं, सोफ़े के कढ़े हुए कवर सरका कर दराज़ों में घुसा दिये हैं......।"

"क्या करें, साहित्यिक ऐसे ही होते हैं।" मैंने बात टाल दी--लेकिन मन में झुँझलाहट आयी। रंजना को यह शिष्टाचार सिखाना होगा कि अपने जिस मित्र को मैं जैसा व्यवहार दूँ, वही वह दे।

लेकिन वह झल्लाहट ज़्यादा नहीं रही, और मैं सब कुछ भूल कर अपने उपन्यास की बात सोचने लगा। उसे अच्छी तरह सोच कर पूरा कर लूँ तो शोर हो जायें--अमला को कैसी खुशी हो! मैं बाल्कनी पर कुहनियाँ टेके खड़ा-खड़ा यही सोच रहा था कि पास में रंजना आकर खड़ी हो गई।

"आप मुझसे नाराज हैं...? जब से ठीक से बोल ही नहीं रहे...।" उसने रुआँसे स्वर में पूछा।

"नहीं रंजना।" मैंने प्यार से उसके कन्धे पर हाथ रख दिया, "उस वक्त ज़रा गुस्सा आया होगा; अब तो याद भी नहीं है...।"

"कम से कम रविवार का दिन तो हमलोग साथ रहें, उसमें भी अगर ये आ-जमने वाले आ जायेंगे तो...." और रंजना देर तक ज़िद करती रही कि मैं नाराज़ हूँ और नाराज़ी को मन में रखकर घुटता हूँ, और कहकर बात नहीं साफ़ कर लेता। रात को देर तक रोती रही। मैंने एकाध बार समझाया भी कि मुझे इन बातों को लेकर सोचने की फ़ुरसत ही नहीं मिलती--मेरे दिमाग में अपनी ही बातें रहती हैं। तो वह शिकायत करने लगी कि शादी के बाद इतने शीघ्र ही हम एक दूसरे को यों अपरिचित अन-समझे रह जायेंगे, इसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी।

सुबह एक दूसरे से आँखें मिलीं तो रात की बेवकूफ़ी पर खुद ही हँस पड़े। मैं लिखने बैठा तो बोली, "आज मैं देर से जाऊँगी। लाओ, तुम्हारा कोई काम हो तो हमें बता दो। कर डालेंगे।" उसने आग्रह किया कि मैं बोलूँ और वह लिखे। मैंने उसे एक कहानी फ़ेयर करने को दे दी। और उसे हाथ में लिये वह देर तक अपने कालेज की बातें बताती रही कि कैसे सारी लैक्चरर्स में बड़ी उत्सुकता इस बात को लेकर है कि लेखक लोग कैसे रहते हैं, कैसे खाते हैं? क्या हमेशा साहित्य ही बोलते हैं?

तभी नौकर ने डाक लाकर दी। परिचित खतों में सादे से सफ़ेद लिफ़ाफ़े में एक अपरिचित पत्र भी था। पत्र एक नर्स का था और उसने लिखा था, "रात की ड्यूटी के समय सफ़ेद चादरें ताने मरीजों के बीच में स्टूल पर बैठना ऐसा लगता है--जैसे क़ब्रिस्तान में बैठी हूँ।......कल एक मरीज़ से आपका उपन्यास लेकर पढ़ा तो लगा जैसे उसकी राका के रूप में आपने मेरा ही चित्रण कर डाला है... लेकिन आपने तो मुझे देखा भी नहीं....फिर सोचा, क्यों न आपको पत्र लिखकर यह बात पूछ लूँ....मेरा जीवन भी पूरा एक उपन्यास है... आज इस स्टूल पर एकान्त में बैठी-बैठी जब पिछले जीवन को देखती हूँ तो लगता है एक उपन्यास ही पढ़ रही हूँ....मन करता है इस पढ़े हुए को सुनाऊँ....आप उत्तर देंगे तो मैं ज़रूर अपनी बात आपको सुनाऊँगी...बहुत विकल्प के बाद यह पत्र लिख रही हूँ। अपने व्यस्त समय में से उत्तर की दो पंक्तियाँ देंगे तो मुझे बहुत बल मिलेगा....." इत्यादि... नीचे नाम था--इला। फिर पता।

कुछ पंक्तियां शायद रंजना ने पढ़ ली थीं,

"किसका है, किसका है ?" कहकर मेरे पास आ खड़ी हुई। मैंने पत्र दे दिया। शायद दो बार पढ़ा, उलट-पलट कर देखा। परिहास से खँखार कर बोली, "हुँह...तो ये ठाठ हैं लेखक साहब के...!" मैंने पत्र मेज़ पर रख दिया, तो बोली, "क्या उत्तर दोगे ?"

"देखो, जो भी मन हो आये...." मैंने टाल दिया।

"मुझे दिखाना....।" वह हँसती रही। फिर पूछा, "इन लड़कियों को कोई और काम नहीं रहता ?"

यह मुझे लग गया कि कहीं कुछ ग़लत हो गया है। कह दिया, "यह तो तुम अच्छी तरह जानती होगी....।"

अचानक उसके लहज़े में एक अजब अप्रसन्नता का भाव मुखर हो गया, "नर्सें चाहे जिसको चाहे जितने ख़त लिखें, कोई रोक-टोक नहीं है ?"

मैंने बहुत शान्तभाव से कहा, "देखो रंजना, शादी से पहले अमला के पत्र को लेकर भी इसी तरह की बात हुई थी। इतने पुरुष मुझे लिखते हैं, तुम कभी कुछ नहीं कहतीं। और तुम्हें तो खुश होना चाहिए कि मुझे लोग इस तरह अपना मानते हैं, इस तरह विश्वास करते हैं....।"

"तो मैं कुछ कह थोड़े ही रही हूँ ? मुझे क्या पता नहीं है कि तुम प्रसिद्ध आदमी हो! सभी तरह के लोग तुम्हारे परिचित हैं....सभी तरह के लोग तुम्हें लिखते हैं....।" और अन्त की ओर उसका स्वर रुआँसा हो आया। मेरी कहानी गोल-मोल मरोड़ती वह अपने कमरे में चली गई। मैं चुपचाप अपनी ग़लती जानने की कोशिश करता रहा। तय कर लिया कि यह रंजना की अनधिकार चेष्टा है, और उसे आगे से कोई ख़त न सुनाना है, न दिखाना....अब क्या मुझसे आज कुछ लिखा जायेगा ?

दूसरे कमरे से अचानक रंजना ने नौकर को डाँटना शुरू कर दिया : "चारों तरफ़ रेत ही रेत फैली है ! तुझे दिखाई नहीं देता ? क्या सफ़ाई करके गया है...? ला, झाड़ू मुझे दे मैं सफ़ाई करती हूँ।"

जाते हुए बोली, "बाबूजी से कह देना मैं देर से लौटूँगी।"

मुझे पता है वह कटरानील जायेगी मंदा भाभी से मिलने। आजकल वे वहीं हैं। यह इसे क्या हो रहा है ?....

तब क्या वह अमला के बारे में भी इसी तरह की कोई धारणा पाले है ?

मेहमान

पार्टियों का दौर समाप्त हो गया है...।

बहुत दिनों बाद—शायद ज़िन्दगी में पहली बार—यह अनुभव हुआ कि मेरा भी अपना घर है....। रंजना इस फ्लैट के एक-एक हिस्से को इस गर्व से दिखा रही थी जैसे ताजमहल दिखा रही हो, "ये आपकी स्टडी होगी....यहाँ बैठकर निश्चिन्त होकर लिखिये.." ऐसी व्यवस्था और ऐसी सुरुचि....मुझे विश्वास ही नहीं होता कि यह सब मेरा है....सुबह उठता हूँ तो 'बैड-टी' आ जाती है, फिर ब्रेक-फास्ट, फिर भोजन, फिर चाय.....फिर खाना और रात में दूध ! सारे दिन को घड़ी के हिसाब से नहीं, भोजन-नाश्ते के हिसाब से बाँट दिया गया है....मैं जो ऐसी व्यवस्था और नियमबद्धता का कभी अभ्यस्त नहीं रहा; बड़ा पराया-पराया-सा महसूस करता हूँ। यहाँ तो बेड-टी के साथ ही ब्रेक-फास्ट ले लेने की आदत है।

यहीं होटल में बैठे-बैठे [illegible] अखबार पढ़ा तो लगा कि अब खाना खाने कौन दुबारा आयेगा——ब्रेक-फ़ास्ट ही इतना कर लो कि भोजन का काम दे दे। खाकर गये तो जाकर ब्रश किया, नहाना-धोना हुआ और फिर लिखने-पढ़ने की बात सोची....यहाँ सभी कुछ इतना तय है कि कौन काम कब करना है.... एक खाने से निश्चिन्त नहीं हो पाता हूँ कि दूसरे का समय आ जाता है....

"देखिये, टंडन वग़ैरा का घर कैसा साफ़-सुथरा, सुरुचिपूर्ण रहता है! मैं चाहती हूँ, हमारा घर वैसा ही साफ़-सुथरा रहे। चाहे कोई कभी आ जाये उसे ऐसा न लगे जैसे उसके लिए सब ठीक-ठाक कर दिया गया हो....।" रंजना ने सोफ़े, क़ुर्सियों और मेरी राइटिंग-टेबिल को मुग्ध-भाव से देखते हुए कहा था। फिर अचानक होश में आकर बोली, "पर मुझे आपसे यही डर है। कभी अपनी किसी साथ की लड़की को लेकर आऊँगी तो देखूँगी कि कहीं तौलिया पड़ी है, कहीं किताब रखी है....कहीं सोफ़े की गद्दियाँ लुढ़क रही हैं......।"

और मुझे लगता है, मैं यहाँ मेहमान बन कर रह रहा हूँ..मैं तो केवल कुछ दिनों को यहाँ आया हूँ, मेरा वास्तविक घर तो वही कमरा है, जिसकी चारपाई के सिरहाने सारे धोबी के धुले कपड़े तकिये का काम देते हैं....दरवाजों के पर्दों और तौलिया में कोई भेद नहीं है। मन को समझाता हूँ कि आखिर वह जिन्दगी तो बहुत चलती नहीं! जब भी, जहाँ भी, इस तरह की जिन्दगी की शुरूआत होती ही। फिर आदमी को यह तो मानकर ही चलना चाहिए कि अकेले रहने और किसी के साथ रहने में कहीं तो अन्तर है ही....। कभी-कभी अपने पर ही दया आती है, देखो, व्यवस्था और सुख मेरे लिए कितने पराये हो गये हैं कि उनके बीच में मैं यों मेहमान अनुभव करने लगता हूँ......!

फिर भी इस पुलक और परितृप्ति को ऐसी अजनबी आँखों से क्यों देखता हूँ जो रंजना के अंग-अंग में छलकती है...। कैसे उत्साह और उल्लास से वह महीने का बजट बनाती रहती है.....और तब बड़े संकोच से मैं कहता हूँ, "रंजना, वर्ष में एक या दो बार तुम जितना कहोगी, उतना पैसा मैं दे दूँगा....लेकिन नियमित रूप से महीने-महीने दे पाना बड़ा मुश्किल है।"

'अरे आप चिन्ता क्यों करते हैं?' वह मुझे समझाती है, "यह सब हमलोगों का ही है——मेरा-तुम्हारा क्या? मेरे कॉलेज से जो मिलेगा, वह मेरा है और आपको जो मिलेगा वह आपका है——यह सोचना ही ग़लत है! अभी तक आप भी रहते ही थे, और मैं भी रहती थी।"

मुझे लगा, जो बात मुझे कहनी चाहिए थी, वह रंजना ने कह दी है। मैं अपने को तौलता रहा कि यह कितनी व्यावहारिक और समझदार है और ऐसी बातें मेरे दिमाग़ में क्यों नहीं आतीं? क्यों मुझे यह लगता रहता है कि.....

और परसों जब रंजना ने महीने के सारे खर्चे चुकाये, मकान, दूध, लाला, नौकर, चूड़े (भंगी) के दिये तो मेरे ऊपर अपने आप ही एक अपराध का बोझ आ गया। "अच्छा ही तो है, इन छोटे-छोटे सिर-दर्द से रंजना ने मुझे मुक्त कर दिया...अब मैं निश्चिन्त भाव से मन लगाकर लिखूँगा....।" लेकिन मन किसी तरह नहीं माना और मैं बाहर घूमने निकल गया।

अपराधी

कॉफ़ी-हाउस में रंजना से मिलना था। वहीं टण्डन और मंदा भाभी भी आने को थे। प्रोग्राम था कि कहीं बाहर ही खाना खायेंगे। छुट्टी थी, इसलिए रंजना आने को तैयार हो गयी थी।

बार-बार गर्दन का पसीना पोंछता हुआ नौ नंबर के स्टॉप पर खड़ा ही था कि देखा गिलाफ में बन्द अपना लम्बा तानपूरा उठाये शकुन चली आ रही है—हाँ शकुन ही थी। हमारे...नगर के ऊपर वाली मंज़िल के द्विवेदी जी की लड़की। जब देखो तब निहायत बेसुरी आवाज में 'सारे गमा पाधा' रेंकती रहती थी। मैंने इसके हार्मोनियम का पर्दा चाकू से फाड़ दिया था। एक बार पता चला इसे टी. बी. हो गयी है और यह भवाली में है...। तब इसकी शादी हो चुकी थी। किसी ने बताया पति ने मार-पीट कर निकाल दिया।

मैं देर तक देखता रहा; जब एकदम पास आ गयी तो मैंने धूप का चश्मा उतार लिया। बोला, "शकुन तू ?"

"अमर !" शकुन भी चौंकी।

एक क्षण को दोनों सकपका उठे, शायद विह्वल हो उठे—क्या बोलें ? शकुन मुझ से बड़ी थी, लेकिन लाख समझाने-पिटने पर भी मैंने उसे जीजी नहीं कहा।

"मैं तो आजकल यहीं हूँ।" मैंने बताया। वह सोने की मटरमाला पहने थी। मैंने पूछा—"तू तो...सुना था...?"

शकुन अब व्यवस्थित हो चुकी थी। बस स्टॉप की दीवार पर तानपूरा टिका कर गहरी साँस ली : "आजकल तो दिल्ली ही हूँ...यहीं माथुर लेन में रहती हूँ...इधर पास ही स्कूल है अपना संगीत का।"

"अच्छा ?" मैंने प्रसन्न भाव से कहा—"बड़े रौब हैं ?"

"तूने भी तो खासा नाम कर लिया है...।"

मैंने बीच में बात काट दी : "ये सब उठा कर कहाँ जा रही है ? इतना बड़ा जहाज लेकर बस में चढ़ेगी ?"

"कुछी ले लूंगी—अभी आई हूँ।"

"अभी भी कुछी कहती है !" मैं हँस पड़ा।

वह भी मुस्कुराई। वह हमेशा 'कुछ' ही को 'कुछी' और 'कुछ नहीं' को 'कुन्नईं' बोलती थी और मैं हमेशा चिढ़ाता था। बोली : "अब कहाँ जा रहा है ?"

"कॉफ़ी हाउस में बीबी आयेगी।" मैंने नकली गंभीरता से कहा।

"हूँऽऽ ! बीबी ?" उसने आश्चर्य का भाव लाकर पूछा।

"चली भी चल न...।" मैंने अनुरोध से कहा। "चल तुझे बीबी से मिला दूँ—मास्टरनी है, संगीत की नहीं, भाषा की।"

"खबर तक तो दी नहीं—अब ले चलेगा ?" शकुन ने ताना दिया। फिर उच्चता से बोली : "मैं मास्टरनी नहीं, अपने स्कूल की प्रिंसिपल हूँ। और कौन-कौन आयेगा ?"

"एक दोस्त और उसकी वाइफ़ ! चल न !"

"वैसे चाय पीने की इच्छा जरूर है लेकिन वहाँ जाऊँगी तो देर हो जायेगी। फिर किसी दिन फुरसत से ले जाना। यहीं-कहीं आस-पास एक कप चाय पिला दे। फिर रेडियो जाना है।"

और हमलोग गैलरी के ऊपर जाकर देर तक चाय के साथ ग़प्पें लड़ाते रहे। एक-एक बात की याद करके मुझे हँसी आती और हम उसे दुहरा कर आनन्द लेते। हरबार बीच-बीच में कहते : "मुझे तो सपने में भी ख़याल नहीं था कि यों अचानक मुलाक़ात हो जायेगी !" उसे रेडियो में रेकार्डिङ्ग कराने जाना था। आजकल वह अकेली है, साथ में एक भतीजी और उसका पति है—लेकिन एक तरह अलग ही है। मैंने कहा : "अभी तेरी उमर ही क्या है, अपने स्कूल में किसी संगीतज्ञ को बुला—और जाँच-परख कर उसके साथ सैटिल हो जा...।"

"तेरे साथ हो सकती थी सो तू पहले से ही शादी किये-कराये बैठा है।" उसी उन्मुक्त दुष्ट हँसी से वह बोली।

मुझे अच्छा लगा कि ज़िन्दगी के इतने उतार-चढ़ाव देख लेने पर भी वह अपनी हँसी उसी तरह क़ायम रक्खे है, और शायद इसीलिये बची भी रही। मैं पहले तो झेंप गया, फ़िर बेशर्म बनकर बोला : "चल, अभी चली चल...शरह से तो चार-चार रख सकता हूँ।"

उसने मुँह बिचका दिया—"ऊपर की मंज़िल पर रहते थे, तब तो आकर हार्मोनियम के पर्दे को चीर गया था—साथ रही तो मेरा तानपूरा सब तोड़-फाड़ डालेगा और उससे पहले बीबी ही झोंटा पकड़ कर बाहर निकाल देगी...।" फिर अचानक बात बीच में छोड़कर वह चुप हो गयी। मुझे साफ़ लगा, झोंटा पकड़ कर खींचने की बात से उसे शायद अपने पति का मारपीट कर निकालना याद आ गया। उधर से ध्यान हटाने के लिए जान-बूझकर उसी लहज़े में बोला—"बेहया !" और अकारण हँसता रहा। "तू अभी तक वैसी ही बेशर्म है !"

लेकिन शकुन सुस्त हो गई। धीरे से बोला : "वर्ना तू मुझे यों देखता...?"

एकदम दिमाग़ में कहीं कोई बटन दबा और लगा इस पर तो एक अच्छी-ख़ासी कहानी लिखी जा सकती है।

मुझे उसके शरीर, पहने-ओढ़ने से कतई नहीं लगा कि इन दिनों उसे कोई दुःख है। बदन दुहरा हो गया है और ठोडी के नीचे एक सलवट आती है। गहरा हरा ब्लाउज़ और हैंडलूम की साड़ी। मैंने टालकर कहा : "अरे तू मजे में है। पैसा है तेरे पास। कभी नीचे चलकर वज़न ले लेना। तुझे चिन्ता फिक़र किस बात की !"

"हूँ...ऐसा ही लगता है दूर से...। स्कूल चलाया है कभी ?" उसने अन्तिम वाक्य ज़रा तीखे स्वर में पूछा तो मुझे याद आ गया—उन दिनों यह कम्बख़्त कभी-कभी हमें पकड़ कर पीट देती थी...हमलोग पकड़ से दूर-दूर भागते, चिढ़ाते : "शकुन की बच्ची, दाल रोटी कच्ची, आटा तेरा पतला...।"

उसके स्कूल का फ़ोन और उसका पता लिया—अपना दिया। फिर हमलोग नीचे आये तो अँधेरा हो गया था। "हाय राम ! आज प्रोड्यूसर मेरी जान को रो रहा होगा...!"

"इस सूचना के लिए अभी से बधाई दे दूँ ?" मेरे मुँह पर आया।

"चल बत्तमीज़...सड़क का तो ख़याल कर !" वह उसी वत्सल पुलक से बोली। फिर मुझे स्कूटर में कॉफ़ी हाउस के सामने छोड़कर रेडियो चली गयी।

रास्ते भर एक अनजान और अविश्लेष्य रोमांच तन - मन पर छाया रहा।

बीमारी के बाद, कैसे उसने भर्तीजी की मदद से स्कूल चलाया। माँ, बाप ने परित्यक्ता बेटी का मुँह देखने से इनकार कर दिया। मेरे मन में अपने आप ही एक तुलना चलती रही––एक अमला है, बैठी है और घुटती है। एक यह है, कैसे आत्म-विश्वास और साहस से जिन्दगी का सामना करती चली जा रही है। अमला के पास पैसा है, उसका परिवार उदार है, उसे बाप का अजस्र प्यार है, इसके पास क्या है? निहायत ही पंडिताऊ क़िस्म का परिवार, ग़रीब घर और दुश्चरित्र पति।

बीच-बीच में कई बार ख़याल आया रंजना कॉफ़ी हाउस में बैठी होगी लेकिन फिर सोचा टंडन और मंदा भाभी तो होंगी ही। अब स्कूटर से उतर कर कॉरीडोर की ओर चलते हुए इनलोगों की नाराज़ी सामने आ गयी।

लेकिन भीतर कोई नहीं था। सारे केबिन देखकर लौट ही रहा था कि सामने गोरे-चिट्टे भारी-भरकम लखनौवा पत्रकार चिन्तामणि ने रास्ता रोक लिया। आदाब-अर्ज़ वाले हाथ को ऊपर-नीचे हिला कर मेरा मुआयना करते हुए बोले: "अमाँ, शादी क्या की––आप तो हुमा हो गये...।"

मैं उनके कन्धे पर हाथ रखकर बग़ल से निकलते हुए बोला: "हाँ यार, ऐसा ही है ज़रा...।"

उन्होंने कमर में हाथ डालकर रोक लिया: "चले कहाँ हुज़ूर, कम से कम शादी की कॉफ़ी तो पिला जाओ।"

मैंने प्रार्थना से कहा: "काफ़ी क्या, आप जो कहेंगे सो पिला दूँगा, लेकिन इस वक्त जाने दें––बेहद जल्दी में हूँ।" फिर बीच की मेज़ पर बैठे कुछ लोगों की ओर इशारा करके कहा: "दूसरे आप साप्ताहिक 'मातृभूमि' के प्रूफ़ रीडरों के साथ हैं...मेरी समझ में नहीं आता ऐसे बेईमान और झूठों के साथ आप कैसे...।"

"अच्छा! अच्छा!" और बड़े सर-परस्त के अन्दाज़ में जल्दी-जल्दी बोलकर हँसते हुए उन्होंने मेरा कन्धा थपथपाया। लिहाज़ की खातिर कहा: "अच्छा याद रखिये...।" फिर अपने दल की ओर मुड़ गये।

"ज़रूर!" जान छूटी के भाव से मैंने कहा और बाहर का काँच का दरवाज़ा पीछे छोड़ दिया। मुँह से निकला: "ये...ग़ैन...दाल कहीं के...।"

रंजना बहुत नाराज़ होगी, जानते हुए भी मैं बहुत खुश था। शकुन से मिलकर मन बहुत ताज़ा हो आया था। बहुत दिनों बाद ईमानदारी से अपनी घुटन और फ़िक्रों से हटकर दूसरे के दुख में पैठने की कोशिश की थी। मन में उठता 'बेचारी!' लेकिन दूसरे ही क्षण मैं समझता: "बेकार ही मैं उसके लिए दुख प्रकट किये जा रहा हूँ, हो सकता है वह परम सुखी हो और उसे कोई दुख न हो। देखने से तो बहुत सन्तुष्ट और सुखी लगती है।"

घर आया तो टण्डन और मंदा भाभी मेरे ही कमरे में बैठे थे। सीढ़ियाँ चढ़ते ही मुझे लगा एक बोझिल बादल की परतों में उतर आया हूँ। मुझे देखते ही टण्डन ने कहा: "हमें कॉफ़ी हाउस में बैठाकर––"

मैं खुशामद से बोला: "मेरी बात तो सुन!"

"बात सुनें खाक––"

टण्डन की बात काट कर धीरे से रंजना

ने कहा : "मैं वहाँ अकेली बैठी-बैठी बोर हो गई...।"

"ओरे भाई...!" मैंने दोनों हाथ उठा कर समझाना चाहा।

इस बार मंदा ने कृपापूर्वक कहा : "अच्छा बताओ क्या हुआ? कौन मिल गयी थी...?"

"शकुन...।"

मंदा और उत्साह में बोली : "मैंने क्या कहा था?"

भर्त्सना से टण्डन बोला : "इसको तो बस कोई लड़की दीखनी चाहिये। फिर कहाँ का एपॉइण्टमेण्ट, कहाँ के दोस्त..." फिर सरकारी वकील के धमकी भरे स्वर में पूछा : "हाँ साहब, अब यह शकुन कौन?" ये भी आपकी पाठिका हैं क्या?"

पाठिका वाली बात पर उसने झटके से सिर मोड़ कर रंजना की ओर देखा। यह तो परसों की ही बात है न! रंजना की निगाहों में भी आरोप था।

"मैं पूछती हूँ, तुमसे भले आदमी की तरह क्यों नहीं रहा जाता?" मंदा भाभी ने अपनी उसी जज की तेज़ी से पूछा : "अब तुम्हारी शादी हो गयी, घर हो गया...और अब भी तुम यह सब नहीं छोड़ते...? बीबी बेचारी कॉफ़ी हाउसमें राह देख रही है, और आप शकुन जी से मिल रहे हैं...।"

रंजना की आँखों में आँसू आ गये।

अब मुझे स्वयं लगने लगा कि शकुन से यों मिलना और उस मिलन की प्रतिक्रिया को सुख समझना, अपराध ही है...।

० ० ० ०

"सचमुच कभी-कभी लगता है, मैंने तुम्हारे हित में अच्छा नहीं किया।" रंजना ने रात को भावोच्छ्वसित स्वर में कहा था : "तुम हमेशा उदास-उदास खोये-खोये रहते हो, हँसते बोलते नहीं हो, और अक्सर बैठे-बैठे सोचते रहते हो--तो मुझे लगता है मैंने जैसे तुम्हारे साथ बहुत बड़ा अन्याय किया है। और तब, मन में अपराध की भावना आती है, शायद अपने सुख के लिये मैंने तुम्हें क़ैद कर डाला...।"

"तुम्हारा सुख मेरा सुख नहीं है रंजना?" मैंने उसकी बात से पिघल कर पूछा था।

"पहले कभी लगता था--अब नहीं लगता...।" रंजना रोने लगी तो मुझे खुद रोना आ गया--मेरे साथ अनेक कुंठाएँ हैं...अनेक अवरोध हैं...इस बेचारी निरपराध लड़की को क्यों मार रहा हूँ...?

चीरती हुई रेलगाड़ी

अमला का पत्र आया था, "तुम मेरे उत्तर की राह देख रहे होगे--मैं जानती हूँ। और यह भी जानती हूँ कि तुम्हें पता था : मैं नहीं लिखूँगी। मैं दुखी हूँ, दिग्भ्रान्त हूँ और हताश हूँ; या सुखी, उल्लास में डूबी और मद-विभोर--यह तुम्हारी समस्या क्यों बने? क्या इतना काफ़ी नहीं है कि मैं तुम्हारे लिये लेखन में यदि कहीं सहायक बन सकूँ तो बनूँ...और तुम मुझे अपनी नयी-नयी रचनाएँ दे सको तो दो। वर्ना हमलोग, अपरिचय के उसी पुराने लोक में लौट जायें...परिचय, मित्रता और जिम्मेदारी...अपने व्यक्तित्व के विकास में सहायक हों, न हों, लेकिन मनुष्य के आन्तरिक और उच्चतर व्यक्तित्व के निर्माण में ज़रूर उत्प्रेरक हों। तुम्हारा उच्चतर व्यक्तित्व कला के प्रति तुम्हारा प्रतिश्रुत--कमिटेड--व्यक्तित्व है। मेरा

अनुमान--या कहूँ कामना है--कि विवाह का यह निर्णय तुम्हें अपने उच्चतर व्यक्तित्व के लिए उत्प्रेरक ही लगा होगा...बताओ, उस अधूरे उपन्यास का क्या हुआ ? तुम्हें याद है, तुम्हारे एक पत्र ने मुझे तटस्थ भाव से सोचने की सामग्री दी थी...और तब मुझे सोच कर लगा था कि मेरे जीवन में बहुत कुछ ऐसा है जो शायद किसी अच्छे हाथों में पड़ कर एक सुन्दर कृति का रूप ले ले...हो सकता है, उसमें बहुत कुछ ऐसा भी हो जो जिन्दगी में नये सिरे से, नये कोण से सोचने की भी सामग्री दे। और जब लिखने बैठी, तो लगा : नहीं, मेरी जिन्दगी में ऐसा कुछ भी नहीं है, जो दूसरे के लिए उपयोगी हो... तुम जानते हो, मैंने अपने सारे अतीत पर 'प्रवेश-निषेध' की तख्ती लगा दी है--और मैं स्वयं अपने को इतना पराया अनुभव करती हूँ कि भीतर नहीं आने देती...अच्छा सुनो, तुम क्यों नहीं कुछ दिनों रंजना के साथ यहाँ आ जाते। नीचे तो बड़ी गर्मी होगी न ? शिमला बड़ी सुन्दर जगह है। शायद वातावरण का यह बदलाव तुम्हें प्रेरणा-प्रद हो। जानते हो, जिस बंगले में मैं ठहरी हूँ उसका नाम क्या है ? इसका नाम है "त्रिस्त"। तुम्हारी हिन्दी में "अभिसार-कुंज" ही तो होगा न ? तुम और रंजना आ जाओगे तो शायद यह नाम कुछ सार्थक हो जाय। मैंने इसे पूरे सीज़न के लिए ले लिया है। हो सकता है तुम दोनों को 'अभिसार-कुंज' में छोड़ कर और आगे बढ़ जाऊँ। यहाँ तो तबियत बहुत ऊब गयी है...।"

अमला के पत्र में एक अजब-सी वेदना है, जो उसकी अपनी वेदना है, लेकिन मुझे मथती है...और लगता है मेरा भी एक ऐसा अंश है जो पर्वत-पर्वत पर दिग्भ्रान्त, व्याकुल घूमता है...जो चिर यायावर है ! शायद उसी का कोई भाई-बन्द हो जिसे अमला ने उच्चतर-व्यक्तित्व कहा है...लेकिन यह सच है, मन-क्षितिज पर जब उसे वीरान और अनजान घाटियों में घूमते देखता हूँ तो बस मुग्ध होकर देखता भर रहता हूँ--निस्संग, और निर्विकार...और तब न साथियों की क्षुद्रता याद रहती है, न अभावों की खिचखिच.. न अमला का शुभ्र-स्निग्ध व्यक्तित्व याद आता है.... न यह अपने में डूबी रंजना...

रंजना से एकबार मैंने शायद इसका ज़िक्र किया था तो उसने सीधे-सादे मास्टरी लहजे में सहज भाव से कह दिया : "यह सब कुछ नहीं, आपके भीतर छायावादी पलायन-वृत्ति के ध्वंसावशेष बोलते हैं...।"

टंडन की तो पुरानी शिकायत है कि मैं प्राप्त से आँखें मूंदकर अप्राप्त-अज्ञेय के पीछे भागता रहा हूँ...।

अक्सर रंजना को जब परम-तृप्ति के भाव से सोते देखता हूँ तो लगता है, रंजना आत्मनिर्भर है, उसके पास एक घर है, उस घर को अच्छा से अच्छा सजाने के सपने हैं, कि लोग देखें और कहें कि उसे घर रखना आता है ; कि उसने बहुत ही अच्छा किया जो अपने मन से निर्णय लिया। रंजना के पास एक पति है, जो किसी भी पति जैसा अनुरक्त, शिष्ट-शालीन और प्रिय-दर्शन है--इसके साथ ही रंजना को गर्व है कि उसके पास ऐसा कुछ ऊँचा और विशिष्ट है जो औरों के पास नहीं है...

लेकिन मेरे पास क्या है ?

और तभी पड़ौस की रेल सीटी देती हुई मुझे आर-पार चीरती चली जाती है...

कभी-कभी सोचता हूँ मुझे रंजना के सुख से ईर्ष्या तो नहीं होती ?

मैं अपने को समझाने की कोशिश करता हूँ, मुझे क्या कमी है ? मेरे तो किसी भी सपने में न ऐसा सुव्यवस्थित घर था न ऐसा नियमित जीवन ; न ऐसा एकान्त प्यार था न निश्चिन्त वर्तमान...मैं क्यों नहीं रंजना की तरह अकुंठित और उन्मुक्त भाव से इस नये जीवन को ग्रहण कर पाता ?

क्यों मुझे लगता है कि मेरी जगह कोई भी होता तो रंजना उतनी ही सुखी और प्रसन्न होती ?

अनेक परतों वाला झूठ !

कहते हैं, शादी के पहले पुरुष अन्धा होता है ; उसे सिवा प्रेयसी के दुनियाँ में कुछ नहीं दिखाई देता––और शादी के बाद औरत अन्धी हो जाती है...तब आदमी की आँखें खुलती हैं । मैं तो न पहले अन्धा था, न अब हूँ...

अक्सर रंजना को देखता हूँ तो सोचता हूँ कि सुख क्या है, यह शायद इसे देख कर ही समझा जा सकता है । जाने किस नशे में डूबी रहती है ! परसों शाम को, हमलोग अपने पुराने मकान मालिक सेठी परिवार के यहाँ गये थे । उन लोगों ने खाने पर बुलाया था । मिस्टर और मिसेज़ सेठी दोनों हँस रहे थे कि मेरी पत्रों की बेचैनी देख कर वे लोग आपस में क्या-क्या बातें किया करते थे । मिसेज़ ने तो बहुत पहले ही कह दिया था कि, देख लेना ये दोनों शादी कर लेंगे । और हमलोग सब मिल कर देर तक अपनी ही बातों पर हँसते रहे । वे अफसोस प्रकट कर रहे थे कि मैं वहाँ से चला आया ।

"आप जैसे शान्त किरायेदार को तो हम कभी जाने ही नहीं देते..." मिसेज़ ने खाने की मेज़ पर कहा था ।

"भई, आखिर ये लोग कैसे एक ही कमरे में रहते ? अमर जी अकेले थे, तब तो कोई बात नहीं । इन्हें नये घर की शुरुआत तो करनी ही थी...।" मिस्टर सेठी रिस्टवॉच के डायल पर सिगरेट ठोक कर मुँह में लगाते हुए बोले ।

"हाँ सो तो है ही ।" मिसेज़ सिर झुकाये पुलाव परोसती रहीं : "मैंने तो यों ही एक बात कही । कुछ दिन तो हम लोगों को बेहद ही सूना लगा । बच्चों का तो मन ही नहीं लगता था । सचमुच आपके रहते इन्हें बड़ी निश्चिन्तता थी–अक्सर ही दौरे पर जाना पड़ता है । घर में कोई तो रहता है...।"

"लेकिन इनका रहना...?" सिर पर साड़ी का पल्ला लिये रंजना एकदम गुड़िया-सी बनी थी––"इनका तो रहना न रहना बराबर है !" उसने मुस्कुरा कर कहा : "सारे दिन बन्द होकर लिखते रहे फिर बस, चलो टण्डन के यहाँ, चलो घूमने..।"

"सो तो ख़ैर, इनका यहाँ भी था।" मिसेज़ सेठी ने बताया : "बंद करके कमरा बैठे हैं...संध्या को निकल गये तो पता ही नहीं कब लौटेंगे । मेरा खयाल है शायद सब से कम मुलाक़ात हमलोगों से होती होगी।"

और वे गद्‌गद होकर मेरी सारी बातें बताती रहीं । मैं भी इस तरह मज़ा लेता रहा, मानो किसी तीसरे आदमी के बारे में बातें हो रही हों...ऊपर से इतने तटस्थ रहने वाले ये लोग मेरी सारी बातों पर कितनी

निगाह रखते थे––अब मुझे आश्चर्य हो रहा था।

"अच्छा रंजना जी, खतों को छूने देते हैं या अब भी वही रवैया है ?" मिस्टर सेठी ने पूछा। "एक बार टिकट लेने के चक्कर में जगत या रीना में से किसी ने एक लिफ़ाफ़ा खोल लिया तो अमर साहब क्या नाराज़ हुए हैं...!"

मिसेज सेठी के चेहरे पर परिहास चमक उठा, बोली : "लेकिन पहले जिसके खतों के लिए परेशान रहते थे अब वो तो खुद ही...।"

मुझे डर लगा––कहीं वे अमला के लिये कुछ उलटी-सीधी बात न कह दें। कानों के ऊपर से तना पल्ला, रूमाल के साथ मुट्ठी में लिये रंजना सचमुच नवेली की तरह लजा रही थी। इस बार बोली : "नहीं मिसेज सेठी, क्या मजाल जो कोई इनके खत छू ले...वहाँ तो इनकी जान रक्खी रहती है...। जाने कौन-कौन पाठिकाएँ, प्रशंसिकाएँ...।"

अमर ने घूम कर मिस्टर सेठी की ओर देखा और बात काट कर बोला : "अब ये तो समझती नहीं हैं सेठी साहब, जिस तरह का हम लोगों का काम है, उसमें न आफिस है न फ़ील्ड-वर्क...। पत्र-पत्रिकाएँ ही तो हैं जिनसे बाहरी दुनिया से सम्पर्क बना रहता है...।" और फिर उसने सफ़ाई दी : "सेठी साहब, मैं छिपाता कुछ नहीं हूँ, लेकिन जिस चीज़ में न आपको कोई दिलचस्पी न आपका सम्बन्ध, उसे अगर मैं अपने तक ही रक्खूँ तो क्या बहुत बुरी बात है ?" फिर रंजना की ओर घूम कर बोला : "सेठी साहब से ही पूछो, इनके आफिस में जो चिट्ठी-पत्री आती है, वह सारी मिसेज़ को दिखाते हैं...?"

"वह बिल्कुल ही अलग बात है।" रंजना बोली "आपकी और उनकी बात एक कैसे हो जायेगी ? चलिये इस बात को टण्डन भाई साहब से तय करायेंगे...।"

"टण्डन भाई साहब खुदा है...!" मैं चुप हो गया। इसी बात से मुझे गुस्सा आ जाता है––हर बात में टण्डन भाई साहब ! मानो टण्डन भाई साहब न हो गये, ऐनसाइक्लोपीडिया हो गये––जहाँ हर आवश्यक सूचना संग्रहीत है।

"खैर जी, चलो अच्छा हुआ...हमें तो इस बात की खुशी है कि आपलोग बँध गये...।" मिस्टर सेठी ने खाने की मेज़ पर बैठने से पहले बाहर जाकर सिगरेट फेंकी।

"बँध तो गये लेकिन घर की ज़िम्मेदारियाँ इनसे निभेंगी ?" मिसेज़ सेठी ने अमर को इस तरह देखा मानो उसकी रग-रग से परिचित हों...।

"वह सब आदमी धीरे-धीरे सीख जाता है...लैट ए चीको कम...सब हो जायेगा...।" सेठी बाहर बराम्दे के वॉश बेसिन में हाथ धोते रहे।

रंजना लाल हो गई, और व्यस्त बन कर मानो कमरे की एक-एक चीज़ देखने लगी।

मैं जानता हूँ, आजकल उसके दिमाग़ में इसके सिवा कुछ आता ही नहीं कि–– किसके यहाँ कौन-सी चीज़ अच्छी है जो हमारे यहाँ भी होनी चाहिये...। घर के लिये फ़र्नीचर का पूरा सेट टण्डन ने दिया था, पर्दे वह दुनिया भर में घूम कर एक दिन मंदा भाभी के साथ लायी थी। आजकल उसे धुन है कि 'ड्राइंग रूम' में एक कार्पेट और होना चाहिये, सो आजकल जिसके यहाँ जाती है उसी का कार्पेट देखती रहती है। किसी न किसी तरह कार्पेट की चर्चा लाती

है, और दाम मिलने की जगह, किस्में पूछती है...उसके ऊपर घर सवार है। नौकर घर में कोयला कितना खर्च करता है, चीनी हफ्ते में कितनी आती है, फल-सब्जियाँ देखते-देखते कितने तेज़ हो गये हैं--जब वह और मिसेज़ सेठी इस बारे में एक दूसरे का ज्ञान बढ़ा रही थीं--तब मैं मिस्टर सेठी से ग़ज़ब की गर्मियों की चर्चा कर रहा था; मकानों की तंगी बखान रहा था।

बात किसी तरह नौकरों के न मिलने पर, घरेलू-नौकर-यूनियन के कारण बढ़ती शहज़ोरी पर आ गयी, और फिर चीज़ों की महँगाई गिनायी जाने लगी। मिसेज़ सेठी ने कहा, "नौकरों पर अगर सख़्त निगाह न रखी जाये तो वे आधा तो बिगाड़ते ही हैं। उन्हें क्या दर्द?"

"लेकिन अकेला आदमी कहाँ तक सब कुछ करे?" रंजना बोली, "दोनों अपनी-अपनी ज़िम्मेदारी थोड़ा महसूस करें तो..."

"खैर ये लेखक आदमी हैं....जिम्मेदारी-विम्मेदारी इनसे निभनी नहीं है।" सेठी साहब ने अधिकारी स्वर में कहा, "हाँ ये बात तो है--हमारा नौकर अगर भूल जाता था या नहीं होता था तो तीन-तीन दिन तो अमर जी सुराही का पानी नहीं बदलते थे, और कमरा तो हफ्ते में एक बार झड़ता था... धोबी ही गन्दे कपड़े ले जाता था, वहीं रख जाता था।"

मैं बड़े झेंपे ढंग से हँसता रहा, "आप भी मिसेज़ सेठी, इसकी तरफ़दारी ले रही हैं..."

"तरफ़दारी नहीं, पहले और बाद में थोड़ा तो फ़र्क होता है...." और उसके बाद मुझे ऐसा लगता रहा जैसे मैं कटघरे में खड़ा हूँ... रंजना की यह आदत चकित कर रही थी कि वह हमेशा मेरे खिलाफ़ मोर्चा बना लेती है...

बाहर निकलते समय अपने पुराने कमरे के सामने से जाते हुए मन और भी उदास हो गया। इस कमरे के साथ मेरी कितनी स्मृतियाँ गुँथी हैं....कितनी चीज़ें मैंने इसमें बैठ कर लिखीं, कैसे अच्छे-बुरे दिन देखे! यह कमरा कभी 'मेरा' था। आज इसके सामने से यों निकल रहा हूँ जैसे कभी इसमें कोई सरोकार ही नहीं रहा। अब यह जगत और रीना का कमरा है। मन होता रहा उधर की खिड़की खोल कर देखूँ-वह लड़की जिसे उसकी माँ भीतर कहीं से "ऊषीऽ" कहकर आवाज़ें लगाया करती थी--अब भी मुझे देखकर जीभ बिराती है या नहीं....खिड़की में खड़ी-खड़ी अब भी उसी तरह दो-दो घंटे फाउन्टेनपेन में स्याही भरती रहती है या नहीं...। अब वह खिड़की बन्द है और वहाँ रीना-जगत की स्कूल की अटैचियाँ रखी हैं।...

जाने क्यों अचानक ऐसा लगा जैसे मैं कहीं रंजना के साथ नहीं रहता....बल्कि वही पहले वाले दिन हैं और मैं सीढ़ियों तक या बहुत हुआ तो बस तक, रंजना को विदा करने आया हूँ।

सेठी परिवार को अपने यहाँ आने का निमन्त्रण देकर जब हमलोग नीचे उतरे तो मैं बहुत सुस्त था और रंजना शायद अपने में व्यस्त। साढ़े आठ बजे थे। मैंने कहा, "चलो, पैदल ही चले चलते हैं, रोहतक रोड है ही कितनी दूर? इस सत्ताईस नम्बर बस का कुछ ठीक है ...?"

"तो स्कूटर ले लें।" रंजना ने सुझाया।

"नहीं...ज़रा अपने 'सरगोधा ईटिंग हाउस' के दर्शन भी करते चलेंगे।" इधर दो महीने बाद आया था और पता नहीं, फिर

कब आना हो। पूछा, "तुम्हारी तबीयत तो ठीक है ?"

"हम तो थक गये !" बड़ी झिझक के साथ वह बोली।

"अरे चलो भी....।" मैंने कहा, "तुम्हारी यह बात मेरी समझ में कभी नहीं आयेगी। दोपहर भर सोते रहे, शाम को उठे, बस में बैठकर यहाँ आ बैठे। थक किस चीज में गये....?"

मैं उसे सरगोधा ईटिंग हाउस में ले गया। लाला दोनों हाथ जोड़ कर बड़े प्रेम से बोला, "कहिये मास्टर साहब, आपने तो बिल्कुल ही भुला दिया ?" यह पता नहीं क्यों मुझे शुरू से मास्टर साहब कहता है। "आइये, आज ऐसी फ़र्स्टक्लास कोफ्ता-करी है कि....।" वह अर्थ-भरी निगाहोंसे रंजना को देख रहा था। 'चन्दन का बच्चा' भीतर से एक प्लेट में तन्दूरी रोटी झुलाता निकला तो मुझे देखते ही बत्तीसी झलका कर खिल उठा। मालिक की आवाज़ आई, "मेज़ साफ़ करो, एकदम।"

पहले मेरा मन सिर्फ़ सामने से निकल जाने को था, लेकिन अब लगा यहाँ न बैठना अन्याय होगा। बड़े हुलस कर चन्दन ने मेज साफ़ कर दी। मैंने पीछे छूटी रंजना को कन्धे पर हाथ रखकर आगे बढ़ाया, "लालाजी, ये मेरी वाइफ़ हैं, और रंजना, तुमसे पहले ये हमारे अन्नदाता थे...।"

लाला गद्गद हो गया। सोने का दाँत चमकाकर रंजना को हाथ जोड़े और मुझसे बोला, "मिठाई भी नहीं खिलाई मास्टर साहब....! अब आज हमारी तरफ़ से भोजन सही....।" रंजना ने जरा से हाथ उठाये।

गन्दी मेज-कुर्सी और धुएँ भरा होटल देख कर रंजना का मूड खराब हो गया है, यह मैं जान गया। लेकिन उस समय अपने आपसे और उस प्रेम से मजबूर हो गया था। बड़ी अनिच्छा से रंजना आकर बैठी। शिवजी की बड़ी-सी तस्वीर के नीचे जहाँ मैं बैठा करता था, वहाँ खाकी कमीज पहने, तहमद बाँधे, एक ड्राइवर जैसा सिख बैठा था; और एक टाँग कुर्सी पर उठाये बड़े तन्मय भाव से चिकिन-रोस्ट के अंजर-पंजर खींच कर चिचोड़ रहा था। रंजना दूसरी ओर देखने लगी। वातावरण में, भीतर से भुनते मसालों की गन्ध भरी थी। उसने रूमाल लेकर नाक पर रख लिया। सारा फ़र्श पानी से चिपचिपा था।

"नहीं लालाजी, खाना खाकर आये हैं। खायेंगे कुछ नहीं....ऐसी क्या बात है, फिर कभी आ जायेंगे....।" मैं रंजना के खयाल से उठ खड़ा हुआ।

"अजी, ऐसे कैसे हो सकता है मास्टर साहब ? लस्सी तो पीकर ही जाइये...।" और बिना मेरी बात सुने उसने सामने रखे कूँडे से दही काट कर झर्रर-झर्रर लस्सी बनाई, ऊपर से मलाई खुशबू डाली और हमारे 'ना-ना' करने पर भी चन्दन को दे दी। पसीने से भीगा, बिना बटनों की कमीज में पेट तक छाती चमकाता चन्दन निहायत ही गद्गद् आत्मीयता के भाव से बर्फ़ की भाफ जमें दोनों गिलास सामने रख गया। इस बीच में, शायद हमारे आने की खुशी में लाला ने घूम कर रिकार्ड पर सूई रख दी, तो बीच में डिब्बे जैसा लटका एम्लीफ़ायर घिसिर-घिसिर के बाद "मैं तो कब से खड़ी इस पार....अखियाँ थक गयीं पंथ निहार...." के गीत में चिचिया उठा। मैंने जैसे-तैसे लस्सी पी, लेकिन रंजना से तीसरी घूँट नहीं पी गयी। लाला

ने पैसे नहीं लिये लेकिन मैं जबर्दस्ती चन्दन को चार आने दे आया।

बाहर आते ही रंजना बोली, "कहीं से अच्छा-सा पान खिला दीजिये, नहीं तो अभी कै हो जायेगी....।"

पान खाकर कुछ तबीयत ठीक हुई तो जना ने कहा, "भगवानके वास्ते, मुझसे ऐसी जगहों पर चलने की ज़िद मत किया कीजिये।"

ग़लती मुझे खुद महसूस हो रही थी, लेकिन अब गुस्सा आ गया। पान चुपचाप खाया।

"लेकिन रंजना," आगे बहुत करुण स्वर में मैंने समझाने की कोशिश की, "इसी जगह मैंने दो साल खाना खाया है। अब तुम्हीं बताओ, इन लोगों के इस व्यवहार के सामने मैं क्या करता?"

"तो अकेले आया कीजिये न।" रंजना ने झटके से कहा: "कैसे खाते होंगे आप? वहीं गन्दी प्लेटों का ढेर है, तौलिया से पानी चू रहा है। उसी बर्तन से मेज़ पोंछ रहा है, उसी से प्लेटें पोंछ दी। तन्दूर वालों के शरीर पर तो परनाले टपकते रहते हैं...।" घृणा से रंजना ने फुरहरी ली।

"आख़िर हज़ारों लोग खाते ही हैं।" मैंने हारे हुए जुआरी की तरह कहा, "हर आदमी वोल्गा और ला-बोहीम में जाकर ही तो नहीं खाता।"

"खाते होंगे हज़ारों लोग...।" रंजना भी नाराज़ हो गई, "उस सिख को नहीं देखा! सूरत से ही गुण्डा लगता था।"

और रंजना की इसी बात से मुझे चिढ़ है—उसे लोग सूरत से ही गुण्डे, घुटे हुए, चोर, जेबकट लग जाते हैं। मज़ा यह कि उसे सज्जन, भले आदमी सूरत से पता नहीं लगते। गुस्सा घूँट कर मैंने कहा, "देखो रंजना, बंगालियों ने एक बहुत बड़ा काम किया है; उन्होंने कपड़ों की इज्ज़त से हट कर आदमी की इज्ज़त करने की कोशिश की है....बड़े से बड़ा जज, डायरेक्टर सफ़ेद कुर्त्ता और धोती पहने ऊँचे से ऊँचे उत्सव में बिना किसी संकोच के जाता है। सूट के कपड़े और टाई की कीमत से आदमी का मूल्यांकन ग़लत है, इस दृष्टि का विकास सबसे अधिक बंगाल और दक्षिण भारत में हुआ है। उसी तरह पंजाबियों ने खाने के बारे में दुनिया भर की मिथ्या धारणाओं को तोड़ा है, भूख हो तो ऊँचे से ऊँचे ओहदे वाला पंजाबी निस्संकोच भाव से किसी भी ढाबे में घुस कर प्रेम से भोजन करेगा और अपने काम में लग जायेगा। खाना उसके लिए ज़िन्दगी और मौत का सवाल नहीं है कि जिसके लिए दुनिया भर के शीर्षासन किये जायें। जिस हैसियत का आदमी दूसरी जगह दूकान पर खड़े होकर सिगरेट लेना अपना अपमान समझता है उसी हैसियत का पंजाबी निर्द्वन्द्व भाव से हाथ में छोला-कुल्चा लेकर खाता है...."

"अब ये भी कोई जबर्दस्ती है?" रंजना ने हठ पूर्वक कहा, "अपना अपना मन है। इसी पर लैक्चर दिये जा रहे हैं....सीधी-सादी बात यह क्यों नहीं कहते कि पंजाबी खाऊ होते हैं, इसलिए जहाँ मिलता है वहीं खाने लगते हैं....।"

और रंजना की यही बात मुझे पसन्द नहीं है। हर बात में उसका रवैया कुछ ऐसा निर्णयात्मक होता है कि मानो दूसरा आदमी बेवकूफ़ है.....खुद चाहे अपनी लड़कियों और टीचरों के साथ खड़े-खड़े दहीभल्ले के दोने चाटती रहें....।

मैं चुप हो गया। वह चप्पल घिसटा-

घिसटा कर चल रही थीं। अपने आप ही बोली, "इस कम्बख्त दिल्ली में आने-जाने का ही बड़ा रोना है!"

कभी-कभी ऐसा होता है कि गुस्सा आपको एक बात पर आ रहा होता है और झुँझलाहट पता नहीं किन-किन बातों पर होती है। हल्ली--हमारा नौकर--लिबर्टी सिनेमा के पास घूम रहा था। उसने हमें देख लिया तो दौड़ा-दौड़ा आया। शायद खाने के बाद पान-बीड़ी लेने या यों ही मन बहलाने भाग आया था, और उसने पाजामे के पांयचों को घुटनों के पास से उठा कर ऊपर उँडस लिया था। हल्ली हमेशा ही इस तरह उँडस लेता है और रंजना को यह पसन्द नहीं है। वह हमेशा मुझसे कहती है कि, "इसे डाँटिये, मुझे पाजामा पहनने का यह ढंग पसन्द नहीं है।" मैं नहीं डाँटता तो मुझ पर बिगड़ती है। मैं बनियान पहन कर कुछ लिख-पढ़ रहा होता हूँ तो नाराज़ होकर कहती है, "जब घर के लोग ही इस तरह करेंगे तो नौकरों को तो और भी शह मिलेगी....।"

"मुझे बहुत गर्मी लगती है रंजना...." मैं कहता हूँ; तो पूछती है, "गर्मी हमलोगों को नहीं लगती?" क्या बोलूँ?

पर्स से चाबी निकाली और तेवर चढ़ा कर बोली, "जाओ, एकदम बिस्तरे बाल्कनी में बिछा दो। बाल्कनी में पानी डाल दिया न?"

सिर हिला कर हल्ली चला गया। रंजना हमेशा हल्ली से इस तरह बोलती है, जैसे वह कोई नुकसान करके आया हो।

"क्यों रे हल्ली, तेरा यह नाम कैसे पड़ा?" मैंने एक दिन पानी पीते-पीते पूछा।

हल्ली गद्‌गद् हो गया। वह मथुरा की तरफ़ का है, सो ऐसे अवसरों पर ब्रज भाषा बोलता है। "बाऊजी, जब हौं छोटौ हौ, तौ खूब हलौ कत्तो, जाई सुन्दै माँ-बापन ने हल्ली नाँव धद्दौ.....।"

मैं खिलखिला कर हँस पड़ा। हँसी रोकते हुए तभी सख्त आवाज़ में रंजना ने कहा, "जाओ गिलास ले जाओ, और देखो, चौके में बैठकर बीड़ियाँ मत पिया करो।"

घुटनों-घुटनों फ़ंटदार धोती, मारकीन की कमीज, सींक निकाल कर मशीन फिरे बाल, खूब मरोड़ कर बँटी हुई चोटी, और पाँव में चमरौधा....इस वेश में हल्ली जब आया तो, हस्बमामूल रंजना को यह सूरत से ही 'उचक्का' लगा। फिर एक बार जब रंजना ने पानी माँगा और यह गुसलखाने से बाल्टी उठा लाया तो 'पक्का गधा' हो गया। मैं मानता हूँ कि यह कुछ ज़्यादा ही बेवकूफ है, लेकिन धीरे-धीरे सिखाया नहीं जा सकता क्या? और धैर्य रंजना में किसी बात का नहीं है।

हमलोग घर आये तो रोज की तरह नीचे वालों की चारपाइयाँ आड़ी-टेढ़ी बाहर निकली थीं। कुछ अभी अन्दर से या बाहर से आये नहीं थे। कुछ सो रहे थे। भीतर जाने के लिए छोड़ी सँकरी जगह से निकलते हुए रंजना भुनभुनाई, "एक इन लोगों को सोने का कभी ढंग नहीं आयेगा....। कोई आये, कोई जाये, पड़े रहते हैं उलटे-सीधे, आड़े-तिरछे....।"

मैंने एक बार मज़ाक में कहा था, "तुम अपने को क्वीन एलिजाबेथ समझती हो कि सब लोग उठ-उठ कर खड़े हो जाया करें...?" तो नाराज़ हो गई, "आपसे इतना भी तो नहीं होता कि जाकर भल्लासाहब से कहें–सीढ़ियों पर कोयले तो न रखवायें कम से कम...।"

और रंजना की इस तर्क-प्रणाली पर

मैं दंग रह गया। ऊपर अपने कमरे में, टाई उतारते हुए मैंने हल्ली से पूछा, "हल्ली, कोई चिट्ठी ?"

"नहीं आई बाऊजी।" बाहर बाल्कनी में चादर की सलवटें निकालता हुआ वह बोला।

"कोई आया था मिलने ?"

"नहीं जी।"

तब तक दूसरे कमरे से साड़ी बदल कर रंजना आ गई। बाल्कनी की तरफ बढ़ती हुई परिहास से मुस्करा कर बोली, "अच्छी तरह याद कर ले.....।"

उसका संकेत मैं जानता हूँ। चुप रह गया। वह बाल्कनी में जाकर इस तरह लेट गयी जैसे मीलों का सफ़र करके आई हो। मैंने कपड़े हैंगरों पर लटकाये, तहमद लपेटा, और पढ़ने की मेज़ पर टेबिल लैम्प जला कर बैठ गया। मानसिक तनाव के क्षणों में जाने क्यों, लिखने और पढ़ने के लिए बड़ा मन तड़पता रहता है। कुछ और छोटे-मोटे काम करके, बाहर दूध के गिलास रखकर हल्ली ने धीरे से कहा, "बाऊजी, मैं ऊपर जाता हूँ।" मन में देर तक बोझ लगता रहा कि दरवाज़ा बन्द करना है, दरवाजा बन्द करना है! साथ ही डर भी लग रहा था कि उधर वाले कमरे में जाऊँगा तो पलंग पर मुझे रंजना के साड़ी-ब्लाउज उलटे-सीधे पड़े दिखेंगे, और तब मैं झुँझलाऊँगा कि ऐसी भी क्या थकान....!

दरवाज़ा बन्द करके लौटा तो बाहर से रंजना ने पुकारा, "सुनिये....।"

"क्या ?" मैं बीच कमरे में रुक गया।

"पढ़ रहे हैं क्या ?" उसने यों ही लेटे-लेटे पूछा।

"क्यों, काम क्या है ?" मेरे स्वर में ज़रा रुखाई थी।

"सुबह पढ़ लीजिये न, हमारा मन नहीं लग रहा....।" उसने निहायत ही मुलायम क्षमा-याचना के लहजे में कहा।

मैं कुछ देर टेबिल लैम्प के पास खड़ा रहा, फिर खट से बन्द करके चुपचाप बाहर आ लेटा। पास के सड़क वाले मूनलाइट बल्ब की रोशनी जालियों से छन कर हमारे ऊपर आती थी। सन्नाटे में स्कूटर, बस, ताँगे या साइकिल की आवाजों के साथ सिनेमा के वार्तालाप भी सुनाई देते थे, या हो सकता है, कहीं कोई भाषण दे रहा हो। सराय रुहेला की रेल जब खट्र-खट्र गुजरती है तो मकान थर-थर काँपते हैं।....ऊपर छत का निकला हुआ हिस्सा था।

"सुनिये....।" खुशामद के स्वर में रंजना ने कहा और मेरी पीठ का सहारा लेकर ठोड़ी मेरी बाँह पर रख दी, "आप यों मत नाराज़ हुआ कीजिये....मुझे डाँट दिया कीजिये।"

"लेकिन मैं नाराज़ हूँ कहाँ...?" मैंने कहा और मुझे लगा सचमुच मैं नाराज़ नहीं हूँ।

फिर अफ़सोस भरे स्वर में बोली, "मैं क्या करूँ, मुझे बाहर कहीं अच्छा ही नहीं लगता....कहीं भी जाती हूँ तो लगता है घर आऊँ....घर चलूँ। मुझे तो मेरा घर ही स्वर्ग है। मिसेज सेठी ऐसे प्रेम से अपने बच्चे की बातें बता रही थीं, और मुझे लग रहा था कि जब हमलोग कार्पेट बिछा लेंगे तो कमरा कैसा खिल जायेगा....।"

उसकी इन स्वप्नोच्छ्वसित स्वगतोक्तियों से मेरे मन का सारा धुआँ छट गया। करवट बदल कर कहा, "तुम कभी-कभी ऐसी बातें करती हो कि मुझे गुस्सा आ जाता है।"

"तो तुम गुस्सा क्यों नहीं होते?" लाड़ में आकर रंजना बोली। फिर बच्चों की तरह मचल कर कहा, "अच्छा अपनी अमला जी को लिख दो, हम दोनों शिमला आयेंगे...।"

"लेकिन अमला तो वहाँ से कश्मीर चली गयी।" मैंने बताया।

"कब? पत्र आया था क्या?"

"हुँम्.....।"

'तुमने बताया क्यों नहीं?"

"ख्याल नहीं रहा...।"

"झूट्ठे!" और मेरी बाँहों में रंजना का शरीर एक क्षण को निर्जीव हो आया।

दूसरा कोण

सारी रात रंजना मुझसे सवाल-जवाब करती रही....

मैंने एक कहानी लिखी और उसमें वर्किंग-गर्ल्स की समस्या को लिया कि इस नयी परिस्थिति ने कैसे हमारे मानसिक ढाँचे को डगमगा दिया है, लेकिन हमलोगों का दृष्टि-कोण नहीं बदला है। उसे लगा जैसे यह कहानी मैंने उस पर ही लिखी है और उसे ही गलत ढंग से प्रस्तुत करने की कोशिश की है। मैं उसे समझाता रहा कि, "हो सकता है कहानी की लड़की में कहीं तुम्हारी छाया हो, लेकिन न वह तुम हो न तुम्हारी समस्याएँ। रहा छाया का सवाल तो जैसे चित्रकार मॉडेल लेता है, उसी तरह कहानीकार को भी कहीं न कहीं से कोई आधार लेना होता है....और अच्छी या बुरी आखिर किन्हीं लोगों की तो समस्याएँ हैं ही।"

"नहीं, मैं इस कहानी की नहीं, एक जनरल बात कहती हूँ।" वह अपने उसी डिबेट के ढंग पर बोली, "आप दोष हमलोगों पर लगाते हैं, सचाई लेकिन यह है कि आपके भीतर वही पुराना सामन्तवादी पति जिन्दा है.... आप चाहते हैं कि पत्नी नौकरी तो करे ही साथ ही साथ घर की देखभाल करे, नौकर से सिर मारे, कपड़े सँभाले, बटन लगाये, बच्चे खिलाये.....फिर पति की पूरी-पूरी सेवा भी करे--उसका चौका-चूल्हा करे, हाथ-पाँव दबाये--फिर भी पति को यही शिकायत कि न वह पति को देखती है न घर को। अच्छा इतना ही नहीं, पति को सारी छूटें हैं--वह दुनिया भर की खुराफ़ातें करे, मटरगश्ती करे, दोस्तों में घूमे और अपने पर चाहे जितना खर्च करे....।"

मुझे लगा, जैसे वह बहस नहीं कर रही, मुझे सुना रही है। इसी सिलसिले में उसने अपनी सहेली रतन चड्ढा का एक किस्सा सुनाया। साथ पढाती है। पतिदेव कहीं नौकर थे, चारेक सौ रुपये मिलते होंगे। उन्होंने विज्ञापन दिया और रतन को छाँटकर शादी कर ली। रतन नौकरी तो यों ही कर रही थी, उसकी इच्छा थी कि अब नौकरी छोड़कर अपना घर सँभाले, पति के साथ रहे। लेकिन पति उसे यह कह-कहकर रोकते रहे कि उनका ट्रान्सफर होने वाला है, जब तय हो जाये तभी वह कोई निर्णय ले। बीच-बीच में मिस्टर चड्ढा आ जाते थे, दो एक दिनों को, और चले जाते। शुरू-शुरू का मामला था--एक बार चड्ढा ने आकर बताया कि साथ रहने के लिहाज़ से वे लम्बी छुट्टी लेकर आ गये हैं। शायद ट्रांसफर भी यहीं हो जाये। बाद में पता चला कि नौकरी टैम्परेरी थी और अब खत्म हो गयी है। सो पिछले दो साल से चड्ढा साहब तो टाई-सूट डाटे ठाठ से कनॉट

प्लेस के कारीडोर्स में नौकरी तलाश करते हैं और रतन बेचारी रात-दिन कॉलेज और ट्यूशन में पिसी जाती है। कहानी सुनाकर रंजना ने पूछा, "वर्किंग गर्ल की इस समस्या को आप क्या कहेंगे ?"

मेरा चेहरा तमतमा आया। मुझे लगा जैसे यह कहानी एक खास उद्देश्य से मुझे सुनाई गई है। बहुत ही निरुद्विग्न भाव से मैंने कहानी के काग़ज़ बीच से फाड़ डाले, "तब तो सचमुच मुझे इस समस्या को दूसरे कोण से भी देखना होगा....।" और चुप हो गया। रात भर दिमाग़ पर बोझ रहा और नींद नहीं आयी।

अगले दिन भी मन बोझिल रहा और न लिखना हो पाया, न पढ़ना। रंजना पढ़ाने चली गयी तो मुझे लगा जैसे मैं घर की रखवाली करने को पीछे छूट गया हूँ.....समस्या को इस दृष्टि से तो मैंने कभी भी नहीं देखा था। मेरा काम घर पर बैठ कर करने का है और रंजना का स्कूल में जाकर पढ़ाने का—बात इतनी ही नहीं है। इसकी जड़ें या परिणतियाँ और भी गहराई में हैं....मेरी हैसियत पति की है और कार्य पत्नी का.......

मैंने तय किया : लिखना-लिखाना बाद में होगा, मुझे सबसे पहले या तो कोई नौकरी करनी चाहिए या कुछ दिनों को कहीं बाहर जाकर रहना चाहिए। घर की हर चीज़ से मुझे विकट अरुचि और ऊब हो गयी। मैं मेज़ पर सिर टिका कर यों ही निष्क्रिय बैठ गया। अचानक लगा जैसे पीठ पर किसी ने हाथ रक्खा। चौंक कर मुड़ा तो उछल कर खड़ा हो गया'......एँऽ...ऽ.........अमला!' ●



एक यात्री-दम्पति

चित्र : डॉ० जगदीश गुप्त

डॉ० प्रभाकर माचवे

स्वर्गीय नलिन जी

१३ सितम्बर, १९६१ को 'ज्ञानोदय' सम्पादक लक्ष्मीचन्द्र जी से दिल्ली में सुना कि श्री नलिन विलोचन शर्मा नहीं रहे। दिल के दौरे की बीमारी ने उन्हें चवालीस वर्ष की अवस्था में ही हम से छीन लिया। और मैं धक्-सा रह गया।

नलिन जी से पहली भेंट दिल्ली में जैनेन्द्र जी के यहाँ हुई थी। बाद में पटने तीन-चार बार मैं उन्हीं के घर अतिथि की तरह रहा। और निकट से जाना। इलाहाबाद रेडियो पर मैंने एक आलोचक-गोष्ठी बुलाई थी: नलिन जी, डॉ. देवराज, डॉ. हजारी प्रसाद जी द्विवेदी आदि की (बाद में वह 'आजकल' में छपी) तब, और बिहार राष्ट्रभाषा-प्रचार-समिति के वार्षिकोत्सव में, 'साहित्य' त्रैमासिक के सम्पादक के नाते, विद्वत्तापूर्ण टिप्पणियाँ और सचोट आलोचनाएँ लिखनेवाले के नाते, 'कविता' के सम्पादक के नाते और 'दृष्टिकोण' के आलोचक के नाते मैं उन्हें जानता था। हिन्दी में एक नये अद्भुत काव्य-वाद 'प्रपद्यवाद' के वे जनक थे। 'बिब्बो का बिब्बो' एक लम्बा व्यंगकाव्य उन्होंने लिखा था जो पटना की एक पत्रिका में धारावाहिक छपा था। साहित्य के 'इतिहास-दर्शन' पर उनके साथ एक बार रात के बारह-एक बजे तक उन्हीं के घर खूब चर्चा हुई थी। मेरे मन पर उनके कई चित्र स्पष्टत: अंकित हैं जिनमें से कुछ यहाँ दे रहा हूँ, जिनसे मिल-बनकर शायद एक तस्वीर उभरे।

हिन्दी में निर्भीक, साहसपूर्ण, सत्यवादी आलोचकों का संप्रति घोर अभाव है। नलिनजी उस कोटि के समीक्षकों में से थे जो दो-टूक, बेलाग और साफ-साफ अपनी बात कहते थे, बिना हिचकिचाहट या बिना किसी श्रोता की भावुकता को ध्यान में रखते हुए। जिसे विलायत में 'इम्पर्सनल जजमेंट'

कहा जाता है, वह नलिन जी के यहाँ था। यह पंडित रामावतार शर्मा (उनके स्वनामधन्य विद्वान पिता) की परम्परा थी। संस्कृत का उद्भट पांडित्य उन्हें बपौती में प्राप्त था।

मैंने कई आलोचक-अध्यापक हिन्दी और इतर भारतीय भाषाओं के देखे हैं। या तो पोथी-पंडित हैं तो विद्यार्थी उनका आदर नहीं करते, या विद्यार्थियों के प्रिय-पात्र हैं (विद्वत्ता के कारण नहीं पर अन्य कई कारणों से, राजनैतिक या मधुर कंठ या खेल-कूद आदि के कारण) तो विद्वत्ता अब सन् '३० में जो पढ़ा था उसके आगे एक सीढ़ी बढ़ी नहीं है। पर नलिन जी रात-रात पढ़ते रहते थे: कोरा साहित्य नहीं, दर्शन, समाजशास्त्र, इतिहास, छन्दशास्त्र, सेक्स, मनोविश्लेषण—उनका ग्रंथ-भांडार विपुल था। पत्र-पत्रिकाएँ देशी-विदेशी उनके अध्ययन-कक्ष में बिखरी रहतीं।

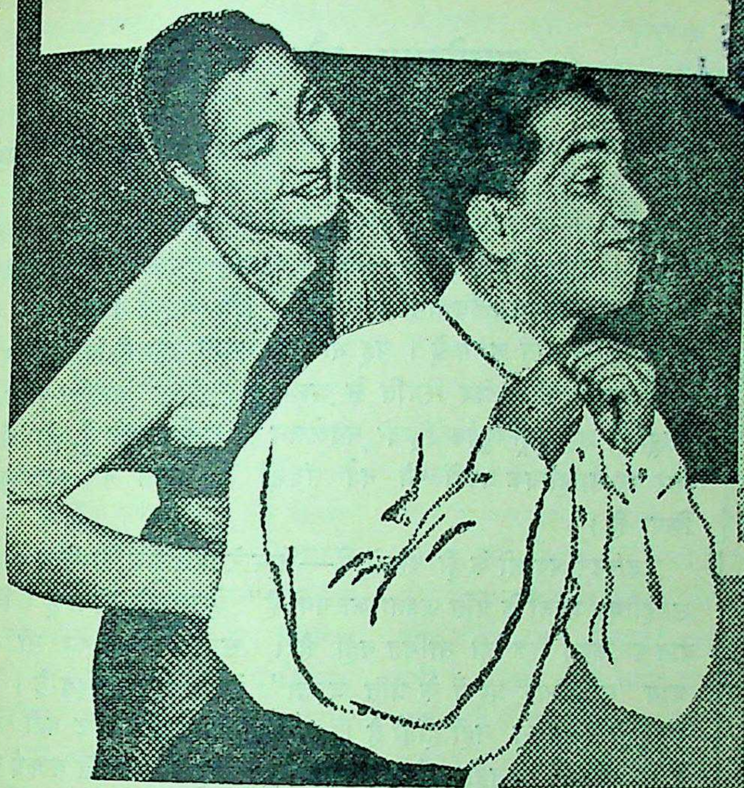
नलिन जी के घर में मंडली जुटी रहती। यह ज़रूरी नहीं है कि सब लोग साहित्यिक ही हों। श्रीनिवास जैसे चित्रकार, या श्री सिनहा (तारकेश्वरी जी के पति) जैसे राजनैतिक कार्यकर्ता, डाक्टर, वकील, ज्योतिषी, पहलवान, बाग-बगीचे के विशेषज्ञ—जीवन का कोई भाग ऐसा नहीं था जो उनका प्रिय विषय न हो। अनेक विषयों में रुचि थी और समान-भाव से सब में रस था। 'छात्रा' या 'छात्री' की चर्चा से 'विष्णु' की पक्षी-विषयक उत्पत्ति तक उनकी लेखनी अबाध गति से चलती थी।

नलिन जी का प्रिय विषय था कविता। 'कवि' के एक अंक में उन्हें विशेष कवि के रूप में दिया गया था। उसमें 'अली अकबर खान नामक उनकी बहुत ही संक्षिप्त लेकिन तीव्र-प्रभावी कविता है। यह मूल सानुवाद (अंग्रेज़ी में) मैंने सैन फ्रान्सिस्को के बर्क्ले केन्द्र KPFA से पढ़ी थी गत वर्ष। करीब पचास लाख श्रोता इस रेडियो को सुनते हैं ऐसा उनका दावा है। 'नकेन' पर मैंने 'धर्मयुग' में 'साहित्य सरिता के किनारे' में लिखा था। और भी लिखना चाहता था। मेरा निश्चित विश्वास है कि 'न-के-न' के कवियों की चाहे जितनी हँसी उड़ाई गई हो, उपेक्षा या व्यंग का उन्हें निशाना बनाया गया हो, प्रपद्यवादियों का जो 'मैनिफेस्टो' नलिन जी, नरेश कुमार आदि ने लिखा था—वह हिन्दी कविता के इतिहास में अभूतपूर्व घटना है। बिहार राष्ट्रभाषा परिषद या अन्य किसी पटनई संस्था को चाहिए कि उनका समस्त पद्यमय लेखा संग्रहाकार छापें।

'विष के दाँत' उनका कहानी संग्रह था। मैंने लखनऊ रेडियो से एकवार उसे समालोचित किया था—क्षीण-सी स्मृति मेरे मन में है। शायद कोटा से निकलने वाली 'कामना' में उस पर लिखा भी था। 'दृष्टिकोण' की आलोचना 'समीक्षा की समीक्षा' में की गई है। मैं उन्हें हिन्दी की एक मूर्धन्य, मौलिक, बुद्धिवादी पर फिर भी मानवतावादी प्रतिभा मानता हूँ। काल सदा ऐसे ही व्यक्तियों को चुन लेता है, जिन्हें जनता अधिक चाहती है।

मैं स्वर्गीय नलिनजी के शोक-संतप्त परिवार को सार्वजनिक रूप से धैर्य दिलाने का यह तुच्छ प्रयास कर रहा हूँ। वैसे मेरे पास शब्द नहीं हैं—गहरे शोक की अभिव्यंजना मौन है।

'आप हैं एक बिगड़े हुए नवाब...'



'मेरे पतिदेव एक बिगड़े हुए नवाब से कम नहीं,' डी/८, यूनियन हाउस, माहिम, बम्बई १६ की श्रीमती आर. आर. प्रभु कहती हैं, 'और कपड़ों की धुलाई पर तो इन का माथा मैला होते देर नहीं लगती। लेकिन जब से इन के कपड़े मैं ने सनलाइट से धोने शुरू किये हैं, यह भी खुश हैं और मैं भी। सनलाइट से कपड़े शानदार सफ़ेद और उजले धुलते हैं और इस का ढेरों झाग मैल का कण कण बहा ले जाता है!

गृहिणियाँ जानती हैं कि शुद्ध, मुलायम झागवाले सनलाइट की धुलाई में उन के कपड़ों की भलाई है। आप भी उन से सहमत हो जायेंगी।

सनलाइट



आप के कपड़ों की सर्वोत्तम सुरक्षा के लिए-

S. 30-X29 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

आलोचना और आलोचना

डा० देवीशंकर अवस्थी; प्रज्ञा प्रकाशन, कानपुर; मूल्य : चार रुपये

समकालीन हिन्दी समीक्षा-साहित्य में देवीशंकर अवस्थी अपरिचित हस्ताक्षर नहीं है। साहित्य के तीनों वर्ग––लेखक, पाठक, समालोचक से डाक्टर अवस्थी के साहित्य विषयक विचारों एवं निर्णयों को स्वागत मिला है। सहमति-असहमति की बात अलग है। यह भी कहा जाता रहा है कि डाक्टर अवस्थी ने आलोचना की दलीय स्थिति से अलग हट कर, तटस्थता-पूर्वक, निर्भ्रान्तिपूर्वक, सहानुभूतिपूर्वक हिन्दी नवलेखन की समीक्षा की है, और सैद्धान्तिक स्तर पर साहित्यिक प्रश्नों को नये संदर्भों में उठाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

डाक्टर अवस्थी के ही शब्दों में––"हमारे वर्त्तमान साहित्य-पाठकवर्ग में साहित्यिक प्रश्नों के प्रति जड़ता आ गयी है" ऐसा कहा गया है। किन्तु, यह बात पाठकवर्ग तक ही सीमित नहीं है। समीक्षक-वर्ग का भी अधिकांश भाग "साहित्यिक प्रश्नों के प्रति जड़ता" के भाव से पीड़ित है। रचनाओं का सही मूल्यांकन नहीं होता है। पाठकों को सही दृष्टि नहीं दी जाती है। लेखकों को सही मार्ग नहीं दिखाया जाता है। स्थिति वाकई लगता है जड़ता की ही है। चुनौतियाँ दी जाती हैं। वाद-विवाद खड़े किये जाते हैं। नारेबाजी और दलबन्दी और आग्रह-आवेश और तर्क-वितर्कों के दाँवपेंचों से किसी को (यानी, किसी समीक्षक को) अवकाश ही नहीं है कि स्थायी मूल्यों की बात करे, वास्तविक स्थितियों की चिन्ता करे, उचित पथ-निर्देश की व्यवस्था की चेष्टा करे। और, इस परिस्थिति के अपवाद की दिशा में जो समीक्षक हैं, उनमें डाक्टर अवस्थी का नाम अग्रगण्य है।

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित अपने लेखों में डाक्टर अवस्थी ने



सा हि त्या र्च न

सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समीक्षा की समस्याओं को उठाया है। प्रस्तुत पुस्तक उन्हीं समस्याओं का बहुत हद तक स्वीकरण और कुछ हद तक निराकरण है।

पुस्तक की विषयसूची पढ़ने से लगता है कि यह पुस्तक विद्वान लेखक द्वारा समय-समय पर लिखी गयी समीक्षाओं और साहित्यिक निबन्धों का संकलन मात्र है। उपशीर्षक में भी पुस्तक को "समीक्षाओं का संकलन" ही बताया गया है। और संकलित लेख भी सही क्रम से और अलग खण्डों में नहीं रक्खे गये हैं। किन्तु गंभीरतापूर्वक पुस्तक को पढ़ने के बाद पता चलता है कि इतनी बेतरतीवी से संकलित होकर भी पुस्तक में छः-छः लेखों के तीन खण्ड हैं--(१) आलोचना और समीक्षा की प्रकृति और सिद्धान्तों से सम्बन्धित लेख, (२) आधुनिक कविता की उपलब्धि और संभावनाओं से संबंधित लेख, और (३) अन्य सामयिक साहित्यिक लेख। उचित यह था कि इन अठारह लेखों को इन्हीं तीन खण्डों में एक क्रम से संकलित किया जाता। लगता है, जल्दवाजी और असावधानी के कारण, लेखक की व्यस्तता के कारण ही ऐसा हुआ है।

कतिपय शब्दों के भी चिन्त्य प्रयोग पुस्तक में पर्याप्त मात्रा में किये गये हैं। 'संज्ञायें', 'हुये', 'सत्तायें', 'चाहिये', 'पर क्यों इतनी अधिक वह सुस्वादु है', 'पथिक-प्रति', ('पथिक के प्रति' के स्थान पर) 'पहुँचावेगी', 'विविधि', 'प्रतिक्रिया के लय', 'सोद्देश्य ढंग से', 'ऐसी कहानियों को लिखा', 'बसन्त', 'सृजनात्मक लेखक', 'जावेंगे', 'गए, 'सृजनशील लेखक के लिए ऐसा साहित्य (Hack writing)ही है', 'बताई', जैसे प्रयोग विद्वान लेखक की भाषा को शोभा नहीं देते हैं। इसी प्रकार, 'क्लासिकल', 'आइडिया', 'टेक्सचर', 'स्टैंजा', 'कैनवास', 'एब्सट्रैक्ट', 'हारमनी', 'प्वाइण्टेड', 'यूनिट', 'सोशल मोरस', 'रिकन्सट्रक्शन', 'स्टॉक रेस्पॉन्स', 'सिस्टम', 'मैगनेटिक', 'कनसर्नड्', 'एकेडेमिक', 'मार्केट-वैल्यू', 'टेक्नीशियन', 'मेकेनाइज्ड', 'ट्रेड', 'टाइटिल', आदि अँग्रेजी शब्दों का भी उपयोग नहीं किया जाना चाहिए था, क्योंकि इनके सुन्दर पर्याय हिन्दी में प्रचलित हैं।

'रचना और आलोचना' शीर्षक लेख में डाक्टर अवस्थी ने रचना के मनोवैज्ञानिक अध्ययन के सिलसिले में रचना और रचनाकार के पारस्परिक संबंध की चर्चा की है, लेकिन, यह निर्णय नहीं लिया है कि रचना को पूरी तरह समझने के लिए लेखक के चरित्र और जीवन को समझना आवश्यक है या नहीं। "कृति लेखक द्वारा पाठकों को दिया गया कोई संदेश विशेष न होकर एक स्वतन्त्र सत्ता है" ऐसा भी कहा है और "कृति और कृतिकार के मध्य किसी संबंध के आत्यन्तिक अभाव को हम प्रतिपादित नहीं करना चाहते" डाक्टर अवस्थी ने ऐसा भी कहा है। अगर, कृति या रचना "एक स्वतन्त्र सत्ता" है, तब तो एकदम ज़रूरी नहीं है कि उसे समझने और उसे पढ़ कर आनन्द पाने के लिए, उसके लेखक को समझने का कष्ट उठाया जाय।

इसी तरह 'साहित्य लेखन : एक व्यावसायिक समस्या' शीर्षक लेख में भी विद्वान लेखक ने लेखन के व्यावसायिक रूप, लेखक के राज्याश्रय, आदि पर विस्तारपूर्वक विचार तो किया है, लेकिन, यह निर्णय नहीं

लिखा है कि लेखन को आर्थिक लाभ का व्यवसाय बनने से रोका जाय या नहीं, और रोका जाए तो किस तरह ? डाक्टर अवस्थी का कहना सही है कि "लेखन कभी भी एक मशीनीकृत उद्योग नहीं बन सकता (क्योंकि), वह तो विचार, अनुभव और भावना की उपज है, जो मशीन में कभी नहीं आ सकते।" लेकिन, क्या उनकी निगाहें समकालीन व्यापारी पत्रिकाओं के व्यापारिक लेखन पर नहीं पड़ती हैं ? क्या वे व्यवसायिक लेखन के फैशनों और फॉर्मूलों को नहीं देख रहे हैं ? क्या सामयिक लेखन "मशीनीकृत उद्योग" की दिशा में भागा नहीं जा रहा है ? और तब, इस पलायन को रोकने का क्या उपाय हमारे पास है ?

कुछ लेख जैसे 'आधुनिक अँग्रेजी उपन्यास' 'ग्रीक और भारतीय पुराण-गाथाएँ' इस पुस्तक में संकलित नहीं किये जाते, तो अधिक उत्तम होता, क्योंकि संकलित अन्य लेखों से इनका कोई प्रत्यक्ष-परोक्ष संबंध नहीं है।

मुद्रण की भूलों और मूल्य के आधिक्य के बावजूद, डाकटर देवीशंकर अवस्थी की यह नयी पुस्तक "आलोचना और आलोचना" (हालांकि लेखक ने 'आलोचना' के बदले हर जगह 'समीक्षा' शब्द का ही उपयोग किया है) पाठकों और लेखकों के लिए समान रूप से पठनीय-संग्रहणीय है।

—राजकमल चौधरी

एक बूँद सहसा उछली

ले० सच्चिदानन्द वात्स्यायन ; प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, काशी : मूल्य ७)

उचित है कि प्रारंभ भूमिका से ही किया जाए। लेखक ने लिखा है :

"यह पुस्तक मार्ग-दर्शिका नहीं है। इसके सहारे यूरोप की यात्रा करने वाला यह जान लेना चाहे कि कैसे वह कहाँ से कहाँ जा सकेगा, या कैसे मौसम के लिए कैसे कपड़े उसे ले जाने होंगे, या कि कहाँ कितने में उसका खर्चा चल सकेगा, तो उसे निराशा होगी। जो यह जानना चाहते हों कि कहाँ से नाइलॉन की साड़ियाँ या कैमरे, या घड़ियाँ, या सेंट, या ऐसी दूसरी चीज़ें जो कि भारतवासी विदेशों से उन कला-वस्तुओं के एवज़ में लाते हैं जो कि विदेशी यहाँ से ले जाते हैं—कहाँ से किफ़ायत में मिल जायेंगी, उनके भी काम की यह पुस्तक नहीं होगी।"

लेकिन दुर्भाग्य से, हमारे अधिकांश लेखक उक्त मार्गदर्शिका वाले उद्देश्य को ही सर्वोपरि मान लेते हैं और यात्रा-वर्णन लिखते समय इन पर ब्यौरेवार विस्तार से पृष्ठों पर पृष्ठ भरते चले जाते हैं। दरअस्ल, अगर यात्रा-वर्णन का लक्ष्य यही हो तो फिर इसके लिए एक संवेदनशील लेखक की क्या ज़रूरत है, ये सूचनाएँ तो आसानी से किसी भी टूरिस्ट ब्यूरो से उपलब्ध हो सकती हैं।

अस्तु, प्रस्तुत यात्रा-वर्णन एक संवेदनशील लेखक की कृति है। यूरोप-भ्रमण के अपने दस मास के समय में वह जिन-जिन देशों में गया, वहाँ के सम्पूर्ण सांस्कृतिक परिवेश को, उसकी आत्मा की धड़कन को उसने चित्रित किया है, और फलस्वरूप वे देश जीवन्त होकर स्वयं बोलते-से हमारे सामने प्रत्यक्ष हो उठे हैं। शायद इसी तथ्य को दृष्टि में रख कर इसे प्रकाशकीय में 'घुमक्कड़ी का काव्य' कहा गया है।

इस कथन के स्पष्टीकरण के लिए एक

उदाहरण पर्याप्त होगा। एक सामान्य लेखक पैरिस-यात्रा का वर्णन करते समय स्वभावतः वहाँ की आलीशान इमारतों, कैफे और रेस्त्राओं, विशाल सड़कों और दूकानों की चमक-दमक और नाइट-क्लबों की रौनक का वर्णन करने में उलझ कर रह जाता, लेकिन ये तो दरअसल आज के हर आधुनिक नगर की सामान्य बातें हैं, इनमें पैरिस की अपनी आत्मा की धड़कन कहाँ है। प्रस्तुत लेखक, परिस की उसी छुपी हुई आत्मा की धड़कन तक पहुँचता है। वह पैरिस की गलियों में पैदल भटकता है, वह कला-गैलरियों और नाटक घरों और लेखकों के साहित्यिक अड्डों की छानबीन करता है, और सेन नदी के तटीय सौन्दर्य का वर्णन करता है। बल्कि यही नहीं, वह पैरिस-वासियों की जातिगत विशेषताओं का उद्घाटन करता है। और वह यहीं बस नहीं कर देता। वह उस दूसरे पैरिस की खोज करता है, जो किसी भी अन्य यात्री के लिए सदा छिपा ही रह जाता रहा है—वह है बेनेडिक्टी सम्प्रदाय के ईसाई संन्यासियों का मठ—'पेयर मुआर की कुटिया'। लेखक वहाँ जाकर रहता है, और पश्चिमी मानस के भौतिक और धार्मिक रुझानों के अद्भुत मिश्रण का अध्ययन-विश्लेषण करता है।

यात्रा-स्थल की संस्कृति के उद्घाटन का यह प्रयास प्रस्तुत पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ में लक्षित होता है। लेखक रोम जाता है तो वहाँ के प्राचीन खंडहरों के वैभव और आधुनिक रोमवासियों के अपनी भाषा के प्रति आगाध प्रेम का विवेचन करता है। वह स्वीडन की राजधानी स्टाकहोम जाता है तो वहाँ नगर के प्रमुख लेखकों की एक व्यक्तिगत गोष्ठी में भाग लेता है, और प्रमुखतम कवि एरिक लिंडग्रेन के मानस की चीर-फाड़ जिस व्यंग्यात्मक शैली में प्रस्तुत करता है, वह सचमुच अद्भुत है।

पुस्तक संवेदनशील, सुरुचिसम्पन्न पाठक को पसन्द आएगी और यही लेखक का लक्ष्य भी रहा है।

—सुकीर्ति गुप्ता

प्रकाशित जैन साहित्य

संयोजन : पन्नालाल जैन अग्रवाल ; संपादक : डॉ० ज्योतिप्रसाद जैन ; प्रकाशक : जैन मित्र मंडल, जैनपुरा, दिल्ली ; मूल्य २) रुपये।

'प्रकाशित जैन साहित्य' ऐसे ग्रन्थों और जैन ग्रन्थकारों की कृतियों की तालिका या विवरण-सूची है जिनका प्रकाशन सन् १९४५ तक हो चुका था। सूची में संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती, मराठी, उर्दू, बंगला और अँग्रेजी भाषाओं में प्रकाशित लगभग २७०० कृतियों का संक्षिप्त परिचय है। पुस्तक की उपादेयता इस बात से प्रमाणित है कि जैन धर्म, दर्शन, साहित्य या तत्वज्ञान का जिज्ञासु कोई भी व्यक्ति जो जानना चाहता है कि जैन वाङ्मय के विभिन्न अंगों पर प्रकाशित साहित्य कितना है, और किस प्रकार का है, उसके लिए इस पुस्तक की एक प्रति का पास होना अनिवार्य है।

पुस्तक के प्रारम्भ में प्राथमिक, प्राक्कथन, प्रस्तावित और विस्तृत भूमिका (९० पृष्ठ) के रूप में जैन ज्ञान के अध्येता विद्वानों—डॉ० हीरालाल जैन, डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल, पंडित जुगलकिशोर मुख्तार और डॉ० ज्योति

प्रसाद जैन—ने जैन साहित्य की स्थिति, पृष्ठभूमि और विकास तथा प्रस्तुत प्रकाशन की प्रकृति पर महत्त्वपूर्ण और उपयोगी प्रकाश डाला है। सम्पादकों ने प्रयत्न किया है कि वे अपनी सामर्थ्य और सुविधा के अनुसार पुस्तक को अधिक से अधिक उपयोगी बनायें क्योंकि इसमें जैन प्रकाशन संस्थाओं की सूची, जैन पत्रों की तालिका, जैन लेखकों के नाम, पुस्तक विक्रेताओं के पते आदि का समावेश भी किया है।

यह पुस्तक आज से १५ वर्ष पूर्व प्रकाशित हो जानी चाहिए थी। उस समय इसके सम्पादन का महत्त्व कुछ दूसरा ही होता। आज जहाँ पुस्तक का सामान्य पाठक ऐसी उपयोगी सामग्री को एक स्थान पर पाकर इसे अलभ्य निधि की तरह सुरक्षित रखेगा, वहाँ पारखी समीक्षक चाहेगा कि ऐसी उपयोगी पुस्तक यदि निर्दोष होती तो कितना अच्छा होता। बस एक ही बात बार-बार मन में आती है—इसका नया संस्करण एक-दो साल में हो जाये, और आज के स्तर के अनुरूप। प्रयास निःसन्देह स्तुत्य है।

—सुरेश चन्द्र

समीक्षार्थ-प्राप्त साहित्य

१ राजपाल एण्ड सन्ज : दिल्ली

१ इन्कलाब : ख्वाजा अहमद अब्बास, अनु० मुनीश सक्सेना
२ कहानी खत्म हो गई : आचार्य चतुर सेन
३ जगन्नाथ आजाद : सम्पादक : जगन्नाथ आजाद
४ रामधारी सिंह दिनकर : मन्मथनाथ गुप्त
५ रामावतार त्यागी : क्षेमचन्द्र 'सुमन'
६ एक प्रश्न : भगवती प्रसाद वाजपेयी
७ देख कबीरा रोया : मन्मथनाथ गुप्त
८ मूँगे का द्वीप : आर.एम. वेलेन्टाइन, अनु. श्रीकान्त व्यास
९ आत्महत्या से पहले : चन्द्रदेव सिंह
१० आधुनिक हिन्दी कविता में प्रेम और शृंगार : डॉ. रांगेय राघव
११ ये तेरे प्रतिरूप : अज्ञेय
१२ अर्श मल्शियानी : प्रकाश पण्डित
१३ माँ यह कौन ? : रामेश्वरदयाल दुबे
१४ प्रतिक्रिया : मन्मथनाथ गुप्त
१५ नारी हृदय की साध : सत्यवती मल्लिक
१६ भगवती चरण वर्मा : अमृतलाल नागर
१७ केशव और उनका साहित्य : डॉ. विजयपाल सिंह

२ हिन्द पाकेट बुक्स प्राइवेट लि०, दिल्ली

१ घोंसला : किशोर साहू
२ व्यक्तित्व : अनु. मोहिनी राव
३ शकुन्तला : बागीश्वर विद्यालंकार
४ पंचतंत्र : सत्यकाम विद्यालंकार
५ जाल : मन्मथनाथ गुप्त
६ कसक : अमृता प्रीतम
७ काबुलीवाला : रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनु. श्यामू सन्यासी
८ बहूरानी : रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनु. श्यामू सन्यासी
९ दो बहनें : रवीन्द्रनाथ ठाकुर : अनु. श्री रामनाथ सुमन
१० जुदाई की शाम : रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनु. श्री रामनाथ सुमन
११ एक अनजान औरत का खत :

स्टीफेन ज्विग, अनु. शरद देवड़ा
१२ हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ प्रेमगीत : सम्पादक—क्षेमचन्द्र 'सुमन'

३ श्री फूलचन्द जवरचन्द गोधा जैन ग्रन्थ-माला, इन्दौर नगर
१ परम ज्योति महावीर : धन्यकुमार जैन 'सुधांशु'

४ साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली
१ योगायोग : रवीन्द्रनाथ ठाकुर, अनु. इलाचन्द जोशी

५ अखिल भारतीय हिन्दी शोध मंडल, पटना
१ ब्रजबुलि साहित्य : रामपूजन ति वारी
२ हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका : रामपूजन तिवारी

६ प्रकाशन विभाग, पुराना सचिवालय, दिल्ली
१ भारत के जंगली जीव : श्रीराम शर्मा
२ भारत में अंग्रेजी राज : सुन्दरलाल

७ मुनि प्रकाशन, नई दिल्ली
१ एकांकी सप्तक : कृष्ण मुनि प्रभाकर

८ वोरा एण्ड कं० पब्लिशर्स प्रा० लि०, बम्बई
१ युग निर्माता द्विवेदी : कुलवन्त कोहली
२ शब रेखा : गुणवन्त राय आचार्य, अनु. परदेशी

९ प्रतिभा प्रकाशन, जबलपुर
१ कला-साहित्य-शास्त्र : हरिदत दुबे
२ अर्चना : कृष्णवल्लभ दबे

१०. P.E.N. All India Centre, Bombay
1. Drama in Modern India & the writer's Responsibility in Rapidly changing world.

११ भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी
१ हरी घाटी : रघुवंश
२ लो कहानी सुनो : अयोध्या प्रसाद गोयलीय
३ नग़मए-हरम : अयोध्या प्रसाद गोयलीय
४ वीणापाणि के कम्पाउण्ड में : केशवचन्द्र वर्मा

१२ नवहिन्द पब्लिकेशन्स, हैदराबाद
१ जो भी कुछ देखती हूँ : कान्ता

१३ साहित्य संस्थान, दिल्ली
१ मिट्टी की लोथ : हरिप्रकाश

१४ नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली
१ खड़ी बोली काव्य में अभिव्यंजना : आशा गुप्ता
२ अरुणोदय : विराज
३ परमाणुशक्ति : प्रोफेसर रत्नसिंह गिल
४ भारत के प्रमुख साँप : विराज
५ भारत के पशु-पक्षियों की कहानियाँ : राजेन्द्र शर्मा
६ हड्डियों का दान : वीरेन्द्र कुमार गुप्त
७ ब्रिटेन में चार सप्ताह : अक्षय कुमार जैन

१५ सरस साहित्य, अजमेर
१ सन सत्तावन की छाया में : अर्चना
२ सोनगरा : सरस वियोगी

१६ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
१ हिन्दी आलोचना का इतिहास : रामदरश मिश्र

१७ विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर
१ प्रागैतिहासिक मानव और संस्कृतियाँ : श्रीराम गोयल

१८ न्यू एज पब्लिशर्स प्रा० लि०, कलकत्ता
१ मायापुरी : शिवानी

ज्ञानोदय के ग्राहकों एवं एजेंटों से कुछ आवश्यक निवेदन

प्रत्येक मास हम बहुत ही सतर्कता और सावधानी के साथ अपने एजेण्टों एवं ग्राहकों को 'ज्ञानोदय' के अंक भेजते हैं, और डिस्पैच की तारीखें ऐसी बँधी हुई हैं कि प्रत्येक एजेण्ट एवं ग्राहक को मास के प्रथम सप्ताह के अन्दर-अन्दर उस मास की प्रति पहुँच जाती है। दुहरी जाँच के बावजूद यदि कभी किसी मास, किसी एजेण्ट अथवा ग्राहक को अंक नहीं प्राप्त हो तो उनसे हमारा आग्रह निवेदन है कि वे १५ तारीख के अन्दर ही स्थानीय डाक-घर से पूछ-ताछ करें और डाक-विभाग से लिखित शिकायत कर, उसकी प्रतिलिपि के साथ हमें लिखें ताकि हम यह पता लगाने में समर्थ हो सकें कि आखिर गड़बड़ी कहाँ और कैसे हुई है।

◎ ◎ ◎

व्यवस्था की सुविधा और पत्र-व्यवहार में शीघ्रता लाने हेतु ग्राहकों से यह भी प्रार्थना है कि वे किसी भी प्रकार का पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख करना न भूलें। यदि किसी सज्जन को अपनी ग्राहक-संख्या ज्ञात न हो तो रैपर पर अपने नाम और पते के आगे अंकित संख्या को नोट कर लें।

◎ ◎ ◎

ज्ञानोदय के जिन ग्राहकों के शुल्क समाप्त हो जाते हैं उनको अन्तिम अंक जाने के साथ ही साथ दो बार हम कार्ड द्वारा यथाविधि सूचना देते हैं। हमारा ग्राहकों से विनम्र निवेदन है कि वे कार्ड-प्राप्ति के साथ ही हमें तत्काल यह सूचित करने की कृपा करें कि वे वार्षिक शुल्क भेज रहे हैं, अथवा उनको वी. पी. पी. भेज दी जाय।

◎ ◎ ◎

'ज्ञानोदय' का अगला अंक विशेषांक होगा और उसकी प्रति प्रत्येक ग्राहक को अण्डर सर्टिफिकेट आफ पोस्टिंग से भेजी जायगी। हमारी पूरी कोशिश रहेगी कि उक्त विशेषांक प्रत्येक ग्राहक को सुरक्षित रूप से मिल जाय। किन्तु जो ग्राहक अधिक सुरक्षा की दृष्टि से विशेषांक रजिस्टर्ड बुक-पोस्ट से मंगाना चाहें वे ५० नये पैसे या उतनी कीमत के डाक-टिकट या पोस्टल आर्डर २० अक्तूबर तक भेज दें। साथ में ग्राहक-संख्या लिखना न भूलें।

—व्यवस्थापक



सृष्टि और दृष्टि

प्रिय भाई,

अगस्त के 'ज्ञानोदय' में भाई राजकमल चौधरी द्वारा लिखे गये एक पत्र के जवाब के सिलसिले में यह पत्र आपको लिख रहा हूँ। वैसे मुझे श्री राजकमल चौधरी को कोई जवाब नहीं देना है, लेकिन दूसरे लोगों के सामने ग़लतफ़हमी का कोई अवसर न रह जाय, लिखना अनिवार्य लग रहा है। वैसे लिख कर ग़लतफ़हमी दूर ही हो जायगी इसकी कोई गारंटी नहीं, क्योंकि ग़लतफ़हमी फैलाने वाले किसी भी बात पर तर्क कर सकते हैं।

बँगला-अनुवादों पर टिप्पणी के सिलसिले में जो विरोध उन्होंने प्रकट किया है—उसके बारे में मुझे कुछ खास नहीं कहना, क्योंकि वह उनका विचार हो सकता है और हर व्यक्ति अपना विचार रखने का अधिकारी है आज की दुनिया में। वैसे मैंने जो कहा है वह रवीन्द्रनाथ की अधिकांश कविताओं को दृष्टि में रखते हुए ही। 'प्रेम-भावना को एक रहस, महत् और ईश्वरीय प्रतीकात्मकता का आभास देना ही' रवीन्द्र की काव्य-कला का प्रथम और सबसे बड़ा गुण है। मैंने यह भी कहा था कि रवीन्द्रनाथ के लिए शायद इस स्तर पर सोचना और विषय की सारी परिकल्पना को ऊपर उठा लेना, एक विवशता भी थी—व्यक्तिगत संस्कारों, अध्ययन और अन्य कई कारणों से। उनकी इसी संस्कारगत विवशता की ओर मैंने इशारा किया था, उनकी कविता 'जेते नाहि देबो' को उदाहृत करके।

दूसरी बात जीवनानन्द के प्रभाव को लेकर उठाई गई है। राजकमलजी के कथनानुसार जीवनानन्द का प्रभाव आधुनिक बँगला कवियों पर इसलिए सम्भव नहीं है क्योंकि वे अन्य आधुनिक कवियों के समकालीन थे। यह तर्क अपने आप में कितना कमज़ोर पड़ सकता है, यह कोई भी जागरूक पाठक समझ सकता है। इस तरह के उदाहरण संसार की हर भाषा के साहित्य में भरे पड़े हैं जहाँ किसी एक समकालीन कलाकार ने अपनी उच्चस्तरीय प्रतिभा के

कारण अन्य लोगों को 'परोक्षतः' प्रभावित किया है। मैंने 'नज़रुल' को इस प्रभाव या अन्य किसी भी प्रभाव से अछूता कहा था। उसमें चौधरी जी ने सुकान्त भट्टाचार्य का एक नाम और जोड़ दिया है। वैसे नज़रुल की भी प्रेम कविताएँ रवीन्द्र के प्रभाव से अछूती नहीं हैं और न सुकान्त भट्टाचार्य का रूपाकार। मात्र 'जली हुई रोटी जैसा चाँद' लिखने से ही सुकान्त पृथक् नहीं हैं। ख़ैर, इन सब बातों से चौधरी जी की ज्ञान-राशि का प्रमाण तो उपस्थित हो ही जाता है कि वे बंगाली हैं (?) और बँगला उनकी मातृभाषा है और वे जन्म से ही उसके साहित्य के सम्पर्क में रहे हैं।

अनुवादों के सम्बन्ध में कुछ अभिधात्मक परिवर्तनों को उन्होंने ग़लती से अनुवाद की भाषा-ज्ञान शून्यता का पर्याय मानकर बहुत दुःख प्रकट किया है। 'तोमाके भूलिनि आमि' का रूपान्तर स्वीकृतिवाचक में करने का मेरा अपना उद्देश्य था। वह उद्देश्य जो अनुवादक का मूल धर्म होता है--कवि के सम्भावित अर्थ की निकटतम अनुभूति रूपान्तरित भाषा के माध्यम से प्रस्तुत करना। पूरी कविता का 'टोन' शीर्षक के विरोधाभास से इसी अनुभूति को आत्मगत कराना चाहता है कि 'बाह्य विवशताओं और आन्तरिक संघातों वश व्यक्ति अपने प्रेम को भूल चुका है, कि वह उसे याद नहीं कर सकता.....कि शायद इस रूप में वह भूला नहीं है। मुझे याद है 'बुद्धदेव बसु' की एक कविता 'कोनो मृतार प्रति' के शीर्षक का अनुवाद चौधरी जी ने 'मृत्युमुखी के प्रति' किया था। 'मृतक' और 'मृत्युमुखी' का अन्तर चौधरी जी को न मालूम हो यह मैं कैसे कह सकता हूँ! उनके ज्ञानवान होने में मुझे कोई शक नहीं! वैसे 'किसी मृत व्यक्ति के प्रति' कविता का टोन विरोधाभास का नहीं है। अतः 'मृतक' की जगह 'मरणासन्न' कहना सारी अनुभूति को भोंडा बना देता है। ख़ैर इस तरह की ग़लतियाँ उन्होंने 'लहर' के बँगला विशेषांक में बहुत की हैं--जिनका जिक्र करना मेरे जैसे बँगला-भाषा-ज्ञान-शून्य व्यक्ति के लिए शोभा नहीं देता। 'हृदय एक पक्षी है' और 'हृदय में एक पक्षी है' शायद दूसरा कथन रूपान्तर के रूप में पहले कथन की अनुभव-गरिमा को बदल देता है। 'उतला' का अर्थ उन्होंने 'चंचल' (उतावला) किया है, मैंने 'फड़फड़ाता हुआ' किया है। यहाँ पर भी मैं कहूँगा कि शब्द का अर्थानुकूल आविष्कार है यह। अब कोई इस पर इब्तदा ज़ाहिर करे तो मैं यही कहूँगा कि 'और आगे देखिए क्या होता है।'

एक और उदाहरण उन्होंने दिया है–'अवाध छिड़ेछे विमान कुहासा जाल'। 'छिड़ेछे' का अर्थ चीरने के स्थान पर मैंने बुनना किया है। 'बुनने' का अर्थ ही होता है झाँझर करना। दीवार नहीं बुनी जाती... कपड़ा बुना जाता है। विमान के पहिये जब कुहासे में घूमते हैं तो कोहरे की गोल-गोल रिंग्स् बनती हैं जैसे मशहरी के छेद। कुहासा कोई बर्फ़ नहीं होता कि विमान उसे काट कर रास्ता बनाते हैं।

तार चेये बेशी दामी।

हयतो तोमार पूरानो प्रनय नय....

इसमें 'दामी' के बाद के पूर्णविराम का स्थान शायद वे भूल गये हैं। फिर 'हयतो' कह कर कवि अपनी emphasis ज़ाहिर करता है।

ख़ैर....मैं चाहूँगा कि मुझे ग़लत समझें

के लिए प्रस्तुत न किया जाय। वैसे चौधरी जी साहित्य-क्षेत्र में इस प्रकार के stunts में विश्वास रखते हैं, इसका मुझे अफ़सोस है।

—दूधनाथ सिंह

पी. ३४, लेक गार्डेन्स,
बाँगुर पार्क,
कलकत्ता-३३

प्रिय भाई,

'ज्ञानोदय' के उच्च-साहित्यिक-स्तर को आप बनाये हुए हैं, यह प्रसन्नता की बात है।

'रवीन्द्र-अर्चना' का स्तंभ प्रारम्भ करके स्तुत्य कार्य किया है। 'गीतांजलि' से कहीं उत्कृष्ट, गूढ़ और मर्मस्पर्शी कविताएँ रवीन्द्र-काव्य-साहित्य में बिखरी हुई हैं। ऐसी रचनाओं को हिन्दी-पाठकों के सम्मुख रख कर आप उचित कार्य कर रहे हैं। नागरी-लिपि में मूल बंगला रचना को भी प्रकाशित करना युक्तियुक्त है।

'ज्ञानोदय' के माध्यम से हम विदेशी साहित्य और विचारधारा से भी परिचित होते हैं। डॉ० हाल्डेन का लेख, अर्नेस्ट हेमिंग्वे की कहानी, और श्री भगवान सिंह का 'वाल्ट ह्विटमैन' पर लेख जागरूक पाठकों के लिए विशेष आकर्षक रचनाएँ हैं।

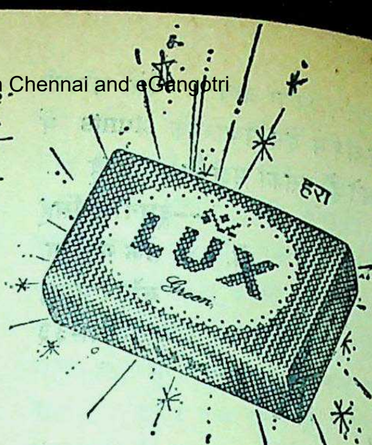
'बातें, जिनमें सुगन्ध फूलों की' तथा 'आधुनिक असंतोष की तीन असमिया कविताएँ' जैसी रचनाएँ भी उपरिलिखित उद्देश्य की पूर्ति करती हैं। आधुनिक पत्रिकाओं का दृष्टिकोण इतना व्यापक होना ही चाहिए।

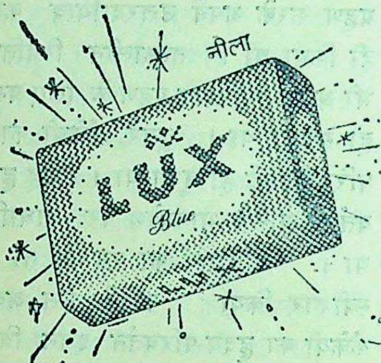
प्रस्तुत अंक में प्रकाशित एकांकी 'झगड़ा : आदि और अन्त' बड़ा लचर है। 'दफ्तर का बाबू : एक एक्सीडेंट' आज के जीवन की विडम्बना को प्रभावशाली ढंग से व्यक्त करता है। मध्यमवर्गीय जीवन की विवशताएँ भी कलात्मक ढंग से उभरी हैं। लेखक में व्यंजना-शक्ति खूब है। 'राम के राज्यारोहण की पहेली' मात्र तार्किक शैली पर लिखा गया है। भारत की मूल भावधारा से उसका कोई संबंध नहीं है। राम ने राज्य ग्रहण करके अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह ही किया था। तत्कालीन स्थिति में कोई भी अन्य भाई राज्य-ग्रहण के लिए प्रस्तुत नहीं हो सकता था। दूसरे, कैकेयी का हृदय-परिवर्तन भी हो चुका था। यह हृदय-परिवर्तन क्षणिक भावावेश पर आधारित नहीं था। चौदह वर्ष का वनवास तो राम ने स्वीकार किया; क्योंकि उस अवसर पर कैकेयी का हृदय-परिवर्तन इतना विश्वसनीय नहीं समझा जाता। बाद में, दशरथ की आज्ञा पालन करने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। यदि राम तब भी पूर्व आज्ञानुसार आचरण करते तो वह न्यायोचित और विवेक संगत नहीं कहा जाता। कैकेयी का स्पष्ट हृदय-परिवर्तन राम के भावी कार्यक्रम पर उचित ही प्रभाव डालता है। 'पुराने पेड़ की बातें' कॉलेजों के हिन्दी-विभागाध्यक्षों पर करारा व्यंग्य है। आजकल बड़े-बड़े पद जात-बिरादरी देख कर भरे जाते हैं— योग्यता के आधार पर नहीं। व्यंग्य में चित्रित प्रोफेसर सहज ही देखे जा सकते हैं। कविताओं में एक भी विशेष उल्लेख्य नहीं।

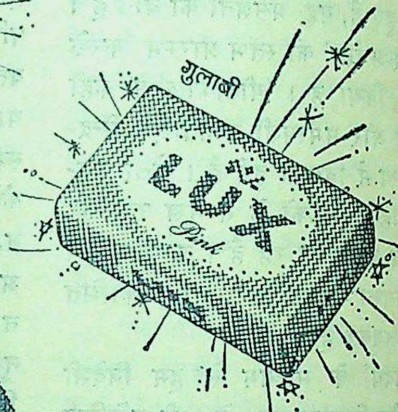
—डॉ० महेन्द्र भटनागर

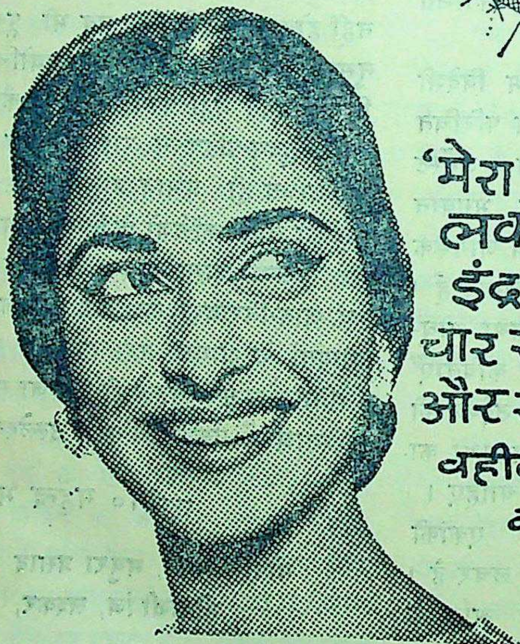
गोपाल भवन, मथुरा प्रसाद का बाड़ा
जीवाजीगंज, लश्कर, ग्वालियर











'मेरा मनपसंद
लक्स
इंद्रधनुष के
चार रंगों में
और सफ़ेद भी!'
वहीदा रेहमान
कहती हैं

LTS. 81-X29 HI

हिंदुस्तान लीवर का उत्पादन

कलिंग ट्यूब्स्

जल तथा गैस
वितरण के लिए



कलिंग ट्यूब्स् लिमिटेड
११, चित्तरंजन एवेन्यू, कलकत्ता-१२
कारखाना : डाकखाना चौद्वार, कटक (उड़ीसा)



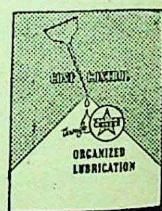
कलपुर्जों और रुपयों को मत फेंकिए...

हमलोग जानते हैं, यह असम्भव-सा प्रतीत होता है, किन्तु यह है पूर्णतः सत्य। बहुत से कठिनाई से बदले जाने वाले बहुमूल्य कलपुर्जों को इसलिये फेंक दिया जाता है क्योंकि वे गलत लुब्रिकेशन के कारण बर्बाद हो जाते हैं।

मशीनरी के बन्द हो जाने का मतलब होता है उत्पादन, समय एवं रुपये की क्षति। इसलिये कीमती मशीनरी के संरक्षण और कार्यक्षमता को बनाये रखने के लिए सही ढंग से लुब्रिकेशन अत्यन्त आवश्यक है। कम खर्च पर अधिक उत्पादन के लिए सुनियोजित लुब्रिकेशन जरूरी है।

आपके चाहते ही हम आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं--अपने काल्टेक्स लुब्रिकेशन इन्जीनियर को बुलाइये--और अपने यन्त्र के लिए सही लुब्रिकेशन कार्यक्रम तैयार करा लीजिये। आपके कलपुर्जों और रुपये बचाने में हमें सहयोग करने का मौका दीजिये।

कम्पनी के कार्याधिकारी अपने समीप के काल्टेक्स आफिस को अपने कार्यालय के लेटरहेड पर पत्र लिख कर इस पुस्तिका की एक प्रति मुफ्त प्राप्त कर सकते हैं।





PLANNED LUBRICATION—A VITAL FACTOR IN COST CONTROL

भारतीय ज्ञानपीठ के नये प्रकाशन

हिन्दी नवलेखन ४)
रामस्वरूप चतुर्वेदी
हिन्दी में अपने विषय की सर्वथा पहली पुस्तक।

सूने अँगन रस बरसै ३)
लक्ष्मीनारायण लाल
लेखक की चुनी हुई कहानियों का संग्रह जो आपको रस-विभोर कर देगा।

रूपाम्बरा १२)
सम्पादक : अज्ञेय
पिछले सौ वर्षों में प्रसूत हिन्दी के प्रकृति-काव्य का प्रतिनिधि संकलन।

तीसरा सप्तक ५)
सम्पादक : अज्ञेय
तार सप्तक और दूसरा सप्तक की परम्परा में अज्ञेय द्वारा सम्पादित नया कविता संकलन।

कनुप्रिया ३)
धर्मवीर भारती
अत्यन्त मधुर और भावपूर्ण काव्य-रूपक। भारती की प्रतिभा का नवीनतम चमत्कार।

सात गीत वर्ष ३)
धर्मवीर भारती
नवीन कविताओं का दमकता हुआ, महकता हुआ संकलन।

कागज़ की किश्तियाँ २॥)
लक्ष्मीचन्द्र जैन
प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य के अनेक पक्षों तथा आधुनिक जीवन की रंग-विरंगी विविधताओं का मोहक शैली में चित्रण।

देशान्तर १२)
धर्मवीर भारती
इक्कीस पाश्चात्य देशों की आधुनिक कविताओं का अनूठा काव्य-संग्रह।

ग्यारह सपनों का देश ४)
सम्पादक : लक्ष्मीचन्द्र जैन
'ज्ञानोदय' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हिन्दी का बहु-चर्चित सहयोगी उपन्यास।

अरी ओ करुणा प्रभामय ४)
अज्ञेय
१९५६ से १९५८ तक की कविताओं का भव्य संकलन।

दीप जले शंख बजे ३)
कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर
लघुता के अणु में महत्ता के विराट का प्रदर्शन करनेवाले प्रकाश तथा जागरण से पूर्ण पच्चीस संस्मरण।

गुनाहों का देवता ५)
धर्मवीर भारती
मध्यमवर्गीय जीवन की अत्यंत मार्मिक कथा। भारती की लोकप्रिय रचना।

पत्थर का लैम्प-पोस्ट ३)
शरद देवड़ा
लेखक की चुनी हुई बारह गद्य रचनाएँ, बारह राजस्थानी विरह चित्र और बारह लम्बी कविताएँ।

आवाज़ तेरो है ३)

राजेन्द्र यादव

दुरूहता एवं अस्पष्टता से सर्वथा मुक्त और निर्भ्रान्ति सामाजिक चेतना का निर्भीक वक्तव्य ।

ज्ञानगंगा (भाग २) ६)

नारायण प्रसाद जैन

विश्व की अनेक भाषाओं से महत्त्वपूर्ण सूक्तियों का संग्रह ।

वाणी ४)

सुमित्रा नन्दन पन्त

वाणी में पन्तजी के कवि का व्यक्तित्व अधिक प्रौढ़, परिणत तथा हृदयस्पर्शी होकर निखरा है ।

सौवर्ण २॥)

सुमित्रा नन्दन पन्त

मानव जाति के विगत सांस्कृतिक संचय का, जिसमें विकास अपेक्षित है, प्रतीकात्मक रूप से दिग्दर्शन ।

लेखनी बेला ३)

वीरेन्द्र मिश्र

गीतों का संकलन, जिनमें विभिन्न जीवनानुभूतियाँ और गहरी संवेदनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं ।

शाइरी के नये दौर [भाग १]

शाइरे-इन्क़िलाब 'जोश' मलीहाबादी की आत्म-विभोर कर देनेवाली नज़में और रूबाइयात, जोश का परिचय एवं उनकी शाइरी पर विवेचन ।

[भाग २]

वर्तमानयुगीन शाइर आनन्दनारायण मुल्ला, रघुपति सहाय फ़िराक़, विश्वेश्वर प्रसाद 'मुनव्वर', गोपीनाथ अम्न, हरीश्चन्द्र अख़्तर, हफ़ीज़ जालंधरी का जीवन-परिचय एवं चुने हुए कलाम ।

[भाग ३]

सागर निज़ामी के सर्वप्रिय कलाम तथा परिचय ।

[भाग ४]

अख़्तर शीरानी, अबुल हमीद अदम तथा अहसान दानिश के कलाम तथा परिचय ।

प्रत्येक भाग का मूल्य तीन रुपये

शाइरी के नये मोड़ [भाग १]

१९४६ से मार्च १९५८ तक की नवीन शाइरी की गतिविधि का अध्ययन।

पृष्ठ २७२ मूल्य ३.००

[भाग २]

१९३५ से १९५८ तक की शाइरी पर एक नज़र तथा चुने हुए शाइर अर्श मलसियानी, जगन्नाथ आज़ाद, गोपाल मित्तल, अहमद नदीम कासिमी, अख़्तर अन्सारी, रईस अमरोहवी के फड़कते हुए कलाम तथा जीवन-परिचय ।

सचित्र मूल्य ३.००

बना रहे बनारस

विश्वनाथ मुखर्जी

बनारस के गौरवमय सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और धार्मिक जीवन की जानकारी देने वाला अधिकारी ग्रन्थ।

पृष्ठ १८८ मूल्य २.५०

पार उतरि कहँ जइहौ

(यात्रा संस्मरण)

प्रभाकर द्विवेदी

इस पुस्तक का प्रकाशन हिन्दी के यात्रा-साहित्य में एक नये क्षितिज का उद्घाटन है ।

मूल्य ३.००

शतरंज के मोहरे ६)

अमृतलाल नागर

सवा डेढ़ सौ वर्ष पहले की अवध की नवाबी और ईस्ट इंडिया कम्पनी की नीति में उत्पन्न गदर की पृष्ठभूमि पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास।

कालिदास के सुभाषित ५)

भगवतशरण उपाध्याय

भारतीय भाषाओं में महाकवि कालिदास की सूक्तियों की विशेष व्याख्या करने वाली पहली पुस्तक।

कहानी कैसे बनी २॥)

कर्तारसिंह दुग्गल

रेडियो के मँजे हुए रूपक-लेखक श्री दुग्गल के आठ एकांकी नाटकों का संग्रह।

अंगद का पाँव २॥)

श्रीलाल शुक्ल

हिन्दी में शिष्ट और उच्चस्तर के व्यंग्यात्मक निबन्धों के ख्यातिप्राप्त लेखक श्रीलाल शुक्ल के निबन्धों का प्रथम संग्रह।

मुर्ग छाप हीरो २)

केशवचन्द्र वर्मा

हास्यरस की कहानियों एवं लेखों का अनुपम संग्रह।

शह और मात ४)

राजेन्द्र यादव

नये लेखकों में जीवन के सत्य और दर्शन को समझने का सर्वाधिक निष्ठावान प्रयत्न राजेन्द्र यादव ने किया है। यह उनका चौथा उपन्यास है।

काठ की घंटियाँ ७)

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

अज्ञेय द्वारा सम्पादित इस ग्रन्थ में बीस कहानियाँ, इकहत्तर कविताएँ तथा एक लघु उपन्यास संग्रहीत है।

जनम क़ैद २॥)

गिरिजाकुमार माथुर

सफल और अभिनय योग्य सात एकांकियों का अमूल्य संग्रह।

वृन्त और विकास २॥)

शान्तिप्रिय द्विवेदी

वृन्त और विकास की लेखनशैली और विचारधारा पूर्णतः रचनात्मक है। राजनीति, समाज, साहित्य, संस्कृति, जीवन की सभी दिशाओं के छोटे-बड़े कृतियों के प्रयत्नों का इसमें सर्वेक्षण और संयोजन किया गया है।

मीर ६)

रामनाथ सुमन

श्रीवृन्दावन लाल वर्मा के शब्दों में "प्रस्तुत पुस्तक विद्वत्तापूर्ण और साथ ही मनोरंजक, बहुत मनोरंजक भी है। न केवल मीर की मीरता निखर गयी है, वरन् उस युग का समूचा चित्र ही आँखों के सामने आ जाता है।"

सीढ़ियों पर धूप में ५)

रघुवीर सहाय

रघुवीर सहाय आपके जाने-माने लेखक हैं। प्रस्तुत संग्रह में अज्ञेय द्वारा सम्पादित लेखक की प्रतिनिधि कविताएँ, निबन्ध और कहानियाँ संकलित हैं।

ठूँठा आम २)

भगवतशरण उपाध्याय

भावपूर्ण रचनाएँ।

सुन्दर रस १॥)

सूखा सरोवर २)

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के दो नाटक

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल एक बड़े ही जागरूक नाटककार हैं, जिनके नाट्य-लेखन के पीछे रंगमंच की व्यावहारिक अनुभूति उनकी नाटचकलागत धर्मिताओं को अदम्य बल देती है, ये दोनों नाटक इस सत्य के सफलतम उदाहरण हैं।

कुछ फ़ीचर कुछ एकांकी ३॥)

भगवतशरण उपाध्याय

जिस अनुभूति, भाव और भाषा की यहाँ एकत्र परिणति हुई है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

भूमिजा १॥)

सर्वदानन्द

दो अंकों के इस नाटक को दो सारगर्भ दृश्यों में प्रस्तुत किया गया है।

अनुक्षण ३)

प्रभाकर माचवे

१९३३ से १९५८ के बीच लिखी हजारों पंक्तियों से यह संकलन तैयार किया गया है।

मानव मूल्य और साहित्य २॥)

धर्मवीर भारती

प्रस्तुत पुस्तक में तीन खण्ड हैं। पहले में मानवीय तत्त्व का विघटन, दूसरे में नयी मर्यादाओं का उदय और तीसरे में विविध सन्दर्भों में नये मूल्यों का दिग्दर्शन प्रस्तुत किया गया है।

सांस्कृतिक निबन्ध ३)

भगवतशरण उपाध्याय

अव्यस्त क्षणों में ये निबन्ध पाठक के व्यापक ज्ञान और मनोरंजन के साधन होंगे।

सागर की लहरों पर ४)

भगवतशरण उपाध्याय

डॉ० उपाध्याय द्वारा विदेश यात्रा का सरस मनोहर वर्णन।

एक परछाईं : दो दायरे ३)

गुलाबदास ब्रोकर

ब्रोकरजी की सुन्दरतम पन्द्रह कहानियों का पहला हिन्दी अनुवाद।

माखनलाल चतुर्वेदी-जीवनी ६)

बरुआ

प्रस्तुत कृति श्री माखनलाल चतुर्वेदी के शैशव व कैशोर काल की जीवनी प्रस्तुत करती है।

आत्मनेपद ४)

'अज्ञेय'

समकालीन साहित्यकार की स्थिति, समस्याओं और सम्भावनाओं पर विशेष रूप से विचार।

राजसी २॥)

देवेशदास आई० सी० एस०

मरुभूमि राजस्थान की पृष्ठभूमि पर ऐतिहासिक उपन्यास।

ग़ालिब ८)

ले० रामनाथ 'सुमन'

'सुमन' जी ने प्रस्तुत ग्रन्थ में इस महाकवि की रहस्य में छुपी ऊँचाइयों को अपनी परख प्रतिभा से पूरी तौर पर अफ़शाँ कर दिया है।

कहानियां

गहरे पानी पैठ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२।।)
जिन खोजा तिन पाइयां	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२।।)
नये बादल	मोहन राकेश	२।।)
आकाश के तारे धरती के फूल	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	२)
खेल खिलौने	राजेन्द्र यादव	२)
अतीत के कम्पन	आनन्दप्रकाश जैन	३)
काल के पंख	आनन्दप्रकाश जैन	३)
जय दोल	अज्ञेय	३)
नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३)
मेरे कथागुरु का कहना है	रावी	३)
हरियाणा लोकमंच की कहानियां	राजाराम शास्त्री	३)
अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२।।)
कर्मनाशा की हार	डॉ० शिव प्रसाद सिंह	३)

उपन्यास

मुक्तिदूत	वीरेन्द्रकुमार एम० ए०	५)
तीसरा नेत्र	आनन्दप्रकाश जैन	२।।)
रक्तराग	देवेशदास आई० सी० एस०	३)

इतिहास

हिंदी-जैन-साहित्य-परिशीलन (भाग १-२)	नेमिचन्द्र शास्त्री	५)

एकांकी : नाटक

रेडियो नाट्य शिल्प	सिद्धनाथ कुमार	२।।)
तरकश के तीर	श्रीकृष्ण	३)
चेखव के तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४)
बारह एकांकी	विष्णु प्रभाकर	३।।)

संस्मरण

जैन जागरण के अग्रदूत	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

राजनीति

एशिया की राजनीति	परदेशी	६)

ललित निबन्ध : आलोचनाएं

जिन्दगी मुस्करायी	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४)
गरीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	१)
हिन्दू विवाह में कन्यादान का स्थान	सम्पूर्णानन्द	१)

दर्शन

भारतीय विचारधारा	मधुकर एम० ए०	२)

ललित-निबन्ध, आलोचनादि

बाजे पायलिया के घुंघरू	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४)
माटी हो गयी सोना	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	२)
शरत् के नारी पात्र	रामस्वरूप चतुर्वेदी	४॥)
क्या मैं अन्दर आ सकता हूं ?	रावी	२॥)
संस्कृत साहित्य में आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३)
वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	२॥)

ज्योतिष

भारतीय ज्योतिष	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)

आध्यात्मिक

वैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	६)

भाषा विज्ञान

संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन	भोलाशंकर व्यास	५)

पत्र-संकलन

द्विवेदी पत्रावली	बैजनाथ सिंह विनोद	२॥)

संगीत, प्रसाधन

ध्वनि और संगीत	ललित किशोर सिंह	४)
प्राचीन भारत के प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३॥)

अन्य सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

कविताएँ

मेरे बापू	हुकुमचन्द्र बुखारिया	२॥)
पंच प्रदीप	शान्ति एम० ए०	२)

सूक्तियां

ज्ञानगंगा (भाग १)	नारायणप्रसाद जैन	६)
शरत की सूक्तियां	रामप्रकाश जैन	२)

उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

उर्दू शायरी

१—शेरो शाइरी	अयोध्या प्रसाद गोयलीय	८)
२—शेरो सुख़न (पाँच भाग)	अयोध्या प्रसाद गोयलीय	२०)

कविता

वर्द्धमान (महाकाव्य)	अनूप शर्मा	६)
मिलन-यामिनी	बच्चन	४)
धूप के धान	गिरिजा कुमार माथुर	३)

कहानियाँ

कुछ मोती कुछ सीप	अयोध्या प्रसाद गोयलीय	२॥)
संघर्ष के बाद	विष्णु प्रभाकर	३)
पहला कहानीकार	रावी	२॥)
मोतियों वाले	कर्तारसिंह दुग्गल	२॥)

उपन्यास

संस्कारों की राह	राधा कृष्ण प्रसाद	२॥)
शतरंज के मोहरे	अमृतलाल नागर	६)

इतिहास

खण्डहरों का वैभव	मुनि कान्ति सागर	६)
खोज की पगडंडियाँ	मुनि कान्ति सागर	४)
चौलुक्य कुमारपाल	लक्ष्मीशंकर व्यास	४)
कालिदास का भारत (भाग १—२)	डॉ० भगवत शरण उपाध्याय	८)

एकांकी : नाटक

जनम क़ैद	गिरिजा कुमार माथुर	२॥)
पचपन का फेर	विमला लूथरा	३)
रजत रश्मि	डॉ० रामकुमार वर्मा	२॥)
और खाई बढ़ती गयी	भारतभूषण अग्रवाल	२॥)

संस्मरण : रेखाचित्र

हमारे आराध्य	बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
संस्मरण	बनारसीदास चतुर्वेदी	३)
रेखाचित्र	बनारसीदास चतुर्वेदी	४)

सांस्कृतिक प्रकाशन

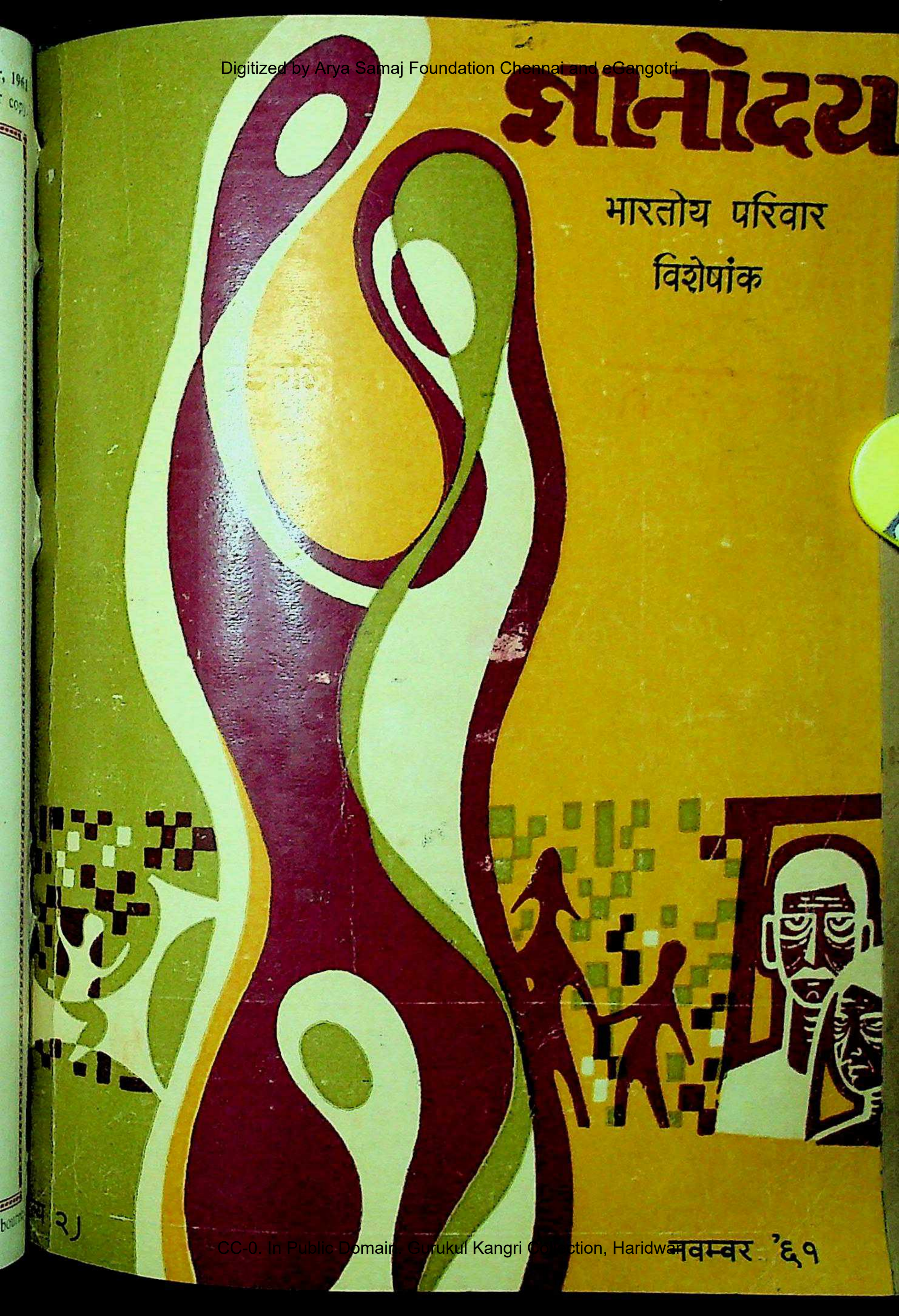
१ जैन-शासन (जैनधर्म का परिचय तथा विवेचन प्रस्तुत करनेवाली पुस्तक) ३)
२ कुन्दकुन्दाचार्य के तीन रत्न (आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रंथों का संक्षिप्त सार) २)
३ धर्मशर्माभ्युदय (पन्द्रहवें तीर्थंकर धर्मनाथ का चरित) ३)
४ आधुनिक जैन कवि (वर्तमान जैन कवियों का परिचय एवं संकलन) ३।।।)
५ हिन्दी-जैन-साहित्य का संक्षिप्त इतिहास २।।।=)
६ महाबन्ध —भाग १,२,३,४,५,६,७ (कर्म सिद्धान्त का महान ग्रंथ) ७८)
७ सर्वार्थसिद्धि (विस्तृत प्रस्तावना और हिन्दी अनुवाद सहित) १२)
८ तत्त्वार्थराजवार्तिक —भाग १, २, (संशोधित और हिन्दी-सार सहित) २४)
९ तत्त्वार्थ वृत्ति (हिन्दी सार और विस्तृत प्रस्तावना सहित) १६)
१० समय-सार —अंग्रेजी (आध्यात्मिक ग्रंथ) ८)
११ मदन पराजय (जिनदेव द्वारा काम-पराजय का सुन्दर सरस रूपक) ८)
१२ न्यायविनिश्चय विवरण —भाग १, २ (जैन दर्शन) ३०)
१३ आदिपुराण —भाग १, २ (भगवान् ऋषभदेव का पुण्य चरित) १०)
१४ उत्तरपुराण (तेईस तीर्थंकरों का चरित) १०)
१५ वसुनन्दि-श्रावकाचार (श्रावकाचारों का संग्रह : हिन्दी अनुवाद सहित) ५)
१६ जिनसहस्र नाम (भगवान् के १००८ नामों का अर्थ : हिन्दी अनुवाद सहित) ४)
१७ केवलज्ञानप्रश्नचूड़ामणि (ज्योतिष ग्रन्थ) ४)
१८ करलक्खण (सामुद्रिक शास्त्र) हस्तरेखा विज्ञान का अपूर्व प्राचीन ग्रंथ ।।।)
१९ नाममाला सभाष्य (कोश) ३।।)
२० सभाष्य रत्न-मंजूषा (छन्दशास्त्र) २)
२१ कन्नड़ प्रांतीय ताड़पत्रीय ग्रन्थ-सूची १३)
२२ पुराणसार संग्रह —भाग १, २ (छह तीर्थंकरों का जीवन-चरित्र) ४)
२३ जातकट्ठ कथा (बौद्धकथा-साहित्य) ६)
२४ थिरुकुरल (अंग्रेजी प्रस्तावना सहित तामिल भाषा का पंचम वेद) ५)
२५ व्रततिथि-निर्णय (सैकड़ों व्रतों के विधि-विधानों एवं उनकी
तिथि निर्णय का विवेचन) ३)
२६ जैनेन्द्र महावृत्ति (व्याकरण शास्त्र का महत्वपूर्ण ग्रंथ) १५)
२७ मंगल-मंत्र णमोकार : एक अनुचिन्तन २)
२८ पद्मपुराण (भाग १-२-३) ३०)
२९ जीवधर चम्पू (संस्कृत हिन्दी टीका सहित) ८)
३० जैन धर्मामृत ३)

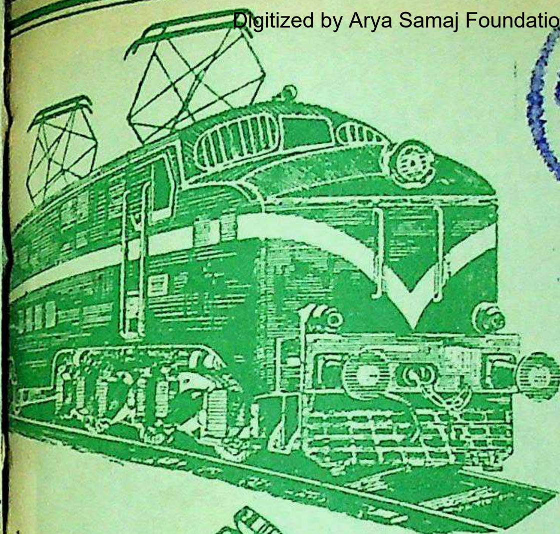
भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गाकुण्ड रोड, वाराणसी-५

GYANODAY, October, 1961
Price Annual Rs. 10|- per copy Re. 1|- for abroad postage extra 18 nP. per copy

Licensed to post without prepayment of postage. REGD. No. C. 4123

Published by Shri Munishwarlal for Bhartiya Jnanpith Calcutta from 18-A, Brabourne Road, Calcutta-1 and Printed by him at Binani Printers Private Ltd., 38, Strand Road, Calcutta-1

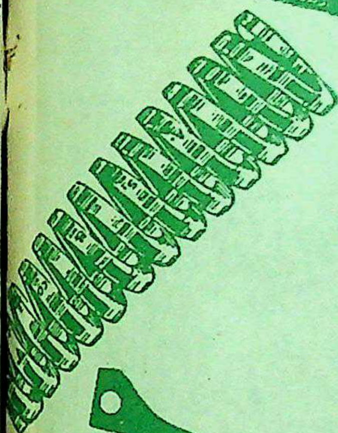

ज्ञानोदय
भारतीय परिवार
विशेषांक
२१
नवम्बर '६१

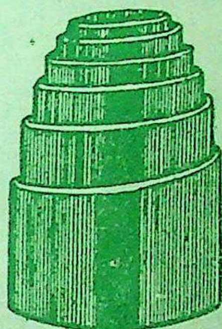


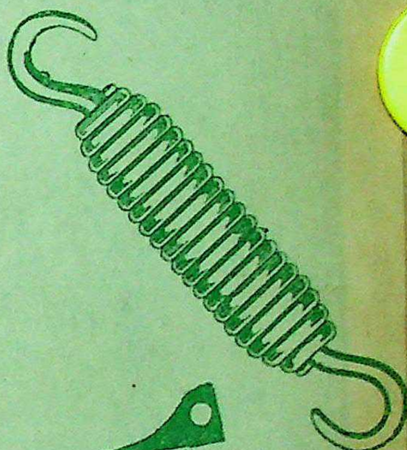


SPRINGS & SPRING WASHERS

Factory at :—
15/16, MUSALMAN PARA LANE,
(Off Belilious Road)
HOWRAH.









...ISTS OF :
...GRADE STEEL
... FLAT
...HEXAGONAL
..., BRASS, PHOS.
...ZE, NICKEL
...ME, HOTDIE
...LESS AND HIGH
...D STEEL ETC

TELEGRAM : "BRON SPRING"
PHONE OFFICE 22-7980.
PHONE WORKS 66-3310.

MANUFACTURERS OF...
SPRINGS & SPRIN... WASHERS, TENSIO... COMPRESSION, TO... SION, SOFA, FLA... LAMINATED, C. ... PISTON RING... VOLUTE, BUFFE... COMBS, MILLING ET...

...SIA SPRING MFG. C...

(REGISTERED ORIGINAL FIRM)

ENGINEERS & SPRING MANUFACTURERS.

For Quality

SACKING CLOTH
HESSIAN CLOTH
HESSIAN BAGS
TWINE
&
ALL TYPES OF
GUNNY.

Contact :—

NATIONAL COMPANY LIMITED

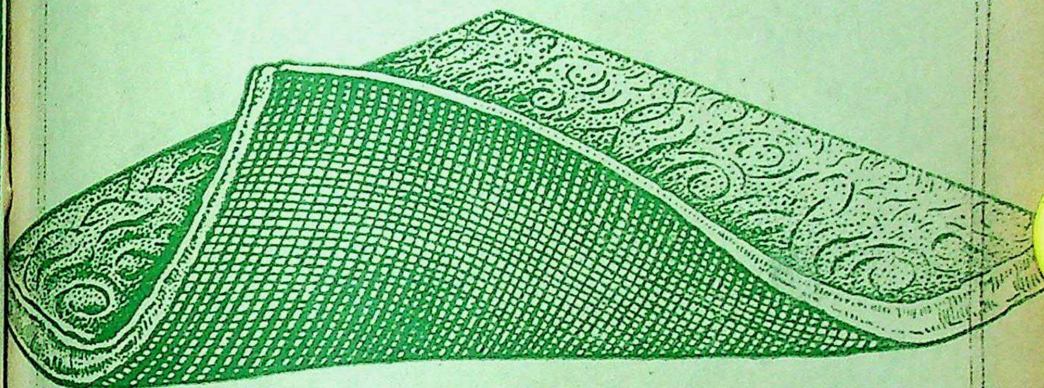


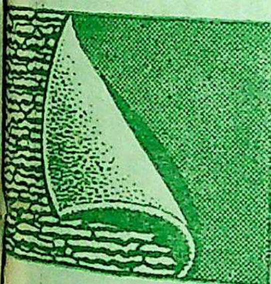
18-A, BRABOURNE ROAD,
CALCUTTA-1.
Phone : 22—7861-2

Carpet Backing Cloth



for durable tufting !







The Seal of Individuality is unmistakable in every sq. inch of Carpet Backing Cloth, manufactured by The New Central Jute Mills, Calcutta, India.
Of fine texture and extremely durable— it makes an ideal Backing for whatever tufting, from the bed room to the drawing room.

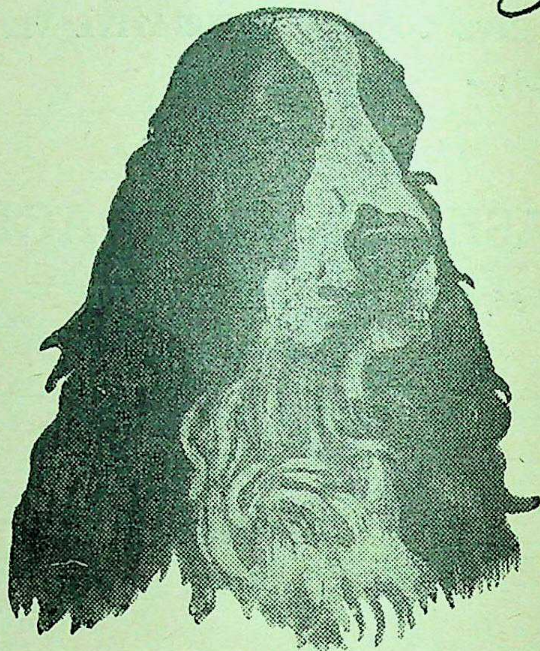
Available in widths from 104" to 240"

Manufactured by

THE NEW CENTRAL JUTE MILLS CO. LTD.,

11, Clive Row, Calcutta-1

The Best in Dogs...



THE BLACK AND WHITE COCKER DOG
"CHAMPION DOMINO OF IDE"
(K.C S.B 954/AK)

*...the **BEST** in travel*

Everett Travel Service

EVERETT STEAMSHIP CORPORATION

(INCORPORATED IN THE PHILIPPINES)

GREAT EASTERN HOTEL ARCADE, CALCUTTA-1
Phone 23-6651 (3 lines) Grams : TRAVERETT

E.T.S/EAA.

RING IN TO RING OUT

Darkness has no positive existence in itself. It is simply the lack of light. Just so, ignorance is simply the lack of knowledge and evil is simply the lack of good. And just as the only way to get rid of darkness is to bring a light into it, whether by switching on a lamp or opening a window, so the only way to remove evil from the world's thinking and eliminate the ignorance that promotes it, is to bring more good thought and spread more spiritual knowledge in the world.

PAUL BRUNTON




LUX
Pink
LUX
Green
LUX
Blue
LUX
Yellow

1. **Belts**
   (a) Rubber Transmission
   (b) Conveyor Beltings for Heavy Materials
   (c) Conveyor Belt for Tea Estates
2. **Solid Rubber Sheets**
   (a) H. P. Steam Lotus
   (b) Elephant
   (c) Hockey Brand
3. Acid Alkaline proof Rubber Sheets
4. Electric Rubber Mats as per B. S. S.
5. **Insertions Sheets,** From 1/32″ to 1″ Thick
6. **Hoses**
   (a) Water Suction & Delivery Hoses as per I. S. D. Specification
   (b) Pneumatic and Welding Hoses
   (c) Steam, Sand Blast & Acid Alkalic Hoses
7. **Ebonite Sheets**
8. **Sponge Rubber Sheets**
9. **I. R. Tubings**
10. **Electrical Gloves** Tested to 10000, 15000 & 20000 volts
11. **Water-proof Cloths, Coats & other accessories**
12. **Hospital Sheets.**
    (a) H. S. All Rubber Sheeting
    (b) Mackintosh Sheets
13. **Shoe Sole & Heels.**
14. **Rexin Cloth.**

And various other mould Rubber Goods
Please Contact

The East India Rubber Works Private Ltd.

161, Chittaranjan Avenue, Calcutta-7.

Telephone : Sales Office 22-1343
H. O. 34-2252

Telegram : SITAPHAL

भारतीय परिवार विशेषांक

अनुक्रम

१. भारतीय परिवार विशेषांक : सम्पादकीय ३
२. प्रागैतिहासिक चित्रों में भारतीय परिवार : डॉ० जगदीश गुप्त ७
३. वैदिक परिवार की झाँकी : डॉ० भगवत शरण उपाध्याय १७
४. परिवार के प्रतीक—ये सार्थक शब्द : डॉ० भोलानाथ तिवारी २६
५. कमलगन्धा : डॉ० सत्यव्रत सिन्हा ३७
६. रामायण काल में परिवार : विष्णु प्रभाकर ४५
७. न स्त्री दुष्यति जारेण : हर्षनारायण ५४
८. मुक्ति की ओर उन्मुख : प्रेम ब्रह्मचारी ६३
९. सत्ता का त्याग : मेघराज मकुल ६६
१०. मुग़ल परिवार की महिला : डॉ० सैयद अतहर अब्बास रिज़वी ७३
११. घर से पागलखाने तक : आनन्द प्रकाश जैन ८३
१२. विवाह की मुसीबतें : रामधारी सिंह दिनकर ६५
१३. स्वर्ग के खण्डहर : विनोद रस्तोगी १०७
१४. आँचल में है दूध और आँखों में पानी : डॉ० रवीन्द्र भ्रमर १२१
१५. परिवार-नियोजन—एक परिचर्चा : भँवरमल सिंघी १२५
१६. एक त्रिकोण : सत्येन्द्र शरत् १३६
१७. हम तो बाबुल तेरे पिंजड़े की चिड़िया : विष्णुकान्त शास्त्री १४४
१८. मोहिनी-कथा : डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल १५४
१९. भरतनाट्यम—फेन्टेसी : सिन्थिसिस : राजकमल चौधरी १६६
२०. गाँव की पारिवारिक तस्वीरें : भगवान सिंह १७३
२१. ये छोटे-छोटे क्षण : शशिप्रभा शास्त्री १७६
२२. परिवार—पुराना बनाम नया : हंसराज रहबर १८४
२३. जहाँ आज भी माताएँ राज करती हैं : पद्मा उपाध्याय १८६
२४. सम्बन्धों का असन्तुलन : महावीर अधिकारी १६३
२५. मार्क्सवादी दर्शन में परिवार : ओमप्रकाश आर्य १६८

२६. **देशी परिवार में विदेशी बहू** : इन्दु जैन २०३
२७. **परिवार—एक नये आयाम में** : राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित' २०८
२८. **हरियाणा लोक-गीतों में जीजा-साली** : राजाराम शास्त्री २१३
२९. **विवाह के अवसर पर बराती और घराती** : श्रीलाल शुक्ल २१८
३०. **विवाह-विच्छेद—मनु से अम्बेडकर तक** : सूर्य कुमार तिवारी २२१
३१. **संयुक्त परिवार—एक मनोवैज्ञानिक दृष्टि** : दयानन्द वर्मा २२६
३२. **मुर्दा चीज़ों की ज़बानें** : रमेश वक्षी २३३
३३. **गाँव में खिले साँवरे फूल** : प्रभाकर द्विवेदी २३७
३४. **होले-होले नच कुड़िये** : देवेन्द्र इस्सर २४०
३५. **प्रकृति के ये परिवार-विहीन विद्रूप** : कुमुद नागर २४२
३६. **भारतीय परिवार और पर्यटकों का सम्मेलन** : लक्ष्मीशंकर व्यास २४?
३७. **अतिथि—प्रश्न भी, उत्तर भी** : ठाकुर प्रसाद सिंह २४६
३८. **यम-यमी, फूलमती और सिस्टर** : डॉ० शिवप्रसाद सिंह २५५
३९. **यह घर है या बटेरखाना** : सन्तोषकुमार जैन २६०
४०. **खान्दानी तस्वीर** : हिजाब इमतियाज़ अली २६३
४१. **सामाजिक और मनोवैज्ञानिक आयाम** : डॉ० रमेश कुन्तल मेघ २६६
४२. **बदलती पारिवारिक प्रथाएँ** : हरिशंकर परसाई २८२
४३. **भारतीय परिवार—फ़िल्मों के परिप्रेक्ष्य में** : शशिबंधुभ २८६
४४. **भविष्य का वातायन** : भिक्खु २९१



सम्पादक

लक्ष्मीचन्द्र जैन : शरद देवड़ा

संचालक

भारतीय ज्ञानपीठ, कलकत्ता

कार्यालय

१८ए, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता-१

सोल सेलिंग एजेंट्स : बेनेट, कोलमन एण्ड कम्पनी लि०, बम्बई-१

भारतीय परिवार विशेषांक

विजयदशमी और दीपावलि के उपलक्ष में 'ज्ञानोदय' की यह भेंट—भारतीय परिवार विशेषांक—सादर-सप्रेम समर्पित है—

'ज्ञानोदय' के उन सहस्रों नियमित पाठक-पाठिकाओं को, जिनके कारण हम गर्व कर सकते हैं कि हिन्दी में प्रबुद्ध पाठकों का एक समर्थ वर्ग है, जो निरन्तर बढ़ रहा है;

उन गण्यमान्य लेखक-लेखिकाओं को जो 'ज्ञानोदय' को एक विशिष्ट स्तर देते हैं; और उन्हें जो 'ज्ञानोदय' के स्तर के अनुरूप सहयोग देकर हमें यह प्रमाणित करने का गौरव देते हैं कि हिन्दी में नयी प्रतिभाओं के उदय और विकास की प्रक्रिया क्षीण नहीं हो रही है, गति पकड़ रही है;

और, उन्हें जिनकी रोचक कथा इस अङ्क में कही गई है, अर्थात् वे सब वयोवृद्ध जन, प्रौढ़ व्यक्ति, युवक-युवतियाँ, किशोर वय बालक-बालिकाएँ और शिशु—अतीत, वर्तमान और अनागत—जो हमारे भारतीय परिवार के अंग के रूप में हमारे निजी संवेदन को विधि-बहुल रस, सामाजिक जीवन को चित्र-विचित्र रंग और राष्ट्रीय इतिहास को बहुमुखी आसङ्ग-प्रसङ्ग देते हैं।

इस विशेषांक के नियोजन में इस बात का प्रयत्न किया गया है कि एक ओर भारतीय परिवार के स्वरूप का दर्शन इतिहास के परिप्रेक्ष्य में प्राप्त हो जाये और दूसरी ओर हम परिवार के वर्तमान रूप के सन्दर्भ में आज की उन समस्याओं का परिचय पायें जिनके समाधान की खोज में हमारा युग तत्पर है। 'ज्ञानोदय' का प्रत्येक विशेषांक विषय-वस्तु की दृष्टि से युग-सापेक्ष्य रहा है। आधुनिकता की प्रकृति को परखने का प्रयत्न हो, या प्रणय के विविध आयामों को आँकने का; विज्ञान की अधुनातन उपलब्धियों के उजाले में जीवन की नयी परिकल्पनाओं का चित्रीकरण वांछित रहा हो या इतिहास के अँधेरे कक्षों में नयी चेतना के प्रकाश-प्रक्षेप द्वारा वर्तमान की गति-विधि को निरापद करने का; मुख्य उद्देश्य यही रहा है कि हम अपनी पीढ़ी को सोचने-विचारने की कुछ सामग्री और जीवन के विकास को प्रेरणा देने वाले



कुछ व्यावहारिक संकेत दे सकें। विविधता की माला में भारतीय परिवार का यह अध्ययन एक नया मनका है। शैली-शिल्प के प्रति यदि 'ज्ञानोदय' का कुछ आग्रह रहा है तो विशेषकर इसलिए कि कहीं ऐसा न हो कि नये कथ्य की महत्ता को कथन की परम्परागत शास्त्रीय पद्धति दुर्बोध बना दे।

भारतीय परिवार की किन पीढ़ियों ने ऐसा रोमांचक युग देखा था जैसा हम लोग देख रहे हैं? परिवार जिन इकाइयों से बनता है, उनकी संख्या का गणित इतना लम्बा कब था? कांग्रेस के मेनीफ़ेस्टो में शासन पंचवर्षीय योजनाओं की उपलब्धि में यह बात विशेष गर्व के साथ कही गई है कि भारतीय जनता की औसत आयु बढ़ रही है, महामारियों का प्रकोप कम हो रहा है, मृत्यु के आँकड़े घट रहे हैं। निःसन्देह गर्व की बात है; किन्तु जीवन का संघर्ष बढ़ रहा है, जीवन के अस्तित्व के प्रति आशंका बढ़ रही है, मध्य-वित्त व्यक्तियों की क्षमता से परे वस्तुओं के मूल्य बढ़ रहे हैं--और, आबादी बढ़ रही है, बढ़े जा रही है! देश के कष्टों का इसे प्रधान कारण बताया जा रहा है। 'दूधों नहाओ और पूतों फलो' की कामना जिन नारियों के लिए की जाती थी, उन्होंने कब सोचा था कि ऐसा युग आयेगा जब दूध स्तनों तक से चुक जायेगा और पूतों-लदी जीवन-डार को वरदान न माना जायेगा? परिवार की हरी-भरी बगिया को फलों की बहुतायत ने उजाड़ दिया। समय का कैसा निर्मम व्यंग है यह!

जनसंख्या की वृद्धि के बाद दूसरी बड़ी दुर्घटना भारतीय परिवार, और संसार के सभी देशों के परिवारों के साथ, यह घटी कि औद्योगिक क्रान्ति ने गाँव के रेले को शहरों की ओर ढकेल दिया और उखड़ा हुआ मनुष्य धरती से वंचित हो गया, समाज से वंचित हो गया, परिवार से वंचित हो गया। परिवार के बिना व्यक्ति असहाय, व्यक्ति के बिना परिवार दुखी। व्यक्ति और परिवार के बीच की खाई को पाटता है केवल पोस्टमैन, जो प्रति मास शहर के मनीऑर्डरों को गाँव में बाँट आता है। लेकिन कब तक? एक दिन आता है, जब मनीऑर्डर बन्द हो जाता है, क्योंकि टूटे हुए व्यक्ति का नया परिवार बढ़ रहा है और जीवन के नये मूल्य जन्म ले रहे हैं।

सब कुछ दुर्घटित ही नहीं हुआ। एक बहुत बड़ी शक्ति ने आकर पारिवारिक विशृङ्खलता की गली-गलाई कड़ियों को तोड़ फेंका है और ऐसी नयी सुनहरी जंजीर ढाली है जो नये परिवारों को नयी एकता में बाँध रही है। यह है विज्ञान की शक्ति और यह वह ज़ंजीर है जिसके घेरे में एक दिन समूचा समाज, समूचा देश और समूचे राष्ट्र आ जायेंगे। क्या हुआ यदि आज गाँव के लोग राजनीतिक चुनाव, जाति-भेद और वर्गों पर लड़ रहे हैं? हम यह भी तो देख रहे हैं कि शहरों में काम करने वाले व्यक्तियों का पारिवारिक दायरा जाति के बन्धनों का अतिक्रमण कर रहा है। हम यह भी तो देख रहे हैं कि शिक्षा संकुचित भेदभावों को विघटित कर रही है, मनोभावों को नयी दिशाएँ दे रही है। क्या हुआ यदि आज शर्मा, चटर्जी, मुदालियर, सिंह, मोहन्ती, शाह और गदकर अपनी-अपनी भाषाओं के लिए वाग्युद्ध कर रहे हैं? अपनी जिस सन्तान की नौकरियों और पदों के लिए वे चिन्तित होकर भाषा की बात करते हैं वे सन्तानें अपने नये सामाजिक परिवार के लिए, अपने नये शहरी

और अन्तर्राष्ट्रीय परिवार के लिए भाषाओं के नये माध्यम अपना रहे हैं।

दृष्टि का दूर-व्यापी यह नया क्षितिज है, जो रूप ले रहा है और जो उभर कर ऊपर उठेगा और जहाँ एक दिन मध्यान्ह का सूर्य बीचोंबीच दिपेगा। जब तक वह युग आता नहीं, तब तक हमें अपने गाँवों के उपेक्षित परिवारों, शहरों के पुराने विघटित परिवारों, समाज के नये मूल्यों के अनुरूप गठित होने वाले आधुनिक नागरिक परिवारों और वायुयानों में सफ़र करते हुए, रॉकेटों की यात्रा को उद्यत होते हुए अन्तर्राष्ट्रीय परिवारों से परिचित होना है, उनके सुख-दुख को आत्मसात् करना है, गिरतों को सहारा देना है कि वे साहस के साथ उठें और नये मानव परिवार के साथ कदम मिलाते हुए भविष्य की रोमांचक यात्रा में सहयोगी बनें!

हमारे विजयदशमी और दीपावलि के पर्वों की मङ्गलिकता, शुचिता और मोदमयता परिवार के सन्दर्भ में ही फूलती-फलती है। विश्वास है कि पर्व के इस अवसर पर भारतीय परिवारों को उनकी यह कथा रुचेगी और 'ज्ञानोदय' की यह भेंट सोल्लास स्वीकार्य होगी।

लेखकों को तत्पर सहयोग के लिए और सहकर्मियों को नेहपूर्ण निष्ठा के लिए धन्यवाद।

—लक्ष्मीचन्द्र जैन

लिफ्ट में घरेलू पुस्तकालय

नई दिल्ली-स्थित प्रधान मन्त्री के निवास-स्थान की लिफ्ट एक दिन आधे रास्ते में खराब हो गई। लिफ्ट के अन्दर इन्दिरा गान्धी थीं। काफी देर की भागदौड़ के बाद लिफ्ट ठीक हुई और इन्दिरा जी बाहर निकल पाईं। शाम को इन्दिरा जी ने यह किस्सा नेहरू जी को सुनाया। सारा किस्सा सुनने के बाद नेहरू जी ने कहा, "मैंने कई बार सोचा है कि इस सम्बन्ध में हमें कुछ करना अवश्य चाहिए,—हाँ, क्यों न पुस्तकों की एक छोटी-सी शैल्फ लिफ्ट के अन्दर रखवा दी जाए!"

—मनोहर जुनेजा

भारतीय परिवार विशेषाङ्क का परिशिष्टाङ्क

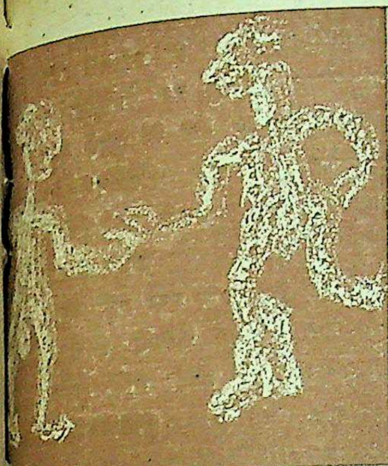
दिसम्बर १९६१

१. पञ्चपति का निर्वेदम् : **भिक्खु**
२. हरम की पारिवारिक छवियाँ : **अहमद सलीम**
३. राजपूती परिवार में नारी का मूल्य : **राजनाथ पाण्डेय**
४. रुचियों की भिन्नता : **कृष्णकिशोर श्रीवास्तव**
५. खण्डहरों का मर्सिया : **धनञ्जय वर्मा**
६. ज़हराब उगाता है मुझे : **राजकमल चौधरी**
७. विवाह-संस्थान—पारिवारिक कोश का एक पन्ना : **श्रीकृष्ण**
८. भारतीय विधवा—तब और अब : **गौरीशङ्कर गुप्त**
९. चिर-कालीन त्रिभुज—एक समस्या, एक समाधान : **रावी**
१०. ज्ञानोदय नहीं हुआ : **ज्योतिप्रकाश सक्सेना**
११. दो चिड़ियाँ—एक डाल पर : **जय सिंह**
१२. क्या मैं लौट जाऊँ ? : **कान्ति द्विवेदी**
१३. दीर्घायु—दूभर पल : **दशरथ पाण्डेय**
१४. तमिल साहित्य में परिवार : **सुमतीन्द्र**
१५. आधुनिक परिवार में अभिभावक का धर्म-संकट : **शिवसागर मिश्र**
१६. नयी घाटियाँ—नयी गूँजें : **ममता अग्रवाल**
१७. संयुक्त परिवार—नये प्रभाव, नया रूप : **हरिप्रकाश**
१८. शासक पति—शासित पत्नी : **राम गोपाल**
१९. परिवार का वातावरण—समस्याएँ और सुझाव : **शशिबंधुभ**
२०. नये परिवार में नयी पत्नी : **कमल आर्य**
२१. आकाशचारिणी : **देवेश दास**
२२. सुखद नीड़—हमारे ये घर : **रामेश्वर दयाल दुबे**
२३. परिवार—समय की लहरों पर : **मनमोहन सरल**

जैसा कि उक्त सूची से स्पष्ट है, भारतीय परिवार अंक का परिशिष्टाङ्क भी मूल विशेषाङ्क जैसा ही महत्त्वपूर्ण, रोचक और संग्रहणीय होगा। आप ज्ञानोदय कार्यालय को लिखकर समय रहते अपनी प्रति सुरक्षित करवा लें, अन्यथा निराश होना पड़ सकता है।

ज्ञानोदय कार्यालय

१८ए, ब्रेबोर्न रोड, कलकत्ता-१; वार्षिक मूल्य १०) : इस प्रति का १)



रेखाचित्र—१

पश्चिमोत्तरी सीमाप्रान्त में हरो-सिन्धु संगम के समीप स्थित भंडोरी नामक स्थान की एक शिला पर अंकित कर्षण-चित्र—'एक आदिम युग्म'।

(गार्डन द्वारा प्रकाशित छाया-चित्र से अनुकृत)

डॉ० जगदीश गुप्त

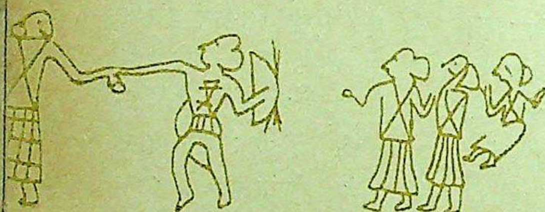
भारतीय आदि-मानव के परिवार एवं परिवेश की कथा को चित्रित करने वाले दुर्लभ चित्रों की अद्भुत वार्ता!

प्रागैतिहासिक चित्रों का अध्ययन अभी नितान्त प्रारम्भिक अवस्था में है। कॉकबर्न, कार्लाइल, सिल्वेराड, गॉर्डन आदि अँगरेजों ने विदेशी शासन-काल में, अन्यान्य क्षेत्रों में नियुक्त होते हुए भी, अपनी निजी रुचि से इस क्षेत्र में जो कुछ थोड़ा-बहुत कार्य किया है वही एक ऐसा आधार प्रस्तुत करता है जिसका सहारा लेकर नये शोधक आगे बढ़ सकते हैं। भारतीय विद्वानों में मुख्य रूप से रायबहादुर मनोरंजन घोष ने 'मेमॉयर्स ऑफ़ ऑर्कियॉलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया' के अन्तर्गत १९३२ ई० में एक मोनोग्राफ़ प्रकाशित किया; जिसमें उन्होंने सिंगनपुर, मिर्ज़ापुर और होशंगाबाद के अनेक शिलाश्रयों तथा उन पर अंकित चित्रों का विधिवत् विवरण प्रस्तुत किया। इस विवरण में बहुत से महत्त्वपूर्ण शिलाश्रय छूट गये हैं जैसे मिर्ज़ापुर क्षेत्र में सोनतटवर्ती कंडाकोट, बसौली तथा इन्हीं के समीप स्थित दूसरी लिखनिया। रौंप की शोध तो बहुत आगे चल कर हुई है। पँचमढ़ी क्षेत्र

प्रागैतिहासिक चित्रों में भारतीय परिवार

पूरा का पूरा समाविष्ट नहीं हो सका, क्योंकि उसका परिचय भी १९३६ ई० में 'इण्डियन आर्ट एण्ड लेटर्स' के अन्तर्गत डी० एच० गार्डन के लेख के प्रकाशन के पश्चात् ही प्राप्त हुआ। प्रागैतिहासिक चित्रों का अब तक सबसे अधिक व्यवस्थित विवरण गार्डन के नवप्रकाशित प्रसिद्ध ग्रंथ 'प्रिहिस्टॉरिक बैकग्राउण्ड ऑफ़ इण्डियन कल्चर' में मिलता है, परन्तु एक तो उसमें बहुत कम चित्र दिये गये हैं, दूसरे उनके काल-निर्णय में अत्यन्त पक्षपातपूर्ण मत व्यक्त किया है, और तीसरे अब, जब मैं स्वयं मिर्ज़ापुर, पँचमढ़ी और होशंगाबाद के शिलाश्रयों को देख चुका हूँ तो मुझे लगता है कि ऐसी अपार सामग्री अभी अछूती पड़ी है जिसकी ओर गार्डन महोदय का ध्यान तक नहीं गया। इमलीखोह जैसी सर्वथा नयी गुफा की उपलब्धि, जिसमें विविध कालों के शताधिक चित्र अंकित हैं, इस बात का एक प्रमाण है कि अभी प्रागैतिहासिक चित्रों की दिशा में बहुत-कुछ और उपलब्ध होना शेष है। होशंगाबाद के प्रमुख शिलाश्रय में चित्रण की अनेक तहों के नीचे एक नयी तह लक्षित हुई है जिसमें महामहिष अंकित है। वि० श्री० वाकणकर ने भोपाल और चम्बल घाटी-क्षेत्र में अनेक चित्रित शिलाश्रय खोज निकाले हैं। सागर विश्वविद्यालय के शोध-छात्र श्यामकुमार पाण्डे को सागर क्षेत्र में सर्वथा स्वतन्त्र शैली के कई शिला-चित्र प्राप्त हुए हैं। मुझे तो यही प्रतीत होता है कि गंभीरता पूर्वक जीवन की जिस दिशा में भी प्रवेश किया जाय, अनन्तता का बोध होना अनिवार्य और स्वाभाविक दोनों ही है।

सांस्कृतिक दृष्टि से, पुरातत्व की पाषाणास्त्र आदि अन्य प्राचीन सामग्री की अपेक्षा, प्रागैतिहासिक चित्र कहीं अधिक समग्रता एवं सजीवता के साथ मानव-जीवन के मूल स्वरूप को प्रत्यक्ष कराते हैं। लिपि ज्ञान से पूर्व मनुष्य ने अपनी भावाभिव्यक्ति के जो सृजनात्मक माध्यम अपनाये उनमें चित्र और मूर्ति अद्वितीय स्थान रखते हैं।



रेखाचित्र—२

जम्बू द्वीप (पंचमढ़ी) के शिलाश्रय नं. ४ में सफ़ेद पर लाल रेखाओं में अंकित वीर पुरुष द्वारा स्त्री-अपहरण का एक रोचक दृश्य! यह रेखाचित्र गार्डन की अनुकृति पर आधारित है परन्तु मूल गुफा-चित्र को देखने पर ज्ञात होता है कि पिछली तीनों स्त्री-आकृतियाँ, अनेक भद्दे आयताकार चिन्हों के बाद काफ़ी व्यवधान देकर अंकित हैं। शैली और विषय-सन्दर्भ की दृष्टि से अवश्य वे पृथक् न होकर चित्र का ही अंश प्रतीत होती हैं।



रेखाचित्र — ३

मिर्जापुर के कंडाकोट पहाड़ की दिशा में, सोनभद्र नदी के सैकड़ों फुट ऊँची कटान के ऊपर स्थित लिखनिया के अत्यन्त भव्य शिलाश्रय में अंकित 'माता और शिशु' के गेरुए चित्र की बाह्य रेखानुकृति। प्रथम बार अनुकृत। इस प्रकार का पारिवारिकता-सूचक आलेखन इस क्षेत्र के प्रागैतिहासिक चित्रों में बहुत कम प्राप्त होता है।

●

भाषा की अपेक्षा इनका रूप अधिक सार्वभौमिक, स्थायी और प्रत्यक्षकारी प्रतीत होता है। मूर्तियाँ भी प्रायः उतनी प्राचीन उपलब्ध नहीं होतीं जितने प्राचीन चित्र मिलते हैं, क्योंकि पाषाण-मूर्ति रचना के लिए धातु के उपकरण आवश्यक होते हैं और धातु-ज्ञान मानव-सभ्यता के इतिहास में बहुत बाद की वस्तु है। चित्र धातु-ज्ञान से सहस्रों वर्ष पूर्व तक के मिलते हैं। अफ्रीका, स्पेन और दक्षिणी फ्रांस के चित्रों का निर्माणकाल १०००० वर्ष से ३०००० वर्ष ई० पूर्व से भी अधिक निर्दिष्ट किया गया है। कुछ विद्वान् तो इसे ५०००० वर्ष तक अनुमानित करते हैं। आज विद्वानों की यह धारणा है कि मानव-विकास-क्रम समस्त भूमण्डल में प्राकृतिक परिस्थितियों का विभेद होते हुए भी प्रायः समानान्तर हुआ है। ऐसी दशा में गार्डन का समस्त भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रों को ई० सन् के १००० वर्ष इधर उधर रखना न केवल पक्षपातपूर्ण वरन् हास्यास्पद भी प्रतीत होता है। चित्रित गुफाओं एवं शिलाश्रयों से प्राप्त होने वाली प्रभूत प्रस्तरयुगीन सामग्री को काल-निर्णय के प्रसंग में गार्डन द्वारा सम्यक् महत्व नहीं दिया गया है। होशंगाबाद के शिलाश्रयों में हुए अभी के उत्खनन का परिणाम ज्ञात होने से भारतीय प्रागैतिहासिक चित्रों की प्राचीनता पर निश्चित प्रकाश पड़ेगा, ऐसी आशा की जाती है। जहाँ तक चित्रित विषयवस्तु का प्रश्न है उसका अध्ययन काल-निर्णय की विशेष अपेक्षा नहीं रखता, परन्तु विकास-क्रम निर्धारण एवं मूल्यांकन में वह अत्यन्त आवश्यक है।

भारतीय सांस्कृतिक जीवन के मूल उत्स की खोज में गुफाचित्रों तक जाना मुझे वैसा ही रहस्यमय, रमणीय और आह्लादक लगता रहा है जैसा कभी पिंडर नदी के मूल पिंडारी ग्लेशियर अथवा अलकनंदा के मूल वसुधारा तक जाना लगा था। प्रयत्नशीलता भी इसमें कहीं अधिक अपेक्षित होती है, क्योंकि मौज के लिए घूमने वाले टूरिस्टों की पहुँच इन क्षेत्रों तक नहीं होती,



रेखाचित्र—४

मान्टे रोजा (पंचमढ़ी) के किनारे वाले शिलाश्रय के ऊपरी भाग में सफेद रंग से अंकित झोपड़ी का एक दृश्य। बीच के खम्भे से बकरी बँधी हुई है। बाहर रासभ-वृषभ विराजमान हैं। झोपड़ी के इस ओर के खम्भे का निचला भाग हल जैसा प्रतीत होता है। पीछे कमर पर हाथ रखे एक स्त्री खड़ी है। नीचे की ओर अंकित खड़ी रेखाओं में कुछ पक्षियों के शीश जैसे लगते हैं पर सम्भवतः ये घर के सामने बने बाड़े के खूँटे ही हैं। झोपड़ी में एक ओर एक थैली जैसी टंगी है, दूसरी ओर पात्रों में कुछ और रखा हुआ है। ● गुफा - चित्रों में ऐसे दृश्य बहुत ही कम उपलब्ध होते हैं। यह चित्र पशु-पालन, गृह-निर्माण और कृषि-कार्य की पर्याप्त विकसित अवस्था के पारिवारिक जीवन का परिचय कराता है। (मूल से प्रथम बार अनुकृत।)

इसलिए यातायात के कोई साधन सुलभ नहीं रहते। शुद्ध पदयात्री बन कर बीहड़ वनों, घाटियों, खाइयों और कगारों तक जाना होता है। चित्रित गुफ़ाएँ और शिलाश्रय प्रायः ऐसे रम्य किन्तु गहन स्थानों में ही होते हैं जहाँ कोई न कोई नदी की धारा, झरना या अन्य जलस्रोत सुलभ हो। चित्रों की उपलब्धि से कम सुख उस वातावरण से नहीं मिलता जिसमें रह कर आदि-मानव ने इनका निर्माण किया होगा। यह विचार कि ऐसे स्थलों में कभी मानव-निवास रहा होगा अपने आप में अद्भुत रूप से रोमांचक लगने लगता है, और प्रत्यभिज्ञान के रूप में कल्पना सजीव होकर उन स्थितियों का अनुमान करने लगती है जो आदि-मानव के जीवन-संघर्ष में निरन्तर आती रहती होंगी।

यह विचित्र संयोग है कि भारतीय परिवार के एक अध्येता को भी यही प्रतीत हुआ कि पारिवारिक जीवन के मूल को खोजना मानो किसी नदी के हिमानी स्रोत (glacier) तक जाना है :—

'उद्गम सदैव अस्पष्ट और अनिश्चित होते हैं। जब हम नदी की धारा का उद्भव ढूँढ़ते हुए ऊपर चलते हैं तो अन्त में हमें किसी हिमानी या भूमि के भीतर से आने वाली धारा के पास रुक जाना पड़ता है। जब प्रत्यक्ष वस्तुओं की यह दशा है, तो शताब्दियों से चली आन वाली परिवार-प्रथा के उद्गम को निश्चित रूप से कैसे बताया जा सकता है। भगवती श्रुति के शब्दों में, ऐसे उद्गमों को निश्चय से कौन जानता है? कौन उन्हें

बता सकता है ? (को अद्धा वेद क इह प्रवोचत् १०।१२९।६)। इन पर रहस्य के अन्धकार का गहरा आवरण पड़ा है।'

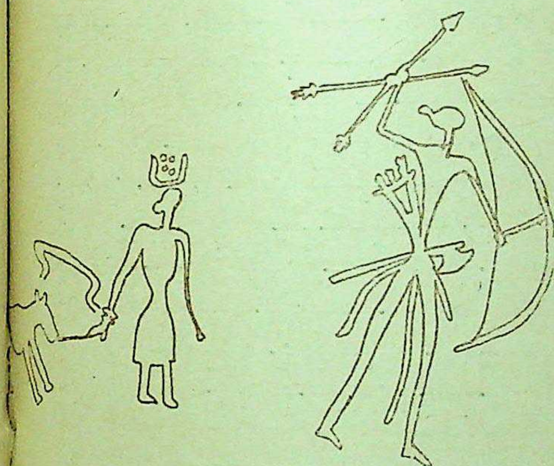
(—हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० २)

उद्धृत पंक्तियों के लेखक श्री हरिदत्त वेदालंकार ने परम्परागत वैदिक और पौराणिक समस्त महत्त्वपूर्ण साहित्य की छानबीन करने के बाद भी रहस्य के अंधकारमय आवरण की जिस गहराई को भेद नहीं पाया उसको मैं प्राचीन गुफा-चित्रों के प्रकाश में कुछ-कुछ कम होता हुआ पाता हूँ। उन्होंने अपने ग्रंथ में[1] परिवार के धर्मशास्त्रोक्त तीन प्रयोजनों, पुत्र-प्राप्ति, धर्मकार्य तथा रति, का उल्लेख करते हुए उसके विकास की पाँच अवस्थाएँ निर्दिष्ट की हैं।[2]

इन अवस्थाओं में वैदिक युग से पूर्व की किसी भी अवस्था की गणना नहीं की गयी है। साथ ही यह भी है कि सारी समस्या पर आर्य जाति एवं वैदिक परम्परा को केन्द्र में रखकर विचार किया गया है। भारतीय संस्कृति में आर्य संस्कारों का प्रभुत्व होते हुए भी आर्येतरांश उपेक्षणीय नहीं

१. हिन्दू परिवार मीमांसा, पृ० २५-२६

२. पहली अवस्था—पूर्व वैदिक युग, संयुक्त परिवार की प्रधानता। दूसरी अवस्था—उत्तर वैदिक युग से ६०० ई० पू० तक, संयुक्त परिवार का विघटन आरंभ। तीसरी अवस्था—६०० ई० पू० से ६०० ई० तक, विघटन प्रबल। चौथी अवस्था—६०० ई० से १९०० ई० तक, पुनः संयुक्त परिवार को प्रोत्साहन देने की प्रवृत्ति। पाँचवीं अवस्था—१९०० ई० से वर्तमान युग तक, पुनः विघटन प्रबल, पश्चिम का सम्पर्क एवं औद्योगीकरण विशेष कारण।



रेखाचित्र—५

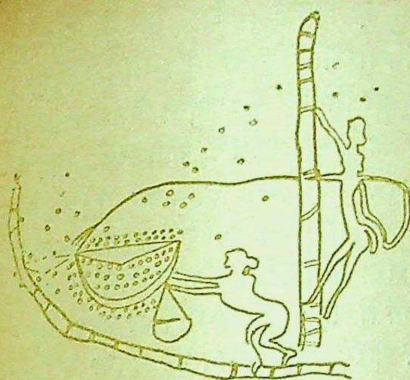
माल्दे रोजा (पँचमढ़ी) के दाहिने किनारे वाले शिलाश्रय के ऊपरी भाग पर सफ़ेद रंग में अंकित आदिम पारिवारिक जीवन का एक अन्य दृश्य जिसमें धनुष-बाण, तरकस और फरसे से सुसज्जित एक योद्धा अपनी स्त्री के साथ जा रहा है। स्त्री शीश पर टोकरी में कुछ रखे हुए है। उसके पीछे-पीछे कुत्ता चल रहा है जिसकी डोरी उसके हाथ में है। हाथ के समीप ही संभवतः उड़ता हुआ बस्ता चित्रित है। कलाई में कंगन भी पहने हुए हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से यह भी पर्याप्त विकसित अवस्था का द्योतक है।

है। प्रागैतिहासिक चित्र अधिकतर आदिम वन्य एवं गुफावासी जातियों से सम्बद्ध हैं, अतएव इनमें आर्यों से पूर्व और आर्यों से इतर दोनों अवस्थाओं के पारिवारिक जीवन की झलक मिलती है और इसका भी कुछ-कुछ आभास प्राप्त होता है कि विवाह से पहले मानव-सम्बन्धों का रूप क्या था। अनेक भारतीय एवं विदेशी विद्वानों ने विवाह-संस्था का उदय कामचार (Promiscuity) से माना है। स्वच्छन्द विवाह, गण-विवाह, स्वैरिणीत्व आदि इसी के अनेक रूप हैं। महाभारत की कतिपय कथाओं से इसकी पुष्टि की जाती है। संस्कृत में विवाह के अर्थ में प्रचलित 'उद्‌वाह' शब्द कदाचित् विवाह की पूर्वावस्था का ही द्योतक है। विद्यालंकार जी ने यह कह कर कि 'महाभारत से पहले के समूचे वैदिक वाङ्मय में कामचार का कोई संकेत नहीं है' उन समस्त कथाओं को निराधार एवं कल्पना-प्रसूत सिद्ध करने की चेष्टा की है जिनमें कामचार का संकेत है, जैसे पाण्डु, दीर्घतमा और श्वेतकेतु के उपाख्यान। समस्त उपलब्ध प्रागैतिहासिक चित्रों में विवाह जैसी विकसित प्रथा का चित्रण अब तक मुझे कहीं भी प्राप्त नहीं हुआ है जब कि स्त्री-पुरुष के स्वतन्त्र सहचरण, सह-नर्तन, स्त्री-अपहरण तथा अन्य प्रकार के पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध अनेक चित्र मिले हैं। (दृष्टव्य, **चित्र संख्या १, २**)। मुक्त कामचार के चित्र प्रागैतिहासिक युग में भी नहीं मिलते परन्तु उसका कारण यह नहीं है कि कामचार का अस्तित्व ही नहीं था वरन् यह कि वह इतनी सामान्य एवं साधारण वस्तु था कि आदिम चित्रकारों के लिए चित्रण की कोई महत्त्वपूर्ण प्रेरणा नहीं दे सका। प्रागैतिहा-

रेखाचित्र—६

पंचमढ़ी की इमलीखोह नामक गुफा में सफ़ेद रंग में अंकित एक परिवार का चित्र जिसमें माता अपनी दो सन्तानों के साथ एक विशेष दिशा में संभवतः पूजा के निमित्त जा रही है। वस्त्राभूषणयुक्त स्त्री एक हाथ में मंगल-कलश तथा दूसरे में एक विचित्र प्रकार की वस्तु लिए है। किनारे की पुरुषाकृति जामुनी रंग में ऊपर से अंकित एक अन्य चित्र का अंश है।

(मूल से प्रथम बार की गयी समाकार रेखानुकृति)



रेखाचित्र—७

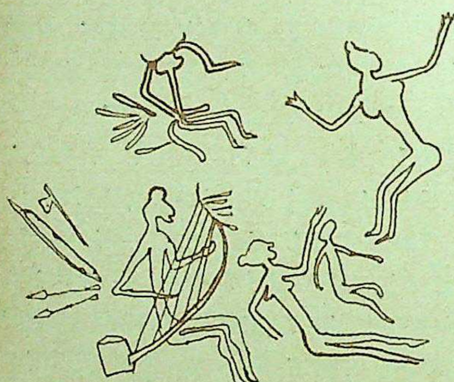
बेंत की सीढ़ियों के सहारे मधुमक्खियों के छत्ते से दम्पति द्वारा मधु-संचय का दृश्य। (जम्बू द्वीप (पंचमढ़ी) के एक शिलाश्रय से गार्डन द्वारा प्रथम बार अनुकृत।)

सिक चित्रों के विषय अधिकतर वही हैं जो मनुष्य की निरन्तर प्रवाहिनी जिजीविषा से उपजते हैं तथा जिनमें जीवन-संघर्ष प्रखरतम रूप में व्यक्त होता है। आखेट और सामूहिक पशु-वध के दृश्य इसीलिए अधिक संख्या में, विशेष शक्ति के साथ, चित्रित मिलते हैं फिर भी अपवाद रूप में दक्षिण भारत में कहीं-कहीं कामचार का चित्रण भी मिलता है। यह विचार अवश्य सत्य है कि मात्र कामचार की अपेक्षा व्यापक जीवशास्त्रीय आधार लेकर अधिक गहराई से परिवार के मूल उद्भव की व्याख्या की जा सकती है। जीवन के समग्र रूप को दृष्टि में रख कर देखने पर स्वतः प्रकट हो जाता है कि काम जीवन का स्वतन्त्र उद्देश्य न होकर सृजन एवं जीव-विकास की शृंखला की एक आवश्यक कड़ी है। इसीलिए परिवार के घटक तत्वों में संतान-रक्षा का स्थान रति की अपेक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है। स्तनपायी जीवों में संतान-रक्षा का भाव विशेष रूप से विकसित मिलता है क्योंकि वह एक प्राकृतिक आवश्यकता बन कर आता है। संतान-कामना पशु-पक्षियों तक में कुछ काल के लिए गृहस्थ जीवन बिताने की भावना उत्पन्न करती है, मनुष्य में वह उसकी संवेदनात्मक श्रेष्ठता के कारण अधिक मुखर एवं व्यक्त दिखायी देती है। प्रागैतिहासिक काल के अधिक प्राचीन चित्रों में 'पुत्रदारगृहादिषु' वाली आसक्ति की कल्पना तक मन में नहीं उठती क्योंकि जिस चिन्ता में उस काल का मनुष्य ग्रस्त है वह केवल उदरपोषण और आत्मरक्षा तक ही सीमित प्रतीत होती है। वंश की चेतना और वंश-वृद्धि की चिन्ता दोनों ही उसकी जीवन-रक्षा की चिन्ता की छाया तक भी नहीं पहुँचती। नव-पाषाणयुग (Neolithic Period) से पूर्व के चित्रों में पारिवारिक संदर्भ प्रायः नहीं के बराबर मिलता है। मातृत्व को व्यक्त करने वाले जो भी चित्र मिलते हैं वे इसीलिए उत्तरपाषाणयुग तथा नवपाषाणयुग के ही अधिक प्रतीत होते हैं। (दृष्टव्य, चित्र संख्या ३)। संभव है यह उससे भी बाद के

हों क्योंकि काल-निर्णय में विषय-वस्तु के अतिरिक्त शैली-शिल्प, वर्ण-योजना, चित्रण-क्रम आदि अनेकानेक बातें विचारणीय होती हैं। शिला-चित्रों में शिशुओं का चित्रण अपवाद रूप में ही मिलता है; ऐसी दशा में अनुमान किया जा सकता है कि उनके प्रति आसक्ति चित्रण की प्रेरणा बनने की स्थिति तक अधिक नहीं पहुँची थी अथवा वह इतनी सहज थी कि कला का विषय बनने की विशिष्टता अन्य असहज भाव-स्थितियों की अपेक्षा उसमें कम आ पायी थी। काल-क्रम में उत्तरोत्तर पारिवारिक दृश्य चित्रण के अन्तर्गत बालकों का समावेश अधिक मिलने लगता है। (**दृष्टव्य, चित्र संख्या ८**)।

स्वावलम्बी एवं स्वतन्त्र विचरण करने वाले वनवासी मनुष्य को स्वयं घर बनाकर गृहस्थ बनने में कई युग लगे होंगे, इसमें संदेह नहीं।

एक स्थान में स्थायी रूप से रहने की स्थिति मानव के प्रारम्भिक जीवन में तभी आयी होगी जब उसने हिंस्र-पशुओं को अपने नैसर्गिक बुद्धि-कौशल से पराजित करने की निश्चित शक्ति अर्जित कर ली होगी तथा फल-मूल और मांस के साथ स्वयं उत्पादित अन्न का उपयोग भी आरंभ कर दिया होगा। पाषाण विनिर्मित विशाल और सूक्ष्म अस्त्र, भाले, वाणफलक, फरसे और धनुष, उसकी रचना-शक्ति के प्रारम्भिक प्रमाण हैं जिनके द्वारा उसने पशुओं



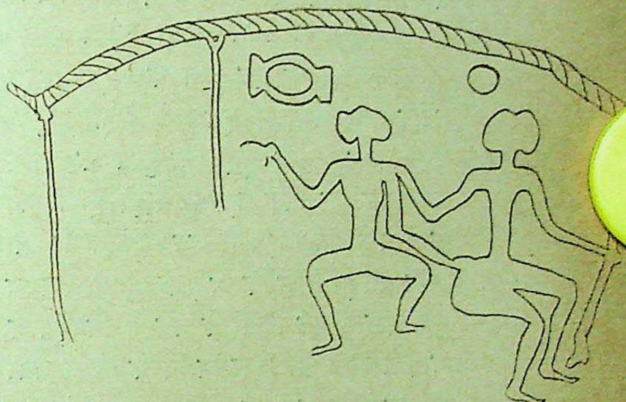
रेखाचित्र—८

एक आखेटक अपना धनुष-वाण-परशु आदि अलग रख कर दिन भर के श्रम के बाद परिवार के सुखद वातावरण में तन्तु-वाद्य-वादन करते हुए।
(यह चित्र निम्बूभोज (पँचमढ़ी) के ऊपरी शिलाश्रय में चटक सफ़ेद रंग से अंकित है। इसकी प्रथम अनुकृति का श्रेय भी गार्डन महोदय को ही है।)

को निष्कासित करके गुफाओं को अपना आवास-केन्द्र बनाया। अग्नि का स्वेच्छापूर्वक उत्पादन एवं उस पर अधिकार उसके प्रारंभिक विकास में एक अन्यतम महत्त्व रखने वाली घटना है। उसकी अदम्य सृजनशीलता कला की दिशा में भी प्रवाहित हुई और वस्त्र से शरीर ढकने का बोध होने से पूर्व ही उसने अपने को तथा अपने निवास-स्थान को विविध प्रकार से अलंकृत करना आरम्भ कर दिया। पशु-पालन, कृषि, पात्र-निर्माण और गृह-निर्माण, इनका उसके सांस्कृतिक विकास में प्रायः बहुत बाद में समावेश हुआ। घरों

के जो चित्र मिलते हैं उनमें फूस, वस्त्र और बाँसों का ही उपयोग हुआ लगता है जिससे उनकी अस्थायी प्रकृति का बोध होता है। **(दृष्टव्य, चित्र संख्या ४, ६)**। इन चित्रों के अन्तर्गत जो पारिवारिक वातावरण मिलता है वह पर्याप्त विकसित अवस्था का द्योतक है। कुछ चित्रों में परिवार का दृश्य तो अंकित मिलता है परन्तु झोपड़ी या पट-मंडप का कोई संकेत नहीं है जिससे अनुमान किया जा सकता है कि यह विकास की पूर्व अवस्था के सूचक हैं परन्तु उनका वातावरण पूर्वोक्त चित्रों से अधिक भिन्न नहीं है। ऐसी दशा में कोई महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। **(दृष्टव्य, चित्र संख्या ८)**। इन पारिवारिक दृश्यों में ऐसे निर्द्वन्द्व जीवन की झलक

रेखाचित्र—९



निम्बूभोज (पँचमढ़ी) के ऊपर वाले शिलाश्रय में सफ़ेद पर लाल रेखाओं में अंकित मंडप में बैठे स्त्री-पुरुष का चित्र जो गृहस्थ-जीवन की विकसित अवस्था का द्योतक है। (मूल से प्रथम बार अनुकृत।)

मिलती है जिसमें आखेट के अतिरिक्त नृत्य-गीत-वाद्य, प्रेम और प्रसाधन का भी पर्याप्त स्थान था। गार्डन के मत से यह चित्र दसवीं शती के आस-पास की किसी ऐसी वीर जाति के जीवन से सम्बद्ध हैं जिसने पँचमढ़ी के गहन वनों और गुफाओं में उस काल में शरण ली होगी। यदि यह मत स्वीकार किया जाय तो इन्हें प्रागैतिहासिक चित्र कहने के स्थान पर केवल गुफा-चित्र कहना ही उपयुक्त होगा; परन्तु मुझे यह मत मान्य नहीं है। एक तो सभी चित्र अश्मीभूत (Fossilized) अवस्था में मिलते हैं, दूसरे चित्रित गुफाओं के समीपवर्ती क्षेत्र से नवप्रस्तर युग के सूक्ष्मास्त्र (Microliths) भी प्राप्त होते हैं, तीसरे चित्रण की कई तहों के कारण चित्रों में एक निश्चित विकास-क्रम लक्षित होता है जो पाषाण युग से धातु-युग को जोड़ता भर प्रतीत होता है। फिर ९ वीं, १० वीं शती की तथाकथित वे पाँच बौद्ध गुफाएँ जिनके आधार पर पँचमढ़ी नाम पड़ा है, चित्रण के सर्वथा उपयुक्त होने पर भी अचित्रित ही हैं। कुल मिलाकर, मेरी दृष्टि में पँचमढ़ी क्षेत्र के यह पारिवारिक दृश्य उतने अर्वाचीन प्रतीत नहीं होते जितना गार्डन का अनुमान

है। मधु-संचय का प्रसिद्ध दृश्य भी निर्वसन स्त्री-पुरुष की आकृति के कारण आदिम-अवस्था की ही सूचना देता है। **(दृष्टव्य, चित्र संख्या ७)**। जीवन-यापन के लिए मधु-संचित करने की संयुक्त एकनिष्ठता स्त्री-पुरुष के बीच दम्पति सम्बन्ध की व्यंजना करती है। इस प्रकार की व्यंजना अन्यत्र एक चित्र में अधिक स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। **(दृष्टव्य, चित्र संख्या ५)**। धनुर्धर और उसके पीछे चलती हुई स्त्री, दोनों प्रत्यक्षतः पारिवारिक सम्बन्ध से बद्ध प्रतीत होते हैं। एक अन्य चित्र में इससे भी अधिक विकसित अवस्था के पारिवारिक वातावरण का चित्रण हुआ है क्योंकि उसमें अकेली माता अपनी दो सन्तानों के साथ मंगल-कलश लिये हुए संभवतः पूजार्थ जा रही है। वस्त्र एवं अलंकरण से भी चित्र बहुत बाद का लगता है। **(दृष्टव्य, चित्र संख्या ६)**।

जितने चित्र इस लेख के साथ प्रस्तुत किये गये हैं वे सैकड़ों पूर्व और नवोपलब्ध चित्रों में चुने गये हैं और कुछ मिलाकर, नितान्त आदिम स्थिति से विकसित होते हुए स्त्री-पुरुष के पारिवारिक सम्बन्ध की पर्याप्त उन्नत दशा तक की विकास-कथा कहते हैं जो काल्पनिक न होकर ठोस ऐतिहासिक आधार रखती है। जिन गुफावासी भारतीय आदिम जातियों का कोई अन्य चिह्न काल के महाप्रवाह में शेष नहीं रहा उनके जीवन की बोलती हुई छायाएँ इन चित्रों के रूप में निम्बूभोज, जम्बूद्वीप, मान्टेरोज़ा, बनियाबेरी, माड़ादेव, डोरोथीडीप आदि के शिलाश्रयों में अंकित हैं। कला की दृष्टि से इनमें से कुछ ही चित्र महत्त्वपूर्ण सिद्ध होंगे परन्तु भारतीय संस्कृति के अज्ञात पार्श्वों का उद्घाटन करने की दृष्टि से प्रत्येक चित्र महत्त्वपूर्ण एवं रक्षणीय है। खेद है कि राज्य की ओर से इनकी सुरक्षा की कोई संतोषजनक व्यवस्था नहीं। बहुत से शिलाश्रय तो अभी सूची-बद्ध भी नहीं हुए हैं। संस्कारहीन व्यक्ति जा-जाकर उनके चित्रों को नष्ट करते हैं और इन पर अपना नाम लिखकर उसे अमर करने की चेष्टा करते हैं। लिखनिया जैसे शिलाश्रय अरक्षित पड़े हुए हैं। जिस प्राकृतिक स्थिति ने इन शिलाश्रयों की इतने युगों तक रक्षा की, लगता है कि इस जागरूक युग में भी उसी को इनकी भावी रक्षा का दायित्व निबाहना होगा। • • •

यही धरा है स्वर्ग !

> स्वर्ग और पृथ्वी में बहुत अन्तर नहीं है। श्रम और प्रेम का जहाँ मिलन होता है, वहीं स्वर्ग है, और जहाँ ये दोनों बिछुड़ जाते हैं, वहीं पृथ्वी।
>
> —धूमकेतु

संकलन : सत्यदेव नारायण [illegible]

डॉ० भगवतशरण उपाध्याय

वैदिक परिवार की झाँकी

(हिन्दूकुश की हिमराशि लाँघ सप्तसैंधव वनश्यामला वसुधा पर उतर आया था। पञ्चनद की धाराओं के बीच उसने अपने गाँवों के बल्ले गाड़े थे। मातृसत्ताक परिवार की छाया कब की पुरुषार्थ के आतप में डूब चुकी थी। पिता प्रबल था, एकानेक पत्नियों का स्वामी। परिवार संपन्न था, माता-पिता का परिवार, पुत्र-पुत्रियों का, भ्राता-भगिनी का, बहुओं-जामाताओं से संयुक्त, भगिनी-पतियों-श्यालाओं से, देवर-ननदों, ससुर-सासों से भरापूरा। पत्नी (सपत्नियों के बावजूद, वेश्याओं-अप्सराओं के बावजूद) शक्ति संचित कर चली थी। इन्द्र को ऋषि ने सुझाया—)

विश्वामित्र : सोम छान चुके, इन्द्र, आपानक बह चला, भूमि चषकोत्तरा हुई। पधारो अब !

इन्द्र : कहाँ, कहाँ पधारूँ, द्रष्टा, भला सोमाधिक्य के बाद ?

विश्वामित्र : पत्नी की परिधि में। पधारो, देव, जाया के समीप। जानो, जाया ही घर है—जाया इति अस्तं—जायेदस्तं मघवन्त्सेदु योनिः।

इन्द्र : और यह जल की कीर्ति, ऋषि, वरुण का वैभव, अप्सराओं की सम्पदा ?

विश्वामित्र : ना, ना, देव, लौटो, रनिवास को, कल्याणी जाया को भेंटो, प्रिया भार्या को। रथचक्रों की भाँति दौड़ कर उसे गहो। अप्सराओं की सम्पदा सर्पिणी का स्पर्श है, उसके डँसते ही



इतिहास का सत्य जो कल्पना से भी अधिक आकर्षक है ! पारिवारिक संस्कृति का प्राचीन रूप जो समीचीन दृष्टि को मोहता है और विस्मित करता है, प्राचीन दृष्टि को चौंकाता है।

चुक जाओगे। शची का परिवेश परसो, पौलोमी की पलकें चूमो, रँभाओ वृषवत्।

◉

(कन्या की मर्यादा बड़ी थी, पुत्रवत्। दोनों ही जनक-जननी के प्रिय थे।)

१ ऋषि : देखो, देखो, इस सुख को--जुड़वीं बहनें **(स्वसारा, जामी)** लोट रही हैं, माता की गोद में, पिता की गोद में--गुनो इस सुख को! अभागा वह नर, अभागिन वह नारी, न जानी जिनने इस स्पर्श की पुलक। देखो माता को, उसके उस सुख को--वह तनय को रेल रही है, तनय उसे रेल रहा है, वह उसे चूम रही है, वह उसे चूम रहा है।

२ ऋषि : दुहिता मातृमना होगी, तनय पितृमना होगा--एक मातृत्व की संज्ञा होगी, दूसरा रिपूनिषूदन होगा। भाग्यवती वह माता, भाग्यवान वह पिता जिनकी यह कुमारी, जिनका यह पुत्र! हिरण्य के पेशवाज़ पहने।

३ ऋषि : और इनसे भी बढ़ कर भाग्य उस पिता का जो अपनी अनेक कन्याएँ लिए समन को जाता है--पीठ पर तुणीर बाँधे वीर की नाईं--ये वाण, ये कन्याएँ कि जिनकी चोट से प्रजापति की नर प्रसूति तिलमिला उठे, कि जिनके लक्ष्य युवाओं के शत-शत हृदय हों।

१ ऋषि : और वह वाणी की झंकार सुनो, पयस्विनी को दूहती दुहिता की मधुवाणी, दूध की धारा की ध्वनि।

२ ऋषि : और देखो वे उठे हुए मटके--शिखापर्यंत, टिके हुए कलश--कटि पर...

३ ऋषि : कैसे चुप हो गए!

२ ऋषि : 'अनक्षा' का स्मरण हो आया, आर्य की चक्षुहीना दुहिता का। क्या होगा उसका? कौन उसे वहन करेगा? कौन उसे वरेगा?

३ ऋषि : तरुण का रथ उसे वहन करेगा, तरुण का राग उसे वरेगा। जन्मांधी से विरक्त भला कौन होगा--तरुण जो उसे वहन करेगा या तरुण का राग जो उसे वरेगा?

◉

(सुई से स्वर्ण तार से कढ़ाई करतीं, चटाई बुनतीं, सूत काततीं कुमारियों का समूह)

सखी : धृताची, तेरा तो भ्राता वसुपुत्र है, देगा, अनंत धन देगा, भगिनीपति को। काढ़ ले, काढ़ ले यह हिरण्यपेशस्, यह स्वर्ण तारों से जगमग द्रापी, यह वक्षबन्ध !

धृताची : मधुमति, व्यंग न कर। निश्चय वह जामाता विजामाता है जो पतिंवरा से वसु की आशा करेगा, जो श्याला के स्वर्ण का लोभ करेगा।

मधुमति : पर तुझे कमी किस बात की है, रूप की, धन की, धरा की ? त्रिवर्ग की धनी है तू तो, सोम-नासत्य ललच जाएँगे।

धृताची : सुना, सूर्ये, सप्तसिंधु की इस रसवती की वाणी ?

सूर्या : सुना, पर मिथ्या क्या ? पर जान ले, मधुमति, धृताची भ्राता की अपेक्षा नहीं करेगी। माता द्वारा प्रसाधिता सुपेशा सँवर कर रथ पर बैठेगी और कशा से वरसंकुल मार्ग को निर्बाध कर यथेच्छ वरेगी।

मधुमति : साधु, सूर्ये, साधु ! अच्छा वारा कहाँ है ?

धृताची : वारा ? अरे वह अश्विनों को बलि दे रही है।

सूर्या : सच ?

धृताची : सच, मैंने तो उसकी उनके प्रति प्रार्थना भी सुनी, बड़ी स्वादु प्रार्थना।

सब एक साथ : क्या सुना ? प्रार्थना में क्या कहा उसने ?

धृताची : नासत्यौ, सूर्या के युगल वर, बोलो—वह भेद कहो —वधू के एकान्त कक्ष में, मिथ के एकान्त रहसि में, वर वधू से क्या कहता है, उसके साथ क्या करता है, सत्वर बोलो, नहीं जानती वह रहस्य !

(सब हँस पड़ती हैं)

⊙

(पर गृहिणी की संप्राप्ति, संतप्त प्रिया की, कुछ आसान नहीं। कवि श्यावाश्व अपमान के घूँट पीता है, विरहाग्नि में तपता है, तब कहीं उसकी प्रिया स्नेह की लौ लिए आती है। रात्रि द्वारा वह प्रेयसी के पिता को संदेश भेज देता है, ऋग्वेद का वह कवि, विरहियों में प्रथम—)

श्यावाश्व : रात्रि, दर्भ के तनय को ले जा मेरी यह सूक्ति, मेरी यह भाव

गंभीर गिरा वहन कर, देवि, रथ की भाँति, रथी की भाँति, उस दर्भ तनय तक।

कह उससे, जब रथवीति सुतसोम में रत हो तब कह-- तुम्हारी कन्या के प्रति मेरा काम, मेरा मोह कम न हुआ। जैसे तुम अग्नि पर स्रुवा से घृत डालते हो वैसे ही तुम्हारी कन्या की सुधि पर अपने हिया से नेह ढालता जा रहा हूँ, दे दो निज दुहिता, कवि की काम्या दे दो।

⊙

(गार्हपत्य के अर्थ नवगृह की स्वामिनी होकर वधू ससुर के घर जाती थी। विवाहावसर पर पुरोहित का यह उद्घोष है)

पुरोहित : जाओ, नवगृह को जाओ, गृह की पत्नी बन कर, स्वामिनी बन कर, वशिनी की वाणी में एकत्र जन को आदिष्ट करो, उनका संबोधन करो-- **गृहान्गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि।**

जाओ, वरुण के पाश से तुम्हें मुक्त करता हूँ, पिता ने तुम्हें कौमार्य के व्रत से पाला, ब्रह्मचर्य से सुपुष्ट किया। अब तुम्हें, गात से, मनस् से अक्षत, इस पुरुष के लिए देता हूँ, ऋत के मार्ग पर आरूढ़ हो, लोक में सुकृति के लिए, कल्याण के लिए इस जन से बाँधता हूँ।

पति : कल्याणि, तुम्हारा हाथ पकड़ता हूँ, सौभाग्य के अर्थ, कि तुम मुझ पति के साथ चिर जिओ--भग, अर्यमा, सविता, परन्धि ने तुम्हें मुझे दिया है, देवताओं ने, कि तुम मेरे गृह का शासन करो।

पुरोहित : सुमंगला है यह वधू, मंगल चिह्नों से युक्त। आओ लोगो इसे देखो, चहुँ ओर से देखो, आशीर्वचन कहो, सौभाग्य दो।

पति : पूषन्, दो मुझे यह पत्नी, यह शिवतमा नारी, जो मेरे घने स्नेह की आश्रय होगी, सुख की संगिनी, बीज की वाहिका, जो अपनी भुजवल्ली से मुझे समेट लेगी, मेरे प्यार का, गाढ़ालिंगनों का जो स्वागत करेगी।

दार्शनिक की पत्नी

सुविख्यात दार्शनिक सुकरात की पत्नी काफ़ी झगड़ालू थी और उन्हें बहुत तंग करती थी। एक दिन जब वह बहुत हल्ला मचाने लगी, तो सुकरात मकान की देहलीज पर जाकर चुपचाप बैठ गये और बाहर की ओर देखने लगे। सुकरात की पत्नी चिढ़ कर झट एक लोटे में पानी ले आयी और वहाँ जमा हो

पुरोहित : इन्द्र, इसे सुहाग दे, दस की जननी बना, पति की जाया !
(वधू से) और वधू !—

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रुवां भव ।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेवृषु ।।

तुम ससुर की रानी बनो, सास की रानी बनो, ननदों, देवरों की रानी । शुभा हो, सुमना हो, सुवर्चा हो, वीरसू, इस अपने पति से तुम्हारा वियोग न हो, नए घर में तुम फलो, पुत्रों-पौत्रों के बीच, तुम्हारे संयोग से इस परिवार के द्विपदों-चतुष्पदों का कल्याण हो ।

पति : विश्वे देवा हम दोनों के हृदयों का परस्पर गुंफन करें, मातरिश्वा, धाता, देष्टा हमें एक दूसरे से घना बाँध दें ।

पत्नी : **(पति के गृह पहुँच कर अपने ससुर से)**
इन्होंने मुझे पत्नी रूप में ग्रहण किया है और मैं इनकी अनुरागिणी हूँ, इनसे संपृक्त हूँ जैसे रथी से कशा संपृक्त होती है । मेरे पति ने मुझे उदार भेंट दिए, बहुमूल्य शामुल्य, हज़ार-हज़ार ।

पितः, अनुमति दो कि आऊँ, तुम्हारे इस गृह में प्रवेश करूँ, विनीत हूँ, कोमल हूँ, रोमशा हूँ, सर्वथा रोमशा, गन्धार के मेमनों की भाँति मृदु-कोमल, उनकी-सी ही स्पर्शसुखद रोमावली से संयुक्त । द्वार दो ।

गये लोगों के सामने ही उसे सुकरात के सिर पर डाल दिया ।

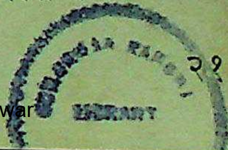
लोग इस घटना को देख कर विस्मित हुए । लेकिन दार्शनिक सुकरात ने मुस्करा कर धीरे से इतना ही कहा, "मुझे मालूम था, पहले बादल गरजते हैं, फिर पानी बरसता है ।"

—प्रेषक :
सत्यदेव नारायण सिन्हा

⊙

(अपने गार्हपत्य में, गृह के शासन में, जागरूक, चहेते पति के प्रति अनुरक्त पत्नी का परिवार, भरापूरा संयुक्त कुटुंब, उसके सौभाग्य का सूचक था । और वह अपने सर्वस्व को प्रिय के प्रति समर्पित करती थी । अपने वैभव की शक्ति से दुर्मद, पति के प्रति समर्पित प्रीति की धनी इन्द्राणी उस समर्पण को ओजस्विनी वाणी में व्यक्त करती है—)

इन्द्राणी : नारी ने अपने स्नेह की सन्धियों को इस निःशेष विधि से अपने रमण के प्रति निरावृत्त न किया, अपनी ग्रंथियों के बन्द



इस आतुरता से न खेले, प्रणय के रोमांचक मदिर भोग इतने यत्न से प्रस्तुत न किए, संभोग के प्रकार जुगा न रखे। नारी ने कभी मेरी विधि अपने रमण के आनन्द के लिए सौन्दर्य की अमित राशि न लुटाई। इन्द्र सर्वोपरि है!

⊙

(पर जब तब इस सुखी दाम्पत्य में नर की मानसिक दुर्बलता विष घोल देती थी। जुआरी का पाँसे के प्रति आकर्षण जब पत्नी के स्नेह से ऊपर उठ जाता था तब परिवार का सुख नष्ट हो जाता था। जुआरी पत्नी को भी दाँव पर लगा जब उसे हार जाता था और जीतने वाले उसे दुलारने लगते थे तब उसका हृदय कलप उठता था।)

जुआरी : इन अक्षों के कारण (पाँसे के कारण) मैंने अपनी सास को शत्रु बनाया, जाया को प्रतिकूल किया, खो दिया। अब उस जाया की काया से दूसरे खेलते हैं। पर करूँ क्या, द्यूत का मोह! जब फलक पर पाँसों की मधुर ध्वनि सुन पड़ती है तब अपने को रोक नहीं पाता, द्यूतागार की ओर वैसे ही दौड़ पड़ता हूँ जैसे जारिणी संकेत स्थान की ओर!

अक्ष अंगारों की तरह आँखों में कौंध जाते हैं, जैसे हाथ से टूट कर नीचे गिरते हैं, फिर सहसा ऊपर उछल पड़ते हैं। स्वयं हस्तहीन पर हस्तवन्तों से सेवित सच अंगार हैं ये, स्वयं शीतल पर दूसरों के हृदय भस्म कर देने वाले!

⊙

(स्वाभाविक ही जब पत्नी सकारण या अकारण या दैवयोग से पति से वियुक्त हो जाती थी तब पति का संतप्त हृदय मृत्यु तक का आमंत्रण कर बैठता था। उर्वशी के चले जाने पर पुरूरवा का मथा मानस बिलख उठता है—)

पुरूरवा : आज चला यह काटता गृह त्याग, दिशाओं की ओर, दूर, परे, दूर, दिशाओं से भी परे, कभी न लौटने के लिए। और मेरी यह शैय्या, जहाँ उर्वशी ने मुझे निर्वासित निरावृत्त देखा, अब निऋति की, मौत की गोद में लगेगी, मैं अब भेड़ियों की भूख मिटाऊँगा।

और नारी की मैत्री। न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता--इनसे मैत्री कैसी ? इनके हृदय मानव के नहीं, वृकों के होते हैं, सच, भेड़ियों के।

⊙

(यह पुरूरवा का नष्ट दाम्पत्य था, अप्सरा का जोड़ा, उर्वशी के संयोग से बना, जो अब बिखर गया था, यद्यपि ऐल चन्द्रकुल का विस्तार उसी संयोग से संभूत सन्तान आयु ने किया। यह दोनों का एक प्रकार से अनुबन्धप्रवण विवाह था। विवाहों का आरंभ सुदूर पूर्व निःसन्देह हो चुका था, पर ऋग्वैदिक काल में उनकी आदिम स्मृति अभी बनी थी। यम-यमी का संवाद इसमें प्रमाण है कि यद्यपि भ्राता-भगिनी विवाह सम्बन्ध अब समाज से उठ गया था पर उसकी याद अभी भूली न थी, विशेषकर जुड़वे भाई-बहन तो गर्भ में एक साथ इसी कारण विधाता द्वारा रखे गए माने जाते थे कि उनका परस्पर विवाह स्वाभाविक था।)



यमी : यम, मेरे भाई, मैं चाहती हूँ तुम्हारा सख्य, वह बीज जिससे पिता विवस्वान् का वंश धरा पर अक्षुण्ण बना रहे।

यम : सखा तो मैं तुम्हारा वैसे भी हूँ, यमी, पर मेरा सख्य सखी उसे मानता है जिसका रक्त मेरे से भिन्न है। न भूलो कि ऋत के रक्षक महाशक्तिमान असुर वरुण के चरों की दृष्टि से कुछ भी अदृश्य नहीं।

यमी : आचार की व्यवस्था अमरों के लिए नहीं है, यम। यह देवकन्या है जो एकमात्र मर्त्य से प्रजा की कामना करती है। देखो, हृदयों का गुंफन होने दो और पति के अक्षय प्रेम से अपनी जाया को भेंटो, मुझे।

यम : बहिन, क्या आज हम वह करें जो कभी न किया ? यमी, ऋतमार्ग के अनुगामी हम अनृत के उपासक क्यों बनें ? गन्धर्व विवस्वान हमारे पिता हैं, सरण्यू हमारी माता। वंश की मर्यादा न भूलो।

यमी : परन्तु न तुम ऋतमार्ग का अनुगमन करते हो, न पिता की

इच्छा का अनुसरण । स्त्री-पुरुष के रूप में स्वयं त्वष्टा ने हम दोनों को आदि दिवस एक साथ गर्भ में रखा । त्वष्टा के व्रत-नियमों का अतिक्रमण करने का कोई साहस नहीं करता, यम । फिर द्यावा-पृथिवी साक्षी हैं कि हम त्वष्टा के बीज हैं ।

यम : वह आदि दिवस किसका जाना है, यमी ? किसने उसे देखा ? कौन यहाँ आज उसकी घोषणा करेगा ? मित्रावरुण की व्यवस्था सर्वमान्य है, पर मायाविनि, पुरुषों को प्रलोभित करने के लिए भला तू उनसे क्या न कहेगी ?

यमी : मैं--यमी--यम की कामना करती हूँ । मैं जाया की भाँति अपने शरीर को अर्पित करूँ और हम दोनों परस्पर मिलने के अर्थ रथचक्रों की भाँति दौड़ पड़ें--

परिवार का रथ

परिवार तेज चलते हुए रथ
समान है । परिवार के सभी सद
अश्व हैं ; एक अश्व की निं
भी रथ की गति में बाधक होती
धर्म ही रथ का सारथी है ।

यम : हमारे चतुर्दिक फिरने वाले देवताओं के प्रहरी कभी स्थिर नहीं बैठते, पलक नहीं मारते । मुझसे नहीं, यमी, किसी और से तू रथचक्रों की भाँति दौड़ कर मिल । मुझे पाप का भागी न बना ।

यमी : अम्बर में, धरा पर, सर्वत्र इस मिथुन की क्रीड़ा हो--यम का अभ्रातोचित कर्म यमी पर हो और उस पाप का फल यमी भोगे । यम को उसकी आँच न लगे । उसके मार्ग में सूर्य सदा की भाँति अपनी किरणें बिखेरता रहे ।

यम : निश्चय उत्तरकाल में ऐसे युगों का प्रादुर्भाव होगा जब सहोदर भ्राता-भगिनी घोर अपचार में प्रवृत्त होंगे । देख, यमी, अन्य पुरुष खोज और उसके लिए अपनी भुजा पसार ।

यमी : हाय ! यम, पति के अभाव में वह भ्राता कैसा भ्राता है ? निॠति की उपस्थिति में--प्रलय के प्रकोप में--वह भगिनी कैसी भगिनी है ? कामाभिभूत मैं उच्च स्वर से घोषित करती हूँ--गाढ़ालिंगन से मुझे बाँध लो ।

यम : मैं तुम्हें गाढ़ालिंगन से न बाँधूँगा, यमी । सहोदरा के सामीप्य को पाप कहा है । अतः, शुभे, अपने आनन्द को अन्य के लिए सुरक्षित रखो । तुम्हारा भाई तुमसे इसकी कामना

नहीं करता।

यमी : आह! यम, तू क्लीब है, कापुरुष! तुझमें मन अथवा हृदय का अस्तित्व नहीं। सोच पल भर--तेरे इस भुवन मोहन रूप का भोग कोई अन्य नारी करेगी। तेरे इस कमनीय तन का आलिंगन कोई अन्य करेगी, वैसे ही जैसे वनज्योत्स्ना तरु का करती है।

यम : अन्य का आलिंगन कर, यमी, जैसे वन-ज्योत्स्ना तरु का करती है। तू उसके मन को जीत, वह तेरे हृदय को जीते, तुम दोनों मिल कर भद्रलोक की सृष्टि करो।

(धन) ही रथ के पहिए हैं। सामाजिक जीवन ही रथ का मार्ग है। और, सुख-शान्ति और मोक्ष ही रथ का विराम-स्थल है। परिवार तेज चलते हुए रथ के समान है।

--कन्फ्यूशियस

(प्रेषक : राजकमल चौधरी)

⊙

नियोग उतनी ही प्राचीन प्रथा है जितना ऋग्वेद। संसार में इस प्रकार के यौन सम्बन्धों का इतिहास पर्याप्त ऋद्ध है जहाँ नारी का अन्य पुरुष से पत्येतर सम्बन्ध रहा है। मूसा-ईसा से लेकर लियोनार्दो दा विंची तक इस सम्बन्ध के परिणाम रहे हैं। भारतीय नियोग और विदेशी प्रक्रिया में एक विशेष अन्तर रहा है--जहाँ बाहर के सम्बन्ध स्खलन के परिणाम रहे हैं भारतीय सम्बन्ध विधान और व्यवस्था के परिणाम रहे हैं। यहाँ निर्वीर्य अथवा नि:संतान पति की पत्नी से उसी के लिए पुरोहित अथवा सपिण्ड द्वारा पुत्र उत्पन्न करना वैदिक काल का स्वीकृत वैधानिक सिद्धान्त रहा है। महाभारत काल का उपरला छोर ऋग्वैदिक काल का समसामयिक है। उसके प्राय: सारे वीर--युधिष्ठिरादि--नियोग के ही परिणाम हैं। स्वयं कृष्ण के जन्म की घटना स्पष्ट नहीं और राम की उत्पत्ति चाहे नियोग का परिणाम न हो, प्रकट है कि उनका प्रादुर्भाव भी पिता-माता के साधारण आचरण का परिणाम नहीं, वसिष्ठ और ऋष्यश्रृंग के अभ्युपाय का परिणाम है। महाभारत और रामायण दोनों के घटना काल ऋग्वैदिक हैं जब परिवार में नियोग सर्वथा अविशेष प्रचलन माना जाता था, यद्यपि शब्द 'नियोग' का उपयोग विधिपरक साहित्य में पीछे हुआ। **पुरुकुत्सानी, पुरंधि वध्रिमती** आदि अनेक पत्नियों को पतियों के अभाव अथवा क्लीबत्व में पत्येतर व्यक्तियों ने पुत्र प्रदान किए हैं (**ऋ० १.११६, १३; ११७, २४; ४.४२,८-९; ६,६२, ७; १०.३९,७; ६५,१२**)। और इन स्थितियों के विशेष सहायक अश्विनी कुमार रहे हैं--वध्रिमती से माद्री तक।

जहाँ परिवार अत्यन्त विशिष्ट और नृपति का ही नहीं था वहाँ साधारण घरों में नियोग की सहविधि देवर ही पूरी कर दिया करता था। विवाह के समय ही पत्नी अथवा वधू का एक विशेषण **'देवृकामा'** (देवर की कामना करने वाली) है। साधारणतः पति की मृत्यु के बाद देवर से विधवा का विवाह अत्यन्त सामान्य और स्वाभाविक रीति से हो जाया करता था, जैसे आज भी भारत की अनेक जातियों में हो जाया करता है। ऋग्वैदिक काल में भाभी का पति की मृत्यु के बाद देवर के पर्यंक की ओर विधितः सरक जाना न्याय्य माना जाता था।

शत्रुओं से घिरे देश में आर्यों की आँखें अपने नवप्रसूत वीरों पर सदा लगी रहती थीं। दस पुत्रों का आदर्श इसी हेतु सम्मत हुआ, इसी हेतु समाज में कम आयु की नारी विधवा नहीं रह पाती थी, विवाह कर जाति की संख्या बढ़ाना अनिवार्य था। इसी से यद्यपि पति की चिता पर प्राचीन सती भावना से प्रथानुसार वह मृत पति के शव के पास क्षण भर को लेट रहती थी, पर उस शव के हाथ से धनुष लेता हुआ विधवा का देवर तत्काल विधवा को संबोधित करता था—

उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं प्रत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ॥

'उठो, नारी, जीवलोक में पधारो, आओ, जिसके पास पड़ी हो वह गत हो चुका, निर्जीव है। अब इसे सौभाग्यवान करो, अपने पत्नीत्व का भाग प्रदान कर, जिसने तुम्हारा कर पकड़ा है, तुम्हारे प्रणय का प्रार्थी है।' और श्मशान सत्वर आनन्दभूमि में बदल जाता है, लोग नाचने लगते हैं, हँसी के स्रोत फूट पड़ते हैं। लोगों का दावा ही है कि हम तो नाचने-गाने, हँसने के लिए आए ही हैं—**अगाम नृतये हसाय।**

पंचनद के उस परिवार में बहुपतिक विवाहों की संभावना कम थी, कारण कि बहुपतिक विवाह अधिकतर मातृसत्ताक व्यवस्था का परिणाम है, यद्यपि एक ही के साथ दो के बारी-बारी से रहने **(एकया सह प्र प्रवासेव वसतः)** की बात ऋग्वेद में कही गई है, जैसे कइयों के एक ही पति होने की **(पतिरेकः समानः)** भी। हाँ बहुपत्नीक स्थिति अनेक ऋग्वैदिक कुटुम्बों की थी। उच्चवर्ग, ऋषि और राजन्य दोनों, इस दिशा में विशेष जागरूक था। तब सपत्नियों से परिवार में कलह हो उठना स्वाभाविक था। न इस स्थिति में पति की दुर्गति की ही कमी हो सकती है। एक ऐसा अभागा पति कहता भी है कि दो पत्नियों के बीच उसकी स्थिति ठीक वैसी ही है जैसी दो बमों (जुए के डंडों) से दोनों ओर से कुचले जाते रथ के

अश्व की होती है (सपत्नीर्षि पर्यंचः)। इस प्रकार की प्रबल पत्नी अपनी सपत्नियों को कुचल कर गृह की स्वामिनी हो जाने वाली इन्द्राणी अथवा शची पौलोमी है। ऋग्वेद, दसवें मण्डल, का एक समूचा सूक्त (१४५) ही इन्द्राणी द्वारा कहा गया है जिसका नाम ही **उपनिषत्सपत्नीबाधनम् (अभ्युत्थितं सपत्नी का नाश)** है। उसी मण्डल का एक दूसरा सूक्त (१५९) भी उसी पर्याय का है, अन्तर इतना है कि जहाँ सपत्नियों के नाश के लिए पहले सूक्त में इन्द्राणी टोटके का वनस्पति उखाड़ रही है, इसमें उसके परिणामस्वरूप सपत्नियों के नाश और अपने सौभाग्य के मूर्धाभिषिक्त होने की घोषणा है—

शची, वह देखो सूर्य उठा आकाश में, इधर मेरा भाग्य भी चमका। मैंने अपने पति को जीत कर मात्र अपना बना लिया।

मैं केतु हूँ, मैं मूर्धा हूँ, मैं उग्रा विवाचिनी हूँ, मैं विजयिनी हूँ और मेरा स्वामी मेरे आधीन हो गया है।

मेरे पुत्र शत्रुघ्न हैं, मेरी पुत्री साम्राज्ञी है, मैं विजयिनी हूँ, पति पर मेरा स्वत्व संपूर्ण है, मेरी सूक्ति अमर है।

देवताओ, वह हवि, जिसे इन्द्र ने तुम्हें दिया, जिससे वह स्वयं शक्तिमान बना, उसे मैंने ही प्रस्तुत किया था, उसी से मैंने अपनी सपत्नियों को एक-एक कर नष्ट भी किया।

मैं हूँ सपत्नियों की संहारिणी, अकेली पत्नी, विजयिनी अबलाओं के धन की भाँति मैंने शत्रुओं का वैभव छीन लिया है।

मैंने अपने इन शत्रुओं का, अपनी इन सपत्नियों का संहार किया है जिससे मैं अपने पति पर शासन कर सकूँ, अपनी प्रजा पर अकेली शासन कर सकूँ।

ऋग्वेद में 'जारों' और 'जारिणियों' के अनेकों संदर्भ आये हैं। अहिल्या का अपनी इच्छा से उत्साहित करके अपने जार को पति के पीठ फेरते ही बुलाना कोई एकाकी उदाहरण है, और है भी ऋग्वैदिककालीन ही। सप्तर्षियों की साध्वी पत्नियों के अभाव में अन्य द्वारा चहेते के पास उनकी 'प्राक्सी' भी उसी काल की है और चाहे अनुसूया बच रहती है, षण्मुख कार्त्तिकेय की धाय ऋषिपत्नियाँ फिर भी बन ही जाती हैं।

ऋग्वेद के एक अत्यन्त सम्मोहक सूत्र में जार अपनी प्रेयसी के पास रात्रि में जाने का प्रयत्न करता है। उसकी सफलता में कुटुम्ब का कुत्ता और स्वयं कुटुम्बी बाधक होते हैं। जार अत्यन्त निष्ठा से श्वान की, सास-ससुर की स्तुति करता है, देवताओं का स्मरण करता है जिससे, कुटुम्बी, प्रहरी और श्वान निद्रावश हो जायँ और उसका अभिसार सफल हो। फिर निद्रा

की कृपा से सबको सुला कर वह गृह में प्रवेश करता और प्रेयसी को जगा कर प्रभात पर्यंत उसके पास रहता है।

शुन:शेप की कथा में उसके अपने पिता द्वारा बलि के लिए बेच दिये जाने का उल्लेख है। निश्चय यह चिन्तनीय है, विशेषकर इसलिए कि यह अब्राहम की भाँति भगवान को अपनी प्रियतम वस्तु अर्पित करने की भी बात नहीं। संभव है, इस प्रकार की भी ऋग्वैदिक काल में कौटुम्बिक घटनाएँ जब-तब घट जाती रही हैं। पर यहाँ भी शुन:शेप अपने माता-पिता को पुकारने से नहीं चूकता--

को नो मह्या अदितये पुनर्दात्पितरं च दृशेयं मातरं च

(कौन हमें अदिति तक पहुँचाएगा जिससे फिर पिता और माता के दर्शन कर सकूँ ?)

इस प्रकार कुछ प्राचीनपरक कौटुम्बिक ऐसी परिस्थितियों के बावजूद, जिन्हें आज का समाज स्वीकार नहीं करता, पंचनद का सप्त-सैन्धव आर्य-परिवार सुखी और स्नेह-सिक्त था। परिवार संयुक्त था और उसका प्रत्येक प्राणी अपने कर्त्तव्य को समझता था। किस प्रकार स्वर्ण-सजे दम्पति पुत्रों और पुत्रियों से भरे घर में जरापर्यंत सुखी जीवन बिताते थे, यह नीचे के मंत्र में ध्वनित है--

पुत्रिणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः ।
उभाहिरण्यपेशसा ।।

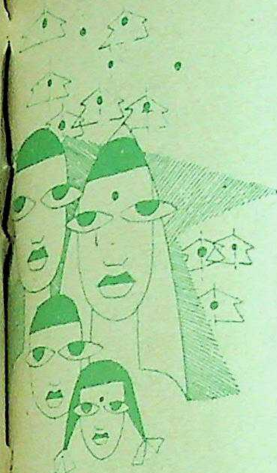
◎ ◎ ◎ ◎ ◎

माता-पिता के उपकार का बदला आसानी से नहीं चुकाया जा सकता। यदि कोई अपने माता-पिता को इस सारी धरती का सम्राट भी बना दे, तो भी न उनके प्रति यह कोई उपकार होगा और न उनके उपकार का बदला।

—भगवान बुद्ध

(संकलन : हरिकृष्ण देवसरे)

डॉ० भोलानाथ तिवारी



परिवार के विभिन्न सम्बन्धों को व्यक्त करने वाले शब्दों का अर्थ-वैभव !

'परिवार' मानव-समाज की सबसे महत्त्वपूर्ण संस्था है। उसे समाज का आधार भी कहें तो अत्युक्ति न होगी। वहीं सर्वप्रथम मनुष्य या व्यक्ति ने अपने-आप को बाँधना सीखा और बाँधना सीख कर ही अपने को बाँध कर वह समाज बना सका। 'परिवार' या 'समाज' अनेक व्यक्तियों का बँधा या सुश्रृंखलित रूप ही तो है। इसी कारण संस्कृत में परिवार की व्युत्पत्ति की गई है: 'परिव्रियते अनेन' (शब्द-कल्प-द्रुम), अर्थात् जिससे व्यक्ति घेरा जाय वह परिवार है। किन्तु यह बात आश्चर्यजनक है कि परिवार बाह्यत: व्यक्ति को बाँध कर या घेर कर भी भीतर से उसे मुक्त कर देता है। वहीं उसे 'स्व' का बन्धन तोड़ कर दूसरे के सुख-दु:ख को अपना मानने की पहली ट्रेनिंग मिलती है।

परिवार के मूल स्त्री-पुरुष हैं। सभी नातों-रिश्तों के आधार यही हैं। दूसरे शब्दों में सभी सम्बन्ध इन्हीं के सम्बन्धों पर आधारित हैं। विभिन्न सम्बन्धों के सूचक पारिवारिक शब्द सांस्कृतिक दृष्टि से बड़े ही महत्त्वपूर्ण हैं। यदि ध्यान दिया जाय तो यह स्पष्ट होते देर नहीं लगेगी कि सभी संस्कृतियों या भाषाओं में इन शब्दों का भण्डार एक-सा नहीं होता। उदाहरण के लिए, हिन्दी और अंग्रेज़ी के ही पारिवारिक सम्बन्ध-सूचक शब्दों को लें, हम देखेंगे कि

परिवार के प्रतीक : हमारे ये सार्थक शब्द

दोनों में पूर्ण समानता नहीं है। माता, पिता, भाई, बहिन, चाचा-चाची, भतीजा-भतीजी आदि कुछ सम्बन्ध-सूचक शब्द तो ऐसे हैं, जो दोनों ही में हैं, किन्तु दामाद, ससुर, सास, साला, बहनोई, मौसी, मौसा, मामा, मामी, बहू, नाती, पोता आदि ऐसे अनेक शब्द हैं, जिनके लिए हमारे यहाँ तो स्वतन्त्र शब्द हैं, किन्तु अंग्रेज़ी में स्वतन्त्र शब्द नहीं हैं। वहाँ इन-ला (in-law) आदि जोड़ कर इनके लिए आवश्यकतानुकूल शब्द बना लिए जाते हैं, जैसे 'फ़ादर-इन-ला' ससुर के लिए, या 'मामा' के लिए 'मैटरनल अंकल' आदि। इसका आशय यह है कि इन रिश्तेदारों का भारतीय परिवार में प्राचीन काल से स्थान था, इसीलिए उनके स्वतन्त्र नामकरण की आवश्यकता पड़ी, किन्तु अंग्रेज़-परिवार में इनका स्थान नहीं था, इसीलिए इनके लिए स्वतंत्र शब्दों की आवश्यकता का अनुभव नहीं हुआ। इस प्रकार भारत का पारिवारिक क्षेत्र अपेक्षाकृत वड़ा रहा है। यों इस दृष्टि से भारत में सर्वदा एकरूपता नहीं रही है। उदाहरणार्थ 'मौसी' और 'फूफी' का तो परिवार में प्राचीन काल में अपने यहाँ स्थान था, इसीलिए इनके लिए क्रम से 'मातृष्वसा' और 'पितृष्वसा' शब्द थे, किन्तु 'मौसा' और 'फूफा' के लिए परिवार में कदाचित् कोई विशेष स्थान नहीं था; इसीलिए उनके लिए स्वतन्त्र शब्द की आवश्यकता नहीं थी। हिन्दी के ये शब्द आधुनिक काल में 'मौसी' और 'फूफी' के आधार पर बनाए गए हैं। इस दृष्टि से आधुनिक क्षेत्र कुछ विस्तृत हो गया है।

यहाँ कुछ अत्यन्त प्रमुख सम्बन्ध सूचक शब्दों पर संक्षेप में प्रकाश डाला जा रहा है।

माता

■ 'माता' शब्द भारोपीय परिवार के प्राचीनतम शब्दों में है। आर्य, इसका प्रयोग भारत में आने के पूर्व से कर रहे हैं। इसी कारण ग्रीक meter, लैटिन mater, लिथुवानियन mote, स्लाव mati, जर्मन muotar, mutter, आइसलैंडिक modir, डच moeder तथा अंग्रेज़ी mother आदि रूपों में यह अनेक भाषाओं में विभिन्न रूपों में मिलता है। संस्कृत के पण्डितों ने इसकी व्युत्पत्ति अनेक प्रकार से दी है। वाचस्पत्य, शब्द-कल्प-द्रुम आदि कोशों में इसका सम्बन्ध निर्माणवाची 'मा' धातु से माना गया है; अर्थात् जो निर्माण करे वह 'माता' है। 'पूजा करना' या 'आदर करना' अर्थ के धातु 'मान्' से भी कुछ लोग 'माता' का सम्बन्ध मानते हैं; अर्थात् जिसकी पूजा हो या जिसका आदर किया जाय वह माता है। मापने के अर्थ में भी संस्कृत का एक धातु 'मा' है। एक तीसरे मतानुसार माता का सम्बन्ध इसी धातु से है। लैटिन तथा अंग्रेज़ी matrix (सांचा) का सम्बन्ध भी इसी से है। अर्थात् 'माता'

परिवार की शाखाएँ

माता, पिता, भाई, बहन, स्त्री, और बच्चे—इन सबको एक ही तने से निकली हुई शाखाओं के समान समझो। अपने प्रेम के सूत्र से अपने परिवार को बांध दो और उससे एक ऐसे देवालय का निर्माण करो जहाँ तुम सब मिल कर स्वदेश-पूजा और आत्म-त्याग कर सको। ऐसा करते हुए तुम्हें सुख मिलेगा ही, यह तो मैं नहीं कह

वह साँचा है जो पुत्र को अपने में ढालती है। अंग्रेज़ी मैट्रिक और मैट्रिकुलेट भी मूलतः इसी से संबद्ध हैं। वहाँ भी लड़के प्रवेश पाकर ढलते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टि से उपर्युक्त सभी व्युत्पत्तियाँ कपोल कल्पना हैं। वस्तुतः 'माता' शब्द बहुत पुराना है, जैसा कि ऊपर के उदाहरणों से स्पष्ट है। उस समय किसी शब्द के धातु के आधार पर निर्माण की सम्भावना नहीं थी। कदाचित् यह नर्सरी शब्द है और इसका आधार अनुकरणात्मक शब्द 'मा' है।

पिता

■ 'माता' की भाँति ही 'पिता' भी हमारे भाषा-परिवार का अत्यन्त पुराना शब्द है। अवेस्ता पिता, ग्रीक pater, लैटिन pater, जर्मन vater, गोथिक fadar अंग्रेज़ी father आदि रूप में यह अनेक प्राचीन और आधुनिक भाषाओं में पाया जाता है। इसका सम्बन्ध प्रायः 'पा' (पालना) धातु से माना जाता है; अर्थात् जो सन्तान का पालन करे वह पिता है। माता की भाँति ही इसकी व्युत्पत्ति भी मात्र कल्पना है। यह भी नर्सरी शब्द है और इसका आधार अनुकरण मूलक शब्द 'पा' है।

वस्तुतः छोटे बच्चे यों ही 'पा' 'मा' जैसे ओष्ठ्य ध्वनियुक्त शब्दों का उच्चारण बोलने के प्रारम्भिक दिनों में करते हैं, और संयोगवश लोगों ने उन्हें पिता-माता के लिए प्रयुक्त शब्द मान लिये हैं। इस श्रेणी के अनेक शब्दों का विकास इसी प्रकार के पा, मा, बा, ता, दा आदि अनुकार शब्दों से हुआ है।

> सकता; लेकिन इतना तो मैं जानता हूँ कि इससे आपत्तिकाल में भी तुम्हारा हृदय शान्त रहेगा, तुम्हारी आत्मा को संतोष मिलेगा, तुम्हें प्रत्येक कसौटी पर खरा उतरने की शक्ति प्राप्त होगी और भयंकर तूफ़ान के बीच भी स्वर्गीय ज्योति की एक झलक पाकर तुम्हारी आत्मा उल्लसित होगी।
>
> —मैज़िनी
>
> (संकलन : हरिकृष्ण देवसरे)

पत्नी, भार्या

■ 'पत्नी' शब्द भारतीय परिवार का बहुत पुराना शब्द नहीं है। इसीलिए इससे मिलते-जुलते शब्द अन्य देशों की भाषाओं में नहीं हैं। व्याकरण की दृष्टि से इसका सम्बन्ध 'पति' शब्द से है। जिसका 'पति' से सम्बन्ध हो वह पत्नी (पति-ङीप्, नुक्) है। 'पत्नी' के लिए एक शब्द 'भार्या' भी है। 'भार्या' का अर्थ है 'भरण की जाने योग्य'। अर्थात् पति पत्नी का भरण-पोषण करता है, इसीलिए उसका नाम 'भार्या' है। यह बात दूसरी है कि आजकल अनेक भार्याएँ अपने पति का ही भरण-पोषण करती हैं, ऐसी स्थिति में वस्तुतः ऐसे पति ही 'भार्या' संज्ञा के अधिकारी हैं।

पति, भर्ता

■ 'पत्नी' की भाँति ही यह भी बहुत पुराना शब्द नहीं है। यह शब्द 'पा' (रक्षा करना) धातु से है और इसका अर्थ है (पत्नी का) रक्षक। दुर्भाग्य है कि इस युग में बहुत से लोग पति संज्ञा के अधिकारी होकर भी 'पत्नी' की रक्षा में अपने को असमर्थ पा रहे

हैं। यों अधिकांश स्त्रियाँ भी अब अपनी रक्षा की अपेक्षा नहीं रखतीं और वे स्वयं पति की रक्षिका जैसी हैं। इस रूप में यथार्थ पति वे ही हैं।

जिस प्रकार पति-पत्नी संबद्ध शब्द हैं; उसी प्रकार भार्या-भर्त्ता भी है। 'भार्या' 'भरण करने योग्य' है तो 'भर्ता' 'भरण करने वाला' है। ऊपर कहे गए सिद्धान्त के अनुसार आज की कुछ स्त्रियाँ 'भर्ता' हैं और उनके पति 'भार्या'।

पुत्र

■ आजकल पुत्र पिता के लिए एक समस्या है--हर दृष्टि से। ठीक उसी प्रकार 'पुत्र' शब्द भाषाविज्ञानवेत्ताओं के लिए भी एक समस्या है--व्युत्पत्ति की दृष्टि से। इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में भारत में प्रचलित पुराना मत बहुत विचित्र है। लोगों का यह विश्वास रहा है कि मनुष्य पैदा होते ही तीन या चार ऋणों से दब जाता है। इनमें एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ऋण 'पितृऋण' है। पितृऋण से मुक्ति पाने के लिए पुत्र उत्पन्न करना आवश्यक है। इस प्रकार जिसे पुत्र पैदा नहीं होता वह पितृऋण का ऋणी रहता है और मरने पर उसे इस अपराध के लिए 'पुत्' नाम के नरक में जाना पड़ता है। अर्थात् यदि 'पुत्र' पैदा हो जाय तो 'पुत्' नरक में नहीं जाना पड़ता। इसी विश्वास के आधार पर पुत्र को 'पुत्' नरक से त्राण देने वाला अर्थात् पुत्+त्र कहा गया। इसीलिए पण्डितों के अनुसार 'पुत्र' लिखना अशुद्ध है, इसे 'पुत्त्र' (पुत् नरक से तारने वाला) लिखना चाहिए। 'पुत्र' की यह व्युत्पत्ति गोपथ ब्राह्मण, निरुक्त, रामायण, महाभारत तथा मनुस्मृति आदि अनेक प्राचीन ग्रन्थों में मिलती है। निरुक्तकार कहता है--

पुत्रः पुरू त्रायते निपरणाद्वा पुन्नरकं ततस्त्रायते इति वा।

मनु कहते हैं--

पुन्नाम्नो नरकाद् यस्मात् त्रायते पितरं सुतः।
तस्मात् पुत्रः इति प्रोक्तः स्वयमेव स्वयंभुवः।

किन्तु कहना न होगा कि यह व्युत्पत्ति एक सुन्दर कल्पना मात्र है। इसकी दूसरी व्युत्पत्ति 'पुष' (पोषण करना) धातु से मानी गई है। एक तीसरी व्युत्पत्ति 'पू' (पवित्र करना) से भी है। यह पिता को पवित्र करता है। वस्तुतः जैसा कि मोनियर विलियम्ज़ आदि ने संकेत किया है, इसकी व्युत्पत्ति संदिग्ध है।

पुत्रार्थी संस्कृत शब्द 'सूतु' अपेक्षाकृत पर्याप्त प्राचीन है। इसका सम्बन्ध 'सू' (पैदा होना) धातु से माना जाता है। अर्थात्

परिवार से विश्व तक

अगर तुम्हारा हृदय पवित्र है तो तुम्हारा आचरण भी सुन्दर होगा, अगर तुम्हारा आचरण सुन्दर है तो तुम्हारे परिवार में शान्ति रहेगी, यदि तुम्हारे परिवार में शान्ति रहेगी तो राष्ट्र में सुव्यवस्था होगी और यदि राष्ट्र में सुव्यवस्था है तो सम्पूर्ण विश्व में शान्ति और सुख का साम्राज्य होगा।

—एक चीनी लोकोक्ति

(संकलन : ऊर्मिला मलहोत्रा)

'सूनु' वह है जो पैदा हो। अंग्रेज़ी son, अवेस्ता hunu, लिथुवानियन sunus, स्लाव synu, गोथिक sunus, ऐंग्लो सैक्सन sunu, जर्मन sohn, डच zoon, तथा प्राचीन नार्स sunu आदि यही हैं। वैदिक साहित्य में पाया जाने वाला पतोहू का वाचक 'स्नुषा' का सम्बन्ध भी कुछ लोगों के अनुसार 'सूनु' से ही है। कुछ लोग इसका सम्बन्ध 'स्नु' (टपकना) से भी मानते हैं। अर्थात् 'पतोहू' या 'स्नुषा' वह है जो अचानक परिवार में आ टपके। बात भी सही है। यों आश्चर्य हैं कि अचानक टपक कर भी पतोहू शीघ्र ही परिवार का अंतरंग अंग बन जाती है। यही 'स्नुषा' शब्द वर्तमान पंजाबी में 'नू' रूप में मिलता है। 'स्नुषा' शब्द भी सूनु' की भाँति पर्याप्त पुराना है। लैटिन nurus, स्लाव snucha, ऐंग्लो सैक्सन snoru, जर्मन snura, schnur, ग्रीक nuos आदि इसी से संबद्ध है। हिन्दी **'पतोहू'** शब्द संस्कृत **'पुत्रवधू'** का विकसित रूप है।

दुहिता

▪ माता और पिता की भाँति ही 'दुहिता' शब्द भी बहुत पुराना है। अवेस्ता दुघ्ड्र, फारसी दुख्तर, ग्रीक thygater, जर्मन tochter, अंग्रेज़ी daughter, गोथिक dauchter, लियुवानियन dukter, तथा स्लाव dushti आदि इसी से संबद्ध हैं। भारतीय पण्डितों ने इसकी व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में तरह-तरह के अनुमान लगाए हैं। यास्क अपने निरुक्त में 'दूरे हिता भवति' कह कर यह कहना चाहते हैं कि 'दुहिता' वह है जिसके अधिक से अधिक दूर जाने में हित हो। अर्थात् यदि लड़की का विवाह समीप होगा तो हर समय उसे कुछ न कुछ देना पड़ेगा, अतः उसे दूर से दूर विवाहित करने में ही अपना हित है। हिन्दू घर में अत्यन्त प्राचीन काल से लड़के का जन्म शुभ तथा लड़की का जन्म अशुभ-जैसा माना जाता रहा है। इसीलिए कुछ लोग 'दुहिता' का सम्बन्ध दह् (जलाना) से मानते हैं। अर्थात् लड़की परिवार या माता-पिता को जलाने वाली होती है। कुछ लोग दू (दुःखी करना) से इसका सम्बन्ध मान कर इसे 'दुःख देने वाली' भी कहते हैं, या दुर्+हिता अर्थात् 'अहित करने वाली' मानते हैं। किन्तु इसकी अधिक वैज्ञानिक व्युत्पत्ति दुह (दूहना) से है। प्राचीन भारोपीय परिवार में पुत्री का

प्रजा : पुत्रवत् ; पुत्र : तीरवत्

सारी प्रजा के लोग मेरे बच्चे हैं और मैं उनका पिता। उनकी भौतिक तथा नैतिक उन्नति करना मेरा परम धर्म है।

—प्रियदर्शी अशोक

यहूदी लोग बच्चों को भगवान का वरदान मानते थे। उनका कहना था कि बच्चे शक्तिशाली व्यक्ति के हाथ में तीरों की तरह हैं। वह मनुष्य भाग्यशाली है, जिसका तरकस तीरों से भरा होता है।

—ओल्ड टेस्टामेन्ट साम्स

(संकलन : मनोज ठाकुर)

प्रमुख कार्य घर की गायें दूहना था, इसीलिए उसे 'दुहिता' कहा गया। इस प्रकार दुहिता का मूलार्थ 'दूध दूहने वाली' है।

भाई

■ भाई का सम्बन्ध संस्कृत 'भ्रातृ' से है। यह अंग्रेजी brother, अवेस्ता bratar, जर्मन bruder, फ्रेंच frere, लैटिन frater, लिथुवानियन broter-elis, स्लाव bratru, गोथिक brothar, ग्रीक phrater आदि से सम्बन्धित हैं। एक मत से इसका सम्बन्ध भ्राज् (चमकना) से है, अर्थात् 'भ्रातृ' वह है जो चमके (भ्राज्+इण्णुच्)। इसकी दूसरी व्युत्पत्ति भृ (अधिकार करना, सहारा देना) से मानी जाती है। भाई या तो धन-सम्पत्ति बँटवा लेते हैं या सहारा देते हैं। इस व्युत्पत्ति में इन्हीं की ओर संकेत है। **भतीजा** (भ्रातृज), **भतीजी** (भ्रातृजा) और **भावज** या **भौजाई** (भ्रातृजाया) भी इसी से संबद्ध हैं।

बहिन

■ यह संस्कृत शब्द 'भगिनी' का विकास है। 'भगिनी' की व्युत्पत्ति कुछ लोग तो भग (ऐश्वर्य, सौभाग्य) से मानते हैं। भाई ही बहिन के लिए ऐश्वर्य है। इस प्रकार **'भगिनी'** का अर्थ 'ऐश्वर्यवाली' या 'सौभाग्यशालिनी' है। एक अन्य मत है—**भंग यत्नः पित्रादितो द्रव्यादाने विद्यतेऽस्याः** अर्थात् जो पिता आदि की संपत्ति की अधिकारिणी नहीं है। इसका आशय यह है कि अब, जब पिता की संपत्ति में पुत्री का भी अधिकार हो गया है, वह इस नाम की अधिकारिणी नहीं है और उसे 'अभागिनी' कहना चाहिए। **बहनोई** (भगिनी-पति), **भानजा** (भागिनेय), **भानजी** (भागिनेयी) आदि का सम्बन्ध भी इसी से है। संस्कृत में भगिनी के लिए और पुराना शब्द 'स्वसा' है। स्वसृ से ही जर्मन schwester, गोथिक swister, लिथुवानियन sesu, लैटिन soror, डच zuster, अँग्रेजी sister, ग्रीक sor, आइसलैंडिक systir आदि सम्बद्ध हैं। इसकी व्युत्पत्ति संस्कृत पंडितों द्वारा सु+अस्+ऋन् से मानी गई है, किन्तु वस्तुतः यह शब्द इस दृष्टि से सन्दिग्ध है। कुछ लोग इसे सृ (सरकना) से भी मानते हैं।

ननद

■ ननद और भावज का कलह प्रसिद्ध है। भारतीय लोक-गीतों में इसके चित्र भरे पड़े हैं। 'ननद' शब्द की व्युत्पत्ति इसी आधार पर पंडितों द्वारा दी गई है। वाचस्पत्य कोश आदि में कहा गया है **ननन्दति कृतायामपि सेवायां न तुष्यति**। अन्यत्र भी **न नन्दति सेवयापि न तुष्यति**। अर्थात् ननद वह है जो (भावज द्वारा) सेवा की जाने पर भी 'नन्द' या प्रसन्न न हो। असंभव नहीं है कि सामान्यतः, ननदों की इस प्रवृत्ति के कारण यह कुनाम पड़ गया हो। क्या महिला समाज के इस जागरण युग में ननदें इस नाम का विरोध करेंगी, और अपने लिए कोई सुन्दर-सा नाम प्रस्तावित करेंगी? 'सुनद' नाम संभवतः अच्छा रहेगा।

देवर

■ 'देवर' शब्द भी कम मनोरंजक नहीं है। महाभारत में पति के न रहने पर देवर से विवाह

करने का आदेश दिया गया है—**नारी तु पत्यभावे वै देवरं कुरुते पतिम्**। नारद, गौतम तथा मनु आदि के धर्म-शास्त्रों में संतानार्थ 'देवर' से ही नियोग की आज्ञा है। इसी परम्परा में यास्क के अनुसार '**द्वितीयो वरो भवति**', अर्थात् (भाभी का) दूसरा वर होने के कारण यह 'देवर' कहलाता है। अन्य भाषाओं की तुलना से भी यह बात ठीक ज्ञात होती है। लटिन में यह 'देवर' (द>ड>ड़>र>ल) शब्द levir रूप में मिलता है और वहाँ भी इसका अर्थ 'पति का भाई' ही है। इसी levir से अँग्रेजी में levirate शब्द बना है, जिसका अर्थ है 'पुत्रहीन विधवा भाभी से देवर का व्याह' या 'देवर-भाभी' का व्याह। इस प्रकार देवर शब्द इस बात का साक्षी है कि प्राचीन काल में पति के मरने के बाद प्रायः देवर से विवाह कर दिया जाता था। आधुनिक काल में देवर-भाभी के मज़ाक भी संभवतः उसी परम्परा की कड़ी है।

ससुर

■ इसका सम्बन्ध संस्कृत शब्द श्वशुर से है। ग्रीक ekuros, लैटिन socer, लिथुवानियन szeszuras, स्लाव svekru, गोथिक swaihra, जर्मन sweher, ऐंग्लो सैक्सन sweor भी इसी से सम्बद्ध हैं। इसका आशय यह है कि यह शब्द पर्याप्त पुराना है और आर्य भारत में आने के पूर्व से इसका प्रयोग करते रहे हैं। इसका सम्बन्ध 'श्रश्' (फैलना) से माना जाता है। अर्थात् ससुर वह है जो अपने पुत्र और उसकी संतान तथा अपनी पुत्री और उसकी संतान रूप में संसार में फैले।

सास

■ इसका सम्बन्ध संस्कृत श्वश्रू से है। इसका शाब्दिक अर्थ है 'श्वशुर का'। लैटिन socrus, स्लाव svekry, ऐंग्लो सैक्शन sweger, जर्मन swigar, schwieger आदि का सम्बन्ध इसी से है।

जामाता

■ हिन्दी 'जमाई' जामातृ या जामाता से सम्बद्ध है। निरुक्तकार यास्क के अनुसार **जायां माति मिनोति मिमीते वा**; अर्थात् दामाद वह है जो स्त्री से संतान पैदा करे। ऋग्वेद में तथा अन्यत्र भी इस शब्द का प्रयोग बहनोई तथा पति के अर्थ में हुआ है। ये भी संतान पैदा करते हैं, अतः इनके लिए भी यह शब्द उपयुक्त ही है। बाद में इस शब्द का प्रयोग 'दामाद' के लिए ही सीमित हो गया है, क्योंकि कन्या सन्तानार्थ दामाद को ही दी जाती है। उसकी 'पति' संज्ञा तो बाद की है और बहनोई संज्ञा तो आवश्यक भी नहीं है कि सबकी हो ही।

तात

■ सम्बन्ध बोधक शब्दों में 'तात' शब्द सबसे अधिक उर्वर है। मूलतः इसका अर्थ 'पिता' था। पंडितों के अनुसार इसकी व्युत्पत्ति है—**तनोति विस्तारयति गोत्रादिकम (तन्+क्त)** अर्थात् जो गोत्र या कुल आदि का विस्तार करे। मेरा अनुमान है कि यह व्युत्पत्ति कल्पना है और यह बच्चों द्वारा अनायास उच्चरित ध्वनि ता-ता से संबद्ध है तथा नर्सरी शब्द है। 'पिता' के प्रति आदर का भाव था ही, अतः आगे चल कर पितातुल्य और आदरणीय अन्य

लोगों के लिए भी 'तात' शब्द का प्रयोग होने लगा। **ताऊ (सं. तातगु=चाचा)** इसी 'तात' से है, जिसे आकारान्त पुलिंग बना कर ताया भी कहते हैं। **'ताई'** इसका स्त्रीलिंग है। 'त' ध्वनि कभी-कभी 'च' हो जाती है। इसी कारण 'तात' **चाचा या चचा** हो गया, जिसका स्त्रीलिंग **चाची** है। 'त' का द भी हो जाता है। इस तरह 'तात' का **'दादा'**, फिर स्त्रीलिंग **दादी** हो गया है। 'दादा' का प्रयोग 'आजा', 'पिता', 'ताया', 'बड़ा भाई' आदि के लिए होता है। 'दादी' का प्रयोग 'आजी' के लिए होता है। बड़े भाई के अर्थ में 'दादा' का स्त्रीलिंग **'दीदी'** है, जिसका अर्थ बड़ी बहिन है। 'द' का 'ज' होने से यही **'दीदी'** शब्द **'जीजी'** बन गया है। 'जीजा' (बहनोई) शब्द इस जीजी का पुलिंग बनाया गया है। अंग्रेजी डैड, डा, डैडा, डैडी, केल्टिक टाड, ब्रीटन टाड, टाट, ग्रीक ताता आदि भी इसी से संबद्ध है। 'तात' का प्रयोग संस्कृत में बड़ों और छोटों दोनों के लिए संबोधन के शब्द के रूप में भी होता रहा है। अंग्रेजी में 'अलविदा' के अर्थ में प्रयुक्त शब्द **'टाटा'** भी उससे भिन्न नहीं है। यह पुराना संबोधन है जो अब 'अलविदा' हो गया है। ■

सुखी परिवार : दो दृष्टियाँ

अपने माता-पिता को प्रेम करो। जिस परिवार के तुम जन्मदाता हो उसकी ख़ातिर (यानी अपनी सन्तानों के प्रेम की वजह से) उस परिवार को मत भूल जाओ, जिसमें तुम्हारा जन्म हुआ है। प्रायः ऐसा देखा गया है कि नये बन्धन पुराने बन्धनों को ढीला कर देते हैं। लेकिन उचित यह है कि वे उस प्रेम-शृङ्खला की एक नवीन कड़ी बनें जो परिवार की अगली पीढ़ियों को परस्पर एक दूसरे से सम्बद्ध कर दें।

—मैज़िनी

वह व्यक्ति सुखी पारिवारिक जीवन का अनुभव नहीं कर सकता जो केवल अपने सुख की ही चिन्ता में लगा रहता है। बल्कि सुखी तो उसे समझना चाहिये जो पूर्ण सन्तोष के साथ अपने सुख की चिन्ता का भार अपने जन्मदाता ईश्वर के ऊपर छोड़ कर अपने कर्त्तव्य-पथ पर परिश्रम के साथ जुटा रहता है।

—टॉमस रीड

(संकलन : हरिकृष्ण देवसरे)

डॉ० सत्यव्रत सिन्हा

तन्वङ्गी पाञ्चाली के कोमल गात की कमल-गन्ध जिन पाँचों भाइयों के मन में समान रूप से समा गई थी और जो काम मोहित हो गये थे, उनके पारिवारिक धर्म-संकट की कथा और प्रतीकार्थी व्याख्या !

• • •

(दृश्य : पांचाल-नरेश द्रुपद के राज-भवन का एक विश्राम-कक्ष। वार्ता में व्यस्त युधिष्ठिर, भीम, नकुल तथा सहदेव मंच के बाएँ मार्ग से प्रवेश करते हैं)

नकुल : आर्य ! हम पाँचों भाइयों में आप सबसे बड़े हैं। जगत में आप धर्मराज युधिष्ठिर के नाम से पुकारे जाते हैं परन्तु मैं यह नहीं समझ पा रहा हूँ कि दो बड़े भाइयों के रहते छोटे भाई का विवाह पहले क्यों हो रहा है !

युधिष्ठिर : (दक्षिण क्षेत्र में रखे सिंहासन पर बैठते हुए) नकुल ! धर्म की दृष्टि से देखा जाय तो तुम्हारा कथन अनुचित नहीं है। पर तुम तो जानते हो, द्रौपदी को अर्जुन ने स्वयंवर में मत्स्य भेद कर जीता है, इसलिए विवाह के अधिकारी वही हैं।

सहदेव : परन्तु आर्यश्रेष्ठ ! स्वयंवर में भाई अर्जुन को लक्ष्य-भेद करने की अनुमति हम सबने मिल कर दी थी।

भीम : (बीच के आसन से उठते हुए) हाँ ! सहदेव बिल्कुल ठीक कहते हैं। वैसे आप मेरे पराक्रम से भी परिचित हैं। क्या मैं द्रौपदी को



चुगताई के एक प्रसिद्ध चित्र की रेखानुकृति

कमलगन्धा

नहीं जीत सकता था? तो हे कुरुश्रेष्ठ ! आप ही बताएँ, दो बड़े भाइयों के रहते क्या अर्जुन का विवाह न्याय-संगत है।

नकुल : हाँ अग्रज ! भाई भीम के प्रश्न का समाधान करें।

युधि० : **(अति गंभीर होकर)** बन्धुओ ! आज हमारे सामने एक विकट प्रसंग उपस्थित हो गया है। ऐसा लगता है कि यदि इस समस्या का समाधान न हुआ तो हम अविभाज्य पाण्डवों का विभाजन हो जायगा। बाल्यकाल से लेकर अब तक कौरवों ने हमें नष्ट करने के लिए अनेक प्रयत्न किये, परन्तु हमारी एकात्मकता उनको सदैव हराती रही है। परन्तु आज लग रहा है कि पांचाली द्रौपदी के कारण ......।

सहदेव : **(लम्बी साँस लेकर)** पांचाली द्रौपदी ! ओह ! ऐसी सुन्दरी मैंने आज तक नहीं देखी भइया !

युधि० : **(आश्चर्य से)** सहदेव ! यह कथन तुम्हें शोभा नहीं देता !

नकुल : भइया ! सहदेव का कथन चाहे शोभा दे या न दे, पर सत्य यही है कि उस तन्वंगी पांचाली की नील आभा दृष्टि से हटती ही नहीं। उसके कोमल गात से कमल की सुगन्ध......।

युधि० : **(क्षुब्ध होकर)** भाई नकुल ! तुम भी......।

भीम : भइया ! नकुल और सहदेव की जो दशा है, वैसी ही मेरी भी है। सत्य को छिपाना सबसे बड़ा पाप है। महाराज द्रुपद द्वारा आयोजित उस विशाल स्वयंवर सभा में द्रौपदी के अनुपम सौन्दर्य को देख कर मैं चकित रह गया था। भइया ! उस समय मैंने अपने मन को बहुत समझाया था कि राक्षस हिडिम्ब की बहन हिडिम्बा भी तो कम सुन्दर नहीं थी। मैंने कर्त्तव्यवश उसे ग्रहण भी किया था। परन्तु कृष्णा द्रौपदी को देख कर मैं हिडिम्बा को भूल गया।

युधि० : **(आहत होकर)** तो तुम सभी काम पीड़ित हो गये हो ?

नकुल : **(भइया)** हम पाँचों भाइयों में धर्माचरण में आप सर्वश्रेष्ठ हैं। सत्य कहें ! क्या द्रौपदी को देख कर आपके मन पर कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई ?

युधि० : **(चुप हैं)**.......।

सहदेव : आप चुप क्यों हैं आर्यश्रेष्ठ ? आप सत्यव्रती हैं। उत्तर दें !

भीम : भइया ! नकुल और सहदेव का प्रश्न मेरा भी प्रश्न है।

युधि० : विधाता का न जानें कैसा विधान है। मैं निश्चय ही सत्यव्रती हूँ....तो लो सुनो। द्रौपदी को मैं भी आत्म-भाव से देखता हूँ।

भीम, नकुल, सहदेव : तब ?

युधि० : यही तो प्रश्न है। इसी का समाधान मैं विगत दो दिनों से ढूँढ़ रहा हूँ.....पर नहीं मिल रहा है।

भीम : ठीक है, इसका निर्णय हम सब

अपनी माता कुन्ती पर छोड़ते हैं ।
चलिये हम सब माँ के कक्ष में चलें ।

युधि० : संभवतः तुम लोग स्वयंवर विजय के आनन्द में माता का निर्णय नहीं सुन सके थे । तुम्हें स्मरण होगा... अभी दो दिन पूर्व की ही तो बात है.. हम सब लोग द्रौपदी सहित अपने निवास स्थान, उस कुंभकार के द्वार पर पहुँचे थे और प्रसन्नचित्त हो मैंने बाहर से ही माँ को पुकारते हुए कहा था, "माँ, हमलोग आज भिक्षा में रत्न लेकर आये हैं ।" तो माता ने द्वार खोलने के पूर्व ही कहा था, "पुत्रों ! रत्न को आपस में बाँट लो ।"

भीम : बस भइया ! अब इसमें सोचना-विचारना नहीं है । माता की इच्छा शिरोधार्य कर महाराज द्रुपद को सूचित करिए ।

युधि० : इतने उतावले न बनो भीम ! हमें भाई अर्जुन और द्रौपदी की इच्छा का भी तो ध्यान रखना है ।

भीम : तो वह देखिए । भाई अर्जुन इधर ही आ रहे हैं । इसी दम उनसे पूछ लीजिये ।

युधि० : हाँ । मैं अवश्य पूछूँगा, परन्तु एकान्त में ।

भीम : हमें स्वीकार है । आओ नकुल ! आओ सहदेव !

(प्रस्थान)

(अर्जुन का दायीं ओर से प्रवेश)

अर्जुन : कुरूश्रेष्ठ ! मैं आपकी वन्दना करता हूँ ।

युधि० : एक बहुत ही निजी बात है धनंजय ! क्या तुम सहन कर सकोगे ?

अर्जुन : आर्य ! आप जानते हैं, माता और भाइयों के कल्याण के लिए मेरा जीवन अर्पित है । निःसंकोच होकर कहें ।

युधि० : भाई अर्जुन ! ऐसा प्रतीत होता है कि पांचाली द्रौपदी के कारण हम पाँचों भाइयों में फूट पड़ जायगी ।

अर्जुन : ऐसा कभी नहीं हो सकता महाभाग ! यदि कारण दौपदी है तो मैं उसका त्याग कर दूँगा ।

युधि० : तुम धन्य हो अर्जुन ! परन्तु इस अवसर पर द्रौपदी का त्याग नहीं करना है वरन्......।

अर्जुन : वरन् ?

युधि० : उस अनिन्द्य सुन्दरी द्रुपद-सुता को हम पाँचों भाइयों के लिए स्वीकार कराना है ।

अर्जुन : **(अत्यन्त आश्चर्य से)** आर्यश्रेष्ठ !

युधि० : हाँ महाबाहु । द्रौपदी को हम सबने आत्मभाव से देखा है । मन ही मन हम सभी उसे पत्नी रूप में स्वीकार कर चुके हैं ।

अर्जुन : ओह ! ...क्या ?....क्या माता का भी यही निर्णय है ?

युधि० : हाँ भाई । माँ ने स्वयंवर के बाद ही कहा था कि "आपस में बाँट लो" ।

अर्जुन : **(चुप है)**

युधि० : अर्जुन ! तुम चुप हो गये ! संभवतः तुम मन ही मन कह रहे होगे कि 'धर्मराज' का ढोंग रचने वाला तुम्हारा यह बड़ा भाई युधिष्ठिर कितना कामी है, लम्पट है जो अपने छोटे भाई की वाग्दत्ता पत्नी पर ही

कुदृष्टि रखता है। साथ ही भीम, नकुल और सहदेव को भी धिक्कार रहे होंगे।

अर्जुन : आर्यपुत्र ! कल्प-विकल्प अब छोड़ दें। भाइयों की एकात्मता मेरे लिए श्रेयस्कर है। मैं महाराज द्रुपद के पास जा रहा हूँ। कुरूश्रेष्ठ ! आप धैर्य रखें।

(अर्जुन का दक्षिण क्षेत्र की ओर प्रस्थान)

युधि० : रुको ! रुको अर्जुन ! ओह ! महाबाहु ! मैंने यह कैसा अन्याय तुम्हारे साथ किया है। महाराज द्रुपद जिनके हम अतिथि हैं, वे क्या कहेंगे ?

(वेदव्यास और द्रुपद का बाईं ओर से प्रवेश)

वेदव्यास : कुन्तीनन्दन युधिष्ठिर ! मेरा आशीर्वाद ग्रहण करें।

युधि० : **(मुड़ कर देखते हुए)** ओह ! महर्षि व्यास ! क्षमा करें ! मैं आपकी वन्दना करता हूँ....महाराज द्रुपद ! मेरा प्रणाम स्वीकार करें।

द्रुपद : पांचाल की प्रजा कुरूश्रेष्ठ का अभिनन्दन करती है।

युधि० : आज्ञा दें आर्यजन ! कैसे आना हुआ ?

व्यास : आर्यपुत्र ! महाराज द्रुपद अपनी कन्या द्रौपदी के विवाह को लेकर बहुत चिन्तित हैं।

द्रुपद : हाँ आर्यपुत्र ! द्रौपदी मेरी एकमात्र दुहिता है। मैंने उसे यज्ञ से प्राप्त किया था। इसलिए वह याज्ञसेनी है। महाबाहु अर्जुन ने स्वयंवर में मेरी लाज रख ली, परन्तु यह जान कर अपार दुःख हुआ कि आप चारों भाई भी उसे पत्नी बनाना चाहते हैं।

वेदव्यास : हाँ कुन्तीनन्दन ! आपने यह निश्चय कैसे कर लिया ? यह विचार तो लोक और वेद दोनों के विरुद्ध है !

परिवार की बीमारी

एक दीन-दुःखी पंडित ने महाराज भोज की सभा में जाकर उनसे निवेदन किया, "महाराज ! मेरी माँ न तो मुझसे प्रसन्न रहती है और न मेरी स्त्री से; मेरी स्त्री भी न मुझसे प्रसन्न रहती है और न मेरी माँ से तथा मैं भी न तो अपनी माँ से प्रसन्न रहता हूँ और न स्त्री से। बताइये, इसमें किसका दोष है ?"

युधि० : ऋषिकुलश्रेष्ठ ! धर्म की गति सूक्ष्म है। इसकी ठीक पहचान मुझे नहीं है।......यूँ समझें कि मैं अपनी माता की इच्छा का पालन कर रहा हूँ !

द्रुपद : परन्तु आर्यपुत्र ! यह तर्क न्यायसंगत नहीं प्रतीत होता !

वेदव्यास : हाँ कुरूश्रेष्ठ। महाराज द्रुपद उचित कहते हैं। तुम्हारा कथन सदाचार के विरुद्ध पड़ता है।

युधि० : महर्षि ! आपको विदित है कि हम पाँचों भाई केवल शरीर से अलग हैं, परन्तु हमारा मन, वचन और कर्म एक है। द्रौपदी के प्रति हमारा आकर्षण सहज है और उन्हें हमारी एकात्मकता को

अविभाज्य रखना होगा।

द्रुपद : महर्षि ! यह मैं क्या सुन रहा हूँ ! पूर्वजों ने तो कभी ऐसे अधर्म का आचरण नहीं किया।

वेदव्यास : (आँखे मूँदते हुए) दिक्काल को पार कर मैं देख रहा हूँ। पांडवों का द्रौपदी के प्रति आकर्षण सहज है।

राजा को यह समझते देर न लगी कि, पंडित के पारिवारिक कलह, वैराग्य एवं असन्तोष का मूल कारण धन की कमी है। राजा ने तत्काल इसका इलाज कर दिया। फलस्वरूप पंडित के परिवार के सब प्राणी शान्त एवं एक दूसरे से सन्तुष्ट हो गये।

—प्रेषक : सत्यदेव नारायण सिन्हा

देवि कुन्ती का वचन सत्य है।

द्रुपद : यह आप क्या कह रहे हैं ?

वेदव्यास : **(आँखे खोलते हुए)** मैं सत्य कह रहा हूँ महाराज। **(युधिष्ठिर की ओर बढ़ कर)** आर्यपुत्र युधिष्ठिर ! आप देवि कुन्ती को जाकर सूचित करें कि चिन्ता न करें....। समाधान हो गया।

युधि० : आपकी आज्ञा शिरोधार्य है ऋषि-कुलश्रेष्ठ......महाराज ! प्रणाम ! **(प्रस्थान वाम क्षेत्र से)**

द्रुपद : यह कैसी अकल्पित बात है महर्षि ? मेरी द्रौपदी की रक्षा करिये.... मेरे सम्मान की रक्षा करिये अन्यथा संसार क्या कहेगा ? अपने पुत्र से अधिक मैं अपनी कन्या का दुलार करता हूँ।

वेदव्यास : पिता का स्वभाव ऐसा ही होता है महाराज ! परन्तु मोह को तो तोड़ना ही पड़ता है ! सुनें महाराज ! द्रौपदी पूर्व-जन्म की श्रापिता इन्द्राणी है और पांडव हैं पूर्व-जन्म के श्रापित इन्द्र। इन्द्र का जो तेज धर्म में मिल गया था वह युधिष्ठिर के रूप में कुन्ती में उत्पन्न हुआ। जो बल वायु में गया था उससे भीम का जन्म हुआ। जो आधा बल स्वयं इन्द्र के पास रह गया उससे अर्जुन का जन्म हुआ......और इन्द्र का जो रूप अश्विनी कुमारों के पास चला गया था उससे माद्री द्वारा नकुल और सहदेव का जन्म हुआ। इन्द्र की ही पत्नी इन्द्राणी यज्ञीय अग्नि से महाभागा द्रौपदी के रूप में उत्पन्न हुई है। इसलिए द्रौपदी को एक ही इन्द्र की पत्नी मानना चाहिए।

द्रुपद : परन्तु लोक को यह कैसे स्वीकार होगा ऋषिवर ?

वेदव्यास : तो सुन लें महाराज ! लौकिक दृष्टि से निस्सन्देह एक स्त्री के पाँच पति असंगत हैं, परन्तु पाण्डवों और द्रौपदी के पूर्व जीवन के सन्दर्भ में मैं जब कहता हूँ कि एक प्राण-शक्ति पाँच इन्द्रियों के साथ सहयुक्त होती है, या एक मूल वाग्देवी प्रकृति पंचभूतों में समाविष्ट होती है तो आपको चिन्ता करने का कोई कारण नहीं रह जाता। इतिहास, पुराण युग-

युगों तक पांडवों और द्रौपदी को लेकर व्याख्या करते रहेंगे और सदैव-सदैव स्वीकृत करते रहेंगे कि पांडवों का द्रौपदी से विवाह न्याय-संगत था।

द्रुपद : **(व्यास के चरणों में गिर कर)** मुझे आपका कथन स्वीकार है ऋषिकुलश्रेष्ठ! द्रौपदी पाँचों पांडवों की पत्नी होगी।

वेदव्यास : साधु! साधु! महाराज। अब विलम्ब नहीं होना चाहिए। कल प्रातःकाल से शुभ मुहूर्त्त प्रारम्भ हो रहा है। चलिए। कन्यादान का पुण्य फल लीजिये।

(दोनों का दक्षिण भाग से प्रस्थान)

(भीम, नकुल और सहदेव का बाईं ओर से प्रवेश)

भीम : **(प्रवेश करते हुए)** आर्य! क्षमा करें। एकान्त में बैठना कठिन हो गया। अरे!..... आर्यपुत्र कहाँ गये? नकुल! सहदेव! भइया तो यहाँ नहीं दिखाई पड़ते।

नकुल : संभवतः महाराज द्रुपद के पास प्रस्ताव लेकर गये हैं।

सहदेव : हाँ! यही बात होगी। आपने देखा ही था कि दौपदी को लेकर भइया कितने चिन्तित थे!

भीम : ठीक है। कोई चिन्ता की बात नहीं। यदि महाराज द्रुपद ने आर्य पुत्र का प्रस्ताव ठुकरा दिया तो हम द्रौपदी का हरण कर लेंगे।

(अर्जुन का दक्षिण भाग से प्रवेश)

भीम : अरे! अर्जुन! कहाँ थे अब तक! आर्यपुत्र को तुमने देखा है?

अर्जुन : नहीं तो! आर्यपुत्र को तो मैं यहीं छोड़ कर गया था।

भीम : कहाँ गये थे?

अर्जुन : महाराज द्रुपद के पास यह सन्देश लेकर कि द्रौपदी केवल मेरी पत्नी नहीं वरन....

भीम : हाँ! हाँ! कहो.....।

अर्जुन : वरन्....वह हम पाँचों भाइयों की पवित्र बन्धन है।

भीम : तुम धन्य हो अर्जुन! हमारी शंका तुमने दूर कर दी।

(युधिष्ठिर का बाईं ओर से प्रवेश)

युधि० : **(प्रवेश करते हुए)** परन्तु मैं तो मूल को लेकर चिन्तित हूँ।

भीम : तो क्या आप भी महाराज द्रुपद के पास गये थे? क्या उन्होंने आपका प्रस्ताव ठुकरा दिया?

युधि० : नहीं भीम! महाराज तो स्वयं महर्षि वेदव्यास के साथ मेरे पास आये थे और महर्षि ने हमारी इच्छा का अनुमोदन भी किया था।

सहदेव : तो फिर आप किस मूल को लेकर चिन्तित हैं?

युधि० : सहदेव! मूल है आर्या द्रौपदी।

(पृष्ठभूमि में विशेष वाद्य-ध्वनि)

(द्रौपदी का दक्षिण भाग से प्रवेश, पांडव अचंभित खड़े रह जाते हैं।)

द्रौपदी : मैं पांचाल नरेश की कन्या, द्रौपदी! महाराज पाण्डु के पुत्रों को प्रणाम करती हूँ।

अर्जुन : **(गंभीरता से)** आर्या!

युधि० : **(आश्चर्य से)** द्रौपदी!

भीम : **(प्रसन्न होकर)** पांचाली!

नकुल : **(मोहित होकर)** नीलवर्णी!

सहदेव : (**मोहित होकर**) कमलगन्धा !

द्रौपदी : हाँ ! आर्यजन ! मैं ही हूँ पांचाली, द्रौपदी, कृष्णा, कमलगन्धा ! आपलोगों के समक्ष मैं अनाहूत चली आयी हूँ। इसलिए क्षमा माँगती हूँ।

नकुल : नहीं देवि ! इसमें क्षमा माँगने की कौन-सी बात है। हम लोग तो आप ही के विषय में.....।

द्रौपदी : चिन्तित हैं। क्यों महाबाहु अर्जुन ?

अर्जुन : हाँ देवि ! मैं अपने भाइयों की इच्छा के विरुद्ध......।

द्रौपदी : आपकी लाचारी मैं समझ रही हूँ आर्यपुत्र !

युधि० : तो बोलो देवि ! समाधान करो !

भीम : हाँ देवि ! हम लोग बहुत अधीर हैं !

नकुल : देवि को हमारी इच्छा का ध्यान रखना होगा !

सहदेव : हाँ ! आपको हम सबकी इच्छा पूरी करनी होगी !

अर्जुन : देवि ! तुम देख रही हो न ! अनेक युद्धों के विजेता प्रतापी पांडुपुत्र तुम्हारे सामने आतुर होकर खड़े हैं।

द्रौपदी : आर्यपुत्र ! राजभवन के एकान्त प्रकोष्ठ में मैं खड़ी थी कि पत्थर की दीवारों ने मेरे और आपके पूर्व जन्म की कथा प्रारम्भ कर दी, पर मुझसे सुना नहीं गया। मैंने कहा....धत्.....मेरा मूल्य ही क्या है, मैं तो स्त्री हूँ और ऊपर से भिक्षा ! क्यों आर्यपुत्र ! मैंने उचित कहा न ?

अर्जुन : आर्या ! यह सत्य है कि मैंने मत्स्य भेद कर तुम्हें जीता है, परन्तु मेरी जीत उस समय तक पूरी नहीं होगी जब तक.....!

द्रौपदी : जब तक आपके भाइयों को भी वरण न कर लूँ ! यही कहना चाहते हैं न आर्य ?

अर्जुन : हाँ देवि !

द्रौपदी : (**क्षुब्ध होकर**) परन्तु आर्य ! आप यह क्यों नहीं कहते कि भाइयों की कामान्धता के आगे आपकी कुछ नहीं चली ?

अर्जुन : पांचाली !

द्रौपदी : सत्य कटु होता है आर्य !

युधि० : देवि ! तुम्हारा कथन सत्य है। अधर्म से मैं सदैव दूर रहा हूँ परन्तु तुम्हें देख कर न जाने क्यों धर्म-अधर्म का प्रश्न मेरे मन में नहीं उठता।

द्रौपदी : मोह की अवस्था में ऐसा ही होता है धर्मराज ! सिद्ध पुरुष भी इस मोह के सामने नत हुए हैं।

अर्जुन : महाराज द्रुपद की शीलवती कन्या से हम व्यंग की अपेक्षा नहीं रखते देवि !

द्रौपदी : (**तड़पकर**) कितनी अपेक्षाएँ रखोगे हे पुरुष एक स्त्री से ? (**करुण भाव से**) बोलिए महाभाग ! एक शीलवती ने बड़े मान के साथ एक धनंजय का वरण किया था ; और आज वह पाँच पुरुषों के समक्ष लाकर खड़ी की गई है, कि अपने नारीत्व की वह रक्षा करे।

युधि० : नहीं देवि ! ऐसा क्यों कहती हो ?

तुम प्रतीक हो हमारी एकता की। बहुबल धारिणी हो तुम, धात्री तुम्हीं हो, शान्ति तुम्हीं हो।

द्रौपदी : **(खिन्न हँसी के साथ)** नारी की प्रशंसा में पुरुष की वाणी मुखर हो उठती है!

भीम : परन्तु देवि! आर्यपुत्र सत्य कहते हैं।

द्रौपदी : आर्य भीम! आपके इस सत्य को तो मुझे स्वीकार करना ही है, परन्तु लोक और वेद के विरुद्ध जो आपने आचरण किया है उसका परिणाम तो आप सब को भुगतना ही पड़ेगा।

युधि० : वह क्या देवि?

द्रौपदी : सुनें आर्यजन! निकट भविष्य में मेरे कारण इस देश में महाविप्लव होगा और उसमें आपका, आपके परिवार का और समाज का नाश होगा।

अर्जुन : यह क्या कह रही हो द्रौपदी?

द्रौपदी : मैं सत्य कह रही हूँ आर्यपुत्र! जब-जब मर्यादाओं का उल्लंघन होता है, तब-तब महाप्रलय होता है। सतयुग और त्रेता में भी ऐसा हुआ था और इस द्वापर में भी यही होगा।

युधि० : परन्तु देवि! आश्वस्त रहो! हम ऐसा न होने देंगे।

द्रौपदी : समय महाबली होता है धर्मराज! समय की बागडोर अब आपके हाथ में नहीं है, भारतों का युद्ध अवश्यंभावी है। नारी और पृथ्वी के कारण भाई-भाई आपस में कट मरेंगे।

अर्जुन : देवि! यह कैसी अशुभ वाणी बोल रही हो?

द्रौपदी : अशुभ में ही शुभ के लक्षण छिपे होते हैं महाबाहु! अशुभ होगा, हाँ अवश्य होगा। परन्तु शुभ भी जन्म लेगा, नयी मान्यताएँ और नयी संवेदनाएँ जन्म लेंगी। रक्त-सिंचित पृथ्वी में नये कमल के पुष्प खिलेंगे जिसकी सुगन्धि से दिग्दिगन्त महक उठेगा और यह अन्याय समाप्त होगा।

अर्जुन : देवि! वह तो भविष्य की बात है। परन्तु इतना तो निश्चित है कि द्वापर की कमलिनी तुम हो और मेरा मन कहता है कि भविष्य के उस नये कमल की जन्मदात्री भी तुम्हीं हो।

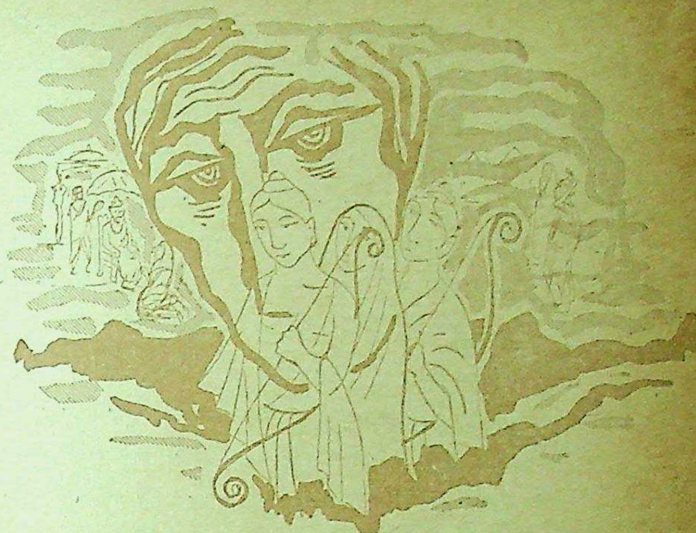
युधि० : हाँ कमलगन्धे! विश्वास रखो हमसे कोई अधर्म न होगा।

भीम : हाँ देवि! बोलो! धर्मराज सहित हम पाँचों भाइयों को प्रसन्न-चित्त तुम स्वीकार करती हो?

द्रौपदी : स्वीकार करती हूँ पाण्डुपुत्र! मैं, महाराज द्रुपद की कन्या पांचाली द्रौपदी महाराज पांडु के पाँचों पुत्रों को पति रूप में स्वीकार करती हूँ और प्रतिज्ञा करती हूँ कि पांडवों की एकात्मकता के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करूँगी।

(पांडव धन्य-धन्य कह उठते हैं, द्रौपदी सबके चरणों में घुटने टेकती है, शंख और घंटों तथा संगीत की ध्वनि से सम्पूर्ण वातावरण भर जाता है। धीरे-धीरे पर्दा गिरता है।)

विष्णु प्रभाकर



"युगों के बाद मानव जब अन्तर्दृष्टि से इस युग का दर्शन करेगा तो क्या वह घर-घर में शान्त-रस से पूर्ण इस गृह धर्म को देख पायेगा ? अतिशयोक्ति हो सकती है इसमें, लेकिन इसकी अनिवार्यता से कभी कोई इनकार नहीं कर सकता ।"

(त्रेता युग का अन्तिम चरण । रामराज्य की सन्ध्या आ पहुँची है । उसी समय काल-पुरुष एक सन्ध्या को अपने जीवन के पिछले पृष्ठों को पलटते-पलटते ध्यानमग्न हो उठते हैं ।)

काल-पुरुष : (स्वगत) तो अन्त आ पहुँचा ! सृष्टि के इस असीम यात्रा-पथ पर एक और युग समाप्त होने को है । मानो राम के आने का एक उद्देश्य था । मनुष्य के गृहस्थ जीवन में परस्पर जो धर्म बन्धन है, कृषक समाज में जो चूड़ान्त आदर्श हैं, उनका नियमन उन्हें करना था । विगत के युग में मानव का विकास तो हुआ पर उसके सामने न कोई लक्ष्य

रामायण काल में परिवार

था न आदर्श। तमोगुणी जीवन की तमिस्रा में मानो वह भटक रहा था। उसके पास शक्ति थी लेकिन दिशा नहीं थी। बन्धनहीन अश्व जैसे चारों ओर दौड़ता है वैसे ही वह अपनी शक्ति का प्रदर्शन करता हुआ भ्रम रहा था। एक रूप देने के लिए, एक आदर्श, एक लक्ष्य स्थापित करने के लिए; पिता-पुत्र में, भाई-भाई में, स्वामी-स्त्री में जो बन्धन है, जो प्रीति और भक्ति का सम्बन्ध है, उनकी जो मर्यादाएँ हैं उन्हीं की स्थापना करने का भार राम के कन्धों पर आ पड़ा था। यह सारा भयंकर युद्ध, यह वन गमन, यह उसी सम्बन्ध को दृढ़ करने के उपलक्ष मात्र हैं। पिता के प्रति पुत्र की वश्यता, भाई के लिए भाई का आत्मत्याग, पति-पत्नी में परस्पर की निष्ठा, प्रजा के प्रति राजा का कर्त्तव्य, परिवार और समाज नीति की लीक, कृषक समाज की इन सब रीढ़ों को राम को एक रूप देना था। रूप दिया उसने लेकिन किस कीमत पर! राज्य का अवसर आया तो वन जाना पड़ा। फिर से राज्य पाया तो प्रियतमा को निर्वासित करना पड़ा। सीता वन में है तो राम राज्य-भवन में है। कैसा पत्थर का कलेजा करना पड़ा (है) उसको। वेदना का कैसा अथाह सागर लहलहा रहा है उसके वक्ष में। सृष्टि के विकास के लिए हर युग में नीलकण्ठ की आवश्यकता होती ही है।

यह चारों ओर जो युद्ध का घोष, राजकुल में यह कुटिल चक्र, नाना जातियों का यह संघर्ष, लेकिन इन सबके बीच में गृह-धर्म की दुर्भेद्य-दृढ़ता क्या कभी खण्डित हो सकी है? बाहुबल, जिगीशा, धन, राष्ट्र गौरव; ये सब आवरण मात्र हैं। सत्य है केवल शान्ति-रस से परिपूर्ण गृह-धर्म। लंका-युद्ध के रक्तरंजित शौर्य-वीर्य के ऊपर करुणा के अश्रु-जल से सिंचित मानव का यही गृह-धर्म प्रतिष्ठित हो सका है कृषक समाज के जीवन के लिए। यही तो अनिवार्य था।

भटका हुआ मानव आदर्श चाहता है। आदर्श की निरन्तर पुकार प्राकृतिक नहीं मालूम होती। न हो, कह लो इसे अप्राकृतिक, लेकिन सच ही क्या यह अप्राकृतिक है? युगों के बाद मानव जब अन्तर्दृष्टि से इस युग का दर्शन करेगा तो क्या वह घर-घर में शान्त-रस से पूर्ण इस गृह-धर्म को नहीं देख पाएगा? अतिशयोक्ति हो सकती है इसमें। लेकिन इसकी अनिवार्यता से कभी कोई इनकार नहीं कर सकेगा। **(श्वास खींच कर)** ओह! कितना कठिन है किसी वस्तु का नियमन करना! लेकिन कितना अनिवार्य! चलूँ, देखूँ तो सीता-विहीन अयोध्या के राजमहलों की कैसी अवस्था है।

(सहसा एक प्रकाश उभरता है। काल-पुरुष उस प्रकाश में द्रुत गति से

एक ओर बढ़ जाते हैं। दूसरी ओर से धीरे-धीरे एक सुकोमल नारी की लज्जा मूर्ति उभरती है। वह श्रुतकीर्ति है, शत्रुघ्न की प्रियतमा। विषाद से पूर्ण, सहसा शून्य में निहारती-सी बोल उठती है।)

श्रुतकीर्ति : (स्वगत) यह कैसा क्रूर कर्म किया आर्य राम ने। समझ नहीं पाती। आज इस अनबूझ अवस्था में न जाने तूफान की गति से यह विगत क्यों मुझे प्लावित करता हुआ बढ़ा चला आ रहा है। उसकी प्रत्येक लहर में उभर-उभर उठता है राजरानी आर्या सीता का रूप। आर्य राम को उसने वरा। उसके सौभाग्य की सभी ने सराहना की। कैसी थी वह जोड़ी! देख कर आँखें जुड़ाती थीं। लेकिन आज इस जीवन सन्ध्या में क्या पाया उस दीदी ने। राजकुल की मर्यादा की रक्षा के लिए, राजरानी के पद की प्रतिष्ठा के लिए, पातिव्रत के लिए, कितना भयंकर मूल्य चुकाना पड़ा दीदी को। कैसा है यह गृह-धर्म! कैसी है यह राज-धर्म की विभीषिका! नहीं, नहीं, यह सब छलना है, विडम्बना है, पाखण्ड है....ओह। ओह! **(सहसा मूक हो जाती है। कई क्षण बाद फिर बोल उठती है।)** आर्य दशरथ ने अनेक पत्नियों का वरण किया, यही तब नियम था, उसी नियम से ये सब विपत्तियाँ प्रसूत हुईं। यह वन गमन, लंका का यह भीषण युद्ध, फिर से राजगद्दी पाकर भी राम विषाद में डूबे हुए हैं। वियोगिनी सीता फिर से वन-वासिनी बनीं। हम सब जो राजभोग भोग रहे हैं उनमें क्या आनन्द का रंचमात्र भी है? राम ने एक पत्नीव्रत की मर्यादा बाँधी। कैसा सुन्दर हुआ! मेरे प्रियतम केवल मेरे हैं। मैं हूँ और वे हैं। न है द्वेष, न है दुविधा, पर मर्यादा बाँधने वाले राम ने उस मर्यादा के लिए ही परिवार की मर्यादा का आनन्द नहीं पाया।

सोचती हूँ अयोध्या के इस राजकुल में क्या-क्या हुआ? 'पिता परिवार का स्वामी है।' इस मर्यादा की रक्षा के लिए राम वन गए। 'अग्रज सर्वोपरि हैं।' आर्य भरत ने इस मर्यादा की रक्षा के लिए राजगद्दी को ठुकरा कर यौवन में संन्यास धारण किया। आर्या माण्डवी का वह मौन तप। कौन जानता है उस कहानी को! आर्य लक्ष्मण ने अग्रज का अनुसरण करने के लिए देवि उर्मिला को राजभवन में तपस्विनी बना दिया और आर्यपुत्र; अकिंचन होकर ही जैसे उन्होंने अपनी सार्थकता मानी और मैं, जाने दो मेरी बातें...।

आर्य राम ने गृह-धर्म के लिए त्याग में ही आनन्द का लक्ष्य स्थापित किया जिससे पिछले युग की अराजकता के तम से संसार मुक्ति पा सके। लेकिन मुक्ति है कहाँ? माँ सर्वोपरि है लेकिन पुत्र पर उसका अधिकार

कहाँ है ? आर्या कौशल्या राम को नहीं रोक सकीं। क्योंकि सर्वोपरि पिता है। पिता जो माँ का पति भी है; और पति है पत्नी का परमेश्वर। कभी-कभी मन में उठता है तोड़ दूँ इस आदर्श को, मुक्त कर दूँ इन क्रूर-बन्धनों से नारी को...।

कहते हैं नारी मुक्त है। स्वयंवरा है। लेकिन आर्य राम वह धनुष न तोड़ पाते तो क्या आर्या सीता राम को वर पातीं ? क्या स्वेच्छा से ही हमारे पिता ने हम सबको राम के भाइयों को अर्पित नहीं कर दिया था ? नहीं समझ पाती कि इस पुरुष प्रधान आर्य समाज में नारी की मुक्ति कहाँ है। मर्यादा की परिभाषा क्या है ? रह-रह कर यही कहा जाता है व्यतीत में जो अराजकता थी उसका शमन होना ही था। और उसका शमन है मर्यादा। स्वनिर्मित बन्धन में। स्वेच्छा से अपने को कहीं किसी के साथ बाँध देने में। इस बन्धन में ही प्रियतम का प्रेम उभरता है, माता की ममता उमड़ती है, अनुज भक्ति-विह्वल हो उठता है और अग्रज अपने दायित्व को स्वीकारते हुए अपने को मिटा देता है। यही तो जैसे आर्य राम का लक्ष्य था। वह लक्ष्य पूरा हुआ लेकिन उस लक्ष्य की नींव में गड़ी है नारी की मुक्ति। आर्या सीता जैसी असंख्य पतिव्रताओं की प्राणों को विदीर्ण करने वाली वेदना। लक्ष्य...मर्यादा...नहीं, नहीं, आर्या सीता की वेदना-ज्वाला में ये सब भस्म हो जाएँगे। आर्या सीता के वन में रहते हुए महलों में गृह-धर्म की स्थापना नहीं हो सकती।....समझ में नहीं आता। सम्भवत: राम ने एक पत्नीव्रत स्वीकार कर नारी की उसी वेदना को समझना चाहा है। पुरुष को नारी के समकक्ष करना चाहा है।...लो आर्यपुत्र आ पहुँचे। चलूँ उनसे पूछूँ, सदा शान्त, मौन, अग्रजों के लिए अपने को मिटाए मेरे यह प्रियतम मर्यादा की वेदी पर जैसे कुछ न हों। यह भी तो पुरुष हैं। पुरुष शक्तिमान है लेकिन नहीं...। पुरुषों में भी शक्तिमान है पिता, परिवार का स्वामी। समझ में नहीं आता...ओह, कुछ समझ में नहीं आता...समाज की मर्यादा की रक्षा के लिए परिवार का प्रत्येक प्राणी मुक्ति का दान देता है तो मुक्ति कहाँ है, मुक्ति क्या है...!

कवि और कवि-पत्नी

संस्कृत के महाकवियों में माघ का स्थान बहुत ऊँचा है। एक दिन महाकवि घर बैठे अपने काव्य का नवम् सर्ग लिख रहे थे, तभी अवंतिका से एक दरिद्र ब्राह्मण ने आकर अपनी कन्या के विवाह के लिए उनसे आर्थिक सहायता की याचना की। कविवर स्वयं आर्थिक संकट में थे। फिर भी उन्होंने चारों ओर दृष्टि दौड़ाई। घर में कोई मूल्यवान वस्तु शेष नहीं थी। एक खाट

(विवश-विकल वह आगे बढ़ती है । प्रकाश उभरता है । काल-पुरुष मुस्कराते हुए दक्षिण की ओर जाते दिखाई देते हैं । एक क्षण बाद नए प्रकाश में एक प्रगल्भा नारी मूर्त होती जाती है । उसके शृंगार और रूप में मादकता है । उन्मुक्तता है । वह सुग्रीव-प्रियतमा रोमा है । विस्मित-सी वह जैसे अपने से बातें करती हुई आती है ।)

रोमा : (स्वगत) यह कैसा दारुण समाचार आया है अयोध्या से ! आर्य राम ने आर्या सीता को फिर वन में भेज दिया । क्योंकि किसी प्रजाजन ने कहा कि वह पर-पुरुष के घर रह आई हैं । तो क्या हुआ ? रूप और यौवन से गर्विता हम वानर नारियाँ इन बातों को जानतीं तक नहीं । हमारा शारीरिक और मानसिक चापल्य, हमारी उद्धतता और अस्थिरता हमें कहीं बँधने ही नहीं देतीं । आर्य बाली को मृत समझ कर मेरे प्रियतम ने आर्या तारा को अनायास ही पा लिया था । और जब आर्य बाली ने मेरे प्रियतम को देश से निकाल दिया तो मुझे अपनी अंकशायिनी बनाने में उन्हें रंचमात्र भी झिझक नहीं हुई । जैसे यही नियम है । और आर्य राम हैं कि एक अकिंचन प्रजाजन के कहने मात्र पर ही अपनी प्राणवल्लभा सीता को त्याग बैठे । प्रियतम के हृदय को जीत कर भी गृह-धर्म की मर्यादा की रक्षा करने के लिए उन्हें फिर से वियोगिनी होना पड़ा । कैसा है यह आर्य जाति के समाज का नृशंस नियम ! क्यों आर्य राम इस जाति को नियमों की शृंखला में जकड़ देना चाहते हैं ? **(सहसा काँप उठती है ।)**

शायद यह ठीक है...। शायद नहीं, यही ठीक है । हमारी जाति में भी ये नियम होते तो मेरे प्रियतम आर्या तारा को कैसे ग्रहण करते ? आर्य बाली अपने अनुज की प्रिया को कैसे अपनी अंकशायिनी बनाते ? इसी अनाचार के कारण वह आर्य राम से छले गए । काश कि हम लोग उन नियमों को स्वीकार करते तो मेरे पति को एक पत्नी-व्रत-धर्म धारण करना पड़ता । आर्या तारा उन पर अधिकार न कर पातीं । ओह, आर्या तारा ! मेरी प्रतिद्वन्द्विनी, मेरे राग-रंग को विषाक्त करने वाली । **(सहसा)** नहीं, नहीं, हम वानर जाति के लोगों में पत्नियों की सीमा पर कोई नियन्त्रण नहीं है । हम कहीं भी बन्धन नहीं स्वीकारते ।

पर उनकी पत्नी सो रही थी । उसके हाथ में स्वर्ण-कंकण थे । माघ ने चुपचाप उसके एक हाथ का आभूषण निकाल लिया और चलने ही वाले थे कि इतने में स्त्री की आँख खुल गई । उसे सारी स्थिति समझते देर नहीं लगी और उसने दूसरे हाथ का कंकण भी निकाल कर देते हुए अपने पति से कहा, "स्वामी, निर्धन ब्राह्मण का काम एक से नहीं चलेगा, इसलिए इसे भी सहर्ष दे दीजिये ।"

—सत्यदेव नारायण सिन्हा

हम अबाध हैं, उन्मुक्त हैं। (सोच कर) लेकिन नहीं, वानर जाति में भी तो आर्यों के समान अनेक नियम हैं। परिवार में पिता ही सर्वोपरि है। ज्येष्ठ पुत्र ही पिता का उत्तराधिकारी है। केवल एक नारीव्रत को हमने स्वीकार नहीं किया। इसीलिए हमारा परिवार सुखी नहीं है। पुरुष एकछत्र स्वामी है, अंकुशहीन है। यह एकछत्रता, यह अँकुशहीनता सीमित होनी चाहिए। लेकिन...लेकिन यदि किसी ने मेरे चरित्र पर शंका की होती तो मेरे प्रियतम मुझे त्याग देते। आर्या सीता की तरह मुझे वियोगिनी बनना पड़ता। नहीं, नहीं, मैं यह नहीं सह सकती। ओह! कैसा तेज, कैसा दिव्य रूप था आर्या सीता का! उन्हें वन जाना पड़ा। गृह-धर्म की प्रतिष्ठा के लिए और यह भी सुनती हूँ कि आर्य राम ने फिर से विवाह भी नहीं किया। आर्या सीता की स्वर्ण प्रतिमा बना कर रखी है। (निःश्वास) इतना प्रेम करते हैं वे आर्या को! मर्यादा के लिए उन्हें दूर करके भी अपने हृदय से दूर नहीं करते। ओह! ओह!!...

(सहसा मौन हो जाती है। प्रकाश उभरता है। काल-पुरुष फिर दक्षिण की ओर बढ़ते हैं। उनके पीछे एक कृष्णकाय, तरल नेत्रों वाले व्यक्ति का चित्र उभरता है। पूर्ण प्रकाश होने पर विभीषण दिखाई देते हैं। मौन, उदास। वह जैसे अपने से बातें करते हुए टहल रहे हैं।)

विभीषण : (स्वगत) सुनता हूँ किसी अपवाद पर आर्य राम ने आर्या सीता को फिर से वनवास दे दिया। क्या आर्य राम जान कर भी अनजान बने? आर्या सीता ने क्या स्वेच्छा से पर-पुरुष का स्पर्श किया है? कैसी है यह आर्य जाति! नारी की पूजा करके भी उसका विश्वास नहीं करती। **(एक क्षण मौन होकर)** लेकिन यह भी सुना है कि उन्होंने फिर विवाह नहीं किया। एक ही नारी को हृदयेश्वरी बनाया। सीता का शरीर गया है पर हृदय में वह विराजमान है। जानता हूँ गृह-धर्म की मर्यादा के लिए राम पागल हैं। वह उन मर्यादाओं पर सन्देह की छाया भी नहीं पड़ने देना चाहते, अपने को मिटा कर भी वह उनकी उज्ज्वलता को अक्षुण्ण रखना चाहते हैं।......

काश, कि हम राक्षसों में भी गृह-धर्म की मर्यादा के प्रति इतना प्रेम होता! मानव की परिपूर्णता की आकांक्षा होती तो हमारा वैभव, हमारा ज्ञान-विज्ञान उसके दिव्य प्रकाश में और भी आलोकित हो उठता। आर्य जाति नारी की प्रतिष्ठा करती है परन्तु राक्षस मानते रहे हैं कि पर-स्त्री का उपभोग करना, बलपूर्वक उसे हर लेना उनका सुधर्म है।

रावण ने यही किया । कुम्भकर्ण इसीलिए कुख्यात है । राम ने रावण पर इसीलिए विजय पाई । 'सीता-अपहरण' जैसे राक्षसों की इस प्रवृत्ति की चरम सीमा था । इसीलिए राक्षस जाति अपना साम्राज्य खो बैठी ।

लेकिन अब ऐसा नहीं होगा । मैं इस दुर्गुण को दूर कर दूँगा । आर्य जाति के गुणों को स्वीकार करूँगा ।

लेकिन...लेकिन...इस समाचार से मेरा मन डोल उठा है । हम लोगों में भी आर्य जाति के समान ही परिवार की प्रतिष्ठा है । पिता की, अग्रज की, सभी की प्रतिष्ठा है । मैंने उस प्रतिष्ठा को चुनौती दी थी । उसी दुर्गुण के कारण दी थी, लेकिन फिर भी मेरा अपमान हुआ ।....लेकिन जाने दो इन बातों को । मुझे तो रह-रह कर आर्या सीता की याद आती है । क्या उस नियम को स्वीकार करके हमें भी राक्षस नारियों को इसी तरह दासता के बन्धन में जकड़ना होगा ? क्या उनको भी आर्या सीता की तरह जीते जी सिसकना-तड़पना होगा ? तब तो राक्षस नारी स्वयं इस नियम को स्वीकार नहीं करेगी । मैं भी... शायद मैं भी स्वीकार न करूँ...नहीं, नहीं, मैं अभी अयोध्या जाता हूँ । आर्य राम से इसका विश्लेषण चाहता हूँ क्योंकि उन्होंने फिर से विवाह न करके अपने को भी उसी बन्धन में बाँधना चाहा है । लेकिन प्रश्न यह है कि क्या मानव की परिपूर्णता के लिए ये बन्धन अनिवार्य हैं ?... **(द्रुत गति से जाते हैं । काल-पुरुष भी उत्तर की ओर लौट पड़ते हैं । तीव्र प्रकाश होता है और उसमें एक तेजस्वी आर्य पुरुष की मूर्ति उभरती है । वीर लक्ष्मण उतावली के साथ वहाँ पर प्रवेश करते हैं । सहसा ठिठक जाते हैं और तीव्रता से बोल उठते हैं ।)**

लक्ष्मण : (स्वगत) नियम, नियम...कैसा बन्धन, कैसा आकर्षण है इन नियमों में ! कहीं मुक्ति नहीं, सोचने की स्वतन्त्रता तक नहीं । **(एक क्षण मौन रह कर)** लेकिन कहते हैं, यह सब आवश्यक है । स्वतन्त्रता का अर्थ अमर्यादा नहीं । मुक्ति का अर्थ अराजकता नहीं । मानवीय संगठन का मूल कहीं पर तो होना ही चाहिए । अग्रज के लिए मैंने अपने को शून्य कर दिया । उनके कहने पर मैं अभागा आर्या सीता को फिर वन में छोड़ आया । हाँ, छोड़ कर आना पड़ा । जीवन-सन्ध्या में यह क्रूर कर्म भी करना पड़ा...। **(कई क्षण मौन जैसे खो-से जाते हैं)**

आज व्यतीत पर दृष्टि डालता हूँ तो पाता हूँ कि गृह-धर्म की मर्यादा की स्थापना के लिए सबसे बड़ा बलिदान आर्या सीता का है । पहले वह बहुपत्नीत्व के अनाचार का शिकार हुईं । वृद्ध पिता कैकेयी के वश में थे । उन्होंने अपने वचन के लिए आर्य राम को वनवास

दिया । पिता परिवार का अधिष्ठाता है । उनका वचन नियम है, राम को इसीलिए वन जाना पड़ा । आर्या सीता पातिव्रत निभाने के लिए उनके साथ गईं ।

कैकेयी ने कुल की सनातन प्रथा को चुनौती दी । पारिवारिक परम्पराओं के प्रतिकूल होना हेय और लोक निन्दित है इसीलिए भरत ने उन प्रथाओं की रक्षा के लिए अपना बलिदान किया । आर्य राम ने पिता के जीवन से शिक्षा लेकर एक पत्नीव्रत स्वीकार किया । और इसीलिए इस जीवन-सन्ध्या में उन्हें सीता का परित्याग करना पड़ा ।...

पत्नी : फूल या काँटा

महाकवि मिल्टन ने अन्धे होते हुए भी एक सुन्दर युवती से विवाह किया था । दुर्भाग्य से वह युवती बहुत तीखे स्वभाव की थी और मिल्टन से रात-दिन झगड़ती रहती थी ।

मिल्टन का एक मित्र सदा उसकी पत्नी के रूप की प्रशंसा किया करता था । एक दिन

(खीज कर) और नियम, नियम, मर्यादा, मर्यादा...यही सब कुछ है; मनुष्य का मान, मनुष्य का सुख-दुख, कहीं कुछ भी नहीं । आर्य राम के हृदय नहीं, हृदय में प्यार की चाह नहीं, आर्या सीता को अपने मन पर कोई अधिकार नहीं । अपराधिनी न होने पर भी दण्ड उन्हें भोगना पड़ा । मैंने भी क्या अपराध किया लेकिन मुझे भी क्या नहीं सहना पड़ा । हम सभी भाइयों को सहना पड़ा । क्यों आखिर? इसीलिए न कि कुल में पिता ही श्रेष्ठ होता है । माँ ने भी मुझसे यही कहा था—'माता-पिता की आज्ञा पालन करना पुत्र का सर्वोपरि कर्त्तव्य है ।' यही सत्य है, यही सनातन नियम है । लेकिन माता-पिता में 'माता' शब्द पहले आता है, सर्वोपरि है पिता । माँ की सर्वोच्चता पति-परमेश्वर की सर्वोच्चता के नीचे तुच्छ हो गई है । इस आर्य परिवार में नारी महान होकर भी शक्तिशालिनी नहीं है । गृह-धर्म की रक्षा के लिए उसे ही बलिदान करना पड़ता है । आर्या कौशल्या, आर्या सुमित्रा, आर्या सीता, आर्या माण्डवी, उर्मिला, श्रुतकीर्ति सभी को स्वयं की बलि दे देनी पड़ी है । दूसरी ओर अग्रज उत्तराधिकारी है । इस मर्यादा की रक्षा के लिए आर्य भरत ने, मैंने, शत्रुघ्न ने, सबने आर्य राम के प्रति अपना कर्त्तव्य निभाया है । इसीलिए न कि परिवार का नष्ट-भ्रष्ट होना, विश्रृंखलित होना, एक महान विपत्ति है । जब पिता-पुत्र में संघर्ष हो जाता है तो स्त्रियाँ उच्छृङ्खल हो जाती हैं ।...

फिर स्त्रियाँ ! हर कहीं स्त्री !! स्त्री परिवार का मूल है । आर्या सीता भी स्त्री ही हैं । परिवार के लिए उन्हें क्या नहीं सहना

पड़ा। दाम्पत्य, प्रणय, राज्य, गृह-धर्म की रक्षा के लिए उन्हें सब कुछ का त्याग करना पड़ा। परिवार के निर्माण के लिए राम का समग्र जीवन एक उज्ज्वल दृष्टान्त है। लेकिन इस उज्ज्वलता के मूल में आर्या सीता रूपी नारी अग्निज्वाला की तरह दहक रही है।

> उसने कहा, "मिल्टन, तुम देख नहीं सकते, नहीं तो तुम्हें पता चलता कि तुम्हारी पत्नी गुलाब के फूल की तरह सुन्दर है।"
>
> मिल्टन ने उत्तर दिया, "हाँ, मैं उस गुलाब के सौन्दर्य को तो नहीं देख सकता, परन्तु उसके काँटों का अनुभव दिन-रात किया करता हूँ।"
>
> —सत्यदेव नारायण सिन्हा

सोचता हूँ उस तेज में अयोध्या भस्म क्यों नहीं हो जाती। हो जाए। ये जो नियम हमें जकड़ते आ रहे हैं उनकी ये शिराएँ एक दिन अवश्य भभक उठेंगी। **(हँस पड़ता है)** नियम की जकड़ अप्राकृतिक है, जो अप्राकृतिक है, वह अनिवार्य होकर भी नष्ट होने वाला है। तब तक चलूँ, देखूँ आर्य राम क्यों बुला रहे हैं। अश्वमेध यज्ञ की पूर्णाहुति में कितनी देर है। सुनता हूँ महर्षि वाल्मीकि के साथ कोई दो तेजस्वी युवक आये हैं जो रामायण का पाठ करते हैं। चलूँ, सुनूँ उनके मुख से गृह-धर्म की मर्यादा की वेदी पर होने वाले बलिदानों की रक्तरंजित गाथा। मानव के गृह-धर्म की, मर्यादा की, मानव की परिपूर्णता का रक्तरंजित जयघोष !

(फिर हँसता है। प्रकाश फिर उभरता है और उसी के साथ काल-पुरुष की हँसती हुई मूर्ति उभरती है।)

काल पुरुष : (हँसते हैं) लक्ष्मण का यह आक्रोश, यह विषाक्त हँसी...समझता हूँ, पर मर्यादाएँ आवश्यक हैं। उनकी स्थापना के लिए बलिदान भी आवश्यक हैं। यही सृष्टि का नियम है। मैं स्वयं सृष्टि का एक नियम मात्र हूँ। कितने रूप लिए हैं मैंने, मत्स्य, कच्छप, बराह, नरसिंह, वामन, भार्गव राम, दाशरथी राम अर्थात् मर्यादा पुरुषोत्तम अर्थात् पूर्ण मानव की कल्पना। कृषि युग में इसी संगठन की आवश्यकता है। आज कृषि युग में मर्यादाएँ स्थापित करने आया हूँ। इस संगठन को सशक्त बना रहा हूँ। आने वाले युग में इन्हीं मर्यादाओं को, इसी संगठन को नष्ट-भ्रष्ट करने आऊँगा। हर युग में मर्यादाएँ बनती हैं, टूटती हैं। इसी निर्माण और नाश में युग आगे बढ़ता है। मैं आगे बढ़ता हूँ लेकिन बढ़ते-बढ़ते आज इतना कहे देता हूँ कि इस युग की मर्यादाएँ मानव के गृह-धर्म का किसी न किसी रूप में सदा आधार बनी रहेंगी।

(शीघ्रता से आगे बढ़ जाते हैं। प्रकाश मिट जाता है।) ● ● ●



हर्षनारायण

न स्त्री दुष्यति जारेण

[पुरातन परिवार का एक विस्मृतप्राय अध्याय]

'न स्त्री दुष्यति जारेण'––परिवार और समाज की मर्मरक्षा के लिए प्रचित एक नीतिवाक्य । अर्थ स्पष्ट है––स्त्री 'जार' के द्वारा दूषित नहीं होती। 'जार' शब्द का ही वर्तमान रूप है 'यार'। धर्म और अधर्म, नीति और अनीति की परिभाषाएँ जिन धर्म-शास्ताओं ने भिन्न-भिन्न रूप में, और कभी-कभी विपरीत रूप में दीं उनके मन में कोई सामान्य सूत्र, कोई समान आदर्श था या नहीं ? उत्तर स्वयं खोजिये । यहाँ 'दृष्टि' उपस्थित है।

◉ ◉

जब भारत-भूमि पर कलियुग का प्रकोप अत्यधिक बढ़ गया और चारों ओर से नारी के आचरण के विषय में युगानुकूल व्यवस्था की माँग होने लगी, तब समस्या के विचारार्थ नैमिषारण्य के पुण्य क्षेत्र में अठ्ठासी सहस्र ऋषि-महर्षियों और शास्त्रकारों का एक विराट् सम्मेलन आयोजित हुआ। नारद जी ने प्रस्ताव किया कि सम्मेलन का सभापति आदि धर्मवेत्ता मनु जी को बनाया जाय। इस पर व्यास जी ने आपत्ति उठायी कि मनु जी

का विधान सतयुग की चीज़ है। उन्हें इस कलिकाल में कई लोग प्रतिक्रियावादी कहने लगे हैं। इस पर एक ओर से सुझाव आया कि तब क्यों न पराशर जी को सम्मेलन का सभापति चुना जाय, जो आजकल कलियुग के लिए एक स्वतंत्र धर्मशास्त्र की रचना करने में व्यस्त हैं? एक सभासद् ने इस सुझाव पर भी आपत्ति उठायी। पराशरजी स्त्री के साथ पक्षपात कर सकते हैं, क्योंकि वे स्त्री के साथ मनमानी करने के दोषी हैं। योजनगन्धा की कथा सबको मालूम ही है। अन्ततोगत्वा सबने महर्षि अत्रि को सभापति के आसन के योग्य समझा, जिनकी स्त्री सती अनसूया चारों युगों के लिए नारीत्व का आदर्श मानी गयी हैं।

अत्रि के सभापति का आसन ग्रहण कर लेने के पश्चात् भाषणों का ताँता आरम्भ हुआ। वक्ताओं में से कई दयनीय रूप से नारी-पीड़ित जान पड़ते थे। सम्मेलन की कार्यवाही का श्रीगणेश वेदव्यास जी की वक्तृता से हुआ। वेदव्यास जी ने भाषणार्थ उठते ही कहा, "सभासदो, सारे वेद और सूत्रग्रन्थ इस विषय में एकमत हैं कि नारी अनृत की साक्षात् प्रतिमा और पाप का घर है।[१] अतः उसके विषय में कठोर व्यवस्था की अपेक्षा है।"

इस पर पञ्चतन्त्र और हितोपदेश में निबद्ध कथाओं के प्रणेता विष्णुशर्मा बोल उठे—

"महर्षि व्यास के कथन में तनिक भी अत्युक्ति नहीं है। स्त्री का चरित्र सचमुच चक्कर में डाल देने वाला होता है। उसके मन में कुछ और होता है, जिह्वा पर कुछ और, और आचरण में कुछ और ही।[२] उस पर अवश्य ही कठोर शासन की आवश्यकता है।"

इस पर मनु जी उठ खड़े हुए और बोले, "पुरुष का ईमान बिगाड़ना नारी के स्वभाव में दाख़िल है।[३] अतः हमारा कर्त्तव्य है कि कलियुग के नरों को उससे सावधान करें और उसके लिए कड़े से कड़े दण्ड की व्यवस्था करें।"

विष्णुशर्मा ने अपना भाषण जारी रखते हुए कहा, "नारी तो स्वभाव से ही असती होती है। उपयुक्त स्थान, काल, और नर के अभाव में ही वह सती बनी रह सकती है।[४] व्यास जी ने अनुमोदन में सिर हिलाया।[५] वस्तुस्थिति यह है कि नारी के लिए न कोई प्रिय होता है न अप्रिय। जिस प्रकार गायें सदा नयी घास की तलाश में घूमा करती हैं उसी प्रकार स्त्रियों को भी सदा नये पुरुष की

---

१. महाभारत, अनुशासन पर्व, १९.६-७; २०.१४; ३८.१२ और २९।

२. यदन्तस्तन्न जिह्वायां, यज्जिह्वायां न तद्बहिः,
यद्बहिस्तन्न कुर्वन्ति; विचित्रचरिताः स्त्रियः
—पंचतंत्र ४.५३

३. स्वभाव एष नारीणां नराणामिह दूषणम्,
अतोऽर्थान्न प्रमाद्यन्ति प्रमदासु विपश्चितः।।
—मनुस्मृति २.२१३

४. रहो नास्ति, क्षणो नास्ति, नास्ति प्रार्थयिता नरः।
तेन नारद! नारीणां सतीत्वमुपजायते।।
—पंचतंत्र १.१४९

स्थानं नास्ति, क्षणं नास्ति, नास्ति प्रार्थयिता नरः।
तेन नारद! नारीणां सतीत्वमुपजायते।।
—हितोपदेश १.८८

५. अनर्थित्वान्मनुष्याणां भयात् परिजनस्य च,
मर्यादायामर्यादाः स्त्रियस्तिष्ठन्ति भर्तृषु।।
—महाभारत, अनुशासन पर्व, ३८.१६

तलाश रहती है।[६] वस्तुतः सुन्दर पुरुष को देखते ही, चाहे वह भाई अथवा पुत्र ही क्यों न हो, नारी का सतीत्व डोल जाता है।[७] तुलसी बाबा ने इस वक्तव्य का ज़ोरदार समर्थन किया।[८] बात यह है कि स्त्री में काम की प्रवृत्ति पुरुष की अपेक्षा अठगुनी होती है।[९] चाणक्य[१०] और पराशर[११] ने समर्थन में सिर हिलाया। ठीक ही कहा जाता है कि अग्नि काष्ठ से, सागर सरिता से, और स्त्री पुरुषों से कभी तृप्त नहीं होते।[१२]"

मनु जी पुनः उठे और उन्होंने विष्णुशर्मा के स्वर में स्वर मिलाते हुए कहा, "यह कथन शत प्रतिशत सत्य है। मुझे तनिक भी सन्देह नहीं कि नारी न तो रूप की परीक्षा करती है और न वयस् की। उसे न सुन्दर चाहिए और न असुन्दर; बस नर चाहिए।" व्यास जी ने भी एक स्थान पर यही मत प्रकट किया है।"[१४]

इन वक्तव्यों के फलस्वरूप सम्मेलन में नारी के विरुद्ध भारी उत्तेजना व्याप्त हो गयी और उसके आचरण पर कठोर नियंत्रण की माँग होने लगी। फलतः मनु जी ने प्रस्ताव किया कि दुराचारिणी नारी को खुले आम कुत्तों से नुचवा कर मार डालना चाहिए।[१५] भीष्म ने समर्थन किया।[१६] ऐसा लगता था कि प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हो जायगा। किन्तु सभामण्डप के एक कोने से एक सभासद् ने प्रस्ताव का विरोध करने की अनुमति माँगी। वह सभासद् और कोई नहीं था, प्रसिद्ध ज्योतिष-

---

नारी : एक प्राचीन दृष्टिकोण

स्त्री चाहे माता या बहन के रूप में ही क्यों न हो, हमें सदैव सचेत रहना चाहिए, क्योंकि प्रत्येक स्त्री में हौवा का निवास होता है।

—सेण्ट आगस्टाइन

(प्रेषक : मनोज ठाकुर)

---

६. न स्त्रीणामप्रियः कश्चित् प्रियो वाऽपि न विद्यते।
गावस्तृणमिवारण्ये प्रार्थयंते नवम् नवम्॥
—हितोपदेश १.१५५

७. सुरूपं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम्,
योनिः क्लिद्यति नारीणामामपात्रमिवाम्भसा॥
—हितोपदेश १.८७

८. भ्राता, पिता, पुत्र, उरगारी।
पुरुष मनोहर निरखत नारी॥
होइ बिकल सक मनहि न रोकी।
जिमि रबिमनि-द्रव रबिहि बिलोकी॥
—रामचरित मानस, अरण्यकांड, पृ. ४१९ (गीताप्रेस गुटका)

९. हितोपदेश, २.१०५

१०. चाणक्य नीति ७.८

११. बृहत्पराशरस्मृति, पृ० १२१

१२. नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां, नापगानां महोदधि,
. . . . ., न पुंसां वामलोचनाः॥

१३. नैता रूपं परीक्षन्ते, नासां वयसि स्थितिः।
सुरूपं वा विरूपं वा पुमानित्येव भुञ्जते॥
—मनुस्मृति, ९.१४

१४. नासां कश्चिदगम्योऽस्ति नासां वयसि निश्चयः।
विरूपं रूपवन्तं वा पुमानित्येव भुञ्जते॥
—महाभारत, अनुशासनपर्व ३८.१७

१५. मनुस्मृति, ८.३७१

१६. महाभारत, शान्तिपर्व, १६५.६४

ग्रन्थ वृहत्संहिता के प्रणेता वराहमिहिर थे। उन्होंने नारी के निन्दकों को फटकारते हुए कहा, "भला बताओ तो, वह कौन-सा दोष है जो केवल नारी में ही पाया जाता है और पुरुष में नहीं? यह पुरुषों की सरासर हठधर्मी है कि वे अपने दोषों को भुला कर सदा नारी की निन्दा में रत रहते हैं। नारी ही नर को जन्म देती है, अतः नारी के निन्दक कृतघ्न हैं। दुराचरण तो नर और नारी सभी करते हैं किन्तु नरों को नारियों के ही दोष दिखायी देते हैं। ऐसे नरों की दशा उन चोरों की-सी है जो चोरी भी करते जाते हैं और 'ठहर' 'ठहर' का शोर भी मचाते जाते हैं।"[१७] वराहमिहिर ने नारी के विषय में सहानुभूतिपूर्वक विचार करने की ज़ोरदार अपील की।

वराहमिहिर के वक्तव्य के फलस्वरूप सभा के पर्यावरण में परिवर्तन आया। मनुजी के प्रस्ताव पर संशोधनों पर संशोधन आने लगे। एक सभासद् ने यह संशोधन पुनः-स्थापित किया कि व्यभिचारिणी को कुत्ते से नुचवाना तो अमानुषिक होगा, किन्तु उसे घर से अवश्य निकाल देना चाहिए। महर्षि याज्ञवल्क्य ने अपना संशोधन प्रस्तुत करते हुए कहा कि यदि व्यभिचार के फलस्वरूप गर्भ रह जाय तो नारी के, कुत्तों से नुचवाने के बदले, परित्याग का विधान अवश्य किया जाय। किन्तु गर्भ न रहने की दशा में ऋतुकाल के अनन्तर उसे निष्पाप मान लिया जाय।[१८] महर्षि यम ने इस संशोधन का अनुमोदन किया।[१९] नारद ने कहा कि यह सब पुरुष की स्वेच्छा और स्वविवेक पर छोड़ देना चाहिए। यदि वह चाहे तो व्यभिचारिणी को घर से निकाल बाहर करे, अन्यथा वह उसे मुंडित करे, भूमि पर सुलाये, रद्दी भोजन और वस्त्र दे, और उससे घर का कूड़ा उठवाये।[२०]

इस पर भीष्म उठे और उन्होंने कहा कि समस्या पर उन्होंने पुनर्विचार किया है और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि नर नारी की निन्दा करने में तो बड़ा वाचाल है किन्तु अपराध नारी का नहीं बल्कि सदा नर का हुआ करता है।[२१] अतः दण्ड का विधान नारी के लिए न होकर नर के लिए होना चाहिए। अतएव नारद का प्रस्ताव भी हमें मान्य नहीं।

भीष्म की ओजस्विनी वक्तृता का प्रभाव मनु जी पर भी पड़ा और उन्होंने अन्त में चल कर यह माना कि नारी की निन्दा नहीं अपितु पूजा करनी चाहिए, अन्यथा सारा धर्म-कर्म व्यर्थ जायगा।[२२]

---

१७. वृहत्संहिता, ७४.५, १६

१८. व्यभिचाराद् ऋतौ शुद्धिर्गर्भे त्यागो विधीयते
गर्भभर्तृवधादौ च तथा महति पातके ।।
—याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय, ७२

१९. व्यभिचाराद् ऋतौ शुद्धिः
स्त्रीणां चैव न संशयः;
गर्भे जाते परित्यागो;
नान्यथा मम भाषितम् ।।
—बृहद्यमस्मृति ४.३६

२०. नारदस्मृति १२.९०-९२

२१. एवं स्त्री नापराध्नोति नर एवापराध्यति ।
व्युच्चरंश्च महादोषं नर एवापराध्यति ।।
नापराधोऽस्ति नारीणां नर एवापराध्यति।
सर्वकार्यापराध्यत्वात् नापराध्यंति चांगनाः
—महाभारत, शांतिपर्व, २६६-३८,४०

२२. यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यंते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः
—मनुस्मृति, ३.५६

इसके बाद महर्षि देवल ने कहा कि इस कलिकाल में असवर्ण और म्लेच्छ के साथ व्यभिचार को ही हमें व्यभिचार मान कर चलना चाहिए। इस व्यभिचार की दशा में नारी को अवश्य ही दूषित मानना चाहिए। किन्तु वह दोष चिरस्थायी नहीं होता। गर्भ-मोचन अथवा ऋतुकाल के अनन्तर वह विमल काञ्चन के समान शुद्ध हो जाती है।[२३] अब महर्षि वशिष्ठ के बोलने की बारी आयी। उन्होंने अपनी सारगर्भ वक्तृता में इस बात पर विशेष बल दिया कि व्यभिचार से दूषित नारी के परित्याग का विधान सर्वथा अनुचित होगा। ऐसी नारी चाहे स्वेच्छा और बलात्कार से भी दूषित हुई हो तब भी उसे त्यागना उचित नहीं। क्योंकि वह ऋतुकाल के बाद इस दोष से सर्वथा मुक्त हो जायगी।[२४]

वसिष्ठ ने अपनी व्यवस्था देते हुए यह भी कहा कि स्त्री तो अत्यन्त पवित्र प्राणी है जिसे कभी कोई दोष लग ही नहीं सकता। प्रत्येक मास में ऋतुकाल उपस्थित होने पर वह पापों से मुक्त हो जाया करती है।[२५] बौधायन ने वसिष्ठ के साथ पूर्ण सहमति प्रकट की।[२६]

वसिष्ठ ने अपना व्याख्यान जारी रखते हुए कहा, "मेरा तो दृढ़ मत है कि नारी रजस्वला होने के पश्चात् उसी प्रकार शुद्ध और निर्दोष हो जाती है जिस प्रकार नदी वेग से, कांस्य भस्म से, और तांबा अम्ल से।"[२७] चाणक्य ने इस वक्तव्य को शत प्रतिशत सत्य बतलाया।[२८] अङ्गिरा ने कहा कि इसमें

नारी : एक मध्ययुगीन दृष्टिकोण

मध्यकालीन अँग्रेजी कानून के अनुसार पति पत्नी को पीटने के लिए अंगूठे से अधिक मोटी छड़ी का प्रयोग नहीं कर सकता था, किन्तु कुछ क्रूर पति इसे नमक के पानी और सिरके में भिगो कर खूब मजबूत बना लेते थे ताकि स्त्री के विलाप अधिक दर्द भरे हों।

—स्मिथ : हिस्ट्री ऑफ माडर्न कल्चर

(प्रेषक : मनोज ठाकुर)

---

२३. असवर्णेन यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते
अशुद्धा सा भवेन् नारी यावच्छल्यं मुंचति
विनिःसृते ततः शल्ये रजसो वाऽपि दर्शने
तदा सा शुध्यते नारी विमलं काञ्चनं यथा
—देवल स्मृति ५०-५१

२४. स्वयं विप्रतिपन्ना वा, यदि वा विप्रवासिता,
बलात्कारोपभुक्ता वा, चोरहस्तगताऽपिवा
न त्याज्या दूषिता नारी, नास्यास्त्यागो विधीयते।
पुष्पकालमुपासीत ऋतुकालेन शुध्यति॥
—वसिष्ठस्मृति २८.२-३

२५. स्त्रियः पवित्रमतुलं, नैता दुष्यन्ति कर्हिचित्
मासि मासि रजो ह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति
—वसिष्ठस्मृति २८.४

२६. स्त्रियः पवित्रमतुलं, नैता दुष्यन्ति कर्हिचित्
मासि मासि रजो ह्यासां दुरितान्यपकर्षति
—बौधायन स्मृति २.२.६३

२७. रजसा शुध्यते नारी, नदी वेगेन शुध्यति
भस्मना शुध्यते कांस्यं, ताम्रमम्लेन शुध्यति
—वसिष्ठस्मृति ३.५४

२८. भस्मना शुध्यते कांस्यं, ताम्रमम्लेन शुध्यति
रजसा शुध्यते नारी, नदी वेगेन शुध्यति
—चाणक्यनीति ६.३

कोई सन्देह नहीं कि नारी यदि विवर्णता को प्राप्त न हो तो वह रजस्वला होने पर शुद्ध हो जाती है।[२९] पराशर ने 'विवर्णता' के स्थान पर 'विकल' शब्द के प्रयोग की सिफारिश करते हुए प्रस्ताव को स्वीकार्य बतलाया।[३०] किन्तु पुर्नविचार के पश्चात् उन्होंने यह मत प्रकट किया कि जिस प्रकार सतत प्रवहमान धारा और वायु द्वारा उड़ायी गयी धूल दोष-युक्त नहीं मानी जातीं उसी प्रकार स्त्री, वृद्ध, तथा बालक को सदा निर्दोष समझना चाहिए।[३१] आपस्तम्ब ने बतलाया कि उनका भी यही मत रहा है,[३२] किन्तु लोकमत के भय से उन्होंने उसे कभी प्रकट नहीं किया। इसका प्रभाव मनुजी पर भी पड़ा, और उन्होंने अपने धर्मशास्त्र में बाद में इसी आशय का एक श्लोक समाविष्ट किया,[३३] जो मनु-स्मृति की उपलब्ध प्रतियों में तो नहीं मिलता किन्तु कहीं-कहीं उद्‌धृत अवश्य पाया जाता है।

मान्य आचार्यों की इस प्रकार की स्पष्टोक्तियाँ सुन कर श्रोतागण चकित रह गये। लोकमत का भय स्वतंत्र चिन्तन और आत्माभिव्यंजन के मार्ग में कितना बाधक हो सकता है, इसका अनुमान सम्मेलन की गति-विधि से भली प्रकार किया जा सकता है। आरम्भ में ऐसा लगता था कि सारी सभा में नारी समस्या पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करने वाला एक भी सभासद नहीं है, किन्तु अब यह स्थिति आ पहुँची कि स्त्री में किसी को कोई दोष ही नहीं दिखायी देता।

श्रोताओं के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा जब वसिष्ठ जैसे वैरागी ने अपने इस पुर्नविचारित मत की घोषणा की कि जिस प्रकार ब्राह्मण को वैदिकी हिंसा से, नदी और समुद्र को मल-मूत्र से, तथा अग्नि को सड़ी-गली वंस्तुओं का दहन करने से कोई दोष नहीं लगता उसी प्रकार नारी को भी व्यभिचार से कोई दोष नहीं लगता।[३४] उन्होंने बतलाया कि उनकी इस मान्यता का एक विशेष आधार है। बात यह है कि स्त्री को मनुष्य द्वारा भोगे जाने के पूर्व, सोम, गन्धर्व, और अग्नि नामक देवता भोग चुके होते हैं। अतः इनके द्वारा पवित्रीकृत नारी मनुष्य द्वारा भला कैसे दूषित हो सकती है? सोम देवता के प्रसाद से नारी को पवित्रता, गन्धर्व के प्रसाद से निखरी हुई वाणी, और अग्नि के प्रताप से सब कुछ भक्षण कर लेने, पचा लेने की क्षमता प्राप्त हुई होती है।

---

२९. रजसा शुध्यते नारी न चेद् गच्छेद् विवर्णताम्
यथा ग्राममलग्राही नदी वेगेन शुध्यति
—अङ्गिरः स्मृति ५४

३०. रजसा शुद्धते नारी विकलं या न गच्छति
नदी वेगेन शुध्येत लेपो यदि न दृश्यते
—पराशरस्मृति ७.४

३१. अदुष्टाः सन्तता धारा, वातोद्धताश्च रेणवः
स्त्रियो, वृद्धास्, तथा बालाः न दुष्यन्ति कदाचन
—पाराशरस्मृति ७.३६½-३७½

३२. न दुष्येत् संतता धारा, वातोद्धताश्च रेणवः
स्त्रियो, बालाश्च, वृद्धाश्च न दुष्यन्ति कदाचन
—आपस्तम्बस्मृति २.३

३३. अदुष्टाश्च तथा धारा, वातोद्धूताश्च रेणवः
स्त्रियो, वृद्धाश्च, बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन्
—मनुस्मृति (नृ. श्रा. सा. में उद्धृत)

३४. न स्त्री दुष्यति जारेण, न विप्रो वेदकर्मणा
नापो मूत्रपुरीषेण, नाग्निर्दहनकर्मणा
—वसिष्ठस्मृति २८.१

अतः वे सर्वथा निष्कलुष और निष्पाप होती हैं।[३५] बौधायन[३६] और याज्ञवल्क्य[३७] जैसे महर्षियों ने वसिष्ठ के कथन की प्रामाणिकता की पुष्टि की।

इस व्यवस्था पर किसी ने आपत्ति तो नहीं की किन्तु कुछ दक़ियानूस सभासदों ने वेद से इसका समर्थन कराये बिना इसे ग्रहण करना उचित नहीं समझा। फलतः उसी सभा में इस प्रश्न के विचारार्थ कुछ ऋषियों की एक समिति बनायी गयी जिसने अपनी व्यवस्था इस प्रकार दी :

वेद में एक मंत्र आता है जिसका अर्थ है कि लौकिक विवाह के पूर्व ही प्रत्येक स्त्री पहले सोम से ब्याही जाती है, फिर गन्धर्व से, और तीसरी बार अग्नि से। इन तीनों देवताओं द्वारा उसके भोग लिये जाने पर मनुष्य की बारी आती है जो, इस दृष्टि से, उसका चौथा पति होता है।[३८] यह मंत्र बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। स्त्री को सोम, गन्धर्व, और अग्नि, मनुष्य के भोगने के पूर्व ही भोग चुके होते हैं, अतः व्यभिचार द्वारा स्त्री के सतीत्व भ्रष्ट होने की आशंका सर्वथा निर्मूल है। इस प्रकार पूर्ण विचार-विमर्ष के पश्चात् सभापति महाशय अत्रि ने अपना निर्णय सुनाया: स्त्री, बालक और वृद्ध यदि कोई ऐसा गलत काम कर बैठे जिसे किसी ने प्रत्यक्ष नहीं देखा हो, तो उन्हें कोई दोष नहीं लगता।[३९] यदि नारी स्वयं भागी हुई हो अथवा भगायी गयी हो, उसके साथ बलात्कार किया गया हो, अथवा अन्य प्रकार से दुराचार किया गया हो, तब भी उसका त्याग उचित नहीं, क्योंकि वह

नारी : एक आधुनिक दृष्टिकोण

स्त्रियाँ बहुत विचित्र पशु हैं। तुम उन्हें कुत्तों की तरह पददलित करते हुए चल सकते हो। तुम उन्हें तब तक पीट सकते हो जब तक तुम्हारी बाहें दुखने न लगें। वे फिर भी तुमसे प्रेम करेंगी।

'मून ऐण्ड सिक्स पेन्स' का एक पात्र

(प्रेषक : मनोज ठाकुर)

---

३५. पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ता सोमगन्धर्ववह्निभिः
गच्छन्ति मानुषान् पश्चात्,
नैता दुष्यन्ति धर्मतः
तासां सोमोऽदद (दा) च्छौचं,
गन्धर्वः शिक्षितां गिरम्,
अग्निश्च सर्वभक्षत्वं,
तस्मान् निष्कलमषाः स्त्रियः
—वसिष्ठस्मृति २८.५-६

३६. सोमः शौचं ददत्ता (दौ ता) सां,
गन्धर्वः शिक्षितां गिरम्,
अग्निश्च सर्वभक्षत्वं, तस्मान्
निष्कलमषाः स्त्रियः
—बौधायनस्मृति २.२.६४

३७. सोमः शौचं ददावासां, गंधर्वश्च शुभां गिरम्
पावकः सर्वमेध्यत्वं मेध्या वै योषितः स्मृताः
—याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय, ७१

३८. सोमः प्रथमो विविदे, गंधर्वो विविद उत्तरः
तृतीयो अग्निष्टे पतिस्, तुरीयस्ते मनुष्यजाः
—ऋग्वेद १०.८५.४०

३९. गोदोहने चर्मपुटे च तोयं,
यन्त्राकरे, कासकशिल्पिहस्ते,
स्त्रीबालवृद्धाचरितानि,
यान्यप्रत्यक्षदृष्टानि शुचीनि तानि
—अत्रिसंहिता २३१

ऋतु-काल के अनन्तर अपने दोष से सर्वथा मुक्त हो जायगी।[४०] यदि व्यभिचार से नारी को कोई दोष लगता है तो वह उसके गर्भ से मुक्त अथवा ऋतुमती होने पर नष्ट हो जाता है और नारी विमल काञ्चन के समान शुद्ध हो जाती है।[४१] कांस्य भस्म से शुद्ध हो जाता है, तांबा अम्ल से शुद्ध हो जाता है, नदी वेग से शुद्ध हो जाती है, और नारी ऋतुमती होने पर शुद्ध हो जाती है।[४२] वस्तुतः स्त्री की पवित्रता निसर्गसिद्ध और अतुलनीय होती है। स्त्रियों को कोई दूषित कर नहीं सकता। कारण यह है कि प्रत्येक मास में रज के माध्यम से इनका पाप धुल जाया करता है।[४३] स्त्री व्यभिचार से भी दूषित नहीं होती। जिस प्रकार ब्राह्मण वैदिकी हिंसा, नदी और समुद्र का जल मल-मूत्र, और अग्नि दहन कर्म से दूषित नहीं होते, ठीक उसी प्रकार नारी व्यभिचार से दूषित नहीं होती।[४४] इसका कारण यह है कि स्त्रियों को पहले सोम, गन्धर्व और अग्नि नाम के देवता भोगते हैं और मनुष्य की बारी इनके बाद आती है। अतः मनुष्य द्वारा भोगे जाने पर इन्हें दोष नहीं लगता।[४५] लैंगिक चिह्नों के प्रकट होने पर उन पर सोम की कृपा होती है। उनके पयोधरों में

४०. स्वयं विप्रतिपन्ना या, यदि वा विपतारिता
बलात् नारी प्रभुक्ता वा, चौरभुक्ता तथाऽपि वा
न त्याज्या दूषिता नारी न कामोऽस्या विधीयते।
—अत्रिसंहिता १९७-१९८

बलात्कारोपभुक्ता वा, चौरहस्तगताऽपिवा,
स्वयं चापि विपन्ना वा,
यदि वा विप्रवादिता—
न त्याज्या दूषिता नारी,
नास्यास्त्यागो विधीयते।
पुष्पकालमुपासीत्वा (मपास्याथ)
ऋतुकालेन शुध्यति॥
अत्रिस्मृति ५.२-३

४१. असवर्णस्तु यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते, अशुद्धा सा भवेन् नारी,
यावद् गर्भं न मुञ्चति॥
विमुक्ते तु ततः शल्ये रजश्चापि प्रदृश्यते
तदा सा शुध्यते नारी विमलं काञ्चनं यथा
—अत्रिसंहिता १९५-१९६

असवर्णेन यो गर्भः स्त्रीणां योनौ निषिच्यते
अशुद्धा तु भवेन् नारी यावच्छल्यं न मुंचति
निःसृते तु ततः शल्ये, रजसोऽपीह दर्शनात्
ततः सा शुध्यते नारी विमला कांचनोपमा
—अत्रिस्मृति ५.६-७

४२. भस्मना शुध्यते कांस्यं, ताम्रमम्लेन शुध्यति
रजसा शुध्यते नारी, नदी वेगेन शुध्यति
—अत्रिस्मृति ५.१०

४३. स्त्रियः पवित्रमतुलं नैता दुष्यन्ति केनचित्
मासि मासि रजो ह्यासां दुष्कृतान्यपकर्षति
—अत्रिस्मृति ५.४

४४. न स्त्री दुष्यति जारेण, ब्राह्मणो वेदकर्मणा
नापो मूत्रपुरीषाभ्यां, नाग्निर्दहनकर्मणा
—अत्रिसंहिता १९३

न स्त्री दुष्यति जारेण, न विप्रो वेदपारगः
नापो मूत्रपुरीषेण, नाग्निर्दहन कर्मणा
—अत्रिस्मृति ५.१

४५. पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगंधर्ववह्निभिः
भुज्यन्ते मानुषैः पश्चात्,
नैता दुष्यन्ति कर्हिचित्॥
—अत्रिस्मृति ५.५

पूर्वं स्त्रियः सुरैर्भुक्ताः सोमगन्धर्ववह्निभिः
भुञ्जते मानवाः पश्चान्
न ता दुष्यन्ति कर्हिचित्
—अत्रिसंहिता १९४

गन्धर्वों और रज में अग्नि का वास होता है।[४६] सोम उन्हें चिरपवित्रता प्रदान करता है, गन्धर्व मधुर वाणी, और अग्नि सबको पवित्र करने की शक्ति प्रदान करता है।[४७] अतः स्त्रियों में दोष-दर्शन व्यर्थ है।

सभापति अपनी व्यवस्था अभी सुना ही रहे थे कि कुछ सभासदों ने एक प्वाइंट ऑफ़ इन्फ़ारमेशन उठाते हुए यह आशंका प्रकट की कि इस व्यवस्था के परिणाम-स्वरूप परिवार-संस्था का विघटन और उच्छेद हो जाने का भय है। सभापति ने उत्तर दिया कि हम नारी को व्यभिचार का पाठ नहीं पढ़ा रहे हैं, न ही उसे व्यभिचार में प्रवृत्त देखना चाहते हैं। हमारा तात्पर्य बस इतना है कि यदि स्त्री किसी कारण सन्मार्ग से स्खलित होकर इस प्रकार का कर्म कर बैठे तो उस तिल का ताड़ नहीं बनाना चाहिए। श्रेयस्कर तो सतीत्व का ही मार्ग है। किन्तु व्यभिचारिणी को भी मानव समझ कर चलना चाहिए। इस सम्बन्ध में उन्होंने मनु जी के उस वचन का हवाला दिया जिसके अनुसार न तो मांस-भक्षण में कोई दोष है, न मद्यपान में, और न मैथुन में। लेकिन इनमें कोई पुण्य भी नहीं है। अतः इनसे निवृत्ति ही श्रेयस्कर है।[४८] इसी प्रकार व्यभिचार में दोष तो नहीं, किन्तु पुण्य भी नहीं है। अतः इससे निवृत्ति और सतीत्व की रक्षा ही नारी का लक्ष्य होना चाहिए। पुण्य सतीत्व में है, न कि व्यभिचार में। लेकिन व्यभिचार को हौआ नहीं समझ लेना चाहिए। न स्त्री दुष्यति जारेण।

इस विधान और शंका-समाधान के पश्चात् सभापति ने सत्रावसान की घोषणा की और सभा विसर्जित हुई।

नारी : एक और आधुनिक दृष्टिकोण

- स्त्री जो बात कहे उस पर कभी विश्वास न करो।
- स्त्री के मौन हो जाने पर सावधान हो जाओ।
- स्त्री के लिए जो खर्च किया जाता है वह उस योग्य नहीं।
- स्त्रियों को शिक्षित करना वैसा ही है जैसे रेजर को ऐसे स्थान पर रखना जहाँ से बन्दर उसे उठा ले जाय।

--लेविन

(प्रेषक : मनोज ठाकुर)

४६. व्यञ्जनेषु च जातेषु सोमो
भुङ्क्ते च कन्यकाम्,
पयोधरेषु गन्धर्वा, रजस्याग्निः प्रतिष्ठितः
—अत्रिस्मृति ५.९

४७. सोमः शौचं ददौ तासां,
गन्धर्वश्च शुभां गिरम्,
पावकः सर्वमेध्यत्वं,
तस्मान् निष्कलमषाः स्त्रियः ।।
अत्रि स्मृति ५.८

सोमः शौचं ददौ तासां,
गन्धर्वाश्च तथाऽङ्गिराः
पावकः सर्वमेध्यं च मेध्यं वै योषितां सदा
—अत्रिसंहिता १४०-१४१

४८. न मांसभक्षणे दोषो, न मद्ये, न च मैथुने
प्रवृत्तिरेषा भूतानां, निवृत्तिस्तु महाफला
—मनुस्मृति ५.५६



प्रेम ब्रह्मचारी

मुक्ति की ओर उन्मुख

यदि निर्वाण की कामना ही संसार में चरम काम्य है, तब पुत्र, पति, भ्राता, माता, बन्धु-बान्धव और परिवार के सब बन्धन काटने होंगे।...... शास्ता का धर्म-चक्र जिस राजमार्ग से होकर गुज़रा है उसकी धूल का निर्माण परिवार नाम की सामाजिक इकाई की अस्थियों के चूर्ण से हुआ—परिवार जो अनन्त दुःख और अनन्त आवागमन का कारण है।

बौद्ध-विहार के एक भिक्षु ने सहसा आगे बढ़ कर कहा—"रोको! रोको!! यह पगली है। विक्षिप्ता है। रोको!!! इधर आने न पावे।"

भिक्षुओं के मध्य जेतवन की उर्वरा भूमि में शास्ता का उपदेश चल रहा था, उसी समय भटकती-भटकती जटिल आपत्तियों-विपत्तियों से संतप्त... पटाचारा उधर आ निकली थी। उसे तन-मन की सुध-बुध तक न थी।

विहार के एकान्त प्रशान्त वातावरण में भावी बाधा की संभावना से भिक्षु-संघ सशंकित हो उठा था कि त्रिकालदर्शी, शान्तचित्त, मौन-व्रती तथागत

के अधर किंचित खुले और उस निस्तब्धता में सहसा गूँज गया——

"माँ तां वारयित्था ति..." (इसे रोको मत, मेरे पास आने दो)। और अभी वह कुछ दूर पर थी कि पुनः

"सन्तिपटलभ भगिनी..." (भगिनी अपनी चेतना को प्राप्त कर)।

बुद्धानुभाववश उसकी चेतना स्मृति को साथ लिए हुए लौट पड़ी, बिजली की कौंध की भाँति सारा शरीर काँप गया। वह सँभली। ठिठकी। शरीर पर वस्त्र न होने के ज्ञान से, वह अब लजा गई। निकट खड़े भिक्षुओं में से किसी एक ने आगे बढ़ कर उस पर वस्त्र डाल दिया। उसने भी यथावत शरीर पर लपेटने में विलम्ब नहीं किया। तथागत शान्त भाव से आसीन थे। पाँच बार की प्रदक्षिणा भर से उसकी अतीत संस्मृतियाँ जागृत हो उठीं। वाड्वाग्नि-सी वेदना से सिहर उठी, विह्वल होकर, उनकी चरण-शरण होकर, आखिर वह फूट ही पड़ी....

"देव! मेरी रक्षा करो! मेरा एक पुत्र तो गीध का आहार हुआ, और दूसरा जल का,...राह में पति को डँस लिया उस काल-सर्प ने और माता-पिता-भाई आदि....निकट के परिवार-बान्धव एक साथ जला दिये गये श्मशान की धधकती चिता में...देव! मेरी रक्षा करो!"

एक ही साँस में वह कह गई सब कुछ।

बुद्धासना में ध्यानमग्न तथागत शान्त थे। शान्ति से दबी-दबी गम्भीर निमेषोन्मीलन के साथ-साथ आश्वासन देते हुए-से, अधर खुले——"पटाचारे! चिन्ता से परे हो, अब तू उसके सन्निकट है जो तेरी रक्षा में समर्थ है।"

सान्त्वना की इस एक हल्की थपकी मात्र से उसकी आर्त्त अन्तर्वेदना शान्त हो गयी, भगवान भी अभी मौन मुद्रा में हुए नहीं— "पटाचारे! मोह-ममता के वशीभूत हो, कितने ही आँसू क्यों न बहा ले, पर गये पुत्र तेरी सूनी गोद में नहीं आ सकते। अब शील-शोधन कर, जो भविष्य में तेरे लिए निर्वाण-गामी महापथ में पाथेय की पूर्ति करेगा। पति-पुत्रादि तेरी रक्षा में समर्थ नहीं और न बान्धव ही। मृत्यु की भँवर में फँसे हुए को स्वयं फँसे हुए ये कुल-समाज वाले भी कहीं निकाल सके हैं?"

दिन बीते, मास बीते। आज वह उदास रही ब्रह्मबेला से ही। अब, शनैः शनैः संध्या भी आ पहुँची। विहार के प्रशान्त झुरमुट में झुटपुटा सहमा-सहमा रक्तिम-सा आ छिपा। प्रज्ज्वलित दीपक

नारी का सर्वश्रेष्ठ आभूषण

बौद्ध भिक्षु उपगुप्त से एक बार नगर की सुप्रसिद्ध नर्तकी ने पूछा, "देव! नारी का सर्वश्रेष्ठ आभूषण क्या है?"

उत्तर मिला, "जो उसके सौन्दर्य में स्वाभाविक रूप से वृद्धि कर सके!... अधिक स्पष्ट उत्तर चाहती हो, तो अपने ये आभूषण उतार डालो।"

नर्तकी ने आदेश का पालन किया।

"सुन्दरी! वस्त्र भी उतार दो।"

नर्तकी हिचकिचायी, पर सौन्दर्य का सर्वश्रेष्ठ उपादान पाने की महत्वाकांक्षा ने उससे इस आदेश का भी पालन करवा ही लिया।

"देवि, अब किंचित मेरी ओर देखो!"

लिए हुए पटाचारा ने कक्ष में प्रवेश किया, दीपक को एक ओर रख कर वह आसीन हो गयी अपने आसन पर। श्वास-प्रश्वास की गति का निरोध तो कर ही लिया, किन्तु वृत्ति निरोध न कर सकी। बाह्य दृष्टि से तो वह बिल्कुल अन्तर्मुखी प्रतीत होती। न जाने क्यों आज उसकी एकाग्रता बिखर गयी! मस्तिष्क-शैय्या पर पूर्व संस्मृतियाँ करवटें बदलने लगीं, घटित घटनाओं के बुने हुए तन्तुबान चरमरा उठे। जड़ दीपक की वर्तिका भी सहसा काँप गई और वह भी उसी उधेड़बुन में बहक उठी :

ममता की गोद में और सांसारिकता की लहरों में, श्रावस्ती की सुश्रेष्ठी की वात्सल्यमयी गोदी में शैशव बीता...

शैशव और बाल्यकाल......हाँ किशोरावस्था की देहलीज को पार न कर सकी थी।

किन्तु आरक्त मुख, नत-नयन नर्तकी हृदय में अगाध विश्वास भर कर भी इस आदेश का पालन न कर सकी।

भिक्षु उपगुप्त उठ खड़े हुए, "देवि! नारी के सौन्दर्य का सर्वश्रेष्ठ आभूषण उसकी यह लज्जा ही है।"

—प्रेषक : सत्यदेव नारायण सिन्हा

यही वह अवस्था थी जिसमें न सँभाल सकी स्वयं को। यौवन में उभार था। हृदय उससे पूर्णतः आन्दोलित रहता ही। किसी की खोज में पुतलियाँ चंचल रहतीं। अनुकूल पृष्ठभूमि देख प्रणय भी चूका नहीं। वह भी एक नवीन अल्हड़ता और उफान लिए उतरा। प्रणय की उस प्रथम दृष्टि में सभी कुछ नया-नया-सा दिखता, जिससे रोम-रोम एक अजीब स्फुरण से सजग हो उठता। प्रणय तो केवल प्रणयी को देखता है न कि उसके धर्म-कर्म को...वह गृह परिचारक था तो क्या हुआ? उसने क्या न उठा रखा?—मेरे लिए। यहाँ तक कि एक दिन लगा दिया स्वयं को भी इस प्रणय की बाजी में। माता-पिता इतने अबोध तो थे नहीं। इसमें उनका बाधा डालना स्वाभाविक ही था। यह बात परिवार तक सीमित न रह सकी। मुझे लेने को तब कोई शीघ्र तैयार न होता देख, उन्होंने कुलीनहीन वर को देने का निश्चय कर लिया। इधर मेरे उस प्रणय का पृष्ठ उलटा और खुला नया पृष्ठ त्याग का। किन्तु आर्या एक बार जिसे सर्वस्व दे देती है फिर कहीं उसमें हिचकिचाती नहीं...और हाँ! वह भयावनी काल रात्रि।....उस दिन के उपदेश में भगवान भी यही बता रहे थे कि जागते रहने वाले की रात लम्बी होती है और थके हुए का भोजन, इसी प्रकार शील न जानने वाले का सांसारिक आवागमन लम्बा हो जाता है।.. ऐसा लगता मानो पकड़ने को चारों ओर से अपनी काली-काली बेड़ियाँ लिए......अब छोड़ेगी नहीं। फिर भी हम दोनों चूके नहीं। भाग खड़े हुए। माता पिता के वात्सल्य, भाई के स्नेह, सम्पत्ति-ऐश्वर्य-सुखादि की चार-दीवारी को तोड़ कर एक अतृप्त वासना तृप्ति के लिए...चलते रहे जब तक अन्धकार की आड़ रही। बाद को उस जनपद में अधिवास हेतु जाकर पग रुके, जो श्रावस्ती के न तो सम्पर्क में ही है और न सम्बद्ध ही है। वह भी कैसे उन्माद भरे दिन थे?......

प्रवज्या देते समय भगवान ने 'आर्य सत्य चतुष्टय' पर उपदेशों के पश्चात् इस प्रवज्या

के लक्ष्य की भी व्याख्या की थी कि, "विनया पटाचारे, जो वेदनाएँ उत्पन्न हो चुकी हैं उनको शान्त कर, निरोध कर, नई वेदनाएँ उत्पन्न न होने देना...।" पर मैं अभी कहाँ थी ? वहीं-वहीं, जहाँ कि...। कक्ष में अन्धकार बढ़ गया था, दीपवर्तिका मन्द थी, वह कुछ अनासक्त-सी हुई उन अतीत दृश्यों से, किन्तु फिर न चाहते हुए भी ध्यानवश बरवश उसकी चेतना उधर ही पुनः बह चली...। प्राकृतिक वातावरण का एक नया-सा चित्र उसके स्मृति-पटल पर रह-रह खिचने लगा : ......और समय के साथ-साथ हम भी चले। समय पा गर्भवती भी हुई। उन प्रसव-कालीन वेदनाओं की भावी आशंकाओं ने हिला दिया मेरा भावुक तरुण हृदय। एक दिन झिझकते-झिझकते उनसे कह बैठी कि यदि अनुमति हो तो माँ के पास कुछ दिन रह आऊँ। प्रसव के उपरान्त शीघ्र ही आ जाऊँगी। पर उन्होंने कहा, "क्या माता-पिता की दृष्टि में तुम वही हो जो......"

पुत्र जन्म के बाद से मेरी अल्हड़ता, स्वतन्त्रता, निश्चिन्तता जकड़ी गई, और एक नये जीवन का पृष्ठ खुला। वह चापल्य अब नाम को भी पास न फटकता, उदासी और गंभीरता स्वभाव में बनी रहती। वर्ष बीतते न बीतते एक और नए प्राण की सृष्टि-संभावना सामने आई। कष्ट बहुत था।

एक दिन निश्चय किया कि किसी न किसी प्रकार इस बार घर चला जाय। समय भी निश्चित हुआ और चल दिये पैदल। मार्ग में अँधेरा झुका...घनघोर घटाएँ घुमड़ उठीं। आँधी झकझोर उठी। भीषण जल-वृष्टि और हृदय-विदारक कड़कड़ाती घन-गर्जना, पावस के प्रारम्भिक दिन थे ही। इधर मैं अपनी असह्य प्रसव-वेदना से तिल-मिलाती। उन्हें सुरक्षित स्थान खोजने को कहा......मुझे डर था कि कहीं इस बार भी पहले की भाँति राह में ही लेने के देने न पड़ जायें....और हुआ भी वही जिसका डर था। वे तो स्थान खोजने में लग गये, हाय! क्या जानती थीं कि वह स्वयं भी खो जायेंगे......ऐसा ही होना था। मेरी पीड़ा में उनकी पुकार थी...सिर पर कड़कड़ाती हुई बिजली में, भीषण जल-वृष्टि में, झकझोरते सांय-सांय करते हुए झंझावात में, पेड़ों-पक्षियों के कोलाहल में पुकार दब जाती...बड़ा बेटा दायीं ओर पड़ा करवटें बदलता, अबोध..वह क्या जाने ? रोम-रोम काँप उठता है!

भगवान शास्ता का कहा हुआ कि जन्म दु:ख है, जरा दु:ख है, व्याधि दु:ख है और मृत्यु भी दु:ख है ज्यों का त्यों इस जीवन में सत्य उतरा...पड़ी-पड़ी कराहती रही। अकेले रही। जब तक कि सुन्न शरीर पर सूर्य ने अपनी सहानुभूति से भीगी उष्ण किरणों से सहलाया नहीं। बड़ा बेटा पास पड़ा-पड़ा बिलख रहा था भूख से...एक को आँचल में दबाये, दूसरे को अंगुली पकड़ा के जैसे-तैसे निकल पड़ी उनकी खोज में। उस झाड़ी के पास फुस्कार की-सी आहट पा दृष्टि घूम गई। झाड़ी में वस्त्रों की कुछ अस्पष्ट झलक दीख पड़ी। आगे बढ़कर पास जाकर देखा तो आँखें फट कर रह गई...। देखना न चाहा किन्तु...आँखें बन्द भी न हो सकीं।......हाय! ....क्या यही होना, यही देखना था। खोज का फल यही...। सारी घटना सुलझ गई। झाड़ी में कुल्हाड़ी के कुछ चिह्न थे ही...और वह काला भुजंग मेरी ओर भी फन हिलाता हुआ लपका

नारेल देख राणा मुलक्या, बोल्या—"म्हे बूढ़ा हुया आज।
नारेल कूण म्हानै भेजै, इब गयो जवानी रो मिजाज।।"

आ सुण दरबारी हाँस पड़्या, गुणवान दूत भी सरमायो।
बोल्यो, "अनदाता! माफ करो, नारेल कुँवर खातर ल्यायो।।"
चूंडो जी राजकुमार उठै, बैठ्या हा घणा सजीला बण।
जद बात दूत री सुणी बीर, तो क्रोध-सरम सूं झुक्या नयण।।

मन में बोल्या, "ओ गजब हुयो, अै सुगन-सगाई हो न सकै।
नारी पर सुसरो मन राखै, वा 'बहू' कदे भी बण न सकै।।"
बोल्या, "नारेल देख बापू! थे मन में धार्‌यो जिसो ध्यान।
वो ध्यान म्हनै अब माता रो, बेटो बण राखूं सदा आण।।"

दरबारी सुण के दंग हुया, सँकलाई में मरजाद अड़ी।
"नारेल न पाछो जावैलो", राणा री आँख्याँ झुकी पड़ी।।
मन में तो गलगल हुया घणा, बेटै री बात अयाणी ही।
ओ राजनीति नै के जाणै? राणा री बात सयाणी ही।।

बोल्या, "बेटा! कुलरीत देख, मैं बचन माँगणो चाहूँ हूँ।
मेवाड़ फूट में रुलै नहीं, वा रीत निभाणी चाहूँ हूँ।।
रजवाड़ै है परम्परा, भाई - भाई सूं बैर करै।
आपस में फूट पाप सींचै, जनता दुख पावै भूख मरै।।

"गद्दी - उतार, गद्दी - चढ़ाव, बस दो बातां रो चाव घणो।
आ धरती सुबक्यां मेलै जद, हिवड़ै में होवै घाव घणो।।
आजादी घर - दरवाजै तक, आजादी नहीं कहावै है।
जब खुसियाँ झूमैं सकल देस, तो आज़ादी सुख पावै है।।

"जद बखत आण पड़सी कोजो, तो राजनीति रुल ज्यावै ली।
म्हारो जद अन्त आण पड़सी, गद्दी रो प्रश्न उठावै ली।।
जद बूढ़ो बाप ब्याँव करसी, तो राणी नई राज करसी।
वीं राणी सूं ही जण्यो पूत, निज माथै नयो मुकुट धरसी।।

"तूं वीं दिन रो करले विचार, नारेल न पाछो जावै लो।
पण एक प्रतिज्ञा आ करले, गद्दी पर हक़ न जमावै लो।।"

चूंडो री जाग्यो स्वाभिमान, नस-नस में पावनता जागी।
अधिकार और कर्त्तव्य बीच, छिण भर तो होड़ भली लागी॥

जद असली भेद जाणग्यो वो, दरबार बीच तण खड़्यो हुयो।
तलवार खींच के चुचकारी, परतिज्ञा ले यूं वचन कह्यो॥
"मैं राणा री सौगन्ध काड, अपणो यो सीस झुकाऊँ हूँ।
दरबार बीच सरदार खड़्या, वां नै ओ वचन सुणाऊँ हूँ॥

"ओ राजपाट बदकार घणो, नित भलां-भलां रा पग तिसलै।
भाई - भाई सूं बैर तणै, मद में आँधो हो मन ढिसलै॥
इण खातर आज वचन द्यूं हूँ, मैं राजपाट छिटका द्यूं ला।
निज जननी जन्मभूमि खातर, हूँ अपणो सीस चढ़ा द्यूं ला॥

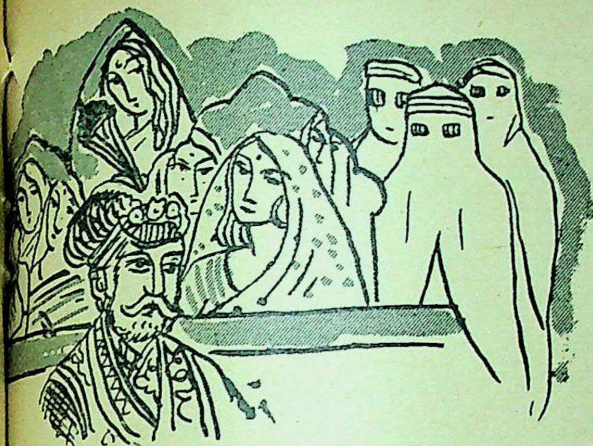
"नवराणी सूं जो पुत्र हुवै, वो राजपाट नै पावै लो।
चूंडो गद्दी री रक्षा हित, सेवक रह देस बचावै लो॥
जे फिर भी जनता मान न दे, नकटापण कदे न धारूंला।
सत्ता रो लालच नहीं म्हनै, हूँ सैनिक पद दुत्कारूँला॥

"सत्ता सूं तो चिपकै मूरख, लालच सूं गैल नहीं छूटै।
सत्ता में आँधै माणस रा, तो जगां - जगां गोडा फूटै॥
नैणां में सत्ता री डोरी, जे लाल रगत दरसावै है।
तो दुनियाँ साँची कहवै है, 'परिवर्तन' रा दिन आवै है॥

"परजा तो दुख में गलै जठै, सत्ता रो लोभी मौज करै।
जंजाल रचै जो अपणै हित, वां सूं धरती-माँ भार भरै॥
धिक्कार इसै सत्ता-सुख नै,"—कह चूंडो जी बाहर आया।
आँख्याँ में ओज पावसै हो, कर त्याग ऊजली ही काया॥

जनता री आँख्याँ भीज गई, राणा जी हा उदास भारी।
बारै जद आया चूंडो जी, चरणां री रज सै चुचकारी॥
सत्ता सिमटी ले स्वारथ नै, धरती पर अन्धकार छायो।
बलिदान कर्यो माथो ऊँचो, जनता रो हिवड़ो भर आयो॥

●



डॉ० सैयद अतहर अब्बास रिज़वी

मुग़ल-परिवार की महिलाओं की मान-मर्यादा की उज्ज्वल रेखाएँ जिन्हें बाबर, हुमायूँ और अकबर ने मुस्लिम संस्कृति के फलक पर चित्रित किया।

◉ ◉ ◉ ◉

महिलाएँ अच्छी माता, अच्छी बहिन, अच्छी पत्नी एवं पारिवारिक सुख-सम्पन्नता का भण्डार हों, यह एक ऐसी विशेषता है, जिसे हर युग में तथा हर देश में सराहनीय समझा जाता रहा है। फ़कीर की झोपड़ी हो, मध्य श्रेणी के किसी व्यक्ति का घर हो या बादशाह का महल, सभी जगहों पर पारिवारिक जीवन की सुख-शान्ति की आवश्यकता होती है। यदि यह सुख न हो तो पारिवारिक जीवन में कोई रस नहीं रहता, किन्तु मुग़ल-कालीन एशियाई अन्तःपुर में कुछ और विशेषताओं की माँग रहा करती थी। देहली के सुल्तानों का अन्तःपुर हो या ईरान, तुर्किस्तान अथवा मिस्र के शहंशाहों के हरम हों, हर

हरम की पृष्ठभूमि में मुग़ल परिवार की महिला
[समकालीन इतिहासों के आधार पर]

जगह ही राजनीति की आवश्यकताओं की पृष्ठभूमि में महिलाओं के जीवन में एक विशेष परिवर्तन पाया जाता था। उनका दैनिक जीवन, उनका विवाह, उनका प्रेम, यहाँ तक कि उनकी प्रत्येक साँस राजनीति की आवश्यकताओं के सहारे ही चलती थी। भौगोलिक स्थिति के कारण कहीं-कहीं महिलाओं के जीवन में कुछ परिवर्तन दृष्टिगत हो जाता था। जैसे काबुल, समरकन्द, बुखारा आदि पर्वतीय क्षेत्रों के हरम की महिलाओं में घुड़सवारी, युद्ध-कला से रुचि एवं वीरता तथा साहस की बड़ी माँग रहती थी किन्तु भारतवर्ष में आने के बाद भी मुग़लों के हरम में इन गुणों की उपेक्षा नहीं हो सकी। विभिन्न बादशाहों की राजनीतिक परिस्थितियाँ हरम के जीवन को भी प्रभावित करती रहीं। बाबर तथा अकबर के काल की स्त्रियों में वीरता एवं साहस की बड़ी माँग थी। हुमायूँ का जीवन अधिक भावुक था। उसके अन्तःपुर में भावुकता का संचार दृष्टिगत होता है। जहाँगीर के राज्यकाल में नूरजहाँ ने अपनी सुन्दरता के साथ-साथ अपनी कूटनीति से जो स्थान पैदा कर लिया था वह मुग़ल महिलाओं में बहुत कम स्त्रियों को प्राप्त है। शाहजहाँ की प्रिय पत्नी मुमताज महल की स्मृति में निर्मित यमुना-तट पर स्थित ताजमहल अब भी पति एवं पत्नी के पवित्र प्रेम का प्रतीक बन कर लोगों को आकर्षित करता रहता है। दाराशिकोह की बहिन जहाँआरा ने एक ओर अपने बड़े भाई के राज्य के लिए प्रयत्न करने में अदम्य साहस का परिचय दिया तो दूसरी ओर अपने पिता की सेवा में अपने सुख-चैन सभी को न्यौछावर कर दिया।

बादशाहों एवं शक्तिशाली शाहज़ादों को भी अन्तःपुर की महिलाओं के सम्मान का उचित ध्यान रखना पड़ता था। जब बाबर खुरासान के सुल्तान हुसैन मिर्ज़ा की मृत्यु के उपरान्त हिरात पहुँचा तो जिस प्रकार उसने बेगमों से भेंट की उसका विवरण उसने बड़े रोचक ढंग से किया है। वह लिखता है कि, "सभी बेगमों, मेरी फुफी पायन्दा सुल्तान बेगम, ख़दीजा बेगम, अपाक़ बेगम तथा मेरी अन्य फुफी बेगमें, सुल्तान अबू सईद मिर्ज़ा की पुत्रियां, उस समय जबकि मैं उनके दर्शन हेतु गया तो, सुल्तान हुसैन मिर्ज़ा के मदरसे में उसके मक़बरे पर जमा हो गई थीं। मैं सर्वप्रथम पायन्दा सुल्तान बेगम के समक्ष घुटनों के बल झुका और उनसे भेंट की। तदुपरान्त मैंने अपाक़ बेगम से भेंट की किन्तु उनके समक्ष घुटने के बल झुका नहीं। इसके पश्चात् ख़दीजा बेगम के समक्ष घुटनों के बल झुका और उनसे भेंट की। वहाँ थोड़ी देर बैठ कर हाफ़िज़ों द्वारा हम क़ुरान का पाठ सुनते रहे। तदुपरान्त हम मदरसे के दक्षिण की ओर, जहां ख़दीज़ा बेगम के ख़ेमे लगे थे, पहुँचे। वहां हमारे लिए भोजन की व्यवस्था की गई थी। भोजन के उपरान्त हम पायन्दा सुल्तान बेगम के ख़ेमे में पहुँचे और रात्रि वहीं व्यतीत की।"

बाबर के भारतवर्ष पर विजय प्राप्त कर लेने के उपरान्त जिस प्रकार सुल्तान इब्राहीम लोदी की माता ने बाबर के जीवन का अन्त करा देने का प्रयत्न किया उससे पता चलता है कि बादशाहों को अपने खाने-पीने की वस्तुओं के विषय में कितना सावधान रहना पड़ता था और इसीलिए एक बहुत बड़े विभाग की आवश्यकता पड़ती थी। इब्राहीम की माता के, जिसे वह बुआ

कहा करता था, इस प्रयत्न की उसने इस प्रकार उल्लेख किया है। "उस अभागिनी बुआ इब्राहीम की माता ने सुन लिया कि मैं हिन्दुस्तानियों के हाथ की चीजें खाता हूँ। इसका क़िस्सा इस प्रकार है कि क्योंकि मैंने हिन्दुस्तानी भोजन न खाया था अतः इस तिथि से ३-४ मास पूर्व मैंने इब्राहीम को बावरचियों के लाने का आदेश दिया था। ५०-६० बावरची लाये गये। मैंने उनमें से चार व्यक्ति रख लिये।"

बाबर अपने परिवार से कितना अधिक स्नेह रखता था इसकी एक झाँकी गुलबदन बेगम के हुमायूँनामा के उस विवरण से मिलती है जिसमें उसने हुमायूँ की माता माहम बेगम तथा अन्य स्त्रियों के काबुल से आगरा पहुँचने का उल्लेख किया है। वह लिखती है कि, "राणा साँगा की विजय के एक वर्ष उपरान्त मेरी आका माहम बेगम काबुल से हिन्दुस्तान पहुँचीं और यह तुच्छ भी उनके साथ सभी बहिनों के पूर्व पहुँच कर अपने बाबा हज़रत बादशाह की सेवा में उपस्थित हुई। जिस समय मेरी आका कोल[1] पहुँच गईं, हज़रत बादशाह ने तीन अश्वारोहियों के साथ दो पालकियाँ भेजीं। वे कोल से आगरा की ओर बड़ी तीव्र गति से रवाना हुईं। हज़रत बादशाह का विचार था कि कोल-जलाली[2] तक स्वागतार्थ जायें। सायंकाल की नमाज के समय एक व्यक्ति ने आकर कहा कि, "मैं हज़रत को दो कोस पर छोड़ कर आया हूँ।" मेरे बाबा हज़रत बादशाह ने घोड़ों के आने की भी प्रतीक्षा न की और पैदल रवाना हो गये। उन्होंने माहम की ननचा के ख़ेमे के समक्ष उनसे भेंट की। मेरी आका पैदल ही जाना चाहती थीं किन्तु बादशाह सलामत ने प्रतीक्षा न की और जो लोग उनके साथ थे उन्हें लेकर मेरी आका के पीछे-पीछे घर तक पैदल आये। जिस समय मेरी आका ने बादशाह सलामत से भेंट की तो मुझे आदेश हुआ कि मैं दिन निकलने पर बादशाह सलामत की सेवा में उपस्थित होऊँ।"

परिवार से स्नेह का बड़ा ही मार्मिक उदाहरण बाबर के एक छोटे पुत्र अलवर मिर्ज़ा की मृत्यु तथा हुमायूँ के रुग्ण होने की घटना है जिसकी करुणा गुलबदन के शब्दों से बहुत ही बढ़ गई है। वह लिखती है कि "कुछ दिन उपरान्त अलवर मिर्ज़ा रुग्ण हो गया। उसके पेट में अत्यधिक पीड़ा होती थी। यद्यपि हकीमों एवं चिकित्सकों ने अत्यधिक उपचार किये किन्तु उसका रोग उत्तरोत्तर बढ़ता

पत्नी—या इन्टेलेक्चुअल या कुँआरी

साहिर लुधियानवी से एक दोस्त ने कहा, "यार साहिर, अब शादी कर लो।" तो साहिर ने गंभीर स्वर में उत्तर दिया "हाँ यार, इच्छा तो मेरी भी है, लेकिन चाहता हूँ बीवी इन्टेलेक्चुअल और कुँआरी हो। मगर मुश्किल ये है दोस्त, कि जो लड़की कुँआरी होती है वह इन्टेलेक्चुअल नहीं होती और जो इन्टेलेक्चुअल होती है वह कुँआरी नहीं होती!"

—'सुर्ख़ हाशिये' से
(संकलन : अहमद सलीम)

(१) अलीगढ़
(२) अलीगढ़ का एक कस्बा

ही गया। और [illegible] इस नश्वर संसार से स्थायी संसार को प्रस्थान कर गया। हज़रत बादशाह को बड़ा दुःख हुआ। मिर्ज़ा अलवर की माता दिलदार बेगम उस पुत्र के दुःख एवं शोक के कारण, जो कि अपने युग का अद्वितीय व्यक्ति था, पागल हो गई। जब शोक सीमा से अधिक हो गया तो हज़रत बादशाह ने मेरी आका तथा बेगमों से कहा कि आओ, धौलपुर की सैर को चलें।" उन्होंने स्वयं नौका में बैठ कर प्रताप एवं सलामती के साथ नदी पार की और धौलपुर की ओर रवाना हुए।

बेगमें भी नौका में बैठ कर नदी पार करना चाहती थीं कि इसी बीच में मौलाना फ़रग़रली का देहलीसे प्रार्थना-पत्र प्राप्त हुआ जिसमें लिखा था कि "हुमायूँ मिर्ज़ा रुग्ण हैं और उनकी बड़ी विचित्र दशा हो गई है। इस समाचार को सुनते ही हज़रत बेगम शीघ्रातिशीघ्र देहली की ओर रवाना हो जायें कारण कि मिर्ज़ा बड़े ही कमज़ोर हो गये हैं।" यह समाचार सुनते ही मेरी आका ने अत्यधिक चिन्ता प्रकट करना प्रारम्भ कर दिया। वे उस प्यासे के समान हो गईं जो जल से वंचित हो गया हो, और इस अवस्था में वे देहली की ओर रवाना हुईं और मथुरा पहुँच गईं। जैसा उन्होंने सुना था उससे दस गुना संसार का दर्शन करने वाली अपनी आँखों से हुमायूँ मिर्ज़ा को कमज़ोर एवं शक्तिहीन पाया। वहाँ से दोनों पुत्र और माता ईसा एवं मरियम के समान आगरा की ओर रवाना हुए।

जिस समय वे आगरा पहुँचे तो यह तुच्छ अपनी बहिनों के साथ उस फ़रिश्ता-सरीखे शाहज़ादे की सेवा में उपस्थित हुई। यद्यपि उनकी कमज़ोरी बहुत अधिक बढ़ गई थी किन्तु उस समय भी जब कभी उन्हें चेत होता तो अपनी मोती बरसाने वाली जिह्वा से हमें पूछते थे और कहते थे कि "बहिनों, खुश-आमदेद, आओ हम लोग भेंट करें कारण कि तुमसे भेंट नहीं की।" तीन बार अपनी मोती बरसाने वाली जिह्वा से यह वाक्य कह कर हमें सम्मानित किया।

जब हज़रत (बादशाह) ने पहुँच कर उन्हें देखा तो देखते ही प्रकाशमय मुख पर कष्ट एवं दुःख के चिह्न पैदा हो गये और वे उत्तरोत्तर खेद प्रकट करने लगे। इसी बीच में मेरी आका ने कहा कि, "आप मेरे पुत्र की चिन्ता नहीं कर रहे हैं। आप बादशाह हैं। आपको क्या चिन्ता हो सकती है? आपके अन्य पुत्र भी हैं। मुझे दुःख है कि मेरे यही एक अकेला पुत्र है।" बादशाह ने उत्तर दिया कि, "माहम! यद्यपि मेरे अन्य पुत्र भी हैं किन्तु मैं तेरे हुमायूँ के बराबर किसी पुत्र को भी प्रिय नहीं समझता कारण कि मैं सल्तनत एवं बादशाही तथा समृद्ध संसार, दुनिया के अद्वितीय, अपने काल के विचित्र व्यक्ति, प्रतापी, सफल एवं प्रिय पुत्र हुमायूँ के लिए चाहता हूँ न कि अन्य लोगों के लिये।"

हुमायूँ की रुग्णावस्था के समय बादशाह सलामत उनके चारों ओर चक्कर लगाते थे और हज़रत मुरतजा अली करमल्लाहो वजहू की ओर आशा की दृष्टि डालते थे। बुधवार से उन्होंने इस प्रकार चक्कर लगाना प्रारम्भ किया और हज़रत मुरतज़ा अली की ओर आशा लगानी मंगल से। उस समय अत्यधिक गरमी पड़ रही थी, और उनका दिल और जिगर तप रहा था। उपर्युक्त चक्कर के समय बादशाह सलामत ने ईश्वर से प्रार्थना की कि, "हे ईश्वर! यदि जान का बदला जान हो

सकता है तो मैं—बाबर—अपनी अवस्था और प्राण हुमायूँ को प्रदान करता हूँ।" उसी दिन से हज़रत फ़िरदौस मकानी[1] रुग्ण होने लगे और हुमायूँ बादशाह स्नान करके बाहर निकले और दरबार किया। मेरे बाबा हज़रत बादशाह रुग्णावस्था के कारण भीतर चले गये। वे २-३ मास तक रुग्ण रहे।

पति-पत्नी की नोंक-झोंक से मुग़ल हरम की चहार दीवारी भी खाली न थी। हुमायूँ की पत्नियों को यह पसन्द न था कि वह अपनी चाचियों, फुफियों इत्यादि के पास अधिक जाया करे। हुमायूँ के आगरा से गुजरात जाते समय हुमायूँ ने अपनी पत्नी बेगा बेगम को जिस प्रकार फटकारा, उसका उल्लेख हुमायूँनामा में बड़े ही रोचक ढंग से किया गया है। गुलबदन बेगम ने लिखा है कि, "कुछ समय उपरान्त हज़रत पादशाह स्वयं गुजरात की ओर रवाना हुए। १५ रजब ९४१ हि. (२० जनवरी १५३५ ई०) को गुजरात प्रस्थान का संकल्प कर लिया। बाग़े ज़र अफ़शां में पेशखाना लगवाया गया। वे स्वयं उस उद्यान में सेना के एकत्र होने के एक मास तक ठहरे रहे।

दरबार के दिन, जो रविवार एवं बुधवार को निश्चित थे, वे नदी के उस पार जाते थे। जब तक वे उद्यान में रहे, अधिकांश आजम, बहिनें एवं बेगमें हज़रत की सेवा में रहती थीं। सबसे ऊपर मासूमा सुल्तान बेगम का खेमा था। तदुपरान्त गुलरंग बेगम एवं आजम के खेमे एक ही स्थान पर थे। इसके बाद मेरी माता, गुलबर्ग बेगम, बेगा बेगम एवं अन्य बेगमों के खेमे थे।

कारखानों की व्यवस्था की गई और उन्हें तैयार किया गया। सर्वप्रथम जब खेमे, खरगाह एवं बारगाह, बाग़ में लगवाये गए तो वे उनकी शोभा एवं सुव्यवस्था देखने पहुँचे। बेगमें एवं बहिनें पधारीं...। क्योंकि वे मासूमा सुल्तान बेगम के निकट ठहरे हुए थे अतः वे उनके खेमे में पधारे। समस्त बेगमें एवं बहिनें साथ थीं। वे जिस बेगम अथवा बहिन के खेमे में पधारते, समस्त बेगमें एवं बहिनें साथ जाती थीं। दूसरे दिन वे इस तुच्छ के खेमे में पधारे। तीन पहर तक सभा होती रही। अधिकांश बेगमें, बहिनें, बेगायें, आगाचायें, वादिकायें एवं गायिकायें उपस्थित थीं। तीन पहर उपरान्त हज़रत (पादशाह) ने विश्राम किया। समस्त बहिनों एवं बेगमों ने उन्हीं की सेवा में विश्राम किया।

बेगा बेगम ने हमें जगाया कि नमाज़ का समय है। हज़रत ने आदेश दिया कि वुज़ू के लिए जल उसी खेमे में तैयार किया

कम्बख्त रिश्तेदार

जुदा रहें तो जुदाई में हाय-हाय करें,
जो एक-जा हों तो कम्बख़्त ज़हर उगलने लगें!
अजब सुलगती हुई लकड़ियाँ हैं रिश्तेदार,
अलग रहें तो धुआँ दें, मिलें तो जलने लगें!

—अज्ञात

(संकलन : अहमद सलीम)

(१) **बाबर**

जाय । बेगम समझ गई कि पादशाह जाग रहे हैं । वे शिकायत करने लगीं कि, "आप कई दिन से इस बाग़ में पधार रहे हैं । एक दिन भी हमारे घर न आये । हमारे घर के मार्ग में काँटे नहीं बोये हैं । आशा है कि आप हमारे घर भी पधारें और आमोद-प्रमोद का प्रबन्ध एवं सभा आयोजित करायें । इस दुखिया के प्रति यह उपेक्षा आप कब तक करेंगे ? हमारे भी दिल हैं । आप अन्य स्थानों पर तीन बार पधारे और रात-दिन वहाँ आनन्द-मंगल मनाते रहे ।"

संक्षेप में, पादशाह ने कुछ न कहा और नमाज़ पढ़ने चले गये । एक पहर दिन चढ़ जाने के उपरान्त बहिनों, बेगमों, दिलदार बेगम, अफ़ग़ानी आग़ाचा, गुलनार आग़ाचा, मेवा जान, आग़ा जान एवं अनग़ाओं को बुलवाया । जब हम सब पहुँचे तो पादशाह ने कुछ न कहा । सब समझ गईं कि पादशाह बड़े क्रोध में हैं । तदुपरान्त उन्होंने कहा, "बीवी, प्रातःकाल तुमने मुझसे क्या शिकायत की ? वह शिकायत करने का स्थान न था । तुम जानती हो कि हम तुम्हारे वली नेमतों (बुज़ुर्गों) के घर रहे । मेरे लिये उन्हें सन्तुष्ट रखना परमावश्यक है । इसके बावजूद मैं उनसे लज्जित हूँ कि मैं उनके दर्शन करने में विलम्ब करता हूँ । मैं सर्वदा सोचा करता था कि तुम लोगों से क्षमा-याचना करूँ । अच्छा हुआ कि तुमने स्वयं बात छेड़ दी । मैं अफ़ीमी हूँ । यदि मेरे आने-जाने में विलम्ब हो तो रुष्ट मत होना अन्यथा लिख कर दे दो कि, "आपकी इच्छा, आप आयें या न आयें । हम सन्तुष्ट हैं ।"

गुलबर्ग बेगम ने तत्काल वही शब्द लिख कर दे दिये । गुलबर्ग बेगम की ओर से वे सन्तुष्ट हो गए । बेगा बेगम ने थोड़ा-सा आग्रह किया कि, "बहाना, पाप से भी बुरा होता है । ऐसा न करें । इस

खाविन्द की यादगार में

किसी बेवा के यहाँ एक तोता था । वह हर वक्त उस बेवा को गालियाँ बकता रहता था । एक दिन कोई पीर साहब आये । उन्होंने तोते की गालियाँ सुनीं तो बेवा से बोले, "ऐसे बुरे तोते को क्यों रखती हो ! खोल दो पिंजड़ा कि उड़ जाए ।"

शिकायत से हमारा उद्देश्य यह था कि आप हमें अपनी अनुकम्पा द्वारा सम्मानित करें । आपने बात इस सीमा तक बढ़ा दी । हमारे पास क्या उपाय है । आप पादशाह हैं ।" पत्र लिख कर दे दिया । वे उनसे भी संतुष्ट हो गए ।[१]

हमीदा बानो बेगम से हुमायूँ के विवाह का प्रस्ताव, विवाह के सम्बन्ध में कठिनाइयाँ तथा इस प्रसंग की अन्य घटनायें मुग़ल हरम के जीवन में महिलाओं के स्थान को बड़े ही स्पष्ट रूप से प्रकट करतीं हैं । हुमायूँ शेरशाह से पराजित होकर जब लाहौर होता हुआ सिंध पहुँचा तो उसे प्रत्येक स्थान पर अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा । मीर्ज़ा कामरान तथा मीर्ज़ा अस्करी तो पहिले हीं से पृथक् हो गये थे किन्तु मीर्ज़ा हिन्दाल को मनाने के लिए जब हुमायूँ उसके पास पहुँचा तो उसी समय उसकी भेंट हमीदा बानो बेगम से हो गई ।

(१) हुमायूँ नामा पृ. ३७,३९, मुग़ल कालीन भारत—हुमायूँ पृ. ५२०-५२२

मीर्ज़ा के अन्तःपुर की बेगमों एवं मीर्ज़ा के समस्त आदमियों ने हज़रत पादशाह के प्रति अभिवादन किया। हज़रत ने हमीदा बानो बेगम के विषय में पूछा, "यह कौन

"रहने दो पीर साहब", बेवा ने उत्तर दिया, "घर में अब अपना मरदवा तो नहीं रहा, लेकिन उस जैसी आवाज़ तो सुनायी देती रहती है।"

—'कश्कोल मुहम्मद अली शाह फ़क़ीर' से

(संकलन : अहमद सलीम)

है?" उत्तर मिला कि, "मीर बाबा दोस्त की पुत्री है।" ख्वाजा मुअज़्ज़म हज़रत के समक्ष खड़ा था। उन्होंने कहा, "यह बालक मेरा सम्बन्धी होता है।" हमीदा बानो बेगम से भी कहा कि, "यह भी मेरा सम्बन्धी है।"

उन दिनों हमीदा बानो बेगम प्रायः मीर्ज़ा के महल में रहती थीं। दूसरे दिन पुनः हज़रत जन्नत आशियानी मेरी माता दिलदार बेगम से भेंट करने पहुँचे, और कहा कि, "मीर बाबा दोस्त हमारा सम्बन्धी है। यह उचित होगा कि उसकी पुत्री का मुझसे विवाह कर दिया जाय।" मीर्ज़ा हिन्दाल ने बहाना किया और कहा कि, "इस लड़की को मैं अपनी बहिन तथा पुत्री के समान समझता हूँ। हज़रत पादशाह हैं। सम्भव है गुज़र न हो सके और इससे आपको कष्ट हो।" हज़रत पादशाह क्रोधित होकर चले गए।

तदुपरान्त मेरी माता ने एक पत्र लिख कर भेजा कि, "पुत्री की माता इससे भी अधिक नख़रे करती है। यह बड़ी विचित्र बात है कि ज़रा-सी बात से रुष्ट होकर आप चले गये।" हज़रत पादशाह ने उत्तर लिख कर भेजा कि, "आपकी इस बात से मैं बड़ा प्रसन्न हुआ। वह जो भी नाज़ करती है उसे मैं आँखों पर स्वीकार करता हूँ। आश[1] के विषय में जो कुछ लिखा है यदि ईश्वर ने चाहा तो इच्छानुसार पूरा होगा। प्रतीक्षा करनी चाहिये।" मेरी माता जाकर हज़रत पादशाह को लाईं। उन्होंने उस दिन सभा की। सभा के उपरान्त वे अपने स्थान पर तशरीफ़ ले गए। दूसरे दिन हज़रत (पादशाह) मेरी माता के पास पहुँचे और कहा कि, "किसी को भेज कर हमीदा बानो बेगम को बुलवाओ।" मेरी माता ने किसी को भेजा। हमीदा बानो बेगम न आईं और कहलाया कि, "यदि उद्देश्य यह है कि मैं अभिवादन करूँ तो मैं स्वयं अभिवादन द्वारा सम्मानित हो चुकी हूँ। अब किसलिए आऊँ?" दुबारा हज़रत ने सुभान कुली को भेजा कि, "मीर्ज़ा हिन्दाल से जाकर कहो कि बेगम को भेज दे।" मीर्ज़ा ने कहा, "मैंने बहुत कहा किन्तु वह नहीं जाती; तू स्वयं जाकर कह।" सुभान कुली ने जाकर कहा तो बेगम ने उत्तर दिया कि, "पादशाह का दर्शन केवल एक बार जायज़ है। दूसरी बार नामहरम है। मैं नहीं आऊँगी।" सुभान कुली ने बेगम से जब यह बात सुनी तो आकर हज़रत से कह दिया। हज़रत ने कहा कि, "यदि वे

(१) सम्भवतः मआस से तात्पर्य है जिसका अर्थ वज़ीफ़ा, ज़मीन, जागीर इत्यादि है।

नामहरम[1] हैं तो हम महरम बना लेंगे।"

संक्षेप में ४० दिन तक हमीदा बानो बेगम के लिए आग्रह तथा वाद-विवाद होता रहा। बेगम राज़ी न होती थीं। अन्ततोगत्वा मेरी माता दिलदार बेगम ने नसीहत की कि, "आखिर किसी से तो तेरा विवाह होगा। पादशाह से उत्तम कौन हो सकता है?" बेगम ने कहा कि, "निःसन्देह उस व्यक्ति से विवाह होगा जिसके गरीबान तक मेरा हाथ पहुँच सकेगा न कि उस व्यक्ति से जिसके विषय में मैं समझती हूँ कि मेरा हाथ उसके दामन तक नहीं पहुँच सकता।" अन्त में फिर मेरी माता ने अत्यधिक नसीहत की।

संक्षेप में ४० दिन के उपरान्त जमादि-उल-अव्वल ९४८ हि० (अगस्त-सितम्बर १५४१ ई०) में पातर नामक स्थान पर सोमवार के दिन मध्याह्न में पादशाह ने अपने शुभ हाथों में स्वयं उस्तुरलाब लेकर शुभ मुहूर्त्त को चुना और मीर अबुल बक़ा को बुलवा कर आदेश दिया कि वह निकाह पढ़े। दो लाख रुपये निकाहाना के रूप में मीर अबुल बक़ा को दिए गए। निकाह के उपरान्त वे तीन दिन वहाँ और रहे। तदुपरान्त नौका पर बैठ कर बक्खर की ओर प्रस्थान किया।[2]

हमीदा बानो बेगम ने विवाह के पश्चात् जिस प्रकार अपने पति का साथ दिया और कभी भी कठिनाई में उससे पृथक् होना स्वीकार न किया, पारिवारिक जीवन के लिए बहुत बड़ा आदर्श है। अपने प्रिय दूध-पीते पुत्र अकबर को कन्धार में छोड़ कर वह ईरान में बराबर हुमायूँ के साथ रही और बेगम के कारण हुमायूँ की बहुत-सी कठिनाइयों का भी समाधान हुआ। ईरान के बादशाह शाह तहमास्प सफ़वी ने जहाँ हुमायूँ की दावतें कीं और उसका दिल बहलाने का प्रयत्न किया वहीं शाह के अन्तःपुर की महिलाओं ने हमीदा बानो बेगम का भी जी बहलाने में कोई कसर न उठा रक्खी।

हरम के जीवन में महिलाओं को कुटनियों के कारण भी बड़ी कठिनाइयाँ उठानी पड़ती थीं। कभी-कभी तो इन कुटनियों की वजह से राजनीति को बड़े भयंकर परिणाम का सामना करना पड़ता था। हुमायूँ के भाई मीर्ज़ा कामरान तथा हुमायूँ के एक अन्य चचेरे भाई मीर्ज़ा सुलेमान में जो बदख्शां का हाकिम था, शत्रुता के बल मीर्ज़ा कामरान की मूर्खता एवं एक कुटनी की दुष्टता के कारण इतनी अधिक बढ़ गई कि दोनों में कभी भी मेल न हो सका। गुलबदन बेगम ने लिखा

परिवार में : परिवार से दूर

अट्ठारह बरस की आयु में कैथरीन मेंसफ़ील्ड ने अपनी डायरी में लिखा था :

"उफ़्! परिवार का वातावरण बड़ा ही जानलेवा है। बेहद उकताहट होती है, जी चाहता है परिवार से दूर कहीं अकेले जा रहूँ।"

(१) वह स्त्री जिससे विवाह करना सम्भव हो। मुसलमानों में कुछ ऐसी सम्बन्धी स्त्रियाँ होती हैं जिनसे विवाह नहीं हो सकता। ऐसी स्त्रियाँ महरम कहलाती हैं और वे अपने पुरुष सम्बन्धी से पर्दा नहीं करतीं। अन्य स्त्रियाँ पर्दा करती हैं।

(२) हुमायूँ नामा पृ. ५१-५३, मुग़ल कालीन भारत—हुमायूँ पृ. ५३५-५३७।

है कि, "जब मीर्ज़ा कामरान कोलाब में थे तो तरखान बेगा नामक एक धूर्त्ता कुटनी ने मीर्ज़ा को बहका दिया कि वह हरम बेगम[1] से आशिक़ी प्रकट कर दें कारण कि इसमें मसलहतें हैं। मीर्ज़ा कामरान ने भी उस मूर्खा के कहने पर एक पत्र एवं रूमाल बेगी आगा के हाथ हरम बेगम के पास भेजा। वह स्त्री पत्र एवं रूमाल हरम बेगम के पास ले गई और मीर्ज़ा कामरान के अत्यधिक प्रेम का उल्लेख किया। हरम बेगम ने कहा, "इस समय यह पत्र एवं रूमाल अपने पास रख। जब मीर्ज़ा लोग[2] बाहर से आ जायें, यह पत्र एवं रूमाल ले आना।" बेगी आगा ने विलाप एवं विनती करते हुए कहा कि, "मीर्ज़ा कामरान ने यह पत्र एवं रूमाल तुम्हें भेजा है और दीर्घकाल से तुम पर आशिक़ हैं। तुम इस प्रकार सौजन्य के विरुद्ध कार्य कर रही हो।" हरम बेगम ने क्रोध एवं कठोरता प्रदर्शित करना प्रारम्भ कर दिया।

> और कुछ ही दिनों बाद अपनी उसी डायरी के किसी पृष्ठ पर कैथरीन ने लिखा :
>
> "आज बीमारी का दूसरा दिन है। यहाँ, घर से दूर, बीमारी के दिनों में माँ और परिवार के दूसरे लोगों की कितनी याद आ रही है!"
>
> —संकलन : अहमद सलीम

उसी समय मीर्ज़ा सुलेमान एवं मीर्ज़ा इब्राहीम को बुलवा कर कहा कि, "मीर्ज़ा कामरान ने तुम लोगों की नामर्दी को समझ कर मुझे ऐसा पत्र लिखा है। वास्तव में (क्या) मैं इसी योग्य थी कि मुझे इस प्रकार का पत्र लिखे। मीर्ज़ा कामरान तुम्हारा बड़ा भाई है और मैं उसकी कौलीन हूँ। मुझे इस प्रकार का पत्र भेजता है! इस दुष्टा के टुकड़े-टुकड़े करा दो ताकि अन्य लोग शिक्षा ग्रहण कर सकें और कोई भी किसी के परिवार पर किसी कुत्सित विचार से बुरी दृष्टि न डाल सके। किसी मनुष्य द्वारा जन्मी स्त्री के लिए यह कहाँ उचित है कि इस प्रकार की अनुचित वस्तु लाये और मुझसे तथा मेरे पुत्र से भय न करे?" बेगी आगा बीवी के, जिसके भाग्य में मौत लिखी थी, तत्काल टुकड़े-टुकड़े करा दिए गए।

हरम में महिलायें जहाँ उत्तम कवितायें करतीं तथा पुस्तकों की रचनायें करतीं, वहीं नाना प्रकार के उपयोगी आविष्कार भी किया करती थीं। सलीमा सुल्तान बेगम ने एक प्रकार के गुलाब के इत्र का आविष्कार किया और उसका नाम इत्रेजहाँगीर रक्खा। जहाँगीर ने प्रसन्न होकर उसे मोतियों की एक माला भेंट की। नूरजहाँ बेगम अपनी बुद्धिमत्ता एवं कूटनीति के लिए ही प्रसिद्ध नहीं हैं अपितु उसने अनेक अवसरों पर वीरता एवं अदम्य साहस का परिचय दिया। जहाँगीर ने स्वयं अपने राज्य के १२ वें वर्ष के विवरण में लिखा है कि, "७ तारीख़ को शिकारियों ने चूँकि चार बाघ देख लिये थे अतः दोपहर व ३ घड़ी बीत जाने के बाद मैं बेगमों को लेकर उनके शिकार हेतु गया। जब बाघ दिखाई दिये तो नूरजहाँ बेगम ने प्रार्थना की कि, "यदि आप आज्ञा दें तो मैं बाघ का शिकार अपनी बन्दूक से

(१) मीर्ज़ा सुलेमान की पत्नी।
(२) मीर्ज़ा सुलेमान एवं उसका पुत्र मीर्ज़ा इब्राहीम।

करूँ।" मैंने कहा कि, "ऐसी ही सही।" उसने दो बाघों को एक-एक निशाने में ही मार दिया और शेष में से प्रत्येक को दो-दो गोलियों में गिरा दिया। पलक झपकते ही बेगम ने इन चारों बाघों को मार गिराया। अभी तक ऐसी निशानेबाजी कभी नहीं देखी गई कि हाथी की चोटी पर से, हौदे के अन्दर से, ६ गोलियाँ चलाई जायें और एक भी उनमें से खाली न जाये और चारों जानवरों को भागने तथा हिलने-डुलने का कोई अवसर न मिल सके। उस उत्तम निशानेबाज़ी के उपहार-स्वरूप मैंने पहुँची की एक जोड़ी, जो हीरों की थी और जिसका मूल्य एक लाख रुपया था, बेगम को प्रदान की और मार्ग में एक हज़ार अशर्फियाँ उसके ऊपर से न्यौछावर की।"[१]

शाहजहाँ की सबसे बड़ी पुत्री जहाँआरा बेगम ने अपनी माता मुमताज महल की मृत्यु के उपरान्त शाहजहाँ के आराम एवं राजभवन के सभी प्रबन्ध अपने जिम्मे ले लिये। उसने जिस आत्म-बलिदान से पिता के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया, वैसा कोई अन्य उदाहरण मुग़ल अन्तःपुर के इतिहास में नहीं मिलता। २६ साल की अवस्था में (१०४९ हि०। १६३९ ई०) ही उसे तसव्वुफ़ अथवा सूफी मत से रुचि हो गई और उसने मूनीसुल अरवाह नामक एक ग्रन्थ की रचना की जिसमें सूफ़ी-सन्तों की जीवनियों को बड़े रोचक ढंग से प्रस्तुत किया। राज्य के कार्यों अथवा भाइयों के झगड़े में या तो वह संधि कराती हुई दीख पड़ती है या फिर अपने पिता की प्रसन्नता तथा उसकी बात का पक्ष लेती और उसके आदेशों का पालन करती हुई दृष्टिगत होती है। शाहजहाँ दाराशिकोह को ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। तसव्वुफ़ से जहाँआरा तथा दाराशिकोह दोनों को ही बड़ी अधिक रुचि थी अतः उसे दाराशिकोह के लिए प्रयत्न करने तथा उसका साथ देने के कारण बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। औरंगज़ेब के जो पत्र जहाँआरा के नाम मिलते हैं उनसे जहाँआरा की शक्ति एवं उसकी सूझ-बूझ का भली-भांति ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

मुग़लों के हरम की महिलायें अपने इन्हीं गुणों के कारण अभी तक इतिहास में प्रशंसा की पात्र बनी हुई हैं।

(१) तुज़ुके जहाँगीरी (सर सैयद संस्करण) पृ. १८५-१८६।

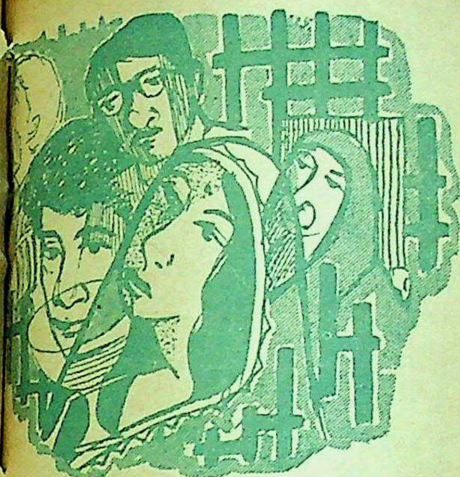
■

औरत, औरत की नज़र में

मुझे इस बात की खुशी है कि भगवान ने मुझे पुरुष नहीं बनाया वर्ना मुझे किसी औरत से शादी करनी पड़ती।

—मदाम दि स्टाल

(संकलन : मनोहर जुनेजा)



आनन्दप्रकाश जैन

जीवन से निकल भागने की राह है कहाँ? और......पागलखाना केवल वही नहीं होता जहाँ सींखचे लगे होते हैं।....तनिक नज़रें पसार कर दूसरे भारतीय परिवारों को देखिए। ये सारे इसी भारतीय संस्कृति की उपज हैं। इनमें जहाँ अच्छे नमूने देख कर आपके सामने सहसा ही एक आदर्श पत्नी का रूप उपस्थित हो जाता है वहाँ बुरे नमूनों की ओर से आप क्यों आँखें मूंद लेते हैं? आपके ख्याल में क्या इन सब को दो-दो बोतल शराब रोज नहीं चाहिए?

● ● ● ●

शशि :

मैंने ब्याह करके कोई सुख नहीं उठाया। अगर कुत्ते-बिल्लियों के ब्याह होते, तो वे भी ऐसे ही होते। मैं ही हूँ जो सब सह जाती हूँ। इनके घर में औरतों को टीस देने की रीत ही चली आ रही है। ससुर जी ने दो ब्याह किए थे। एक बेचारी को तड़पा- तड़पा कर, पीट-पीट कर मार डाला। छड़ी दूसरी पर भी सैकड़ों बार उठाई। वह तो कहो बेचारी स्वयं ही कैंसर के रोग में चल बसी। मेरे पुरबले जनम के कोई पाप होंगे जो मैं ऐसे

घर से पागलखाने तक

घर में ब्याही गयी। मेरे सारे गहने लूट-लूट कर सोने-चाँदी और गुड़-चने के सट्टे में उड़ा दिए। वह तो कहो कि मैं जल्दी ही सँभल गई। नहीं तो बदन पर एक चिंदी भी न छोड़ते। मेरी पितस जो थीं, उससे पितसरे जी सीधे मुँह बात भी नहीं करते थे। बेचारी दिक में खाँस-खाँस कर मर गई।

अपनी जानती में मैंने कोई ऐसा पाप नहीं किया, जो चुपचाप तड़पा करूँ और घर की बरबादी देखती रहूँ। नकद सात फेरों से आई हूँ——कोई करी-भगाई नहीं आई। यह कोई शरीफ़ों का काम नहीं कि पराई बहू-बेटियों को दीदे फाड़-फाड़ कर देखते हैं। अरे, तुम्हारी बहू-बेटियाँ नहीं हैं क्या? मेरा जी जलता है, हिरदा जलता है, अन्दर से आग उठती है——मैं क्या करूँ? यह कितना ही छिपा-छिपा कर ताक-झाँक करें। मैं सारे लच्छन देखती हूँ। सब समझती हूँ। ऐसे ही सब सह जाने वाली नहीं हूँ।

यह बात नहीं कि सारा इनका ही कसूर हो। जब रात-दिन ऐरों-गैरों का अड्डा लगा रहेगा, तो कैसा ही आदमी हो, बहक ही जाएगा। मैंने कितनी ही बार छिप-छिप कर देखा है, सुना है। असल में ये भोले हैं। इनके दोस्त इन्हें बहका लेते हैं। देवर भी तो मरा ऐसा ही है। मरे ने कितनी ही बार सिखा-सिखा कर मुझे पिटवाया। एक बार तो मेरी हड्डियाँ कई दिन तक टीसती रहीं थीं। अपनी को तो ऐसी सजा-सँवार कर रखता है, जैसे कोई कोठेवाली हो। बगल में लिए बाज़ार-बाजार घूमता है। वह भी तो इनकी तरफ़ सैन चलाती है। जब ब्याह हुआ था तब थीं क्या——ठेठ गँवार थीं। अरे, मेरे सामने क्या बोल सकती है वो——चुप-छिनाल है, चुप-छिनाल। मरा देवर भी उसी का तो करा-धरा खाता है। बरसों तो हम ही ने उसे खिलाया है। मरा इनसे जाने क्या-क्या लूट-लूट कर खा गया। इन्हें शराब की लत इसी मरे ने लगाई थी। एक वह वर्मा है लमठंगा-सा। मरा वह भी ऐसा ही है। लत लगाने को तो उस मरे ने भी लगाई। फिर दोनों तो अपना-अपना पल्ला झाड़ कर अलग हो गए। इनका ही मन भुरभुरा है। एक बार मुँह की लगी तो यह ऐसे भी नहीं छूटती। फिर इनके मुँह लगी! अब तो किसी बखत मुँह से ही नहीं हटती। हर बखत पिए बैठे रहते हैं। सत्यानास कर लिया है शरीर का।

खैर, मैं यह नहीं कहती। कई बार मुझे भी तो इन्होंने चखाई है। मरद हैं, नसे को मन कर ही आता है कभी-कभी। मैं कोई रोकती तो नहीं, हाथ तो नहीं पकड़ती। पर मेरा जी क्यों जलाते हैं? मुझे तो गम इसी बात का है। ऐसा भी क्या मरद जो हर बखत पिए ही बैठा रहे। आग लगे मरी शराब में। अच्छा, फिर आप ही आप तो नहीं पीते। जो कोई आ बैठता है उसे भी पिलाते हैं। पानी की तरह पैसा बह रहा है इस मरी शराब में।

कहते हैं कि मैं बदनामी फैलाती हूँ। अरे, बदनामी नहीं होगी, तो क्या नेकनामी होगी! क्या ये ही बड़े घरवालों के काम थे, ये ही लालाओं के काम थे, जब मेरा जी अन्दर से जलेगा, तो क्या मैं अपने मन की किसी से कहूँ भी नहीं? यह क्या कि पी-पी कर आँखें लाल कर लीं और दूसरे की बहू-बेटी को घूर-

घूर कर देखने लगे। मरद को किसी का तो डर हो! पर इन्हें किसी का नहीं। ससुरा जी तो जहाँ दफ्तर का वखत हुआ वहाँ भागे पाटिये की तरफ। इतना बड़ा घर, सारा इन्होंने ही तो लुटाया है। बचा-खुचा ज़मींदारा पितसरे जी ने दबा लिया। फिर सरकार क्या करती? उसको भी मौका लगा—वह भी ले भागी।

खैर, मेरा क्या? मेरे तो ये दो लड़के हैं, एक लौंडिया है। जो कुछ बिगाड़ेंगे अपना ही बिगाड़ेंगे। लड़कों की शादी में तो खैर कोई बात नहीं, हो ही जाएँगी। लड़की के हाथ और कोई पीले नहीं करेगा तो ये दोनों लड़के अपनी इकलौती बहन को बिसार थोड़े ही देंगे? पर मैं तो यह पूछती हूँ कि इनका क्या होगा? इन्हें कौन-सी गति मिलेगी? दुनिया इनके नाम पर थू-थू नहीं करेगी क्या?

सौमेन्द्र :

जी हाँ, पागलखाने की कोई कोठरी मेरे लिए रिज़र्व करा रखिये। मालूम नहीं कब ज़रूरत पड़ जाए और आपको परेशानी हो। अब काम-काज की भी वह शक्ति नहीं रह गयी है। दिमाग़ ने तो अब सोचना ही छोड़ दिया। सोचते-सोचते जब बहुत ऊँचे चला जाता हूँ, तो एक 'वरटिगो' पैदा हो जाता है। फिर मानो सब कुछ एक भ्रम, एक धुँध में बदल जाता है और सँभलने में काफ़ी देर लग जाती है। फिर भी जब तक शरीर चलता है काम-काज तो छोड़ा नहीं जाता। दूसरे की जेब से पैसा निकलवा कर अपनी मेज़ पर गिनवाने के लिए आदमी को कितना दिमाग़ खपाना पड़ता है, कितना परिश्रम करना पड़ता है और कितना सतर्क रहना पड़ता है इसका हिसाब दुनिया की कोई औरत आज तक नहीं लगा सकी।

यह ठीक है कि मैं थोड़ा-सा दब्बू किस्म का हूँ। अब बीस बरस की बात हो गई, तो कुछ कहते नहीं बनता। पर जब मैंने पहले-पहले अपनी वाइफ़ का फोटो देखा था, तभी कोई विशेष आकर्षण नहीं हुआ था। यों थोड़ी-बहुत गुदगुदी सभी के मन में भावी वधू का चित्र देख कर होती है। पर उस समय कौन ऐसा है, जो अपने समस्त आगामी जीवन की संभावनाओं का लेखा-जोखा सही-सही लगा सकता हो? हालाँकि मेरे हाथ में वह फोटो उस समय दिया गया था, जब सम्बन्ध पक्का हो चुका था। वह मेरे लिए एक सूचना मात्र थी। फिर भी यदि मुझे अवसर दिया जाता, तो मैं विशेष कुछ निर्णय कर पाता इसमें मुझे सन्देह है। हमारे घरानों में रिश्ते लड़के-लड़कियों के नहीं होते। वे घरों से घरों के होते हैं। उन घरों में जो बहुत-सी रूढ़ियाँ, बहुत-से संस्कार और बहुत-सी बेवकूफियाँ पलती हैं उनके ही रिश्ते आपस में पक्के किये जाते हैं। अगर ऐसा न होता, तो अवश्य मेरा विवाह उस लड़की से किया जाता, जो हमारे एक निकट के रिश्ते की थी। सम्बन्ध बहुत निकट का भी नहीं था, पर संकीर्णताओं को कोई क्या कहे? मेरा पक्का विश्वास है कि जितनी समझदार वह लड़की थी, यदि मेरे घर आती तो यह घर आज कुछ दूसरा ही रूप लिये होता। वैसे भी आजकल वह जहाँ है वहाँ कोई विशेष सुखी नहीं। यों हम दोनों में कोई उजागर प्रेम जैसी कोई चीज़ नहीं थी। केवल मन के भीतर की पसन्द थी। जो बहुत सकुचाते

हुए मैंने अपनी चाची पर प्रकट कर दी थी और जिसे सुन कर चाचाजी और पिताजी ने एक लम्बी 'हूँ' के अतिरिक्त कोई विचार प्रकट नहीं किया था। अपने लड़कों के लिए जो लड़कियाँ उन्होंने आज तक चुनी हैं और लड़कियों के लिए जो लड़के चुने हैं उनको देखते हुए ये सब पागलखाने के उम्मीदवार लगते हैं।

खैर, जो हो गया मैंने उसे ही अपना भाग्य मान कर सन्तोष किया। पूरे जोश-ख़रोश से मैंने अपने को अपने काम-धाम में लगा दिया और एक अच्छा घर बनाने में, एक मीठी गृहस्थी का निर्माण करने में जुट गया। मैंने श्रीमती जी के नाज उठाने शुरू किये। इतना उत्साह मेरे अन्दर उमड़ा कि जी चाहता कि गरमियों में ठंढाई भी अपने हाथ से घोंट कर पिलाऊँ, जाड़ों में चाय भी स्वयं ही बना लेता और देवी जी को उठते न उठते बिस्तरे पर पहुँचा देता। इस पर लोगों ने मेरी मज़ाक भी उड़ाई। लेकिन मैंने इसकी परवा न की। लेकिन धीरे-धीरे मुझे मालूम हुआ कि जो औरत मेरे पल्ले पड़ी है वह एकदम आलसी तबीयत रखती है। बराबर के घर में ही बुआ जी रहती थीं, जो मेरी हरकतों पर नाक-भौं सिकोड़ती थीं और जब मौका लगता था ताने भी मार देती थीं। हमारी श्रीमती जी ने न केवल उन तानों को ही पी लिया, बल्कि उन्होंने कभी यह तकलीफ़ गवारा नहीं की कि ज़िद करके मेरे हाथ से इस तरह के घरेलू काम छीन लें। उनका बस चलता और मौका मिलता, तो रोटियाँ भी अपने हाथ से ही पका कर मैं उन्हें खिलाया करता।

और फिर धीरे-धीरे यह भी मालूम होने लगा कि न सिर्फ़ देवी जी आलसी हैं, बल्कि बेवकूफ़ भी हैं! न सिर्फ़ बेवकूफ़ ही हैं, बल्कि परले दर्जे की स्वार्थी भी हैं। चौके में रोटी खाता हुआ मेरा छोटा भाई इन्हें खटकने लगा। हर काम इस तरह से करती जैसे गिरा-पड़ा काम हो। लड़के के पोतड़े कई-कई दिन तक पड़े सड़ते रहते। साड़ी की तह कभी करनी नहीं आयी। आये कहाँ से--धुन तो हर वक्त यह लगी रहती कि मैं कहीं किसी से आँखें तो नहीं लड़ा रहा हूँ। कहीं कोई मुझ पर डोरे तो नहीं डाल रही है। मेरी समझ में नहीं आता कि आखिर यह कितनी भूखी है। पेट भरा हुआ है, लड़का हो गया है, जिसकी नाक होंठों तक लटकती रहती है--फिर ऐसी कौन-सी हविस है, जो पूरी होने में नहीं आती? इसे हर लड़की पर शक होता है। हर औरत ऐसी दिखाई देती है, मानो मेरी ही तरफ़ ताक रही हो। क्या मैं ही दुनिया में सबसे ज्यादा

आधुनिक पत्नी

कल्पना कीजिये हमारे एक बच्चा पैदा होता है। इस समय हम न्यूयार्क में तीन कमरों के एक फ्लैट में रहते हैं जो पति के और मेरे दफ्तर से दस और बारह मिनट की दूरी पर है। इसका किराया कुल सत्तर डालर मासिक है। अब यदि बच्चा होता है तो मुझे अपना काम छोड़ना पड़ेगा। हमारी आय में एक-तिहाई की कमी हो जायगी। बच्चा होने के बाद जब इस मकान से काम नहीं चलेगा तो दूसरा मकान लेना पड़ेगा। न केवल उसका किराया ही अधिक होगा वरन् वह शहर से बाहर भी होगा और पति के दफ्तर आने-जाने का खर्च

ख़ूबसूरत इन्सान हूँ ? या फिर हर लड़की अपनी इज़्ज़त-आबरू को किसी न किसी पर फेंक देने के लिए उतावली हुई फिरती है ? यह ठीक है कि किस्मत ने मुझे इसका पति बना दिया है। पर क्या इसका यह मतलब लगा लेना चाहिए कि मैं इसकी ज़ाती मिल्कियत बन गया हूँ ? मुझे तो डर है कि एक कागज पर अपने भद्दे अक्षरों में अपना नाम लिख कर कहीं लेबिल की तरह यह मेरे माथे पर न चिपका दे। डर क्या है——अब माथे पर हाथ फेरता हूँ, तो लगता है कि कम्बख्त ने पहले से ही चिपका रखा है। गोंद के भी सात फेरे दिये हैं कि लाख सिर पटको, छुटाए न छूटे।

का एक पत्र

बढ़ जायेगा। मुझे दिन-रात बच्चे की देख-भाल करनी पड़ेगी। हम लोग कभी थियेटर नहीं जा सकेंगे जो इस समय हमारा प्रधान मनोरंजन है। हम अपने मेहमानों के साथ रात के भोजन से पहले बढ़िया मार्टिनी तथा भोजनोपरान्त स्कॉच ह्विस्की नहीं पी सकेंगे; संगीत सम्मेलनों में जाने और पुस्तकें खरीदने का आनन्द भी जाता रहेगा। और इन सबके बदले में हमें बच्चे से प्राप्ति क्या होगी ? कुछ भी तो नहीं !

फोरम : १९३०

(संकलन : मनोज ठाकुर)

आखिर इसे दुनिया की हर लड़की, हर औरत फ़ाहशा क्यों नज़र आती है ? अजीब अहमक़ औरत से पाला पड़ा है। अरे, क्या दुनिया में सेक्स ही सब-कुछ है ? खाना-कमाना, मनोरंजन, सैर-सपाटा, हँसी-दिल्लगी और इन सबके लिए कमरतोड़ मेहनत—— ये भी तो ज़रूरी हैं। और इन सबके दौरान अगर मर्द की निगाह किसी औरत की तरफ चली भी जाती है, कहीं किसी ख़ूबसूरत फूल की तरफ़ ज़रा देर टिकी भी रह जाती है, तो क्या मत्थे पर से सात फेरों का लेबिल उतर कर हवा में उड़ जायेगा ? जीवन की सुन्दरता तो विभिन्न रूपों में विभिन्न प्रकार से झाँकेगी ही, चाहे जितने लेबिल अपने वाले के माथे पर लगाओ। आख़िर यह बेवकूफ इतना क्यों नहीं समझती कि अगर जगह-बेजगह इन खिलती-उमड़ती ख़ूबसूरतियों की तरफ़ मर्द की निगाह न जाए, उनके प्रति उसकी सराहना के भाव न उभरें, तो वह मर्द किधर से रह जाएगा। मगर यह तो ज़्यादा अक्लमंदी की बात हो गयी और भैंस के सामने बीन बजाने से कोई फ़ायदा नहीं।

असल में कसूर इसका नहीं इसके खानदान का है। जिसने बचपन से अपने घर में यही कुछ देखा हो उसकी कल्पना में कोई दूसरी स्थिति समा ही नहीं सकती। इसकी माँ ने तो आते ही चचा-ताऊ से सारे रिश्ते तुड़वा कर अपना चूल्हा अलग बना लिया था। और चाचा-ताऊ ही कौन ऐसे थे——किसी ने वेश्या रख रखी थी तो किसी ने रखैल। इसने जिन्दगी में सिवा इन कारनामों के और देखा ही क्या है ? इसे हर तरफ़ वही वातावरण छाया दिखाई देता है।

मेरी ज़िन्दगी तो बरबाद हो ही चुकी है और मेरा दिमाग़ भी खराब हो गया है। मगर इसे इतनी तमीज नहीं कि मेरे बाद इसे कोई चार टके को भी नहीं पूछेगा। असल में तो मैं पागल शुरू से ही था। अपने खान-

दान की बहू-बेटियों के बारे में इसे आखिर बताया किसने? ——मैंने। लेकिन जैसे मेरे चचा और पिताजी रहे हैं वैसा ही ठप्पा मेरे ऊपर लगाने की बात आखिर इसके दिमाग में आई ही क्यों? मैं अपने घर को 'घर' बनाना चाहता था। पत्नी से उचित सेवा पाना चाहता था, उसकी उचित सेवा करना चाहता था। मुझे क्या पता था कि शादी करने के माने ये होंगे कि हर वक्त एक मक्कार जासूस मेरे पीछे लगा रहेगा। इसका बस चले तो यह मेरी आँखों में तकुवे गुभो दे। पैंतीस बरस की होने को आई, मगर आज तक साड़ी बाँधने और मेक-अप करने की तमीज़ नहीं आई। हाथ-पैरों की आलसी, मुँह में मक्खी जाए। फूल-फूल कर एक सौ साठ पौंड वज़न का गुब्बारा बन गई। चेहरे पर हर वक्त भीतर की जलन, ईर्ष्या, द्वेष, डाह और कलुष के डोरे पड़े रहते हैं। जब बात करो तब मूर्खतापूर्ण बातें करती है। क्या ऐसी पत्नी पाकर कोई भी पति अपने को धन्य समझेगा और पत्नीभक्त बनने की कसम खा सकेगा?

मैंने जब शुरू-शुरू में पी थी, तब शौकिया पी थी। मैं उसे नहीं छोड़ सका इसका कारण भी यही कम्बख्त है। हर वक्त घर की समस्या को दिमाग में लिये रहनेवाला आदमी क्या अपना कारोबार ढंग से चला सकता है? मैंने बहुत कोशिश की कि किसी तरह, किसी समय मेरे दिमाग से एक आदर्श पत्नी का विचार निकल जाए और मैं भी संसार के साधारण मनुष्यों की भाँति अपने काम-काज में पहले की ही भाँति मन लगा सकूँ। लेकिन घर जाकर देखता हूँ तो चूल्हा औंधा पड़ा है, रोटियाँ ठंढी पड़ी हैं और देवी जी ने अपना साग-दाल पहले से ही अलग निकाल कर रख छोड़ा है, जिससे दूसरों को खिलाने-पिलाने में ही सब खत्म न हो जाए। ऐसे में किस पति को क्रोध नहीं आयेगा? इस क्रोध में मैं स्वयं अपने को गलाता हूँ। अपना ग़म पीता हूँ। सब-कुछ भूल कर थोड़ा-सा समय अपने काम-काज में लगाना चाहता हूँ, जिससे यह पहली-सी गति से न चले, तो इन बच्चों का पेट तो पलता रहे।

अगर पत्नियाँ ऐसी ही हुआ करतीं तो शायद मुझे भी सन्तोष हो जाता। लेकिन मैं अपने चारों ओर जो देखता हूँ, तो मुझे खुशकिस्मत लोग नज़र आते हैं। फ़िल्मों में विलेन का पार्ट अदा करने वाली औरतों के चेहरे खूबसूरत होते हुए भी कितने भद्दे, कितने ओछे नज़र आते हैं। ऐसी पत्नियों को देख कर मेरा कलेजा कितना मुँह को आता है, जो दिन-रात कोल्हू के बैल की तरह अपने काम में पिसी रहती हैं। तिस पर भी जब उन्हें पति की एक मुस्कराहट मिल जाती है, तो उनका दिल किस तरह बल्लियों उछलने लगता है। उनकी थकान किस तरह छूमन्तर हो जाती है। पति को पानी का गिलास भी स्वयं भरते देख कर उनके चेहरे पर लाली और पाँवों में फ़ुरती आ जाती है। घर के साम्राज्य में पत्नी के लिए पति राजा है, तो बाहर के विस्तृत साम्राज्य में जब पति पत्नी को लेकर निकलता है, तो वह उसके लिए रानी है, जिसकी एक इच्छा पर वह एक भरे-पूरे शो-केस को खाली कर सकता है। ये होम-स्वीट-होम क्या मेरी कल्पना से बाहर हैं?

मेरे दोस्त मुझे नहीं बहकाते—यह पत्नी का बिल्ला लगाये जो औरत मेरे घर पर बैठी है और मेरी लगाम जिसने कस कर जकड़ रखी

है, कि जिससे मेरे मुँह में हमेशा जख्म भरे रहे हैं, मैं इससे छुटकारा पाना चाहता हूँ, मेरा मन चाहता है। मैं समाज और धर्म का पाबन्द इन्सान रहा हूँ और मेरे में इतनी शक्ति नहीं कि मैं उन्हें धता बता सकूँ। फिर भी मैं भागना चाहता हूँ। लेकिन भागने को मेरे लिए कोई राह नहीं। सो मैं पीकर अपनी चेतना को कुछ समय के लिए धता बता देता हूँ। कुछ समय के लिए ही सही, लेकिन मेरे लिए कोई स्थायी हल जो नहीं है। तलाक में भी मेरे लिए कुछ नहीं है। उसकी शरण जाने के लिए जितना अधिक साहस, सामाजिक बेशरमी, बाल-बच्चों की ओर से विमुख होने की आवश्यकता होती है--वह सब मैं नहीं जुटा सकता।

फ़जीहत का जितना ज़्यादा ख्याल मुझे है, उसका अगर सौवाँ हिस्सा भी इसे होता, तो यह नौबत न आती। रोटी बनाने के लिए मैंने मिसरानी रखी है, बरतन माँजने के लिए मेहरी आती है, घर का अन्य काम-धन्धा करने के लिए मेरी दूकान के नौकर भी हाथ बँटा ही देते हैं--फिर मेरी समझ में नहीं आती कि यह औरत आखिर किस मर्ज़ की दवा है!

अब रही मेरे छोटे भाई की बात--उसके बारे में तो इतना ही कह देना काफ़ी है कि उसके लिए संसार में अगर कोई है, तो मैं हूँ। अगर यह ढंग की होती, तो आज हम दोनों भाई सिर जोड़ कर बैठते और लाखों में एक होते। उसका जीवन उन्नति का एक निरन्तर प्रवाह रहा है। मेरी शुभ-कामना है कि यह प्रवाह यों ही प्रवाहित रहे।

प्रमोद :

मैं अजीब चक्कर में हूँ। जब से मैंने होश सँभाला है, तभी से घर की हालत देख रहा हूँ। अम्माँ के बारे में तो खैर जो न कहा जाए सो थोड़ा है। पर मेरा तो यही कहना है कि पिताजी को भी कुछ सोचना चाहिए। वही तो घरबार के मालिक हैं। एक आदमी बिगड़ने लगे, तो क्या दूसरे को भी बिगड़ जाना चाहिए? पिताजी की यह हालत देख कर मुझे जितना दुःख होता है मैं ही जानता हूँ। बाकी मुझे बोलने का हक ही क्या है। मुझ पर तो जिसका जी चाहता है अधिकार जमा लेता है। इधर अम्माँ को गालियाँ देते सुनता हूँ, उधर पिताजी को ग़म में घुलते देखता हूँ।

मेरा पक्का विश्वास है कि चाचाजी अगर पिताजी को समझाएँ, तो अब भी घर की नाव किनारे लग सकती है। वह बहुत अक्लमंद हैं और पिताजी उनकी बात बहुत मानते हैं। ये भाई-भाई नहीं, आपस में दोस्त की तरह हैं। मैं तो जब किसी बात पर पिताजी को कुछ कहता भी हूँ, तो वह डाँट देते हैं। कहते हैं कि अगर मुझसे काम लेना हो, तो मुझे अपनी राह चलने दो....वरना... वरना मैं बिल्कुल डूब जाऊँगा। ऐसी बात करते हैं, जैसे हम किसी पशु से काम ले रहे हों, जिससे काम लेने के लिए उसे धतूरा खिलाना ज़रूरी हो। मैं चुप हो जाता हूँ। मेरी बिसात ही कितनी है। मेरा दिल रोता है।

पिताजी को ही सोचना चाहिए। उन्हीं में सोचने की शक्ति है।

निहालचन्द :

भाग्य में जो लिखा होता है वही होता है। अपनी करनी हरेक को भुगतनी पड़ती है। औरत को जितना दबा कर रखा जाये वह

दब कर रहती है। ज़रा-सी ढील दी कि वह सिर चढ़ी। हमारे खानदान में कभी इस किस्म की औरत नहीं आयी। न ही इस तरह किसी ने उसे सिर पर चढ़ा कर रखा। इसी ने उसे बिगाड़ा है। शुरू-शुरू में नौकरों की तरह उसकी खिदमत करता रहा। मर्द आखिर मर्द होता है। उसकी बराबरी औरत कभी नहीं कर सकती। लेकिन इसके लिए हिम्मत और साबितकदम होने की ज़रूरत होती है।

जहाँ तक मेरा सवाल है, मैं बूढ़ा हो चला हूँ। उमर साठ से ऊपर हो गई है। मेरे लिये जीवन में कोई रस नहीं है। सोने-चाँदी या गेहूँ-गुड़ के सट्टे में मैंने बहुत खोया है, इसको स्वीकार करने में मुझे कोई शरम नहीं आती। पर मैंने अकेले नहीं खोया, मेरे छोटे भाई भी एक ही हज़रत हैं। पाटिये से अब मेरा मोह नहीं हट सकता। यह शौक तो अब मेरी सांस के साथ ही जाएगा। असल में आएगा तो तभी जब भाग्य में लिखा होगा।

जब ये लोग कभी अपना प्रोग्राम बनाते हैं, तो मैं मसलहत देख कर खिसक जाता हूँ। थोड़ा-सा मान-भरम है वह भी क्यों खोया जाये? पर अब नहीं देखा जाता। घर बिगड़ ही नहीं रहा है, चौपट हो रहा है। कारोबार का दिवाला निकल रहा है। अब तो काम करते हुए इसकी उँगलियाँ भी काँपने लगी हैं। उस दिन बैंक ने चैक मंजूर करने से इन्कार कर दिया—दस्तखत नहीं मिलते। इससे बड़ी शरम की बात क्या होगी! दूकान के थले पर भी भला कोई पीकर बैठा है? हाल ही की बात है कि एक ग्राहक आया। साहब को याद नहीं रहा था कि क्या काम दे गया। खूब खरी-खोटी सुना कर गया। कहता था कि जिसे पीने की लत पड़ी हो उसे यह अधिकार नहीं कि दूकान की गद्दी पर बैठे। यह गद्दी पवित्र होती है, रिज़क कमाने की जगह होती है। मेरा सिर तो शरम से ज़मीन में गड़ गया।

आधुनिक पत्नी

हमारे पास १९५७ मॉडल की कार है। एक मोटर कम्पनी छः हजार रुपये में हमारी कार वापस लेकर, हमें नौ हजार रुपये में १९६० मॉडल की नयी कार बेचना चाहती है। अपनी कार पर हमने एक फर्म से तीन हजार रुपये कर्ज भी ले रखा है।....मैं समझती हूँ, बिना एक पैसा खर्च किये हम नयी कार के मालिक हो सकते हैं। ...हम ऐसा करेंगे। १९५७ मॉडल छः हजार में बेच देते हैं। उनमें से तीन हजार कर्ज के रुपये वापस कर आते हैं। अब हमारे पास तीन हजार रुपये बच गये,

लेकिन मेरी समझ में नहीं आता कि इस सब का औरत से क्या ताल्लुक है। एक रहपट मारे तो सीधी हो जाए। यों कितनी ही बार उसकी पिटाई इसके हाथों हो चुकी है। मगर पिटाई कभी इस तरह नहीं होती। जहाँ अनुशासन का प्रश्न हो वहाँ बेरहमी होनी चाहिए, पीटते हुए हाथ नहीं लरज़ने चाहिए। साहब हैं कि एक बार हाथ उठाते हैं, तो तीन दिन तक स्वयं खाना नहीं खाते। बीवी ने सब राहें देखी हुई हैं। इनकी एक-एक कमजोरी उसने अपने खाते में लिख रखी है। घर पर खाना पसन्द न आए या लड़ाई हो जाए, तो हज़रत चार-चार महीने बाहर होटलों में खाकर गुज़ार देते हैं। इससे बड़ी हिमाकत

और क्या होगी ! औरत का बदन हल्दी से लिपा-पुता पड़ा हो, तब भी चटपट रोटी का इन्तजाम रखे, मर्द का वह रोब होना चाहिए। असल में जिसने अपना रोब ही खो दिया हो वह किस तरह अपना घर सँभाल सकता है ?

का अंकगणित

और मोटर कम्पनी के पास हमारी छः हजार की कार बच गयी। हम तीन हजार रुपये और छः हजार की कार मोटर कम्पनी को दे देते हैं, और बदले में नौ हजार की १९६० मॉडल खरीद लेते हैं। हमारे पास नयी कार भी हो गयी, और हम किसी के कर्जदार भी नहीं रहे।......मगर, मेरी बात सुन कर मेरे पति इतने जोरों से हँस क्यों रहे हैं? क्या मैंने मैट्रिक में अंकगणित नहीं पढ़ा है ?

मिल्वाकी जर्नल

(संकलन : राजकमल चौधरी)

लाख समझाया कि सिर पर नहीं चढ़ाना चाहिए, मगर उस वक्त तो नौजवानी की तरंगें थीं--कौन सुनता है !

यह ठीक है कि मेरी शक्ति अब कुछ करने-धरने की नहीं रही। फिर भी जब तक सांस है, तब तक फिकर है। कैसे इन लड़कों को अपने पाँव पर खड़े होना नसीब होगा ? कैसे इस लड़की के हाथ पीले होंगे ? आजकल कारोबार की यह हालत है कि अब डूबा, तब डूबा। नौकर लोग सिर पर चढ़ते जा रहे हैं। नीचे दरजे के लोगों को टोक-टोक कर पिलाई जाती है। सिर पर नहीं चढ़ेंगे, तो क्या पैरों पर लोटेंगे ? न घर में रोब रहा, न नौकरों पर। ऐसा आदमी कभी कारोबार चला ही नहीं सकता। अब तक कैसे चला यही ताज्जुब है।

खानदान में यही सबसे ज्यादा शरीफ़ लड़का समझा जाता था। इतना मेहनती, इतना समझदार और अपनों से इतनी मुहब्बत करने वाला। छोटे लड़के को निखट्टू और बेवकूफ समझते थे। आज देखता हूँ तो तख्ता ही सारा उल्टा हुआ है। यह सब किस्मत की खूबी है।

अब जो समस्या फँस गई है या तो उसका खुद ही कोई हल निकल आए, नहीं तो मेरा यही ख्याल है कि यह औरत तो धीरे-धीरे पागलखाने चली जायेगी और यह हजरत खुदकशी कर लेंगे। थोड़ी-बहुत उम्मीद छोटे लड़के से है। उसकी ज़िद भी मशहूर रही है और दलीलें भी। यह उसको मानता भी है हद से ज्यादा। अगर उसके समझाए कुछ हो तो हो। वरना सत्यानाश तो हुआ रखा है।

अनंत :

इस बारे में सब लोगों का जोर मुझ पर ही है। लेकिन यह ऐसा किस्सा है जहाँ हर समझदारी जवाब दे जाती है। रोग तो चाहे शारीरिक हो, चाहे मानसिक, तभी दूर किया जा सकता है, जब रोगी में जीवन के प्रति कुछ आशाएँ हों और वह अपने समस्त मन से जीना चाहता हो। यहाँ जीवन के सारे रस ही लोप हो गये हैं भाई साहब के लिए। उन्हें जीवन की रंगीनियों में रंगीनी दिखाई नहीं देती, उन तक पहुँच पाने की सामर्थ्य प्रतीत नहीं होती। आश्चर्य ही है कि एक नारी एक नर के जीवन में कितनी बड़ी उथल-पुथल पैदा कर सकती है !

इन जैसे मसलों में मेरा दृष्टिकोण सदा व्यावहारिक रहा है। यह समझाने और ज़िद करके गले उतारने की चीज़ नहीं है। समझने और गले उतरने की चीज़ है। सबसे बड़ी बात तो यह है कि पहले वह इसकी आवश्यकता तो अनुभव करें कि कुछ समझना शेष है। सब बुरा-भला कहते हैं, सब उन्हें दोष देते हैं और पीछे जो हो चुका है, वहीं सारा हल टटोलते हैं।

भाभी को हम सभी अर्द्ध-पागल समझ बैठे हैं। पागलखाने जाने की नौबत उनकी कभी न आये यही शुभ-कामना है। मगर तब तक यह घर एक पागलखाना बना रहेगा इसमें कोई सन्देह नहीं। यह भी साफ़ है कि इस समस्या को खड़ी करने का सारा दोष भाभी के ऊपर ही जाता है। डर उनके पागलखाने जाने का नहीं है। डर है कि इस घर की रजिस्ट्री पागलखाने के रूप में न हो जाए और दीनता का वह चक्र इस पर न चल जाए जो हमेशा के लिए सारी संतति को पाप-पंक में डुबो देगा!

भाई साहब को मैं एक नहीं अनेक बार समझा चुका हूँ। अगर पियें तो मेरा ही रक्त पियें ऐसा कह कर कसम दे चुका हूँ। उनके साथ जब-तब पीता भी हूँ, जिससे वह मेरी बात ज्यादा अच्छी तरह समझ सकें। उन्हें मालूम है कि शौक मुझे भी है, लेकिन मैंने अपने को सन्तुलित कर रखा है। पर इससे भी बात बनती नहीं है। वह समझना नहीं चाहते या समझा-समझाया भूल जाते हैं।

कभी-कभी भविष्य का चित्र बिजली बन कर आँखों के सामने कौंध जाता है। क्या होगा? एक दिन आयेगा, जब आँतों में एक स्थायी रोग घुस कर बैठ जाएगा, खुरकी जम जाएगी, शायद नासूर पड़ जाएँ—और भैया अपाहिजों का जीवन जियेंगे। या फिर जिस दिन जिया नहीं जाएगा, उस दिन सब तरफ़ से आँखें मूँद लेंगे—हमेशा-हमेशा के लिए। उस दिन मैं स्वयं कहाँ खड़ा होऊँगा? जैसे हाथ-पैर कटा हुआ एक धड़ रह जाएगा और जीवन का सारा सँजोया हुआ एक नेह-संस्कार सारे आधार को झिंझोड़ कर रख देगा। वह कल्पना भी भयावह है।

मैं तो कहता हूँ कि सभी को पहचानना है कि उन्होंने क्या खो दिया है और क्या खोने को बैठे हैं। ओ री भाभी, तुम्हें और क्या चाहिए? क्या था जो तुमको नहीं मिला था? और तुम्हें कुछ पता भी है कि क्या-क्या कहाँ-कहाँ बिखरता चला गया है? साल में तीन सौ पैंसठ दिन होते हैं। इनमें तीन सौ भी तुम्हारे हैं, तो पीछे के पैंसठ दिनों के लिए क्यों साल के साल बिसराती जा रही हो?

और, पिताजी, आपने सारा जीवन अपनी ज़िदों पर जिया। आपकी ज़िदों ने आपके ही रक्तप्रसूतों के लिए कोई सांसारिक आधार नहीं रहने दिया। अब भी आपके ये व्यंग्य-बाण बन्द नहीं होते। आपके जीवन भर की सारी आस्थाओं के खण्डहर आपके सामने ही सामने घहरा-घहरा कर गिर पड़े। अभी और कितने खंडहर आप देखना चाहते हैं? चारों ओर से लांछित होकर भी आप अपने अहंकार को नहीं तोड़ पाते। फिर इस अहंकार को और पाना क्या रह गया है?

और, भैया, आपका तो कोई सूत्र ही पकड़ में नहीं आता। आपको न ही आसक्ति है, न ही विरक्ति है। आपकी ही बात सोच-सोच कर सब सिर धुनते हैं। आप स्वयं भी अपना सिर धुन रहे हैं। फिर ऐसी क्या

यह अलिफ़-लैला की कहानी हो गई, जो खत्म ही होने में नहीं आ रही है! आपको कुछ पाना नहीं रह गया है, तो क्या कुछ देना भी नहीं रह गया है? क्या आप चाहते हैं कि आपके व्यक्तित्व से बँधे आपके ये निकटतम लेनदार हमेशा-हमेशा आपके नाम को ले-लेकर सिर धुनते रहें? क्या ऐसी कोई राह नहीं है कि इस जीवन की संचित निराशा को, कष्टकारी असफलताओं को मिला कर, एक बहुत बड़ी कुंठा पत्नी को लेकर आपके जीवन में खड़ी हो गई है, उसे कहीं निस्तार मिल पाए?

मेरे भैया, ये सब जो बेरहमी के साथ कुछ बोल बोल जाते हैं, उनमें कभी तथ्य नहीं ढूंढ़ा आपने? इस घर-गिरस्ती का जो रूप बनता रहा है क्या उसे बनाने में आपका हाथ नहीं रहा है? निष्क्रियता का एक काल्पनिक बाना पहन कर यह सारा रूप-आरोप आप एक ही व्यक्ति के ऊपर थोप देना चाहते हैं? इतना अधिक भावुक बनने से जीवन की कोई उपलब्धि खड़ी नहीं होती। कभी हुई ही नहीं--आपने इस सबके लिए कड़ा परिश्रम किया है। उसे आप इस मामले में ही क्यों यकायक भूल जाते हैं?

इतना आत्मकेन्द्रित होने से भी कैसे चलेगा? सारे आत्म को एक ही जगह क्यों घोट रहे हैं? तनिक नज़रें पसार कर दूसरे भारतीय परिवारों को देखिए। ये सारे इसी भारतीय संस्कृति की उपज हैं। इनमें जहाँ अच्छे नमूने देख कर आपके सामने सहसा ही एक आदर्श पत्नी का रूप उपस्थित हो जाता है, वहाँ बुरे नमूनों की ओर से आप क्यों आँखें मूंद लेते हैं। आपके ख्याल में क्या इन सब को दो-दो बोतल शराब रोज़ नहीं चाहिए? नहीं, शराब तो इलाज नहीं ही है। कुंठाओं के इस केन्द्रीकरण को ही बिखराना होगा। जिस एक बिन्दु पर आपने अपने समस्त अस्तित्व को समेट कर एकत्र कर दिया है, उसी बिन्दु का बिखराव चाहिए। थोड़ा-सा आत्म-प्रसार चाहिए।

किसी कला का आश्रय लें--पीड़ा घुलने लगेगी। कहते तो हैं कि पीड़ा ही श्रेष्ठ कला की जन्मदात्री है। कला के माध्यम से स्वयं की अभिव्यक्ति कुंठाओं की जड़ पर चोट करती है। दूसरे जो लोग उन्हीं कुंठाओं से पीड़ित हैं उनकी सहानुभूति और सराहना मिलती है। जो पीड़ित नहीं हैं उनकी ओर से आश्चर्य और भयमिश्रित प्रशस्तियाँ मिलती हैं....और इस तरह जीवन एकांगी, एकाकी, आत्मपरक और घुटा हुआ नहीं रह जाता--आगे बढ़ निकलता है। यश की उपलब्धि धन और सेक्सतुष्टि की उपलब्धियों से छोटी नहीं होती--बड़ी ही होती है।

व्यक्ति का जीवन कोई ऐसी अलग-थलग चीज़ नहीं है, जिसको देखने के लिए रात-दिन, आठों पहर, चौबीस घंटे उसके 'भीतर ही' झाँका जाए। बाहर जो कुछ फैला हुआ है उससे भी हमारा जीवन बँधा हुआ है। वहाँ से भी हमें जीने की प्रेरणा और शक्ति मिलती है। और यह बाहर जो कुछ है उसके सौन्दर्य का अन्त नहीं है। उसे देख कर तृप्ति न मिले यह असंभव है। अगर ऐसा न होता, तो सिनेमा आदि देखने पर कोई भी कौमेडी आपकी तरह के निराश व्यक्ति को रस प्रदान कर पाती! बल्कि ईर्ष्या और द्वेष ही हाथ लगा करते।

एक बात और--ज़रा कटु है, कहते हुए मन भी बहुत दुखता है, पर कहनी यों है कि

शायद अनकही रह जाने से वह चुपचाप ही अपना काम करती रहे। कहीं ज़रा मन को टटोल कर तो देखिए कि आपकी इस समस्त आत्मपरकता में स्वार्थ ही तो नंगा नाच नहीं नाच रहा है? जो ज़िम्मेदारियाँ आपने इन सारी आशा-निराशाओं के बीच से गुज़रते हुए इकट्ठी कर ली हैं क्या उनसे ही इस आसानी से छुटकारा पाने का प्रयत्न आपका नहीं है? इसी समाज और संस्कृति के बीच से, जिसके बीच से आपकी ये कुंठाएँ उभरी हैं, आपके बेटे-बेटियों के लिए सम्बन्ध खड़े होने हैं। उनकी नींव मजबूत होनी चाहिए। उनके पीछे प्रतिष्ठा का आग्रह होना चाहिए। क्या वे भावी सम्बन्धी आपके इस पलायन को देख कर सम्बन्ध बनाने के लिए अपने बढ़ते हुए पग नहीं रोक लेंगे?

नहीं, भागना नहीं हो सकेगा। इसके लिए वास्तव में कोई राह नहीं है। मन को ही सबल और शान्त करने की आवश्यकता नहीं है। जिस दब्बूपन को आप स्वीकार करते हैं, उसके ये अर्थ नहीं कि आप सहसा ही सब ओर से एकदम विमुख हो जायें। ये तो आपकी ही सोची हुई वे काल्पनिक राहें हैं, जिन्हें केवल आप देखते हैं, और, पागलखाना केवल वहीं नहीं होता, जहाँ सींखचे लगे होते हैं। ●●●

पति का नाम कैसे लें!

एक स्त्री ने एक दिन अपनी पड़ोसिन से कहा, "बहन, आज मैंने बड़ी जायकेदार चीज़ बनायी है।"

"क्या?" पड़ोसिन ने उत्सुक होकर पूछा।

"मुन्ने के पिता जी को मसालेदार दही में डाला है।"

बिचारी (दही की) 'पकौड़ी' भला कैसे कहती? पकौड़ीमल उसके पतिदेव का नाम जो था!

पड़ोसिन बोली, "आज मैंने भी लल्ला के पिता जी और ताऊ जी को घी में तल कर चीनी की चाशनी में डाला है।"

बात यह थी कि, उसके पति का नाम था, गुलाबचन्द और जेठ का जमुना प्रसाद; जो मिठाई उसने बनायी थी, वह थी: गुलाबजामुन!

—सत्यदेव नारायण सिन्हा



चित्र : भाऊ समर्थ

रामधारीसिंह दिनकर

विवाह की मुसीबतें

नर और नारी के सम्बन्धों से समुद्भूत प्रेम और काम, भोग और विरक्ति, आत्मदान और आत्मदाह की वे सब चिरन्तन समस्याएँ जिनके मूल कारणों को दिनकर की निर्मम दृष्टि ने खोजा है और समाधान को उनके सदय दर्शन ने पाया है।

• • •

एक लड़की से प्रेम किर्कगार्ड ने भी किया था, किन्तु उससे विवाह करना उन्होंने यह कह कर टाल दिया कि लड़की से उम्र में मैं बहुत बड़ा हूँ, गर्चे बात ऐसी नहीं थी। फिर शादी उन्होंने कभी की ही नहीं। और जब उस लड़की का व्याह हुआ, किर्कगार्ड ने अपनी डायरी में ये शब्द लिखे, "और अब वह—मुरदा नहीं—सुख-सम्पन्नता-पूर्वक विवाहित है।"

क्या यह सच है कि सुख-सम्पन्नता-पूर्वक विवाहिता नारी भी जीवित नहीं रहती, वह साँस लेने वाला शव बन जाती है ?

हमलोग अपनी पत्नियों के सिवा उन अनेक विवाहिताओं को जानते हैं जिनसे हमारी भेंट-मुलाकात होती है अथवा जिनके चढ़ते-उतरते मिजाज की कहानियाँ हमारे कानों में पड़ा करती हैं। इस सारी जानकारी से यह मजे में कहा जा सकता है कि समाज की आधी से अधिक पत्नियाँ दुखी हैं, खीझी हुई, विवश और लाचार हैं। और जिन्हें हम अपेक्षया सुखी और शान्त समझते हैं, उनमें से कुछ देवियाँ तो वे हैं जिन्होंने जीवन के जहर को गुमसुम ही पीकर बाहर से अपने होंठ पोंछ लिये हैं; और कुछ वे हैं जो वेदना को वेदना नहीं समझतीं, शायद इसलिए कि परंपरा ने उन्हें यही सिखाया है; शायद इसलिए कि उनकी अनुभूतियों के वातायन अभी बन्द हैं अथवा दर्द की टीस महसूस करने वाली शिराएँ अभी जागी नहीं हैं। कुछ ऐसी भी हो सकती हैं जिनका दाम्पत्य इसलिए सुशान्त है कि दोनों प्राणी समझदार हैं और उदारतापूर्वक उन्होंने एक दूसरे को उतनी छूट दे रखी है जितनी छूट से एक ओर जहाँ रथ के भीतर बाहरी वायु की कुछ थोड़ी फुरेरी आती रहती है, वहाँ दूसरी ओर चक्कों की गति में अनुपात का भेद नहीं पड़ता, न रथ के आगे बढ़ने में कोई व्याघात उत्पन्न होता है।

खलील जिब्रान ने विवाह पर दो-एक सूक्तियाँ कही हैं जो अत्यन्त अर्थपूर्ण हैं। "एक ही शराब पियो, मगर, एक प्याले से मत पियो।" "दोनों पास-पास रहो, मगर, इतनी दूरी तब भी रहने दो कि तुम दोनों के बीच स्वर्ग की वायु आसानी से आ-जा सके।"

जिब्रान ने बात तो बहुत सोच-समझ कर कही होगी, लेकिन, परम्परा इन सूक्तियों से बिदकती है। और पति इन सूक्तियों से प्रसन्न इसलिए होते हैं कि ये उनकी अपनी आजादी की दलीलें हैं, उनके पार्टनर की स्वाधीनता का समर्थन नहीं। और पत्नियाँ भी चाहती हैं कि इन सूक्तियों का सहारा हम लें तो लें, हमारे पतियों को नहीं लेना चाहिए।

सुखी नागरिक परिवार!

आधुनिक नगरों के नागरिकों का पारिवारिक जीवन जितना सुखी है, वैसा पिछले किसी युग में किसी देश में नहीं था!

पति आठ बजे सुबह दफ्तर चला जाता है, और शाम को पाँच बजे लौट कर सो जाता है। बच्चे दस बजे सुबह स्कूल चले जाते हैं, और शाम को सात बजे लौट कर सो जाते हैं। पत्नी

किन्तु, यह चल नहीं सकता। क्योंकि पुरुष और स्त्री प्रकृति की जिस प्रेरणा के अधीन हैं, वह नर-नारी का भेद नहीं मानती। समाज बार-बार प्रकृति को बाँध कर मनचाहे नैतिक मूल्यों की स्थापना करता है, किन्तु, प्रकृति हर बार बन्धन को तोड़ कर समाज के ऊपर छा जाती है। फिर भी, यह सच है कि संस्कृति और नैतिकता का विकास प्रकृति के साथ चलने वाले इन्हीं संघर्षों से होता है।

किन्तु, यह भी क्या सच है कि विवाह से जितनी मुसीबतें पैदा होती हैं उन सब का एकमात्र कारण काम है? काम-विज्ञान

पर खोज करने वाले पंडितों ने बताया है कि जहाँ पति-पत्नी काम के धरातल पर संतुष्ट हैं, वहाँ कलह होने पर भी, बातें विवाह-विच्छेद तक कम पहुँचती हैं। किन्तु, प्रमाण इस बात के भी हैं कि एक सुख के लालच में विवाह-विच्छेद से दूर रहने वाली पत्नियों के जीवन में भी अशान्ति का अभाव नहीं होता, खीझ, परेशानी और घुलन की कमी नहीं होती।

यदि वैवाहिक अशान्ति का कारण काम-लिप्सा अथवा काम-जनित कोई अन्य मनोविकार हो, तो समझना चाहिए कि यह अशान्ति वहाँ कम होगी जहाँ लोग अशिक्षित,

बारह बजे सुबह बाजार या सिनेमा या क्लब चली जाती है और नौ बजे शाम को लौट कर सो जाती है। और, परिवार के नौकर कहीं नहीं जाते, सुबह से शाम तक सोये ही रहते हैं।

—ब्रोनी प्रूडेन

(संकलन : राजकमल चौधरी)

अजाग्रत और दरिद्र हैं। जिसके हाथों में कोई ठोस काम है, उसके मन को निरुद्देश्य भटकने की फुरसत नहीं मिलती; जिसका मन अजाग्रत है, वह भी दुःखों को अतिरंजित करके नहीं देखता, न सुखों में काल्पनिक रंग भर कर बेचैन होता है।

वैवाहिक कठिनाइयों की भीषणता, असल में, वहाँ सबसे अधिक है जहाँ शिक्षा, संस्कृति, चिन्तन और एक हद तक धन का प्राचुर्य है। जिन देवियों को भाग्य ने इस ऊँचे धरातल पर आसीन किया है, वैवाहिक व्यथा का दुःखदायी दंश सबसे अधिक वे ही जानती हैं।

सभ्यता जब सीमित थी, विवाह आज की अपेक्षा कहीं अधिक सुखमय और संतोषपूर्ण थे। सभ्यता ज्यों-ज्यों प्रगति करती गयी, पत्नियाँ अपनी कठिनाइयों से अधिकाधिक अवगत होती गयी हैं और शिक्षा का आलोक एवं चिन्तन की शक्ति, ज्यों-ज्यों, विस्तृत होती है, विवाह की असफलताओं की कहानियाँ उतनी ही बढ़ती जाती हैं।

गान्धर्व - विवाह, स्पष्ट ही, प्रेम की प्रेरणा से किये जाते हैं। अन्य प्रकार के विवाहों से भी यह आशा तो की ही जाती है कि पति और पत्नी में परस्पर प्रेम होगा। किन्तु, मनुष्यता का अनुभव यह है कि प्रेम और विवाह, इनमें नित्य सम्बन्ध नहीं है। प्रेम स्वतःस्फूर्त भावना है और विवाह एक निश्चय, एक कठोर कर्त्तव्य। इसीलिए, प्रेमी भी पति बन जाने के बाद प्रेमी का-सा बर्ताव नहीं करता, न प्रेमिका पत्नी बन जाने पर प्रेमिका रह जाती है। अमेरिका में अब इस प्रश्न पर विपुल साहित्य तैयार किया जाने लगा है कि प्रेम और विवाह की एकता कैसे कायम रखी जाय। उन्नत देशों में कुछ लोगों ने पति-पत्नी को परामर्श देते रहने का धन्धा ही निकाल लिया है। पत्नियों को कामानन्द की प्राप्ति कैसे करायी जाय, डाक्टर अब पतियों को इसके भी तरीके सिखाने लगे हैं।

यह सभ्यता स्थूल को अधिक, सूक्ष्म को कुछ कम महत्त्व देती है। इसकी शल्य-चिकित्सा का विकास खूब हो गया, किन्तु, काय-चिकित्सा की तरक्की कम हुई है क्योंकि उसका सम्बन्ध सूक्ष्म से पड़ता है। विवाह के मामले में भी विशेषज्ञ स्थूल की सँभाल में लग गये हैं। वस्तुतः समस्या

इतनी स्थूल, इतनी सुस्पष्ट नहीं है। विवाह की उलझनें केवल काम-कला के विकास से नहीं, समाज में आमूल परिवर्तन लाने से सुलझेंगी।

समाज-रचना का दोष यह है कि उसमें निर्माण के सारे काम पुरुषों के हाथ में हैं, नारियों को हमने बरतन धोने, झाड़ू लगाने, रसोई बनाने और घर को सँवार कर रखने के काम पर छोड़ दिया है। वैसे, एक काम बड़ा और दूसरा बहुत छोटा नहीं होता, फिर भी, काम काम में भेद है। पुरुष के कार्य, प्रायः, ऐसे होते हैं जिनमें विविधता होती है, जो कर्मी के पूरे ध्यान को अपने में खींच सकते हैं और जिनके संपादन में रचना का भी कुछ आनन्द होता है। यही कारण है कि कर्मक्षेत्र में खड़े पुरुष का मन इधर-उधर नहीं भटकता, न वह एकरसता की मार सहता है। किन्तु, इसके विपरीत नारियाँ जो काम करती हैं, उनमें रचना का आनन्द नहीं होता, न वे नारियों के मन को खींच कर अपने में लीन कर सकते हैं। बरतन धोना, रसोई पकाना, बच्चों को स्कूल भेजना और घर की सफाई करना, ये सारे के सारे काम ऐसे हैं जिनमें नवीनता नहीं होती, जिनका सम्बन्ध विश्व के गतिशील जीवन से नहीं पड़ता, जो भविष्य से असम्बद्ध होते हैं। पुरुष का अन्तर्मन, कहीं न कहीं, इस भाव से सन्तोष पाता है कि वह संसार को पहले से अधिक श्रेष्ठ बनाने में लगा हुआ है, वह जो काम कर रहा है, उसका विश्व-जीवन से महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध है। किन्तु, घर में बैठ कर नारियाँ जो काम करती हैं, वे जरूरी होने पर भी नगण्य होते हैं, और उनके महत्त्व की समाज में चर्चा भी नहीं होती।

विश्व को श्रेष्ठतर बनाने वाले कार्यों से वंचित होने के कारण नारी अपने को अधम और पुरुष को श्रेष्ठ समझती है। रोज-रोज एक ही काम में लगे रहने के कारण उसकी प्रेरणा समाप्त हो जाती है और, धीरे-धीरे, उसके भीतर कुंठाएँ उत्पन्न होने लगती हैं। किन्तु, मानसिक दृष्टि से इससे भी बुरा हाल उन नारियों का होता है जो बरतन भी नहीं धोतीं, न घर की सफाई और रसोईघर का काम करती हैं। ऐसी पत्नियों की सबसे बड़ी विपत्ति यह है कि जब उनके पति दफ्तर और बच्चे स्कूल चले जाते हैं, तब समय उन्हें काटने को दौड़ता है। कहते हैं, उन्नत देशों में अब ये विज्ञापन भी निकलने लगे हैं कि समय काटने के लिए हमें साथी की आवश्यकता है।

और घर पर पास-पास बैठ कर भी दंपति क्या प्यार की बातें करते हैं? पहले जो दीप्ति एक को दूसरे में दिखायी पड़ती है, विवाह के बाद धीरे-धीरे उसका लोप हो जाता है और रस इतना अधिक सूख जाता है कि दंपति यह भी नहीं जानते कि वे बातें करें भी तो किस संदर्भ की। कोई-कोई पति तब भी ढूँढ़-ढाँढ़ कर कुछ न कुछ जरूर बोलते हैं, किन्तु, उन बातों की नीरसता और अस्वाभाविकता पत्नी से छिपी नहीं रहती।

ऐसा क्यों होता है? बात, असल में, यह है कि प्रेम के तूफान में पड़ कर पुरुष कुछ दिनों के लिए चाहे जितनी भी भावुकता दिखा ले, किन्तु भावुकता का स्थान उसके जीवन में अपेक्षाकृत कम है। उसके चारों ओर कर्म का आह्वान गूंजता है और इस आह्वान को अनसुना करके कोई भी पुरुष सुखी नहीं हो सकता। बड़े-बड़े प्रेमियों का

कहना है कि प्रेम से बढ़ कर आनन्द और किसी वस्तु में नहीं है ; किन्तु इस आनन्द का मूल्य अपरिमित समय नष्ट करके चुकाना पड़ता है जो पुरुष की दृष्टि में बहुत बड़ा बलिदान है । पुरुष के लिए समय का अर्थ है कीर्ति, संपत्ति, आनन्द, वैभव और बीसियों प्रकार की अन्य सफलताएँ । किन्तु, नारी का समय काटे नहीं कटता । वह प्रसन्नता तब मानती है जब समय काटने का कोई जरिया उसके हाथ आ जाय ।

पुरुष नहीं चाहता कि कामानन्द के लिए भी जरूरी से अधिक समय नष्ट किया जाय । किन्तु, नारी पुरुष के इस काल-कार्पण्य को उसके स्वभाव की अनुदारता समझती है । प्रेम से उद्वेलित नारी उस नदी के समान होती है जिसकी धारा उमड़ कर किनारों से ऊपर बहना चाहती हो । किन्तु, पुरुष इस बाढ़ को पसन्द नहीं करता । उसे लगता है, इस बाढ़ को कबूल करने की अपेक्षा यह कहीं अधिक श्रेष्ठ है कि नदी के किनारे से ही भाग चला जाय । प्रेमाकुल पत्नियाँ पतियों का अत्यधिक समय तो चाहती ही हैं, वे इस बात को भी आसानी से बर्दास्त नहीं करतीं कि वे तो जगी रहें और पति को नींद आ जाय । प्रेम का स्वाद पुरुष को भी उतना ही सुख देता है जितना नारी को । भेद केवल यह है कि प्रेम को जगा कर पुरुष उसके तूफानों का सामना नहीं कर सकता, क्योंकि उसके जीवन में और भी काम हैं जिनके रुकने से गार्हस्थ्य का शकट अवरुद्ध होता है, विश्व की कर्मधारा मन्द पड़ जाती है । इसीलिए, नारी पुरुष के जीवन के अनेक उपकरणों में से मात्र एक उपकरण का स्थान लेती है, उसकी अनन्त प्रेरणाओं में से केवल एक प्रेरणा का प्रतिरूप होती है । किन्तु, पुरुष नारी-जीवन का सबसे प्रमुख केन्द्र, कदाचित्, उसका एकमात्र आधार है ।



आँसू पत्नियों के सबसे बड़े अस्त्र हैं !

(चित्र : डॉ० जगदीश गुप्त)

नारी का लालन-पालन माता-पिता इस भाव से करते हैं, मानो, अपना बोझ उसे आप नहीं उठाना है ; मानो, उसकी सारी सार्थकता लता बन कर वृक्ष को छा लेने में है । किन्तु, विवाह के बाद जब वृक्ष ऊँघने लगता है, तब लता को विफलता-बोध की पीड़ा

महसूस होती है और उसका मन खिन्न होने लगता है।

बड़ी से बड़ी नारी भी बुद्धि से कम, भावना से अधिक परिचालित होती है। वह सोचती है कम, सपने अधिक देखना चाहती है। और सपने उससे कहते हैं, "नारी, तेरी सारी सार्थकता पुरुष को लेकर है। तेरी सारी ज़िन्दगी इन्तजारी में कटेगी और हर बात के लिए तुझे पुरुष का मुँह जोहना पड़ेगा। और मुँह जोहना केवल रोटी और कपड़े के लिए ही नहीं है, बल्कि यह जानने के लिए भी कि तू सुन्दर है या नहीं, कि तेरा बनाव-सिंगार पसन्द किया जाता है या नहीं, कि तेरे प्रेम का अर्घ्य व्यर्थ है अथवा उसे कोई स्वीकार भी करता है।"

नारी, सचमुच ही, प्रतीक्षा की साकार प्रतिमा होती है।

कर्मसंकुल संसार में पुरुष दिन भर बाहर काम करता है, नारी घर में बैठ कर उसकी राह देखती है।

प्रेम के संसार में जिस साहस और बलिदान का परिचय प्रेमिका देती है, वह साहस और वह बलिदान पुरुष बहुत कम कर पाता है। फिर भी, मिलना कब होगा, इसका निर्णय प्रेमिका नहीं, प्रेमी की सुविधा से होता है। पुरुष तब आयेगा, जब कर्मों से उसे तनिक छुट्टी मिलेगी। प्रतीक्षा यहाँ भी नारी का पीछा नहीं छोड़ती। और प्रतीक्षा में रत होने के कारण स्वप्न कुछ और अधिक हो जाते हैं, भावुकता चिन्तन पर कुछ और अधिक छा जाती है।

और सबसे बड़ी लाचारी तो यह है कि काम-कक्ष में भी इच्छा पुरुष की ही प्रधान होती है, नारी केवल उसकी राह देख सकती है। और नर की इच्छा यदि अनान्दोलित रह गयी तो नारी उस सुख को भी प्राप्त नहीं कर सकती जिसका प्रतीक होने के कारण वह कामिनी कहलाती है।

इन सारी परिस्थितियों का स्वाभाविक परिणाम यह होता है कि नारी के भीतर एक प्रकार का आक्रोश उत्पन्न हो जाता है। वह अपनी हार को जीत में बदलने का उपाय सोचने लगती है और प्रत्येक क्षण ऐसे अवसरों की खोज में रहने लगती है जब वह पुरुष से प्रतिशोध ले सके, उसे नीचा दिखा कर अपने अस्तित्व की महिमा बता सके। पुरुष समझता है कि शाम को वह थका-माँदा बाहर से घर लौटता है। किन्तु, दिन भर की प्रतीक्षा से थकी एवं नाना दिवास्वप्नों से पीड़ित पत्नी उसे सुख देने के बदले अनख और तानों से बेधने लगती है। नारी समझती है कि पुरुष उसके पूरे वश में तब होता है, जब वह भोजन कर रहा हो अथवा

विश्व-शान्ति का पारिवारिक तरीका

अन्तर्राष्ट्रीय युद्ध रोकने का सबसे सरल और सबसे पारिवारिक तरीका यही है कि सभी देशों में कानून बना दिया जाए, कि कोई पुरुष अपने देश की स्त्री से विवाह नहीं

रात में जब वह प्रेम की मनोदशा में हो। और इन्हीं अवसरों का लाभ उठा कर पत्नी अप्रिय कथाएँ सुनाने लगती है। पुरुष को यह महसूस कराने लगती है कि उसके मित्र झूठे हैं, उसकी मान्यताएँ गलत हैं और जिन मूल्यों में वह विश्वास करता है वे फिजूल हैं।

कम ही पत्नियाँ होंगी जो विवाह के

आरम्भिक वर्षों के बाद पति के प्रति कुछ पुरुष न हो जाती हों। अकारण रूठना, अकारण रो पड़ना, अकारण गुस्से से ठुमक कर इधर से उधर चल पड़ना, पति को मानसिक पीड़ा देने के लिए बच्चों को पीटना अथवा नौकरों पर बरस पड़ना और बात-बात में यह दिखाने की कोशिश करना कि खान-पान, वसन-प्रसाधन और जीवन के विभिन्न आनन्दों में मेरी कोई दिलचस्पी नहीं है, ये ऐसे कर्म हैं जिनके संपादन में अनेक पत्नियों को रस आता है। पति को नीचा दिखाने के कितने ही उपाय और भी हैं जिन्हें सीखना नहीं पड़ता, जो पत्नी-धर्म के स्वाभाविक अंगों के समान आप से आप उत्पन्न होते हैं। पति जब सिनेमा चलने को तैयार हों, तब पत्नी काफी विलम्ब किये बिना घर से बाहर नहीं निकलतीं। पति अपने कक्ष में बैठा पत्नी की इन्तजारी कर रहा हो, तब पत्नी को अधिक से अधिक विलम्ब करने में अधिक से

कर सकता है। तब, जापानी पत्नी क्या अपने अमरीकी पति को आज्ञा देगी कि वह हिरोशिमा पर अणुबम गिरा आये?

—पर्ल० एस० बक
(संकलन : राजकमल चौधरी)

अधिक आनन्द आता है। और पति जब इस स्थिति में गिरफ्तार हो कि पत्नी की राय लिये बिना वह अगला कदम नहीं उठा सकता, तब पत्नी अक्सर राय देने से मुकर जाती है। यह इसलिए नहीं कि देवी के मन में कहने योग्य कोई बात नहीं है, बल्कि इसलिए कि जैसे पुरुष बात-बात में नारी को इन्तजारी में रखता है, वैसे ही, अब पत्नी भी उसे इन्तजारी का मज़ा चखाना चाहती है। पत्नी जब भी विलम्ब से आती है तब यह संयोग की बात नहीं होती, बल्कि, जान-बूझ कर किया गया प्रतिशोध का कार्य होता है।

और इन छोटे-मोटे अत्याचारों से पुरुष यदि विचलित नहीं हुआ तो पत्नी नपुंसक विद्रोह को आँसुओं में व्यक्त करती है, रो-चीख कर पुरुष का धैर्य नष्ट करना चाहती है और बीसियों ऐसे अन्य काम कर डालती है जिनसे पति का मन खिन्न, पीड़ित अथवा क्षुब्ध हो उठे। काम-वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि बहुत-सी पत्नियाँ विवाहबाह्य गुप्त सम्बन्धों की ओर इसलिए नहीं झुकतीं कि घर में वे असंतुष्ट रही हैं अथवा वैविध्य का लोभ उन्हें नीचे खींचता है, बल्कि, इसलिए कि वे अपने पतियों से प्रतिशोध लेना चाहती हैं, चोरी-चोरी उनकी इच्छा की अवहेलना करके अपने अहंकार को दुलराना चाहती हैं। इस प्रकार की कुण्ठाओं की स्वाभाविक परिणति आत्मघात में हो सकती है। किन्तु, सफल आत्मघात करने वालों में पुरुषों की संख्या अधिक, नारियों की हमेशा कुछ कम रही है। आत्मघात से मिलने वाली वस्तु नारियों को आत्मघात के अभिनय से ही प्राप्त हो जाती है। मरने का नाटक वे अनेक प्रकार से करती हैं, लेकिन, हर बार उनका मनोभाव यही रहता है कि जीवन का संग कहीं छूट न जाय। जिस पुरुष के विरुद्ध वे मरने का स्वांग रचती हैं, असल में, उनका ध्येय उसे मुट्ठी में समेट कर जीना होता है।

पुरुषों की अपेक्षा नारियाँ कुछ अधिक वायवीय भी होती हैं और, उसी परिमाण में, कुछ अधिक स्वार्थी और मिट्टी के कुछ अधिक

समीप भी। छोटी-छोटी ऐसी कितनी ही बातें जीवन में घटती रहती हैं, पुरुष जिनकी ओर कभी ध्यान भी नहीं देता, किन्तु, नारियाँ इन्हीं बातों को लेकर काफी आन्दोलित हो उठती हैं। वैसे, त्याग के मामले में भी नारी नर से श्रेष्ठ है, किन्तु कितनी ही अत्यन्त नगण्य वस्तुओं का त्याग करना उससे पार नहीं लगता। पुरुष और नारी की स्वभावगत एक भिन्नता यह भी है कि पुरुष जिस व्यक्ति से घृणा करेगा, उससे वह दूर भागना चाहेगा, किन्तु, नारी जिस व्यक्ति से घृणा करती है उसे वह पास रख कर और अधिक सताना चाहती है। विवाह-विच्छेद का अधिकार अब भारत में भी कानून से उपलब्ध है। जब इस अधिकार का प्रयोग होने लगेगा, लोग देखेंगे कि अनेक पति विवाह तोड़ कर भागना चाहेंगे, मगर, पत्नियाँ उन्हें भागने नहीं देंगी क्योंकि भारत में तलाक की कुंजी नारी के हाथ में है और नारी अपने शिकार को पिंजड़े से निकालना नहीं चाहती।

और तब भी यह सच है कि ये बुराइयाँ नारी-स्वभाव का कोई मौलिक अंग नहीं हैं। वे विशेष प्रकार की ग्रन्थि अथवा 'हारमोन' से नहीं, समाज की उस पद्धति से उत्पन्न होती हैं जो हजारों साल से एक समान चलती आ रही है। वे लालन-पालन की उस प्रक्रिया का परिणाम हैं जिसका उद्देश्य बेटी को मानवत्व नहीं, नारीत्व से पूर्ण बनाना है। और जिसे हम नारीत्व कहते हैं, वह ब्रह्मा की रचना नहीं, सभ्यता का आविष्कार है। जिस मनुष्य को आरंभ से ही इस भाव से तैयार किया गया हो कि अपना बोझ उसे आप नहीं उठाना है, संकटों के व्यूह में घुस कर अपनी राह उसे आप नहीं निकालनी है और जीवन में प्रयोग उसे बुद्धि और कर्मठता का नहीं, रूप, आकर्षण, आँसू और विलाप का करना है, उससे बुद्धि और विवेक की आशा ही दुराशा मात्र है।

नारी के आन्तरिक व्यक्तित्व की नींव नपुंसक विद्रोह पर होती है। इसीलिए, जब मनोवांछित परिणाम उसे प्राप्त नहीं होते, वह रोने लगती है, अपने शरीर और मन को पीड़ा पहुँचाने लगती है और अपने-आप को नष्ट करने के प्रयास से पति के जीवन को नरक बना देती है। संसार के संघर्षों में भाग लेने का नारी को अवसर नहीं मिलता, अतएव, क्षुब्ध होने पर वह जीवन के प्रति पराजय की भावना को स्वीकार कर लेती है। आँसू पत्नियों के सबसे बड़े अस्त्र हैं और शहादत का अभिनय उनका सबसे बड़ा संतोष। और सिसकियाँ सुन कर पति को जब क्रोध आता हो, तब पत्नियों को रोने का मानो एक प्रबल कारण और मिल जाता है।

पुरुष के सम्बन्ध में नारी के मनोभाव बहुत सुस्पष्ट नहीं होते। बचपन से ही वह देखती है कि लड़कों को जितनी स्वाधीनता दी जाती है, उतनी स्वाधीनता उसे नहीं मिलती। खेल-कूद और शारीरिक विकास के जो क्षेत्र लड़कों को उपलब्ध हैं, उन क्षेत्रों में लड़कियों का प्रवेश निषिद्ध समझा जाता है। शारीरिक विकास के स्त्री-चिह्न भी उसे लज्जित करते हैं और ऋतुधर्म का भी परिणाम यह होता है कि अपने को पुरुष से वह हीन समझने लगती है। समाज का अभी जो ढाँचा है, उसमें पिता के व्यक्तित्व का प्रभाव बहुत प्रमुख है। पिता के सादृश्य से लड़की पुरुष मात्र में ज्ञाता

और संरक्षक की झलक देखती है। फिर प्रेम के प्रसंग में आकर वह अपने प्रेमी को देवता समझने लगती है। किन्तु, शीघ्र ही, उसे यह विदित हो जाता है कि यह देवता देवता नहीं, कोई जघन्य जीव है जिसके अनेक कृत्य लज्जा और ग्लानि उत्पन्न करते हैं। नारी नर को अपने से श्रेष्ठ भी समझती है और वह उससे अन्तर्मन में कहीं कुछ द्वेष भी करती है। नर पर नारी की श्रद्धा का कारण यह है कि सारा संसार पुरुष के शासन में चलता है और दुनिया में जो भी बड़ी घटनाएँ घटित होती हैं उनका विधायक पुरुष होता है। और उसके द्वेष का कारण यह है कि वह पुरुष की समता नहीं कर सकती।

एक खास उम्र तक लड़की और लड़के को समान स्वतंत्रता प्राप्त रहती है। किन्तु, उसके बाद माँ-बाप और सारा समाज लड़की के मन पर यह भाव बिठाने लगता है कि तू मनुष्य नहीं, नारी है। लड़के के लिए तो सभी रास्ते खुले होते हैं जिन पर चल कर वह पुरुष और मनुष्य साथ-साथ बनता है; किन्तु लड़की के सामने केवल नारीत्व-साधना का मार्ग रह जाता है और उस राह पर चल कर वह अन्ततः मनुष्य कम, मादा अधिक बन जाती है। विवाह की बड़ाई लोग यह कह कर करते हैं कि वह दो सम मानवों के मिलन का नाम है। किन्तु, अनुभव यह बतलाता है कि विवाह दो मनुष्यों का मिलन नहीं, एक नर और एक मादा का मेल है। विवाह के घेरे का जो महत्त्व मादा समझती है, वही महत्त्व नर नहीं समझ पाता।

पुरुष विवाह अब इसलिए करता है कि अस्थिरता से भरे हुए संसार में उसे स्थिरता का कहीं कोई आधार चाहिए. किन्तु, खुद इस आधार से वह बँधना नहीं चाहता। चूल्हे-चौके और शयन-कक्ष का निश्चित प्रबन्ध उसे आश्वस्त बनाता है, किन्तु, इस प्रबन्ध से वह मनचाही छूट भी चाहता है। एक जगह बस जाने पर भी भ्रमण की प्रवृत्ति उसे भीतर से आन्दोलित रखती है। घर का महत्त्व मर्द

> **विवाह से पहले : विवाह के बाद**
>
> आधुनिक स्त्रियाँ विवाह से पहले पति के कारण चिन्तित रहती हैं। आधुनिक पुरुष विवाह के बाद पत्नी के कारण चिन्तित रहते हैं।
>
> —ऑस्कर लेवेन्ट
>
> (संकलन : राजकमल चौधरी)

भी खूब समझता है, किन्तु, घर उसका अन्तिम ध्येय नहीं है। पुरुष में नवीनता की प्यास होती है, खतरों और विरोधों से टकराने की इच्छा होती है और इन तृषाओं के शमन के उपाय घर में उपलब्ध नहीं होते। एकान्त उसके मन में ऊब उपजाता है और एक ही प्रकार का बँधा जीवन उसे 'बोर' कर देता है। किन्तु, नारी ऐसे संसार में रहना चाहती है जो अविचल और सातत्य से पूर्ण हो। यह संसार छोटे पैमाने पर उसे अपने ही घर में बसाना पड़ता है। किन्तु, मर्द और बच्चे जब इस दुनिया के अनुशासन को नहीं मानते, तब नारी के भीतर कुंठा उत्पन्न होती है, कठोरता और दुर्व्यवहार की प्रवृत्ति बढ़ने लगती है।

विभिन्न कामों में निरत रहने के कारण, अनेक महत्त्वपूर्ण योजनाओं में खोये रहने के कारण, ठोस बातों और ठोस चीजों का अभ्यासी

होने के कारण पुरुष यह समझ ही नहीं पाता कि पत्नी के आँसू, उसकी कुढ़न और बदमिजाजी का इलाज क्या है। और चूँकि मर्द इन बातों को ठीक से समझ नहीं पाता, इसलिए, औरत और रोती है, और कुढ़ती है, और भी अधिक विषैली और बदमिजाज हो जाती है। और यह लीला दो-चार या दस-बीस वर्षों में समाप्त नहीं होती, यह सारे जीवन-पर्यंत चलती रहती है। विवाह सुनने में बड़ा ही प्यारा नाम है, मगर उसकी तलखियाँ जब उभर कर ऊपर आती हैं, विवाह से अधिक कुत्सित कोई और कर्म नहीं दीखता। फिर भी पुरुष का स्थान कुछ अधिक सुरक्षित है। विवाह उसके व्यक्तित्व को केवल हानि पहुँचाता है, किन्तु उससे नारी का तो सारा जीवन ही उलझ कर व्यथाओं का जाल बन जाता है। पत्नी चीखती है, "हाय, तुम्हारी वेदी पर मैंने सारा सर्वस्व चढ़ा दिया और तुम इस बलिदान को समझ भी नहीं पाये।" और पुरुष, मन ही मन, पछताता है, इस नारी ने तो मुझे चारों ओर से लूट लिया। और इसी चीख़-पुकार के साथ दम्पति जीवन-समुद्र में ऊबते-डूबते रहते हैं।

सोचने की बात है कि ये तलखियाँ आती हैं कहाँ से? नर और नारी में से कौन है जो उनके लिए अधिक जिम्मेवार है? यह प्रश्न, शायद, बहुत उपयोगी नहीं है। यहाँ एक को दोषी बताना तो आसान है, दूसरे को क्षमा करना उतना आसान नहीं। आमने-सामने खड़े ये दुश्मन विचित्र प्रकार से लड़ाई लड़ते हैं। वे परस्पर निर्मम प्रहार ही नहीं करते, एक-दूसरे को सुख भी पहुँचाते हैं। और सुखों के आदान-प्रदान के भीतर भी प्रतिशोध और शत्रुता का क्रम अवरुद्ध नहीं होता। पति से प्रतिशोध लेने का एक तरीका यह भी है कि पत्नी पति की शैय्या पर जाकर जड़ता का नाट्य करने लगे।

विवाह का सतही इलाज कोई इलाज नहीं है। वैवाहिक कटुताओं का मूल इस बात में है कि नर उपजीव्य और नारी परोपजीवी है। पत्नी के बिना पति का काम चल जाता है, किन्तु पति के बिना पत्नी निस्सहाय हो जाती है। नारी की आवश्यकता पुरुष इसलिए अनुभव करता है कि वह गृहस्थी, वंशवृद्धि और आमोद चाहता है। किन्तु, नारी नर की कामना इसलिए करती है कि उसके बिना नारी की मानवीय प्रतिष्ठा सिद्ध नहीं होती, समाज में उसे स्थायित्व और गौरव प्राप्त नहीं होता। नर के लिए नारी आनन्द है, सुषमा है, शोभा और शृङ्गार है। किन्तु, नारी के लिए नर इससे कहीं अधिक ठोस वास्तविकता का प्रतीक है। वह उससे भोजन, वस्त्र और आवास पाती है, जीवन के विविध आनन्द, सन्तति और सम्मान प्राप्त करती है। और ये सारी वस्तुएँ उसे इसलिए मिलती हैं कि उसका कामिनी-रूप नर को पसन्द है।

नारी का यह कामिनी-रूप साथ-साथ शाप भी है और वरदान भी। वरदान इसलिए कि यही रूप पुरुष को उसके चरणों पर झुकाता है। और शाप इस कारण कि जब तक नारी अपने कामिनी-रूप को आगे करके रोटी और सम्मान पाती है, तब तक उसे वह आत्म-गौरव नहीं मिलेगा जिसकी वह भूखी है; तब तक उसे वह स्वाधीनता भी नहीं मिलेगी जिसके लिए नारियाँ बड़े-बड़े आन्दोलन चला रही हैं।

स्वाधीनता का वास्तविक अर्थ आर्थिक

स्वाधीनता ही होता है। जब तक कामिनी-रूप को तटस्थ रखकर नारियाँ अपनी जीविका कमाने के योग्य नहीं हो जातीं, वे पराधीन रहेंगीं।

किन्तु, रोज़ी कमाने के क्रम में नारियाँ क्या अपने कामिनी-रूप को तटस्थ रख सकती हैं? संभव है, आगे चल कर यह गुण भी उनमें विकसित हो जाय। किन्तु, अब तक जो कुछ देखने में आया है, उससे आशा को बल नहीं मिलता। दफ्तरों में काम करने वाली देवियाँ, अक्सर

सबसे अक्लमन्द पति

अक्लमन्द पति अपनी पत्नी के सामने आँखें बन्द रखता है। और भी अक्लमन्द पति अपनी पत्नी के सामने कान भी बन्द रखता है। सबसे अक्लमन्द पति अपनी पत्नी के सामने ज़ुबान भी बन्द रखता है।

—पेजेन्ट से

(संकलन : राजकमल चौधरी)

तरक्की पाने या अपने अधिकार बढ़ाने की लालसा में यथेष्ट बौद्धिक क्षमता के होते हुए भी शारीरिक आकर्षण का प्रयोग करने से नहीं चूकतीं। और कला की जो पुजारिनें मंच पर आती हैं, उन्हें भी कला से उपलब्ध कीर्ति से संतोष नहीं होता, वे किसी अन्य सिद्धि के लोभ में अपना विज्ञापन करने लगती हैं।

प्रेम की छोटी-बड़ी, किसी प्रकार की भी लीला के लिए केवल नारी को दोषी मानना बिल्कुल हास्यास्पद प्रयास है। किन्तु, नारी के सामने सवाल उसकी आजादी का है और यह आजादी अभी उसे पुरुष के विरुद्ध ही हासिल करनी है। किन्तु, जिसके विरुद्ध यह संग्राम है, नारी उसी पर आसक्त हो जाती है, क्योंकि प्रकृति की यही इच्छा है, नियति का यही विधान है। रक्त और मांस की पुकार नारी में नर से अधिक तीव्र नहीं होती, किन्तु, कर्मठता के कोलाहल से दूर रहने के कारण नारी इस प्रकार की मद्धिम से मद्धिम आवाज़ को भी अनायास सुन लेती है। समाज ने उसका विकास मानव-रूप में कम, जीव के रूप में अधिक किया है। अतएव, जैव प्रेरणाओं की अवज्ञा वह आसानी से नहीं कर सकती।

तब भी यह उचित है कि नारियों की आर्थिक स्वतंत्रता, जैसे भी हो, सम्भव बनायी जाय। अभी जो स्थिति है, वह काफी भयानक और कष्टपूर्ण है। कहने को हर पति अपनी पत्नी को रानी कहता है, किन्तु, आर्थिक पराधीनता के कारण पत्नी मन ही मन खूब समझती है कि रानी उसका ऊपरी नाम है। असल में वह पुरुष की रानी नहीं, सेविका है, इच्छाओं की दासी और काम की गुलाम है। कहने को तो यह भी कहा जाता है कि पति और पत्नी के बीच सम्बन्ध वही होना चाहिए जो आत्मा और शरीर के बीच है। किन्तु, सचाई यह है कि आत्मा जब अलग होती है तब लाश दो नहीं, एक ही रह जाती है। नारी को पराधीन बना कर पुरुष ने अपने लिए संकट खड़ा कर लिया है। उसे स्वतंत्रता देकर वह खुद स्वाधीन हो जायेगा। और नारी की स्वतंत्रता तब तक आ ही नहीं सकती, जब तक वह परोपजीवी है, वृक्ष के कन्धों पर लटकती हुई वल्लरी है जो वृक्ष का रस चूसे बिना जीवित नहीं रह सकती। यह सत्य है कि नारी की परोपजीविता उन्मूलित हुई तो

हजारों साल से आते हुए नैतिक मूल्य आप से आप उन्मूलित हो जायेंगे। किन्तु, मुझे तो यह भी सत्य मालूम होता है कि वर्तमान पद्धति के कायम रहने से एक दिन वह भी आने वाला है जब विवाह में वे ही लोग फँसेंगे जो आजीवन तपस्या करने अथवा पँचधुनी तापने को तैयार हों।

◉ ◉ ◉ ◉

मार्क ट्वेन : दो पारिवारिक प्रसंग

प्रसिद्ध अमरीकी लेखक मार्क ट्वेन ने अपनी भावी पत्नी ओलीविया को पहली बार देखते ही यह प्रण कर लिया था कि वह विवाह करेगा तो उसी से। एक बार ओलीविया के पिता ने उसे अपने घर ठहरने का न्यौता दिया। अन्धे को क्या चाहिए था, दो आँखें! लेकिन खुशी के दिन बीतते पता नहीं चला और वह दिन आ पहुँचा जब मार्क ट्वेन को विदाई लेनी थी, परन्तु वह इसके लिए बिल्कुल तैयार नहीं था। आखिर उसने रास्ता भी निकाल ही लिया—घोड़ागाड़ी के कोचवान को रिश्वत देकर अपनी तरफ कर लिया। ज्योंही मार्क ट्वेन गाड़ी में सवार हुआ घोड़ा 'बेकाबू' हो गया और सामान सहित ट्वेन महोदय सड़क पर आ गिरे। चोट काफी आई और अतिथि महोदय को दवा-दारू के लिए वापस घर में ले जाया गया। और फिर तो ओलीविया की देख-रेख में हफ्तों इलाज चलता रहा—और अन्ततः परिणाम-स्वरूप मरीज और डॉक्टर शीघ्र ही विवाह के बन्धन में बँध गये।

—मनोहर जुनेजा

प्रख्यात लेखक मार्क ट्वेन बहुत ही आराम-पसन्द थे। वे अपना अधिकांश पढ़ना-लिखना अपने बिस्तर पर ही करते थे। एक दिन प्रातःकाल एक समाचार-पत्र का संवाददाता उनका 'इंटरव्यू' लेने आया। इसकी सूचना ट्वेन को उनकी पत्नी ओलीविया ने दी। ट्वेन ने कहा, "यहीं भेज दो।"

ओलीविया कुछ कुड़मुड़ायी, बोली, "तुम्हीं उठ कर बैठकखाने में क्यों नहीं चले जाते? जरा सोचो तो, तुम बिस्तर पर लेटे रहोगे और वह बेचारा खड़ा रहेगा, क्या यह अच्छा लगेगा?"

ट्वेन का शान्त उत्तर मिला, "मैंने इस रूप में नहीं सोचा था। मेरा ख्याल था कि, तुम उसके लिए भी इस कमरे में ही बिस्तर का प्रबन्ध कर दोगी।"

—सत्यदेव नारायण सिन्हा



—: पात्र :—

केदार : परिवार का मुखिया ; बेकार और शराबी ; अवस्था ६५ वर्ष ।

शेखर : केदार का पुत्र ; साधारण क्लर्क ; अवस्था ३० वर्ष ।

शीला : शेखर की पत्नी ; तीखा स्वभाव ; अवस्था २६ वर्ष ।

शान्ता : केदार की बड़ी पुत्री ; गत दस वर्षों से पागल ; अवस्था २८ वर्ष ।

कान्ता : केदार की छोटी पुत्री ; अध्यापिका ; अवस्था २४ वर्ष ।

मुन्ना
मुन्नी } शेखर के बच्चे ; अवस्था क्रमशः ८ और ६ वर्ष ।

—: स्थान :—

(केदार के घर का आँगन)

—: समय :—

(सन्ध्या)

स्वर्ग के खंडहर

• विनोद रस्तोगी •

एक परिवार जो स्वर्ग नहीं बन सका और अब, जी हाँ, जिसके खण्डहरों में एक पागल लड़की का प्रेत घूमता है और देखता है एक शराबी पिता के दयनीय कंकाल को, एक ममतामयी बेटी की कमनीय काया को जो परिवार के लिए दाव पर लग चुकी है।

(आँगन में इधर-उधर घर-गृहस्थी का सामान बिखरा है—कहीं स्टूल, कहीं बरतन और कहीं कुछ कपड़े। इस अव्यवस्थित दशा से घर के निवासियों के चरित्र का स्पष्ट आभास होता है।

सामने की ओर दो दरवाज़े हैं। एक शेखर के कमरे में खुलता है और दूसरा कान्ता के कमरे में। कान्ता के कमरे में ही केदार का भी सामान रक्खा रहता है। शेखर के कमरे का द्वार खुला है किन्तु कान्ता के कमरे में बाहर से कुंडी लगी है।

दायीं ओर पीछे की तरफ, एक छोटी-सी कोठरी है जिसमें शान्ता पड़ी रहती है। आगे की ओर रसोई घर का द्वार है।

बायीं ओर का दरवाजा बाहर जाने के लिए है।

पर्दा उठने पर, बायें द्वार के समीप ही, एक चारपाई पर बैठा हुआ केदार दिखाई पड़ता है। उसका चेहरा दर्शकों की ओर है। बाल सफ़ेद हो गये हैं और चेहरे पर अनगिन झुर्रियाँ हैं जो बेहद थकान और पराजय का परिचय दे रही हैं। वह धोती और बंडी पहने है। उसकी गर्दन नीचे झुकी है और वह इस प्रकार मूर्तिवत बैठा है मानो किसी बड़े गम्भीर विषय पर मनन कर रहा हो।

शान्ता अपनी कोठरी में है और शीला रसोई घर में। न तो शेखर अभी अपने दफ्तर से लौटा है और न कान्ता अपने स्कूल से। बच्चे भी घर में नहीं हैं। वे घर के आँगन से अधिक बाहर की गली में खेलना पसन्द करते हैं।

रसोई घर से बरतनों की आवाज़ आ रही है। रह-रह कर शीला की खाँसी का स्वर भी सुनाई पड़ता है।)

केदार : (कुछ देर बाद) बहू! ओ बहू!!

शीला : (रसोई घर से) क्या है?

केदार : ज़रा पानी तो देना। बड़ी प्यास लगी है।

शीला : (अन्दर से ही) मुन्ना! मुन्ना!! कहाँ मर जाते हैं बच्चे जाकर! घर में तो इनका पल भर को तलुआ ही नहीं टिकता।

केदार : मुन्ना-मुन्नी बाहर खेल रहे होंगे।

शीला : (रसोई घर से ही ज़ोर से थाली पटकती हुई) बाहर कौन-सा मेवा मिल जाता है उन्हें! (खीझ कर) अकेली मैं क्या-क्या करूँ? (गिलास में पानी लेकर आती हुई) भगवान चीर कर चार भी तो नहीं कर देता। लो! (गिलास केदार की ओर बढ़ाती है)

केदार : (गिलास लेकर) भगवान किसी की नहीं सुनता, बहू! बहरा हो गया है वह। (पानी पीकर गिलास लौटाता हुआ) अगर वह बहरा न होता तो क्या शान्ता का यह हाल होता?

शीला : (चिढ़े स्वर में) आपको तो बीबी जी के दुख के आगे किसी और का दुख दिखाई ही नहीं पड़ता।

केदार : (निःश्वास छोड़ कर) मैं सब देखता हूँ, बहू।

शीला : अगर देखते तो ऐसी बात नहीं करते। बीबी जी हमसे तो लाख गुनी अच्छी हैं। उन्हें सुख-दुख तो नहीं व्यापता।

केदार : बहू!

शीला : मैं तो सच्ची बात कहती हूँ। पागल के लिए सुख-दुख क्या ?

(बाहर से मुन्ना और मुन्नी का प्रवेश। मुन्ना खाकी नेकर और सफ़ेद कमीज़ पहने है तथा मुन्नी रंगीन छींट की फ्राक। दोनों बच्चे गन्दे हैं।)

मुन्ना : बाबा, बाबा ! मुन्नी मुझे चिढ़ाती है।

मुन्नी : नहीं, बाबा। मुन्ना झूठ बोलता है।

शीला : तुम लोग फिर लड़ने लगे। आने दो बाबू जी को।

मुन्नी : मुन्ना मुझे मारता है। मुझे पगली कहता है।

मुन्ना : झूठी कहीं की ! तू क्यों बुआ जी की नकल करती है ?

केदार : बुआ की नकल करती है यह ?

मुन्ना : हाँ, बाबा। कहती है—मैं दुल्हन बनूंगी ; मेरी बारात आयेगी।

शीला : **(मुन्नी का कान पकड़ कर खींचती हुई)** और करेगी बुआ की नकल ? बोल ? **(मुन्नी रोती है)** पागल बनने का शौक चर्राया है !

(शीला बच्ची के गालों पर तमाचे मारती है। मुन्नी ज़ोर से रोती है। मुन्ना सहमा खड़ा है। कोठरी के द्वार से शान्ता झाँकती है। उसका चेहरा पीला है और आँखें धँसी हुई।)

केदार : **(उठ कर मुन्नी को बचाता हुआ)** बहुत हुआ, बहू ! बच्चों को इस तरह नहीं मारना चाहिए।

शीला : आपने ही बच्चों को बिगाड़ा है ! इस घर में रह कर यह आवारा न हो जायें तो मेरा नाम नहीं। हाँ !

(शीला घूम कर शान्ता की तरफ़ देखती है। शान्ता सहम कर कोठरी का द्वार बन्द कर लेती है।)

केदार : **(जैसे किसी ने बहुत भारी बोझ छाती पर रख दिया हो)** शायद तुम ठीक कहती हो, बहू ! **(चारपाई पर बैठ कर चारों ओर देखता हुआ)** यह घर ही ऐसा है। यहाँ की हवा में ज़हरीला धुँआ है ; यहाँ की ज़मीन पर ज़हरीले कीड़े रेंगते हैं। **(बच्चों से)** जाओ.....जाओ ! बाहर खेलो जाकर। वहाँ धूप है, हवा है, ताजगी है। **(डाँट कर)** जाओ, भाग जाओ।

मुन्ना : मम्मी, हमें भूख लगी है।

शीला : **(ज़ोर से थप्पड़ मार कर)** फिर कहा मम्मी ! कितनी बार मना किया तुझे कि मुझे मम्मी न कहा कर।

मुन्ना : **(सिसकता हुआ)** फिर क्या कहा करूँ ? पापा तो......

शीला : पापा....मम्मी....हुँ ! यही हाल होता है पापा-मम्मी का ? उनको तो न जाने क्या शौक.....

केदार : **(बीच में ही)** मैं समझा दूँगा शेखर को। बच्चे भूखे होंगे। कुछ हो तो दे दो।

शीला : अभी कुछ नहीं बना है। घंटे भर से रसोई में बैठी आँखें फोड़ रही हूँ मगर लकड़ियाँ हैं कि जलने का नाम ही नहीं लेतीं।

केदार : गीली हैं क्या ?

शीला : **(रसोई की ओर जाती हुई)** हाँ.. जो धीरे-धीरे सुलगती तो हैं मगर जलती नहीं—ठीक मेरी तरह !

(शीला रसोईघर में चली जाती है। केदार पल भर उस ओर देखता रहता है मानो उसके शब्दों का गूढ़ अर्थ समझने की चेष्टा कर रहा हो।)

मुन्ना : बाबा, मम्मी हमें प्यार क्यों नहीं करतीं ?

मुन्नी : हमें मारती क्यों हैं, बाबा !

केदार : तुम लोग उन्हें परेशान जो करते हो।

मुन्ना : लेकिन पापा तो उन्हें परेशान नहीं करते।

मुन्नी : मम्मी पापा से भी लड़ाई करती हैं। पापा भी लड़ते हैं। बाबा, क्यों लड़ते हैं पापा और मम्मी ?

मुन्ना : यह मुन्नी भी मम्मी की नकल करती है।

केदार : अच्छा !

मुन्ना : हाँ, बाबा ! हमसे खूब लड़ती है।

केदार : नहीं बेटा ! लड़ना नहीं चाहिए। मेल से रहा करो।

मुन्नी : पापा और मम्मी मेल से क्यों नहीं रहते, बाबा ?

केदार : रहते हैं बेटा, रहते हैं ! जाओ, बाहर खेलो। (बंडी की जेब से दो इकन्नियाँ निकाल कर दोनों को एक-एक देता हुआ) लो, तुम्हें भूख लगी है न ! कुछ लेकर खा लेना। जाओ !

(कोठरी का द्वार धीरे-धीरे खोल कर शान्ता फिर झाँकती है।)

मुन्ना : बाबा, बुआ मम्मी से डरती क्यों हैं ?

केदार : मुझे नहीं मालूम बेटा ! जाओ, खेलो जाकर। और हाँ, लड़ना मत !

(मुन्ना और मुन्नी दौड़ते हुए बाहर जाते हैं। शान्ता धीरे-धीरे केदार की ओर आती है। उसके वस्त्र फटे और गन्दे हैं। शरीर दुर्बल है। आँखों में रिक्तता का भाव है। वह केदार की चारपाई के समीप पहुँच कर खड़ी हो जाती है।)

केदार : भूख लगी है ?

(शान्ता मौन रहती है।)

केदार : पानी चाहिये ?

(वह फिर मौन रहती है।)

केदार : फिर क्यों आयी बाहर ?

(नेपथ्य से बैंड की धीमी आवाज़ आती है।)

शान्ता : वह आ रहा है। सुनो !

केदार : कौन आ रहा है ?

शान्ता : दूल्हा ! जो पहले आया था। लेकिन तब तो लौट गया था। इस बार तो नहीं लौटेगा ?

केदार : जाओ, अपनी कोठरी में जाओ, शान्ता !

शान्ता : मैं दुल्हन बनूँगी। (जोर से हँस कर) सिंगार करूँगी। (बैंड का स्वर और पास आ गया है) सुनो, दूल्हा

नाटककार और पत्नी-प्रसंग

विवाह के सम्बन्ध में लड़कियों को शॉ का परामर्श :

'विवाह ज़रूर करो परन्तु भूल कर भी ऐसे व्यक्ति से नहीं जो दिन भर घर पर रहता हो।'

शॉ का कहना था कि जो पति २४ घंटे घर पर रहता है वह पत्नी के काम में अवश्य हस्तक्षेप करेगा। यह

बात संसार में किसी भी स्त्री को मंजूर नहीं है। शॉ ने एक बार ऐसी ही एक भूल की थी और उसे मुँहकी खानी पड़ी। खाली बैठे-बैठे उसने कमरे का निरीक्षण करना शुरू किया। एक चीज का उसे एक विशेष स्थान पर होना अत्यधिक अखरा। उसने अपनी पत्नी को बुला कर कहा, "यह चीज़ तुमने वहाँ क्यों रख दी है?" श्रीमती शॉ ने एकदम उत्तर दिया, "रख दी है? यह तो पिछले तीस वर्ष से वहीं है।" उत्तर सुन कर शॉ चुपचाप उस कमरे से बाहर खिसक गया और भविष्य में उसने अपनी पत्नी के काम में कभी भी हस्तक्षेप न करने की कसम खा ली।

—प्रेषक : मनोहर जुनेजा

आ रहा है मुझे लेने। बारात आ रही है।

(शान्ता द्वार की ओर बढ़ती है।)

केदार : **(उठ कर हाथ पकड़ता हुआ)** बाहर न जाओ, बेटी! वह बारात नहीं, कोई जुलूस है।

शान्ता : मेरी शादी का जुलूस! मैं शादी करूँगी! **(हाथ छुड़ाने का प्रयास करती हुई)** छोड़ दो मुझे! बताओ, कहाँ है मेरा दहेज?

केदार : **(ऊँचे स्वर में)** बहू! जल्दी आना ज़रा। शान्ता बाहर जा रही है।

शान्ता : मैं ब्याह करूँगी। जाने दो मुझे! जाने दो मुझे!!

शीला : **(रसोई घर से निकल कर)** क्या है?

केदार : इसे ज़रा कोठरी में पहुँचा दो, बहू।

(बैंड का स्वर विलीन हो जाता है।)

शीला : जाओ, अपनी कोठरी में जाओ, बीबी जी!

शान्ता : **(सहम कर)** मैं दुल्हन न बनूं? मेरा ब्याह नहीं करोगी? मुझे दहेज नहीं दोगी?

शीला : अभी नहीं! जब तुम बड़ी हो जाओगी तब!

शान्ता : **(ताली बजा कर)** जब बड़ी हो जाऊँगी तब दुल्हन बनूंगी मैं! हाथों में मेंहदी रचाऊँगी, पैरों में महावर लगाऊँगी, आँखों में काजल और माँग में......! माँग में क्या लगाया जाता है?

शीला : सिन्दूर।

(केदार दुखी भाव से टहलने लगता है। चेहरे पर हृदय में उठने वाले तूफान के चिह्न स्पष्ट हैं।)

शान्ता : हाँ, सिन्दूर! खून की तरह लाल! लेकिन...लेकिन...दूल्हा रूठेगा तो नहीं, बारात लौट तो नहीं जायेगी?

केदार : **(रुद्ध कंठ से)** बहू, इसे ले जाओ। ले जाओ इसे! मैं....मैं....यह बातें नहीं सुन सकता।

शान्ता : आप रोते क्यों हैं, बाबू जी? मैं जल्दी ही आ जाऊँगी ससुराल से। **(केदार दोनों हाथों से सिर थाम कर चारपाई पर बैठ जाता है।)** भाभी, मुझे नयी साड़ी दो....लाल रंग की। लाल....? नहीं....नहीं! गुलाबी! **(गुनगुनाती हुई)** गुलाबी रंग की ओढ़ चुनरिया मैं तो चली पिया के देस! **(हँसती हुई)** मगर मैं डोली पर बैठ कर नहीं जाऊँगी।

शीला : **(चिढ़ कर)** बड़ी साध है ब्याह

रचाने की ! पागलपन में भी....

केदार : **(चीख़ कर)** बहू !

(शान्ता डर जाती है ।)

शीला : मैंने ऐसी कौन-सी बात कह दी जो आसमान सिर पर उठा रहे हैं ? इस घर में तो मुँह खोलना भी पाप है । **(सिसक कर)** भगवान, मुझे इस नरक से उठा क्यों नहीं लेते ?

केदार : क्योंकि भगवान के स्वर्ग में तुम जैसों के लिए जगह नहीं ।

शीला : हाँ, हमें क्यों जगह मिलेगी स्वर्ग में ? हम तो पापी हैं न ! स्वर्ग तो आप-लोग जायेंगे ।

केदार : ज़रा तमीज़ से बात करना सीखो, बहू ! इस घर में ब्याह कर आये हुए तुम्हें नौ साल हो गये लेकिन तुमने अभी तक बड़ों से बात करने का सलीका नहीं जाना ।

(शान्ता कभी केदार की ओर देखती है और कभी शीला की ओर ।)

शीला : हाँ, मैं तो गँवार हूँ, बदतमीज़ हूँ ! फिर मुझसे कोई बात ही क्यों करता है ? मेरे मायके में तो....

केदार : मायके की बातें यहाँ नहीं चलेंगी ।

शीला : कौन चलाता है मायके की बातें ? वहाँ कभी किसी काम को हाथ नहीं लगाती थी लेकिन यहाँ आकर नौकरानी से भी गयी-बीती हो गयी हूँ । सुबह से लेकर रात तक जान देना और ऊपर से तरह-तरह के ताने सुनना !

(शीला सुबकने लगती है ।)

शान्ता : रोती क्यों हो, भाभी ? तुम्हारा भी ब्याह करा दूँगी । पहले मेरा सिंगार कर दो नहीं तो दूल्हा रूठ कर लौट जायेगा । **(शीला से चिपट कर)** मुझे गुलाबी चूनर दे दो, भाभी !

शीला : **(झिड़क कर)** अलग हटो ! जाओ अपनी कोठरी में ।

केदार : **(उठ कर शान्ता के सिर पर हाथ फेरता हुआ)** हाँ, बेटी ! तेरी दुनिया तो अब वह छोटी-सी कोठरी ही है । अँधेरे से ऊब कर भी रोशनी में आने का कोई हक़ नहीं तुझे । जा, बेटी, जा ! उसी वीरान अँधेरे में चुपचाप पड़ी रह । बाहर की इस दुनिया से आँखें मूँद ले, कान बन्द कर ले ताकि न कुछ देख सके और न कुछ सुन सके । तभी तू जिन्दा रह सकेगी, अभागिन ! और अगर ऐसा नहीं कर सकती तो....तो....गले में फाँसी लगा कर अपनी इस मायूस जिन्दगी का ख़ात्मा कर दे । जा....जा....

(केदार फिर चारपाई पर बैठ जाता है और धोती से आँसू पोंछता है । शान्ता धीरे-धीरे अपनी कोठरी में जाकर अन्दर से द्वार भेड़ लेती है । शीला रसोई घर की ओर बढ़ती है ।)

केदार : सुनो, बहू !

(शीला ठहर जाती है ।)

केदार : मुझे गालियाँ दे लिया करो । मैं कुछ नहीं कहूँगा लेकिन शान्ता के लिए.....

शीला : मैंने क्या कह दिया उनसे ?

केदार : तुम उसके दुख का अन्दाज नहीं लगा सकती । दस साल पहले बारात आई थी द्वार पर ! लेकिन लौट गयी । दहेज के दानव ने शान्ता

की खुशियों का खून कर दिया। बिचारी उस आघात को सह न सकी।

शीला : (बीच में ही) और सुध-बुध खोकर पागल हो गयी। यही न? सैकड़ों बार सुन चुकी हूँ।

केदार : आज एक बार और सुन लो। फिर नहीं सुनाऊँगा। हाँ, तभी से पागल है मेरी बेटी। न खाने की सुध है न पीने की। पिछले दस सालों में मुश्किल से दस घंटे सो पायी होगी। (कंठ भर आता है) फूल-सी बेटी सूख कर काँटा हो गयी। बोलो, इसमें शान्ता का क्या दोष है? हमारी बेबसी का दंड वह क्यों भोगे? क्यों भोगे हमारी बेबसी का दंड?

शेखर : (बाहर से) न जाने किस पाप का दंड मिल रहा है मुझे!

(केदार चौंक कर द्वार की ओर देखता है। शीला सिर का पल्ला ठीक करती है। बाहर से शेखर का प्रवेश। पैन्ट और कमीज़ पहने है। चेहरे पर थकान मिश्रित झुँझलाहट के चिह्न हैं। एक हाथ में झोला और दूसरे में कुछ फाइलें हैं।)

शेखर : (फाइलें स्टूल पर रख कर झोला चारपाई पर फेंकता हुआ पत्नी की ओर उन्मुख होकर) फिर पैसे दिये तुमने बच्चों को! लाख बार मना कर चुका हूँ......

शीला : पैसे......?

शेखर : हाँ। गली के नुक्कड़ पर खड़े चाट खा रहे थे। चटोरे कहीं के!

शीला : लेकिन....लेकिन पैसे मैंने तो नहीं दिये।

शेखर : तुमने नहीं दिये? (पिता की ओर मुड़ कर) ओह, समझा! (कड़े स्वर में) आपने दिये पैसे?

केदार : हाँ!

शेखर : बच्चों को देने के लिए आपके पास पैसे कहाँ से आ जाते हैं? बोलिये, क्यों दिये पैसे? चाट खाकर अगर बीमार पड़ गये तो कौन जिम्मेदार होगा? इलाज के लिए पैसे भी आप देंगे?



पारिवारिक अशान्ति
(चित्र : भाऊ समर्थ)

केदार : अगर बच्चों को पैसे दे दिये मैंने तो कौन-सा पहाड़ टूट पड़ा? उन्हें भूख लगी थी और....

शीला : उन्हें तो हर घड़ी भूख ही सताती रहती है। इन भुखमरों की भूख एक दिन मुझी को कच्चा खा लेगी।

शेखर : मैं तो ऊब गया हूँ इस जिन्दगी से।

दफ्तर में अफ़सर की झिड़की और घर में यह हाय-तोबा !

केदार : ऊबा कौन नहीं है, बेटा ? इस घर की हवा ही ऐसी है। बच्चे कहाँ हैं ?

शेखर : होंगे कहीं। मैंने कह दिया है कि अगर घर में पैर रक्खा तो टाँगें तोड़ दूँगा।

केदार : **(द्वार की ओर बढ़ता हुआ)** सहम गये होंगे बिचारे। मैं ले आता हूँ उन्हें। बच्चों को हर वक्त डाँटना ठीक नहीं।

(केदार बाहर जाता है।)

शेखर : **(अतीव क्रुद्ध और झुँझलाये स्वर में)** अब पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ी-खड़ी मेरा मुँह क्या ताक रही हो ? चाय मिलेगी या नहीं ?

शीला : **(रूखे स्वर में)** अभी नहीं बनी है।

शेखर : **(गरज कर)** क्यों ? मैं पूछता हूँ, क्यों नहीं बनी चाय ? दिन भर दफ्तर में जान खपा कर घर आऊँ, और वक्त पर एक प्याला चाय भी नहीं मिले। बोलो, कौन-सी कमाई कर रही थी बैठी-बैठी ? जवाब दो।

शीला : **(रुँआसी होकर)** इस घर में बुराई की जड़ तो बस मैं ही हूँ। ठीक है, निकाल दो मुझे घर से। **(शेखर फाइलें और झोला उठा कर तेज़ी से अपने कमरे में जाता है।)** जिसे देखो, वह मुझे ही भला-बुरा कहता रहता है। अपनों के गुन कोई नहीं देखता। **(शेखर फिर बाहर आ जाता है।)** आखिर मैं कहाँ-कहाँ अपनी जान देती फिरूँ ? **(सिसकने लगती है।)**

शेखर : कर दी रोदन-रामायण शुरू !

शीला : **(सिसकती हुई)** कह लो, जो जी में आये कह लो। भगवान मौत भी तो नहीं देता मुझ अभागिन को। **(शेखर परेशानी से टहलने लगता है)** न जाने कौन-से पाप किये थे पिछले जनम में जो यह दुःख भोगना पड़ रहा है। **(फूट-फूट कर रोने लगती है)**

शेखर : कौन-से दुख का पहाड़ टूट पड़ा है तुम पर ? तुम्हारे दिन-रात के इसी झींकने ने मेरी ज़िन्दगी में ज़हर घोल दिया है।

शीला : हाँ.....! मैं नागिन जो हूँ। ठीक है, तुम रहो अपने सगे-सम्बन्धियों के साथ। मुझे भेज दो माँ के घर ! रूखी-सूखी मिल ही जायेगी वहाँ ! मैं जानती हूँ, मैं किसी को फूटी आँखों नहीं सुहाती। मेरे जाने के बाद ही सबका कलेजा ठंढा होगा।

शेखर : माँ के घर कल जाना चाहती हो तो आज ही चली जाओ। धमकी किसे देती हो ? मैं तुम्हारे बिना मर नहीं जाऊँगा।

उपन्यासकार और पत्नी-प्रसंग

तोल्स्तोय और उनकी पत्नी में अक्सर एक बात पर तकरार रहता था। आदर्शवादी तोल्स्तोय घर के काम-काज के लिए नौकर रखने के विरुद्ध थे। यह तो उनकी पत्नी को मंज़ूर था, लेकिन वक्त-बेवक्त अतिथियों

शीला : (फिर रो पड़ती है) न जाने क्या देख कर माँ-बाप ने इस नरक में झोंक दिया ! अगर मैं भी पढ़ी-लिखी होती तो......

शेखर : तो क्या करती ?

शीला : तो ऐसी बातें नहीं करते मुझसे और न मैं सुनती ही। कहीं भी नौकरी करके पेट पाल लेती। (सिसक कर) मैं अनपढ़ हूँ, गँवार हूँ, तभी खरी-खोटी सुनाते रहते हो। कान्ता की तरह अगर मैं भी कमाने वाली होती तो मैं भी सबकी प्यारी होती।

शेखर : (कड़े स्वर में) शीला !

शीला : तब मैं भी मालकिन की तरह रहती। इस तरह टहलनी बन कर नहीं पिसना पड़ता। **(शेखर उद्विग्न होकर चारपाई पर बैठ जाता है)** अब तो काम का काम करो और ऊपर से घर भर के ताने सुनो, गालियाँ सुनो।

(शेखर मौन बैठा है। शीला उसकी ओर देखती है। फिर धीरे-धीरे उसके समीप जाकर फर्श पर बैठ जाती है।)

की पलटन वह अपने साथ घर ले आते थे और अपनी पत्नी से 'पन्द्रह मिनट में पन्द्रह लोगों का खाना तैयार करने' को कहा करते थे। इस बात को लेकर अक्सर दोनों में तू-तू-मैं-मैं हो जाती थी।

—प्रेषक : मनोहर जुनेजा

शीला : तुम्हारी आँखों पर तो पर्दा पड़ा है। कुछ सुझाई नहीं पड़ता। मेरी क्या ? रही-सही जिन्दगी कट ही जायेगी किसी तरह। लेकिन इन बच्चों का क्या होगा ?

शेखर : (चौंक कर) क्या मतलब ?

शीला : बच्चे बिगड़ रहे हैं। मुन्नी शान्ता बीबी की नकल करती है। मुन्ना दिन भर गली के गन्दे छोकरों के साथ खेलता रहता है। अगर डाँटती हूँ तो बाबू जी......

शेखर : उन्हींने तो बच्चों को सिर पर चढ़ाया है।

शीला : अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। अगर अब भी नहीं चेते तो जनम भर पछताना पड़ेगा। मेरा नहीं, तो कम से कम बच्चों का तो ख्याल करो।

शेखर : (उठ कर) क्या करूँ ? किसी दिन गुस्सा ज्यादा आ गया तो दोनों के हाथ-पैर तोड़ दूँगा।

शीला : (उठ कर) उन्हें अपंग करके जनम भर बैठे खिलाना। क्या हो गया है तुम्हारी अकल को ? मेरी बात मानो और......

शेखर : और अपनी गृहस्थी अलग बसाऊँ ? यही न ? कई बार सुन चुका हूँ यह उपदेश। बाबू जी को बुढ़ापे में असहाय छोड़ कर......

शीला : (बीच में ही) कान्ता की कमाई क्या तीन प्राणियों के लिए काफी नहीं है ?

शेखर : कान्ता उमर भर कमा कर खिलाती रहेगी उन्हें ? शादी नहीं करेगी ?

शीला : शादी करने की क्या जरूरत है उसे ?

घूमने-फिरने की पूरी आजादी है। स्कूल से कहाँ जाती है, क्या करती है, कौन जाने ?

शेखर : **(चीख कर)** शीला......! ऐसी बात मुँह से निकालते शर्म नहीं आती ?

शीला : चीख कर मेरा मुँह बन्द कर सकते हो लेकिन मोहल्ले वालों का कैसे करोगे? अभी कल ही राधा की भाभी कह रही थीं कि.....

शेखर : क्या कह रही थीं राधा की भाभी ?

शीला : यही कि उसने कई बार कान्ता को एक आदमी के साथ घूमते-फिरते देखा है।

शेखर : **(अविश्वास के स्वर में)** यह झूठ है। जरूर उसे धोखा हुआ है। हमारी कान्ता ऐसा नहीं कर सकती, कभी नहीं कर सकती।

कान्ता : **(नेपथ्य से)** जीजी....जीजी....!

शीला : लो आ गयीं कान्ता बीबी। मेरी बात का यकीन न हो तो पूछ लेना उन्हीं से।

(शीला रसोई घर की ओर बढ़ती है। बाहर से कान्ता आती है। उसके हाथ में एक बड़ा पैकेट है। वह गोरे रंग की सुन्दर युवती है।)

कान्ता : जीजी....! ओ जीजी! देखो मैं क्या लायी हूँ तुम्हारे लिए! **(पैकेट चारपाई पर रख कर)** भैया, चाय पी ली? आज मुझे देर हो गयी ज़रा! **(ऊँचे स्वर में)** भाभी! मुझे भी चाय दे दो जल्दी से।

शीला : **(रसोई घर से)** चाय अभी नहीं बनी है।

कान्ता : अभी नहीं बनी है? क्यों?

शीला : क्योंकि मेरे सिर में दर्द हो रहा है। जिसे पीनी हो खुद बना ले।

(कान्ता कभी रसोई घर के द्वार की ओर देखती है और कभी शेखर की ओर। शेखर सिर नीचा किये खड़ा है।)

कान्ता : आपने भी चाय नहीं पी, भैया? **(शेखर नकारात्मक सिर हिलाता है)** मैं बनाती हूँ अभी।

शेखर : नहीं। मैं चाय नहीं पीऊँगा। **(रुक कर)** आज इतनी देर कहाँ हो गयी, कान्ता?

कान्ता : जीजी के लिए साड़ी लेने चली गयी थी।

शेखर : अकेले?

कान्ता : जी.....जी हाँ।

शेखर : हूँ! **(टहलता हुआ)** कान्ता, कल से तुम पढ़ाने न जाया करो।

कान्ता : क्यों?

शेखर : मैं कह रहा हूँ इसलिए। तुम्हें नौकरी करने की कोई जरूरत नहीं।

केदार : **(बाहर से)** देखो, यहीं चबूतरे पर खेलना। समझे! **(प्रवेश करके शेखर से)** बच्चे डर गये हैं विचारे, **(सहसा कान्ता को देख कर)** अरे, तू आ गयी, बेटी! चाय पी ली? **(ऊँचे स्वर से)** बहू, ओ बहू! कान्ता के लिए चाय ले आना जल्दी से।

कान्ता : आज चाय नहीं पीऊँगी, बाबू जी। **(तेज़ी से अपने कमरे की ओर बढ़ कर कुंडी खोल कर अन्दर चली जाती है)**

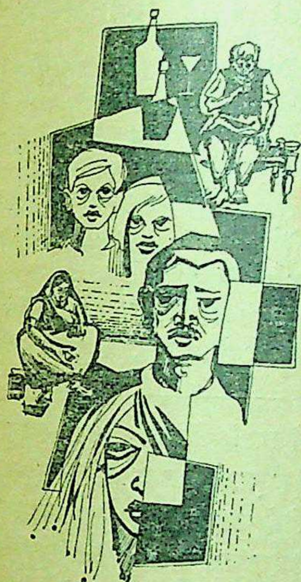
केदार : तूने कुछ कहा कान्ता से?

शेखर : कान्ता का नौकरी करना मुझे पसन्द नहीं, बाबू जी।

केदार : मैं तो बीसों बार कह चुका हूँ कि बेटी नौकरी छोड़ दे और किसी मन-पसन्द लड़के से शादी करके अपनी गृहस्थी बसा ले। मगर वह सुनती ही नहीं। कहती है, मैं कमा कर भैया का बोझ बटाऊँगी।

शेखर : बोझ बटायेगी मेरा या कुल के नाम पर बट्टा लगायेगी ?

केदार : यह क्या कह रहा है तू ?



शेखर : ठीक कह रहा हूँ, बाबू जी ! (**ऊँचे स्वर में**) कान्ता ! कान्ता !! (**कान्ता बाहर आकर सिर नीचा किये खड़ी हो जाती है**) कौन है वह आदमी जिसके साथ तुम घूमती-फिरती हो ? (**कान्ता मौन रहती है।**) बोलो !

केदार : तू पागल तो नहीं हो गया है, शेखर !

शेखर : आप चुप रहिये, बाबू जी ! (**कान्ता से**) बोलो, जवाब क्यों नहीं देती ?

शीला : (**रसोई घर से बाहर निकल कर**) अरे, झूठ के भी कहीं जीभ होती है ! बोलेगी क्या ? दसियों बार देखा है मोहल्ले की औरतों ने इन्हें उस आदमी के साथ घूमते-फिरते, हँसते-बोलते।

केदार : (**टूटे स्वर में**) बे...टी...! क्या...क्या यह सच है ?

कान्ता : (**दृष्टि नीची किये ही**) हाँ, बाबू जी !

शेखर : तू जन्म लेते ही मर क्यों नहीं गयी, कलमुँही ! इसीलिए नौकरी करती है ? और अहसान लादती है मुझ पर। हुँ...भैया का बोझ हल्का करूँगी !

केदार : तू तो बेकार में ही लाल-पीला हो रहा है बिचारी पर। अरे, किसी से जान-पहचान कर ली तो कौन-सा पाप किया इसने ? (**कान्ता के सिर पर हाथ फेर कर**) बेटी, तू झटपट उससे व्याह कर ले और इस घर से दूर...बहुत दूर...अपना नया घर बसा ले। चली जा यहाँ से, नहीं तो तुझे भी शान्ता की तरह पागल होना पड़ेगा। (**कान्ता सिसकने लगती है**) रो मत, बेटी ! मैं सब समझता हूँ। तू तो हमारा बोझ ही हल्का कर रही है। दहेज देकर तेरे हाथ पीले करने की शक्ति हममें कहाँ ? बहुत अच्छा किया तूने। कैसा है लड़का ? क्या करता है ? बोल, शरमाने की इसमें क्या बात है ?

शीला : वह लड़का नहीं, आदमी है आदमी।

मैं तो दंग रह गयी सुन कर। हया-शरम तो जैसे घोल कर पी गयी हैं बीबी जी। (रसोई घर में जाती हुई) ऐसी भी जवानी क्या? छिः छिः छिः!

(शीला रसोई घर में चली जाती है। केदार उधर घूर कर देखता है।)

शेखर : (डाँट कर) बोल, कौन है वह आदमी? तुझसे शादी करेगा वह?

कान्ता : (धीमे स्वर में) नहीं।

केदार : (दुखी स्वर में) क्यों?

कान्ता : उनकी शादी हो चुकी है बाबू जी। बच्चे भी हैं।

केदार : फिर...फिर...(वाक्य अपूर्ण छोड़ कर ही चारपाई पर धम्म से बैठ जाता है)

शेखर : और चढ़ा लीजिये अपनी लाडिली को सिर पर। (कान्ता से) तूने हमारी इज्ज़त का कुछ तो ख़्याल किया होता। क्या सोचते होंगे मोहल्ले वाले!

केदार : ठीक ही सोचते होंगे, बेटा। हम बेटी की कमाई तो खाते ही हैं। (कान्ता आँचल में मुँह छिपा कर सिसकने लगती है।)

शेखर : इन आँसुओं से कुछ नहीं होगा। कल से नौकरी पर जाने की कोई जरूरत नहीं। घर से बाहर अगर पैर रक्खा तो बहुत बुरा होगा।

केदार : (उठ कर) हाँ, बेटी। अगर घर में कैद नहीं रह सकती तो चली जा और कहीं। डूब मर नदी में जाकर या...

कान्ता : बाबू जी!

केदार : हमारी इज्ज़त तेरी जान से भी ज़्यादा कीमती है। (व्यंग्य से) क्यों बेटा, शेखर? इज्ज़त के लिए क्या हम कान्ता की क़ुर्बानी नहीं कर सकते?

शेखर : तो आप चाहते हैं कि हम आँखें रहते हुए भी अन्धे बने रहें; कान होते हुए भी कुछ न सुनें। करने दें इसे मनमानी। नौकरी की आड़ में इसकी रँगरेलियाँ......

योद्धा और पत्नी-प्रसंग

नेपोलियन को अपनी पत्नी जोज़ेफीन से अत्यधिक प्रेम था। अपनी शादी के ४८ घंटे बाद ही उसे युद्ध-भूमि के लिए कूच करना पड़ा। परन्तु तोपों की गड़गड़ाहट में भी नेपोलियन जोज़ेफीन को नहीं भूला। वह किसी न किसी तरह समय निकाल कर रोज़ एक पत्र अपनी पत्नी को लिखता था। नेपोलियन के ये प्रेम-पत्र इतने सुन्दर थे कि

केदार : शेखर! कान्ता तेरी बहन है।

शीला : (सहसा प्रवेश करके) ऐसी बहन को कोई क्या करे? हमें नहीं रहना है इस घर में। (पति से) चुप क्यों हो जी? मुन्ना-मुन्नी पर क्या असर पड़ेगा ऐसी बातों का? क्या तुम चाहते हो कि हमारी सन्तान भी....

केदार : (बीच में ही डाँट कर) बहू!

शीला : बहू को बहुत डाँट चुके आप। अब जरा बेटियों को सँभालो। हे राम! एक पागल और दूसरी कुलच्छिनी! (पति से) जब तक दूसरा घर न मिले, मुझे मैके भेज दो। पाप के इस

नरक में मैं एक पल भी नहीं रह सकती ।

केदार : नरक ! (निःश्वास छोड़ कर) हाँ, यह घर नरक है—जीता-जागता नरक ! कभी यही स्वर्ग था लेकिन अब खँडहर हो गया है । भाग जाओ, स्वर्ग के इन खँडहरों से दूर भाग जाओ, नहीं तो तुम्हारा धर्म, तुम्हारा ईमान, तुम्हारा व्यक्तित्व भी टूक-टूक हो जायेगा । (कान्ता से) तू भी भाग जा, बेटी ! क्यों अपने को ज़िन्दा दफ़ना रही है इन खँडहरों में ? यहाँ सिर्फ दो लोग रह सकते हैं—शान्ता और मैं, क्योंकि हम दोनों भूत हैं (अजीब हँसी हँस कर) ज़िन्दा भूत !

शेखर : मैं जानता हूँ, आपको हमारी बातें बुरी लगती हैं, बाबू जी । लेकिन आप ही सोचिये । कान्ता की यह निर्लज्जता...

शीला : (बीच में ही) जवानी अन्धी होती है ।

कान्ता : (चीख कर) नहीं...नहीं । मैं अंधी नहीं हूँ...मैं अंधी नहीं हूँ ।

शीला : फिर एक शादी-शुदा आदमी के साथ...

कान्ता : (बीच में ही) क्योंकि...क्योंकि... (कान्ता बाहों में मुँह छिपा कर सिसकने लगती है । केदार विचलित होकर चारपाई पर बैठ जाता है ।)

शीला : हाँ, हाँ....। बोलो । रुक क्यों गयीं ?

कान्ता : क्योंकि मैं नहीं चाहती थी कि नौकरी से निकाल दी जाऊँ ।

शेखर : क्या कहा ? नौकरी और......

कान्ता : (बीच में ही) वह आदमी स्कूल का मैनेजर है । कई बार मुझे निकालने की धमकी दे चुका था ।

शेखर : और नौकरी क़ायम रखने के लिए तूने अपनी इज्जत....

कान्ता : हाँ ।

केदार : (उठ कर भीगे स्वर में) बेटी !

शीला : मैं होती तो जान दे देती मगर......

कान्ता : (बीच में ही तेज़ी से) जान मैं भी दे सकती हूँ, भाभी ! लेकिन.... लेकिन मैं नौकरी खोना नहीं चाहती थी ।

शेखर : इतना मोह क्यों था नौकरी से ?

कान्ता : ताकि जीजी के लिए नयी धोतियाँ खरीद सकूँ ; उनके इलाज के लिए रुपये जमा कर सकूँ और...और बाबू जी को रोज़......

केदार : (बीच में याचना के स्वर में) बेटी... बस....बस....।

कान्ता : भैया को सुन लेने दीजिए । (शेखर की ओर मुड़ कर) ताकि बाबू जी को शराब के लिए रोज़ दो रुपये दे सकूँ । (शीला और शेखर केदार की ओर देखते हैं । वह लज्जित होकर सिर झुकाये खड़ा रहता है—अपराधी की भाँति ।)

शेखर : बाबू जी, आप तो कहते थे......

किसी को विश्वास नहीं होता था कि एक योद्धा ऐसे अच्छे प्रेम-पत्र भी लिख सकता है । १९३३ में नेपोलियन के आठ पत्रों की लन्दन में नीलामी हुई और ये एक लाख रुपये में बिके ।

—प्रेषक : मनोहर जुनेजा

केदार : मैं झूठ कहता था, बेटा। शराब मेरी ज़िन्दगी है। लाख चाहने पर भी नहीं छोड़ सका।

कान्ता : आप न तो जीजी का इलाज कराते थे और न बाबू जी को रुपये देते थे। सालों से जीजी गुलाबी साड़ी की रट लगाये हैं। आपने दी लाकर? कभी आपने यह भी सोचा कि अगर ठीक से इलाज कराया जाये तो शायद जीजी ठीक हो जायें? बोलिये, जवाब दीजिये। **(शेखर सिर झुका लेता है)** चार-पाँच साल पहले आपने बाबू जी को रुपये देने बन्द कर दिये और उनकी हालत दिन पर दिन खराब होती गयी।

केदार : **(भीगे स्वर में)** बेटी......

कान्ता : और तभी मैंने नौकरी की। जीजी के इलाज के लिए पैसा जोड़ा, बाबू जी को ज़िन्दा रक्खा। और...और आज जीजी के लिए गुलाबी साड़ी लायी हूँ। **(चारपाई से पैकेट उठा कर खोलती हुई)** रेशमी साड़ी! **(साड़ी दिखाती है।)**

शीला : **(आगे बढ़ कर)** इतनी कीमती साड़ी दोगी उन्हें? दो दिन में तार-तार कर देंगी। मेरे पास एक गुलाबी धोती है। मैं उसे बीबी जी को दे दूँगी। **(हाथ आगे फैला कर)** यह साड़ी मुझे दे दो।

कान्ता : **(विचित्र हँसी हँस कर)** छूना मत इसे। इसमें नरक की आग छिपी है। तुम्हारे हाथ जल जायेंगे। **(दूर से बैंड की आवाज़ आती है।)** जीजी! बाहर आओ न। **(कोठरी की ओर बढ़ती हुई)** तुम्हारे लिए गुलाबी साड़ी लायी हूँ।

(शीला मुँह बना कर रसोई घर में जाती है। शेखर बेचैनी से टहलने लगता है। केदार दीन मुद्रा में चारपाई पर बैठ जाता है। बैंड की आवाज़ और पास आती है।)

कान्ता : **(कोठरी का द्वार खोलती हुई)** यह साड़ी देखो, जीजी। **(सहसा चीख कर)** जीजी!

शेखर : **(घबरा कर)** क्या हुआ?

कान्ता : जीजी ने...फाँसी...लगा ली। हाय... जीजी...!

(शेखर कोठरी की ओर बढ़ता है। केदार फटे नेत्रों से कोठरी की ओर देखता है। शीला रसोई घर से निकल कर डरती हुई शान्ता की कोठरी की ओर जाती है। बच्चे बाहर से दौड़े हुए आते हैं और ताली बजा कर "बुआ की बारात आ रही है" कहते हैं। बैंड का स्वर समीपतर आता है और उस स्वर में कान्ता की सिसकियाँ डूब जाती हैं। उसके हाथ से साड़ी छूट कर फर्श पर गिर जाती है और तभी धीरे-धीरे यवनिका गिरती है।)

■ ■ ■

जिस परिवार में स्त्रियों का सम्मान नहीं होता, वह पतन और विनाश के गर्त में लीन हो जाता है।

—महाभारत (संकलन : उर्मिला मलहोत्रा)



डॉ० रवीन्द्र भ्रमर

आँचल में है दूध, और आँखों में पानी

एक अभिशप्त परिवार की अनामा नारी के ध्वस्त सपनों की दीर्घ और दारुण परछाईं !

कोई पगली है। फटी-पुरानी कथरी लपेटे, अधनंगी और अर्धविक्षिप्त-सी खँडहरों में घूम रही है। पास-पड़ोस की दुनिया से सख़्त नफ़रत है उसे। न तो किसी का मुँह देखना चाहती है और न किसी को अपना तन-बदन दिखाना चाहती है। कभी कहीं धूप-छाँह में बैठ कर फटा हुआ आँचल सीने का उपक्रम करती है। कभी किसी ताल-पोखर में घंटों नंगी खड़ी रहती है--सारे दिन नारायण को अर्घ्य दिया करती है। कभी रोती है, ऐसे कि पेड़-पौधे तक थरथरा उठें। कभी हँसती है, ऐसे कि चारों ओर से लौटती हुई प्रतिध्वनियों का मेला जुड़ जाय। और कभी-कभी गाती है—**सुनिला कि सैयाँ मोरा जोगिया होइगैं, हमहूँ जोगिनि होइ जाऽऽब !** उसे ठीक-ठीक स्मरण नहीं है कि उसका पति कहाँ चला गया। उसे यह भी नहीं मालूम कि उसकी दुनिया को उजड़े कितने युग बीत गये। वह हतभागिनी है, अकेली है, अबला है। जैसे बँसवारी

की कोयल उसी तरह उसके प्राण कुहकते हैं। जैसे अँधेरी कोठरी का दिया उसी तरह उसकी देह धुआँ उगलती है। उसका कोई नहीं। इतनी बड़ी दुनिया में उसे कहीं शरण नहीं मिलती। दीनानाथ हैं, जगन्नाथ हैं, किन्तु उसका नाथ कोई नहीं।

० ० ०

जय हो महाशक्ति स्वरूपा भगवती की, जो पुरुष को पूर्णता प्रदान करने के लिए मनोरम प्रकृति है। मानवता की सुख-समृद्धि के लिए मानवी है। मानवी के रहते मानव सृष्टि का विकास होता रहेगा। वह ममत्व की साकार प्रतिमा है--दया, क्षमा, शील और समस्त सद्‌गुणों की चित्ता-कर्षक प्रतिमूर्ति। पुरुष स्वार्थी होता है। नारी में देवत्व के लक्षण पाये जाते हैं। पुरुष जितना देता है, उससे अधिक पाने की कांक्षा करता है। पत्नी के प्रति, पुत्र के प्रति, या समस्त परिवार के प्रति उसकी जो स्नेह-भावना होती है उसके मूल में प्रायः कोई न कोई स्वार्थ अन्तर्निहित होता है। इसके विपरीत नारी निस्संग भाव से समर्पित होना जानती है। खास तौर से उसका माता-रूप स्वार्थ के संकुचित दायरे से एक-दम ऊपर होता है। वह अपनी सन्तान को, चाहे वह कैसी भी हो, प्रत्येक दशा में प्यार देती है। घी का लड्डू टेढ़ा भला। लड़का कुरूप हो, अपाहिज हो, शराबी, जुआरी, निकम्मा या नालायक हो, माँ की दृष्टि में वह स्नेह और ममता का पात्र होता है। बेटे को ज़रा-सी खरोंच आई, तनिक उसका माथा दुखा, उस पर किसी तरह की आपत-बिपत पड़ी कि माँ की छाती फटने लगती है। पिता मुँह फेर लेता है और कहता है कि नालायक औलाद से नाऔलाद भले। लेकिन माँ अपने रक्त-माँस से निर्मित, अपने पय से लालित-पालित बेटे के लिए सदैव आशीर्वादों की वर्षा करती रहती है।

० ० ०

छोटे-छोटे बच्चे चारों ओर से घेरा बना कर तालियाँ बजा रहे हैं। पगली बीच में है। नाच रही है और पूरी मस्ती के साथ दुहरा रही है--**हाथी घोड़ा पालकी, जय कन्हैया लाल की!** धीरे-धीरे उसकी वाणी में उत्तेजना आ रही है। बच्चे भाग चले हैं और वह चीखने लगी है--**लाल की... लाल की.....कन्हैया लाल की!** उन्माद अपनी पराकाष्ठा पर है और पगली बयान कर रही है, 'किसका मुँह झुलस गया है? किसकी ज़बान को लकवा मार गया है? अरे! कौन कहता है रे! कौन कहता है कि मैं राँड़ हूँ--बेवा हूँ। अन्धों से कहो कि देखें कि मेरी माँग सिन्दूर से डहाडह लाल है। मेरा छैल-छबीला बाँका, माथे पर मुरेठादार पगड़ी, बग़ल में कटार, घोड़े पर सवार होकर आ रहा है। कोई छत्तीसी मुझे अभागिनी न कहे। मैं बाँझ निगोड़ नहीं हूँ रे! बाँझ को गंगा भी अपनी गोद में स्थान नहीं देती। गंगा को सूख जाने का डर रहता है। धरती फट कर उसे अपनी गोद में नहीं लेती। उसे ऊसर हो जाने का भय है। बाँझ किसी सिंहिनी से कितनी भी प्रार्थना करे कि वह उसे चबा जाय लेकिन वह सिंहिनी भी उसे दुरदुरा देती है। सिंहिनी को अन्देशा रहता है कि बाँझ को निगलने से उसकी कोख

मारी जायेगी। सो मैं बाँझ निगोड़ नहीं हूँ.........मेरी बिटिया, जिसे मैं मुद्दत पहले नदी किनारे सुला आई थी, अब बड़ी हो गई होगी। मेरी लाडो किसी लवंगलता तले गुड्डी-गुड्डे का ब्याह रचा रही होगी। अरे कहाँ हो? सुनो रे बाभन, सुनो रे बारी, सुनो रे नाऊ-कहार! मेरी बेटी के लिए वर ढूँढ़ने जाओ। और सुनो, मेरी लल्ली चाँदनी है, अप्सरा है, उसके लिए कोई राजकुँवर ढूँढ़ना!"

एकदम पगली ही समझो। बरसों पहले महामारी के मुँह में चले गये अपने पति और अपनी एकमात्र कन्या के लिए इसी तरह चिल्लाती है। चिल्लाती है और बेहोश होकर गिर पड़ती है।

० ० ०

माँ बनना नारी जीवन की चरमोपलब्धि है। इसी एक उपलब्धि के लिए वह सर्वस्व निछावर करने को प्रस्तुत रहती है। लड़की परिणीता हुई, उसमें नारीत्व अंकुरित हुआ कि वह माँ बनने के स्वप्न देखने लगती है। लता पुष्पित होती है—फलवती होने के लिए। सुभर सरोवर तरंगायित होता है कि उसमें कोई कमल खिल जाय। अमराई आम्र मंजरियों से सुशोभित होती है, लेकिन उसकी वास्तविक श्री-वृद्धि तब होती है जबकि उसके अंचल से कोकिल का गीत फूटे। नारी भी अपनी गोद को किसी शिशु से, उसकी किलकारी से अलंकृत देखना चाहती है। विधाता के कुशल करों द्वारा उसकी रचना शायद इसी उद्देश्य से हुई थी कि वह सीपी की भाँति मुक्ताफलों की सृष्टि करे, मनु-सन्तति की परम्परा को आगे बढ़ाती रहे। और उसने सभ्यता के आदि युग से लेकर आज तक अपनी देही के इस चरम उद्देश्य को, अपनी आत्मा के इस पवित्र धर्म को कभी विस्मृत नहीं किया। उन्मुक्त भोग-उपभोग की जंगली अवस्था धीरे-धीरे व्यतीत हुई। शताब्दियों के अन्तराल से सभ्यता का जन्म हुआ। समाज आया। सामाजिक मर्यादाएँ स्थापित हुईं। नारी परिवार के मंच पर गृहस्वामिनी एवं गृहलक्ष्मी की महत्त्वपूर्ण भूमिका में अवतरित हुई। किन्तु, पुत्रवती होने की बलवती स्पृहा उसे सदैव आन्दोलित करती रही। यदि किन्हीं कारणों-वश वह इस महान उद्देश्य की प्राप्ति में असफल रही, तो उसका नारीत्व निरर्थक माना गया। उसे प्रताड़ित किया गया। घर से निकाल दिया गया अथवा उसकी छाती पर सौत बैठा दी गयी। माँ बनने के लिए उसे कितनी आत्म-बलि देनी पड़ती है, कितनी पीड़ा सहनी पड़ती है! किसी स्त्री के अतिरिक्त और कोई भी उस क्लेश को नहीं समझ सकता। कहते हैं कि जितनी बार वह सन्तानवती होती है उतनी बार स्वयं उसका भी नया जन्म होता है। एक ओर शिशु पैदा होता है, दूसरी ओर सन्तानवती होने के महासुख की सद्य:अनुभूति से उसमें नई प्राण-प्रतिष्ठा होती है। नवजात शिशु का रोदन सुन कर—उसके मुखमण्डल पर अपना प्रतिरूप निहार कर—वह पुनः पुनः नवयौवना हो उठती है।

० ० ०

अब पगली को कौन समझाये? आज संझा ही से बारूद हुई है! "अरे ठकुरा! मैं तेरी मूँछ उखाड़ कर दम लूँगी। तेरी पगड़ी पर वज्र गिरे। पहले तो मुझे असहाय-

अबला समझ कर फुसलाया बहकाया। मुझे आँखों की पुतली बना कर रखने की सौगन्ध खाई। और फिर पिछवारे घूर में फेंक दिया। अरे मैं भी इज़्ज़त वाली थी—कुल परिवार वाली। हत्यारे! चाहता था कि मैं वेश्या हो जाऊँ। तन-बदन का बाज़ार लगा कर बैठूँ। बाज़ार नहीं लग सका, पर बेसवा तो हुई ही। तूने मुझे कलंकित किया।"

० ० ०

'बिन घरनी घर भूत का डेरा'। जब तक गृहिणी न हो घर श्मशान होता है। परिवार का कोई भी चित्र किसी माँ-बहन या भाभी-चाची या पत्नी के बिना पूरा नहीं होता। भारतीय परिवार के दायरे में नारी के ये सभी रूप स्वीकृत और प्रतिष्ठित हैं। युगों द्वारा अर्जित अनुभवों और अनुभूतियों के उपरान्त हमारे समाज ने नारी को विभिन्न नाम-रूपों में प्रतिष्ठित करते हुए संयुक्त परिवार की व्यवस्था को सुदृढ़, स्नेहमय और पवित्र बना दिया है। कोई माँ है—गंगा-सी पावन! कोई बहन है—बेटी है, प्राणों से प्रिय, सारे परिवार की दुलारी! कोई भाभी है, सावन-भादो की तरह प्यार की वर्षा करने वाली! और कोई चाची है, माँ के स्थान की संपूर्त्ति और अन्तःपुर में कम्पित दीपशिखा जैसी कोई बहू है—प्रिया है, आज नहीं तो कल माँ तथा गृहस्वामिनी का ऊँचा आसन पाने की प्रतीक्षा में!

यदि हम अपनी परिवार व्यवस्था को अधिक सुदृढ़, अधिक सम्पन्न एवं स्नेह सम्पूर्ण देखना चाहें तो हमें इस बात की चेष्टा करनी होगी कि नारी अपने अवशिष्ट गौरव को प्राप्त करे। उसके अंचल में दुग्ध-धार फूटती रहे, राष्ट्र को श्री-सम्पन्न बनाने वाली गंगा-जैसी धवल धार, किन्तु उसकी आँखों में खारे पानी की एक बूँद भी न रहने पाये। उसका जीवन सर्वांश में सुखी हो और उसे दिये गये सुख-सम्मान के परिपार्श्व में प्रत्येक घर देवत्व की छाप से विभूषित होता रहे।

० ० ०

आज पगली शान्त है। जो कोई देखता है, किंचित् सन्तोष ही की साँस लेता है। विचारी गुज़रते हुए ज़माने के साथ दम तोड़ रही है। आँखों में आँसू नहीं हैं, सूख गये हैं और ओठों पर एक हल्की-सी मुस्कान उग आयी है। ▪▪

दो अनमोल बोल

पति के लिए चरित्र, संतान के लिए ममता, समाज के लिए शील, विश्व के लिए दया तथा जीव-मात्र के लिए करुणा संजोने वाली महाप्रकृति का नाम ही नारी है।

—रमण

स्त्रियों की अवस्था के सुधार न होने तक विश्व के कल्याण का कोई मार्ग नहीं। किसी पक्षी का एक पंख के सहारे उड़ना नितान्त असम्भव है।

—विवेकानन्द

(संकलन : उर्मिला मलहोत्रा)

भँवरमल सिंघी

परिवार नियोजन : एक परिचर्चा

परलोक में आयोजित परिसंवाद का विवरण जो हाल ही में एक अन्तरिक्ष-यात्री द्वारा प्राप्त हुआ है।

◎

संयोजक : ज्ञानचन्द्र घोष

वक्ता

- रावर्ट माल्थ्यूज
- मो० क० गाँधी
- रवीन्द्रनाथ ठाकुर
- निकोलाई लेनिन
- अब्राहम स्टोन
- मेरी स्टोप्स

परिवार-नियोजन का इतिहास-दर्शन अपनी विभिन्न छवियों और प्रतिध्वनियों के शीशमहल में !

■ ■ ज्ञानचन्द्र बोध : (संयोजकीय वक्तव्य) : इस अन्तरिक्ष-भेदन के युग में इहलोक और परलोक का भेद बहुत नहीं रह गया है। कुछ दिनों से तो इन दोनों लोकों के बीच की दीवारें कभी-कभी यन्त्रों के स्वरों से ऐसी गूंज उठती हैं कि लगता है मानो विज्ञान दोनों लोकों के बीच बहुत शीघ्र ही प्रत्यक्ष सम्बन्ध-सूत्र जोड़ने जा रहा है। मालूम होता है, परलोक में भी शीघ्र ही क्रान्ति होने वाली है। मैं विज्ञान का विद्यार्थी और अध्यापक रहा हूँ और मानता रहा हूँ कि अनुसंधान की मात्रा निस्सीम है। यह लोक-खण्ड उस यात्रा के ही खण्ड हैं। और, आज जब कि मानव-लोक खण्डातीत समष्टि की ओर विकास कर रहा है एवं विज्ञान की ये अन्तरिक्ष-यात्राएँ जीवन के नये क्षितिजों का उद्घाटन कर रही हैं, हमें हर समस्या पर लोकातीत चैतन्य के आधार पर सोचना चाहिये। यह अन्तरिक्ष-आन्दोलन, जिसकी गूँज आपने भी अवश्य सुनी होगी, हमें उन समस्याओं के विषय में भी चिन्तन-मनन करने के लिए बाध्य कर रहा है जिनको साधारण तौर से हम आज तक मर्त्यलोक की समस्याएँ कह कर छोड़े रहे हैं।

धृष्टता के लिए क्षमा करें तो मैं अपने बारे में दो शब्द कह दूं ताकि मेरी बात की पृष्ठभूमि आप समझ सकें। मैं भारत से आया हूँ। आते दम तक वहाँ की नवनिर्माण की योजनाओं में मैं दत्तचित था। मुझे यह अनुभव होने लगा था कि हमारी सारी योजनायें सफल होकर भी हम असफल थे; क्योंकि हम निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के बावजूद औसत भारतवासी को सुखी नहीं बना सके। हमारी बढ़ती हुई जनसंख्या ने यह विषम स्थिति पैदा की। मैंने यह बात योजना-आयोग में अपने साथियों को जोर देकर समझायी और परिवार-नियोजन की ओर संकेत किया तथा जिस विज्ञान ने मृत्यु पर विजय प्राप्त करने में सहायता की, उसी के द्वारा बताये हुए उपाय-उपकरणों की मदद से जन्म पर नियन्त्रण करने के लिए बलपूर्वक कहा परन्तु हृदय में पीड़ा का पारावार लिये मैं यह देखते-देखते यहाँ चला आया कि भारत में परम्परा का दासत्व किसी भी नई बात पर खुले दिमाग से विचार करने में बाधा

संतति-निग्रह के प्रचार का मूल्य : अमरीका में

सन् १९१४ में मार्गरेट सेंगर ने 'संतति निग्रह' शब्द का आविष्कार किया और इसका प्रचार करने के लिए वे एक शहर से दूसरे शहर की यात्रा करने लगीं। जहाँ-जहाँ वे पहुँचीं, भारी तादाद में स्त्रियाँ उनको सुनने के लिए उमड़ पड़ीं। लेकिन अधिकारियों ने उनके इस कार्य को बहुत ही घृणित समझा और कई बार उनको जेल भेज दिया। लेकिन जब यह मामला हाईकोर्ट में गया, तो फैसला मार्गरेट सेंगर के पक्ष में ही हुआ।

—ज्योति प्रकाश सक्सेना

उत्पन्न करता है। बुद्धि से स्वीकार्य होने पर भी उस नई बात को व्यवहार में लाने में धर्म व नीति की समस्त रूढ़ मान्यतायें हमारे मार्ग को अवरुद्ध कर देती हैं। सबसे कठिन बात तो यह है कि हमारे हर एक नये विचार की प्रगति पर परलोक का ताला लगा हुआ है। बहुत-सी आवश्यक और उपयुक्त बातें भी इस भय से नहीं की जातीं कि उनके कारण परलोक बिगड़ जायगा। अतएव मैं जब से परलोक में आया हूँ और यहाँ के ढँग-ढाँचे को समझ रहा हूँ, यही सोच रहा हूँ कि हम परलोकी लोग ही क्यों न यह ताला खोल कर प्रगति के मार्ग को मुक्त कर दें। कई दिनों के बाद आज मैं समस्त लोक की इस विस्फोटक समस्या के बारे में परलोक की भूमि पर इस परिसम्वाद की आयोजना में सफल हुआ हूँ। इसका मुझे अतीव आनन्द है। जिस समस्या को मैं देख-समझ कर आया हूँ, उसका विश्लेषण करने में यदि यहाँ से कोई मदद हो सके तो हमारे दोनों लोकों के बीच मैत्री का एक नया अध्याय जुड़ेगा। आज विश्व-शान्ति के लिए जिस प्रकार यह आवश्यक है कि विभिन्न देशों के बीच एक दूसरे के प्रति समझ और सहिष्णुता एवं सहायता का वातावरण बढ़े, उसी प्रकार यह भी परम आवश्यक है कि समस्त ब्रह्माण्ड के विभिन्न लोक-खण्डों के बीच सहानुभूति और समझदारी का वातावरण बढ़े। आप सब लोगों ने आकर इस परिचर्चा में भाग लेने का जो कष्ट किया है, उससे मेरी आशा और भी बढ़ गई है, और मुझे विश्वास है कि हमारे विचार-विनिमय से जो सार तत्व निकलेगा, वह परलोक को इस कलंक से मुक्त करेगा कि हम पृथ्वी-खण्ड के प्रगति-पथिकों के सहयात्री नहीं, बल्कि परलोक के प्रभुत्व की शृंखलाओं से उन्हें बाँधने वाले हैं।

हमारे लिये सबसे बड़ी खुशी और आशा की बात तो यह है कि पादरी मालथ्यूज, जो सवा सौ वर्षों से यहाँ निवास कर रहे हैं, ने इस परिसंवाद का उद्घाटन करना स्वीकार किया है। किसको मालूम नहीं कि उन्होंने इहलोक में—सन् १७९८ में जनसंख्या के बारे में—जो निबन्ध प्रकाशित किया था, उसने विगत १६२ वर्षों के सामाजिक-आर्थिक समस्याओं सम्बन्धी चिन्तन और अध्ययन पर गहरा असर डाला है। उस दिन इहलोक में बर्ट्रेण्ड रसेल

संतति-निग्रह के प्रचार का मूल्य : भारत में

भारत का सबसे पहला 'फेमिली प्लानिंग क्लिनिक' सन् १९२५ में बम्बई में प्रो० आर. डी. कर्वे द्वारा खोला गया। उन दिनों वे विल्सन कालेज में गणित के प्रोफेसर थे। लेकिन अपने इस कार्य के लिए उन्हें कालेज के अधिकारियों का जो कड़ा विरोध सहन करना पड़ा, उसकी वजह से उन्हें अपने पद से त्यागपत्र देना ही ठीक लगा। और आखिर हुआ भी यही।

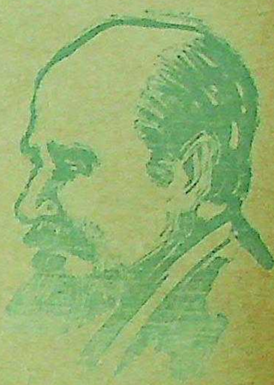
—ज्योति प्रकाश सक्सेना

ने मालथ्यूज के प्रभाव का उल्लेख करते हुए कहा था कि यदि किसी आदमी की महत्ता इस बात से नापी-तोली जाय कि उसने मानव जीवन पर कितना असर डाला है, तो बहुत थोड़े लोग ही निकलेंगे जो मालथ्यूज से बड़े हों। मैं समझता हूँ, उनसे आज हमें इस समस्या पर सैकड़ों वर्षों के विचार और अनुभव के निष्कर्ष के रूप में उपयोगी मार्ग-दर्शन मिलेगा।


मो० क० गाँधी

■ ■ रॉबर्ट मालथ्यूज (**उद्घाटन भाषण**) : दोस्तो, मैंने सैकड़ों वर्षों पहले जिस समस्या की ओर इंगित किया था, वह आज विश्व के सामने अत्यन्त विस्फोटक रूप में खड़ी है और हर जगह उसकी चर्चा सुनायी पड़ती है। मुझे इससे बड़ी खुशी है। यदि लोगों ने मेरी चेतावनी पर पहले ही ध्यान दिया होता तो सम्भव है यह संकट इतने भयावह रूप में न प्रकट हुआ होता। जब मैंने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया था कि जनसंख्या की वृद्धि ज्यामितीय गुणन से बढ़ती है, जब कि खाद्यान्न की वृद्धि अंकगणितीय गुणन से ही बढ़ती है और कि इस हिसाब से यदि जनसंख्या की वृद्धि को रोकने की कोशिश नहीं की गयी तो संसार के सामने बहुत भयानक संकट पैदा होगा, तो लोगों ने मेरे सिद्धान्त का मजाक उड़ाया था। जब कार्लाइल ने मुझे 'निराशापूर्ण विज्ञान का सम्मानित प्राध्यापक' बताया था तो मुझे कितना दुःख हुआ था, पर आज कार्लाइल मुझसे बात करे? यह सही बात है कि जिस समय मैंने अपना निबन्ध प्रकाशित किया था; उसके बाद ही औद्योगिक क्रान्ति ने ऐसी परिस्थितियाँ पैदा कीं कि मेरे सिद्धान्त की प्रक्रिया प्रकट होती नहीं दिखायी दी और मैं स्वयं सोच में पड़ गया था कि क्या सचमुच मेरा अध्ययन गलत था और जिन स्थितियों के अध्ययन पर मैंने यह सिद्धान्त स्थिर किया था, वह गलत थीं। परिस्थितियों ने सचमुच ऐसा रुख लिया कि बुनियादी सत्य, जो उस समय भी उतना ही महत्त्वपूर्ण था जितना आज है, छिप-सा गया परन्तु आज यहाँ बैठा हुआ भी मैं अपने को इहलोक में देख रहा हूँ। मैं आज एक जीवित सिद्धान्त, एक प्रकट सत्य हूँ। जो मैंने कहा था वह आज सौ-सौ रूपों में सत्य है कि खाद्यान्न की वृद्धि की गति जनसंख्या की गति के मुकाबले बहुत धीमी है। जितनी जमीन और दूसरे साधन हैं, उन सब का पूरा-पूरा उपयोग होने पर भी उत्पादन कभी भी उतना नहीं हो सकेगा जितना जन-

संख्या में बढ़ावा होगा। डॉ० एक्रायड आँख खोल कर देखें कि मेरा सिद्धान्त (जिसको उन्होंने 'भूत' कहा था) खत्म नहीं हुआ है, बल्कि अधिक सच साबित हुआ है। यहाँ आने के बाद मुझे पृथ्वी की पैदावार और जनसंख्या के सम्बन्ध में जो समाचार मिलते रहे हैं उनसे यह और मालूम हुआ है कि विज्ञान के जो नये साधन उपलब्ध हुए और हो रहे हैं, उनसे प्रकृति के लिए मृत्यु का अभियान चलाना भी कठिन हो उठा है। प्रकृति की मनुष्य को मारने की शक्तियाँ भी सीमित हो रही हैं। ऐसी हालत में यदि मनुष्य अपनी संख्या अपनी सीमा से अधिक बढ़ा लेगा तो युद्धों के रूप में सामूहिक मृत्यु की स्थितियाँ पैदा हुए बिना न रहेंगी। स्थिति जो मैंने पृथ्वी पर देखी थी समझी थी उससे भी आज कहीं अधिक सांघातिक है। मृत्यु पर विजय के साधनों की यह कहानी उस समय मेरे चिन्तन में इतनी स्पष्ट नहीं थी। इसी कारण से इस समस्या पर आज के अर्थशास्त्री, इतिहासज्ञ और विज्ञानवेत्ता कहीं अधिक जोर के साथ बोल रहे हैं। आज संभावित अधिकतम खाद्योत्पादन और खानेवालों के परिमाण में सन्तुलन होना चाहिये और इसका एक ही उपाय है कि हम प्रजनन पर नियन्त्रण करें। मुझे मालूम है कि धर्म ने परलोक के नाम पर इस कार्यक्रम में पाप और अनैतिकता का भूत खड़ा कर बहुत बड़ी समस्या पैदा की है। ऐसे लोग आज भी मिल जायेंगे और मैं डाक्टर घोष की बात से पूरी तरह सहमत हूँ कि यदि यह परिसम्वाद परलोक के ताले को खोल कर इहलोक के सामाजिक जीवन को श्रृंखलाओं से मुक्त करे तो बहुत बड़ा काम हो सकता है। जो लोग परिवार-नियोजन के साधनों के प्रयोग में पाप और नैतिकता देख कर या मान कर उनका विरोध करते हैं, वे यह क्यों नहीं देखते कि विश्व में फैला हुआ यह तनाव, यह युद्ध की विभीषिका ही क्या वास्तव में अनैतिकता नहीं है?


निकोलाई लेनिन

■■ मोहनदास कर्मचन्द गाँधी : मालथ्यूज भाई ने अपने भाषण के अन्तिम अंश में जनसंख्या के नियन्त्रण के साधनों को लेकर पाप और अनीति के बारे में जो चर्चा की है, उसकी ही बात मैं सबसे पहले करना चाहूँगा, क्योंकि यह तो मैं भी वर्षों पहले कह चुका हूँ कि जनसंख्या की अनियन्त्रित वृद्धि हमारी अनेक समस्याओं का कारण है और उसकी रोक-थाम होनी ही चाहिये। जब मार्गरेट सेंगर मुझसे मिली थी, तब उनको भी मैंने अपना यह दृष्टिकोण समझाया था। जहाँ तक साधनों का सवाल है, अप्राकृतिक

(आप जिनको नैसर्गिक कहते हैं) उपायों द्वारा भोग और असंयम को खुली छूट दिये रख कर क्या मानव-जाति पतन की ओर नहीं जा रही है? इससे बचने के लिए हम संयम की परम्परा पर क्यों नहीं जोर दें? इसमें बुरा भी क्या है? हिन्दुस्तान की मैंने वर्षों तक सेवा की और वह आज भी मुझे राष्ट्रपिता मानता है, पर आज उसे मति-भ्रम हो रहा है। कौन उसे समझाये? जवाहर लाल के गले में अपनी सामाजिक-आर्थिक विचार-धारा उतार ही नहीं सका। उसकी विचारधारा विदेशी है। मैं तो यह भी मानता हूँ कि जनसंख्या की समस्या इसलिये और ज्यादा भयंकर हुई लगती है कि हमारे सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में केन्द्रीकरण बढ़ रहा है और दिन प्रतिदिन उत्पादन के ऐसे साधनों की अभिवृद्धि हो रही है जिनसे काम करने वालों की आवश्यकता घटती जा रही है। यह आर्थिक ढाँचे का ही दोष है; नहीं तो हर एक जन्म के साथ जहाँ एक नया मुँह खाना माँगने लगता है, वहाँ उसके साथ दो हाथ काम करने के लिए भी तो आते हैं। पर, उत्पादन का ढाँचा इस प्रकार का बना दिया गया है कि उसमें इतने हाथों की आवश्यकता नहीं है इसलिये मैंने बराबर कहा है कि हिन्दुस्तान को विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था की आवश्यकता है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति अपनी आवश्यकता की चीजें पैदा करेगा, पर मैं कहता-कहता हार गया। हुआ और हो रहा है ठीक उसका उलटा।

> ### एक दिन में एक शहर!
>
> **मई १९६१ में दिये गये एक भाषण में विश्व-विश्रुत जनसंख्या-शास्त्री सर जूलियन हक्सले ने यह बतलाया कि विश्व की जनसंख्या ४०,००० प्रति दिन के हिसाब से बढ़ रही है, जिसका अर्थ हुआ एक दिन में एक अच्छा-खासा शहर!**
>
> —ज्योति प्रकाश सक्सेना

आज हिन्दुस्तान में चारों तरफ परिवार-नियोजन की ही चर्चा हर आदमी की जबान पर है। किसी ने कोई समस्या उठाई और कह दिया जाता है कि जनसंख्या की वृद्धि के कारण हम कुछ भी नहीं कर पाते। यह स्थिति और भी विकराल होने वाली है यदि आर्थिक तन्त्र और औद्योगिक उत्पादन प्रणाली के सम्बन्ध में हमारी विचारधारा में परिवर्तन न हुआ। इसलिए मुझे लगता है कि जिस असन्तुलन की आप इतनी बात कर रहे हैं, वह असन्तुलन प्रजनन सम्बन्धी मूर्खता से नहीं बल्कि अर्थतन्त्र की गलत विचारधारा को ग्रहण करने के कारण है। मैं इस बात को कहने में परलोक की प्रभुता का सहारा नहीं ले रहा हूँ क्योंकि मैं जानता हूँ कि परलोक की जड़ें अब स्वयं हिल रही हैं पर मैं ब्रह्मचर्य और संयम पर जोर देना चाहता हूँ जिससे जनसंख्या वृद्धि की समस्या भी मिटेगी और

असंयमजनित हानि से भी हम बच जायेंगे।

▪▪ रवीन्द्रनाथ ठाकुर : मैं तो कवि हूँ। इसलिये मेरा इस समस्या से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है पर कवि मानव-मन की गहराइयों को छूने और समझने में बहुत कुशल होता है। मैं आज मानव हृदय की वेदना को जिस रूप में देख रहा हूँ उससे स्पष्ट लगता है कि अभाव की परिस्थितियाँ उसके जीवन में कुंठा और घुटन पैदा कर रही हैं और यह कुंठा का स्वर काव्य में निराशा और हीन वृति की भावना ला रहा है। और, अभाव के कारणों को समझने की जब मैं कोशिश करता हूँ तो अधिक सन्तान की समस्या स्पष्ट दीखती है। इस दृष्टि से मैं गाँधीजी की बात से बिल्कुल सहमत नहीं हूँ। मेरी राय में जन्म-नियन्त्रण का आन्दोलन एक महान् आन्दोलन है सिर्फ इसलिये नहीं कि उसके द्वारा स्त्रियाँ बाधित और अवांछित मातृत्व से मुक्ति पायेंगी बल्कि इसलिये भी कि यह किसी भी देश की अधिक जनसंख्या—जो अपनी अधिकार-सम्मत सीमाओं से बाहर भी भोजन और भूमि के लिए हाथ फैलाने को बाध्य होती है—को घटा कर शान्ति के कार्य में मदद पहुँचायेगा। मानव जाति को अनियन्त्रित सन्तानोत्पादन के निर्दयतापूर्ण अपराध से बचना चाहिये। यह वृद्धि यदि केवल संयम के उपदेशों से रुक सकती तो शायद आज हमारे सामने यह समस्या आई ही न होती क्योंकि यह साधन पहले थे ही कहाँ? संयम का मार्ग तो मनुष्य के लिए खुला हुआ था ही। मेरा ख्याल है कि हमें इस परिचर्चा में यह निश्चित करना चाहिये कि ब्रह्माण्ड को अशान्ति और युद्ध के वातावरण से बचाने के लिए परिवार-नियोजन के कार्यक्रम को बिना किसी शंका और सन्देह के अपनाया जाय।

केवल खड़े रहने की जगह!

प्राप्त आँकड़ों के अनुसार विश्व की जनसंख्या आज ४८० लाख प्रति वर्ष की दर पर बढ़ रही है। और यदि इस दर में कमी न हुई तो लगभग आठ सौ वर्ष के भीतर ही हमारे लिए केवल खड़े रहने की जगह रह जायेगी।

—ज्योति प्रकाश सक्सेना

▪▪ निकोलाई लेनिन : इस परिसंवाद में भाग लेने के लिए आपने मुझे निमन्त्रित किया, इसके लिए मैं आभारी हूँ। संयोजक ने जो वक्तव्य दिया, उसमें जनसंख्या वृद्धि की समस्या के बारे में जिस रूप में विश्लेषण किया गया है, उसको मैं ठीक उसी रूप में नहीं देखता। किन्तु गाँधीजी ने संयम-असंयम के प्रश्न को उठा कर पाप और अनीति का जो भूत खड़ा किया है, उससे भी

मैं समझता नहीं हूँ । क्रान्ति के बाद मैंने रूस में सामाजिक-आर्थिक नव-निर्माण की जो नीति अपनायी और जिन कार्यक्रमों का मैंने सूत्रपात किया, उनमें परिवार-नियोजन का उल्लेख नहीं था । वास्तव में, उस समय यह समस्या भी हमारे सामने नहीं थी । रूस के सामने उत्पादन बढ़ाने की दृष्टि से सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के उन दोषों को दूर करने का प्रश्न था, जिनके कारण उत्पादन सम्बन्धी कार्यक्रम रुके हुए थे । हाँ, आज तो रोज ही सुनायी पड़ रहा है कि संसार में जनसंख्या वृद्धि का संकट बढ़ रहा है और उसके लिए विश्व के विभिन्न देशों में परिवार-नियोजन आन्दोलन संगठित रूप से बढ़ रहा है । भारतवर्ष में तो सरकारी नीति के हिसाब से भी इस पर बहुत बल दिया जा रहा है । आपके मन में प्रश्न उठ सकता है कि रूस और चीन में, जहाँ हमारी साम्यवादी विचार-धारा के अनुसार राज्य और समाज की व्यवस्था की जाती है, इस विषय में क्यों कुछ भी नहीं किया जाता । रूस की बात कोई न भी करे पर चीन की जनसंख्या तो आज संसार में सबसे अधिक है। वहाँ यह प्रश्न फिर भी क्यों नहीं उठाया जाता ? थोड़े दिनों पहले चीन में भी भारतवर्ष की तरह ही परिवार-नियोजन सम्बन्धी कार्यक्रम लिया गया था बल्कि वहाँ से कुछ लोग भारत में इस आन्दोलन के सम्बन्ध में हो रही योजनाओं को समझने के लिए आये थे । बाद में यह आन्दोलन वहाँ एक प्रकार से बन्द ही कर दिया गया। मेरे निकट यह प्रश्न किसी राजनीतिक और सामाजिक सिद्धान्त का उतना नहीं है जितना परिस्थिति-जनित आवश्यकता का । हम समाज के विकास में सबसे बड़ी बाधा आर्थिक विषमता को मानते हैं और उस विषमता को दूर करने की ओर हमारा ध्यान सबसे अधिक जाता है । जब तक हमें यह विश्वास न हो जाय कि जमीन की उपज और कारखानों का उत्पादन बढ़ाने के लिए जितना प्रयत्न संभव है,

आदिम जातियों में जनसंख्या-नियंत्रण (वृद्धों का उन्मूलन)

तस्मानिया के निवासियों, एस्किमो की कुछ जातियों, अमरीकी रेड इण्डियनों एवं अफ्रीका-वासियों द्वारा कुटुम्ब के भार को कम करने के लिए अपनाये जाने वाले तरीकों में वृद्धों का उन्मूलन भी एक था, जिसके अन्तर्गत परिवार के बूढ़ों को या तो डंडे से मार डाला जाता था, या फिर उनको गले में रस्सी बाँध कर टाँग दिया जाता था । कहीं-कहीं उनको पानी में डुबोने एवं घोर, बियाबान जंगलों में छोड़ दिये जाने की प्रथा भी थी, जहाँ वे कुछ समय पश्चात् या तो भोजन और पानी के अभाव में मर जाते थे या फिर जंगली जानवरों द्वारा खा लिये जाते थे । इस प्रकार परिवार के सदस्यों की संख्या कम हो जाती थी ।

—ज्योति प्रकाश सक्सेना

वह पूरा कर लिया गया है और यह भी कि उपलब्ध उत्पादन का वितरण ठीक-ठीक हो गया है, तब तक हम परिवार-नियोजन को समस्या के समाधान के रूप में नहीं मानते। आज की रूस और चीन की नीति के संचालन में मेरा कोई बहुत हस्तक्षेप नहीं है। और, मैं यह भी मानता हूँ कि एक ही सिद्धान्त हमेशा के लिए लागू नहीं होता। ऐसा करना जड़ता का पोषण करना होगा। परन्तु यह सम्भावना तो है ही कि जो देश सामाजिक-आर्थिक ढाँचे में और खास तौर से वितरण की व्यवस्था में परिवर्तन नहीं कर रहे हैं, वे परिवार-नियोजन की बात करके जनसंख्या की स्वाभाविक वृद्धि को रोक कर जो व्यवस्था कायम है और चली आ रही है, उसको ही सुरक्षित बनाये रखना चाहते हैं। इस अर्थ में हम परिवार-नियोजन को क्रान्ति-विरोधी आन्दोलन कहेंगे। मैं चाहूँगा कि आप इस दृष्टिकोण को भी समझें और उस पर विचार करें।

■■ अब्राहम स्टोन : मुझे जब इस परिसंवाद की सूचना मिली तो सचमुच बड़ी खुशी हुई। मैं अनेक परिसंवादों में सम्मिलित हो चुका हूँ किन्तु जिस पर-लोक के नाम पर परिवार-नियोजन का विरोध अक्सर मैं सुनता आया हूँ, वहीं इस परिसंवाद का होना एक बहुत बड़ी बात है। आप लोगों ने अभी जो चर्चा यहाँ की, वह काफी दिल-चस्प थी। जिन लोगों ने अपने विचार रखे हैं, वे सभी मानव - कल्याण के पोषक रहे हैं और उनमें से हरेक के साथ जनसेवा का लम्बा इतिहास है। अतएव आपके द्वारा किये गये समर्थन या विरोध में कोई निहित स्वार्थ की ग्रन्थि नहीं बतायी जा सकती। मैं भी परिवार-नियोजन के कार्य में काफी दिलचस्पी लेता रहा हूँ। मैं हूँ तो अमेरिका का पर परिवार-नियोजन के कार्यक्रम की दृष्टि से सारा विश्व मेरा क्षेत्र रहा है। डॉ० घोष ने भारत की बात से

आदिम जातियों में जनसंख्या-नियंत्रण
(बाल-हत्या)

जिन आदिम परिवारों में आर्थिक दृष्टि से अधिक बच्चों के पालन-पोषण की शक्ति नहीं होती थी, उनमें बाल-हत्या का पर्याप्त प्रचार था। कमजोर एवं अपाहिज बच्चे और लड़कियाँ—जिनका स्वस्थ लड़कों की अपेक्षा कम आर्थिक मूल्य होता था—मौत के घाट उतार दिये जाते थे। हवाई द्वीप में तो तीन या चार बच्चों के बाद जन्म लेने वाले प्रत्येक बच्चे का या तो गला घोंट दिया जाता था या फिर उसे जिन्दा जमीन में गाड़ दिया जाता था। इसी प्रकार किसी जाति में जुड़वा बच्चों की जीवन-लीला समाप्त कर दी जाती थी क्योंकि इस प्रकार का जन्म अप्राकृतिक समझा जाता था।

—ज्योति प्रकाश सक्सेना

चर्चा का आरम्भ किया है। वास्तव में, भारत इस विषय में भी आज काफी आगे बढ़ रहा है। गाँधीजी के विचार मैंने अभी सुने। वे भारत के राष्ट्रपिता आज भी कहलाते हैं पर वे मुझे माफ करें, सामाजिक-आर्थिक जीवन सम्बन्धी विचार उनके बहुत पुराने हैं। भारतवासी भी आज उन विचारों को नहीं मानते। परिवार-नियोजन के विषय में भी उनकी विचार-धारा मुझे तो शायद ही किसी के गले उतरती दिखाई दी।

संभवत: आपलोग जानते ही होंगे कि मैं स्वयं भारत में सुरक्षा-विधि (लगभग ब्रह्मचर्य) के द्वारा परिवार-नियोजन की योजना प्रसारित करने के लिए गया था। मैंने पूरी मेहनत से वहाँ तीन प्रयोग शुरू कराये पर उनमें कोई सफलता नहीं मिली। वास्तव में यौन-जीवन को अप्राकृतिक रूप से नियन्त्रित करने से काम नहीं चल सकता। फिर परिवार-नियोजन के विचार का आधार केवल जनसंख्या को घटाना-बढ़ाना ही तो नहीं है, व्यक्तिगत और कौटुम्बिक स्तर पर दम्पत्ति और सन्तान के विकास का भी तो मुख्य प्रश्न है। स्त्री को गर्भाधान के विषय में स्वतन्त्रता क्यों न हो और गर्भाधान का प्रश्न यौन समागम के साथ अविच्छिन्न रूप से क्यों बँधा रहे? जनतन्त्र या समाजवाद या साम्यवाद सब फिजूल की बातें हैं, जब तक यह अधिकार स्वीकार नहीं किया जाता कि स्त्री जब चाहे गर्भ धारण करे। परिवार-नियोजन इस अधिकार का ही नाम है। रही पाप और अनीति की बात सो मैं विनम्रता से कहना चाहता हूँ, खास तौर से गाँधीजी को, कि प्रकृति जैसी है, उसके सारे कार्य-व्यापार को वैसे ही रहने दिया जाय तो मानव जीवन का जो विकास हुआ है, वह नहीं हुआ होता। यदि भाँति-भाँति के असंख्य कीटाणुओं को नष्ट कर रोगों का नाश करने में पाप नहीं है, तो विज्ञान के साधनों से रज और डिम्ब के समागम को रोक कर या प्रजनन क्षमता को असंभव बना कर जन्म-निरोध करने में पाप कैसे हुआ? वास्तव में पाप और धर्म की ये परिभाषायें उस अवस्था की हैं जिसको मनुष्य हजारों वर्षों पहले पार कर चुका है। मैं डॉक्टर हूँ। मुझे लगता है कि अनैतिकता या जीव-हत्या आदि के जो तर्क दिये जाते हैं वे स्वीकार करके चला गया होता तो आज का-सा स्वस्थ और मृत्युंजय-सा जीवन हमें न मिला होता।

■ ■ मेरी स्टोप्स : मैं तो इसी बात का प्रचार करते-करते आयी हूँ कि जन्म-नियंत्रण की योजनाओं की सफलता के बिना मानव-जाति का कल्याण हो ही नहीं सकता। जब विज्ञान ने ऐसे साधन उपलब्ध कर दिये हैं, जिनसे हम सन्तानोत्पादन के विषय में किसी प्रकार की असमर्थता या विवशता

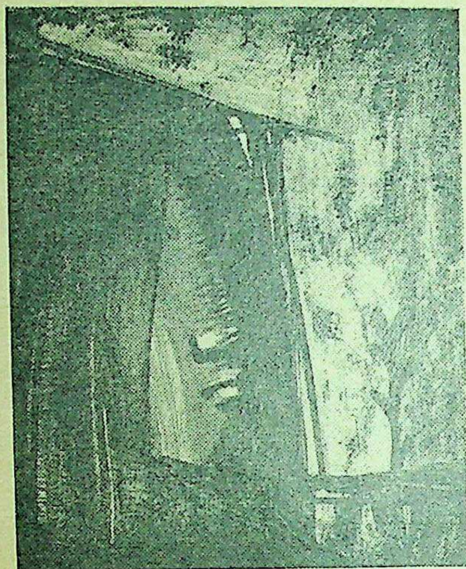
के अधीन नहीं हैं तो क्यों न उसका उपयोग करें। जिस विस्फोटक स्थिति में संसार की जनसंख्या आज पहुँच गयी है उसको देखते हुए यदि हम फौरन परिवार-नियोजन के पथ को ग्रहण कर सफलता नहीं हासिल करेंगे, तो सारा संसार संख्या के समुद्र में डूब जायगा। आपलोगों को मालूम है कि मैंने गर्भ-निरोध की विधियाँ बताने के आन्दोलन में सक्रिय भाग लेकर काफी लांछना और तिरस्कार झेला है परन्तु मुझे आज इस आन्दोलन की सफलता पर इतनी खुशी है कि मैं उन सब चीज़ों को भूल गयी हूँ। मुझे जब डॉक्टर पिंकस की गोलियों के निर्माण का सम्वाद मिला तो कितनी खुशी हुई, यह मैं आपको बता नहीं सकती।

आज दुनिया के अविकसित और अर्ध-विकसित देशों के जो लोग अशिक्षित हैं, उनको परिवार-नियोजन की खाने की दवा मिल जाने से इस आन्दोलन की गति और बढ़ेगी तथा हम विस्फोट की समस्या को सुलझाने के अधिक नजदीक पहुँचेंगे। तीव्र गति से बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण उत्पन्न सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियों में से ऐसा तर्क स्वयं फलित हो गया है जिसकी टक्कर में सारा विरोध टूट कर उड़ता जा रहा है। अब तो पोप और पादरी लोग भी इस समस्या की ओर से आँखें बन्द नहीं कर पाते और प्रकारान्तर से परिवार-नियोजन का समर्थन करते हैं। साम्यवादी देश, खास तौर से चीन को भी इस विचार को अपनाना ही पड़ेगा। मैं आशा करती हूँ कि हम इस परिसंवाद में जो चर्चा कर रहे हैं, उससे हमारे उन साथियों को बल मिलेगा जो इस आन्दोलन को अग्रसर करने में पृथ्वी के विभिन्न खण्डों में कार्य कर रहे हैं।

■ ■ ज्ञानचन्द्र घोष : (उपसंहार) : मैं आप सब का आभार मानता हूँ कि आपने यहाँ उपस्थित होकर तथा अपने-अपने विचार प्रकट करके परिसंवाद को सफल बनाया। मैं तो कहूँगा कि मर्त्यलोक की आज की सबसे बड़ी समस्या के समाधान में यह विश्लेषण अमरलोक का बहुत बड़ा वरदान होगा। जिस समस्या के विस्फोट की आशंका से सारा ब्रह्माण्ड संत्रस्त है, उस पर परलोक भी उपेक्षाशील नहीं है बल्कि विचार कर रहा है, यह बात समस्या के विश्लेषण में बहुत मददगार सिद्ध होगी। मैं पुनः आप सब को धन्यवाद देता हूँ। ■ ■

आज से लगभग चार वर्ष पूर्व संयुक्त राष्ट्र द्वारा प्रकाशित आँकड़ों के अनुसार उस समय विश्व की आबादी १,२०,००० व्यक्ति प्रतिदिन के हिसाब से बढ़ रही थी, जिसका अर्थ हुआ एक मिनट में १७० बच्चों की वृद्धि !

—ज्योति प्रकाश सक्सेना



एक त्रिकोण

(एक मध्यवर्गीय घर। माँ और बड़ा बेटा गम्भीरतापूर्वक बातें कर रहे हैं।)

सुरेश : इतने दिनों से मैं चुपचाप देख-सुन रहा हूँ माँ। पर अब मुझे लगता है कि आगे बढ़ कर सब बातें स्पष्ट करनी ही होंगी।

माँ : तो पहेलियाँ क्या बुझाता है सुरेश? साफ़-साफ़ कह न, क्या कहना चाहता है?

सुरेश : मैं तुम्हारा मन दुखाऊँगा, इसके लिए मुझे पहले ही क्षमा कर देना माँ।

माँ : आज तू कैसी बातें कर रहा है रे? तुझे आखिर हुआ क्या है?

सुरेश : **(थोड़ा चिढ़ कर)** मुझे कुछ नहीं हुआ माँ? हुआ तो तुम्हारे लाड़ले छोटे बेटे अशोक को है....क्या तुमने महसूस नहीं किया कि पिछले कुछ महीनों से उसके रंग-ढंग बदल गये हैं?

माँ : **(सम्हल कर)** क्या किया है अशोक ने?

सुरेश : **(एक क्षण रुक कर)** देखो माँ, अशोक अब बच्चा नहीं है। पढ़-लिख गया है। शादी-शुदा है। उसे अब घर की ज़िम्मेदारियाँ समझनी चाहिए। घर को घर समझना चाहिए, सराय नहीं। आख़िर उसका भी तो कुछ कर्त्तव्य है।

माँ : **(जैसे अँधेरे में खो गई हो)** है रे, उसका भी कर्त्तव्य है। पर वो धीरे ही धीरे इसे समझेगा। अभी तो उसके पैरों में बेड़ियाँ पड़ी हैं...कुछ समय लगेगा, तब सम्हल जायेगा।

सुरेश : **(चिढ़ कर)** कैसी बातें करती हो माँ? मैं तो अठारह साल का भी नहीं था जब मैंने अपने सिर पर लदी ज़िम्मेदारियों को महसूस किया था..... आज आठ साल हो गये हैं। मैं ही चला रहा हूँ घर को। अशोक तेइस का होने को आया है, पर इसके कान पर तो जूँ तक नहीं रेंगती।

त्रिकोण वही नहीं जो फिल्मों और उपन्यासों में होता है—एक रूपसी युवती, एक अलबेला युवक और दोनों के रोमांस की धार को पैना करने वाला एक 'विलेन'। यहाँ यथार्थ जीवन के इस त्रिकोण को देखिये जिसमें दो भाई, उनकी दो बहुएँ और एक माँ एक विकट समस्या से जूझते हैं—परिवार का विघटन वांछनीय है या व्यक्तित्व का?

• सत्येन्द्र शरत्

माँ: **(स्वर में कम्पन आ जाता है)** जब मुझ पर बिजली गिरी थी सुरेश, तब तू ही तो मेरे पीछे था रे। तू पत्थर न बनता तो कौन बनता? ये अशोक तो तेरे साये में दुबका हुआ था। बेटे, तू एक रात में बच्चे से नौजवान न बनता तो तेरी ये विधवा माँ और ये अबोध छोटा भाई किस आधार पर इस निर्दय संसार में जीते?

सुरेश: **(सिहर जाता है)** माँ?....

माँ: **(अब तक सम्हल जाती है)** बेटा, यह दुःख मुझ पर और तुझ पर पड़ा था। ठोकर लगते ही तू सम्हल गया। अशोक तो तब नादान था। वो तो अब भी ये कल्पना नहीं कर सकता कि उस समय हम पर क्या बीती थी? वह एकदम कैसे ज़िम्मेदार बन जायेगा?

सुरेश: तुम ठीक कहती हो माँ। पर मैं ही कितना सहूँ? भाग्य ने मुझे कोल्हू का बैल बना दिया। कंधे पर जुआ रक्खे, बिना कुछ शोर-शराबा किये, मैं गोल दायरे में चक्कर काटता चला जा रहा हूँ... और अशोक, वो आसमान में ऊँची उड़ान भरने वाला आज़ाद पक्षी है। वह लेखक है, कलाकार है, उसके सामने उसके भविष्य का प्रश्न है। वह क्लर्की या मास्टरी में खप, अपना कैरियर नहीं नष्ट कर सकता। मुझे घर के लिए, उसके लिए रोटी जुटानी है। उसे केवल अपने लिए यश-प्रशंसा और कीर्ति बटोरनी है... **(सव्यंग्य)** और हम दोनों सगे भाई हैं!

माँ: मैं तेरी पीड़ा समझती हूँ सुरेश। लेकिन बड़े ही यदि अपने से छोटों के लिए त्याग न करेंगे तो...

सुरेश: **(बात काट कर)** माँ, त्याग और तपस्या की बात न करो। त्याग और तपस्या करने वाले जीवन भर हाहाकार ही करते हैं।

माँ: **(सिहर कर)** तू क्या कहना चाहता है?...क्या करना चाहता है?

सुरेश: माँ, मैं अशोक को अलग करना चाहता हूँ...

माँ : (काँपते स्वर में) अशोक को अलग करना चाहता है।... क्यों ?... क्या किया है उसने ?...

सुरेश : छोटी-छोटी कई बातें हैं माँ, जो पिछले तीन-चार महीनों में हुई हैं। ये सब घटनायें मुझे इस तरफ़ इशारा कर रही हैं कि मैं भी अशोक ही की तरह स्वार्थी बन जाऊँ और अपने ही बीवी-बच्चों की ओर देखूँ।

माँ : ऐसी बात मुँह से न निकाल सुरेश... मुझे बता तो अशोक ने ऐसा क्या किया है ?

सुरेश : (चिढ़ कर) माँ, अब मैं कितनी बातें गिनाऊँ उसकी ?...अभी ताज़ी ही घटना लो...तुम्हें तो मालूम ही है कि अभी तो उसकी आमदनी का ज़रिया सिर्फ़ लिखना ही है। कभी एकाध महीने में कहीं किसी अखबार में कोई कहानी छप गई तो दूसरे-तीसरे महीने उसके पच्चीस-तीस रुपये आ गये। वो रुपये वह मुझे दे देता है। इधर पिछले दो माह से उसकी दो-दो, तीन-तीन कहानियाँ छप रही हैं। इस महीने उसके तीन मनीऑर्डर आये—दो तीस-तीस रुपये के और एक चालीस का। उसने तीस रुपये वाले दोनों मनीऑर्डर कूपन समेत मुझे दे दिये ; और चालीस वाले मनीऑर्डर का कोई ज़िक्र तक न किया। कल रमेश की माँ ने मुझे बताया कि अशोक अपनी बहू के लिए सिल्क की एक प्रिन्टेड साड़ी लेकर आया है। बहू बता रही है कि वो अड़तीस रुपये की है।

माँ : (अचरज से) अच्छा, मुझे तो पता नहीं !

सुरेश : (खीज कर) माँ, तुम भी कमाल करती हो।...तुम्हारा ख्याल है कि बहू अभी ही उस साड़ी को पहन कर घर में घूमती फिरेगी ? वो तो उसने सन्दूक में बन्द कर रख दी है.... (रुक कर) रमेश की माँ को भी पता नहीं चलता, अगर रमेश कागज़ के उस पैकेट को जिसमें साड़ी लिपटी हुई आई थी बाहर से न उठा लाता और अपनी माँ को ये कह कर न देता कि माँ, मेरे लिए इस कागज़ का जहाज़ बना दो।

माँ : (साश्चर्य) अच्छा फिर ?

संयुक्त परिवार और

यह जगन्नाथ का विशाल रथ है, असीम वैयक्तिक प्रतिभा इस रथ के भारी चक्रों से चूर-चूर हो गई है ; संयुक्त परिवार इसी रथ का लघु रूप है। 'कर्ता' के अनुकूल या वश में न रहने वाले व्यक्तियों का विकास इस रथ के पहियों के नीचे कुचला गया है। उनकी योग्यताओं को पद-दलित किया गया, उनकी अभिलाषाओं और आशाओं का मर्दन किया गया,

सुरेश : फिर क्या ? रमेश की माँ ने कागज उलट-पुलट कर देखा तो वो किसी सिल्क स्टोर का पैकेट था। (ज़रा रुक कर) तुम्हें शायद विश्वास नहीं हो रहा होगा मेरी बात का...

ठहरो, मैं रमेश से पुछवा देता हूँ... रमेश !....

माँ : (रोकती हुई) नहीं रे, रमेश को बुलाने की क्या ज़रूरत ? क्या मुझे तेरी बात का विश्वास नहीं ?...

सुरेश : तो ? तुम क्या कहती हो माँ ?

माँ : (सुरेश के चेहरे को देखती हुई, टूटी-सी) मैं क्या कहूँ सुरेश ?... तू कहे तो मैं उसे समझा दूँगी....

सुरेश : लेकिन मैं शकुंतला को कैसे समझाऊँगा माँ ?... जीवन में उस दिन पहली बार उसने मुझसे शिकायत की और कहा कि "तुम्हारी भी शादी हुई थी, लेकिन तुम कभी भी मेरी खुशी के लिए मँहगा कपड़ा नहीं लाये--ये कह कर कि देवर जी अभी पढ़ रहे हैं ;

व्यक्तित्व का विकास

क्योंकि संयुक्त परिवार का सदस्य होने के कारण उन पर अनेक महान उत्तरदायित्व थे। उनको निबाहते हुए, वे अपने विश्वासों और आकांक्षाओं के अनुकूल आचरण नहीं कर पाये। यदि यह सामाजिक पद्धति न होती तो देश में लोकोपकारी कार्यकर्त्ता, समाज सुधारक, और देशभक्त बहुत अधिक होते !

--अज्ञात

(संकलन : मनोज ठाकुर)

उनके खर्च में कमी पड़ जायेगी। आज वही देवर जी कमाने लगे हैं तो अपनी कमाई से वो चालीस रुपये की रेशमी साड़ियाँ अपनी बीवी के लिए लाने लगे हैं।"...

माँ : (कातर स्वर में) लेकिन सुरेश, वो एक ही साड़ी तो लाया है !...

सुरेश : लेकिन माँ, मैं तो आज तक एक भी साड़ी नहीं लाया, हूँ...(रुक कर) माँ, तुम बताओ, तुमने शकुंतला को कभी क़ीमती कपड़े पहने देखा है ?.. आखिर उसका मन भी तो करता होगा ..कभी तो वह भी इस घर में नई बहू थी...(रुक कर) जानती हो माँ, वो एक दिन मुझसे क्या कह रही थी ?

माँ : (खोई-सी) क्या कह रही थी ?

सुरेश : कह रही थी कि तुमसे अच्छे तो देवर जी ही हैं। अपनी पत्नी का कितना ध्यान रखते हैं।.... उसका हाथ तक मैला नहीं होने देते...हाल तो वह खुद ही घर का कुछ काम नहीं करना चाहती, तिस पर देवर जी भी कभी उसे घर के काम में हाथ बटाने के लिए नहीं कहते।

माँ : (स्वर में तेज़ी है) सुरेश !

सुरेश : (नर्मी से) मैं सच कह रहा हूँ माँ। शकुंतला को उसकी बात के लिए डाँट दूँ ऐसा मुझे कोई कारण नहीं दीखता। उसने जो कुछ भी कहा, ठीक कहा।.. तुम तो जानती ही हो माँ, ये छोटी-छोटी बातें दिल में दरार पैदा कर देती हैं......

माँ : (सोचती हुई) हाँ बेटा...हाँ...

सुरेश : एक छोटी-सी बात बताता हूँ माँ। मुझे तो ये बात याद भी नहीं थी। जब रमेश हुआ था तो शकुंतला ने मुझसे कहा था, "अब तुम अपना बीमा करवालो !" मैंने हँस कर कहा

था, "मुझे बीमा करवाने की क्या ज़रूरत ? मेरा बीमा तो अशोक है"... (रुक कर) रात शकुंतला ने मुझे ये बात याद दिलायी और कहा, "देखा, तुम्हारा उस समय का सोचना कितना ग़लत था !".... मैं सच कहता हूँ माँ, मुझे सुन कर बहुत चोट लगी ।...

माँ : **(सोचती हुई)** तो तू अशोक और उसकी बहू को अलग करना चाहता है ?...

सुरेश : **(एक क्षण रुक, दृढ़ स्वर में)** हाँ माँ, गृहस्थी में सब सदस्यों के संयुक्त रूप से रहने का अर्थ है—सबकी ओर से एक जितना त्याग, एक जितनी सहनशीलता, और एक जितना संतोष । जहाँ घर के एक भी सदस्य के अंदर इनमें से एक भी चीज़ में कुछ कमी आती है वहीं संयुक्त परिवार की मर्यादायें और सुख-शांति मिटने लगती हैं । उससे तो अच्छा यही है कि घर के सदस्य अलग-अलग रहने लग जायें ।

माँ : **(खोई-सी)** मेरी समझ में तो तेरी कोई बात नहीं आ रही है सुरेश... क्या तू सचमुच अशोक को अलग कर देगा ? वो तो अभी तक नासमझ है । ढंग से कमाता भी नहीं है... कैसे अपना गुज़ारा करेगा वह ?...

सुरेश : समय सब कुछ सिखा देता है माँ... मैं भी तो वक्त की ठोकरें खाकर ही घर चलाना सीखा हूँ...आखिर कभी न कभी तो अशोक को भी घर-गृहस्थी चलानी ही होगी । कब तक वह तुम्हारे और मेरे प्यार के घोंघे में छिपा इन सचाइयों से बचता रहेगा ?. एक न एक दिन तो उसे घोंघे से बाहर आना ही होगा ।

माँ : **(विह्वल भाव से)** वो दिन जब आयेगा, तब आयेगा । अभी तो...

(अचानक कमरे का दरवाज़ा खुलता है । छोटा लड़का अशोक अन्दर प्रवेश करते हुए कहता है ।)

अशोक : नहीं माँ, वो दिन अभी ही आने दो ।

माँ : **(चौंक कर, उसकी ओर देखती हुई)** अशोक !

अशोक : **(मुस्करा कर)** हाँ माँ ।... **(मुड़ कर, गम्भीरता से)** भाई साहब, मुझे क्षमा करना, आप लोगों की बातचीत का कुछ हिस्सा मैंने सुन लिया है । मैं इधर से निकल रहा था । आप लोगों के मुँह से अपना नाम सुन कर ठिठक गया और फिर खड़ा ही रह गया । अब सोचा, कि इस जगह मेरा भी कुछ कहना ज़रूरी है, इसलिए यहाँ आ गया हूँ ।

माँ : **(कड़े स्वर में)** अशोक, अपने भाई साहब से माफ़ी माँग, चल ।

माँ की ममता

वह बच्चा कितना भाग्यशाली है जिसकी माँ वास्तव में 'माँ' है । जीवन के आरम्भ में ही उस बच्चे को ज्ञात हो जाता है कि सम्पूर्ण और निःस्वार्थ प्रेम क्या है । माँ की ममता उस बच्चे को सिखाती है कि संसार से दया और प्रेम का नामोनिशान

अशोक : उस साड़ी वाली बात के लिए न !.. हाँ माँ, ज़रूर माँगूँगा। अपने उस लड़कपन के लिए मुझे भी अफ़सोस है। लेकिन क्या करूँ माँ ? ये लड़कपन तो अब मेरे स्वभाव का अंग बन गया है। मैं खुद बहुत संजीदगी से इसे दूर करना चाहता हूँ।

(माँ और सुरेश चुप रहते हैं। कुछ नहीं बोलते।)

अशोक : **(सुरेश के निकट आता हुआ)** मुझे माफ़ कीजिये भाई साहब, मैं अभी तक......

सुरेश : **(बात काट, रुखेपन से)** रहने दो अशोक। इसकी क्या ज़रूरत है ?

अशोक : **(फीकी मुस्कराहट से)** नहीं भाई साहब, मुझे तो है। **(एक क्षण रुक)** मैं सच कह रहा हूँ भाई साहब, मुझे अभी तक घर में घर का एक अंग बन कर रहना नहीं आया है। मैं घर में अभी तक एक बच्चे की तरह रह रहा हूँ जो ये अपना अधिकार समझता है कि सब लोग उसकी तरफ़ ध्यान दें, उसकी सब ज़रूरतें पूरी करें और उससे कुछ उम्मीद न करें...अब तक मैंने कभी न सोचा था कि ये स्थिति घर के दूसरे प्राणियों के लिए कितनी दुःखदायी हो सकती है ! लेकिन आज आपकी बातें सुन मेरी आँखें खुल गयीं......

माँ : **(भावविह्वल स्वर में)** अशोक !... बावले, बड़े भाई के पैरों पर गिर। उससे माफ़ी माँग। तूने उसका दिल दुखाया है।

अशोक : **(सुरेश के पैरों पर झुकते हुए)** लो माँ, मुझे इसमें कोई लज्जा नहीं है। **(सुरेश के पैर छूते हुए)** भाई साहब, सचमुच मुझे...

सुरेश : **(भावपूर्ण स्वर में)** बस-बस अशोक... इतना बहुत है... **(अशोक को अपने गले लगा लेता है)**

माँ : **(आँखों में आँसू आ जाते हैं)** मेरे बच्चे !...

अशोक : **(सम्हल कर)** अब मेरा मन हलका हो गया है। अब मैं कुछ कहना चाहता हूँ भाई साहब।...

सुरेश : **(स्वर में स्नेह है)** कहो अशोक।...

अशोक : भाई साहब, मुझे सुधरने का अवसर दीजिए।

सुरेश : हाँ अशोक, जरूर।.. लेकिन कैसे ?

अशोक : मुझे घर से अलग कर दीजिए।

माँ : **(चौंक कर)** अशोक !...

सुरेश : **(ऊँचे स्वर में)** अशोक !

अशोक : मैं ठीक कह रहा हूँ भाई साहब। आपके और माँ, भाभी के प्यार ने मुझे निकम्मा बना दिया है। मैं घरेलू ज़िम्मेदारियाँ नहीं उठा सकता... नहीं...सच ये है कि मैं ये ज़िम्मेदारियाँ

पूरी तरह मिटा नहीं है; संसार में कुछ ऐसे व्यक्ति भी हैं जिन पर वह अन्ध-विश्वास कर सकता है और जो बदले में कुछ माँगे बिना केवल देने में विश्वास करते हैं।

—आन्द्रे मोराय

(संकलन : मनोहर जुनेजा)

उठाना ही नहीं चाहता। पर ये तो ग़लत है। मैं अब बच्चा नहीं हूँ। मुझे घर-गृहस्थी का बोझ उठाना सीखना ही होगा।

सुरेश : पर ये सब तो तुम घर में रह कर, मेरा हाथ बँटा कर भी सीख सकते हो।...

अशोक : नहीं भाई साहब, एक मज़बूत दरख़्त की आड़ में छिप कर कोई न गोली चलाना सीख सकता है, और न गोली से बचना। भाई साहब, मुझे खुले मैदान में लड़ना सीखने दीजिए। मैं गिरूँगा, चोट खाऊँगा. कँटीले तारों में मेरी वरदी तार-तार हो जायेगी, लेकिन मैं लड़ना सीख जाऊँगा...आपके साये में रहूँगा तो मैं अधूरा सिपाही ही रह जाऊँगा।

माँ : **(विह्वल स्वर में)** लेकिन अशोक तू .....

अशोक : **(बात काट कर)** ठीक कह रहा हूँ माँ। जहाँ कोई आफ़त आयेगी, भाई साहब सामने आकर उसे झेल लेंगे और अपनी छाती पर घाव खा लेंगे...वह मुझसे नाराज़ हों, लाख पत्थर बनना चाहें, नहीं बन सकते। आखिर वो बड़े भाई हैं।

सुरेश : **(स्नेह के साथ)** तो सोच पगले, तू तो लेखक है। बड़ा भाई छोटे भाई को फिर अपने से अलग कैसे कर सकता है ?

अशोक : छोटे भाई की भलाई की खातिर उसे ऐसा करने में कोई हिचक न होनी चाहिये।

सुरेश : **(साँस लेकर)** हाँ अशोक, कहना आसान है। अगर तेरे भी कोई छोटा भाई होता और तूने उसे अपने बेटे की तरह पाला होता !

अशोक : तो पंख उग आने पर वो भी उड़ जाता......

माँ : **(कातर स्वर में)** अशोक !...मैं तो पहले ही बहुत दुःखी हूँ। मुझे और ज्यादा दुःख क्यों देता है ?

अशोक : नहीं माँ। इस दुःख में भी एक सुख छिपा हुआ है, जो तुम और भाई साहब बाद में महसूस करोगे। मुझे अलग कर देने पर आप दोनों मुझे ज्यादा प्यार करेंगे। और मैं भी दुःख-सुख में आप लोगों के पास दुगने प्यार से दौड़ा आया करूँगा...इकट्ठा रहने में प्यार मिटता जायेगा। उस पर ग़लतफ़हमियों की तहें जमती जायेंगी। हम दोनों की पत्नियाँ इस काम में हमारी मददगार होंगी और आखिर एक दिन हमारा प्यार खतम हो जायेगा... हम लाख सगे भाई सही, हमारी बीवियाँ तो सगी बहिनें नहीं हैं।

सुरेश : माँ, ये तो लेखक है। इसके सामने मैं और क्या कहूँ ?

माँ : इसके कहने पर ध्यान न दे सुरेश। ये तो सिड़ी हो गया है। **(अशोक की ओर मुड़)** पागल हो गया है रे अशोक ? जग हँसाई के लिए तुल गया है। लोग क्या कहेंगे ? भाई, सगे भाई से अलग हो गया है।

अशोक : हाँ माँ, अलग हो गया है, पर मन से नहीं। मन से तो हम कभी अलग नहीं हो सकते...माँ, पानी को लाठी

से कितना ही पीटो, पानी कभी दो नहीं होता। एक ही रहता है माँ।

माँ : (कातर भाव से) तो फिर तू अलग होने के लिए क्यों कहता है?

अशोक : भाई साहब का कहना ठीक है माँ। अब संयुक्त परिवार केवल एक ही तरीके से चल सकता है—और वो ये कि घर के सब प्राणी एक दूसरे के लिए सहें, एक दूसरे के लिए त्याग करें। और जो कुछ भी करें, अपने सुख और संतोष के लिए नहीं, घर के दूसरे प्राणियों के सुख-संतोष के लिए करें।

सुरेश : ठीक है अशोक। हम लोग कोशिश करेंगे कि हम ऐसा ही करें।

अशोक : (फीकी मुस्कराहट से) काश ऐसा हो सकता भाई साहब! लेकिन अभी मैं भी इस योग्य नहीं हूँ; और आपकी छोटी बहू के बारे में तो कहना ही बेकार है। मैंने उसे देख-परख लिया है। आये दिन घर में कलह हो, इससे तो यही अच्छा है कि हम प्रेमपूर्वक अलग हो जायें...

(सहसा माँ फूट पड़ती है)

माँ : (सिसकियाँ भरते हुए) नहीं अशोक नहीं...तुम अलग नहीं होगे...तुम इस घर से नहीं जाओगे...तुम लोग इतने कठोर नहीं हो सकते...हमने तुम्हारा क्या अनिष्ट किया है जो तुम इतनी कड़ी सज़ा हमें दे रहे हो?

अशोक : माँ, यदि ये सज़ा है, तो मेरे लिए भी है। मैं भी तो इसे सहूँगा।

माँ : (रोते हुए) नहीं अशोक नहीं,,, तुम मत जाओ...नहीं...

अशोक : (आँसुओं के बीच समझाते हुए) ना माँ, रो कर मेरे लिए अमंगल न करो। मुझे हँसी-खुशी विदा करो। तुमने अपने बड़े लड़के को आदमी बना लिया है। तुम चाहती हो, तुम्हारा छोटा लड़का अधकचरा रह जाये?... उसे भी तो ज़माने की गर्म-सर्द हवा खाकर आदमी बनने दो...आँसू पोंछो माँ...तुम्हारा छोटा लड़का एक ज़िम्मेदार आदमी बनने जा रहा है। उसके मन में मोह न जगाओ...उसे खुशी से विदा करो और भगवान से प्रार्थना करो कि उसमें समझ आ जाय, ताकि एक दिन तुम उसका फिर स्वागत कर सको...

सुरेश : (अपने आँसू पोंछता हुआ) हाँ अशोक, हम हमेशा तुम्हारे स्वागत के लिए तैयार रहेंगे।

माँ : (आँसू पोंछती है और अशोक को गले से लगाती है) मेरे बच्चे!...

अशोक : (माँ के आँचल में मुँह छिपा कर) माँ!......

(परदा गिरता है) ● ●

सब सुखी परिवार एक दूसरे के सदृश्य हैं; लेकिन प्रत्येक असुखी परिवार अपने ही ढंग से असुखी है।

—तोल्स्तोय

(संकलन—उर्मिला मलहोत्रा)

हम तो बाबुल तेरे पिंजड़े की चिड़िया

'चट्...चट्', दो चाँटे भारती के गाल पर मार कर, उसे झिड़क कर, माँ के पास जाने के लिए कहा और मैंने सामने के मोटे पोथे पर आँखें गड़ायीं। जाने कब से माथा चाटे जा रही थी; कितनी बार कहा कि पढ़ाई जरूरी है, कल बहुत गंभीर व्याख्यान देना है, इस समय तंग मत करो, रात को एक के बदले चार कहानियाँ सुन लेना, लेकिन वह बाबूजी के पास से टलना ही नहीं चाहती थी। अब रो रही है तो रोया करे, उसकी माँ ने ही उसे इतना सिर चढ़ा रखा है।

लेकिन हाय! आँखें गड़ाने से ही तो पढ़ाई नहीं होती! किताब के काले-काले अक्षर जैसे धुँधले होकर खो गये, उन्हीं में से भारती का रोता हुआ मुखड़ा उभर आया; प्रफुल्ल गुलाब जैसे मलिन पड़ गया हो, प्रतिभा और स्वाभिमान की दीप्ति से युक्त आँखें जैसे हल्की बदली से घिर गयी हों और बरसा रही हों 'बड़े-बड़े मोती-से आँसू', किन्तु 'जयमाला' कहाँ! उस मुखड़े पर जो करुण उलाहना अंकित था, उसने मेरे हृदय को झकझोर दिया। "स्कूल से छूटते ही, सखियों के खेल के आमंत्रण को अनसुना कर, घर भर को छोड़ कर हम आपके पास आये और आपने हमें झिड़क कर, मार कर निकाल दिया।" बाप का पत्थर-सा कलेजा भी कचोट उठा और मैं बाप-बेटी के सम्बन्ध के बारे में सोचने लगा:



कहते हैं, पुरुष का हृदय वज्रकठोर होता है, होता होगा, किन्तु बिटिया के आँसुओं का ताप जिस तरह उसे पिघलाने में समर्थ होता है, उसी तरह क्या वह माता के नवनीत हृदय को भी पिघला पाता है? मुझे लगता है, शायद नहीं। बाप-

बेटी के सम्बन्ध में जो अवर्णनीय कोमलता है, वह माँ-बेटी के सम्बन्ध में तो नहीं ही है। बाप-बेटी और बाप-बेटे के सम्बन्ध में भी बड़ा फर्क है। बेटी जैसे संसार की ओर पीठ कर पिता की करुणा, ममता, प्रीति पर अवलम्बित रहती है, बेटा किन्तु आरम्भ से ही संसार की ओर उन्मुख रहता है, उसे संसार में आगे बढ़ना है, अपना जौहर दिखाना है, उसका उपभोग करना है, बहुत ही शीघ्र उसे लगने लगता है कि पिता उसे अकारण बाँध रखना चाहता है, व्यर्थ ही उसके रास्ते में आता है, अपनी उतावली में वह पिता के वात्सल्य का अनुभव करने का अवकाश ही नहीं निकाल पाता। वह उसका प्रतिस्पर्धी भी बन सकता है एवं पिता को जीवन के विविध क्षेत्रों में परास्त करने की कामना भी कर सकता है। पिता-पुत्र के प्रकट प्रेम के भीतर यह जो स्पर्धामूलक प्रच्छन्न तनाव रहता है (जो कभी-कभी प्रकट भी होता रहता है), इसे ही फ्रायड ने 'इडिपस कम्प्लेक्स' कहा है, और पिता-पुत्री के घनिष्ठतर एवं कोमलतर अनुराग को 'इलेक्ट्रा कम्प्लेक्स'। मनोविश्लेषण के इस आचार्य की इन सम्बन्धों की काममूलक व्याख्या से असहमत होते हुए भी इस तथ्य की गवाही तो मैं भी दे सकता हूँ कि बेटा प्रायः अपनी माँ का दुलारा होता है और बेटी प्रायः बाप की लाड़ली।

पुत्री पिता को पुत्रों से भी प्यारी होती है, इस मधुर सत्य के साक्षी कविकुलगुरु कालिदास भी हैं। 'कुमार संभव' में उन्होंने शुक्लपक्ष की शशिकला के समान परिवर्धमाना उमा के प्रति पिता हिमालय का प्रेम अंकित करते हुए लिखा है—

महीभृतः पुत्रवतोऽपि दृष्टिस्तस्मिन्नपत्ये न जगाम तृप्तिम्।
अनन्त पुष्पस्य मधोर्हि चूते द्विरेफमालासविशेषसंगा॥

एक ही साथ, एक ही समय, एक परिवार की बगिया में वसन्त छा जाता है और दूसरे के उपवन में सावन की झड़ी लग जाती है—उस समय जब ममता के वृन्त पर बैठी हुई दुलारी-दुहिता चिरैया पिता के सारे आशीर्वाद समेटे फुर्र-से उड़ जाती है, उड़ा दी जाती है!

प्रभामहत्या शिखयेव दीपस्त्रिमार्गयेव त्रिदिवस्य मार्गः।
संस्कारवत्येव गिरा मनीषी तया सपूतश्च विभूषितश्च ॥

अर्थात्, अनेक पुत्रों के होते हुए भी हिमालय की आँखें बिटिया उमा को ही अतृप्त भाव से निहारती रहती थीं, जैसे वन के अनन्त पुष्पों को छोड़ कर भौंरों के झुण्ड आम्र मंजरियों पर ही झूमते रहते हैं। उमा को पाकर हिमालय उसी प्रकार पवित्र और विभूषित हुए जैसे प्रभावती शिखा को पाकर दीपक, मन्दाकिनी को पाकर स्वर्ग का मार्ग एवं संस्कारशील वाणी को पाकर मनीषी विद्वान् पवित्र और विभूषित होते हैं। कालिदास ने लिखा है कि उमा के जन्म पर माता-पिता ही नहीं, सभी स्थावर-जंगम प्रसन्न हो उठे थे, किन्तु दुर्भाग्य से कन्या के जन्म पर सभी पिता प्रसन्न नहीं हो पाते, क्योंकि कन्या के योग्य वर खोजने की घोरतर दुश्चिन्ता लग जाती है और विवाहोपरान्त उसकें सुखी होने न होने का सन्देह ही बना रहता है। अवश्य ही यह चिन्ता भी प्रगाढ़ प्रेम के कारण उत्पन्न होती है, किन्तु खीझी हुई मनःस्थिति में कुछ व्यक्ति कन्या जन्म को कष्ट ही समझ बैठते हैं;—

शिक्षा माता के चरणों से ही प्रारम्भ होती है, और शैशव की बातों में शिशुओं से कहा प्रत्येक शब्द उनके चरित्र का निर्माण करता है।

—वेल

(संकलन : उर्मिला मलहोत्रा)

जातेति कन्या महतीति चिन्ता
कस्मै प्रदेयेति महान्वितर्कः।
दत्ता सुखं यास्यति वा न वेति
कन्यापितृत्वं खलु नामकष्टम्।

धीरे-धीरे विवाह-प्रथा में जैसे-जैसे विकृति बढ़ती गयी, वैसे-वैसे यह भावना और पुष्ट होती गयी।

मध्ययुग के भावों से आक्रान्त व्यक्तियों के लिए आज भी 'बेटी का बाप' शब्द-प्रयोग एक गाली-सा है। 'बेटी का बाप' मुहावरा दीनता, विनय, लाचारी, कृपा-याचना के साकार रूप को ध्वनित करता है। विवाह के समय वर-पक्ष की अनुचित ऐंठ, वर के पिता की तानाशाही और स्वयं जामाता की असंभव माँगों को झेलनेवाला बेचारा 'बेटी का बाप' सचमुच अपने को संसार का सर्वाधिक दयनीय प्राणी समझने लगे, तो आश्चर्य ही क्या! सदा वक्र, सदा रुष्ट, सदा पूजा चाहने वाले, कन्या राशि स्थित जामाता रूपी

दसवें ग्रह की क्रूर दृष्टि जिस पर हो, उसकी कुशल कहाँ? अपनी 'आँखों की पुतली' के सुखमय भविष्य की कामना से ही 'बेटी का बाप' शिव बन कर समस्त अपमान, लांछना का विष पी जाता है। किन्तु जिसके कारण उसे इतनी ज्वाला झेलनी पड़ती है, उस बिटिया के प्रति उसकी माया-ममता और बढ़ जाती है। यह नहीं कि इसका विपरीत परिणाम हुआ ही न हो, संभावित अपमान और हीनताबोध की आशंका के कारण ही कुछ निर्मम राजपूत कन्याओं को जन्मते ही तलवार के घाट उतार देते थे। कैसा बज्जर जैसा कलेजा होता होगा उनका! कैसे उठती होगी उनकी तलवार कली-से कोमल अपने ही कलेजों के टुकड़ों पर! ये तलवारें उन रूढ़ियों पर क्यों नहीं पड़ीं जो उनकी कन्याओं के कुसुम-कोमल जीवनों को काँटें बन कर छेदती रहीं! पर नहीं, न तो भारतीय पिता इन राजपूतों की तरह हृदयहीन ही हो सका, न इतना साहसी ही कि पुत्री की हीनता के मिथ्या सिद्धान्त को ठुकरा सके। उसने मान लिया कि कन्या परायी सम्पत्ति है, 'सम्पत्ति' के मालिकों को मनचाहा व्यवहार करने का अधिकार है, अतः वह विवाह के बाद कन्या के सुख-दुःख में विशेष कुछ नहीं कर सकता। इस असमर्थता की भावना ने ही क्या उसे कुमारी कन्या के प्रति ही अपना सारा स्नेह उड़ेल देने की प्रेरणा दी है? इस स्नेह में भी एक प्रकार की करुणा है, वह मुक्त उल्लास नहीं जो पुत्र के प्रति प्रकट होता रहा है। जीवन ही तो साहित्य में प्रतिबिम्बित हुआ करता है; अपने साहित्य में राम और कृष्ण की बाल-लीला का जैसा सरस वर्णन हुआ है वैसा सीता और राधा का कहाँ हुआ है? कुमारी कन्याओं की क्रीड़ाओं के प्रति गुरुजनों का यही भाव साहित्य में अंकित मिलता है, 'हाँ, खेल लें बेचारियाँ, फिर ससुराल में खेलना कहाँ मिलेगा ?'

पितृहृदय जायसी ने 'पदमावत' के मानसरोदक खण्ड में पद्मावती की सखियों के माध्यम से यही भाव प्रकट किया है —

> **मेरा पुत्र तभी तक मेरा है जब तक उसका विवाह नहीं होता, किन्तु मेरी पुत्री सम्पूर्ण जीवन के लिए मेरी है।**
> **—टॉमस फुलर**
> **(संकलन : उर्मिला मलहोत्रा)**

ए रानी मन देखु बिचारी, एहि नैहर रहना दिन चारी।
जौ लगि अहै पिता कर राजू, खेलि लेहु जो खेलहु आजू।
पुनि सासुर हम गवनब काली, कित हम, कित यह सरवर-पाली।
कित आवन पुनि अपने हाथा, कित मिलिकै खेलब हम साथा।

अविवाहिता किशोरी कन्याएँ पिता के राज में खेल लें, आनन्द कर लें,

चार ही दिन तो उन्हें नैहर में रहना है, फिर तो ससुराल जाना ही है, फिर कहाँ वे, कहाँ सरोवर का तट, जब आना ही अपने हाथ नहीं है तो फिर मिल कर खेलना कहाँ नसीब होगा? संभवतः भविष्य के प्रति इस अनिश्चय, बल्कि आशंका के कारण कन्या के मन में पितृगृह के प्रति और भी अधिक प्रगाढ़ ममत्व उत्पन्न होता है।

यह कहना कठिन है कि सारी दुनिया के रहते बच्चियों को अपने बाबूजी के साथ खेलना, शैतानी करना, उन्हें काम न करने देना क्यों प्यारा लगता है! मैं तो इतना ही जानता हूँ कि वे बराबर ऐसे सुयोग की ताक में रहती हैं। रवीन्द्रनाथ का भी यही अनुभव था। उनकी नटखट लड़की भी जब उनके सामने हाथ बढ़ा कर आशाभरी निगाहों से उनका मुंह देखती थी, तो वे भी लाचार हो जाते थे। उन्हें भी उसे अपने कन्धों पर बैठा कर घूमना पड़ता था, मनोनुकूल वाहन पाकर वह बहुत खुश होती थी और उन्हें अपने मोटे-मोटे नरम-नरम घूंसों से मारना शुरू कर देती थी, उनकी आँखों का चश्मा छीनना चाहती थी और अपनी मोहनी भाषा में कलह कर 'तुमुल काण्ड' की सृष्टि कर देती थी। 'परिचय' नामक अपनी कविता में उन्होंने इसका ब्यौरेवार वर्णन किया है, किन्तु वे यहीं नहीं रुके हैं, उन्होंने उसी में यह भी लिखा है कि उस नटखट शिरोमणि को भला-बुरा कहना भी नहीं सजता, क्योंकि,

से नाहले जे तेमन करे घरेर बाँशि बाजे ना।
से नाहले सकाल बेलाय एत कुसुम फुटबे कि?
से नाहले सन्धेबेलाय सन्धेतारा उठबे कि?
एकटि दण्ड घरे आमार ना जदि रय दुरन्त,
कोनो मते हय ना तबे बूकेर शून्य पूरण तो।
दुष्टुमि तार दखिन हावा सुखेर तूफान जागाने—
दोला दिये जाय गो आमार हृदयेर फूलबागाने।

उसके न रहने पर तो घर की बाँसुरी उस तरह नहीं बजती। उसके न रहने पर सबेरे इतने फूल खिलेंगे क्या? उसके न रहने पर सन्ध्या समय सन्ध्यातारा उगेगा क्या? एक मुहूर्त्त के लिए भी यदि वह नटखट मेरे कमरे में नहीं रहती, तो किसी भी तरह मेरे हृदय की शून्यता पूर्ण नहीं होती। उसकी दुष्टता जैसे दक्खिनी हवा

माँ-बाप के संस्कार बच्चों को प्राप्त होते ही हैं यह एक मिथ्या विश्वास है। नहीं तो हिरण्यकश्यप के घर प्रह्लाद और शाहजहाँ के घर औरङ्गजेब का जन्म कैसे होता!

—हरिकृष्ण प्रेमी
(संकलन : उर्मिला मलहोत्रा)

है जो मेरे हृदय के पुष्पोद्यान में सुख का तूफान उठाने के लिए बहती रहती है।

> **अपने प्रेम की परिधि हमें इतनी बढ़ानी चाहिए कि उसमें घर के साथ गाँव आ जाएँ, गाँव से नगर, नगर से देश, और यों हमारे प्रेम का विस्तार संपूर्ण संसार तक हो जाए।**
>
> —महात्मा गाँधी
> (संकलन : उर्मिला मलहोत्रा)

यह तो सभी को ज्ञात है कि कन्याएँ पितृगृह और विशेषकर पिता की निन्दा सुनते ही चिढ़तीं ही नहीं, झगड़ भी पड़ती हैं। सूरदास ने इसका बड़ा सरस वर्णन किया है। यशोदा मैया ने कान्हा को **'नैन बिसाल, बदन अति सुन्दर, देखत नीकी छोटी'** लड़की के साथ खेलते देखा, तो वे उस पर रीझ गयीं; प्यार से पूछा, **'नाम कहा तेरौ री प्यारी, बेटी कौन महर की है तू, को तेरी महतारी'** और यह जान कर कि वह वृषभानुलली है, हँसी करते हुए उसके माता-पिता के बारे में कहा ––

ऐसी कहि, बाकों मैं जानति, वह तौ बड़ी छिनारि,
महर बड़ौ लंगर सब दिन कौ, हँसति देति मुख गारि।

राधा ने किसी तरह अपनी माँ के बारे में किये मजाक को तो सह लिया, लेकिन जैसे ही बाप के लिए 'लंगर' शब्द सुना, उबल ही तो पड़ी, कहा,

राधा बोलि उठी, बाबा कछु तुमसौं ढीठौ कीन्हौ।
ऐसे समरथ कब मैं देखें, हँसि प्यारहि उर लीन्हौ॥

अच्छा, मेरे बाबा और 'लंगर'! क्यों, क्या उन्होंने तुम्हीं से कुछ ढिठाई की थी? यशोदा तो उसके इस सात्विक क्षोभ पर लोट-पोट हो गयीं; उसकी चोटी की, नयी फरिया पहनायी, तिल, चावरी, बतासे, मेवे से उसकी गोद भरी, लेकिन राधा का क्षोभ बना ही रहा। घर जाते ही उसने माँ से 'रिपोर्ट' की ––

मेरे आगें महरि जसोदा तोकौं गारी दीन्ही।
वाही घात सबै मैं जानति, वै जैसी मैं चीन्ही॥
तो कौं कहि पुनि कह्यौ बबा कौं, बड़ो धूत बृषभान।
तब मैं कह्यौ ठग्यौ कब तुमकौं, हँसि लागी लपटान॥

ऐसे प्यारे होते हैं बाप, बेटियों को कि उनकी शान के खिलाफ कुछ भी कहा जाना उन्हें सह्य ही नहीं होता। बाप भी तो समझते हैं कि **'धिया**

बिन सून अँगनवा य बेटी कोइलरि बिनु लखराउँ' जैसे कोयल के बिना अमराई सूनी लगती है, वैसे ही लड़की के बिना आँगन भी सूना ही रहता है।

विवाह-योग्या कन्या के पिता की सबसे बड़ी चिन्ता है उसके लिए सुयोग्य वर-निर्वाचन की। उसे रात-रात भर नींद नहीं आती। भला बताइये, **'जाकी घर कन्या कुँवारी बेटी, नींद कैसे आवे!'** योग्य वर-घर पर ही तो कन्या का भावी जीवन निर्भर करता है। लोक-गीतों में कैसी आकुलता-व्याकुलता भरी रागिनी गूँज रही है इस खोज की छटपटाहट को व्यक्त करने के लिए! बेचारे बाप का कहना है,

उत्तर हेर्यों, दक्खिन ढूँढ़्यो, ढूँढ़्यो मैं कोसवा पचास रे,
बेटी के बर नहिं पायों मालिनि मरि गयो भुखिया पियास रे।

आखिर जैसे-तैसे दामाद से तो उसका काम चलेगा नहीं, उसकी कामना है—

दमदा जे चाहिल सब कर नायक सभा बिच पंडित होय रे—दामाद तो ऐसा चाहिये जो सबका नायक हो (और शायद सब विषयों में) तथा सभा के बीच जो पंडित समझा जाये। न जाने कितनी यशोधराएँ गवाही दे सकती हैं कि **'मेरे लिये पिता ने सबसे धीर वीर वर चाहा।'** और भूखे-प्यासे रह कर जब वह वैसा वर खोज लेता है, तो उस सन्तोष में भी उसके हृदय में कैसी वेदना लहरा उठती है; और क्या केवल उसी के हृदय में? बिटिया के कोमल हृदय की धड़कन में भी मिलन-विरह के उस पावन मुहूर्त्त में व्यथा से ओत-प्रोत उल्लास का ही स्वर सुन पड़ता है। पिया माँग में केवल सेंदुर ही नहीं भर रहा है, माता-पिता के लिए उसे परायी भी बना रहा है, इस विचार से वह विकल हो आर्त्त स्वर में पुकार उठती है—

शिशु भी बड़ों के समान ही होते हैं, उन्हें भी दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाना नहीं आता।

—दादेत
(संकलन : उर्मिला मलहोत्रा)

बाबा बाबा गोहरावौं, बाबा नाहीं जागें
देत सुनर एक सेंदुर भइउँ पराई।

बाबा-बाबा पुकार रही हूँ, लेकिन बाबा जागते ही नहीं, समझते ही नहीं, एक सुन्दर पुरुष मेरी माँग में सेंदुर दे रहा है और मैं परायी होती जा रही हूँ। बाबा बेचारा क्या बोले! सब कुछ करके भी निराला के साथ स्वर मिला कर वह यही कह सकता है,

धन्य ! मैं पिता निरर्थक था
तेरे हित कुछ कर न सका !

विवाह के बाद बिटिया अपने बाबुल के पास सुहाग माँगने जाती है, **'सुहाग माँगन बाबुल घर गइयाँ, सुहाग मैंनू कौन देवेगा ?'** और बाबुल अपने 'ढीठ दुलार' को 'लजवन्ती भोली' के रूप में देख कर देखता ही रह जाता है——

माथे में सेंदुर पर छोटी दो बिन्दी चमचम-सी,
पपनी पर आँसू की बूँदें मोती-सी, शबनम-सी,
लदी हुई कलियों से मादक टहनी एक नरम-सी,
यौवन की विनती-सी भोली, गुमसुम खड़ी शरम-सी ।

(बालिका से बधू——दिनकर)

उसके अन्तःकरण की अतल गहराई से मंगलकामना फूटती है, **'सुहाग तैंनू राम देवेगा, सुहाग शिरी भगवान देवेगा ।'**

और विदा का वह हृदय-द्रावक पल—— जब परम विरागी कहलाने वाले कितने ही विदेह भी मात्र 'जनक' रह जाते हैं, और आँसुओं से ही कन्या का अभिषेक कर उठते हैं,—कैसे शब्दबद्ध किया जाये ! उसका कुछ आभास भर कालिदास शकुन्तला की विदाई के समय कण्व के उद्‌गार में दे पाये हैं—

> **अपने बालक को मौन रहना सिखाइये और वह बहुत शीघ्रता से बोलना सीख लेगा ।**
>
> ——फ्रैंकलिन
> (संकलन : उर्मिला मलहोत्रा)

आज विदा होगी शकुन्तला, सोच हृदय आता है भर-भर,
दृष्टि हुई धुँधली चिन्ता से रुद्ध अश्रु से रुद्ध कण्ठस्वर ।
जब ममता से इतना विचलित व्यथित हुआ वनवासी का मन,
तब दुहिता बिछोह नूतन से पाते कितनी व्यथा गृहीजन ।

(महादेवी कृत अनुवाद)

विदा होते समय सभी आत्मीय स्वजन उस जल्दी-जल्दी बुलाने का आश्वासन देते हैं, किन्तु उनके प्रेम की तरतमता को लोक-गीत की ये पंक्तियाँ स्पष्ट कर देती हैं——

बाबा कहे बेटी नित उठ आयेब, माया कहे छठे मास,
भैया कहे बहिनी काज बियाहे, भौजी कहे कस बात !

बाबा कहता है, बेटी, प्रतिदिन सबेरे आ जाना, माँ छठे-छमाहे बुलाती है,

भैया किसी उत्सव-विवाह पर आने को कहता है, लेकिन भाभी की दृष्टि में तो अब आने की कोई जरूरत ही नहीं है। बिटिया परवश है, पराधीन है, वह क्या कहे? वह तो बाबुल के पिंजड़े की चिड़िया है; वह जिधर उड़ा दे, उड़ जायेगी। वह तो बाबुल के खूँटे की गैया है, वह जिधर हाँक दे, हँक जायेगी, लेकिन बाबुल को तो सोचना था--भैया को उसने ऊँची अटरिया दी और उसे दिया परदेश। उसे परदेश क्यों दिया बाबुल!... उसका सारा परिताप...अभियोग जैसे इन पंक्तियों में मूर्त्त हो उठा है—

हम तो बाबुल तेरे पिंजड़े की चिड़िया,
जिधर उड़ाओ उड़ जायें रे, सुन बाबुल मोरे।
हम तो बाबुल तेरे खूँटे की गैया,
जिधर हाँको हँक जायें रे, सुन बाबुल मोरे।
भैया को दीनी बाबुल ऊँची अटरिया,
हमको दिया परदेश रे, सुन बाबुल मोरे।
काहे को दिया परदेश रे............!

पर क्या सम्बन्ध-संयोग बाबुल के ही बस की बात है, बिटिया क्या जाने! दूर जाती हुई बिटिया के लिए बाबुल के अन्तरतम की कल्याण-कामना है—

मंगलमय हो पंथ सुहागिन, यह मेरा वरदान।
हरसिंगार की टहनी से फूलें तेरे अरमान।
छाया करती रहे सदा तुझको सुहाग की छाँह।
सुख-दुख में ग्रीवा के नीचे हो प्रियतम की बाँह।
पल-पल मंगल लग्न जिन्दगी के दिन-दिन त्योहार।
उर का प्रेम फूट कर हो आँचल में उजली धार!

(दिनकर)

विवाह के बाद जीवन के सुख-दुख की घड़ियों में पिता पुत्री से ऐसे ही आचरण की अपेक्षा करता है जिससे वह कह सके, **'पुत्रि, पवित्र किये कुल दोऊ'!**

× × ×

'बाबूजी, क्या दिन भर पढ़ते ही रहेंगे?' सुन कर मैं चौंका, देखा, भारती एक हाथ में जलपान की तश्तरी और दूसरे में पानी भरा गिलास लिये खड़ी है। उसके खिले हुए चेहरे पर विषाद का चिह्न भी नहीं है।

वह क्या जाने कि अनचाहे उसको चोट पहुँचा कर मुझे कितनी चोट लगी थी। वह क्या जाने कि उसके जाने के बाद से मैं उसके ही बारे में और उसके माध्यम से बाबुल-बिटिया के सम्बन्ध के बारे में ही सोचता रहा हूँ। मैंने जलपान एक तरफ रख दिया और उसे गोद में बिठा कर कहानी सुनाने लगा।

■ ■ ■

माँ-बेटी : स्वप्न में और जागरण में

मेरे गाँव में एक विधवा और उसकी बेटी रहती थी। दोनों को नींद में चलने की बीमारी थी। एक सर्द रात को मैंने देखा कि वह दोनों नींद की हालत में चलती हुई मेरे बाग़ में आ गईं जहाँ धुँध छाई हुई थी। माँ ने बेटी से कहा--"मुझे पता चला है कि मेरी असली दुश्मन तू है। तूने मेरी जवानी बर्बाद की, तूने मेरे जीवन के खण्डहर पर अपनी ज़िन्दगी की इमारत खड़ी की। अगर मेरा बस चले तो मैं तुझे मार डालूँ।"

बेटी ने कहा--"ए ख़ुदग़रज़ बुढ़िया, तुझ पर ख़ुदा की मार पड़े। तू मेरी और मेरी स्वाधीनता के बीच दीवार बन कर खड़ी हो गयी है, और मेरी ज़िन्दगी को अपनी ज़िन्दगी की तरह बर्बाद कर देना चाहती है। काश! ख़ुदा तुझे मौत दे दे!"

उसी वक्त एक मुर्ग़ ने अज़ान दी और वह दोनों औरतें जाग गयीं।

बुढ़िया ने बड़े प्यार से कहा--"अरे यह तुम हो--मेरी प्यारी बेटी!"

और लड़की ने भी बड़े प्यार भरे स्वर में जवाब दिया--"जी हाँ, अम्माँ प्यारी!"

--ख़लील जिब्रान

(संकलन : अहमद सलीम)

(गंगादास के बँगले का बरामदा। सामने से दायीं ओर अभिनेता के भीतर जाने का दरवाजा। दायीं और बायीं ओर क्रमशः दो दरवाजे। बायीं ओर का दरवाजा खुला है और दायीं ओर का पूर्णतः बन्द है; किन्तु उत्तम महँगे पर्दे सब पर झूल रहे हैं। बीचों-बीच एक नीची टेबुल को घेरे हुए तीन खूबसूरत कुर्सियाँ, और दो मोढ़े रखे हैं। इधर-उधर फूल-पौधों से हरे-भरे गमले रखे हैं।

सुबह के साढ़े आठ बज रहे हैं। पर्दा उठते ही दृश्य में, श्री गंगादास कुर्सी पर बैठे अखबार पढ़ रहे हैं। अवस्था अभी पचास से अधिक नहीं लगती। चश्मा लगाये हैं। धोती पर बन्द गले का कोट पहने हैं। भीतर से कपूरदास का प्रवेश। अवस्था पैंतीस वर्ष। सूट पहने हुए; आकर्षक व्यक्तित्व।)

गंगादास : बेटे, यह अखबार में अपने 'इंगेजमेंट' की खबर तुमने छपाई है?

कपूर : क्यों, छप गई है क्या? ओहो....! (अखबार लेकर देखते हुए)!

गंगादास : सीता के 'फादर' तैयार हो गये? (रुक कर) उन्होंने इसके लिए आज्ञा दे दी?

कपूर : (अखबार रखते हुए) जी हाँ। बल्कि अखबार में यह न्यूज उन्होंने ही दिलायी है।



गंगादास : ठीक ! समझ गया !! (उठते हुए) तो मेरे इकलौते बेटे श्री कपूरदास एम. काम., मैनेजिंग डाइरेक्टर, 'त्रिवेनी इलेक्ट्रिकल कारपोरेशन प्राइवेट लिमिटेड' लखनऊ की दूसरी शादी भी आज से सातवें दिन हो जायगी। (हँसते हैं।)

कपूर : पर आप इस तरह हँस क्यों रहे हैं पिताजी? प्लीज़ पापाजी....सुनिये न! बताइये!

गंगादास : सुनो। तुम मुझे बताओ, मुझे हँसना चाहिए या रोना? सच, मैं क्या करूँ! (रुक कर) देखो, दिल्ली से मोहिनी का यह तार मुझे आज ही सुबह छः बजे के क़रीब मिला है।

मोहिनी — कथा

कपूर : क्या लिखा है ?

गंगादास : वह यहाँ आ रही है।

कपूर : असंभव ! झूठ है यह तार ! वह यहाँ क्या आयेगी ! **(रुक कर)** और अब यहाँ उनके आने से भी क्या होगा ?

गंगादास : पता नहीं ! सिर्फ इतना ही लिखा है कि वह यहाँ आ रही है—न दिन, न तारीख, न ट्रेन, न समय....। **(रुक कर)** क्यों, तुमने उसे अपनी इस शादी के विषय में लिख दिया था ?

कपूर : जी हाँ। और क्या करता ?

गंगादास : **(चुप हैं।)**

कपूर : मोहिनी की यही इच्छा थी कि वह मुझसे अब सदा अलग रहे। उसने मुझे जब साफ़ लिख दिया कि मैं तुमसे 'डाइवोर्स' चाहती हूँ—तो मुझे यह रास्ता ढूँढ़ना पड़ा। **(रुक कर)** यह उसी की इच्छा थी। यह उसका आखिरी खत था।

गंगादास : ऐसा आखिरी खत उसी बहू ने लिखा ......।

कपूर : जी हाँ, आपकी उसी बहू ने जो एक दिन पूरे अग्रवाल समाज में आपके लिए आदर्श थी ! वही मोहिनी......।

गंगादास : आदर्श तुम भी थे मेरे लिए, और अब भी हो....।

कपूर : इस तरह वह भी आपके लिए आदर्श थी और अब भी है !

गंगादास : मुझे तर्क से मत पकड़ो बेटे ! मैं कभी कॉमर्स या लॉ अथवा मैथमेटिक्स का विद्यार्थी नहीं था। मैंने जीवन भर इतिहास पढ़ा है और पढ़ाया है। वह भी मैं तुम्हारे लिए कभी प्रोफ़ेसर श्री गंगादास नहीं था। वह मैं शेष युनिवर्सिटी के विद्यार्थियों के लिए था।

कपूर : पर आज यह सब बातें आप क्यों कह रहे हैं पिताजी ? मैं आपको जानता नहीं क्या ?

गंगादास : जानते क्यों नहीं ! तुम मुझे जरूर जानते हो ! पर तुम अपने को नहीं जानते। जैसे कि मैं तुम्हें जानता हूँ, पर अपने को नहीं जानता ! यही जो नहीं जाना जा सकता, यही मनुष्य का इतिहास बनाता है।

प्रेम.....विवाह . . . विच्छेद की मर्मवेधी समस्या। प्यारे-प्यारे पात्रों का भाव-संघात, और कलाकार की सधी-सँभली तूलिका जो एक हल्के स्पर्श से भावनाओं के महत् को उजागर कर देती है।

कपूर : (बाहर बढ़ते हुए) पता नहीं पिताजी !

गंगादास : रुको ! कहीं जाने की जल्दी में हो क्या ?

कपूर : जी हाँ ! सीता को संग लेकर जरा एक फोटो खिंचाने जाना है। बस हजरतगंज तक।

(गंगादास हँस पड़ते हैं।)

गंगादास : माफ़ करना बेटे ! मुझे इतिहास की गति पर हँसी आ रही है। 'हिस्ट्री रिपीट्स इटसेल्फ' ! (हँसते हैं।)

(कपूर जाने लगता है।)

गंगादास : रुको, रुको ! इस तरह नाराज़ होकर फोटो खिंचाने मत जाओ। आओ, बैठो इधर !. कथा सुनो ! घर टूटने का इतिहास अब मेरे दिमाग में साफ दिख रहा है। काश, आज तुम्हारी माँ भी जीवित होतीं ! मैं उसे भी समझा पाता !

कपूर : सीता इन्तज़ार करेगी वहाँ !

गंगादास : इन्तज़ार करने दो उसे ! स्त्री को इन्तज़ार करना ही चाहिए, तभी वह अपने पुरुष का महत्त्व समझती है। बैठो तुम। सबक़ सीखो कुछ भले आदमी ! इतने बड़े 'कंसर्न' को इतनी सफलता से चलाते हो, पर एक स्त्री तुम लोगों से नहीं चलती ! नादान......!

(कपूर कुर्सी पर बैठता है। गंगादास बायें कमरे में जाते हैं।)

गंगादास : (आवाज़ आती है।) ड्राइवर ! देखो, 'कार' लेकर सीता बेटी के बँगले पर जाओ और उसे यहीं ले आओ। जाओ....।

(गंगादास का प्रवेश)

गंगादास : देखो बेटे ! मोहिनी जब दस साल की थी, तब से मैं उसे जानता हूँ। उसके पिता गोपाल मित्तल मेरे खूब परिचितों में थे। मैं यहाँ युनिवर्सिटी में लेक्चरर था और वह तब यहाँ असिस्टेन्ट इंजीनियर थे। मोहिनी बेटी को मैंने तब स देखा। वह तब सिक्स क्लास में पढ़ रही थी—बेहद लज्जाशील—समझो जैसे लाजवंती का कोई नन्हा-सा पौधा हो ! (रुक कर) किसी बाहरी आदमी से बोलती नहीं थी। बस, किसी देवी मूर्ति की तरह आँखें नीची किये हुए मुस्कराती रहती थी और तब उसके मुँह से जैसे लाली बरसी पड़ती थी। **(रुक कर)** तुम तब हाई-स्कूल का इम्तहान देने जा रहे थे। वह अपने बाप की इकलौती बेटी और तुम मेरे इकलौते बेटे। अपने मन में तुम्हारी शादी मैंने तभी उस अजब पावन लज्जा-शील, उषा की पहली लाली जैसी मोहिनी के साथ कर दी थी।

कपूर : पिताजी......!

गंगादास : हाँ, आज मैं कवि हो रहा हूँ, यही कहने जा रहे थे न तुम !

कपूर : नहीं, मैं यह कहता हूँ कि अब इन बातों से क्या फायदा ?

गंगादास : नुकसान-फायदा जानने वाले हम तुम नहीं हैं। और न इस तराज़ू पर जीवन का यह इतिहास जो आज कथा-जैसा लग रहा है—तौला ही जा सकता है। **(रुक कर भाव बदलते हुए)** हाँ तो हुआ यह **(रुक कर)** माफ करना बटा, आज मुझे सारी बातें सीधी-सी कथा बन कर याद आ रही हैं—जैसे वह सब एक बड़ा-सा दर्पण हो जिसमें हम सबकी सूरतें—विशेषकर मेरी, तुम्हारी और मोहिनी

की और उस दिल्ली की ज़िन्दगी की—
सब साफ उभर कर आ रही हों!

कपूर : मुझे देरी हो रही है पिताजी। मैं समझता हूँ आप यही कथा बनाकर कहना चाहते होंगे कि वह सुशील लज्जामयी आदर्श कन्या मोहिनी जब अपने पिता के साथ दिल्ली में जा बसी तो उसमें परिवर्तन आ गया। और वह पत्नी के गुणों से अलग हो गयी।

गंगादास : देखो, अपनी तरफ से इस तरह सत्य को मत मोड़ो। तुम्हें जल्दी है, तो तुम जा सकते हो। **(रुक कर)** दिल्ली में मोहिनी यदि बदल गयी होती, तो मैं फिर उससे तुम्हारी शादी ही क्यों करता? वह ब्याह तक उसी तरह थी—नेक सीधी शरीफ! मोहिनी नारीमयी!

कपूर : **(सहसा मुस्करा कर)** नेक सीधी शरीफ!....मोहिनी!! उसे आप सिर्फ मायाविनी क्यों नहीं कहते?

गंगादास : सुनो! सुनो!! बारह वर्ष से बीस वर्ष—दिल्ली में मोहिनी के वे आठ वर्ष—फिर बीस वर्ष की अवस्था में तुम्हारी उससे दिल्ली में शादी हुई!

कपूर : पिताजी, आप खामखाह इन बीती बातों को क्यों याद कर रहे हैं? यदि कुछ याद करना है तो सिर्फ इतना ही याद रखने लायक है कि वह दूल्हन मोहिनी ब्याह के बाद दिल्ली छोड़ कर यहाँ लखनऊ अपने इस घर में न बस सकी!

गंगादास : मैं तुमसे पूछता हूँ, वह यहाँ क्यों आकर बसती? अपने इतने स्नेही माँ-बाप, घर और सुविधाओं को छोड़ कर यहाँ क्यों आती? उसे तो पता ही न चला कि पति का घर क्या होता है! ससुराल क्या है? लड़की की यह ब्याहता जिन्दगी क्या है, तुमने उसे जानने का अवसर ही न दिया। तुमने उसे संस्कार-च्युत किया। मोहिनी कोई साधारण लड़की नहीं थी जिसे तुमने केवल अपनी वासना में—वह भी उसी की दिल्ली में—बाँधना चाहा था। पत्नी केवल 'सेक्स' नहीं है!

कपूर : फिर यह असाधारण शादी क्यों करायी आपने?

गंगादास : शादी में कोई दोष नहीं था। दोष तुममें था, दोष मुझ में था......।

कपूर : और दिल्ली की वह जादूभरी ज़िन्दगी! वह मिरण्डा कालेज! वह ब्यूटी कम्पिटीशन में उसका सदा फर्स्ट आना। रंग-बिरंगी सहेलियाँ! नाच-गाने! कालेज टुअर्स और पिकनिक! लड़कियों में 'क्वीन' बन कर वह मस्त घूमना! यह थी तब वह लाजवन्ती! यह था उस मोहिनी का कुमारी रूप!

गंगादास : पर इसी में तो तुम ब्याह के बाद पागल हो गये। मोहिनी के इन्हीं रूपों की तुमने उपासना की! तुमने उसे इन रूपों से कभी ऊपर उठने ही न दिया। मनुष्य केवल भूख नहीं है। जैसे तितली केवल पंख नहीं है। तुमने जो चाहा, मोहिनी ने तुम्हें वही दिया। और मोहिनी ने जो चाहा तुमने भी उसे वही दिया! इसमें विवाह कहाँ आता है? धर्म और आदर्श कहाँ हैं इसमें? **(रुक कर)** तुमने उसे इतना अन्ध-समर्पण दिया कि सब कुरूप हो गया!

कपूर : आपका ख्याल ग़लत है। जो सुन्दर है वह कभी कुरूप नहीं हो सकता!

(भावना से अभिभूत होकर चुप रह जाता है, फिर तेजी से मुड़ कर भीतर दौड़ता है)

गंगादास : (दायीं ओर मुड़ कर) दर्शन! ओ दर्शन!

(भीतर से आवाज़ आती है : 'जी सरकार!')

गंगादास : जरा डॉक्टर चक को टेलीफोन कर देना कि मैं दस-पन्द्रह मिनटों बाद यहाँ से सीधे आँख के अस्पताल पहुँच जाऊँगा। कहना, वह घर पर मेरा इन्तज़ार न करें।

(भीतर से आवाज—'अच्छा हुजूर!' भीतर से खतों का ढेर लिये हुए कपूर का प्रवेश)

कपूर : ये हैं उस मोहिनी के प्रेम-पत्र! इन्हें पढ़ कर इस दुनिया में कोई भी यह नहीं सोच सकता कि उससे मेरा ऐसा अलगाव भी हो सकता है। मैं कैसे जानूँ कि इसमें क्या छिपा है!

गंगादास : क्यों नहीं! इस अलगाव को कोई भी विवेकवान बहुत पहले सोच सकता था! (रुक कर) इन प्रेम-पत्रों में तब तुमने प्रेम कहाँ देखा? इनमें तुमने महज वासना का अर्थ लिया। और वासना का परिणाम यही होता है! मृत्यु या अलगाव!

कपूर : तो आप इस परिणाम को जानते थे?

गंगादास : (चुप हैं)

कपूर : फिर आपने मुझे रोका क्यों नहीं? आपने मुझे चेतावनी क्यों नहीं दी? बोलिये, क्या आप यह चाहते थे कि मैं और मोहिनी इस तरह एक दिन ऐसे परिणाम पर पहुँच जायँ।

गंगादास : कपूर! (रुक कर) मुझे ऐसे जीवन का कोई अनुभव नहीं था। और न मुझमें तब इतना विवेक ही था! क्योंकि मैं तुम दोनों पर विश्वास करता था। आशा थी मुझे..... (रुक कर) अब इस नये दुख ने मुझे एक नया विवेक दिया। तभी मैं बिना किसी पछतावे के साफ देख रहा हूँ और आज तुमसे पहले अपने दोष को स्वीकार करता हूँ कि मैंने खुद तुम्हें जितने प्रेम से पाला उतना विवेक से नहीं। और तुम्हारे चरित्र-स्वभाव पर यह दोष दुगना हो गया। तुमने मोहिनी को जैसा भी हो सिर्फ प्रेम दिया, उसे अपना केवल प्रेम-व्यवहार दिया, उसे तुमने विवेक न दिया। न तुमने उसके साथ विवेक से कर्म किया।

कपूर : आखिर मैं क्या करता पिताजी? उसके इतने सहज प्रेम का उत्तर प्रेम ही हो सकता था!

गंगादास : यह सत्य केवल प्रेमी-प्रेमिका के लिये है—पति और पत्नी के लिए नहीं। (सोच कर) मोहिनी एक अनुराग-लता थी जिसे तुमने दिल्ली में उसके पिता के उन्मुक्त घर में स्वच्छन्द छोड़ दिया। उस अनुराग-लता को लखनऊ के इस

अनमेल विवाह

लिंकन और उसकी पत्नी मेरी के स्वभाव में ज़मीन-आसमान का अन्तर था। शायद ही लिंकन के पारिवारिक जीवन में खुशी का कोई क्षण आया हो। इसके बावजूद लिंकन ने इस

घर में तुम नहीं ला सके। उस मोहिनी-लता को तुम्हें पहले घर देना चाहिए था। तुमने उसे घर की रक्षा नहीं दी। फल यह हुआ कि अनुराग-लता को दिल्ली के खुले मैदान में भेड़-बकरियाँ चर गयीं। सोचो, स्वीकार करो इसे! आज इस तेजी से बदलते हुए नये समाज का यह नया दुख है।

कपूर : मैं क्या करता! विवाह के बाद मोहिनी को यह लखनऊ का घर अच्छा नहीं लगा। वह यहाँ आना पसन्द नहीं करती थी! वह केवल दिल्ली में ही रहना चाहती थी। यह घर! यह शहर!! यहाँ के लोग......!!!

गंगादास : क्यों पसन्द करती वह? आखिर क्यों? किसलिये? जब तुम खुद उसके अन्ध-प्रेम में दिल्ली में ही अपना बसेरा डाले रहते थे? फिर वह किस आकर्षण से अपनी दिल्ली की रंगीन जिन्दगी छोड़ कर यहाँ आती? मैं पूछता हूँ किस आकर्षण से दूल्हन अपने माँ-बाप, सखी-सहेली, घर-परिवार को छोड़ कर पति के नये घर में आती है? (रुक कर) वह अजब आकर्षण दाम्पत्य-सुख का होता है। और जब यह सुख उसे अपने मायके में ही सहज प्राप्त हो जाय, तो वह दूल्हन कभी भी ससुराल नहीं आ सकती! तब उसे उसके सास-ससुर कभी भी पसन्द नहीं आ सकते! अपने के सिवा उसे कुछ भी पसन्द नहीं आ सकता! और एक दिन वह अकेला पति भी उसे नापसन्द हो जायेगा। वह अनजान में ही उस पति से अलग होना चाहेगी। खैर!......अब से शिक्षा लो बेटे! अनुराग-लता को भेड़-बकरियों से रक्षा के लिए विवेक और मर्यादा की चहारदीवारी चाहिये। पत्नी को पति का घर चाहिये। नहीं तो पत्नी, पति के लिए केवल 'पार्ट टाइम वाइफ़' बन के रह जाती है। 'एंड ए मैन मस्ट हैव फुल टाइम वाइफ!' पूरी पत्नी! अधूरी नहीं।

(खिलखिला कर हँस पड़ते हैं। कपूर पत्रों की ढेरी पर गुस्से से हाथ मार कर उसे बिखेर देता है।)

कपूर : बन्द कीजिये अपनी हँसी पिताजी!

गंगादास : नाराज हो गये बेटे! यह मैं सिर्फ तुम पर नहीं हँस रहा हूँ, अपने पर भी हँस रहा हूँ। (खत बटोरते हुए) इन निर्दोष पत्रों ने क्या बिगाड़ा है! ये तो बेचारे पवित्र क्षणों के प्रतीक हैं। (देते हुए) लो, रखो इन्हें! ये तुम्हें अब नया अर्थ देंगे—अपना असली अर्थ!

बारे में कभी किसी को कुछ न कहा और न लिखा। एक दिन तो खाने की मेज़ पर अन्य लोगों की उपस्थिति में श्रीमती लिंकन ने गर्म-गर्म कॉफी अपने पति के मुँह पर फेंक दी। इस पर भी लिंकन ने चूँ नहीं की। हाँ, उसे सदा अपनी शादी पर आश्चर्य अवश्य रहा। अपनी शादी के एकदम बाद उसने अपने एक मित्र को लिखा था—"इधर कोई नया समाचार नहीं है, मेरे विवाह के अतिरिक्त—और वह भी मेरे लिए अत्यधिक आश्चर्य का कारण बना हुआ है।"

प्रेषक : मनोहर जुनेजा

(सहसा बाहर से कोई प्रभावशाली पुरुष आता है—बहुत ही 'टिपटाप', सूट में। आँखों पर काला चश्मा, कन्धे पर केमरा, हाथ में थर्मस।)

कपूर : कौन ?...आपकी तारीफ ?

पुरुष : मिस्टर महेन्द्र....फ्रेण्ड ऑफ मोहिनी दास, न्यू डेलही !

कपूर : (हाथ बढ़ाते हुए) ओह ! आई एम कपूर !

महेन्द्र : (बहुत ही प्रसन्न) गुड लक् ! (हाथ झकझोरते हुए) हाऊ डू यू डू !

कपूर : माई फादर......!

महेन्द्र : प्रोफेसर गंगादास ! नमस्ते....!

गंगादास : नमस्ते ! तशरीफ रखिये ! कैसे तकलीफ की आपने ?

(कपूर खड़ा है। पिताजी और महेन्द्र बैठते हैं।)

कपूर : चलिये, आइये, ड्राइंग रूम में बैठें !

महेन्द्र : नहीं जी, हम बिल्कुल ठीक हैं ! संग मोहिनी भी आयी हैं !

गंगादास : (आह्लाद से उठ कर) बहू आयी है ! 'रियली' ?

(कपूर चिट्ठियों को लिये हुए तेजी से अन्दर जाता है।)

महेन्द्र : जी हाँ, बाहर सड़क पर कार में बैठी हैं।

गंगादास : (बढ़ते हुए) अब तक बाहर सड़क पर ? ऐसी भी क्या बात ! (जाते हुए) बहू....! ....बहू....! !

कपूर : (भीतर से निकलते हुए) कैसी बहू ! आप क्यों दौड़े जा रहे हैं ? यदि उन्हें यहाँ आना है, तो वह खुद यहाँ आयेंगी। और उन्हें आना चाहिए—सच है, जो ग़लती मैंने ज़िन्दगी भर की, उसकी जड़ सचमुच आप हैं ! अनुराग में विवेक, अभी आप मुझसे क्या कह रहे थे ?

(पिता और पुत्र एक-दूसरे की आँखों में निहारते रह जाते हैं। इसी बीच बाहर से मोहिनी का प्रवेश ; सचमुच मोहिनी ! अवस्था तीस वर्ष से अधिक नहीं। सुन्दर युवती और उस पर अत्यन्त सुरुचिपूर्ण वस्त्र-विन्यास। गंभीर आँखें।)

मोहिनी : क्षमा कीजिये......नमस्ते !

(मोहिनी का यह करबद्ध प्रणाम पहले पिता की ओर उठता है, फिर कपूर की ओर जाकर जैसे एक क्षण के लिए वैसे का वैसे ही स्वप्नवत खिंचा ही रह जाता है। कपूर की आँखें झुक जाती हैं, फिर मोहिनी गंगादास को नमस्ते करती है।)

गंगादास : (भरी आँखों और कंठ से) प्रसन्न रहो बेटी ! बड़ी कृपा की ! बैठो ! नहीं, नहीं, आओ, घर में चल कर बैठो। (पुकारते हुए) बसंत !.... दर्शन !.... ....ओ बसंत !

(कपूर अन्दर चला जाता है। मोहिनी कुर्सी थामे खड़ी रह जाती है)

गंगादास : आओ, अन्दर चलें बेटी !

मोहिनी : नहीं पिताजी, यहीं बाहर ही ठीक है।

गंगादास : जैसी तुम्हारी मर्जी बेटी।

(मोहिनी को अपने पास की कुर्सी पर बैठाते हैं।)

मोहिनी : पिताजी, मुझे बहुत जल्दी है। मैं दिल्ली से यहाँ सिर्फ......।

(आगे जैसे बोल नहीं पाती)

गंगादास : ओहो ! आज सबको जल्दी है ! सबको जैसे कहीं न कहीं जाना है। मुझे हॉस्पिटल जाना था—डॉक्टर चक को अपनी आँख दिखाने। कपूर को

फोटो खिंचाने और तुम्हें बेटी ?......

मोहिनी : मुझे इसी साढ़े नौ बजे के प्लेन से दिल्ली वापस पहुँच जाना है। मैं अगले हफ्ते इङ्गलैण्ड जा रही हूँ।

गंगादास : कैसे बेटी ?

मोहिनी : दिल्ली कन्वेन्ट टीचर्स की एक पार्टी वहाँ 'स्टडी टूर' पर जा रही है—मैं उसी में हूँ।

गंगादास : ओहो ! तुमने 'कन्वेन्ट' में कब से टीचरी कर ली ?

मोहिनी : अब तो तीन साल हो गये !

गंगादास : ओहो ! मुझे तो कुछ भी पता नहीं। **(दुख से)** पर पता कैसे होता, तुम सदा दिल्ली ही रहीं और मैं यहाँ....।

(उसी समय बाहर से सीता का प्रवेश—भरी-पूरी लड़की, खूब शृंगार किये हुए। सबको अचानक देख कर कुछ लजा जाती है।)

गंगादास : **(उठ कर)** आओ बेटी ! यह है सीता....। इधर आओ बेटी, प्रणाम करो....देखो, मोहिनी बेटी आयी हैं !

(मोहिनी बढ़ कर सीता के प्रणाम लेती है।)

महेन्द्र : इन्हीं से मिस्टर कपूर का इंगेजमेन्ट हुआ है ? नमस्ते... .। कांग्रेचुलेशन्स !

(मोहिनी सीता के हाथ पकड़े हुए सस्नेह उसे निहारती रह जाती है।)

सीता : आप बैठिये न ! अभी आयी हैं ?

मोहिनी : बिल्कुल अभी। और अभी चली भी जाऊँगी।

सीता : **(सस्नेह)** आइये, अन्दर चलिये.... आइये न ! प्लीज़.....।

मोहिनी : बिल्कुल ठीक हूँ यहाँ !

गंगादास : अन्दर जाओ न बेटी ! आखिर यह तुम्हारा ही घर......। **(दुख से)** इस घर की तो इतनी किस्मत ही न थी। खैर....। **(जल्दी से)** सीता बेटी, पहले इनका कुछ आतिथ्य तो करो।

(सीता भीतर जाने लगती है, मोहिनी सस्नेह पकड़ लेती है।)

मोहिनी : नो, थैंक्यू, प्लीज़ ! अभी-अभी नाश्ता करके हमलोग यहाँ आये हैं। बात यह है कि....। **(रुक जाती है—भावनाओं में बँध कर)।**

(सीता अन्दर चली जाती है।)

गंगादास : हाँ हाँ, बोलो बेटी ! आज्ञा दो...।

मोहिनी : कैसे कहूँ मैं....।

('बैग' से एक कागज़ निकाल कर हाथ में पकड़े रह जाती है।)

महेन्द्र : मिस्टर गंगादासजी, यह मिसेज मोहिनी दास के 'डाइवोर्स पेपर्स' हैं। इन्हें देख लीजिये।

(महेन्द्र मोहिनी के हाथ से 'पेपर्स' लेकर गंगादास को दे देता है। महेन्द्र सिगरेट जलाता है और लम्बे-लम्बे कश लेने लगता है। मोहिनी का सिर झुक गया है।)

गंगादास : **(दुःख से)** इस 'पेपर' की क्या जरूरत थी बेटी ?....यह 'स्टेटमेन्ट' किसका तैयार किया हुआ है ?

महेन्द्र : मेरे 'फादर' का तैयार किया हुआ है। माई फ़ादर इज़ एडवोकेट, डेलही।

गंगादास : मोहिनी बेटी के पिता की राय से यह 'स्टेटमेन्ट' तैयार किया गया है ?

महेन्द्र : जी हाँ, उन्हें भी दिखा लिया गया है।

गंगादास : ओह ! **(पुकारते हुए)** कपूर... कपूर बेटे !

(भीतर से आवाज—'आया पिताजी')

मोहिनी : लेकिन यह सब 'पेपर्स' उन्हें क्यों दिखाइयेगा ?

गंगादास : बेटी, भोक्ता तो वही है। हम सब तो इस करुण खेल के महज़ तमाशबीन हैं।

(भीतर से कपूर का प्रवेश, पीछे सीता है, हाथ में कॉफ़ी की ट्रे लिये हुए, सामने टेबुल पर कॉफ़ी रखी जाती है। सीता मोढ़े पर बैठ कर कॉफ़ी बनाने लगती है।)

गंगादास: (कागज देते हुए) बेटे, ये कागज़ पढ़ लो।

(कपूर कागज़ पढ़ने लगता है। महेन्द्र कॉफ़ी पीना शुरू कर देता है। मोहिनी निस्तेज बाहर शून्य में देख रही है। सामने प्याला रखा हुआ है।)

गंगादास : (सीता से) थैंक्यू बेटी! अब तुम अन्दर जाओ।

(उसी समय भीतर टेलीफ़ोन की घंटी बजती है।)

गंगादास : देखो बेटी, किसका 'फोन' है? कॉफ़ी पियो मोहिनी बेटी! मेरी इच्छा है पियो...।

(सीता अन्दर जाती है। गंगादासजी भी कॉफ़ी पीने लगे हैं। मोहिनी सिर्फ़ एक घूँट कॉफ़ी पीकर रह जाती है, जैसे कहीं बहुत गहरे में डूबी हुई।)

सीता : (लौट कर) पिताजी, डॉक्टर चक का फ़ोन है, आपको फौरन बुलाया है।

गंगादास : (मोहिनी से) मैं अभी आया बेटी। जरा आँख के डॉक्टर के पास जा रहा हूँ, रात को इन आँखों में बड़ी तकलीफ़ रहती है। (उठ कर जाते हुए) अभी आया। जाना नहीं, हाँ!

(गंगादास का बाहर प्रस्थान। सीता अन्दर चली जाती है।)

कपूर : (कागज पढ़ कर) इन बातों के लिखने की क्या जरूरत थी? 'डाइवोर्स' के लिए इन भद्दे ग़लत कारणों को देना क्या उचित था? मेरे माँ-बाप ने आपको बहुत तकलीफ़ें दी हैं। यहाँ की घर-गृहस्थी आपको बीमार बना देती है। क्या यह सही है?

महेन्द्र : और आप क्या समझते हैं?

शॉ निरुत्तर हो गये

एक बार बहुत-से व्यक्तियों के बीच बैठे हुए बनार्ड शॉ खूब लम्बी-चौड़ी हाँक रहे थे। प्रसंग आने पर बोले, "स्त्रियों को अच्छी चीज पहचानने की अक्ल नहीं होती। वे स्वर्ग की तलाश में निकलती हैं, लेकिन नरक खरीद लाती हैं। किन्तु पुरुष का ध्यान हमेशा अच्छी वस्तु पर रहता है

कपूर : प्लीज़, यू कीप क्वायट! मोहिनी जी, मैं आपसे पूछ रहा हूँ, जो 'चार्जेज़' यहाँ लगाये गये हैं, वे क्या सच हैं?

मोहिनी : नहीं। कभी नहीं।

महेन्द्र : फिर भी 'डाइवोर्स' के लिए कुछ कारण तो देना ही है।

कपूर : आप मुझसे 'डाइवोर्स' कर सकें इसके लिए तो मैंने खुद कारण पैदा कर लिया है। (रुक कर) आपने नाहक इसके लिए मेरे निर्दोष पिता पर, मेरी दिवंगता माँ पर—जो आपको इस घर में पाने के लिए तड़प कर मर गयीं—कलंक लगाया। सारा कलंक आप मुझ पर लगातीं। यह है मेरा माथा। मैं सब सह लूँगा। आपने मुझे...।

मोहिनी : (सहसा) यह सब मेरा लिखा नहीं है, यह सब वकील की वकालत है।

कपूर : ठीक है। पर वकील की वकालत तो वहाँ लगती है, जहाँ कोई झगड़ा हो। यहाँ तो वैसा कुछ भी नहीं है। आपने अन्त में मुझे लिखा कि मैं 'डाइवोर्स' चाहती हूँ। 'सैपरेशन' पूरा हुआ। उसके बाद ही मैंने तुरन्त उसका अपनी ओर से कारण उपस्थित कर दिया।

और उसे ही हासिल करता है।"

वहाँ बैठी हुई स्त्रियाँ सोचने लगीं कि क्या तीखा जवाब दिया जाए, कि, तभी शॉ की पत्नी ने मधुर स्वर में कहा, "तुम्हारा ख्याल ठीक है, प्रिय! इसीलिये तो तुमने मुझे चुना और मैंने तुम्हें।"

शॉ से ज़वाब देते भी न बना।

—प्रेषक : सत्यदेवनारायण सिन्हा

पति का दूसरी शादी कर लेना स्त्री के लिए 'डाइवोर्स' की सबसे सरल स्थिति है। (रुक कर) मेरा सीता से 'इंगेजमेंट' हो गया—आप मुझे यूँ ही 'डाइवोर्स' दे सकती हैं। और 'डाइवोर्स' तो उसी दिन हो गया, जिस क्षण मैं आपके मन से हट गया। यह सारी कथा तो मन की है—इससे बाहर तो महज कागज का खेल जैसा है।

मोहिनी : मुझे अगले सप्ताह इंगलैण्ड जाना है।

कपूर : मुबारक हो! आप जरूर जाइये।

महेन्द्र : और आपकी दूसरी शादी? वह इसके पहले हो जानी चाहिये, ताकि 'डाइवोर्स' की कार्रवाई ठीक से पूरी हो जाय।

कपूर : आपकी तारीफ? मैं पूछता हूँ आप कौन हैं? मेरा मतलब इनसे आप का कोई रिश्ता है क्या?

महेन्द्र : यही...बस यही ..समझिये दिल्ली का रिश्ता।

कपूर : ओह! दिल्ली का रिश्ता। पिताजी सच कह रहे थे।

महेन्द्र : क्या सच कह रहे थे?

कपूर : कि मैंने...मैंने खुद इस...(सँभल कर चुप रह जाता है) 'आई हैड ए पार्ट टाइम वाइफ'। .. दिल्ली का रिश्ता ..! दिल्ली का रिश्ता !! दिल्ली !!! दिल्ली !!!! दिल्ली !!!!! जैसे दिल्ली को छोड़ कर अब हिन्दुस्तान में लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस वगैरह हैं ही नहीं।

महेन्द्र : (उठ कर) यह क्या अनाप-शनाप बातें कर रहे हैं आप? आपका दिमाग तो नहीं खराब हो गया?

मोहिनी : (जैसे चीख कर) महेन्द्र!... चुप रहो तुम।

कपूर : जी हाँ, मेरा नहीं तो और किसका दिमाग खराब होगा। खैर...छोड़ो। (रुक कर) तो आपका इनसे दिल्ली का रिश्ता है?

मोहिनी : (तड़प कर) मेरी इनसे शादी होने जा रही है।

कपूर : (और अधिक उद्दीप्त) यह झूठ है! मैं जितना तुम्हें जानता हूँ वह खूब जानता हूँ—यह झूठ है।

महेन्द्र : क्यों, आप दूसरी शादी कर सकते हैं तो यह नहीं कर सकतीं क्या? आपसे 'डाइवोर्स' होते ही हमारी शादी होगी।

कपूर : मगर तुमसे नहीं। आई नो मोहिनी।

मोहिनी : फिर आप मुझे नहीं जानते!

'डाइवोर्स' होते ही मैं इनसे शादी करने जा रही हूँ।

कपूर : मेरी निगाहों में तुम अपने को गिराने की बेकार कोशिश मत करो। मैं जानता हूँ तुम्हें...।

(मोहिनी टूट कर कुर्सी पर बैठ जाती है और अपने उमड़ते आँसुओं को दबाने के लिए अपने-आपसे लड़ रही है।)

कपूर : तुम्हारी खुशी के लिए मैं आज ही सीता से कोर्ट में जाकर शादी कर लूँगा। **(रुक कर)** तुम्हारे अनेक खत हैं मेरे पास—पिछले पाँच वर्षों में लिखे हुए। तुम्हारी इच्छा हो तो मैं उन सारे खतों को तुम्हें वापस दे दूँ।

(कपूर अन्दर जाता है। तेजी में खतों का ढेर लिये हुए वापस लौटता है।)

कपूर : ये हैं तुम्हारे खत—मैंने इन्हें एक-एक कर सँजो रखा है।

महेन्द्र : लाइये दीजिये। इनका अब आप क्या करेंगे?

(महेन्द्र बढ़ कर खत लेना चाहता है।) उसी क्षण मोहिनी जैसे सहसा जग जाती है।

मोहिनी : (उठती हुई) महेन्द्र, तुम दूर हट जाओ उन खतों से। उन्हें छूने तक का भी तुम्हें अधिकार नहीं है। **(रुक कर)** तुम सीधे 'कार' में जाकर बैठो।

(महेन्द्र बिना कुछ बोले बाहर चला जाता है।)

मोहिनी : (सामने देखती हुई) ये खत किसी और मोहिनी के लिखे हुए हैं—मेरे नहीं। मेरे तो ये कागजात हैं।

(टेबुल पर से अपने 'डाइवोर्स' के 'पेपर्स' उठा लेती है।)

मोहिनी : मैं तो यह हूँ।

कपूर : पर इसका कारण मैं हूँ, तुम नहीं। तुम तो एक अनुराग-लता थीं, जिसकी मुझे रक्षा करनी चाहिए थी। दोषी मैं हूँ, क्योंकि मैं तुम्हें दिल्ली के चंगुल से नहीं बचा सका। मैंने अपने स्वार्थवश तुम्हें वहीं रहने दिया। ओह, इतनी स्वतन्त्रता! मैंने ही तुम्हें गुमराह किया। मैं दोषी हूँ—मैंने तुम्हें पत्नी न समझ कर केवल प्रेमिका समझा। मैंने तुम्हारा धर्म नहीं समझा—मैंने तुम्हें केवल 'रोमांस' समझा। **(भरे कंठ से)** सच, ईश्वर को तुम्हें इतना सुन्दर और मोहक नहीं बनाना था।

(मोहिनी कुर्सी पर गिरी-सी, मुख छिपाये रो रही है।)

कपूर : तुम बिल्कुल निर्दोष हो मोहिनी।

मोहिनी : (सहसा उठ कर) मैं अपने को यहाँ निर्दोष सिद्ध करने के लिए नहीं आयी थी।

कपूर : कैसे भी हो, इतने वर्षों बाद तुम एक बार फिर यहाँ आयीं तो। तीन वर्षों के बाद की इस भेंट के लिए ईश्वर को धन्यवाद।

(सड़क पर से कार का तेज हार्न बजता है, फिर महेन्द्र के पुकारने की आवाज़ आती है।)

आवाज़ : मोहिनी जी, आइये!

मोहिनी : एक प्रार्थना है तुमसे! **(सिसकते कंठ से)** यू प्लीज चार्ज मी।

कपूर : तुम बेगुनाह को! ऐसा कभी नहीं हो सकता।

मोहिनी : तो मेरी सिर्फ यह आखिरी बात तुम नहीं मानोगे?

कपूर : क्यों अब ऐसी बातें करती हो? 'सैपरेशन' के गत वर्षों में मैंने अनुभव किया है कि स्त्री क्या है! तुम क्या हो?

मोहिनी : मैं क्या हूँ, बोलो!

कपूर : मोहिनी...!

मोहिनी : फिर जो सच है, वह तुम्हारी ओर से मैं खुद कहूँगी। मैं अपने अहंकार के भँवर में अपने-आपसे फँसी हुई उस मछली की तरह हूँ, जिसकी कोई गति नहीं। दिल्ली का वह अपना खूबसूरत बँगला, कन्वेन्ट की वह फैशनेबुल सर्विस, वह मेरा बैंक बैलेंस! और दिल्ली की इतनी सुन्दर जिन्दगी! —यह भँवर मैंने अपने अहंकार से बनाया। मैं... मैं...।

(बाहर से फिर लगातार कार का हार्न बजता है। उसी में मोहिनी की उमड़ती हुई सिसकियाँ डूब जाती हैं। महेन्द्र की पुकार आती है। मोहिनी कपूर के पास के पत्रों को अपने माथे से लगाती है, उन्हें जैसे अपनी आँखों में रख लेना चाहती है। फिर पत्र वहीं रख देती है और अपने 'पेपर्स' को लिये हुए बाहर जाने लगती है। बाहर जाते-जाते सहसा घूम कर।)

मोहिनी : बुलाओ, सीता को प्रणाम करूँगी। पुकारो...बुलाओ न उसे! नहीं बुलाओगे? मेरी अब कोई भी बात नहीं मानोगे?

कपूर : (मूर्तिवत खड़ा है।)

मोहिनी : (पुकारती है) श्रीमती सीता दास!

(भीतर से सीता का प्रवेश)

मोहिनी : नमस्ते।

(जैसे हाथ जुड़े ही रह जाते हैं। बाहर जाते-जाते सहसा मोहिनी झुक कर सीता के चरण छू लेती है, और तेजी से बाहर निकल जाती है। सीता और कपूर दोनों उसी दिशा में देखते खड़े रह जाते हैं। पृष्ठभूमि में कार स्टार्ट होकर चली जाती है। कुछ ही क्षणों के बाद दूसरी ओर से गंगादास जी का प्रवेश)

गंगादास : मोहिनी बेटी चली गयी क्या? लगता है, अभी-अभी गयी है। (रुक कर) कपूर बेटे, आओ मेरे पास आओ... सीता बेटी, तुम भी आओ।

(दोनों पिताजी के पास आते हैं)

गंगादास : (कपूर से) बेटे, इस तरह उदास क्यों? त्यागने वाला कभी नहीं उदास होता। (सीता से) क्यों बेटी, फोटो खिचाने जा रही थी न! मुझे भी अपने साथ 'फोटोग्रुप' में रख लो न! बीच में नहीं, इस तरह 'पोज़' बनाये किनारे खड़ा रहूँगा। और हाँ, फोटो घर में ही खिचेगी, हजरतगंज के 'स्टूडियो' में नहीं, हाँ!

(कपूर और सीता के मुख पर हँसी फैल जाती है। सीता झुक कर गंगादास जी के चरण स्पर्श करती है। गंगादास जी उसे संग लिये हुए भीतर जाते हैं।)

० पर्दा गिरता है ०

सूचना

लेखकों से सूचनार्थ निवेदन है कि केवल स्वीकृत रचनाओं की ही सूचना दी जाती है, और केवल वही अस्वीकृत रचनाएँ लौटायी जाती हैं जिनके साथ आवश्यक टिकट होता है। —सम्पादक

फेन्टेसी : एक थीसिस

और किसी ने मुझे सच्ची बात नहीं बतायी। सभी ने यही कहा कि बरसों पहले पिताजी त्रावणकोर के किसी नगर में रहते थे। समुद्र-तट के पास नारियल के पेड़ों की सघन छाया में पिताजी के एक अभिन्न मित्र का मकान था। सदाशिव नाम्बूद्रिपाद समूचे केरल में अपनी संस्कृति-निष्ठा और कला-सेवा के लिए आदरणीय थे। सभी ने यही कहा कि दस-बारह वर्ष वहाँ रह कर पिताजी दिल्ली चले आये, फिर वहाँ वापस नहीं जा सके।

और किसी ने मुझे सच्ची बात नहीं बतायी। दीदी ने कहा, नाम्बूद्रिपाद साहब की बड़ी लड़की दक्षिण की बहुत प्रसिद्ध नर्तकी है। यहाँ कला-भवन और विज्ञान-भवन में उसके नृत्यों का प्रदर्शन होगा। भरतनाट्यम्। दक्षिण का सुललित संगीत। मृदङ्ग पर सधे हुए हाथों की थाप। लय की तेज़ लहरें। पायल की बँधी हुई गति। झंकार। पाँवों की बँधी हुई गति। मुद्राएँ। अंग-प्रदर्शन। राग, अनुराग, विराग!

मैं साइन्स पढ़ता हूँ। फैरेडे और न्यूटन और आइन्स्टाइन से अलग हटने का साहस मुझे नहीं होता है। एम. एस-सी. में फर्स्टक्लास आना ही होगा, नहीं तो स्कॉलरशिप नहीं मिलेगा, नहीं तो केरियर बरबाद हो जायगा। कभी-कभी भाभी या दीदी के साथ पिक्चर चला जाता हूँ। कभी-कभी परिवार के साथ मुगल गार्डेन या इंडिया गेट भी चले गये। दो-एक बार वोल्गा या गेलॉर्ड भी चला गया हूँ। मगर, इससे आगे नहीं। साहस नहीं होता है। केरियर पर कोई दाग़ नहीं लग जाए। कहीं कोई देख न ले; आदित्यनाथ शास्त्री का बेटा आवारा हो गया है, ऐसी अफ़वाह न फैल जाए। फ़ैमिली प्रेस्टिज़ बड़ी बात होती है। केरियर सबसे बड़ी बात होती है।

मगर, सरोजिनी आ रही है। दिल्ली की प्रत्येक कला-संस्था उसका

उत्तराञ्चल और दक्षिणाञ्चल भूगोल के ही दो प्रतिपक्षी छोर नहीं हैं, सांस्कृतिक परम्पराओं और व्यवहारगत प्रचलनों के भी दो विभिन्न प्रतिनिधि हैं; आधुनिक ड्राइंग रूम दोनों को मिलाता है। और तब उपजती है एक 'फेन्टेसी' जिसमें तरंगों पर बहते हुए पुष्पहारों के बीच से प्रस्फुटित होती है एक सरोजिनी—एक समाहार, एक सिन्थिसिस की ओर उन्मुख!

स्वागत करेगी। और, वह हमारे यहाँ ही आ रही है। यहीं रहेगी। सरोजिनी नाम्बूद्रिपाद। नाम सुन्दर है, मगर उपाधि बड़ी अजीब है। उपाधि से क्या होता है, देखने-सुनने में बहुत खूबसूरत होगी। फिल्मों में दक्षिण की अभिनेत्रियाँ नाच पेश करती हैं। हमारी सरोजिनी भी वैसी ही होगी। सुघड़, सुन्दर, आकर्षक! और आइन्स्टाइन की थ्योरी ऑफ़ रिलेटिविटी? और, दक्षिण के तिरुवनमलाइ और मदुराइ और कांजीवरम् और मल्लीपुरम् के मन्दिरों पर अप्सराओं, यक्षिणियों और नर्तकियों की मूर्तियाँ? और, समुद्र के किनारे नारियल के जंगल? और, केरियर सबसे बड़ी बात होती है। मगर, सरोजिनी आ रही है।

पाँच बजे शाम को पिताजी की कार स्टेशन से वापस आ गयी। मुझे यूनिवर्सिटी जाना था। नहीं गया। बहुत कोशिश करके भी जा नहीं सका। अपने कमरे में टहलता रहा, खिड़की के पास खड़ा रह कर उदास होती हुई सड़कों को देखता रहा, सोचता रहा। भरतनाट्यम् की बात सोचता रहा।

पिताजी किसी तरह बड़ा-सा तानपूरा सँभाले कार से बाहर आये। फिर, एक इसराज बाहर आया। फिर, तबले के जोड़े। फिर, वायलिन। नाम्बूद्रिपाद साहब निकले। उनकी मिसेज बाहर आयीं। अठारह-बीस और बारह-चौदह की दो लड़कियाँ निकलीं। फिर, बाहर आ गयीं सरोजिनी। मैं किसी तरह भी खिड़की के पास रुक नहीं सका। स्टडी-टेबुल पर बैठ गया, और एप्लाइड केमेस्ट्री की एक किताब खोल कर उसमें डूबने, खो जाने की बेवकूफ़ कोशिशें करने पर आमादा हो गया।

घंटे भर बाद, रीता दौड़ी हुई आयी। हाँफती हुई, पलंग पर बैठ गई। बोली, "भैया, वे लोग कोई प्रेजेन्ट नहीं लाये हैं। किसी के लिए नहीं। कुछ भी नहीं। साऊथ के लोग क्या ऐसे ही होते हैं?



भरतनाट्यम्
एक फेन्टेसी : एक सिन्थिसिस

आते ही उन लोगों ने ड्राइंग रूम पर कब्जा जमा लिया है, और, तब से एक-एक कर नहा रहे हैं। नो कर्टसी! नो फॉर्मलिटी! मिसेज़ नाम्बूद्रि की नाक में कितना बड़ा हीरा है, तुमने देखा है भैया?"

मैं मुस्कुराया। मैं मुस्कुराया, और तानपूरे, और इसराज, और वायलिन, और तबले की जोड़ी की बात सोचता रहा। फिर, बोला, "रीता, अम्मीं से कहो, मेरी चाय यहीं भेज देंगी! मैं काम कर रहा हूँ।"

लेकिन, नहीं हुआ। चाय की टेबुल पर जाना ही पड़ा। नहाने-धोने के बाद, सरोजिनी दक्षिण के किसी मन्दिर की किसी दीवार पर बनाई गई कोई अप्सरा जैसी दीख रही थी। मोटे-मोटे होठ, भारी-भारी पलकें, और आँखों में तेज लहरों पर उछलती हुई नौका जैसी चंचलता। बड़ी ही उत्तप्त चंचलता।

पिताजी ने मुझसे उनलोगों का परिचय करवाया। मैंने खड़े होकर नमस्ते किया, और आँख झुका कर चाय पीने लगा। नाम्बूद्रिपाद साहब बातें करने लगे, "देखिए, मॉडर्न कल्चर ने हमें कितना नज़दीक ला दिया है। मैं केरल का संगीतज्ञ, और आप पंचनद के इंजीनियर। किन्तु, दोनों एक टेबुल पर आ गये हैं। वैसे, हमारी-आपकी संस्कृति और रीति-रिवाज में कहीं कोई एकता नहीं हैं।

"हम द्रविड़ हैं, और आप आर्य हैं। हमारी रामायण-कथा रावण को ऋषि और राम को नृशंस शासक मानती है। हम परम्परा और धार्मिकता में जितने बँधे हैं, जितने अन्धे हैं, आप उसके शतांश भी नहीं।

"मगर, परम्परा और प्राचीन संस्कृति और धर्मवृत्ति समाप्त हो चुकी है। सिर्फ़, वाह्य आडम्बर बच रहे हैं, वे भी बम्बई और मद्रास की फिल्मों और विदेशी रहन-सहन के अनुकरण, और व्यावसायिक बुद्धि के महासागर में डूब जायेंगे।

"शास्त्रीजी, इस दिल्ली शहर में कितने साऊथ इंडियन होटल और रेस्तराँ हैं, आप बता सकते हैं?"—नाम्बूद्रि साहब ने अचानक पूछ दिया तो पिताजी चौंक उठे। माँ ने उत्तर दिया, "हर चौराहे पर कोई न कोई मद्रासी कॉफ़ी हाउस है। और, अब तो दिल्ली के हर आदमी को इडली-दोसा और उपमा-उत्तपमा की आदत हो गई है। क्यों, वेद?"

मैं शरमा गया। मुझे कॉफ़ी अच्छी लगती है, मद्रासी खाना भी अच्छा लगता है।

सरोजिनी टिपिकल साऊथ इंडियन लड़की है। बंगलोरी सिल्क की साड़ी है, मगर, कितनी मजबूती से उसे पहना गया है। वह 'एलिगेन्स' नहीं है, जो हमारी तरफ़ की लड़कियों के पहनावे में होता है। कपड़ों का काम यही नहीं है कि देह की रक्षा करें, यह भी है कि देह को और भी खूबसूरत बनाएँ। सरोजिनी कपड़ों के कारण नहीं, अपने कारण सुन्दर दीखती है।

"शास्त्रीजी, केरल तो कम्युनिस्टों और कैथोलिकों और अँग्रेजी शिक्षा-पद्धति, और राजनीतिक चढ़ाव-उतारों के कारण संस्कृति-विहीन हो गया है। संस्कृति के नाम पर भाषा रह गयी है, साहित्य रह गया है, और यह नृत्य-शैली रह गयी है। कथाकली और भरतनाट्यम्! और कुछ नहीं रह गया है। मगर, आप आन्ध्र और मद्रास प्रदेश के अन्तर्भाग में चले जाइए। असली द्रविड़ संस्कृति वहीं है। मन्दिरों की संस्कृति। कुलशील और जाति-प्रधानता की संस्कृति। मैं संस्कृति का भक्त हूँ। मेरे कथन का अन्यथा

नहीं लीजियेगा"—नाम्बूद्रि साहब बोलते ही रहते, मगर मिसेज़ ने रोक दिया। चाय का कप खाली करके उठीं, और दूसरे कमरे में चली गयीं। पीछे-पीछे अठारह और चौदह वाली लड़कियाँ चली गयीं।

दीदी को गुस्सा आ गया। इस तरह टेबुल से उठ जाते हैं? दूसरे लोगों की चाय ख़त्म नहीं हुई है। वेद अभी दो कप चाय और लेगा। अभी सन्तरे और आम किसी ने छुए भी नहीं हैं। मेम साहब उठ कर चली गयीं! दीदी को गुस्सा आ गया। दीदी गुस्सा पी गयीं। अतिथि का सम्मान करना ही होगा।

शायद, सरोजिनी बात समझ गई। बोली, "माँ उठ कर चली गई। और कुछ नहीं लेना था, इसीलिए चली गयीं। जब तक सभी नहीं उठने लगें, नहीं उठना चाहिए। उसे यह मालूम नहीं है।"

मुझे सरोजिनी की बातें, और बातें करने का ढंग बहुत ही प्यार से भरा हुआ लगा। प्यार और शान्ति और आन्तरिकता से भरा हुआ। दीदी का गुस्सा पिघल गया। दिल्ली के शाहदरा रोड की शाम मुस्कुराने लगी।

शाम मुस्कुराने लगी, और अचानक मैंने अनुभव किया कि सबसे अधिक आकर्षण तो अपरिचय और रहस्यमय के प्रति ही होता है! सरोजिनी मेरे लिए कितनी अपरिचित है, कितनी रहस्यमय है! उत्तराखण्ड की समतल धरती से चल कर कितने हजार साल पहले हम द्रविड़ देश की विजय के लिए पहुँचे थे। हमारे दूतों ने कहा था, मन्त्र-लेखकों ने कहा था, दक्षिण देश की भूमि स्वर्ण की है, वहाँ के भवन स्वर्ण-हीरक मंडित हैं, वहाँ की सुन्दरियाँ अलकापुरी और इन्द्रपुरी की गन्धर्व और यक्ष सुन्दरियों और अप्सराओं से भी अधिक मदालसा, अधिक तिलोत्तमा, अधिक कामायिनी हैं। दक्षिणात्य हमारे लिए कितना आकर्षक, कितना रहस्यगुम्फित था! कितना गुम्फित है हमारे परिवार की यह अतिथि, सरोजिनी....

शाम मुस्कुराने लगी, और अचानक महा-केरल के समस्त मन्दिरों में स्वर्ण-रजत-लौह घंटों का क्रमबद्ध स्वरनिनाद गूँजने लगा। पार्श्व भाग से देवदासियों की कतारें बाहर आयीं। आरती के थाल, पुष्पमालाएँ, पायल की ध्वनि, ललित हास्य के स्वर, संगीत के स्वर, स्वरों का आरोह-अवरोह, स्वरों की उत्ताल तरंगें और तरंगों पर बहते हुए पुष्पहार!

वैदिक मन्त्रोच्चार से वातावरण कितना पावन, कितना मोहक, कितना स्वर्गिक हो गया है! तरंगों पर बहते हुए पुष्पहारों के बीच से एक पूर्ण प्रस्फुटित सरोजिनी की तरह सरोजिनी ऊपर उठती है। प्रणाम की मुद्रा में अँजलि, नमन की मुद्रा में नयन युगल, प्रणति की मुद्रा में देहयष्टि, श्रद्धा-समर्पण की मुद्रा में संपूर्ण अस्तित्व...

कितना फ़र्क है! आचार-व्यवहार में, भाषा में, रीति-रिवाजों में, उत्सव-समारोहों में कितना फ़र्क है! कोई एकता नहीं है, न वर्ण-गन्ध की, न रंग-रूप की! हम आर्य हैं, वे अनार्य नहीं हैं, द्रविड़ हैं। उनका रक्त नीलवर्णी है, हमारा रक्त ताम्रवर्णी! उनकी भाषाएँ बोधधर्मा हैं, हमारी भाषाएँ अर्थ-धर्मा!

......मैं केमेस्ट्री की किताब पर झुका हुआ था। रसायनों के मिलन की क्रिया-प्रति-

क्रिया के चित्र देख रहा था। लेकिन, मन बार-बार एक ही स्वरूप पर केन्द्रित हो रहता था, दक्षिण सागर के तट पर स्वर्ण-शिखरों वाले मन्दिर, और मन्दिर में देव प्रतिमा के सम्मुख पूजा-आराधन में नृत्यरता, समर्पिता देव कन्याएँ। देवकन्याएँ और एक देवकन्या, सरोजिनी! यह सत्य नहीं है।

यह यथार्थ नहीं है, कल्पना भी नहीं है, अति-कल्पना है, फेन्टेसी है!

किन्तु, क्या हम सभी लोग किसी न किसी आत्मवंचक फेन्टेसी के सहारे नहीं जीते हैं? वन-सभ्यता त्यागने की इच्छा, समतल भूमि में कृषि और उद्योग आरम्भ करने की इच्छा, गृह और परिवार, विवाह और सन्तानोत्पत्तिकी इच्छाएँ क्या फेन्टेसी नहीं हैं? मनुष्य-जाति स्वयं ही प्रकृति की सबसे विराट् फेन्टेसी है, कल्पनातीत, बोध-अगम्य, सृष्टि का अन्तिम रहस्य!

संस्कृति क्यों? धर्म क्यों? गृहस्थ-धर्म क्यों? हम सभी सागर-तट पर निर्मित मन्दिर क्यों बनें, सागर की स्वच्छन्द, स्वेच्छाचारी, फेनिल, श्वेत लहरें ही क्यों न बने रहें?

सरोजिनी फेन्टेसी है। वेद प्रकाश फेन्टेसी है। दोनों के परिवार, दोनों की पारिवारिक इच्छा-आकांक्षाएँ फेन्टेसी हैं!

फेन्टेसी : एक एन्टी-थीसिस

पता नहीं, बातें कैसे शुरू हुईं, मगर मकान के पीछे वाले बरामदे में पापा और शास्त्रीजी बैठे थे। माँ भी थीं। मिसेज़ शास्त्री भी थीं। मेरे पिता ब्राह्मण हैं, धर्मनिष्ठ हैं। मेरी माताजी ने भी तमिल और तेलुगु के धर्मग्रन्थ पढ़े हैं। अधिकांश धर्मकाव्य उन्हें कण्ठस्थ हैं। बातें चल रही थीं। फिर, मिसेज शास्त्री ने कहा, "दक्षिण के लोगों में धर्म के कुसंस्कार और अन्धविश्वास ही बच गये हैं, धर्म नहीं रह गया है।

"दक्षिण के मन्दिरों में देवदासियाँ नाचती हैं, और व्यभिचार होता है। ग्राम-नगर की नवपरिणीता वधुएँ पुरोहितों और धर्माचार्यों को एकान्त दीक्षा के लिए समर्पित की जाती हैं। पशुबलि तो नहीं होती है, किन्तु, कहीं-कहीं अभी तक नरबलि होती है। गाँधी महात्मा के अस्पृश्य-आन्दोलन के बाद भी, दक्षिण के ब्राह्मण अन्य जाति के लोगों को नीच और अछूत मानते हैं। अर्थात्,

"दक्षिण पुरातन-पन्थी है, प्रतिक्रियावादी है, हर दिशा में आधुनिकता का विरोधी है।"

बात धर्म से चली, और भाषा पर आकर रूक गई। तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और अन्त में मलयालम! इनका साहित्य क्या है? केरल प्रदेश में अभी भी अँग्रेजी का राज है।

पिताजी ज़रा नाराज़-से हो गये। बोले, "अँग्रेजी का राज नहीं है। दक्षिण के लोग हिन्दी का स्वागत करते हैं, आदर करते हैं। लेकिन, इस बात का विरोध तो करना ही होगा कि हिन्दी हमारे सिर पर जबरदस्ती लाद दी जाए, स्नेह-सद्भावनापूर्वक हमारे हृदय में बिठायी नहीं जाए।"

विवाद यहीं से शुरू हुआ। शास्त्रीजी भाषा के आधार पर राज्यों के बँटवारे की बात पर आ गये। टीका-टिप्पणी होने लगी। उत्तर और दक्षिण की भाषाओं तक बातें सीमित नहीं रहीं, खान-पान और रहन-सहन पर नीचे उतर आयीं।

मुझसे वहाँ रुका नहीं गया। उठी, और बरामदे में टहलती रही। फिर, ड्राइंग

रूम में आ गयी। शास्त्रीजी की बड़ी लड़की से साऊथ इंडियन फिल्मों पर बातें करती रही। फिर, अचानक इच्छा हुई, वेद के कमरे में जाऊँ। अपने परिवार से कितना अलग, और कितना अधिक शान्त-स्थिर युवक है......

पता नहीं, उसे पता है या नहीं? हम-लोग यहाँ क्यों आये हैं; हमारे नगर में हमारे साथ रहते समय शास्त्रीजी ने हमारे पिताजी को क्या वचन दिया था, उसे पता है या नहीं?

बीच में विंध्याचल का पर्वत है। विराट वन हैं, पहाड़ी रास्ते हैं, विकट नदियाँ हैं, कोई भी सूत्र नहीं था, जो उत्तर और दक्षिण को एकसूत्र कर सकता। कहते हैं, पहले बीच में समुद्र था। समुद्र के गर्भ से ही विंध्य पर्वत-माला की उपत्यका प्रकट हुई। दक्षिण का पथरीला प्लेटो विंध्याचल से जुड़ गया। दक्षिण उत्तर से जुड़ गया। क्या इसकी पुनरावृत्ति नहीं होगी?

वेद ने हम दोनों के लिए अपने हाथों से स्टोव पर कॉफ़ी बनायी। फिर, किताबें बन्द करके मुझसे बातें करने लगा। वृन्दा-वन गार्डेन्स से लेकर सेतुबन्ध रामेश्वरम् तक की बातें। महाकवि वल्लतोल और सुब्रह्मण्य भारती की कविताओं से लेकर ट्रावन्कोर सिस्टर्स की नृत्य-गरिमा तक की बातें! बातें करने की इच्छा हो, और सुविधा हो तो बातों का अन्त नहीं होता है। सीमा नहीं होती है......

तब, मैंने कहा, "स्वभाव से ही दक्षिण के लोग हिसाब-किताब करके काम करने वाले, और भविष्य से डरते रहने वाले होते हैं। दक्षिण में अधिक युद्ध नहीं हुआ है, कभी कोई क्रान्ति भी नहीं हुई है। अग्निकाण्ड नहीं हुआ है, जल-प्रलय भी नहीं।

"वहाँ की नदियाँ दो किनारों की सीमा कभी तोड़ती नहीं हैं। वहाँ के वृक्ष कभी पुष्प-फल-पत्र से विहीन नहीं होते हैं। वहाँ का समुद्र कभी अशान्त और क्रुद्ध नहीं होता है। वहाँ के लोग जीवन भोगते हैं, जीवन से विद्रोह नहीं करते।"

वेद ने उत्तर दिया, "दक्षिण का शास्त्रीय संगीत मुझे बहुत पसन्द है। सिर्फ, इसलिए पसन्द है कि उसमें राग का स्थायित्व होता है, शान्ति होती है, विद्रोह नहीं होता। भरतनाट्यम् के नृत्य मुझे पसन्द हैं, क्योंकि उनमें पूजा-भाव होता है, प्रणय होता है, लास्य होता है, ताण्डव नहीं।"

मैं मुस्कुराने लगी। मैं प्रसन्न होने लगी। दक्षिण और उत्तर का मिलन कितना सहज है, कितना स्वाभाविक है।

मैंने कहा, "मेरे अपने मामा नहीं हैं। एक दूर के रिश्ते के मामा थे, उन्होंने एक क्रिश्चियन लड़की से विवाह कर लिया है।"

मैं छल-कपट करना नहीं चाहती थी। वेद को भ्रम में रखना नहीं चाहती थी, कि मैं दिल्ली में केवल अपने नृत्य-कौशल का ही प्रदर्शन करने आयी हूँ। कौशल मुझ में कई हैं। नृत्य है, और संगीत है, और मैं जीवन के कटु यथार्थों से अनभिज्ञ, घर-परिवार की शीतल छाया में पली हुई युवती हूँ।

"मामा ने विवाह कर लिया, इससे तुम्हारा क्या लाभ-नुकसान हुआ?"—वेद ने तत्काल प्रश्न किया। मैं इसी प्रश्न की प्रतीक्षा में थी। बोल उठी, "मैं मुक्त हो गयी, वेद! नहीं तो मुझे विवाह के

लिए उनकी ही प्रतीक्षा करनी पड़ती। मेरा दिल्ली आना नहीं हो सकता। तुमसे मिलना नहीं हो सकता, किसी प्रकार भी नहीं....."

मेरी आँखों में स्त्रीसुलभ लज्जा की रेखाएँ फैल गयीं। पलकें नीचे झुक गयीं। मैंने दूसरी ओर मुँह फेर लिया। इससे अधिक मैं कह भी क्या सकती थी, कर भी क्या सकती थी। लेकिन, मेरी सलज्ज स्पष्टता का अर्थ वेद ने ग़लत लगाया। वह बिजली की तेजी से अपनी जगह से उठा, और मेरे नज़दीक, बहुत नजदीक आ गया। मैं शर्म से, और अज्ञात भय से, और एक विचित्र-सी उत्सुकता से जड़ हो गयी।

"नहीं, नहीं, मेरा मतलब यह नहीं था! अभी समय नहीं आया है, अभी अवसर नहीं आया है। हे कृष्ण महाराज, अभी शरत्पूर्णिमा में देर है। अभी कुसुमकलिका को प्रस्फुटन की आज्ञा नहीं है। अभी मार्ग में परम्परा है, प्रथा है, धर्म है, कितने ही सामाजिक संस्कार हैं...."

मगर, वेद रुका नहीं। उसने मुझे अपनी पुष्ट बाहों के घेरे में बाँध लेना चाहा। मैं भी रुकी नहीं रही। मैं भरतनाट्यम् के प्रणाम और नमन और प्रणति की मुद्रा बन कर रुकी नहीं रही। मैं कत्थक नाच की गतिशीलता बन गयी। मैं सम से उठ कर द्रुत पर आ गयी। उसकी बाहें खुली की खुली रह गयीं, किसी ठोस और मजबूत आकार को घेरे में क़ैद नहीं कर सकीं।

वह हतप्रभ और उदास और अपमानित होकर पलंग के एक किनारे बैठ गया। सिगरेट जला कर पीने लगा। फिर बोला, "आइ एम वेरी सॉरी।" बस, अंग्रेजी में एक वाक्य बोला। सिगरेट पीता रहा। सोचता रहा।

मैंने पूछा, "अपने पिता का वचन तुम अपने स्वर में दुहरा सकते हो, वेद!"

वेद मेरी बात समझ गया और सोचता रहा। सोचता रहा, और किसी निर्णय तक पहुँचने की अथक चेष्टा करता रहा।

वेद किसी एक किनारे पर पहुँच जाने की अथक चेष्टा करता रहा। किन्तु, पहुँच नहीं सका, शायद! फिर भी, वह उठ कर खड़ा हो गया। उसकी आँखों में बर्फ़ीले पर्वत थे, और गर्म पानी के झरने थे, और आग थी, सिर्फ आग थी।

वह मेरी ओर बढ़ आया, और मैं भय से, आतंक से चीख़ पड़ी। मैं चीख पड़ी और मेरी चीख पूरे कमरे में, पूरे मकान में, पूरे मुहल्ले में, पूरे शहर में देर तक और दूर तक दौड़ती-भागती रही, भटकती रही। हमारी रामायण में ठीक ही लिखा है। सीता का हरण दक्षिण के रावण ने नहीं, उत्तर के राम ने किया था।

मेरी चीख़ सुन कर शास्त्री-परिवार और नाम्बूद्रि-परिवार के सारे लोग वेद के कमरे में दौड़े आये।

फेन्टेसी : एक सिन्थिसिस—

वेद ने मुझसे, या मेरे पिता से, या मेरी माताजी से कोई क्षमा-याचना नहीं की। मैं चुपचाप कमरे से बाहर चला गया। मैं दीवार से सटी चुपचाप खड़ी रही, आतंकित ही नहीं, मृत।

रात भर किसी को नींद नहीं आयी। सुबह होते ही हमलोग एक होटल में रहने चले आये। •••

भगवान सिंह

घूमता हुआ कैमरा और गाँव की पारिवारिक तस्वीरें

एक बिगड़ैल बेटा जिसे बाप से शिकायत है, एक दायित्वहीन बाप जो बेटे को आवारा समझता है, एक भाई जो आल्हा गाता है और मस्त रहता है, एक कुम्हार जो पत्नी को ठोक-पीट कर उसी तरह घड़ देना चाहता है जैसे मिट्टी को......आदि-आदि चरित्रों के स्नैपशॉट जिनके माध्यम से हम गाँव के पारिवारिक जीवन का चल-चित्र देख सकते हैं।

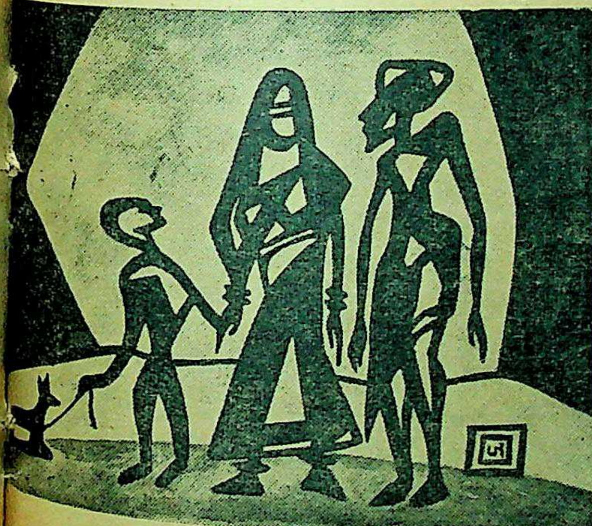
• • •

पहली तस्वीर

लौटू सिंह कूएँ की जगत पर बैठे ज्ञान की बात कर रहे हैं। परशुराम ने माता का सिर काट कर पिता की आज्ञा का पालन किया.. इसी समय लौटू सिंह का लड़का नरेश पैर में काला धागा और हाथ में लाठी लिये सामने से निकलता है। लड़के को देख कर लौटू सिंह का चेहरा घृणा से बिदक जाता है। मुँह की सुरती पिच्च से बगल में थूक देते हैं।

काशी सिंह चर्चा को बदलते हैं, "यह तो कहीं कमा-धमा रहा था न। इसे क्यों नहीं फिर वहीं भेज देते।"

"आप तो ऐसी बात करते हैं जैसे मैं ही रोके हुए हूँ। ई साला हटने का नाम ले तब तो।"



एक ग्रामीण परिवार
डॉ० जगदीश गुप्त द्वारा गेरू से अंकित एक चित्र

बात लड़के के कान में पड़ जाती है। वह मुड़ कर खाँसता है और दाईं आँख को दाब कर मुस्कराता है। हाथ की लाठी को कन्धे पर रखता है और सीना उतान करके गाता है :

रेशम कै धगवा गटइया बीचे सोहत बाटे
सिरवा पर सोहत बाटे झागुँड़ झागुँड़ बार
चान कै टुकड़वा जगतिया पर सोहत बाटे....।

लौटू सिंह पराजित-सी हँसी हँसते हैं, "जौन कहा है कि जो केहू से नहीं हारता है वह अपने जन्मे से हारता है तौन झूठ नहीं है।"

और काशी सिंह समर्थन में हँसते हैं। अपना निर्णय देते हैं, "असल में आपने पहिले तो ध्यान दिया नहीं अब क्या बस में आयेगा।"

"अरे बाबू जरिये से मारता ही पीटता तो आ रहा हूँ। इसी के पीछे तो मैं भी बेहया हो गया, लेकिन ई अपनी चाल छोड़े तब तो।"

"कह तो रहा था 'अपने ही कहते थे आज भैंस के लिये चारा नहीं है जा किसी के खेत से काट ला और काट कर लाता और कोई उलाहना लिये चला आता तो उल्टे मुझको ही मारते थे। यह हमारे बाप हैं!' अब कौन उसे समझाने जाय?"

"हाँ भाई, अब तो हम बुद्धू हो ही गये हैं।" लौटू सिंह का ध्यान सुर्ती की ओर जाता है, "अरे सुर्तिया क्या हो गई भाई?"

काशी सिंह हँसते हैं, सुर्ती निकाल कर देते हैं, "एक बात मेरी मानिये। इसकी शादी कर दीजिये तो सब ठीक हो जायगा।"

"हेंह, आपहू क्या बोलते हैं काशी बाबू? अब एक ठो और लाकर घर में बैठा दें, जो है सो तब उसकी भी जान आफत में डालें।"

काशी सिंह नरेश को देखते हैं जो अपने एक साथी के साथ लौटता हुआ बात कर रहा है, "बाबू लौटू सिंह चाँद केऽ टुकड़ा हवैं। चेहरा पर उर्दू लिखता है।"

दूसरी तस्वीर

भंइस बिआनी मोहबा गढ़ में
पड़वा गिरा फर्रुखाबाद
इहाँ की बातें इहवें छोड़ो
अब आगे कर सुनो हवाल...

'तिनक धिन् धिना। तिनक धिन् धिना। तिनक धिन् धिना।' रामबेलास सिंह आल्हा गाते हैं।

"रमबेलास बबुअवा मस्त जीव है। 'न आगे नाथ न पीछे पगहा, खा मोटा के भइलें गदहा।' चण्डी बाबू कमवे करते-करते मरते हैं, और सुद्धे खनवो नहीं मिलता है। पिछले जनम का कर्जा भर रहे हैं।" छेदी तिवारी अपनी आदत के अनुसार राह चलते बोले जाते हैं।

चण्डी सिंह के कान में आवाज़ पड़ती है, "सुनऽ छेदी बाबा।"

छेदी बाबा लौट पड़ते हैं।

"सुनऽ, हाथी हर चलावे के नाहीं राखल जालो। दुआरे केऽ शोभा है। कमालें बैल, आ खाला हाथी। समझलऽ? रामबेलास हमरे घर के हाथी हवें।"

"तो उस दिनवा क्यों रो रहे थे कपार पर हाथ देकर?"

"भाई केऽ भाई नाहीं मारी त केहू गैर मारीऽ? उहे न मरलसि। आ ओहि दिनवा नाही देखल कि बरमदेव के छाती पर चढ़ि बइठल तनिके हमे बोलि दिहलें तऽ।"

बात बढ़ते देख कर रामबेलास सिंह ढोल बन्द कर देते हैं। यह देख कर छेदी बाबा का प्रान सूखता है, "अरेऽ है जब आप ही मनवा बढ़ाए हुए हैं तब हम क्या बोलेंगे ?" और वह अपनी राह लेते हैं।

रामबेलास सिंह देखते हैं कोई खास बात नहीं हैं, फिर ढोलक सँभालते हैं :

तिनक धिन् धिना !

'अरे नाचत केऽ पट घूँघुर टूटे
गावत ताल भंग होइ जायँ
अरे रण के भीतर तेगा टूटे
अरे तीनों खड़े-खड़े पछितायँ।'

तीसरी तस्वीर

झिलमिट बो कोहाइन असली चीज़ का नाम लेकर गाली देती है, "आउ-आउ मले-च्छवा। आउ फेर लेले जो।" वह बहुत अशिष्ट संकेत करती है।

और झिलमिट फिर लौट कर उसे पीटता है, "साली अब भी चुप नहीं होगी ?" वह उसकी चोटी पकड़ कर जोर से झटका देता है और उसकी औरत मुँह के बल गिरती है। झिलमिट का बाप चाक छोड़ कर बढ़ कर उसे अलग खींचता है "अब हो गई न तुहरो वाली।"

लक्ष्मी शुकुल पास के रास्ते पर जाते-जाते तमाशा देखने के नाम पर रुक जाते हैं, "क्या है रे ?"

"बाबा ई साला जब देखीं तब करकच, जब देखीं तब करकच। दिन भर काम करके आवे तऽ इहाँ पहुँचतेऽ और कुफुत। अब आज देखीं तऽ खइले खातिर झगड़ा। और हई बूढ़ भइलें न, इनहूँ के तनिको जो विचार रहत। अब दू कवर कमे हो गइल त झगड़ा करे के है। आ ई साली एके सौ बेर समझवलीं कि हम्में कम हो जाय लेकिन दादा के कौनो चीज़ु कम नाँहि होखेके चाही लेकिन ई काहे के सुनेऽ।"

लक्ष्मी शुकुल एक मसखरा है, "अरे हमे तऽ बुढ़वो बदमाश मालूम होला। कुछ कहत होईऽ।"

गुस्से में भी झिलमिट को हँसी आ जाती है, "रउरे त बाबा आठो घरी....।"

"आखिर बात का है ?" लक्ष्मी शुकुल फिर थोड़ा गम्भीर होकर पूछते हैं ?

"बात इहै है कि आज दु ठो मकुनी (मटर की मोटी रोटी) बनवले रहलि है। आधी-आधी सबके रहल है। दादा थोड़े और माँगत रहलें हैं, तऽ ई आहि पर हमरे अवते बड़बड़ाति है कमाये-धमाये के कुछ नाहीं आ खइहें सबके दूना। मरीं ई का जानी कब। आ ओंह से ऊ गरजत हवें। अब हम केके केके समुझाईं। एक रहै त एक। मरले पर ई हालति है।"

चौथी तस्वीर

राम नारायन तिवारी के लड़के ने साढ़े तीन रुपये में तहमद खरीद कर पहना है और पहन कर बाहर निकला है। राम नारायन तिवारी दरवाजे पर छड़ी लिये बैठे हैं, "साला जो भी धरम-करम है उसका भी लोप करेगा यह कुलांगार। एक तो तहबन्द पहना और वह भी घूमने निकला है गाँव। आवो तब बताते हैं। आज तहबन्द पहनेगा, कल जनेऊ उतार कर फेंक देगा, परसों ताड़ी पियेगा तब तो चल चुका राम नारायन तिवारी का नाम !"

तिवारी जी का लड़का धीरे से चोर की

तरह घरमें घुसना चाहता है कि पकड़ा जाता है और राम नारायन तिवारी उसके ऊपर छड़ी की निरन्तर बरसात करते हैं, "साला तहबन्द पहनेगा ! धरम बेचेगा !!"

लड़का रोता हुआ भी भय से सिकुड़ा खड़ा है। भाग वह सकता है पर भागने के लिए भी साहस की आवश्यकता है जो उसमें नहीं है।

जगन्नाथ पंडित जजमानी से आते हैं, "क्या बात है राम नारायन ?" राम नारायन जगन्नाथ पंडित के छोटे भाई हैं।

"यही देखिए न यह अब हम लोगों की नाक कटाने को पैदा हुए हैं। देखिये न यह तहबन्द !"

"अब नहीं रहेगा धरम-करम ! अब हमीं लोगों के साथ अन्त है इसका।" और जगन्नाथ पण्डित क्षोभ में घर में चले जाते हैं।

"आ जब आप अस्पतलहिया बल्टिया में नहाते हैं तब धरमवाँ कहाँ चला जाता है ?" भीतर दरवाजे से जगन्नाथ पंडित की बीवी राम नारायन पंडित को फटकारती है।

"क्या उसमें भी पैसा लगा है ? वह तो भैया को मिल गया थत से तो मिल गया।"

"तो ले जाकर काट कर फेंक दो लड़कवा को।" जगन्नाथ पंडित की बीवी दरवाजे का पल्ला क्रोध में बन्द करते हुए कहती हैं।

पाँचवीं तस्वीर

भिरगू लाल और रघुपति हजाम मिल कर यह तै कर रहे हैं कि गाँव का कौन किससे फँसा है और सबसे आवारा औरत कौन है। पहली बात तै हो चुकी है, कुछ केस विचाराधीन रह गये हैं। रघुपति हजाम को कुछ कम दीखता है पर गाँव की सारी खबर उसको पता रहती हैं। 'अलगू कोइरी के यहाँ एक पहुनी आई है। समदेइया का 'दीन' घर गया है। पटेसरी अब 'जमक' रही है।'

भिरगू लाल की बीवी दरवाजे की फाँक से इधर देखती हैं। रघुपति एक चिबिल्ला है। बूढ़ा हो गया पर सबसे छेड़-छाड़ करता चलता है। भिरगू लाल की बीवी पर निगाह पड़ती है तो बोल पड़ता है : "का हो पतोहा, तू का ताकत बाटू, खिस्सा है—

'ए पतोहा मुल्ला लेबू
का बाबा टिहु एवेलऽ।'

और भिरगू लाल की बीवी भीतर भाग जाती हैं। फिर एक मिनट बाद एक लोटा पानी रघुपति के ऊपर पड़ जाता है।

रघुपति उछल कर अलग हो जाता है : "डार लऽ डार लऽ। खिस्सा कहते हैं, फागुन भर बाबा देवर लागें।"

भीतर भिरगू लाल की लड़की शीला और तीन लड़के 'हा-हा, हा-हा' करके हँसते हैं।

"अरे लड़कों की भी कुछ लाज-शरम करते नहीं बनता।" भिरगू लाल को बुरा लगता है कि यह रघुपति अब उनके सामने ही उनकी बीवी से भी वही मजाक करे जो सबके यहाँ करता है पर क्रोध उन्हें आता है अपनी बीवी पर। इसे क्या पड़ी थी पानी डालने की, "चार-चार बच्चे हो गये और तिस पर यह हाल है।"

"जाये देईं बाबू इहेऽ तऽ जिनगी में बा।" रघुपति अपना छुरा-चमौधा काँख में दाबता बाहर निकलता है।

लाला जी की पत्नी दरवाजा खोल कर खड़ी हो जाती हैं, "सब शरम-लाज हम्हीं

कर आप तो सब पी गये हैं। बूढ़े हुए और गाँव भर की इज्जत का लेखा ले रहे हैं। मैं क्या जानती थी कि कौन बैठा है कौन नहीं। वह तो शीला यहाँ से सुन कर गई तो बरबराने लगी तो मैं उठ कर आई।"

ग्रूप चित्र

जद्दू बारी के घर में सुमेसर ब' लोहाइन, रमजान ब' दरजिन और तिलेसर ब' कहाइन एक साथ बैठी हैं। जद्दू बारी की चारों पतोहें साथ ही बैठी हैं। पास में बुद्धन सिंह की लड़की जद्दू ब' का दिया हुआ भूना चबा रही है।

"ए लड़किया के खाना नाहीं मिलेला का हो, देखऽ कस चरर-चरर चबातिवा हइ ठुरिया।"

"अरे कुछ हो त है सवतिनिये के लड़की न!"

"नाहिं ए भाई, सवतिनि कहई भरके हई बुद्धन बाबू ब'! नाहिं तऽ का आपन महतारी एतना मानी केहू के।"

"तुहऊ कहाँ सुनि रखलू ह। अरे हमरन के त घर-घर के कीरा हई। हमरन से का छिपल बा। आपन केतनो हो तऽ आपनें है। इतऽ कह कि घरवा में चार परानी अवर बाटी।"

"आ बुद्धन बाबू नाहिं बोलेंले कुछ?"

'बोलिहें का चालीस बरस में तऽ बिआह भइल हऽ। जवान मेहरी, नखरे नाहीं सोझ होला। लरिकन के के पूछेलाऽ।"

"अलवत्ता मेहरी रहली हऽ दूधनाथ बाबू ब'। कहेके तऽ नांहि लेकिन हम जब-जब जाईं उनके घरे तब-तब कुछ न कुछ अँचरा में डरले बिना आवहीं नांहि देति रहली हऽ।"

"ए बाबू रहलि होइहें तुहरे खातिर दूध केऽ धोवल ओकर हालि दूधेनाथ बाबू जानत होइहें। खपड़ा पर कऊआ त बइठहीं नाहिं दें ऊ।"

"नाहिं ए भाई। केहू के झूठे अलहन नाहिं लगावे के। हम खुद देखले बाटीं दूधनाथ बाबू जहिआ कहीं बाहर चलि जालें तहिआ एक तिरिन मुँहें तर नाहीं डारेलीं।"

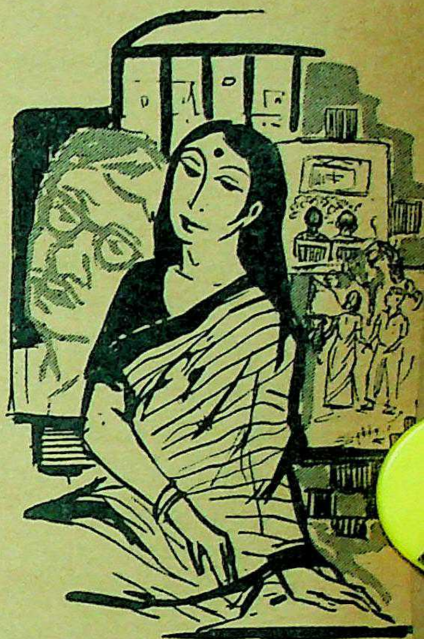
"अरे बहुत देखल बा ई तिरिया चरित्तर। हाथी केऽ दाँत खाए के और देखावे के और। बनिहें पतिबरता आ बंशी बाबू से फुसुर-फुसुर अकेले में बतिअइहें।"

"ई हाल त बड़का लोगन के बा। हमरन के तऽ अबहिन भाई बिरादरी के डर कुछ ऐसन चलि आवत बा कि कुछ करत करेजा काँपेला। राखि त लिंहले रहले सुखू कहार अपने भउ-जाई के। भात देत-देत जान निकलि गइल।"

"आ हई जवन बखानल (प्रशंसित) बाबू लोग अंगरेजिया चार अच्छर पढ़ि ले ले बा उन्हने पाँच के मतिया तऽ अउर मारि गइल बा। किरपा बाबू के माई के समनवें दिनवें मेहरारू से बतिअइहें। अबहिन चारि दिन के दुलहिन न लाज न शरम।"

"तुहन के कवनो काम-धाम नाहिं रहेला का रे। जब देख तब लोक के निन्दा। अब्बे एहि में से कौनो जाके लहरा जोरि देई त पीठि के चाम छूटि जाई जवन सटर-सटर जीभि ए घरि चलति बा तवन।" बगल के कमरे से जद्दू ब' बोलती है और रमजान ब' उठती है, "ए बाबू हमते चलत हईं अबहिन दू ठो कमीजे सिये के बा।"

और धीरे-धीरे पंचायत बरखास्त हो जाती है। ◉ ◉ ◉



शशिप्रभा शास्त्री

अरसिक व्यवहार का अभ्यासी रुचिर और असीम ऊब में त्रस्त सीमा जीवन के जिन छोटे-छोटे क्षणों में रहकर अपने परिवार की दुर्वह गाड़ी को खींचे जा रहे हैं उसकी प्रत्येक लीक गहरी काट करती जा रही है, कलेजे में !

● ● ●

आज सीमा के हृदय का उन्माद फिर जागा और वह सीधी रुचिर के कमरे में घुसी चली गयी। रुचिर सदा की तरह अपनी किताबों में सर गड़ाये बैठा था।

"उठो, देखो कैसी ठंडी-ठंडी हवा चल रही है !"

"तो फिर, दरवाज़े बन्द कर लो और अपना काम करो।"

"अपना काम ? मुझे कुछ काम नहीं है, इस समय।"

"तो फिर, क्यों परेशान करती हो ?" रुचिर ने बिना आँखें उठाये हुए ही उत्तर दिया और कागज़ निकाल कर कुछ लिखने लगा।

"तुम्हें नहीं अच्छी लगती यह ठंडी-ठंडी हवा, ये नन्हीं-नन्हीं रिमझिमाती बूंदें ?" सीमा ने बात को स्पष्ट करने की एक बार फिर चेष्टा की, पर रुचिर ने उसी तरह सर झुकाए हुए ही कहा, "नहीं।"

ये छोटे - छोटे क्षण

सीमा रुचिर की आँखों से दूर हट कर खिड़की के पास खड़ी हो गयी। उसने आज मेंहदिया रंग की साड़ी पहनी थी। घूम कर लपेटा हुआ वह नरम मासूम पल्ला खिड़की से बाहर फरर-फरर करता हुआ उड़ रहा था, जैसे उसका भटकीला मन।

नन्हीं-नन्हीं बूँदें उस दिन भी थीं। पिकनिक से लौटते हुए वही बूँदें बेतरह रिमझिमा उठी थीं और छात्र-छात्राओं की टोलियाँ इधर-उधर पेड़ों के नीचे, झुरमुट के पीछे, सरकंडों की आड़ में, न जाने कहाँ-कहाँ बिखर गयी थीं। आम का बड़ा भारी गाछ, ठंडा मस्त पवन, रिमझिमाती नन्हीं बूँदें और वह और यतीन्द्र––उसका सहपाठी। यतीन्द्र न जाने कहाँ-कहाँ की बातें सुनाता चल रहा था। उसके कन्धे पर पिकनिक बैग था और कैमरा था और हाथ में एक मामूली टहनी, जिसे उसने रास्ते में से ही उठा लिया था। बात चलते-चलते किसी नये आविष्कार पर आकर टिक गयी थी कि सहसा आज की तरह सीमा की सफ़ेद बुर्राक़ साड़ी का नरम बारीक पल्लू उड़ कर यतीन्द्र के हाथ में थमी हुई उस टहनी से जा उलझा था। सीमा ने पल्लू निकालने का प्रयत्न किया था, पर किसी मनमौजी बहार की तरह डंडी में उगी हुई नुकीली गाँठों में वह उलझता ही चला गया। आख़िर मुक्त किया उसे यतीन्द्र ने खुद, और मुक्त करके पल्ला सीमा के कन्धे पर उछाल दिया और अचानक छाया हुआ यतीन्द्र की उँगलियों का वह बेहद हल्का स्पर्श, सीमा के कन्धे में आज फिर कुलबुला उठा।

पवन तीखा हो गया था, बूँदें तीव्र और आसमान पर तना हुआ अन्धेरा सघन, पर सीमा खिड़की पर ही जमी बैठी थी, फरफराता हुआ पवन उसके रेशमी बालों की लटों को उड़ा कर माथे पर ला-ला कर पटक रहा था और एक नन्हा-सा क्षण सरसराता हुआ फिर सामने आ खड़ा हुआ था :

बहुत-बहुत दिन पहले। परीक्षा पास थी, शायद इन्टर की। रात सर्द थी और सीमा रजाई में गुडुर-मुडुर बैठी हुई संस्कृत के रूप दोहरा रही थी कि बग़ल वाले भैया के कमरे के दरवाज़े के खुलने की आवाज़ आयी–– भाभी भैया के लिए दूध लायी होंगी, जूठा गिलास लेकर वे फिर नीचे जायेंगी, रसोई में धरा-उठाई करेंगी, मेहरी के लिए बर्तन खाली करेंगी और तब फिर उस ठिठुरती ठंड में अपने शाल में लिपट कर फिर ऊपर चढ़ेंगी–– सब कुछ कल्पना की आँखों से अचानक सीमा देखने लगी थी कि तभी कमरे से बहुत धीमी आवाज़ आयी थी, "छोड़ो भी कलाई, देखो दूध छलक जायेगा।"

"छलक भी जाने दो आज रानी!" यह भैया का स्वर था और तब भाभी के मोती जैसे सफ़ेद दाँत और गालों का सिन्दूरी रंग अचानक ही सीमा की आँखों में तैर गया था और अनजाने ही सीमा के हृदय के किसी रिक्त कोने में एक सिहरन-सी भर गयी थी।

और सीमा का उन्माद आज फिर जागा था। रुचिर अपनी चारपाई पर गुमसुम लेटा था कि वह रोज़ की तरह दूध लेकर रुचिर की चारपाई के पास पहुँची। उसी रात की तरह सघन अँधेरा, तारों की बारात, उसी रात जैसी सिहरन, सीमा के हृदय के

अँधेरे कोने में आज फिर कौंधा था। रुचिर के पास पहुँच कर उसने बड़े लचक भरे स्वर में कहा था, "दूध !"

"सामने मेज़ पर रख दो।" रुचिर का छोटा-सा जवाब था। आधे क्षण ठहर कर सीमा के क़दम उसे वापिस घसीट लाये थे, सीमा के पास कोई सवाल नहीं था।

"छोड़ो भी कलाई, देखो दूध छलक जायेगा !" भाभी का वह प्यारा-सा, मीठा-सा वाक्य उसके हृदय में आज अड़ने-अड़ने-सा लगा। दो बूँद आँसू न चाहते हुए भी उस अन्धकार में लुढ़क ही तो आये।

क्यों याद करती है सीमा उन नन्हें-नन्हें क्षणों को, जो उसके जीवन में कभी घटे थे। काश, वे क्षण उसके जीवन में कभी न घटते ! काश, वे क्षण उसकी स्मृति के परदों से निकल कर कहीं दूर फिसल गये होते ! पर नहीं, उन्होंने तो सीमा के मस्तिष्क में उत्पात मचाने की मानो होड़ ही लगा ली है :

उसके कालेज में एक प्रोफ़ेसर थीं, बड़ी सौम्य, बड़ी हँसमुख, बड़ी मधुर। सीमा को वे अच्छी लगती थीं, पर जब कभी वे सीमा के पास से गुजरतीं, सीमा उचक कर आगे-पीछे हो जाती, कभी दूर चली जाती। मुस्कान के दिये बस चमक कर रह जाते। उस दिन कालेज में छात्राओं की फ़ेयरवेल पार्टी थी। सीमा वाश-बेसिन में एक प्लेट धो रही थी, अचानक वही बहनजी आ गयीं। सीमा भागने को ही थी कि बहनजी ने वाश-बेसिन के भीतर ही सीमा का हाथ पकड़ लिया था। वाश-बेसिन के भीतर नल में से छलछला कर बहते हुए पानी के नीचे दो हाथों का दो क्षण का वह मूक स्पर्श, सीमा के हृदय में प्यार की गहरी लड़ी बाँध गया था, तन-मन को रेशमी बहारों से नहला गया था। वह क्षण सीमा के लिए आज भी नया था। उस दिन भी उसके मन में रात के सूने पहर में एक बात जागी थी :

प्रिय का स्पर्श क्यों इतना मधुर होता है ? कब आयेगा वह क्षण जब सचमुच का पुरुष-प्रिय उसकी ज़िन्दगी के आँगन में उतरेगा ? और यह रुचिर उतर आया था माता-पिता के लिए उनकी बेटी के लिए वरदान सदृश, सुन्दर सुगढ़, स्वस्थ, पुष्ट, युवा। और तब उस रात सीमा ने अपने छोटे-छोटे उजले हाथों में मेंहदी रचवायी थी, माथे पर झूमर सजा कर, आँखों में बड़ा-सा नुकीला काजल डलवा कर, रुचिर के साथ सात भाँवरें ली थीं।

और आज सीमा के हृदय का उन्माद फिर जागा। स्मति में आ टकराये हुए उस क्षण ने फिर करवट ली। गंगा की रेती के किनारे-किनारे सूने अन्धकार में साथ-साथ घूमते हुए उसने रुचिर का बोझिल हाथ थाम ही तो लिया। कई युगलों को पहाड़ी स्थलों पर, नदी के किनारे, बिखरे प्रकाश तक में हाथ में हाथ डाल कर चलते हुए सीमा ने देखा था। रुचिर के साथ वह कई बार पहाड़ पर हो आयी थी, पर रुचिर का हाथ पकड़ने का साहस वह कभी भी न कर पायी थी। आज अँधकार में उसने यह बड़ा भारी साहस किया था, पर दूसरे ही क्षण रुचिर की ओर से स्वर आया, "क्या हुआ ?"

"कुछ नहीं, यों ही हाथ टकरा गया।

अँधेरा इतना है कि......" आगे सीमा नहीं बोल सकी। गले की रुँधन को छिपाने के लिए और आँसुओं को पी लेने के लिए सीमा रुक गयी, मानो किसी बड़े पत्थर को अचानक सामने देख कर ड्राइवर को एकाएक ब्रेक लगाना पड़ जाए और गाड़ी दचका खाकर उसी स्थान पर खड़ी हो जाये। सीमा भी आज तक उसी स्थान पर खड़ी थी।

क्या रुचिर उसका अपना नहीं था? रुचिर उसका अपना था, बेहद अपना, तभी रुचिर ने एक दिन शुरू-शुरू में सीमा की कटाक्षपूर्ण मुस्कान देख कर स्पष्ट किया था, "मुझे ये बाजारू बातें पसन्द नहीं हैं। और याद रखो, अपनों के साथ किसी तरह की फ़ार्मेलिटी बरतना भी मुझे अच्छा नहीं लगता।"

सीमा को लगा था कि वह कट कर गिर जाय, उसने रुचिर के सामने कैसी बेजा हरकत कर दी हाय! और सीमा तब से आज तक सीधी आँखें उठा कर रुचिर को नहीं देख पायी। कितनी बार उसका मन रुचिर के साथ बैठ कर घर का हिसाब-किताब करने को तड़पा है, पर रुचिर ने साफ़ कह दिया है, 'औरतों का दिमाग़ क्या हिसाब-किताब करेगा? तुम शान्ति से बैठो, और यह इल्लत मुझ पर छोड़ दो।"

सीमा ने यह इल्लत तब से रुचिर पर ही छोड़ दी थी। पर स्मृति की सरिता में बहते हुए छोटे-छोटे क्षणों का वह क्या करे, जो कंकड़ों की तरह टकरा-टकरा कर उसे चैन ही नहीं लेने देते।

उस दुपहर वह अपने घर में अकेली थी। माँ शायद अपने भाई के यहाँ गयी थीं, पिता आफ़िस। पड़ोसिन आयी थीं, "सीमा ज़रा ताली रख लोगी?"

"कहाँ चली चाची?"

"तुम्हारे चाचाजी की बहुत दिनों की जिद है, 'तुम मेरे साथ सिनेमा नहीं चलती हो, चलो एक दिन सिनेमा साथ चलें!' तो बस वहीं।" कह कर चाची मुस्करा दी थीं।

"अच्छा।" सीमा ने ताली थाम कर घर के आँगन की खूँटी पर टाँग दी थी। चाची अपना बैरूपिया-सा स्वरूप लिये चली गयीं थीं, पर १७ वर्ष की सीमा के मन में एक लहर जगा गयी थीं।

"किसी दिन क्या मैं भी अपने उनके साथ यों ही दुपहरी में सिनेमा......" और विचारमात्र से ही सीमा उस सूने में भी लजा गयी थी।

और आज वह छोटा-सा क्षण स्मृति का मधुर-सा शृंगार ही बन कर रह गया है। उस नन्हें-से क्षण के माधुर्य को पा लेने के लिए न जाने कितनी बार सीमा का जी तड़पा है, सिनेमा हॉल के अन्धकार में साथ-साथ जुड़ कर बैठने के लिए, इन्टरवल में गर्म-गर्म चाय और पेस्ट्री खाने के लिए, उसके मन में न जाने कितनी बार सपने जागे हैं, पर रुचिर से सीमा ने अपने इन छोटे-छोटे क्षणों की बात कहने की हिमाकत करना कभी का छोड़ दिया है।

रुचिर को सिनेमा बिल्कुल पसन्द नहीं है। फ़िल्मी गानों से उसे सख्त नफ़रत है। सीमा रेडियो पर सुने गानों की कड़ी भला कैसे गुनगुनाये? रुचिर क्या कहेगा?

सचमुच रुचिर क्या उससे इतनी दूर है ? नहीं, नहीं, सूत भर भी तो नहीं। सीमा जब बीमार पड़ती है तो रुचिर सीमा के लिए दवा लाता है, फलों के ढेर लगा देता है, तरह-तरह की हिदायतें करता है।"

रुचिर बेहद नम्र है, बेहद सुशील है। अपने मित्रों की और सीमा की सहेलियों की वह एक-सी ख़ातिर करता है। किसी को उससे कोई शिकायत नहीं है। पर सीमा ? सीमा को भी कोई शिकायत नहीं है। सीमा ने कभी रुचिर के साथ तू-तू मैं-मैं नहीं की है, कभी किसी बात पर जिरहें नहीं की है, रुचिर के सामने बैठ कर रोना नहीं रोया है। वर्षों से सजायी हुई अपनी तमन्नाओं को, उन छोटे-मोटे क्षणों को, जो उसे रात-दिन बींधत रहते हैं, कभी खुल कर बखान नहीं किया है।

घर पर माता-पिता का छोटी-छोटी बातों पर झगड़ा होता देख कर उसने निश्चय कर लिया था कि वह अपने घर में ऐसी बातों पर कभी नहीं लड़ेगी, कभी नहीं झगड़ेगी। एक दफ़ा रुचिर के देर से आने पर वह रूठ गयी थी, रूठ कर लेट गयी थी। उसने सोचा था, रुचिर आयेगा, उसे मनायेगा, उससे पूछेगा, "आज, हुजूर के दुश्मनों की तबियत नासाज़ क्यों ?" पर रुचिर ने उस दिन खुद परोस कर खाना खा लिया था, अपना बिस्तर खुद लगा लिया था और सो गया था। अगले पूरे दिन सीमा ने गुस्सा साधा था, पर रुचिर की ओर से कोई सन्देश नहीं आया था और तभी उसे याद आया था, रुचिर का वह वाक्य, "मुझे अपनों के साथ फ़ार्मेलिटी बरतना अच्छा नहीं लगता।" और सीमा ने फिर कभी नाराज़ी प्रदर्शित करने की ग़लती नहीं की थी।

क्या है इन नन्हें-नन्हें क्षणों में, जो पति-पत्नी को थोथी सीमा की खाइयाँ लँघवा कर प्यार के उस मज़ार पर ले जाकर छोड़ देते हैं, जहाँ भटकन नहीं है, जहाँ घुटन नहीं है, जहाँ ज़िन्दगी अड़ियल टट्टू की तरह बेजान नहीं है, जहाँ ज़िन्दगी एक बहार है, त्यौहार है, जहाँ स्त्री-पुरुष पति-पत्नी नहीं, प्रेमी-प्रेमिका भी हैं। क्या एक गृहस्थी के सच्चे सुख का राज़ यही नहीं है ?

मन की इन उलझनों में भटकती सीमा आज न जाने कितनी देर से खिड़की पर खड़ी है, सामने लॉन में गुलदाऊदी और डेलिया के फूलों पर चाँदनी बिखरी कब से खिलवाड़ मचा रही है; ठहर-ठहर कर मदमस्त पवन, चोर की तरह, न जाने कब से उन्हें चूम-चूम कर जा रहा है। सीमा खिड़की में खड़ी है, ढेर सारे उसके लम्बे काले घुँघराले बाल पीठ पर झूल रहे हैं, बाँह से खिड़की का सहारा लिये वह चुपचाप खड़ी है, एकदम गुमसुम। वह सब कुछ भूल जाना चाहती है। उसे लग रहा है वह सचमुच सब कुछ भूल गयी है। उसके पास क्या कुछ नहीं है ! —चाँदनी में नहाता बँगला, लॉन में गूँजता संगीत, पोर्च में खड़ी मुस्कराती नीली कार, हँसते-खिलखिलाते फूल, फूलों का राजा रुचिर, पुष्ट, सुन्दर, जवान; पर फिर यह कौन है जो चुपचाप उसके कानों में फुसफुसा रहा है :

"काश, कोई आकर इस समय उसकी आँखों में आँखें डाल कर उसके उस नरम गुदकारे चिबुक को हल्के से छू देता, जिस पर एक नशीला तिल न जाने कब से बेहोश पड़ा है !"

• • •

हंसराज रहबर

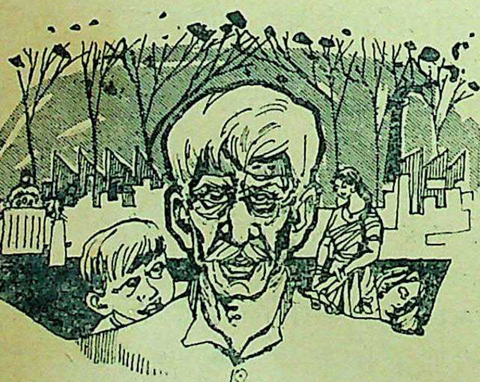
परिवार — पुराना बनाम नया

सितम्बर २०६१

यमुना के किनारे एक छोटे-से कस्बे में एक परिवार आबाद है। वैसे पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण सभी जगह ऐसे ही कस्बों और शहरों में ऐसे ही परिवार आबाद हैं। लद्दाख से कुमारी अन्तरीप तक एक ही नक्शा है। नगर और देहात का अन्तर बहुत हद तक मिट चुका है और सम्पूर्ण मानव समाज सुखी और समृद्ध है। परिवार समाज की मूलभूत इकाई है। इसलिए अगर हम इस एक परिवार के जीवन में झाँक कर देखें, तो उससे समूचे समाज के सुख और समृद्धि का अनुमान सहज में हो जायेगा।

इस परिवार में कुल छः प्राणी हैं। छओं का अपना-अपना विशिष्ट व्यक्तित्व है। हर एक को दूसरे से समुचित आदर और स्नेह प्राप्त है। छोटा-बड़ा, स्त्री-पुरुष कोई भी किसी पर हावी नहीं है; कोई भी किसी पर बोझ नहीं है। सब अपने कर्त्तव्य को पहचानते और निभाते हैं; काम करते, खेलते, हँसते और प्रसन्न रहते हैं। मनुष्य जिस प्रसन्नता के स्वप्न सदियों से देखता आया है वह स्वप्न उनके जीवन में साकार हो उठा है। उन्हें न अतीत की कटुता विक्षुब्ध बनाती है और न भविष्य की दुश्चिन्ताएँ परेशान करतीं हैं।

हरदेव इस परिवार का प्रथम व्यक्ति है। उसकी उम्र इस समय सत्तर साल से ऊपर है। सिर और मूँछों के बाल सफेद हैं। कमर तनिक झुक गई है और हाथ भी कुछ-



नयी राजनीति का नया सिक्का जिसे हर विवादी वाद अपना ठप्पा मार कर चला देना चाहता है। सिक्का खरी धातु का है। सवाल ठप्पे का है—भविष्य के परिवार को किस ठप्पे का सिक्का सचमुच समृद्ध बनायेगा।

कुछ काँपते हैं। उसने अपनी इन आँखों से ज़माने का गर्म-सर्द और जीवन के उतार-चढ़ाव खूब देखे हैं, भूख-प्यास सही है, दुख और विपत्तियाँ झेली हैं। दुख और दरिद्रता के क्रूर चिह्न उसके चेहरे पर अंकित हैं। उसने अपने हाथों से हल चलाया है, जेठ-अषाढ़ की धूप और पूष-माघ की सर्दी सिर पर सहन की है। फिर जब बहुत बड़ा परिवर्तन आया तो वह सामूहिक खेत में काम करता रहा। अब उसे वृद्धावस्था के कारण अवकाश प्राप्त हो गया है।

इस कस्बे में, जो पहले एक पिछड़ा हुआ गाँव था, उसकी उम्र के अवकाश-प्राप्त बूढ़े और भी हैं। उन्हें अवकाश-भत्ता मिलता है। वे सब अपने-अपने परिवारों में सुखी जीवन बिताते हैं। लेकिन जब जवान मर्द और औरतें खेतों में काम करते हैं और बच्चे स्कूल में पढ़ने जाते हैं तो हरदेव और उसके दूसरे साथी कस्बे के पूर्वी कोने पर स्थित हरे-भरे पार्क में आ बैठते हैं। पार्क में उनके लिए रेडियो, टेलीविज़न, ताश, शतरंज अथवा मनोरंजन के दूसरे साधन उपलब्ध हैं। वे अपनी इच्छानुसार रेडियो सुनते और टेलीविज़न पर कोई नाटक देखते हैं; ताश या शतरंज का कोई खेल खेलते हैं; अथवा गपशप करते या इधर-उधर की बातों से जी बहलाते हैं। उनकी बातें बहुत ही हल्की-फुल्की रसभरी होती हैं। उन्हें अपने पूर्वजों की तरह नई पीढ़ी से कोई शिकायत नहीं है और न देखते ही देखते सतयुग के कलियुग में बदल जाने का खेद है। वह वर्तमान की उपेक्षा करके अतीत में नहीं रहते और न धरती से कहीं दूर स्थित किसी स्वर्ग और परलोक की कल्पना करते हैं। क्योंकि उन्होंने खुद अपने हाथों इसी धरती पर स्वर्ग का निर्माण किया है और अब भावी पीढ़ी को उसे अधिक सुन्दर, स्वच्छ और समृद्ध बनाते देख रहे हैं।

पार्क में हँसी-खुशी दिन बिता कर बूढ़ा हरदेव जब शाम को घर लौटता है तो पुत्रवधू माधुरी और बेटा बलदेव मुस्करा कर उसका स्वागत करते हैं और नन्हा शशि 'दादा जी, दादा जी!' कहता हुआ उनसे आ लिपटता है, और उन्हें अपने स्कूल, पुस्तक, सहपाठी और अध्यापिका के बारे में अनेकों बातें सुनाता है और रात को भोजन से निपट कर उनसे कोई कहानी सुनाने का तकाज़ा भी करता है।

बूढ़ा कभी-कभी जब पोते के बचपन की अपने बचपन से तुलना करने लगता है तो उसके मस्तिष्क में अतीत के चित्र जो एक बार उभरने लगते हैं तो उभरते ही रहते हैं:

जब वह चार-पाँच साल का था तो माँ क्षय रोग से मर गई थी। गाँव में तो क्या आठ दस मील के फासले पर भी कोई अस्पताल नहीं था। बीमार पत्नी को शहर ले जाना पिता के सामर्थ्य से बाहर था; इसलिए उसने यहीं तिल-तिल घुल कर दम तोड़ दिया। माता के स्नेह से वंचित उसने किस कठिनाई और विपत्ति में दिन बिताये थे।

यह तो शुक्र है कि पिता कठिनाइयों और विपत्तियों से घबराने वाले नहीं थे। वह किसी से दबते भी नहीं थे। सच्ची, सीधी और न्याय की बात कह देना उनके चरित्र की विशेषता थी। इसी विशेषता के कारण उन्होंने बहुत-सी विपत्तियाँ खुद झेलीं, शत्रु बनाये और अन्त में शत्रुओं के हाथों कत्ल भी हुए।

हरदेव जाति का अहीर था और इस गाँव में अधिकतर अहीर ही बसते थे । फिर कोई चालीस-पचास घर ठाकुरों और चालीस-पचास घर ब्राह्मणों के थे । इसके बाद अछूत थे जो बाहर की तरफ झोपड़ियों में रहते थे और किसी गिनती में नहीं थे ।

ठाकुरों और ब्राह्मणों को अपनी जन्मजात श्रेष्ठता पर अभिमान था । अक्सर मामलों में उनमें ठन जाती थीं । अहीर और अछूत बिना सोचे-समझे व्यक्तिगत सम्बन्ध अथवा स्वार्थ के आधार पर किसी न किसी का साथ देते थे । खेती-बाड़ी और मेहनत का सब काम करते हुए भी वह गाँव के जीवन में खुद गौण थे । गाँव का मुखिया हमेशा ठाकुर होता था । जन्मजात अधिकारों और जातिगत श्रेष्ठता के आगे श्रम का कोई मूल्य और मान नहीं था ।

एक बार जब पंचायत के चुनाव हुए तो हरदेव के पिता ने ठाकुर के इस जन्मजात अधिकार को चुनौती दी । सभी अहीर उनकी बात मानते थे और उनका आदर करते थे । इसलिए उन्होंने चुनाव में अपने विपक्षी ठाकुर को पछाड़ दिया । वह बहुमत से पंचायत के सरपंच अथवा गाँव के मुखिया चुने गये ।

ठाकुर की ठकुराई इस आघात को कैसे बर्दाश्त करती ? उसके गुंडों ने नए मुखिया की हत्या कर दी । अहीरों में इस बात से बड़ा रोष फैला और अछूतों ने भी बुरा माना । यह अन्याय और बर्बरता का खुला रूप था । परिणाम यह निकला कि ठाकुर फिर कभी भी चुनाव में सफल न हो सका । उसकी जातिगत श्रेष्ठता हमेशा-हमेशा के लिए धूल में मिल गई ।

ठाकुर और ब्राह्मण भी आपस में बराबर लड़ते रहे । अतएव जातिगत श्रेष्ठता, वर्णगत श्रेष्ठता को भी ले डूबी । लेकिन इस परिस्थिति से जिस जातिवाद का जन्म हुआ वह भी कुछ कम भयंकर नहीं था । वह भी बरसों तक अपनी धाँधली से जन-जीवन को कुंठित करता रहा ।

इस धाँधली का अन्त होना ही था और हुआ भी । देखते ही देखते देश में एक क्रान्ति और आती है । यह क्रान्ति श्रम और सिर्फ श्रम को मान प्रदान करती है। शोषण के खत्म होते ही ऊँच-नीच और जातिवाद के सारे झगड़े हमेशा-हमेशा के लिए दफना दिये जाते हैं । श्रम पर निर्धारित एक नए, सुन्दर और समृद्ध समाज का निर्माण होने लगता है ।

गाँव, गाँव नहीं रहता ; उसका नक्शा ही बदल जाता है । जहाँ पहले घूरे के ढेर थे, मच्छर-मक्खियाँ और आवारा कुत्ते थे, वहाँ बिजली आती है, सड़कों का निर्माण होता है, स्कूल खुलता और अस्पताल बनता है । हल का स्थान ट्रैक्टर ले लेते हैं। जमीन के छोटे-छोटे निजी टुकड़ों की बजाय सामूहिक खेत हो जाते हैं । लोग जी-जान से काम करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि उनके श्रम से जितना उत्पादन बढ़ेगा जीवन में उतनी ही समृद्धि आयेगी । खेत साझे के हैं, उत्पादन साझे का है इसलिए सबकी सुख और समृद्धि साथ-साथ बढ़ रही है।

यह अब गाँव नहीं, अच्छा-खासा उन्नत कस्बा है जो कई बातों में नगर से होड़ लेता है। यहाँ सिर्फ सुन्दर पार्क ही नहीं, सिनेमा हॉल और थियेटर हॉल भी हैं । इसके अलावा प्राचीन मन्दिर भी हैं । नौजवान सिनेमा

और थियेटर देखते हैं तो बड़े-बूढ़े उपासना के लिए मन्दिर जाते हैं। वे कोई धार्मिक पर्व मनाना चाहें तो उन्हें हर तरह की सुविधा प्राप्त है, पर अब मन्दिर जाने और उपासना करने में वर्ण, जाति अथवा ऊँच-नीच की कोई भी बाधा नहीं है। जैसे खेत साझे के हैं, खुशियाँ साझे की हैं, उसी तरह देवता भी सबका साझे का है।

जब इतना कुछ हुआ तो रीति-रिवाज और विवाह-सम्बन्धों में---पारिवारिक जीवन में--परिवर्तन होना भी अनिवार्य था। जब आर्थिक साधन बदलते हैं तो मानव बदलता है, रीति-रिवाज बदलते हैं, आचार-व्यवहार बदलता है, कायदे-क़ानून बदलते हैं और स्त्री पुरुष के आपसी सम्बन्ध भी बदलते हैं।

हरदेव ने यह सब कुछ धीरे-धीरे बदलते देखा है और जीवन कुछ इस ढंग से बदला है कि उसे तनिक भी अखरा नहीं है। जो तब्दीली आई है वह व्यावहारिक जीवन का स्वाभाविक अंग बन गई है। अब कौन जानता है और किसे यह बात सोचने की फ़ुरसत है कि उसकी पुत्रवधू ठाकुर की बेटी है और उसने एक अहीर से शादी कर ली है---अहीर जो जाति से इतना नीच था कि उसे ठाकुर के बराबर चारपाई पर बैठने का भी अधिकार नहीं था। इन दोनों में रोटी-बेटी का सम्बन्ध तो कल्पनातीत था; लेकिन माधुरी ने बलदेव के साथ स्वेच्छा से शादी की है। वह ट्रैक्टर चलाने में बड़ी ही चतुर और निपुण है और इसीलिए वह ट्रैक्टर चलाने वाली युवतियों की टोली की नेता रही है। बलदेव खेती के काम में निपुण और चौकस है, और साथ ही विनम्र और सुशील भी है। उसे सिर्फ काम करना ही नहीं आता, काम में दूसरों की सहायता करना और उनसे सहायता लेना भी आता है। नये समाज में यही श्रेष्ठता और कुलीनता का मापदण्ड है और इसीलिए माधुरी ने बलदेव को अपना जीवन-साथी चुना है।

उन्हें एक दूसरे का जीवन-साथी बने अब तेइस-चौबीस साल बीत चुके हैं। इतने लम्बे जीवन में किसी प्रकार के मन-मुटाव का, घृणा और कलह का एक क्षण भी नहीं आया है। अगर कभी किसी बात पर मतभेद हो जाता है तो उस पर गम्भीरता से बातचीत करते हैं और जटिल से जटिल समस्या को सहज में सुलझा लेते हैं। समस्या अगर सामान्य हो और समूचे पारिवारिक जीवन को स्पर्श करती हो तो उसमें बूढ़े हरदेव से भी परामर्श करते हैं और बच्चों तक की राय पूछते हैं। सिर्फ पूछते ही नहीं, उसका समुचित आदर भी करते हैं।

इनकी तीन सन्तानें हैं। सबसे छोटा शशि है। वह अगले साल प्राथमिक स्कूल की अंतिम परीक्षा पूरी कर लेगा। स्कूल से जो काम मिलता है, उसे वह घर पर मन लगा कर करता है। कुछ पूछना हो तो माता अथवा पिता से पूछ लेता है। वे बड़े चाव से बताते हैं और उसके स्कूल के जीवन में पूरी दिलचस्पी लेते हैं।

शशि स्कूल का काम समाप्त करके माधुरी से पूछता है---"माँ, मैं अब खेल आऊँ?"

"हाँ, बेटा खेल आओ।" वह मुस्करा कर उत्तर देती है। और कभी-कभी तनिक रुक कर कहती है, "अच्छा सुनो, लौटते समय एक काम कर सकोगे?"

"क्या ?" शशि बड़ी उत्सुकता से पूछता है।

"स्टोर से दो सेर चीनी और दादा के लिए डबल रोटी लेते आना।"

और शशि ये दोनों चीजें लाना नहीं भूलता।

भोजन घर पर ही तैयार होता है; लेकिन तैयार करने के साधन बदल गये हैं। बिजली के चूल्हे हैं, स्टैनलेस स्टील के सुन्दर बर्तन हैं, चीनी की प्लेटें-प्यालियाँ हैं। खाना झटपट तैयार होता है। भोजन बनाने और बर्तन समेटने का सब बोझ माँ पर ही नहीं है, पति और बेटा भी हाथ बटाते हैं। अलबत्ता बूढ़े हरदेव को हर काम से छुट्टी है। उसकी किसी प्रकार की भी सहायता करना सभी लोग अपना सौभाग्य समझते हैं।

भोजन से निपट कर सब लोग टहलने जाते हैं, सिनेमा-थियेटर देखते हैं, घर पर रह कर रेडियो सुनते हैं। सोने से घंटा दो घंटा पहले कोई पुस्तक पढ़ते हैं। घर में अच्छा-खासा निजी पुस्तकालय है जिसमें हर महीने दस-बीस रुपये की नई पुस्तकें आती रहती हैं। अध्यापन और अनुभव हवा और प्रकाश के सदृश उनके जीवन का सहज और आवश्यक अंग है।

शशि से बड़ा रवि है। वह माध्यमिक शिक्षा पूरी करके इंजीनियरिंग कॉलेज में दाखिल हुआ है। कॉलेज के साथ एक वर्कशाप भी है। सभी छात्र इस वर्कशाप में काम करके व्यावहारिक शिक्षा प्राप्त करते हैं। इस वर्कशाप की बनी वस्तुओं से जो आमदनी होती है, उसी से उनका खर्च चलता है। उन्हें सहायता के रूप में घर से कुछ भी मँगवाना नहीं पड़ता।

इन दोनों लड़कों से बड़ी कंचन नाम की एक लड़की है। बड़ी सुन्दर और चंचल और साथ ही विनीत और सुशील भी। आयु अठारह-उन्नीस साल है। विज्ञान में उसकी विशेष रुचि है और वह राजधानी की सबसे बड़ी अनुसंधान-संस्था में काम कर रही है।

छुट्टियाँ होती हैं तो रवि और कंचन भी घर जाते हैं। कुछ दिन माता-पिता के साथ बिताते हैं और कुछ दिन पहाड़ पर बने स्वास्थ्यवर्धक मनोरंजक स्थानों पर बिताना पसन्द करते हैं। इसके लिए उन्हें कुछ भी चिन्ता नहीं करनी पड़ती, राज्य की ओर से सब सुविधाएँ प्राप्त हैं।

कंचन अब जवान है, अपना भला-बुरा खुद सोच सकती है। माँ-बाप को उसकी समझ और बुद्धि पर पूरा भरोसा है। साल-दो-साल में जब भी चाहेगी वह अपना जीवन-साथी स्वयं चुनेगी। वर-वधू जान-पहचान के दो-चार मित्रों को साथ लेकर शादी के दफ्तर में जायेंगे और विवाह रजिस्टर्ड करवा-लेंगे। माता-पिता लड़की की पसन्द को सहर्ष स्वीकार करेंगे, आशीर्वाद देंगे, किसी दावत की व्यवस्था हुई तो बच्चों समेत शामिल होंगे। उन्हें दान-दहेज की कोई चिन्ता नहीं है।

बूढ़ा हरदेव भी अगर उस समय तक जीवित रहा तो वह भी इस पसन्द को स्वीकार करेगा, जाति और गोत्र की बात बिलकुल नहीं करेगा, क्योंकि यह बात अब बहुत पुरानी हो गई है, व्यावहारिक जीवन में इसका कुछ भी महत्त्व नहीं है।

●



पद्मा उपाध्याय

जहाँ आज भी माताएँ राज करती हैं

भारतीय दृष्टि की विविधता, दक्षिणाञ्चल की परिवार-पद्धति के प्रकाश में।

आज मानव - शास्त्र की प्रायः स्वीकृत और साधारण स्थापना है कि पतृ - सत्ताक समाज का पूर्ववर्ती मातृ-सत्ताक समाज था, जहाँ माता अपने बच्चों और परिवार के पुरुषों पर शासन करती थी। समस्त जीवन की जननी होने से उसकी यह सत्ता निःसन्देह प्रारम्भ में अनिवार्य और स्वाभाविक रही होगी।

इसी कारण देश-विदेश में सर्वत्र पहले प्रायः मातृ-देवियों का पूजन हुआ। प्राचीनतम सभ्यताओं से भी प्राचीनतर सामाजिक व्यवस्थाओं में सर्वत्र मृण्मूर्तियों में बाहुल्य पूजनीया मातृ-प्रतिमाओं का ही रहा है, यह संसार भर के पुरातात्विक उत्खननों से सिद्ध है। अपने देश में भी यह मातृ-सत्ताक प्रवृत्ति का ही परिणाम है कि देव-वर्ग में देवियों के प्राचुर्य के अतिरिक्त मातृ-सत्ता ने शक्ति को सब देवों से ऊपर बिठा दिया और शाक्त धर्म अनेक बार, विशेषतः देश के पूर्वी भागों में—आसाम, बंगाल, और उड़ीसा में—सब धर्मों से अधिक लोकप्रिय हो गया। शाक्त तन्त्रों और आगमों के सम्बन्ध में आस्थावान तांत्रिकों का मत है कि वे वेदों तक से प्राचीनतर है। चाहे यह विचार

स्वीकार न किया जाय, इतना तो निःसन्देह सत्य है कि शाक्त प्रवृत्ति न केवल इस देश में बल्कि अन्य देशों में भी, मातृत्व के माध्यम से, बलवती रही है।

इस प्रवृत्ति का ही परिणाम था कि मनुष्य ने बार-बार स्त्री-राज्य की कल्पना की। महाभारत ने पूर्व दिशा के आसाम वर्मा में स्थित स्त्री-राज्य की कल्पना की है जिसमें पुरुषों का प्रवेश निषिद्ध था और शासन आदि के सारे कार्य वहाँ स्त्रियाँ ही करती थीं। ग्रीक साहित्य में आमेजोन नारियों की जो कल्पना की गई है वह भी एक ऐसे ही स्त्री-राज्य की थी जिसमें पुरुष, एक समय में एक, केवल प्रजनन कार्य के लिए बाहर से बुला लिया जाता था और कार्य के बाद या तो राज्य की सीमाओं से बाहर निकाल दिया जाता था या मार डाला जाता था। सन्तति यदि पुरुष हुई तो मार डाली जाती थी, और स्त्री हुई तो राज्य के नारी-परिवार का अंग बनती थी। आमेजोनों का राज्य युक्सीन सागर के तीर के पोन्तस में (राजधानी—थेमिस्कीरा में) कहीं बताई जाती है (देखिए हेरोदोतस ४,११०-११७)। उनके सम्बन्ध में प्राचीन ग्रीकों का विश्वास था कि वे असाधारण योद्धा होती हैं और ग्रीक पुराणों में उनके साथ ग्रीकों के संघर्ष और हार-जीत की कथाएँ लिखी हैं। ग्रीक जन-विश्वास पर स्त्री-राज्य की उन आमेज़ोन योद्धाओं का इतना गहरा प्रभाव था कि इतिहास कालीन ग्रीक मन्दिरों के अर्धचित्रों और मूर्तनों में भी उनकी अनन्त आकृतियाँ कोरी गईं।

ऐतिहासिक काल में भी भारतीय इतिहास में इस नारी-सत्ताक स्थिति का उल्लेख अनजाना नहीं है। गार्गीसंहिता के युग-पुराण में लिखा है कि यवनराज धर्ममीत (दिमित्रियस) ने दूसरी शताब्दी ई० पूर्व के आरम्भ में जब पाटलिपुत्र पर आक्रमण किया तब ग्रीकों ने वहाँ के पुरुषों का इस कदर नाश कर दिया कि स्त्रियाँ ही राजकाज चलाने लगीं, वही कृषि-कार्य आदि भी करने लगीं, और यह स्थिति इतनी करुण हो गई कि जब कोई पुरुष कभी दीख जाता तो स्त्रियाँ चिल्ला उठतीं—"आश्चर्य ! आश्चर्य !!"

आज की मातृ-सत्ताक व्यवस्था संसार के अनेक भागों में प्रतिष्ठित है। आस्ट्रेलिया, उत्तरी रोडेशिया में, माइक्रोनेशिया, मिलेनेशिया में, सुमात्रा, फारमोसा में, अफ्रीका के अनेक प्रदेशों में, आइवरी कोस्ट और गोल्डकोस्ट के निवासियों में, दाहोमे में न्यासा झील के चतुर्दिक इला भाषा-भाषियों में, वस्तुतः चीन से पेरू तक समस्त संसार में मातृ-सत्ताक व्यवस्था के चिह्न किसी न किसी रूप और मात्रा में अवशिष्ट हैं। भारतवर्ष में तो आसाम के गारो व खासी जातियों में मातृ-सत्ताक व्यवस्था आज भी प्रतिष्ठित है ही, केरल के नायरों में भी इस व्यवस्था का राज है। वस्तुतः सभ्य मानव समाज में मात्र केरल के नायर ही हैं जिन्होंने मातृ-सत्ता को मरने नहीं दिया और प्रागैतिहासिक काल से अद्यावधि उसे कायम रक्खा है। वहाँ पिता से पुत्र को नहीं, माता से पुत्री को सम्पत्ति मिलती है और माता ही परिवार की स्वामिनी तथा कर्ता होती है।

यह व्यवस्था वहाँ कानून से भी सम्मत कर ली गई है। यह कानून मरुयुकतायम नाम से प्रसिद्ध है। अक्सर ब्राह्मण, नायर कन्याओं से विवाह करते हैं। परिवार के बड़े लड़के को छोड़, जो ब्राह्मण परिवार में

विवाह करता है, सभी दूसरे लड़कों को नायरों में विवाह करना पड़ता है, और उस विवाह की संतति सब की सब नायर हो जाया करती है, जो मातृ-सत्ताक व्यवस्था का ही परिणाम है। नायरों के जो दो राज्य अभी हाल तक, त्रावणकोर और कोचीन में थे, उनमें इसी व्यवस्था के अनुसार राजा भगिनी-पुत्र हुआ करता था। पंडितों का मत है कि पहले कभी नायर नारियों में बहुपतिक विवाह (पोलियण्ड्री) की भी प्रथा रही थी। अनेक भारतीय जातियों में, जहाँ मातुल अथवा मामा का प्राधान्य है, वह भी मातृ-सत्ताक परिस्थिति का ही अवशेष माना जाता है। पश्चिमी भारत में भी मातुल-कन्या विवाह इसी स्थिति की ओर संकेत करता है।

मातृ-सत्ताक व्यवस्था में न्यूनाधिक चार स्थितियाँ होती हैं :

१. वंशानुक्रम का मातृ-पूर्वज से आरंभ और गिना जाना।
२. मातृ-कन्या उत्तराधिकार।
३. मातृ-कन्या सम्पत्ति वितरण, और
४. पत्नीगृह में पति का निवास।

गोत्र नाम में जो साधारणतः पितृ-सत्ताक व्यवस्था में पिता या पुरुष-पूर्वज का नाम चलता है, जैसे वसुदेव का पुत्र वासुदेव, वैसे ही मातृ-सत्ताक स्थिति में माता के नाम से गोत्र चलता है और सम्बन्ध उसी के द्वारा गिने जाते हैं। संभवतः पृथा से अर्जुन के लिए पार्थ नाम उसी की ओर संकेत करता है, वैसे ही कुन्ती से कौन्तेय, यद्यपि महाभारत काल में पितृ-सत्ताक व्यवस्था कायम हो चुकी थी, फिर भी द्रौपदी का पाँच पुरुषों से विवाह मातृ-सत्ताक बहुपतिक विवाह से बहुत दूर न था। गोत्र नाम अधिकतर या तो मातृ-सत्ताक मिलते हैं या पितृ-सत्ताक। कभी-कभी एक ही कुल में दोनों का मिश्रित उपयोग भी हुआ है, जैसे अर्जुन के ही लिए कौन्तेय और पाण्डव।

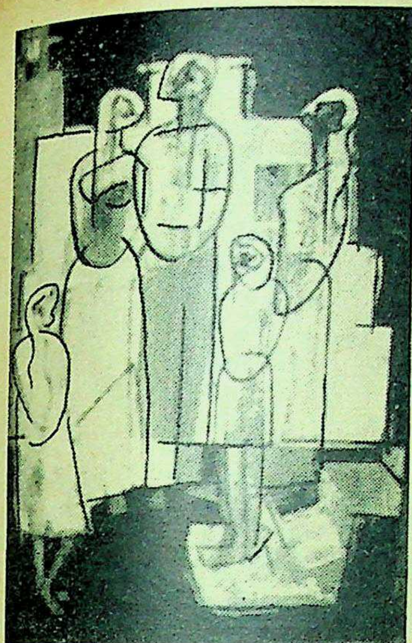
शक्ति में उत्तराधिकार नारी की ओर इस व्यवस्था का मूल-मंत्र है, उसमें पति का नाम सार्थक नहीं क्योंकि उसका पतित्व ही वहाँ कोई अर्थ नहीं रखता। स्वामिनी वहाँ माता ही होती है; पत्नी और परिवार का इन्तज़ाम और हुकूमत उसी के हाथ में होती है, जो उसके बाद उसकी उस कन्या के हाथ में चली जाती है, जो स्वयं अब परिवार की स्वामिनी होती है। सम्पत्ति का हस्तान्तरण भी स्वाभाविक ही मातृ-सत्ताक व्यवस्था में इसी क्रम से होता है। भाई के अधिकार के बदले सम्पत्ति पर अधिकार बहिन का होता है, यानी माता के बाद कन्या का। यह व्यवस्था नारी के प्रति मात्र आदर की सूचक नहीं, बल्कि उसकी आर्थिक स्वतन्त्रता और आर्थिक स्वामित्व की द्योतक है। हम जानते हैं कि पितृ-सत्ताक परिस्थिति में भी मनु आदि ने कभी-कभी, कहीं-कहीं कृत्रिम उदारतावश नारी की पूजनीया होने की बात कही, जिसका सम्पत्ति पर अधिकार के अभाव में, और इस प्रकार आर्थिक स्वतन्त्रता के अभाव में, कोई अर्थ नहीं था। यह उत्तराधिकार और सम्पत्ति का हस्तान्तरण सामाजिक व्यवस्था में बड़ी स्पष्ट और महत्त्व की बात है। उसका सम्मिलित उपयोग मात्रा अथवा अंश में मातृ-सत्ताक और पितृ-सत्ताक दोनों व्यवस्थाओं में नहीं होता वस्तुतः हो ही नहीं सकता। मातृ-सत्ताक व्यवस्था में परिवार का कर्ता और सम्पत्ति की

स्वामिनी माता ही होगी, पितृ-सत्ताक व्यवस्था में परिवार का कर्ता और सम्पत्ति का उत्तराधिकारी मात्र पिता होगा, कारण कि अधिकार और उसका कार्यान्वयन दोनों अभिन्न स्थितियाँ हैं।

आज की साधारण पितृ-सत्ताक व्यवस्था में विवाह के बाद वधू अथवा पत्नी वर अथवा पति के परिवार में ही आमरण निवास के लिए चली जाती है, मातृ-सत्ताक में उसके विपरीत आचरण होता है। वहाँ वर अथवा पति विवाहानन्तर वधू अथवा पत्नी के परिवार में आमरण निवास के लिए जाता है। यह स्थिति निश्चय अति प्राचीन मातृ-सत्ताक व्यवस्था का प्रतीक है और आज भी इसका आचरण अनेक अफ्रीकी जातियों में होता है। साधारणतः पति, पत्नी के परिवार में सदा के लिए रहने नहीं जाता पर निःसंदेह वह पत्नी के विधान और अधिकार को स्वीकार करता है।

सम्भवतः एक समय था जब परिवार की स्वामिनी होने के कारण उसका अपने बेटों, भाइयों और पतियों तक पर वैसा ही अधिकार होता था जैसा पितृ-सत्ताक व्यवस्था के आरंभ में पिता का अपनी पत्नियों, भगिनियों अथवा पुत्रियों पर होने लगा। अर्थात् माता समूचे पुरुषवर्ग को अपनी तृप्ति का साधन अनुमानतः बना सकती थी।





चित्र : भाऊ समर्थ

महावीर अधिकारी

•

सम्बन्धों का असंतुलन

एक माँ जो बात अपने लड़के के लिए क्षम्य मानती है वही बात अपने पति के लिए क्यों नहीं ? प्रश्न तर्क का नहीं, भावना का है। भावना को व्यापक क्यों नहीं बनाया जा सकता ? पति-पत्नी के सम्बन्धों में असन्तुलन के कारणों और निदान की खोज।

•

जहाँ तक विश्व-मानव-समाज में परिवार का स्थान है, उसका महत्त्व प्रागैतिहासिक काल से ज्यों का त्यों बना हुआ है। जिस समय आदमी कन्दरावासी था उस समय भी आखेट करके, जो कुछ भोजन-भक्षण की सामग्री एकत्रित करके वह घर लौटता था तो उसके आह्लाद और आत्म-परिपूर्ति का कारण बनता था——उस समस्त सामग्री को अपनी सहचरी को अर्पित कर देना। यही कन्दरावासी मानव-परिवार अखिल मानवता के रूप में विकसित होता हुआ आज की स्थिति को पहुँचा है। विकास की द्वन्द्वात्मक भौतिक प्रक्रिया के अनुसार जैसे-जैसे मानव की प्रकृति पर विजय फलीभूत होती रही है, प्रकृति ने भी उसके जीवन-यापन के क्रम को परिवर्तित करने में योगदान किया है।

आज के कर्मप्रधान एवं संघर्षमय जीवन में जब हम परिवार को देखते हैं तो समकालीन समाज के कानूनों, मान्यताओं, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक विधान की ओर ही हमारा ध्यान अधिक जाता है, इकाई के रूप में इस परिवार के जो घटक हैं उनकी तरफ प्रायः ध्यान नहीं जाता। हम यह मानने के लिए तैयार हैं कि पारिवारिक सम्बन्धों में सामाजिक उपादानों का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है, लेकिन सामाजिक उपादानों को व्यक्तिगत आचरण की एकमात्र प्रेरक शक्ति मान लिया जाय तो यह स्वाभाविक है कि मानव की आन्तरिक नवोन्मेषकारी प्रवृत्तियों के मूल्यांकन और समाजीकरण की तरफ से हम उदासीन हो जायेंगे; जब कि हकीकत यह है कि सामाजिक उपादानों का वास्तविक निर्माता मानव ही है। वह इन उपादानों को अपने जीवन-यापन में साधन के रूप में प्रयोग करता है, वह उनका दास नहीं है। व्यक्ति और समाज के अन्योन्याश्रित सम्बन्धों में जिस समय हम सामाजिक दायित्वों को प्राधान्य देने लगते हैं तब भी परिवार की विभिन्न इकाइयों के व्यक्तित्व और अस्तित्व उपेक्षित हो जाते हैं और जाने अथवा अनजाने जब यह उपेक्षा परिवार की सीमाओं में अभिव्यक्त होने लगती है, तो परिवार का संतुलन बिगड़ जाता है।

लेकिन यह सन्तुलन बिगड़ता कैसे है? पति और पत्नी परिवार के आधार-स्तम्भ होते हैं। इसी नींव पर परिवार रूपी भवन का निर्माण होता है। अगर नींव कमजोर होती है तो भवन भी अधिक दिन तक खड़ा नहीं रह सकता। इसी कारण भारतीय दाम्पत्य जीवन को अनेक विशेषणों से महिमामण्डित किया गया है लेकिन वैवाहिक जीवन की कथित अथवा वांछित आध्यात्मिक गरिमा के बावजूद पति और पत्नी के दो व्यक्तित्व जो विवाह के पहले दिन अस्तित्वमान होते हैं, वे जाने-अनजाने विवाहित जीवन के अन्तिम दिन तक साथ चलते रहते हैं। इनमें एक स्वरूप है पति और पत्नी का, पुरुष और नारी के रूप में, एक दूसरे के प्रति समर्पण का भाव और दूसरा स्वरूप है समाज द्वारा दिये गये अधिकारों के अनुकूल एक-दूसरे पर स्वामित्व का भाव। सामान्यतः यदि पति-पत्नी में सच्ची सद्भावना है तो सामाजिक अधिकारों के प्रयोग करने की स्थिति कभी नहीं आती और यह भी सही बात है कि जब पति-पत्नी के सम्बन्धों में सद्भावना अथवा सामंजस्य स्थापित करने के लिए दोनों में से किसी एक का भी ध्यान सामाजिक अधिकारों की तरफ जाने लगता है तो समझ लेना चाहिये कि पुरुष और नारी के जो नैसर्गिक सम्बन्ध हैं उनमें कहीं शिथिलता आ गयी है और यदि आग्रह पूर्वक इन अधिकारों का प्रयोग किया जाने लगता है तो यहाँ से पारिवारिक सम्बन्धों में असन्तुलन प्रारम्भ हो जाता है।

मनोविज्ञान जहाँ यह बात स्वीकार करता है कि व्यक्तिगत सम्बन्धों के सन्तुलित सद्भावनायुक्त तथा माधुर्यपूर्ण होने में पर्यावरण की महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है, वहाँ इस विज्ञान में सम्भवतः एक महत्त्वपूर्ण तत्व यह उपेक्षित कर दिया गया है कि एक ही व्यक्ति द्वारा परिवार के अलग-अलग सदस्यों के प्रति आचरण में भेद होने के कारण एक स्थान पर एक आचरण परिवार में अशान्ति

उत्पन्न करता है और वहीं आचरण यदि दूसरे सदस्य द्वारा किया जाता है तो उसे एक सामान्य घटना मान लिया जाता है। वर्तमान भारतीय समाज में प्रायः यह देखा गया है कि सामाजिक उपादान पारिवारिक सामंजस्य का उतना कारण नहीं बनते जितना कि व्यक्तिगत आचरण में परिवार के विभिन्न सदस्यों के प्रति अपनाया गया नीति-भेद। केवल एक ही स्वरूप को हम लेते हैं—पति-पत्नी की एक दूसरे के प्रति चरित्र-सम्बन्धी मान्यता।

पति अपनी पत्नी से एकनिष्ठ प्रेम की अपेक्षा करता है। उसी तरह पत्नी भी अपने पति से समर्पित प्रेम की अपेक्षा करती है। जहाँ तक इन अपेक्षाओं के नैसर्गिक रूप में एक दूसरे के प्रति अभिव्यक्ति अथवा उपलब्धि का प्रश्न है, यह तत्व दाम्पत्य जीवन के माधुर्य का प्राणतत्व बन जाता है परन्तु यदि वैवाहिक जीवन व्यतीत करते-करते किन्हीं प्रकट अथवा अप्रकट, वैज्ञानिक अथवा अवैज्ञानिक कारणों से इन नैसर्गिक समर्पण के भाव में कहीं अन्तर आता हुआ कोई भी तटस्थ भाव उसके कारण की तरफ ध्यान नहीं देता, ऐसी स्थिति में पति और पत्नी का कर्तव्य तो यह होना चाहिए कि वह इस अल-गाव के कारणों का अनुसन्धान करें और अपने आचरण को उनके अनुरूप ढालें ताकि एक दूसरे के प्रति मन में समाया हुआ वितृष्णा का भाव साफ हो जाय और भावनात्मक आवेश पुनः नैसर्गिक रूप से प्रवाहित होने लगे। होता यह है कि पति अथवा पत्नी मन में गाँठ बाँध कर बैठ जाते हैं और धीरे-धीरे किसी छोटी-सी बात पर मन में पैदा होने वाली यह गाँठ नागफाँस बन कर सम्पूर्ण परिवार को जकड़ लेती है।

जहाँ तक सम्बन्धों के असन्तुलित होने का प्रश्न है उसके कारणों की कोई सीमा नहीं है लेकिन इनमें सबसे भयंकर तत्व है पति-पत्नी में से किसी भी एक का लैंगिक स्वैराचार के मार्ग का सहारा लेना। वैवा-हिक वेदी के चारों तरफ प्रदक्षिणा देते समय पति-पत्नी एक दूसरे के प्रति प्रणबद्ध होते हैं कि लैंगिक स्वैराचार में वे नहीं फँसेंगे तथापि आज के जिन परिवारों में सम्बन्धों का असन्तुलन है और भावनात्मक असामंजस्य है, उनके पीछे इसी स्वैराचार को लेकर मनमुटाव का पहला बीज बोया जाता है। हम लैंगिक स्वैराचार का समर्थन नहीं करते लेकिन इस कसौटी को इस परीक्षा के लिए प्रयोग अवश्य करना चाहिये कि विभिन्न संस्कारों वाले और पृथक पारिवा-रिक वातावरणों में पले पुरुष और स्त्री जब सामाजिक सम्बन्धों के नाम पर एक साथ जुड़ते हैं तो इस समायोग की एक, दो, दस या बीस वर्ष की आयु के उपरान्त भी क्या इतनी आत्मीयता एक दूसरे के प्रति उत्पन्न नहीं कर पाते कि यदि सामाजिक विधान विहित आचरण का थोड़ा भी उत्क्रमण हो जाय तो उसे आत्मीयता के माधुर्य से धोकर पुनः पवित्र कर लिया जाय? पवित्र शब्द के स्थान पर यदि स्वाभाविक शब्द का प्रयोग किया जाय तो बात और भी साफ हो सकती है। बात सुनने में कुछ अटपटी लगती है लेकिन शायद उतनी अटपटी नहीं है। परिवार में पति-पत्नी के सम्बन्धों के बारे में जो मर्यादायें निर्धारित हैं; ठीक उसी प्रकार परिवार में पुत्र, पुत्रियों, भाई और बहनों के नाम से पुकारे जाने वाले सदस्यों के

लिए भी कुछ मर्यादित आचार-संहिता बनी हुई है। इस आचार-संहिता का जो पारिवारिक सदस्य निष्ठापूर्वक पालन करते हैं, उनके प्रति सभी के मन में आदर का भाव होता है, लेकिन कभी-कभी इन सदस्यों की ओर से असन्तुलित आचरण भी किया जाय यहाँ सवाल फिर यह पैदा होता है कि एक आचरण जो पति द्वारा किया जाता है वही आचरण यदि पुत्र द्वारा किया जाय तो एक ही व्यक्ति के पत्नी और माँ के रूप में दो खण्डित मानवस्वरूप क्यों सामने आते हैं? यह छिपी हुई बात नहीं है कि माँ अगर यह जानती भी है कि उसके पुत्र ने किसी स्थान पर नैतिक मर्यादा का उल्लंघन किया है और यदि उसके समक्ष घटना सप्रमाण प्रस्तुत की जाती है तो भी वह पुत्र को सदैव क्षमा ही करना चाहती है। केवल क्षमा ही नहीं करना चाहती वह अपने स्नेह-संकुल-कर-स्पर्श से जैसे मन ही मन उसे आशीर्वाद भी देना चाहती है और बार-बार यह दुहराती है—"मेरा बेटा ऐसा नहीं कर सकता। और यदि उसने किया है तो आगे ऐसा नहीं करेगा।" ठीक यही भाव माता और पिता दोनों के मन में अपनी सन्तान के प्रति नैसर्गिक रूप में अभिव्यक्ति पाते हैं।

यह भी सही है कि इस प्रकार के भावनात्मक आचरण से सन्तान के जीवन में अद्भुत परिवर्तन होता है। यदि किसी भावनात्मक संवेग के वशीभूत नैतिक मर्यादा का उल्लंघन हो भी जाता है तो सन्तान उसका परिष्कार करने के लिए प्राणपन से चेष्टा करती है। सम्भवतः यही कारण है कि सामाजिक विज्ञानवेत्ताओं ने इस बात पर जोर दिया कि किसी व्यक्ति के जीवन की पहली भूल को इतना तूल न दिया जाय कि उससे समस्त जीवन ही विनष्ट हो जाय। जिन परिवारों में अपने स्वजनों की पहली भूल को उदार-दृष्टि से नहीं देखा जाता वे परिवार नर्क बन जाते हैं और असन्तुलित आचरण की नारकीय यन्त्रणा से केवल माता-पिता ही नहीं, वरन परिवार के समस्त सदस्य आजीवन यन्त्रणा पाते रहते हैं। लेकिन अधिक महत्त्वपूर्ण बात पति और पत्नी के पारस्परिक सामंजस्य की है। जो भाव पुत्र अथवा पुत्री, भाई अथवा बहन के आचरण के प्रति नैसर्गिक रूप से उत्पन्न होते हैं, वैसे ही एक-दूसरे के प्रति क्यों नहीं उत्पन्न होते? इसका अर्थ क्या यह समझ लिया जाय कि पति और पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध रक्त-सम्बन्ध के सामने हेय हैं? यदि इस मान्यता को प्रधानता दी जाएगी, तो क्या उससे यह सिद्ध नहीं होता कि पति-पत्नी का सम्बन्ध विवाहित जीवन के पहले दिन से अन्तिम दिन तक केवल सामाजिक सम्बन्ध ही बना रहता है? और अगर यह रिश्ता केवल सामाजिक है, तो फिर प्रतिकूल स्थिति होने पर या बेमेल होने पर उसे तोड़ा जाता है तो उससे समाज में तूफ़ान क्यों उठ खड़ा होता है? हर पुरुष और हर स्त्री इस धरती पर जब अवतरित होता है तो वह अकेला ही होता है, यह उसकी मर्ज़ी होनी चाहिए कि अकेला जीना चाहता है या दाम्पत्तिक सूत्र में बँध कर भी फिर उससे मुक्त हो जाना चाहता है।

जिन देशों में स्त्री और पुरुष दोनों ही आत्मनिर्भर होते हैं, वहाँ विलगाव से भूकम्प नहीं आते। विवाहित और अविवाहित माताओं में भी वहाँ भेदभाव नहीं बरता जाता। हमारे देश में भी, चाहे समाज-

सुधार के नाम पर ही सही, व्यक्ति की इस स्वतन्त्रता को प्रतिष्ठित किया जा रहा है। कानून भले ही सख्त हों, लेकिन उनसे यह बात तो सिद्ध हो ही जाती है कि सामाजिक सम्बन्ध अगर पति-पत्नी में से किसी एक के जीवन में गतिरोध उत्पन्न करते हैं, तो उनसे मुक्ति पाई जा सकती है।

यह बात हमने इसलिए कही कि पति-पत्नी को जीवन पर्यन्त सुख के साथ अगर जीना है, तो उन्हें दोनों मार्गों में से एक मार्ग स्वीकार करना पड़ेगा। पहला मार्ग प्रेम और सद्भावना का है। इस सम्बन्ध में एक-दूसरे के अभावों को उदारता के साथ स्वीकार करना होगा। यदि उदारता बरती जाएगी, तो अमर्यादित आचरण भी मर्यादित हो जाएगा। इसी उदारता को समाज-विज्ञान की भाषा में सामंजस्य कहते हैं। यदि यह सामंजस्य स्थापित हो जाता है तो परिस्थितियों की लाचारी, निर्धनता, सुन्दरता-असुन्दरता सभी असामंजस्यकारी तत्व आत्मीयता का रूप धारण कर लेते हैं। पति और पत्नी दोनों में सच्चे सखा-भाव का उदय होता है। हम यह भी कहना चाहते हैं कि केवल लैंगिक सम्बन्ध की एकनिष्ठता को दाम्पत्तिक जीवन की सफलता नहीं मान लेना चाहिए। मन से दूरी होते हुए कायिक एकनिष्ठता भी बलात्कार होती है। इस बलात्कार को सह सकने की क्षमता होना, विवाहित जीवन की सफलता नहीं है। इससे व्यक्ति का आत्मिक ह्रास होता है, उसकी गरिमा नष्ट हो जाती है, वह जीवन-यापन के साज-सामान के बदले में अपना समर्पण करता है और यही तो वेश्यावृत्ति है। सामाजिक अधिकार का सहारा लेने से भी उस स्थिति में अन्तर नहीं पड़ता।

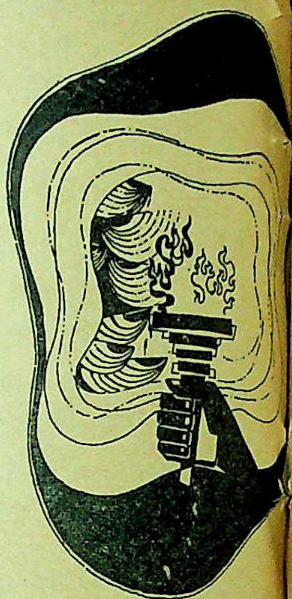
दूसरा मार्ग सामाजिक अधिकारों का है। प्रतिकूल स्थिति होने पर सम्बन्ध विच्छेद करने में हिचकिचाना नहीं चाहिए, लेकिन उसका अर्थ यह न समझ लिया जाय कि सम्बन्ध विच्छेद करने वाला व्यक्ति केवल लिप्सा से प्रेरित होकर ही ऐसा करता है। जो ऐसा करते हैं उन्हें उसका परिणाम शीघ्र ही भुगतना भी होता है। क्योंकि मानवीय जीवन की आत्मपूर्ति केवल कायिक सुख में नहीं है। सच्चा सुख प्राप्ति में नहीं है। सच्चा सुख उसे ही मिलता है, जिसके प्रति उसके आसपास के मानव-समाज में अनायास अनुराग उत्पन्न होता है; जिसे सभी अपना भाई-बन्धु स्वीकार करते हैं। वही व्यक्ति धन्य होता है।

परिवार अगर संतुलित है तो वह सच्चे सुख का साधन बनता है, अगर असन्तुलित है तो वह दुःख और ग्लानि का कारण बनता है। इस संतुलन का एकमात्र साधन है पति और पत्नी का एक दूसरे के प्रति व्यवहार। इसी व्यवहार की प्रतिच्छवि संतान में आती है और इसी प्रतिच्छवि से सामाजिक संगठन का निर्माण होता है।

●

नेक आदमी के घर में खराब औरत इसी दुनियाँ में उसके लिए नरक-तुल्य है।

—सादी ; प्रेषक : सतीश



● ओमप्रकाश आर्य

वैदिक युग से लेकर गाँधी के उपरान्त के युगान्तर तक की समाज-व्यवस्था के उस रूप की झाँकी जिसे आज के कम्यून का ऐतिहासिक पिता माना जाता है।

⊙ ⊙ ⊙

भारतीय इतिहास के अनुशीलन और अनुसंधान से प्राचीन समय में प्रागैतिहासिक युग से लेकर दास युग तक के बीच में कम्यून परिवारों के सम्बन्ध में पर्याप्त तथ्य मिलते हैं। दास युग का प्रारम्भ भारत में वर्ण-व्यवस्था, निजी सम्पत्ति और वर्गों के उदय के साथ हुआ था। उससे पहले ही भारत में अधिकतर वैदिक साहित्य के अन्दर इन आदिम कम्यूनों की चर्चा पाई गई है। इस सम्बन्ध में दो मत दिखते हैं। एक है श्रीपाद अमृत डांगे जैसे विख्यात कम्युनिस्ट नेता का, जो इन कम्यूनों की सत्ता को स्वीकार करते हैं और दूसरा है एक दूसरे मार्क्सवादी विद्वान् दामोदर धर्मानन्द कौशाम्बी का, जो कि स्पष्ट शब्दों में ऐसे कम्यूनों की सत्ता स्वीकार नहीं करते हैं। वैसे विद्वान् जो कि भारतीय प्राचीन समाज की मार्क्सवादी व्याख्या नहीं करते हैं या नहीं स्वीकार करते हैं, उन्होंने भी प्राचीन भारतीय कम्यूनों के सम्बन्ध में कहीं स्पष्ट

मार्क्सवादी दर्शन में परिवार

नहीं लिखा है पर दूसरे शब्दों में उनकी सत्ता स्वीकार की है। इनमें इंगलैण्ड के प्रसिद्ध भारतीय पुरातत्वविद् प्रोफेसर ए. एल. बशम हैं।

किसी भी भू-खण्ड में आदिम कम्यूनों की सत्ता मानवीय विकास की प्रक्रिया के प्रारम्भिक चरणों में ही देखी जाती है। इन्सान जानवर से जंगली मनुष्य, फिर बर्बर मनुष्य, और उसके बाद सभ्यता की ओर प्रवृत्त मनुष्य बना। सभ्यता की ओर प्रवृत्त होने की प्रक्रिया मानवीय समाज के विकास की वह सीढ़ी है जिसमें श्रम का विभाजन और व्यक्तियों के बीच में जिन्सों के उत्पादन का विनिमय प्रारम्भ हो जावे। इस सीढ़ी पर चढ़ने के समय ही किसी भी समाज में आदिम कम्यून समाप्त हो जाते हैं। और उसके बाद मानवीय विकास नये माध्यमों के सहारे होता है।

डांगे के अनुसार भारत के अन्दर आदिम आर्यों के कम्यून का ही दूसरा नाम ब्राह्मण था और यज्ञ उस आदिम कम्यून का सम्मिलित उत्पादन का तरीका था। ऐतिहासिक भौतिकवाद के अनुसार आदिम कम्यून इसलिए कायम हुए क्योंकि उन समयों में उत्पादन की शक्तियाँ चरम पिछड़ी अवस्था में थीं, और उत्पादन की बेहद कमी थी। श्रम और उपभोग सम्मिलित थे। कोई निजी सम्पत्ति नहीं थी। समाज में वर्ग नहीं थे। निजी परिवार और विवाह की प्रथा नहीं थी। एक कम्यून के लोग अधिकतर आपस में सम्बन्धित थे। सब कुछ सम्मिलित था, श्रम, भोजन, शयन, मैथुन, प्रजनन। राज्य नहीं था। कानून नहीं थे। पुलिस और फौज नहीं थी। कम्यून के नियमन परम्परागत सुविधाओं पर आधारित थे। जो व्यक्ति उसके खिलाफ़ जाता था, उसे कम्यून से निकाल दिया जाता था। उसका अर्थ लगभग निश्चित मृत्यु थी, क्योंकि कोई एक व्यक्ति अपने तईं जीवन-यापन के साधन प्रस्तुत नहीं कर सकता था।

यज्ञ के अन्य अर्थों में एक अर्थ यह भी है कि सब मिल-जुल कर प्राप्त करें। पर क्या प्राप्त करें? वस्तुएँ और सन्तानें। इस भाव का विस्तार करके भारतीय आदिम कम्यून के उस चित्र को देखा जा सकता है जो कि ऊपर दिया गया है। पर साथ ही यह भी बात है कि जब भारतीय समाज अपने आर्थिक उत्पादन की उस स्थिति से बाहर निकल गया तब भी एक कर्मकाण्ड के रूप में, एक प्रकार की पूजा के रूप में, एक प्रकार की सामाजिक स्मृति के रूप में, यज्ञ रह गया है और कितने ही स्थानों में आज तक है। पर तब तक आदिम कम्यून समाप्त हो चुके थे।

जंगलियों के लैंगिक सम्बन्ध इन्सान ने भारत में भी विरासत में पाये। पर कम्यूनों की स्थिति तक आते-आते उनमें कुछ परिवर्तन हुए। मसलन प्रारम्भ में माता और पुत्र और पिता और पुत्री में बिना किसी हिचक के लैंगिक सम्बन्ध होते थे। एक स्त्री कितने ही पुरुषों के साथ संभोग करती थी और एक पुरुष कितनी ही स्त्रियों के साथ संभोग करता था। कम्यूनों के अन्दर धीरे-धीरे पहले गण की व्यवस्था और पीछे गोत्र की व्यवस्था प्रारम्भ हुई। इन लैंगिक सम्बन्धों में एक तरह की जो अव्यवस्था थी वह समाप्त हो गई। परिवारों और विवाहों की संस्थाओं से पहले भी माता-पुत्र, पिता-पुत्री, भाई-बहिन के लैंगिक सम्बन्ध समाप्त हो चुके थे। पीछे

सगोत्र में लैंगिक सम्बन्ध वन्द हुए। उसके बाद तो निजी परिवार बनने लगे और आदिम कम्यून समाप्त ही होने लगे।

भारतीय इतिहास के आदिम युग से लेकर आज बुर्जुआ युग तक बीच-बीच में कई तरह के कम्यून स्थापित हुए, पर उनके पीछे वे आर्थिक-भौतिक शक्तियाँ नहीं थीं और वे समाज-विकास के प्राकृतिक रूप नहीं थे। मसलन बुद्ध के युग में भिक्षु लोग कम्यून तरह के जीवन में रहते थे। सम्मिलित भिक्षाटन करते थे। सम्मिलित भोजन करते थे। भिक्षुणियों और भिक्षुओं के लैंगिक सम्बन्ध वर्जित थे। ये कम्यून उन धार्मिक विचारों के प्रसार की सुविधा के लिए बने थे जो कि पीछे परम्पराओं के अनुसार मठों में बदल गये। इनका उपयोग सामयिक था, आंशिक था, क्षेत्रीय था, सीमित था। इनमें किसी की निजी सम्पत्ति नहीं थी। किसी का निजी परिवार नहीं था। इनके अन्तर्मानवीय सम्बन्ध उस समय की नैतिक मान्यताओं के अनुसार थे। इसलिए लैंगिक अराजकता-अव्यवस्था नहीं थी। वर्ण-व्यवस्था की विभीषिका के विरोध में ये एक प्रकार की प्रतिक्रिया के रूप में थे।

उसके बाद भारतीय समाज में दास-प्रथा, सामन्ती-प्रथा, और बुर्जुआ-प्रथाओं के विकास हुए, जिनके अन्दर किसी तरह के कम्यूनों को कोई स्थान नहीं था। पिछले चालीस सालों में राजनीतिक कार्य सुचारू रूप से और कम खर्च में करने के लिए कुछ वामपक्षी दलों ने किसी-किसी स्थान में राजनीतिक कार्य-कर्ताओं के कम्यून अवश्य स्थापित किये थे। इनमें पुरुष और महिलाएँ अपने परिवार सहित एक साथ रहते थे, कहीं-कहीं अभी भी रहते हैं। इनमें से कुछ ने अपनी सारी सम्पत्ति किसी राजनीतिक दल को दे दी है। इन सबको एक नियत पार्टी-तनखाह मिलती है। इनके भोजन एक साथ बनते हैं। ये एक साथ काम करते हैं। पर इनकी सब सम्पत्ति कम्यून की नहीं होती है। न ही इनके लैंगिक सम्बन्ध किन्हीं अराजकता-अव्यवस्था पर आधारित हैं। इनकी नैतिक मान्यताएँ अपने बुर्जुआ युग की हैं। कहीं-कहीं ये चेतन रूप से उन नैतिक मान्यताओं से आगे निकल कर समाजवादी मान्यताओं की ओर पुरस्सर हुए हैं। ये कम्यून अपने आप कायम न होकर चेतन रूप से किसी ध्येय विशेष के लिए कायम हुए, और होते रहे हैं। ये बने भी, टूटे भी। फिर बने हैं, और शायद फिर टूट जावें। पर इनका सामान्य भारतीय समाज पर कोई सामाजिक प्रभाव पड़ा हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता है।

इसी के साथ वर्तमान युग में आज से लगभग तीस साल पहले कुछ छिट-पुट प्रयोग भी कम्यून परिवारों के सम्बन्ध में हुए। पंजाब में अमृतसर और लाहौर के बीच एक गाँव बसाया गया जिसके प्रवर्तक हैं सरदार गुरुबक्श सिंह। इन्होंने कुछ अवकाश-प्राप्त लोगों से धन एकत्र करके कुछ जमीन खरीदी, जिस पर उस गाँव में रहने वाले सब खेती का काम करते हैं। उनके परिवारों के रहने के लिए घर तो अलग-अलग बने थे, पर उनके सम्मिलित भोजन के प्रबन्ध कम्यून के आधार पर संगठित हुए हैं। उस कम्यून का नाम है प्रीत नगर, जो कि अब भी किसी न किसी रूप में चल रहा है।

यह उस अर्थ में कम्यून नहीं रहा जिस अर्थ में आदिम कम्यून था या फिर मार्क्सवादी

सिद्धान्त के अनुसार समाजवादी समाज की स्थापना के बाद साम्यवादी समाज में जो कम्यून होगा। इसमें वे ही शरीक हो सकते थे, जो कि कुछ आधारिक धन रखते हों। यानी बुर्जुआ श्रेणी के लोग या पेटी-बुर्जुआ श्रेणी के लोग। यों यह कम्यून स्थापित करने के बाद उन्होंने समूचे वातावरण को एक चेतन समाजवादी वातावरण बनने में मदद दी। उसकी स्थिति रेगिस्तान में नखलिस्तान की तरह थी। वह मॉडेल बन सकता था, जन-आन्दोलन का हिस्सा नहीं; क्योंकि उसकी सीमाएँ थीं। उसके अन्दर लैंगिक सम्बन्ध आज की लैंगिक नैतिकता पर आधारित थे और हैं। वहाँ उन्मुक्त प्रेम जैसी उच्छृङ्खलता नहीं और न ही पुनीतवादी आवरण में दकियानूसी मनोवृत्ति है।

कम्यून परिवारों के बारे में भारत के कई और केन्द्रों में, वर्तमान युग में, कुछ इसी प्रकार के प्रयोग किये गये। कुछ सफल हुए। कुछ बन्द हो गये। पर एक आधारिक विकास के रूप में वे हमारे सामने भारत में नहीं आ सके और न ही आ सकते थे।

उसके बाद इधर सोवियत संघ के अन्दर तो नहीं पर जनवादी चीन के अन्दर ग्रामीण कम्यूनों की व्यवस्था के समाचारों ने हमारे देश में भी कुछ तहलका मचा दिया है। उन चीन-स्थित कम्यूनों के बारे में कुछ भ्रामक धारणाएँ फैली हैं, जिनका तथ्य से कोई सम्बन्ध नहीं है। मसलन यह कि चीन के कम्यूनों में निजी परिवार नहीं रहता है या निजी परिवार को कोई निजी एकान्त नहीं मिलता है। औरतें अलग रहती हैं, मर्द अलग रहते हैं और वे पन्द्रह दिन में ही एक बार मिल पाते हैं। ये सब बातें गलत हैं।

चीन के कम्यूनों की असली नवीनता यह है कि ये चीन के अन्दर समाजवादी निर्माण की प्रारम्भिक अवस्था के समय निर्मित हुए हैं जबकि मार्क्स और एंगेल्स ने ऐसे कम्यूनों की स्थापना की परिकल्पना किसी भी देश में समाजवादी निर्माण के बाद जब साम्यवादी निर्माण होने लगे, उस स्थिति में की थी। समाजवादी निर्माण का सिद्धान्त है कि हर व्यक्ति को उपभोग्य वस्तुएँ अपने **श्रमके अनुसार** मिलती हैं और साम्यवादी निर्माण का सिद्धान्त है कि हर व्यक्ति को उपभोग्य वस्तुएँ **आवश्यकता के अनुसार** मिलती हैं। उपभोग्य वस्तुओं के बाहुल्य के समय ही साम्यवादी समाज की रचना संभव है, उससे पहले नहीं। लेनिन ने भी मार्क्स और एंगेल्स के इन लेखनों को एकत्र करके मार्क्सवादी सिद्धान्तों का जो सूत्रीकरण किया था, उसमें भी साम्यवादी स्थिति में ही नये तरह के कम्यूनों की व्यवस्था की गयी थी।

चीन के अन्दर माओ त्से तुङ्ग ने यह दिखलाया कि चीन की विशिष्ट परिस्थितियों के अन्दर ग्रामीण विकास, खेती की उन्नति और ग्रामीण उद्योगों की उन्नति, केवल सहकारिता-समितियों और सम्मिलित खेतों से ही संभव नहीं हो सकती, जैसा कि सोवियत संघ में संभव हो सका था। चीन के आर्थिक विकास के लिए ग्रामीण क्षेत्रों में कम्यूनों का स्थापन आवश्यक हो गया था। वास्तव में ये कम्यून सोवियत किस्म के सम्मिलित खेतों के ही एक विकसित रूप हैं, जिनके जिम्मे स्थानीय उद्योग, स्थानीय प्रशासन और स्थानीय पूर्ति की जिम्मेदारियाँ सौंप दी गई हैं।

इनके अन्दर उत्पादन के सब साधन सम्मिलित हैं। भोजन सम्मिलित होता है।

एक जगह बनता है, जो कि सम्मिलित भोजनागार में भी खाया जा सकता है और कम्यून के अपने कमरों में भी ले जाकर खाया जा सकता है। भोजन इच्छित है और एक तरह से तनखाह का एक हिस्सा है। उत्पादन सम्मिलित है। पर सम्मिलित भोजन के बाद भी काम करने वाले पुरुषों और स्त्रियों को वेतन अपने-अपने कार्य के अनुरूप मिलता है।

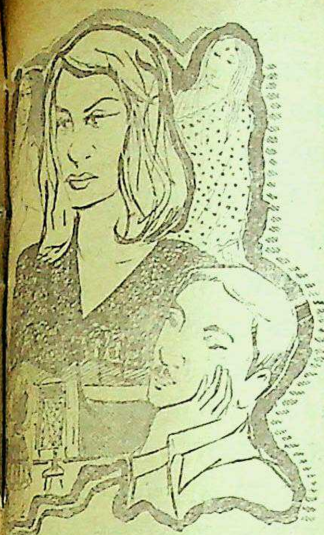
चीन के इन कम्यूनों में लैंगिक सम्बन्ध समाजवादी नैतिकता के आधार पर हैं, जहाँ पर उच्छृङ्खलता, उन्मुक्त प्रेम या पुरुषों और स्त्रियों का पृथक्करण न होकर स्त्रियों को घरों के चूल्हों की और बाकी घरेलू कामों की कैद से निकाल कर उन्हें न केवल राजनीतिक रूप से पूरे अधिकार दिये गये हैं, वरन् समाज के अन्दर एक उत्पादक के रूप में, एक नियामक के रूप में, एक उपभोक्ता के रूप में पूरे अधिकार दिये गये हैं।

यों आने वाले समय में भारत में समाजवादी प्रावस्था और साम्यवादी प्रावस्था में, दोनों में, कम्यून परिवारों की संभावना है। इन दोनों कम्यून परिवारों की व्यवस्थाएँ मूलतः भिन्न होंगी, यह स्पष्ट है। हमारी समाजवादी प्रावस्था में कम्यून व्यवस्था आये ही यह आवश्यक नहीं है, केवल संभाव्य है। यह अधिकतर उस समय निर्भर करेगा, जिस समय हम समाजवादी आधारों पर ग्रामीण व्यवस्था को विकसित करने के चेतन यत्न करेंगे।

आदिम कम्यूनों की स्थापना केवल भारत में ही नहीं वरन् समूची दुनिया में उत्पादन की कमी और उत्पादन की शक्तियों के पिछड़ेपन के कारण हुई थी और जब निजी सम्पत्ति का प्रादुर्भाव हुआ तो वे समाप्त हो गये और साम्यवादी समाज के अन्दर नये विकसित कम्यूनों की व्यवस्था तब होगी जब कि निजी सम्पत्ति समाप्त हो चुकेगी और उत्पादन बहुलता की चरम सीमा पर और उत्पादन-शक्तियाँ उच्चता के शिखर पर पहुँच चुकी होंगी। बीच में जो कम्यून हुए या होंगे उनके अपने-अपने आधार हम स्थान-स्थान पर स्पष्ट कर चुके हैं।



स्नानार्थी परिवार : माघ मेला, प्रयाग
रेखाचित्र : डॉ० जगदीश गुप्त



इन्दु जैन

देश की सीमाओं और परम्परा की मर्यादाओं को लाँघ कर जब विदेशी बहू देशी परिवार में पहुँचती है—तो...?....पारिवारिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं की एक जानी-परखी भावभूमि।

आशा

"चपला, सिविल को बुला। अब तक तैयार नहीं हुई क्या ?" अभी आशा ने बात पूरी भी नहीं की थी कि माँ कुछ नाराज़ होकर बोल पड़ीं, "अरी तुझसे भाभी नहीं कहा जाता ? अशोक को तो भैया कहती है और उसकी बहू का नाम लेती है ?" आशा को सचमुच खुद पर ताज्जुब हुआ। उसे अब तक यह ध्यान ही नहीं आया था कि इस गौरांगी, पीले बालों वाली नारी का अपने नाम के अतिरिक्त और भी कोई व्यक्तित्व उभर सकता है। 'अशोक भैया स्विस भाभी ला रहे हैं' यह जब उसने मलाया में सुना था तो रोमांचित हो गई थीं। अपने भैया के साथ उसकी पूरी-पूरी सहानुभूति थी—पूरा समर्थन। दूर बैठे-बैठे उसे लगा था कि शायद इस विवाह से सबसे ज़्यादा खुशी उसे ही हुई है। हफ्तों यही सोच-सोच कर गुज़ारे थे कि कैसे अनजाने देश की सुन्दरी भाभी पर प्यार बरसा-बरसा कर वह उसे

देशी परिवार में विदेशी बहू

अपना बना लेगी--अपने देश की याद तक नहीं आने देगी--और डरा करती थी कि कहीं माँ और पापा उससे अजनबी का-सा व्यवहार न करें ! कहीं सिबिल अकेलापन न महसूस करती हो। मनोविज्ञान के सिद्धान्त दुहरा डाले थे--हर अंग्रेज़ी उपन्यास की नायिका में उसे सिबिल की भरपूर हँसती हुई, शीइंग करती तस्वीर दिखाई देती थी।

लेकिन जब वह भारत लौटी तो अशोक और सिबिल उससे छः महीने पहले ही आ चुके थे और परिवार में मेमसाहब-बहू की नवीनता भी समाप्त हो चुकी थी। हवाई अड्डे पर माँ, पापा, बहनों और भैया से आँसू भर लिपटने और प्यार करने के बाद आतुर दृष्टि आशा ने पाया कि सिबिल उसकी कल्पना की सिबिल भाभी से बिल्कुल अलग --संगमरमरी, ठंढी और निर्लिप्त, बस बेहद--अभारतीय युवती है. . .और सिर्फ़ होठों से मुस्करा कर कह रही है, 'हलो'।

आशा ने सप्रयत्न अपने को जगा कर अंग्रेज़ी में कहा, "हलो, आप सिबिल हैं न ! आपसे मिलने को मैं बेहद उत्सुक थी।" इस पर सिबिल फीकी-सी मुस्करा दी और आशा हतप्रभ भैया की ओर मुड़ कर बातें करने लगी।

घर पहुँच कर सब आँगन में इकट्ठे हो गए थे--एक शोर मच गया था और सब एक साथ अपनी-अपनी बातें कहने-सुनने लगे थे; लेकिन सिबिल चुपचाप अपने कमरे में जाकर लेट गई थी।

माँ

धीरे-धीरे माँ अशोक की बातें बताने लगी। अशोक हर वक्त अपनी रिसर्च और कॉलेज में व्यस्त रहता था। दिन भर पढ़ाने चला जाता। लौट कर अपने कमरे में घुस जाता और फिर बस वहीं या तो पढ़ता रहता या बहू को लेकर घूमने चला जाता। अपने पापा की ज़रा मदद नहीं करता था। दो किराएदारों पर नालिश कर रखी थी; लेकिन अशोक को क्या वास्ता ? पापा ही दिन-दुपहरी दौड़-भाग करते। आशा आधे मन से बात सुन रही थी। मन उसका हो रहा था कि माँ सिबिल की बात करे। कैसी पटरी बैठी उसकी माँ और स्विस बहू की ? आख़िर पूछना ही पड़ा और आशा मुँह खोले सिबिल की बड़ाई सुनती रही--"बेचारी लड़की बड़ी ही सीधी है। आते ही साड़ी पहनने लगी। दिन में पचास बार बाँधती और खोलती कि जल्दी सीख जाए। रोज पूजा के वक्त बाहर खड़ी देखती रहती है। पापा की चाय सुबह-शाम अपने हाथ से बनाती है। बड़ी-बूढ़ियों के सामने तो सिर ढक कर भी बैठ जाती है। अब तो बहू की बात भी काफ़ी समझ में आने लगी।"

"तो माँ, तुम अंग्रेज़ी सीख रही हो ?" आशा हँस पड़ी लेकिन माँ ने गंभीरता से कहा, "अरी अब हमीं को सीखनी पड़ेगी। तुम तो बोलती ही हो--थोड़ी-थोड़ी हम बुड्ढे भी समझ ले हैं। उस बिचारी को तो हिन्दी का एक अक्षर भी नहीं आता।"

आशा माँ की उदारता और अपना पाने की क्षमता पर मुग्ध थी। यह जानती थी वह कि माँ समय के साथ आगे बढ़ती रही है--लेकिन इतना. . .

पहले दिन की उथल-पुथल के बाद जब आशा धीरे-धीरे सँभली तो उसने पाया

कि स्नेह, सदिच्छा के बावजूद बहुत कुछ बदल गया है। भैया और सिविल एक घर में रहते हुए भी अलग से हैं। रसोई के बाहर का स्टोर भी रसोई में परिवर्तित कर दिया गया है। बिजली के स्टोव और अवन रखे हैं उसमें। छोटा-सा रेफ्रीजिरेटर भी है। खाने के समय सिविल और भैया का खाना कोर्सेज़ में आता है। सूप प्लेट, काँटे व छुरी सहित। और सब की थालियाँ ही लगती हैं। सिविल के लिए एक अलग प्लेट उबली सब्ज़ी और मक्खन की आती है। बरामदे का एक हिस्सा घेर कर सिविल और भैया का गुसलखाना बना दिया गया है जिसमें पोर्सलेन का टब है और शावर——जिसका कनेक्शन पापा ने खास तौर से सीधा टंकी से करवाया है ताकि शावर बराबर काम करता रहे। सिविल के कमरे में एयर कंडीशनर लगा हुआ है। मालूम हुआ कि सिविल ने बड़ी हिम्मत से भारत की गर्मी सहनी चाही लेकिन सारे बदन पर मोटे-मोटे दाने उभर आये और हर समय उसे चक्कर आता रहता था। बेचारी परेशान हो गई। पहले से बेहद कमज़ोर हो गई थी। जब-जब एयर कंडीशनर की बात उठती सब समझ-बूझकर मना कर दिया करती; लेकिन पापा से नहीं देखा गया। बहूरानी ने अपनी बहादुरी से उनका मन जीत लिया था। वो देख रहे थे कि कितनी कठिन स्थितियों में सिविल रह रही है। अंग्रेज़ी तक बहुत अच्छी नहीं बोल पाती थीं; टूटी-फूटी भाषा के सहारे रह रही थी और बहुत-बहुत लोग, घर-बाहर के तो, वह टूटी-फूटी भाषा भी नहीं समझ पाते थे।

सिविल

अशोक उसका एकमात्र सहारा था। शाम को कभी-कभी क्लब चले जाते थे——वह भी रोज़ नहीं क्योंकि अशोक जल्दी से जल्दी अपनी रिसर्च का अन्तिम अध्याय लिख कर प्रस्तुत कर देना चाहता था। उसके हिसाब से तो पहले ही काफ़ी देर हो चुकी थी। सिविल को गोल्फ़ अच्छा लगता था और बर्फ़ पर फिसलना...लेकिन बर्फ़ और भारत का जून मास!..अशोक ने एक दिन उसे उदास देख कर कहा था, "सिविल, मैं तुझे कश्मीर ले चलूंगा। तुझे वहाँ अपने देश की झलक मिलेगी। वही ऊँची-ऊँची बर्फ़ से ढकी चोटियाँ, फैली हुई चरागाहें और ढलान पर दूर-दूर तक उगे डेज़ी के अनगिनत फूल...।"——कश्मीर यात्रा विषयक कई पैम्फ़लेट सिविल ले आई थी, बहुत-सी तस्वीरें देख डाली थीं लेकिन कश्मीर जाना नहीं हो पाया था और व्याकुल होकर कभी-कभी सिविल अपने मन को रोक नहीं पाती थी——"यह मेरा घर है——मेरा घर...जैसा मैं सोचती आई थी बचपन से..उससे कितना भिन्न!"——उसकी ममी, उसके भाई की पत्नी और सखियों के घर से कितना भिन्न! विवाह के पहले कितने उमंग से उसकी सखियों ने पर्दे बनाए थे, सोफ़ा खरीदे थे——दीवारों पर डिस्टेम्पर कराया था।...एस्थर ने अपना सोने का कमरा विचित्र ऊदा रँगवाया था क्योंकि उसकी सुहाग-सज्जा, वस्त्र उसी रंग के थे। उनके घर दो प्राणियों की साँस से भरे रहते थे और यहाँ भारत के घर... याद करके सिविल को हँसी आ गई...वह और अशोक हल्के-हल्के संगीत पर डूबे नाच रहे थे और घर का बूढ़ा नौकर अशोक के

जूते लिए धड़ाधड़ अन्दर चला आया मुँह खोले खड़ा रहा और फिर भागा...वाक़ई भागा। सभी बिना पूछे, बिना खटखटाए कमरे में आते-जाते रहते थे...अब तो औरों को भी कुछ आदत हो गई थी और उसे खुद भी उतना विचित्र नहीं लगता था। शुरू में वह सोचा करती थी कि क्या इस देश में लोग अपने कमरों में भी सहज नहीं रह पाते...कभी भी नहीं ? अब वह अधिक समझने लगी है। जान गई है कि इनका और उसका सहज व्यवहार एक नहीं है। पति के देश आने के कुछ ही दिन बाद की बात है—सब साथ बैठे थे।...अशोक उसे चिढ़ा रहा था—उसका प्यारा, बेहद प्यारा, साँवला अशोक हमेशा की तरह काली आँखों में शरारत भर कर उसे छेड़ रहा था और उसने असह्य प्यार से भर कर, आगे झुक, अशोक की नाक की नोक छू ली थी। कमरे का वातावरण कठिन-सा हो गया था, बातचीत रुक गई थी और फिर किसी ने ज़बरदस्ती हँस कर सप्रयत्न बात दुबारा चालू की थी...। उस दिन से वह बहुत सतर्क हो गई थी। कैसे यहाँ की लड़कियाँ अपने प्यार को इस तरह अपने में सहेज कर रखती हैं कि वह छलकने नहीं पाता ?

उसकी सास—उसके पति की माँ—कितनी अच्छी है ! छोटी-सी, गुड़िया-सी ! क्या सिबिल नहीं जानती कि उसे यों अपना कर सास कितनी विशाल-हृदया हो गई है ? ऐसी अच्छी माँ की वह भी अच्छी पुत्रवधू बनना चाहती है लेकिन उस दिन अपनी असमर्थता पर कितना रोई थी वह ! अशोक की माँ लाल कुमकुम लाई—सिबिल के माथे पर लगाने को। सिबिल एकदम पीछे हट गई। उसने माँ को समझाना चाहा कि वह उनके लिए सब कुछ करने को तैयार है लेकिन कुमकुम नहीं लगवा पाएगी। माँ उसका असमंजस, कठिनाई कुछ भी समझ नहीं पाई। आहत लौट गई। शाम को अशोक ने माँ को समझाया कि सिबिल का धर्म उसे बिंदिया लगाने से मना करता है। लेकिन इससे माँ और भी आहत हुई। क्या सिबिल का धर्म अशोक के धर्म से अलग है ? माँ कुछ कटु होकर बोली, "क्या तूने भी बहू का ही धर्म अपना लिया है ?" अशोक ने माँ के हाथ पकड़ लिए..."माँ...माँ...क्या कह रही हो !" किन्तु माँ हाथ छुड़ा कर चली गई और जाकर पूजाघर में बंद हो गई। अशोक विवश बाहर खड़ा रह गया।

अशोक

क्या करे वह !—कैसे सिबिल को इतना घुला-मिला दे सब में कि माँ-पापा कोई उसे अपरिचित न लगें। सिबिल के गोरे माथे पर बिंदिया बहुत सुन्दर लगेगी—यह कल्पना माँ ने की होगी, ज़रूर की होगी। वह जानता था माँ को रूप के लिए कितनी कमज़ोरी है। सिबिल कहीं रूपवती न होती तो माँ विदेशी बहू लाने पर अशोक को कभी क्षमा न कर पातीं।

लेकिन इतने दुलार के बाद भी छोटी-छोटी चीज़ें राह में आ रहीं थीं। स्विटज़रलैंड की सिबिल उन्मुक्त, हँसती-खिलखिलाती रहती थी। लम्बी-लम्बी सैर पर दोनों जाया करते थे। सिबिल को लाल सेब खाने का शौक़ था। सबसे ज्यादा लाल हिस्सा कुतर-कुतर कर बाक़ी सेव वह अशोक को पकड़ा दिया करती थी। ढेर के ढेर सेव

उसे खाने पड़ जाते थे। वो चंचल सिविल भारत आकर सदा सहमी-सहमी रहती थी। हर काम से पहले अशोक की ओर देखती—स्वीकृति के लिए। कितनी घुटन होगी इसके मन में!......

आशा पर बहुत भरोसा था अशोक को। लेकिन आशा भी सिविल को उन्मुक्त नहीं कर पाई है—यह वह देख रहा था। तो क्या सच ही उसे अपनी प्यारी पत्नी के संगमरमरी गालों को गुलाब करने के लिए कहीं दूर ही जाना होगा? माँ...पापा... घर से दूर?

—और अशोक सोचता रहा कि विश्वविद्यालय की नौकरी छोड़ कर ट्राम्बे चले जाना ही अच्छा होगा। वहीं चला जाएगा वह। कभी-कभी दिल्ली आया करेगा—अपने घर।



राजेन्द्र अवस्थी 'तृषित'

भारतीय आदिम परिवारों की रीति-नीति का रोचक चित्र, जिसमें नया ज़माना अब धीरे-धीरे नये रंग भर रहा है।

अतीत का वह चित्र आज भी मेरे सामने ताजा है। विन्ध्याचल की एक पहाड़ी के नीचे बसे उस गाँव की यह बात है। गेंवड़े पर गाँव के सारे लोग खड़े थे और एक युवक बगल में थोड़ा-सा सामान दबाए, आँसू भरी आँखों से सबको देख रहा था। उसके पास खड़ा था गाँव का मुखिया, पहान। उसके मुख पर कठोरता थी। उसके पीछे खड़ी दो-चार औरतें सिसक रही थीं। यह थीं उस युवक की दादी, मामी, बहन, माँ या भाभी। युवक ने एक बार अपनी नन्हीं-सी आँखों से गाँव की ओर देखा और फिर मुँह फेर कर आगे बढ़ गया। मैंने देखा, पहान उसके पीछे दौड़ गया है। थोड़ी ही दूरी पर उसने उसे पकड़ लिया और गाँव वापस लौट चलने का निवेदन करने लगा। वह मना-पठा कर युवक को फिर गाँव वापस ले आया और जब गाँव वालों ने इसका विरोध किया, तो उसने कहा था: "मेरी आज्ञा मान कर तो यह बाहर चला ही गया था, मैं इसे अपने एक धर्म-बेटे के नाते फिर वापस ला रहा हूँ। अपराध किससे नहीं होते, उसकी सजा मैंने दे दी और इसने मेरी आज्ञा मान ली--क्या यह काफी नहीं है?"

इस एक घटना को मैं आदिम जातियों के परिवार संगठन का बहुत बड़ा आधार मानता हूँ। आप किसी भी गाँव में चले जाइए, सारा गाँव एक सूत्र में बँधा



एक घोटुल की लड़की दूसरे घोटुल की लड़की का स्वागत सबसे पहले जल देकर करती है।

परिवार एक नये आयाम में

मिलेगा और यह सूत्र है—उस गाँव का मुखिया। मुखिया का चुनाव उस गाँव के निवासी मिल कर करते हैं और वह गाँव का सबसे लोकप्रिय व्यक्ति होता है। वह पीढ़ी दर पीढ़ी चला जाता है। इसमें परिवर्तन तभी होता है, जब मुखिया कोई बड़ा अपराध कर दे या गाँव भर के लोगों की नजरों से वह गिर जाय। गाँव का संचालन करती है—पंचायत। और यही मुखिया उस पंचायत का प्रधान होता है। पंचायत के फैसले पर गाँव भर की आस्था होती है। बैगा और मुड़िया गाँवों में ऐसे मामले बहुत कम देखे गए हैं, जो पुलिस के हाथ लगते हों और अदालत तक जाते हों।

बैगाओं के गाँव देख कर सहसा हमें दंग रह जाना पड़ता है। वे सघनतम वनों में एक कॉलोनी बना कर रहते हैं। उनका जीवन सामूहिक और शक्ति सम्पन्न होता है। जंगल के बीच में कोई समतल जमीन खोज ली जाती है। इसी जमीन पर, एक-दूसरे से लगे हुए त्रिकोण-आकार में कई घर बना लिए जाते हैं। बीच में खुला आँगन होता है। उनका यह घर चारों ओर बाँस या केतकी की बाड़ी से घिरा रहता है। गाँव के बाहर ही एक मरघट होता है, जहाँ मृतकों को दफनाया जाता है।

गाँव के बाहर, लेकिन गाँव से लगी हुई एक झोपड़ी प्रत्येक गाँव में होती है और इसे 'चट्टी' कहते हैं। यह झोपड़ी बाहर से आने वाले अतिथियों के लिए है। उस अतिथि का सत्कार सारे गाँव वाले मिल कर करते हैं।

मुड़ियों के गाँव थोड़े भिन्न होते हैं। इनकी झोपड़ियाँ घास, फूस और बाँस से बनी होती हैं; इनके घर कच्ची बाड़ी से घिरे होते हैं और प्रायः समूचा गाँव जंगल के बीच होता है। हर गाँव का एक मुखिया होता है, जिसे 'गायता' कहते हैं। गाँव के बूढ़े-पुराने मुखिया को सलाह देते हैं और मुखिया का सारे गाँव में बड़ा सम्मानित स्थान होता है। चट्टी की तरह इनके यहाँ भी एक झोपड़ी होती है, जिसमें अतिथि ठहराये जाते हैं। इसे ये 'थानागुड़ी' कहा करते हैं।

लेकिन मुड़ियों की अपनी एक बहुत बड़ी विशेषता है और यह विशेषता उनके सामाजिक संगठन का सबसे बड़ा केन्द्र है। इसी के कारण मुड़िया, अन्य आदिम जातियों से एकदम भिन्न दिखायी देते हैं। उनके प्रत्येक गाँव के बाहर, सीमा पर, एक झोपड़ी होती है, जिसे 'घोटुल' कहा जाता है। शाम होते ही गाँव के अविवाहित युवक और युवतियाँ अपने साथ एक-एक चटाई (गीकी) लेकर



बस्तर के एक घोटुल के कुमार तथा कुमारी सदस्य जो एक परिवार की भाँति रात्रि व्यतीत करते हैं।

यहाँ आ जाते हैं। बहुत रात तक यहाँ गाना-बजाना या नाच-कूद होता है। कई बार किस्सा-कहानियाँ या ऐसे ही किसी विषय पर चर्चा होती रहती है और जब रात काफी ढल जाती है, सब घोटुल में सो जाते हैं। उनके सोने का तरीका भी अलग होता है। एक लड़का अपने साथ एक लड़की को लेकर सो जाता है।

घोटुल में प्रवेश केवल गाँव के कुमार और कुमारों को मिलता है। विवाह होते ही वे सदस्यता से पृथक हो जाते हैं। घोटुल, मुड़िया गाँव और मुड़िया परिवार की संगठन



बैंगाओं के करमा नृत्य का मजमा उनकी सहयोग पूर्ण परिवार-व्यवस्था का सबसे बड़ा प्रतीक है।

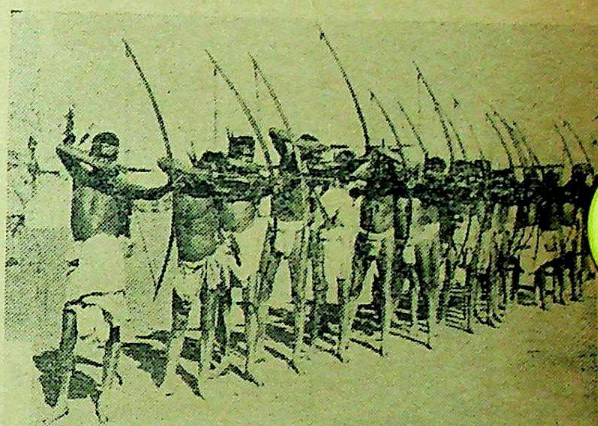
व्यवस्था का सबसे बड़ा केन्द्र होता है। यहाँ रह कर गाँव का हर सदस्य अनुशासन और शिष्टाचार सीखता है। घोटुल के सिरदार की हर आज्ञा उन्हें आँख मूँद कर पालनी होती है। यहाँ समय-समय पर उत्सव आदि हुआ करते हैं और उनमें अनेक प्रतिस्पर्धायें होती हैं। इनसे वहाँ के सदस्य आगे बढ़ने की शिक्षा प्राप्त करते हैं। घोटुल की स्थिति गाँव के बाहर होती है, अतः इस समूचे गाँव की रक्षा करना वहाँ के सदस्यों की जिम्मेदारी है। यदि गाँव के किसी व्यक्ति की झोपड़ी टूट जाय, आग लग जाय या गाँव के पास का नदी-नाला सूख जाय तो घोटुल के सदस्य मिल कर ही झोपड़ी बनाते और झिरिया खोदते हैं। उनके हाथों उस सारे गाँव की सुरक्षा है। यह देखा गया है कि मुड़िया गाँवों में अन्य गाँवों की अपेक्षा अपराध बहुत कम होते हैं। कारण मानवता का जो आदर्श घोटुल में उन्हें बचपन से सिखाया जाता है, अन्य जातियों में वह नहीं होता।

बैंगाओं में एक विशेष प्रकार की प्रथा पायी जाती है, जिसे 'लमसेना' कहते हैं। किसी सम्पन्न परिवार का पिता अपनी लड़की के लिए किसी अच्छे लड़के की खोज करता है और उसे अपने घर लाकर रख लेता है। वह वहाँ तीन से पाँच साल तक रहता है और उसे घर का सारा काम करना पड़ता है। जब लड़की का पिता उसके काम से सन्तुष्ट हो जाता है, तो उसके साथ अपनी लड़की का ब्याह कर देता है। जितने समय वह उस परिवार में विवाह के पूर्व रहता है, उसे 'लमसेना' कहा जाता है। इस तरह विवाह के पूर्व पति और पत्नी को कुछ दिन साथ रह कर एक-दूसरे को समझने और एक-दूसरे की इच्छाओं-आकांक्षाओं को जानने का समय मिल जाये तो इससे उनका भावी पारिवारिक जीवन सुखी बन सकता है।

इन मुख्य बातों को जान लेने के पश्चात् बैंगाओं और मुड़ियों की परिवार व्यवस्था में

अनेक समानताएँ सहज ही पहिचानी जा सकती हैं। वैसे तो सारे आदिवासी ही संगठित समाज के प्रतीक हैं। उनकी यह संगठन भावना त्यौहार-पर्वों, शादी-विवाह और मृतक-संस्कारों तथा अन्य ऐसे ही अवसरों पर सहज ही देखी जा सकती है। भीलों में यह प्रथा है कि खाने की जितनी चीज होती है, उसे ही सब बाँट कर खा लेते हैं। एक भूखा रहे और दूसरा खूब खाये ऐसा कभी नहीं होता। मुड़ियों में भी जब कोई भोज दिया जाता है और यदि सामान बीच में ही खतम हो जाय तो एक आदमी खाली पत्तल लेकर पंगत के बीच से घूम जाता है और बिना कुछ कहे, या बुरा माने सारे खाने वाले वहाँ से उठ जाते हैं। किसी दूसरे आदमी को इस बात का पता भी नहीं लग पाता। इनके गाँवों में एकता की रक्षा के लिए टैक्स पूरे गाँव से दिया जाता है। वहाँ अलग-अलग व्यक्ति कभी टैक्स नहीं देते। भूमि पर सारे समाज का अधिकार होता है। बैगाओं और मुड़ियों में भी इसी तरह भूमि सारे गाँव की मानी जाती है। जब फसल पक जाती है, तो सब मिल कर उसे उखाड़ते हैं और फिर सब मिल कर पैर से रौंद कर दाने निकालने का काम करते हैं। रौंदने का काम प्रायः स्त्रियाँ करती हैं। जो कुछ अनाज निकलता है, सब मिल कर उसे बाँट लेते हैं। इस तरह देखा जाय तो सारा गाँव ही प्रायः एक समूचे परिवार जैसा होता है।

समाज व्यवस्था में लोक-पर्वों का बड़ा महत्त्व होता है। फागुन के महीने में नीली-पीली सरसों तथा टेसू के फूलों के साथ गाँव और वनों की उपत्यकाएँ राग-रंग से रंगीन हो जाती हैं। प्रकृति-पुत्रों के लिए यही समय उड़ने और थिरकने का होता है। इस समय मुड़िया और बैगा—दोनों—'सरहुल' या 'फागुसेंगरा' का पर्व मनाते हैं। पूरा गाँव तब सामूहिक शिकार के लिए निकल पड़ता है। शिकार कर, जब यह शिकारी दल वापस लौटता है तो गेंवड़े पर गाँव के सारे सदस्य मिल कर उसका स्वागत करते हैं। उस शिकार पर सारे गाँव का अधिकार समझा जाता है।



बैगाओं के फागुसेंगरा पर्व में समवेत शिकार का एक दृश्य।

इसी तरह बैगाओं के करमा-नृत्य में सहयोग भावना का अनोखा चित्र देखने को मिलता है। गाँव के बाहर करमा का ढोल बजा नहीं कि गाँव के युवक और युवतियाँ दीवाने हो उठते हैं और मैदान की ओर दौड़ पड़ते हैं। करमा के मैदान में सारा भेद-भाव घुल जाता है और आश्चर्य तो यह देख कर होता है कि बिना किसी शिक्षा के सारा दल किस तरह एक साथ अपने पैर पटकता, नाचता, और गाता है। युवक और युवतियाँ एक-

दूसरे की कमर में हाथ डाल कर घण्टों आत्म-विभोर नाचा करते हैं। जो करमे के मजमें में हाजिर न हो, उस पर अनुशासन-हीनता का आरोप लगाया जाता है। करमा के बोल दूर-दूर तक गूँज उठते हैं और हवा की लहरों के साथ तैरते वे जिस किसी के भी कान में पड़ते हैं, वह वहीं थिरक उठता है, लहरा उठता है।

नृत्यों के समय ही नहीं मृत्यु जैसी दुःख-दायी वेला में भी इनकी सहयोग भावना को सहज ही देखा जा सकता है। जहाँ मृतकों को दफनाया जाता है, वहाँ सब मिल कर गड्ढा खोदते हैं और दफनाने के बाद सब मिल कर वहीं नाचते तथा मृतक को पितरों में मिलाने का प्रयत्न करते हैं। जहाँ मृतक को जलाया जाता है, प्रायः गाँव के सब लोग एक-एक लकड़ी अपने साथ लेकर श्मशान तक जाते हैं और उनकी एक-एक लकड़ी से ही उसका दाह-संस्कार सम्पन्न किया जाता है।

परिवार शब्द से एक कुटुम्ब या घर का जो सीमित अर्थ हमारे यहाँ लगाया जाता है, इनमें वह लगाना इनके साथ अन्याय करना होगा। इनका समूचा गाँव या अनेक गाँवों का समूह ही एक परिवार है, और परिवार की इतनी वृहत कल्पना कदाचित् ही किसी नागरी जाति में देखने को मिलती हो। इतनी एकता और इतना भाईचारा उन निवासियों की ही सम्पत्ति है जो आज भी नगरों से कोसों दूर, सघन उपत्यकाओं के बीच अपनी संस्कृति को अछूते कौमार्य की भाँति सुरक्षित रखे हुए हैं।

◎ ◎ ◎

हरियाणा लोक - गीतों में
जीजा - साली

राजाराम शास्त्री

हरियाणा, दिल्ली-पंजाब के सीमावर्ती हिन्दीभाषी क्षेत्र, ने आदि-हिन्दी के खड़ी बोली-रूप को ही जन्म नहीं दिया, इस बोली को भूमि-पुत्रों के व्यक्तित्व का बल और अभिव्यक्ति को धरती की गन्ध भी दी। वहाँ के लोक-गीतों में जीजा-साली के मधुर और, किसी सीमा तक, नाजुक सम्बन्धों की सरल अभिव्यक्ति।

● ● ●

साढ़ू की दोस्ती, रोटी पै के टींट।
राखे थे दो और लुढ़क गए तीन।।

साढ़ू एक दूसरे को पसन्द आयें या नहीं, जीजा-साली का माधुर्य-भाव अखण्ड रूप से चलता रहा है, और चलता रहेगा।

साली अपने पिता के घर जीजा से मिली और बातों ही बातों में उसे अपने घर आने का निमन्त्रण दे दिया जिसे जीजा ने सहर्ष स्वीकार किया। साली विरहिन है। उसका पति मूर्ख है जो इस युवावस्था में उसे छोड़ रुपये के लोभ में कहीं दूर चला गया है। जीजा ने आने का निमन्त्रण तो स्वीकार कर लिया पर वह नहीं जानता साली का घर कहाँ है। उसके घर की क्या पहचान है? साली उसे अपने घर का निशान-पता देती है और अपनी विरह-व्यथा भी व्यक्त कर देती है, जिसे सुन कर जीजा का भावुक हृदय पिघल उठता है। साली के शब्दों में घर का परिचय और उसकी अवस्था सुनिये :—



ऊँचा कोट तो नीचा दरवाजा तो नीम तलै घर मेरा
हो जीजा साली तै मिल जाइये।
जो साली तनै घरां ए न पावै तो आँगन में फिर जाइये,
हो जीजा साली तै मिल जाइये।

पितृ-गृह से विदा हो साली श्वसुर-गृह चली गई और जीजा अपने घर। पर जीजा को साली का निमन्त्रण भुलाए न भूला। उसके विरह-व्यथा भरे शब्द जैसे उसके मन को कुरेद रहे हों। अन्त में एक दिन उसने साली के घर की राह ली। जब वह चलते-चलते साली के गाँव के निकट पहुँचा तो किसी ने जीजा के आने की सूचना साली को दी। उस समय विरहिन के उत्साह की न पूछिये। वह जीजा के आने के समाचार-मात्र से ही नौ-नौ हाथ ऊँची कूदने लगी। इसी खुशी की उछल-कूद में वह छज्जे से नीचे जा गिरी। तब उसे वास्तविकता का भान हुआ। इतने ऊँचे से गिरने पर भी कौन था जो उसका कष्ट पूछता? और जब पता-निशान खोजते जीजा साली के घर पहुँचा तो साली के मुक्त कंठ से दोहा निकल पड़ा :

जीजा आया मैं सुन्या, कूदूं नौ-नौ जी हाथ।
छज्जे पै तैं गिर पड़ी, जीजा म्हारा लाडला
किसै नैं ना पूछी बात॥



'जीजा म्हारा लाडला' प्रत्येक दोहे में बोला जाने वाला वाक्य है जो जीजा के प्रति साली के स्नेह को व्यक्त करता है। साली को जीजा के आने की इतनी प्रसन्नता है किन्तु जीजा से गिला भी है जिसे वह स्पष्ट शब्दों में कह कर जीजा के मन पर ठेस नहीं पहुँचाना चाहती। लेकिन कहे बिना रहा भी नहीं जाता। सवेरे से राह देखते दिन का पिछला पहर बीतने पर जीजा घर पहुँच पाए हैं। यह क्या छोटी शिकायत है? किन्तु उसे व्यंग्य रूप में कह कर अन्त में वह अपनी प्रसन्नता ही व्यक्त करती है। उसी के मुख से सुनिये :—

तड़के की मैं डीकती जीजा जी आए पिछले जी पहर।
एक टके की सीरनी जीजा म्हारे लाड़ले बाटूँ सारे जी शहर॥

एक टके की मिठाई सारे शहर में बाँटने के लिए उत्सुक साली अपने मन के हर्ष और परिहास से मिश्रित भावों को व्यक्त करती है। किन्तु जीजा को देख उसे विदेश स्थित अपने पति का स्मरण हो आता है। वह उन दोनों में समता के दर्शन करती है। दोनों की दो खरबूजों से समता करती है जो भीतर से रसविभोर होने के कारण लाल हैं। उसके लिए पति और बहनोई में एक हीरा है तो दूसरा लाल। दोनों में से किसे श्रेष्ठ समझे और किसे हीन? इसी भाव को व्यक्त करने के लिए वह बोल उठती है :

दो खरबूजे एक से जीजा जी दोनों लाल जी गुलाल।
साढ़ू—साढ़ू एक से जीजा म्हारे लाडले एक हीरा एक लाल ।।

विरहिन को जीजा में उसके विदेश स्थित साढ़ू की झलक दिखाई पड़ती है। जीजा की आँखें नींबू की फाँक-सी बड़ी और सुन्दर हैं पर उनमें एक बहुत बड़ी कमी है :

मोटी-मोटी थारी अँखियाँ जीजा जी नींबू बरगी जी फाँक ।
नींबू हो तो चूस ल्याँ जीजा म्हारे लाडले थारी अँखियाँ
ना चूसी जाँय ।।



आँखों की नींबू की फाँक से समता दिखा कर नींबू में आधिक्य प्रदर्शन चाहे आँखों की हीनता जतलाता है किन्तु इसमें छिपा व्यंग्य कितना मार्मिक है? परकीया होने के कारण वह इन नीम्बुओं का रस लेने में असमर्थ है।

यहाँ तक तो रही साली की भावनाओं की बात। अब वह वास्तविकता के धरातल पर उतरती है। दुःख-सुख की बात चलती है। पति के परदेश चले जाने के कारण उसके लौंग की लकड़ी सरीखे शरीर में घुन लग गया है। उसकी दृष्टि में वह पति मूर्ख है जो इस अवस्था में पत्नी को बिसरा कर परदेश चला गया। पत्नी बाजार में बिकती बेसर को देखती है पर अपनी इच्छा को दबा कर रह जाती है। उसकी आभूषणप्रियता उस आभूषण लाकर देने वाले के विदेश में होने के कारण घुट कर रह जाती है। उसका ज्ञान उसे भीतर ही भीतर खाए जा रहा है। अन्त में वह जीजा से अपने मन की बात छिपा नहीं पाती। छिपाए भी कैसे? किसी के उचेड़ने पर घाव के समान ऐसे भाव अपने-आप बरबस प्रस्फुटित हो चलते हैं। वह जीजा से कह उठती है :—

जीजा लौंगाँ की लकड़ी नै घुन खा गया
जीजा साली नै खा गया ज्ञान मूरख पल्लै पड़ गया।
जीजा बजारां में बेसर बिक रही
जीजा ल्यावण वाला परदेस, जीजे की साली अड़ रही।

जीजा साली की आभूषणप्रियता को जान साली को धैर्य दिलाता है और उसे गहने बनवा देने का वचन देता है। साली बहुत प्रसन्न होती है और बन्दी, बोरला, बुजली, लच्छे न जाने किस-किस आभूषण की फरमाइश कर डालती है। जीजा से इन सब गहनों की फरमाइश की तह में कारण है जीजा के साढ़ू अर्थात् पति का विदेश चले जाना। जीजा भी सतर्कता के साथ इन सब वस्तुओं के लिए 'हाँ' करता जाता है और साढ़ू को भी

ठीक आधी रात बुलवी लाने का वचन देता है। आधी रात में छुपे व्यंग्य को साली न समझ पाई हो ऐसी बात नहीं। इसीलिये उत्तर में अपना दर्द 'जीजा के वाक्यों से अंग में तलवार बहने' से व्यक्त करती है। जीजा-साली के उत्तर-प्रत्युत्तर उन्हीं के शब्दों में देखने योग्य हैं:

"बन्दी घड़ा द्यो जी जीजा जी म्हानै बन्दी घड़ा द्यो जी।
अजी थारा साढ़ू बसै परदेस जीजा जी म्हानै बन्दी घड़ा द्यो जी।"
"बन्दी घड़ा द्यां हे छोटी साली बन्दी घड़ा द्यां हे।
ए जी म्हारा साढ़ू बुलावां आधी रात हिया मत हारो हे।"
"बोली मत मारो जी जीजा जी म्हारै बोली मत मारो जी।
अजी म्हारै अंग बहै तलवार तम म्हारै बोली मत मारो जी।"

जीजा की बोली ने उनके मन का भाव स्पष्ट कर दिया। साली सतर्क हो गई और स्पष्ट शब्दों में जीजा का प्रतिवाद करने के लिए तत्पर भी। उसने जीजा से कह दिया:

जीजा थारे मन मैं धोकाबाजी म्हारे मन मैं ना।
जीजा बेसर घड़ा द्यो चलन के ना।

और इस प्रकार अलंकार-प्रिया होते हुए भी जीजा के परदेशी मूर्ख साढ़ू के प्रति भी वह पूर्णतया वफादार है। वह उसे छोड़ विदेश चला गया यह उसका और उसकी युवा भावनाओं का तिरस्कार सही, पर वह भारतीय आदर्श, पतिव्रत को नहीं त्याग सकती। वह जीजा से सब सुख-सुविधाओं की अपेक्षा रखते हुए भी पतिता होने को तैयार नहीं। और यही है एक भारतीय पत्नी का उच्चादर्श जिसकी आत्मा हरियाणा लोक-गीतों में पूर्णतया अवतरित हुई है। ◉ ◉ ◉



श्रीलाल शुक्ल

वर-वधू के आँचलों की गाँठ जब बँधती है तो दो व्यक्ति ही नहीं दो परिवार पारस्परिक सुख-दुख की सह-अनुभूति सतत अनुभूति में बँध जाते हैं। लेकिन विवाह-मंडप तक पहुँचते-पहुँचते बरातियों को कितने मोर्चे बाँधने पड़ते हैं और घरातियों को कितने चक्रव्यूह भेदने पड़ते हैं, ऐसे ही एक विवाह के 'वार मिमोरियल' की एक मजेदार कहानी, एक विद्यार्थी की निबन्ध-प्रणाली।

● ● ●

(दसवीं कक्षा के किसी विद्यार्थी द्वारा लिखा एक घरेलू निबन्ध)

प्रश्न:—निम्नलिखित में से किसी एक विषय पर एक लेख लिखो:

१. एक डकैती का विवरण
२. शिष्टाचार की महिमा
३. गर्मी का मौसम
४. परोपकाराय सतां विभूतयः।
५. विवाह के अवसर पर बराती और घराती



उत्तर:—

बात यह है कि मुझे सभी विषय बहुत अच्छे लगते हैं। मेरी समझ में नहीं आता कि किसे छोड़ूँ और किस पर लिखूँ। इसलिए मैं निम्नलिखित लेख लिख रहा हूँ। इसमें पाँच के पाँचों विषयों का वर्णन है।

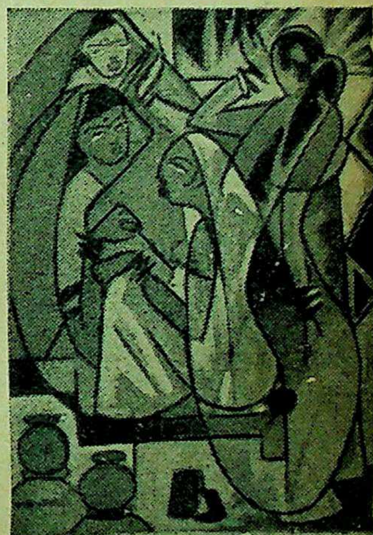
पिछले महीने हमलोग पड़ोस के शहर में एक रईस के यहाँ डाका डालने गये। डाका शाम के सात बजे से पड़ना शुरू हुआ। बड़ा धूम-धड़ाका हुआ। बन्दूकों से न जाने कितने फायर हुए। गोले दगे। हमलोगों ने खूब मनमानी की। उसके खिलाफ़ किसी ने चूँ तक न की। उस रईस के यहाँ

विवाह के अवसर पर

बड़े-बड़े कप्तान-कलेक्टर भी आये थे। सब खड़े-खड़े तमाशा देखते रहे। एक दिन बाद काफ़ी माल-टाल लेकर हम अपने घर वापस लौट आये। हम-लोगों की बाबत अखबारों में भी छपा। पर कुछ दिन बाद बात आयी-गयी हो गयी।

पर डाके की यह बात बड़े भैया ही करते हैं। पापा का कहना है कि बड़े भैया तो उल्टी-सीधी बातें करते हैं। वास्तव में यह डाका-वाका नहीं था। सच पूछिए तो यह मँझले भैया की शादी की बात है। पड़ोस के शहर में उनकी शादी हुई थी। हम सब बारात में गये थे। बारात में हमारे खान्दानी और रिश्तेदार थे, पापा और बड़े भैया के दोस्त थे, उनके दफ़्तर वाले थे, मँझले भैया की यूनिवर्सिटी के मास्टर लोग और लड़के थे, कई नौकर-चाकर और पड़ोसी थे, बहुत से निठल्लू और आवारे थे। जिन लोगों को पापा घर पर कभी पानी के लिए भी नहीं पूछते, उन सभी को पकड़ कर वे बारात में ले गये थे। कुल मिला कर लगभग दो सौ आदमी थे। पहले उन्होंने सौ आदमी ले जाने का ही वादा किया था। दो सौ आदमी देख कर लड़की वालों के होश फ़ाख्ता हो गये, उन्हें दिन में तारे दिखने लग गये। तबीयत झक्क हो गयी।

हम लोग जनवासे में आये। जनवासा किसी कॉलिज की बिल्डिंग में था। उसमें सब कुछ था पर गुसलखाने न थे। उनके लिए लड़की वालों ने कुछ उल्टा-सीधा इन्तजाम कर लिया था। पर वह दो सौ आदमियों के लिए नहीं, सिर्फ़ सौ आदमियों के लिए था। लड़की वालों की तरफ़ से लगभग पचीस-तीस आदमी जनवासे का इन्तजाम करने को मौजूद थे। उनमें ज्यादातर साफ सुथरे और पढ़े - लिखे लोग थे। उनमें से बहुतों ने पापा को नहीं पहचाना। पापा थोड़ी देर सबके द्वारा पहचाने जाने का इन्तजार करते रहे। फिर नाराज़ होकर गुसलखाने चले गये। वास्तव में तौलिया और साबुन लेकर एक नाई आगे-आगे चला और पापा उसके पीछे-पीछे चले। यह वैसे ही हुआ जैसे



बराती और घराती

बचपन में हमलोगों की आया गुसलखाने ले जाती थी। पापा वहाँ से जल्दी ही बाहर आ गये। वे नहा चुके थे पर जिस्म पसीना-पसीना था। उनके ओठ गुस्से में दूर तक गालों के भीतर खिंचकर घुस गये थे। आते ही उन्होंने बड़े भैया से लड़की वालों के बारे में कहा, "ये सब साले उल्लू के पट्ठे हैं!"

बात-बात में "साले" कहने की मेरी भी आदत है। इसके लिए पापा मुझे कई बार पीट चुके थे। वे खुद हमेशा ऐसी ही बोली बोलते हैं जैसी अच्छी-अच्छी किताबों में लिखी होती है। इसलिए उनके मुँह से ऐसी बात सुन कर मुझे मज़ा आ गया। मेरा एक सहपाठी भी बारात में गया था। उसे हिला कर मैंने कहा, "देख साले, पापा लड़की वालों को उल्लू का पट्ठा कह रहे हैं।"

मेरे एक दूसरे चाचा हैं। उन्हें न तो इसके लिए कोई तनख्वाह मिलती है, न उनसे किसी ने कोई ऐसी दरख्वास्त ही की है, परन्तु वे अपनी ओर से ही हमलोगों को बराबर शिष्टाचार सिखाने का काम करते रहते हैं। उन्होंने पापा की बात नहीं सुनी थी, मेरी बात भी शायद उन्होंने दूर से ही सुनी। नजदीक आकर कहने लगे, "यह क्या बक रहे हो, तुम्हारी तमीज कहाँ गयी है?"

बड़े भैया मेरा हमेशा बचाव करते हैं। उन्होंने कहा, "उसे क्यों डाँटते हैं? बारात में वह भी तो आया है।"

पर उन्होंने मुझे फिर से झिड़का, "शरीफ़ आदमी ऐसी बात मुँह से नहीं निकालते।"

इसका भी जवाब बड़े भैया ने दिया, "बड़े शरीफ़ आदमी होंगे तो अपने घर के होंगे। यहाँ तो हमलोग खुले आम बाराती हैं।"

पर पापा की बात बारात के हर कोने में फैल गयी थी। सब जान गये थे कि वे गुसलखाने के इन्तजाम से खुश नहीं हैं और उन्होंने वहाँ पर मौजूद घरातियों को गाली दी है। इससे सभी बराती गुसलखाने को लेकर नाराज़ होने लगे। फब्तियाँ कसी जाने लगीं। वे भी गाली-गलौज पर उतर आये। इस सबका यह लाभ तो हुआ कि सभी घराती पापा को पहचान गये। आपस में उँगली उठा कर कहने लगे, "उसे देखो, वह लड़के का बाप है।" धीरे-धीरे उन्होंने आकर शिष्टाचार पूर्वक पापा के पैर छुए। पैर के बजाय अगर कोई कुर्सी या पलंग को छूता तब भी पापा उतना ही ध्यान देते। वे हमलोगों की आपसी बातचीत सुनते रहे। एक बात कह कर उन्होंने दूसरी बात नहीं कही। दूसरी से लेकर हज़ारवीं बात तक कहने का काम उन्होंने मामाजी और दूसरे रिश्तेदारों पर छोड़ दिया। बड़े भैया यह सब सुनते रहे और मुस्कुराते रहे।

बरात लड़की के यहाँ चलने को हुई। मँझले भैया सज-धज कर नीचे उतरे। वे घर से एक मँगनी की कार में आये थे। यहाँ लड़की वालों ने सजा-बजाकर एक जीप खड़ी कर रखी थी। मँझले भैया इसी में बैठ कर भाभी को ब्याहने जाने वाले थे। बड़े भैया ने मौज से कहा, "डकैती के लिए जीप ही अच्छी होती है।" मँझले भैया ने उन्हें घूर कर देखा, फिर मामाजी से बोले, "अपनी कार मँगाइये। मैं इस जीप पर नहीं जा सकता।"

उन्होंने पूछा, "क्यों?"

महाराजाओं की-सी अदा से मँझले भैया बोले, "यह....जीप....देखिये, देखिये, कितनी

गन्दी है। कितना फूहड़ तरीके से इसे सजाया गया है।"

उनके एक साथी बोले, "छिः, छिः, लड़ाई के दिनों का पुराना मॉडल है। इस पर कौन चढ़ेगा!"

मँझले भैया के इस साथी के पास १९२९ की एक फोर्ड है। चूँकि वे खुद कबाड़ी का काम करते हैं, इसलिए वह गाड़ी अभी कबाड़ी के यहाँ नहीं पहुँची है। मँझले भैया और उनके ये साथी उस फोर्ड गाड़ी पर बराबर चढ़ कर शहर में घूमा करते हैं, और पुरानी गाड़ियों के मामले में अधिकारपूर्ण जानकारी रखते हैं। इसीलिए उन्होंने इस जीप को 'कंडम' कर दिया।

मामाजी की कार पर चढ़ कर मँझले भैया द्वाराचार के लिए गये। चारों तरफ़ खबर फैल गयी कि लड़की वालों की जीप उन्होंने 'रिजेक्ट' कर दी। उनकी बेइज्जती हुई। बड़ा मजा आया। बड़े भैया फिर भी मुस्कुराते रहे।

उन लोगों ने अपने दरवाज़े पर बहुत अच्छा 'ऐट होम' दिया था। पर हमारी ओर के पण्डित जी ने मिठाई के टुकड़े को पहले गिलहरी की तरह कुतरा, फिर पिल्ले की तरह सूँघा। उसके बाद सामने से तश्तरी हटा दी। पापा की ओर देख कर उन्होंने कहा, "सब वनस्पति की माया है, महाराज!"

बात उन्होंने पापा से कही थी पर उसका यह मतलब नहीं था कि उसे सिर्फ पापा ही सुनें। इसका जवाब मामाजी ने अपनी जगह से दिया, "आप कहते हैं तो माने लेता हूँ। मैं तो इसे रेंड़ी का तेल समझ रहा था।" इसे भी दो सौ बरातियों ने सुना।

गर्मी का मौसम था। पर यह अजब गर्मी थी जो सिर्फ़ हमीं लोगों के दिमाग में व्यापी थी। लड़की वालों पर इसका कोई असर न था। वे बड़ी ठंडक से इन बातों को झेल रहे थे। 'ऐट होम' ने पिताजी को कुछ ठंडा तो कर दिया था पर उन्होंने पहले जो बात कह दी थी वह अब भी अपनी जगह पर झुलस रही थी। मामाजी उसी को पकड़े हुए गरम हो रहे थे। जनवासे में लौटते ही उन्होंने अपने सोने के इन्तजाम पर शेर की-सी निगाह डाली, फिर पापा से बोले, "क्यों जीजा, उग्र रूप का दर्शन कराया जाय?"

पापा मुस्कुराये। रहस्य के साथ बोले, "अकेले में।"

अकेले का मतलब यह हुआ कि लगभग पचास आदमियों के आगे मामाजी ने मेरी होने वाली भाभी के बड़े भाई को बुलाया। बड़े ही शरीफ़ाना तौर से आकर उसने मामाजी के पैर छुए और पूछा, "आज्ञा दीजिये।"

मामाजी बोले, "आज्ञा तो आप मुझे दीजिए। बुढ़ापे में इन डेढ़ इंची चारपाइयों पर बिना मच्छरदानी के लेट कर अपना खून नहीं चुसवाना चाहता। अपने ग़रीबखाने पर वापस जाना चाहता हूँ।"

भाभी के भाई ने कहा, "ग़लती हुई। अब सब ठीक कराये देता हूँ।"

मामाजी ने कहा, "नहीं साहबज़ादे, गलती तो हमीं लोगों से हुई है। पर उसका ज़िक्र ही क्या!"

उन्होंने कुछ कहने के लिए मुँह खोला कि मामाजी ने कहा, "कुछ बताने की ज़रूरत नहीं। आप सब लोग पढ़े-लिखे आदमी हैं। जैसा चाहेंगे हम वैसे ही समझ जायेंगे! पर एक गुर की बात बताये देता हूँ, और वह यह है कि अपनी न सही तो कम से कम अपने

बहनोई की नाक तो न कटाइये। ये दो सौ बराती इन्हें क्या कहेंगे, इसका तो लिहाज़ कीजिए।"

उन्होंने फिर कुछ कहना चाहा कि मामा जी ने अकड़ कर कहा, "समझ गये आज!"

मामाजी उग्र रूप न दिखा पाये। बड़े भैया ने आकर भाभी के भाई की बाँह पकड़ी और उन्हें खींच कर अपने साथ ले गये। फिर धीरे से बोले, "जाइए, अपना काम देखिए।"

इसका कुछ और ही नतीजा निकला। घरातियों में खबर फैल गयी कि लड़के का बड़ा भाई बड़ा मुँहचुप्पा और गुस्सेवर है। इसलिए उधर के लोग अब बड़े भैया पर टूटने लगे और हर बात में उनसे सलाह लेने लगे। पर बड़े भैया एक कोने में लेटे हुए आदत के मुताबिक एक किताब पढ़ते रहे। उनसे किसी ने कोई बात पूछी तो उन्होंने बुजुर्गों की ओर इशारा करके कह दिया कि उधर ही जाइए। एक साहब ने बड़े भैया से पूछा, "आखिर साहब, क्या बात है? कुछ सुनें भी तो!"

बड़े भैया बोले, "बात यह है कि मुझे यह सब बदतमीज़ी बिल्कुल पसन्द नहीं है।"

मैं जानता हूँ कि बड़े भैया ने यह बात पंडित नेहरू के लेक्चर सुन-सुन कर सीखी है और इसके सहारे वे मामाजी पर गुस्सा उतार रहे थे। पर हुआ यह कि थोड़ी देर बाद मामाजी की चारपाई तो उन्हीं की बगल में आ गई और लड़की वालों ने बड़े भैया की ओर से पीठ फेर ली।

सोने के पहले किसी ने मेरे सामने गर्म दूध का गिलास पेश किया। तब मैंने सोचा कि लगे हाथ मैं भी कुछ कह लूँ। अतः मैंने उनसे कहा, "भाई साहब, इस जगह अपने यहाँ का नहीं, हमारे यहाँ का तरीका चलने दीजिये। हमारे यहाँ बुजुर्गों को भी पूछ लिया जाता है। पहले उधर जाइए।"

दूध देने वाले साहब मुझसे उम्र में दूने थे। पर बिल्ली की तरह बोले, "जो आज्ञा।"

दूसरे दिन सोकर देर से उठा। तब तक शादी हो गई थी और जनवासे में दहेज का काफी सामान आ गया था। सुना कि इस-उस बहाने से पापा को रुपया काफ़ी मिल चुका है। वे लड़की के बाप से हँस-हँस कर बातें कर रहे थे। कल शाम को अकड़ने वाले बराती खुद उल्लू की तरह आपस में फुसफुस कर रहे थे। इस वक्त गुसलखाने में कोई खराबी नहीं थी।

किसी कवि ने सच कहा है कि 'परोपकाराय सतां विभूतयः।' मँझले भैया के ससुर सचमुच ही सज्जन और परोपकारी होंगे, नहीं तो वे इतना कीमती फर्नीचर, फ्रिज, रेडियो वगैरह एकदम से कैसे दे डालते! भाभी के साथ ही साथ उन्होंने अपनी और भी बहुत-सी कीमती विभूतियाँ हमारे घर के लिए सौंप दी थीं। इसलिए उनकी सज्जनता से दब कर हम फ्लैट यानी पिच्ची हो चुके थे। मँझले भैया आपसी लहजे में सालों से उनकी पढ़ाई-लिखाई का हाल पूछ रहे थे। बड़े भैया अपने कोने में गम्भीरता से पहले की तरह एक किताब पढ़ रहे थे। भाभी का एक चचेरा भाई मुझे भी अचानक पसन्द आ गया और उसे एक कोने में ले जाकर मैंने पूछना शुरू कर दिया कि मेरी भाभी कैसी हैं। फिर बहनोई होने का रौब दिखाते हुए मैंने कहा, "क्यों जी, यहाँ कुछ मेरे लिए भी....।"

एक खेप सामान जनवासे में और आया और तब मामाजी भाभी के भाई को समझाने

लगे, "देखो भाई, हम तो ठहरे बाहरी आदमी, तुम दोनों खानदानों को तो एक होकर चलना ही है। पर हमें तो फ़िक्र यही थी कि बाहरी मेहमान क्या से क्या न समझने लगें! इसीलिए मैंने कल आपको राय दी......।"

मुझे उम्मीद थी कि भाभी के भाई कहेंगे, "तो एसी भी क्या बात है? आप बुजुर्ग हैं, सब कह सकते हैं।"

पर आज वे कल शाम वाली बिल्ली न थे। वे बिलौटा बन चुके थे। उन्होंने मामाजी को हिक़ारत के साथ देख कर कहा, "ओ. के., मैं अभी आया", और वे भी मँझले भैया के पास जाकर बैठ गये।

बारात बिदा होने से पहले मैं मँझले भैया के साथ भाभी के घर गया। वहाँ लम्बे-चौड़े आँगन में काफी लोग इकट्ठे थे और तरह-तरह की बातें कर रहे थे। सबसे ज़्यादा तारीफ मँझले भैया की हो रही थी और उनकी सास की बड़ी बहन उनसे बार-बार कह रही थीं कि "बेटा, मुझे तो तुम्हीं से उम्मीद है।" मेरे मन में आया कि मैं इसके जवाब में कहूँ, "घबड़ाओ नहीं, मैं तुम्हारी नौकरी के लिए पूरी कोशिश करूँगा।" दफ्तर में इस तरह गिड़गिड़ाने वाले उम्मीदवारों से पापा ऐसी ही बात करते थे। पर भाभी की इस मौसी के लिए मैं ऐसा कोई वादा नहीं कर सका। मँझले भैया को अपनी ओर खींचने के लिए मैंने उन्हें जी तोड़ कोशिश करने दी। बीच में कुछ नहीं बोला।

पापा कल जिसकी शक्ल देख कर उत्साहित हो उठे थे और सबको अपना साला और उसी गाली के रिश्ते से उल्लू को अपना ससुर बना चुके थे, वही आदमी आपस में कह रहा था, "क्या कहने हैं बाबू साहब के! असली रईस इसी को कहते हैं! दिल में कोई बात नहीं रखते। ज़बान के कड़े हैं, पर तबीयत में मक्खन भरा है। क्या शराफ़त पायी है!"

तब तक एक दूसरे साहब ने कहा, "बाबू साहब क्या, सभी एक से एक शरीफ हैं। हाँ, सिर्फ लड़के का बड़ा भाई......।"

मेरे पीछे खड़े हुए एक आदमी ने आवाज़ बना कर इस तरह से कहा जैसे वह झूठमूठ चाहता हो मैं उसकी बात न सुनूँ, "अरे वह.... वह तो इन सबसे निराला है। बड़ा ही घमंडी। ऐंठ के मारे दिमाग ही नहीं मिलता।"

दूसरे ने कहा, "कल लल्लन से लड़के का मामा सलाह-मशविरा कर रहा था, तभी यह आया और उसकी बाँह झकझोर कर उसे वहाँ से दूर भगा दिया।

तीसरे ने कहा, "चाचा १०१) लेकर गये तो उसे छुआ तक नहीं। बोला यह सब जहालत है।"

जनता बड़े भैया के खिलाफ़ हो रही थी। चौथे ने कहा, "अपने को बहुत लगाता है। इतनी देर में उसने किसी से कोई बात थोड़े ही की है!"

पाँचवें ने कहा, "तो उन्हीं को कौन पूछता है! बैठे रहें बेटा अपना कोना दबाये।"

मँझले भैया इन सब बातों को सुनते तो उन लोगों को बिना पीटे न छोड़ते। पर उन्होंने ये बातें सुनी ही नहीं। वे अपनी एक साली से बात करने में लगे हुए थे। मैंने ये बातें सुनी जरूर पर कोई कड़ा जवाब नहीं दे पाया। उनकी दूसरी साली कुछ देर से मेरी ओर देखने लगी थी।

—:०:—

सामाजिक संस्थान की आधारशिला में यदि दरार पड़ जाये तो प्रतिकार क्या ? व्यक्ति की रक्षा के लिए समाज के संहिताकारों की प्रयत्न-कथा--अतीत और वर्तमान।

सूर्यकुमार तिवारी



मनु के काफी पूर्व ही विवाह केवल स्त्री-पुरुष का शारीरिक सम्बन्ध न रह कर संस्कार का रूप धारण कर चुका था। मनु के अनुसार स्त्री को बाल्यावस्था में पिता के, युवावस्था में पति के तथा वृद्धावस्था में पुत्र के वश में रहना चाहिए और स्वतंत्रता की कल्पना भी मन में नहीं लानी चाहिये। (--मनु. ५-१४८.)

नारद ने इससे एक क़दम आगे बढ़ कर, पति पुत्रादि के अभाव में पिता या पिता के वंशजों की तथा इन सबके अभाव में राजा के सान्निध्य में रह कर स्वतंत्र रूप से जीवन-यापन की स्थिति को उत्पन्न ही न होने देने की सलाह दी है। मनु के अनुसार पिता अथवा उसकी आज्ञा से भाई, जिस व्यक्ति को कन्यादान कर दे वही कन्या का सेव्य है और उसकी (पति की) मृत्यु के बाद भी उसका उल्लंघन (अर्थात् विश्वासघात) नहीं करना चाहिए (--मनु. ५-१५१) इस मृत्यु के बाद भी वफ़ादारी का कारण बताते हुए मनु ने कहा है, "प्रदानं स्वाम्य कारणम्" अर्थात् कन्या के प्रदान के बाद उस पर पति का एकाधिकार या स्वामित्व हो जाता है।

विवाह - विच्छेद

मनु से अम्बेडकर तक

नियोजित पति के अलावा किसी अन्य व्यक्ति से उस स्त्री का सम्बन्ध स्थापन क्यों अनुचित है इसका कारण देते हुए मनु कहते हैं कि पृथु ने पृथ्वी को बनाया इसीलिए यह अनेक राजाओं द्वारा शासित होने के बावजूद "पृथ्वी" कहलाई। खेत के साथ भी उसी का नाम संलग्न होता है जो उसे सर्वप्रथम कृषि-योग्य बनाता है। हरिण उसी का माना जाता है जिसका तीर उसे लग जाता है। इसी प्रकार नारी भी उसी की होती है जिसे दान में मिल जाती है। अतः दूसरे की पत्नी में किये गये वीर्य-निषेक से उत्पन्न सन्तान उसी की कहलायेगी जिसकी वह वास्तविक पत्नी होगी। यदि नारी का त्याग अथवा विक्रय भी किया जाय तब भी वह उस पति के पत्नीत्व से मुक्त नहीं हो सकती। ऐसा ब्रह्मनिर्मित धर्म है। (—मनु. ६-४६)

यदि उपर्युक्त निषेधों का उल्लंघन करती हुई कोई उच्च वर्ण की स्त्री किसी निम्न वर्ण के पुरुष से यौन-सम्बन्ध स्थापित करती है तो दूसरे जन्म में शृंगाल योनि धारण करती है। यदि निम्न जाति की कोई स्त्री अपने सजातीय पति को छोड़कर किसी उच्च जाति के पुरुष के साथ निवास करती है तो उसकी लोक में निन्दा होती है और इसका एक पूर्व पति भी था ऐसा कह कर लोग उसकी ओर उँगली उठाते हैं।(—मनु ५-१६३) यहाँ पर मनु ने, निम्न वर्ग की नारी को उत्तम वर्ण के पुरुष के साथ सहवास करने के कारण परलोक का भय क्यों नहीं दिखाया—कहा नहीं जा सकता? केवल लोक-मर्यादा का ही भय दिखलाया है। संभव है कि निम्न वर्गों के बीच तलाक-प्रथा उस काल में भी विद्यमान रही हो जैसा कि देश के विभिन्न भागों में आज भी है। मध्य-प्रदेश के छत्तीसगढ़ के निम्न वर्णों में प्रथम विवाहित पति को छोड़ कर दूसरे पति को वरण करने की प्रक्रिया को "चूड़ी पहिनना" कहते हैं। संभवतः इसीलिये मनु ने उन्हें परलोक का भय दिखाना व्यर्थ समझा हो।

क़रीब-क़रीब मनु के समकालीन कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के 'विवाह-प्रकरण' में 'मोक्ष' अर्थात् तलाक की व्यवस्था है। तलाक का विधान करते हुए कौटिल्य ने पति-पत्नी के बीच द्वेष का प्रादुर्भाव होने पर मोक्ष की व्यवस्था दी है। पर एक-पक्षीय द्वेष की स्थिति में 'मोक्ष' को असंभव बताया है। यदि पुरुष को पत्नी से कुछ भय की आशंका है तो उस स्थिति में वह विवाह के समय प्रदत्त सभी वस्तुएँ पत्नी को लौटा कर उससे तलाक पा सकता है। इसी प्रकार यदि पत्नी को पति से कुछ भय की आशंका है तो वह भी उससे मोक्ष तो पा सकती थी किन्तु स्त्री धन नहीं। उपर्युक्त बातें धार्मिक विधि अर्थात् प्रशस्त पद्धतियों द्वारा सम्पादित विवाहों में लागू नहीं होतीं। (—अर्थ. ३-३.) कौटिल्य ने प्रशस्त पद्धतियों द्वारा सम्पादित विवाहों में मोक्ष के अभाव का कारण बताते हुए इन्हें पिता के प्रमाण पर आधारित अथवा पिता द्वारा सम्पादित तथा धर्म होने के कारण अविच्छेद्य बताया है।(—अर्थ० ३-२.)

अप्रशस्त पद्धतियों में भी जिन अन्य विशिष्ट अवस्थाओं में तलाक अथवा मोक्ष मिल सकता है वे इस प्रकार हैं:

'यदि पति नीच हो, परदेश चला गया हो, राज्य द्वारा दण्डित हो, आत्महन्ता हो, पतित हो अथवा क्लीव हो।' इनमें से किसी एक अवस्था को प्राप्त पति की पत्नी को असुर, पैशाच आदि पद्धतियों द्वारा सम्पादित विवाहों

में मोक्ष की स्वतंत्रता है।

मध्यकाल की स्मृतियों और धर्मशास्त्रों में पति-पत्नी के सम्बन्ध-विच्छेद का विधान प्राय: अप्राप्य ही है। नारद तथा पराशर आदि ने पति के नष्ट हो जाने, मर जाने, नपुंसक हो जाने और पतित हो जाने पर पुनर्विवाह की व्यवस्था दी है।(—नारद. १२.९७) नारद और पराशर के इसी मत के अनुसार ही श्री जयशंकर प्रसाद ने चन्द्रगुप्त के साथ ध्रुवस्वामिनी के पुर्नविवाह को जायज ठहराया है। (रामगुप्त के क्लीव होने के कारण)। (—**'ध्रुवस्वामिनी' की भूमिका**)

याज्ञवल्क्यस्मृति की मिताक्षरा टीका के अनुसार (११०० ई.) पति की पतितावस्था में उसका पत्नी पर कोई अधिकार नहीं रह जाता। प्रायश्चित से शुद्ध होने के पश्चात् ही वह पत्नी पर पूर्ववत् अधिकार कर सकता है। (—**मिताक्षरा १.७७**) इससे यह स्पष्ट है कि पत्नी को पतित पति के परित्याग का अधिकार प्रत्येक अवस्था में प्राप्त नहीं है। 'विश्वरूप' के टीकाकार कहते हैं कि पत्नी या पति के पतित हो जाने पर भी पूवकृत् संस्कार विच्छिन्न नहीं होते। यदि पत्नी किसी दूसरे पुरुष के द्वारा भोगी गई हो तो भी वह विवाह-बन्धन से मुक्त नहीं हो सकती। प्रायश्चित के पश्चात उसके लिए किसी दूसरे विवाह-संस्कार की कोई आवश्यकता नहीं है।

ब्रिटिश शासन-कालीन न्यायालयों का भी यही मत है कि पति अथवा पत्नी के धर्म परिवर्तन मात्र से विवाह-सम्बन्ध विच्छिन्न नहीं हो सकते। धर्म परिवर्तन के बाद यदि कोई पत्नी, पूर्व पति की जीवितावस्था में, दूसरा पति कर लेती है, तो वह व्यभिचार की अपराधिनी है।

पति की अनिश्चित काल तक की अनुपस्थिति में पत्नी को कितने समय तक प्रतीक्षा करनी चाहिये इस पर अनेक मत हैं। मनु ने विभिन्न कार्यों के लिए प्रवासी हुए पतियों की प्रतीक्षा के लिए विभिन्न समय नियत किये हैं। प्रतीक्षा काल की समाप्ति के बाद यदि पति न लौटे तो क्या हो? इस पर मनु पूर्णत: मौन हैं। नारद के अनुसार ८ वर्ष, गौतम के अनुसार ६ वर्ष (यदि ब्राह्मणी हो तो १२ वर्ष) तथा वशिष्ठ के अनुसार ५ वर्ष (सन्तानहीन हो तो ४ वर्ष) प्रतीक्षा करने के बाद उसे पुर्नविवाह कर लेना चाहिए। भारतीय साक्षी अधिनियम के अनुसार निरन्तर ७ वर्षों तक अज्ञात वास करते रहने वाले पति को मृत मान लिया जाता है। और उसकी पत्नी को पुनविवाह का अधिकार है। स्ट्रेन्ज के अनुसार प्रचलित हिन्दू कानून की यह मान्यता रही है कि निरन्तर १२ वर्षों तक लापता रहने पर पुरुष मृत मान लिया जाता है।

धर्म परिवर्तन करने वालों को विवाह-विच्छेद की स्वतंत्रता देने के लिए सन् १८६६ में अधिनियम बनाया गया। एक अधिनियम उन हिन्दू विवाहों के लिए भी बनाया गया जो "विशेष विवाह अधिनियम" के अन्तर्गत सम्पादित किये गये थे। इस अधिनियम को "तलाक अधिनियम (१८६६)" कहते हैं।

हिन्दू समाज में तलाक पर लगाये गये प्रतिबन्धों को देख कर इस पर संकीर्णता का आरोप व्यर्थ है। रोमन कैथोलिक गिरजों के नियमों के अनुसार विवाह अविच्छेद्य है। विवाह-विच्छेद की स्वीकृति उन्हीं को मिला करती थी (यदा-कदा) जो गिरजों को गहरी रकमें दे सकते थे।

ब्रिटिश संसद के विशिष्ट विधेयकों द्वारा भी तलाक की स्वीकृति मिलती थी पर ऐसे तलाक के लिए ५ हज़ार पौंड का खर्च आवश्यक था। १८५७, १९२३ तथा १९३७ में पारित हुए विभिन्न विधेयकों द्वारा ही ब्रिटेन में तलाक की प्रक्रिया का सरलीकरण किया जा सका। इसके पूर्व ब्रिटेन में भी तलाक साधारण जनों के लिए सुलभ नहीं था।

हिन्दुओं से सम्बन्धित बिखरे हुए नियमों के समूह को संहिता का रूप देने के लिए अनेक प्रयास हुए। राऊ कमेटी ने अपने प्रस्तावित 'हिन्दू कोड' में तलाक का विधान रखा। इस कोड को १९४७ में 'संविधान सभा' के समक्ष प्रस्तुत किया गया। प्रवर समिति द्वारा संशोधित होकर यह १९४८ में पुनः नये रूप में प्रस्तुत किया गया। १९४८ से १९५१ तक इस पर सदन के भीतर तथा बाहर मुहुर्मुहुः विवाद हुआ। तीव्र विरोध के कारण सरकार ने इसे वापस ले लिया। इसे सदन में प्रस्तुत करने के समय, इसके अनन्य निर्माताओं में अग्रणी डॉ० अम्बेडकर, विधि मंत्री थे।

प्रथम आम चुनावों के बाद सन् १९५२ में राष्ट्रपति ने संसद में उद्घोषित किया कि हिन्दू कोड सदन के समक्ष विभिन्न टुकड़ों में प्रस्तुत किया जायगा। फलतः १९५२ में इसकी पहली किश्त 'हिन्दू मैरिज एण्ड डाइवोर्स बिल' के नाम से राज्यसभा के समक्ष प्रस्तुत की गई।

राज्यसभा के पश्चात् यह १९५४ में लोकसभा के सामने लाया गया और दोनों सदनों द्वारा पारित होकर १८ मई १९५५ को राष्ट्रपति की स्वीकृति मिलने पर यह अधिनियम बन कर लागू हुआ।

तलाक का विधान इस अधिनियम की १३वीं धारा में निबद्ध है जिसके अनुसार निम्नलिखित में से किसी एक कारण के उपस्थित होने पर दम्पति विवाह-विच्छेद के लिए स्वतंत्र हैं :—

१. पति अथवा पत्नी का किसी दूसरी स्त्री अथवा दूसरे पुरुष से अवैध सम्बन्ध हो।
२. हिन्दू धर्म का त्याग (पति अथवा पत्नी ने) कर दिया हो।
३. पिछले तीन वर्ष से विकृत-मस्तिष्क का शिकार हो।
४. भयंकर कुष्ठ रोग से पीड़ित हो।
५. जननेन्द्रिय सम्बन्धी संक्रामक रोग का शिकार हो।
६. संसार से विरक्त हो।
७. सात वर्षों से लापता हो।
८. पति-पत्नी का यौन-सम्बन्ध पिछले दो वर्षों से पूर्णतः विच्छिन्न हो।
९. यौन सम्बन्ध स्थापन के लिए न्यायालय द्वारा दिये गये आदेश का कार्यान्वियन नहीं किया गया हो।
१०. व्यभिचार, अप्राकृतिक मैथुन अथवा क्रूर कर्म करने का आरोप हो।

किसी पक्ष में इनमें से किसी भी एक कारण के उपस्थित रहने पर दूसरा पक्ष जिला न्यायालय के समक्ष याचिका प्रस्तुत कर तलाक की स्वीकृति प्राप्त कर सकता है।

उपर्युक्त बातों पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जायगा कि अमेरिका की भाँति तलाक के दरवाज़े हिन्दू दम्पति के लिए उस सीमा तक नहीं खोल रखे गये हैं कि दो स्त्री-पुरुषों का परिचय होते ही पहला कहे "आप मेरे पूर्व पति हैं" और उसके उत्तर में दूसरा कहे, "और आप मेरी पूर्व पत्नी।" ●●●

दयानन्द वर्मा

जलती समस्याएँ : जागरूक समाधान

बीस वर्ष के लम्बे अर्से तक शीला की जबान पर अपनी सास के जुल्म की कहानियाँ रहीं। अकस्मात् उसके विचारों ने पलटा खाया और उसने कहना शुरू कर दिया, "सासें बेचारी इतनी बुरी नहीं होतीं जितनी कि बहुएँ।" उसके इस अचानक विचार-परिवर्तन के कारण दो थे। एक तो यह कि वृद्धा सास परमात्मा को प्यारी हो गयी थी। दूसरा यह कि घर में नयी बहू आ गयी थी।

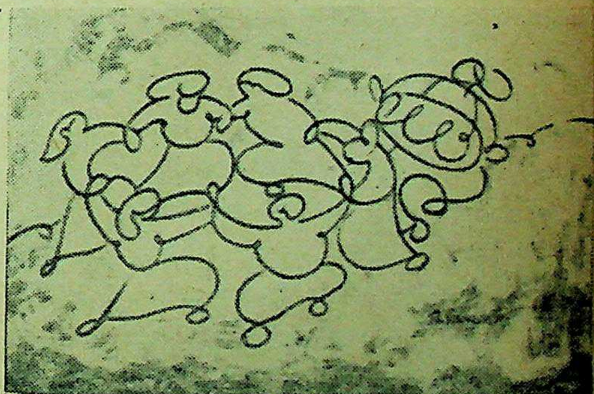
बहू से उसे शिकायत थी कि उसने घर में कदम रखते ही उसका बेटा छीन लिया था और अलग हो जाने की धमकी दे दी थी। वह तो खैर पराये घर की थी ही। बेटा भी अपना न निकला। उसने बहू की बात के आगे माँ की बात पर कान न धरा।

एक ओर बहू-बेटे का यह सन्ताप, दूसरी ओर विवाहिता बेटी की चिन्ता। चिन्ता का प्रमुख कारण था उसका दामाद जो उसकी बेटी की बात पर कान न देता था। अब वह पछता रही थी कि उसने नाहक भरे-पूरे संयुक्त परिवार में अपनी बेटी ब्याही। अच्छा होता वह किसी ऐसे युवक के हाथ अपनी बेटी का हाथ दे देती जो चाहे कमाता कम लेकिन रहता अपने माता-पिता से अलग।

यह समस्या केवल शीला की ही नहीं है, अधिकतर स्त्रियों की है।

भारतीय संयुक्त परिवार

एक मनोवैज्ञानिक दृष्टि



जीवन बिताने का एक ही ढंग एक ही स्त्री को क्यों अपनी बेटी के लिए भयानक और बहू के लिए मनोरम लगता है? इस प्रश्न का उत्तर जानने के लिए सबसे पहिले हमें संयुक्त परिवार की रूप-रेखा समझनी होगी।

संयुक्त परिवार नाम है उस नन्हें-से समाज का जहाँ पर किसी वयोवृद्ध सदस्य को केन्द्र मान कर सभी कमाऊ सदस्य अपनी कमाई दे देते हों। फिर उसी केन्द्र से अपने निर्वाह योग्य प्राप्त करते हों। जहाँ हर सदस्य के सीमित अधिकार हों और सीमित कर्त्तव्य हों। लेकिन खाने के समय वे सब भूल जाते हों कि किसने कितना कमाया और किसने कितना खाया।

जब तक सभी सदस्यों के पास अधिकारों और कर्त्तव्यों का सन्तुलन रहता है तब तक परिवार फलता-फूलता है। जब केवल कर्त्तव्य एक ही वर्ग के पास रह जाएँ और अधिकार केवल एक ही वर्ग के पास, तो संयुक्त परिवार का ढाँचा बिगड़ जाता है।

कर्त्तव्यों और अधिकारों का सन्तुलन प्रायः वहाँ बिगड़ता है, जहाँ कुछ या सारे सदस्य खुद पर नजर डालने की बजाय दूसरों पर आलोचना भरी दृष्टि रखते हों। जब परिवार में ऐसे सदस्यों की संख्या बढ़ने लगे तो लड़ाई-झगड़े होने निश्चित हैं। हर सदस्य का ध्येय केवल एक इकाई को सन्तुष्ट करना होता है, दूसरों की भावना समझने की कहीं भी कोई गुंजाइश नहीं होती। वृद्ध पिता अपनी गृहिणी की बात पर आँख मूँदकर विश्वास करना बुरा नहीं समझता। यदि उसका बेटा अपनी बहू की बात पर यकीन कर ले तो उसे जोरू का गुलाम कह देता है। उसकी वृद्धा पत्नी अपनी जवानी में जिस प्रकार की सास को नापसन्द करती रही होती है, अपनी बहू के लिए वैसी ही सास बन जाती है। बेटी ननद की हैसियत से मायके में अपने भाई-भावज पर पूरा हक़ समझती है, लेकिन अपनी ससुराल में जब वह स्वयं भावज बन जाती है तो घर के प्रबन्ध में ननद का दख़ल देना उसे ज़रा भी नहीं भाता। और यदि घर में बहूओं की टोली हो तो हर बहू की याददाश्त इस मामले में तेज होती है कि उसने कितना काम किया; लेकिन अपनी देवरानियों द्वारा किये गये कामों की सूची उसके दिमाग में एक क्षण के लिए भी नहीं टिकती। अगर बेटे एक से ज़्यादा हों तो हर एक समझता है कि उस पर जिम्मेदारियाँ अधिक हैं और उसका खर्च कम है। फिर उनमें होड़ चलती है जिम्मेदारियाँ कम करने की और खर्च बढ़ाने की। जो होड़ में पिछड़ जाता है उसे तो दुःख होता ही है, जो आगे रहता है वह भी स्वयं को पिछड़ा हुआ समझ कर अप्रसन्न रहता है।

परिवार में कटुता लाने वाले कुछ और भी कारण हैं। मसलन किसी बहू का मायके के प्रति अत्यधिक मोह। मोह रखना क़तई बुरा नहीं, बुरा है उसका बार-बार दर्शाना। वह इतना स्नेह प्रकट कर सकती है कि अपने बच्चों में अपने चन्दा से भाई का प्यार भरने के लिए उनसे चन्दामामा कहलवाए। चन्दा चाचा या चन्दा ताया नहीं। यदि इससे बढ़ कर वह सहस्र-मुख से मायके की तारीफ़ के पुल बाँधते रहना चाहती है तो उसे लक्ष-कर्ण से घर की दूसरी स्त्रियों के मायकों के गुण भी सुनने होंगे। सिर्फ इतना ही नहीं, उनके मुकाबिले में अपने मायके की हीनता पर सहमति भी प्रकट करनी होगी। यदि वह ऐसा न कर सके तो घर के अशान्त वातावरण

के लिए खुद को ज़िम्मेदार समझना होगा।

दूसरा कारण है वृद्ध सदस्यों का अपने से छोटों से बारम्बार अपने सिर के सफ़ेद बालों का ज़िक्र करना; और यक़ीन दिलाते रहना कि वे धूप में सफेद नहीं किये गये। अगली पीढ़ी को श्वेत कुन्तलों से कोई शत्रुता नहीं होती बशर्ते कि उनका हर बार हवाला देकर उसकी वैयक्तिक स्वतंत्रता का हनन न किया जाए। लेकिन वृद्ध यह बात मान नहीं सकते। वे तो जल्दी से जल्दी अपना उम्र भर का अनुभव अपनी सन्तति में स्थानान्तरित कर देना चाहते हैं। वे भी अपना यह शौक जारी रख सकते हैं, लेकिन अपनी लोक-प्रियता गिरवी रख कर।

और कारण हैं असन्तुलित बेटे, जो अपना झुकाव या तो पत्नी की ओर या फिर अपने माता-पिता की ओर बढ़ा देते हैं। यदि वे माता-पिता की ओर झुक जाते हैं तो पत्नी का जीवन दूभर कर देते हैं। यदि पत्नी की हर बात को वेद-वाक्य समझने लगते हैं तो माता-पिता के साथ जुल्म करते हैं।

परिवारों में कलह बढ़ाने वाले दूसरे कारण हैं घर के किसी सदस्य के शुभचिन्तक-नुमा लोग। हितेच्छु बनने के प्रमाण-स्वरूप उन्हें घर के झगड़ों में दिलचस्पी लेनी पड़ती है। खोद-खोद कर पूछना पड़ता है, और कोई न कोई सलाह भी देनी पड़ती है। उससे घर का भला होने का तो सवाल ही पैदा नहीं होता, अलबत्ता पूछ-पूछ कर दूसरों को चुगलखोर बनने का वे अभ्यास अवश्य करा देते हैं।

ऐसे शुभचिन्तक अक्सर सफल रहते हैं। उनकी सफलता का रहस्य इस बात में निहित है कि सम्मिलित परिवार में जिस चाह से बहू लायी जाती है उस चाह से रखी नहीं जाती। दूसरी ओर बहू भी लोक-गीतों और लोरियों के सूचीवेध द्वारा अपनी और परायी माँ का अन्तर समझ कर ससुराल पहुँचती है। अतः सम्बन्ध मधुर नहीं बना पाती। फल होता है अनबन। छोटी-छोटी बातें भीषण रूप धारण कर लेती हैं। लोग आश्चर्य करते हैं, "क्या स्त्रियाँ इतनी साधारण-सी बात पर भी लड़ सकती हैं?" लेकिन वे भूल जाते हैं कि लड़ाई होती किसी बड़ी बात की प्रतिक्रिया-स्वरूप है। छोटी-सी बात को तो दिल का गुब्बार निकालने में माध्यम बनाया जाता है। ऐसे वातावरण में यदि परिवार का संयुक्त रूप बना रहता है तो किसी सदस्य के त्याग के कारण या किसी भय के कारण——लोक-लाज का भय अथवा किसी सदस्य के बेसहारा हो जाने का भय।

जो बहुएँ इस प्रकार के भय से मुक्ति पा लेती हैं वह इस बन्धन से परित्राण पाते ही अपनी एक अलग दुनियाँ बसा लेती हैं——ऐसी दुनियाँ जहाँ वह हो, उसका पति हो और स्वस्थ बच्चे हों। जहाँ पति उसके काम में हाथ बँटा सके; बच्चों को पालने या शृंगार-प्रसाधनों के प्रयोग के समय अपनी सलाह ठूँसने वाली सास न हो; अट्टहास की गूँज पर कान बन्द करने वाले ससुर न हों, और जहाँ कामों को दूसरों पर टालने के लिए व्यस्तता के झूठे बहाने न बनाने पड़ें। यह कल्पना धारित होते ही उसे सम्मिलित परिवार का जीवन जंजाल दिखाई देने लगता है और वैयक्तिक परिवार का स्वर्ग। अपने उस बड़े परिवार की असफलता का कारण चाहे वह स्वयं हो या कोई दूसरा सदस्य लेकिन इस विचार वाले स्त्री-पुरुषों की संख्या का बढ़ना

जवानों के लिए तो नहीं, लेकिन बूढ़ों के लिए घातक अवश्य है।

जिन दूसरे सभ्य समझे जाने वाले देशों में वैयक्तिक परिवार की प्रथा आम हो चुकी है वहाँ के वृद्धों की दशा अच्छी नहीं है। वहाँ उन्होंने अपने बेटों की कृतघ्नता की कहानियाँ सुनने को श्रोता जुटाने के लिए भले ही अपने अलग क्लब बना लिये हैं; प्रसन्न होने का नाट्य करने के लिए वे खेल-तमाशों का आयोजन भी करते हैं लेकिन वास्तविक आनन्द से वे कोसों दूर रहते हैं, वह आनन्द जो उन्हें नाती-पोतों की किलकारियों में मिल सकता था।

वैयक्तिक परिवार प्रणाली के प्रचलन को उन नौजवानों का बूढ़ों के विरुद्ध विद्रोह समझना चाहिए जो उनकी छात्रछाया का मुँह-माँगा मूल्य देने में असमर्थ रहे। और अब यह प्रथा भारत में भी आम हुआ चाहती है। लोक-लाज के भय द्वारा या वृद्धों के प्रति युवक-युवतियों के कर्त्तव्य की दुहाई देकर उसे कुछ अर्से के लिए रोक भले लिया जाए लेकिन समाप्त नहीं किया जा सकता। उसे समाप्त करने का यदि कोई उपाय है तो यही कि संयुक्त-परिवार का जीवन सरल बनाया जाए। इसे सुगम बनाने के लिए इस दृष्टिकोण से सोचा जाए कि प्रत्येक स्त्री किसी की बहिन, बेटी, पत्नी, ननद, भावज या बहू है। उसी को आगे जाकर माँ, दादी और सास बनना है। प्रत्येक पुरुष किसी का बेटा, पति, भाई, दामाद और देवर है। उसी को आगे जाकर पिता, पितामह और ससुर बनना है। सम्बन्धों की इन परिस्थितियों में से लगभग सभी को गुज़रना है। यदि हर व्यक्ति अपनी पहले की स्थिति को स्मरण रखते हुए अपनी वर्तमान स्थिति के अनुसार स्वयं को अभियोजित करे तो संयुक्त परिवार भी स्वर्ग बन सकता है :

वृद्ध पिता अपने जवानी के जमाने को याद करे। उस समय अपने युग के अनुसार जो स्वतंत्रता उसने अपने बड़ों से चाही थी, वह अपने बच्चों को दे देवे।

सास अपनी बेटी के लिए जिस घरेलू वातावरण की कल्पना करती हो, वह अपनी बहू के लिए बनाए।

बहू यदि अपने मायके की निन्दा नहीं सहन कर सकती तो अपने पति के मायके की निन्दा से भी परहेज करे।

और विवाहित बेटे अपने बच्चों को पालने के लिए किये जाने वाले कष्ट स्मरण करें और उनसे लगाई जाने वाली आशाएँ भी। वही आशाएँ अपने बुजुर्गों की समझ कर यथासम्भव पूरा करें।

यदि किसी सदस्य या सदस्या को यह सब कुछ करना कठिन लगे और कलह करना सरल, तो भी वह सरल काम न किया जाए क्योंकि उससे पैदा होने वाली कठिनाइयाँ जटिल बन सकती हैं। असफल संयुक्त परिवार को किसी भय के कारण से चलाए जाने से श्रेयस्कर है शान्तिपूर्वक अलग हो जाना। लेकिन अलग होने का आशय यह न समझा जाय कि बुजुर्गों के प्रति पूरे करने योग्य कर्त्तव्यों से ही छुट्टी मिल गई। कर्त्तव्य कर्त्तव्य ही रहेंगे, जीवन व्यतीत करने की प्रणाली चाहे कोई भी पसन्द कर ली जाए।

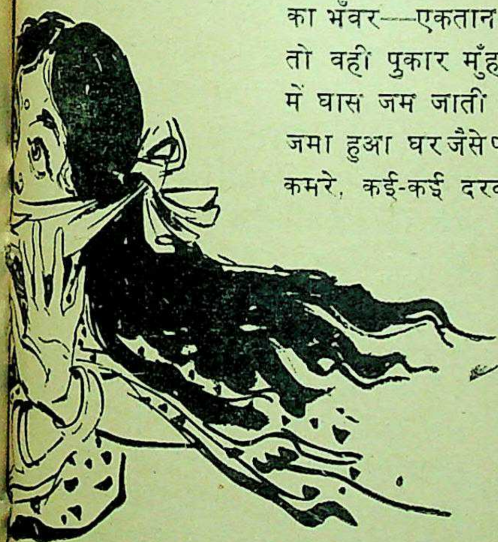
●

रमेश बक्षी

मुर्दा चीज़ों की ज़बानें

खूब तेज़ी से चमकता सूरज। जुलाई का बीच-सप्ताह। सोम से रवि तक कोई भी एक दिन। सैंतालिस का सन। सतलज का बहता पानी। पानी भी जैसे मैला-सा, कई-कई झाँइयों वाला। हफ्ते से यूँ लगे जैसे गर्मी रहेगी बारहमासा। क़सम खाने को भी बादल न आए। साफ़ लेकिन चिलचिलाता आसमान। तपती और तिलमिलाती मिट्टी। पूरा क़स्बा जैसे इसे बना कर बनानेवाले भूल गए। पेड़ों पर कौवे भी डरते-से पंख मार उड़ते। चिड़ियों की चोचों से नीड़ के लिए उठाया तिनका भय से छूट पड़ता। रोते हुए कुत्ते---एक-दूसरे को देख कर रोते हुए। सड़कों पर उड़ता कागज़ भी आवाज़ करता। ऐसा साँय-साँय, झिनिन-झिन कि अपने-आप ही सिरदर्द होने लगे।

घरों की भीड़ में एक और घर। सारे दरवाज़े खुले---जैसे एक भीड़ अन्दर घुसी थी अभी-अभी। एक और हज़ार आवाज़ दो फिर भी चुप का भँवर---एकतान चुप, चुप को छोड़ और कुछ नहीं। पुकारो तो वही पुकार मुँह चिढ़ा कर वैसे ही पुकारे। जैसे वीराने में घास जम जाती है, वैसे ही चुप में प्रतिध्वनि उगने लगती है। जमा हुआ घर जैसे पीढ़ियों से लोग रहते आए हैं यहाँ। कई-कई कमरे, कई-कई दरवाजे, पर चुप जैसे अजगर-सी आ बैठी है।



•

जब विभाजन की विभीषिका परिवार ने झेली !

•

यह सामने का कमरा। बिछी हुई मसनद, साफ़-सफ़ेद चादर जैसे कोई अभी पाँच मिनिट पहले बैठा था इस पर और जल्दी में उठ कर कहीं चला गया है, साफ़ सफ़ेद तल अब भी कुछ गरम होंगे। गाव-तकिये पर अब भी कुहनी के आकार वाली दबन साफ दिख रही है। सामने रखा हुक्का अब भी हल्की आँच लिए है। ज़ोर का कश गुड़गुड़ाओ तो शायद बची हुई तम्बाकू धुँआ दे दे। हल्की धीमी-सी तम्बाकू की सुगन्ध, वैसा ही अच्छा लगता है जैसे कब्र पर लोबान-गूगल गालने से। लम्बी-सी नली है उसमें जो पास के दो कमरों तक जा सकती है। कोई बाहर से पुकारे तो नली को ओठों में दबाए बाहर जाया जा सकता है—यूं लगता है जैसे अब पुकार सुन नली अपने आप उठ कर बाहर जाकर कहेगी—'मुझे पीनेवाला है, कहीं बाहर गया है, कहो क्या काम है?' हवा सँय्याती हुई इस कमरे से उस कमरे में, उस कमरे से उस कमरे में सूने घर डेरा जमाए है।

यह दूसरा कमरा। एक नया बिस्तर। टाँके की कढ़ाई वाली चद्दर, वैसा ही पोश, वैसे ही गिलाफ़। मसहरी उठाई भी नहीं गई, सोकर जागते ही जैसे सोयी हुई जोड़ी उठ भागी। ऊपर एक तस्वीर-केबिनेट साइज़ की। ब्याह की जोड़ी। दुल्हे-दुल्हिन की पोशाकें—सूरत कोई कैसे पहचानें, केवल भाव पहचान सकते हैं, वे भी नहीं, केवल अवसर पहचाना जा सकता है। उस पर तारीख डली है—२३-६-१९३५। वह शादी की तारीख होगी। आज बारह बरस—पूरा एक जुग लद गया उनके हथलेवा को। इस कमरे में दिन कहाँ होते होंगे, केवल रात ही होती होंगी। यहाँ उजेले नहीं रहते, अँधेरे रहते होंगे। यहाँ कभी सर्दी न आई होगी, हमेशा गर्मी रही होगी। मगर ऐसे लू-झुलस के महीने भी भर दुपहर यह कमरा बर्फ़-सा ठंडा क्यूं लग रहा? यहाँ के गर्मी वाले जिस्म कहाँ चले गए?

और उस कमरे में...क्या है? गुड़िया नीचे सुला दो, आँखें मींच ले; उठा लो तो आँखें खोल ले। चाबी भर दो नाचने लगे, न भरो तो गुस्सा हो जाए। नायलोन के बाब्ड हेयर, स्पंज के कपड़े, सेलूलाइड का शरीर...पर चाबी क्यूं नहीं भरी जाती? किसी ने इस पर भारी पैर रख दिया है—पुतलियाँ दब गई हैं। अब इसे उठाओ तो, सुलाओ तो; इसकी आँखें बन्द की बन्द, सदा बन्द रहेंगी। जैसे पहले जिंदा थी और अब मर गई है, तो कोई हरकत भी कैसे हो? पहले किसी छोटी-सी बच्ची की नामालूम छाती से लग कर इसने दूध पिया होगा, उसकी गोद में यह सोई होगी, उसके चुम्बनों का लाड़-प्यार पाया होगा इसने।

वहाँ वह सुमिरनी लटकी है। जाने किन काँपती उँगलियों के पोरों की छुअन हर तुलसी-मनके पर अब भी है। या तो उन बूढ़ी उँगलियों की रेखाएँ इन मनकों की गोलाई से घिस गई होंगी या फिर इन मनकों के खुरदुरेपन पर उन उँगलियों से चिकनाई आ गई होगी। सेहन के उसी कोने में बैठी कोई बुढ़िया राम-नाम रटती रहती होगी और अपने नाती-पोतों के लिए भलाई का वर माँगा करती होगी। बेटे की बेटी अपनी गुड़िया को सोई हुई लाती होगी और दादी के सिर पर उसे खड़ा कर जगा देती होगी। दादी कुछ न कहती होगी क्योंकि ऐसे बच्चों

से ही तो उसका परलोक सुधरेगा, उसके लिए कंचन की सरग-नसैनी लगेगी और वह फेरकुंकु उड़ाती इस दुनिया से हँसी-खुशी उठ जाएगी। इसके यह मानी नहीं कि उसने मनके फिराते, राम का नाम लेते, घर में घुस आये कुत्ते को दुतकारा न हो, या दूध पीती बिल्ली को भगाया न हो, या चूल्हे पर जलती सब्जी के लिए बहू को दो बोल न सुनाए हों। जैसे साँसें लेना जीवन के सब कुछ के साथ जुड़ा है वैसे ही माला के साथ दुनिया के रोज़ के काम भी लगे हैं।

और यह किताब उड़ती चली आ रही है। यह बालबोध है—बड़े-बड़े अक्षरों में बारहखड़ी लिखी है—ऊँट, उल्लू, बत्तख, शेर, झोपड़ी, पहाड़ की रंगीन-रंगीन तस्वीरें बनी हैं। छोटी-छोटी उँगलियाँ इन बड़े-बड़े अक्षरों पर घमती होंगी। बच्चा पढ़ता है तो मन में नहीं पढ़ता, हमेशा ज़ोर से ही पढ़ता है। उसकी जिज्ञासा पहले पाँवों में लड़खड़ाती है। यह सब इस बालबोध के आस-पास हुआ होगा। बच्चे ने अपनी पेन्सिल का कमाल भी दिखाया है, रंगीन गधे के लंबे कानों के नज़दीक दो सींग भी बना दिये हैं और गधा बारहसिंगा-सा दोसिंगा लग रहा है। जब बच्चे ने गधे के सिर पर सींग बनाए होंगे तो मम्मी-पापा हँसे होंगे—ज़ोर से।

"बेटे, गधे के सींग नहीं होते।"

"क्यूं नहीं होते ?"

"नहीं होते बेटा !"

"होते क्यूं नहीं ?"

"जैसे आदमी के सिर पर नहीं होते, वैसे ही उसके भी नहीं होते..."

"तो गधा क्या आदमी होता है ?"

"नो बेटा, न गधा आदमी होता है, न आदमी गधा।......"

और बातों का कोई अन्त नहीं होता होगा। वहीं सींगदार गधा अपने अक्षर के ऊपर गधे की तरह खड़ा अब कमरे की आज़ाद हवा के हाथों पड़ा है।

यह पिन कैसे चुभी ? यह बोर्ड कैसा ? यह ड्राइंग-पेपर ? यहाँ इंजीनियरिंग पढ़ने वाला कोई विद्यार्थी रहता होगा। 'साइट प्लेन ऑफ ए स्कूल।' ओह, तो यह स्कूल है इस नक्शे में। ये आठ कमरे इधर, आठ उधर, ये बरामदे, यह कॉमन-हॉल, यह लायब्रेरी, यह बाग़, यह खेल का मैदान। कितना प्यारा स्कूल है ! स्कूल बन जाए तब की बात तो तब से, पर यह तो ऐसी प्यारी बात है कि जिसका नक्शा बनाने में भी लेण्डस्केप बनाने का सुख मिले। पर जो भी लड़का स्कूल बना रहा था वह कहीं उठ कर घूमने चला गया लगता है—शायद स्कूल बनाते-बनाते थक गया है।

और यह आखिरी कमरा है इस घर का। एक कागज़ भर उड़ रहा है—यह कागज़ कैसा ? यह तो खत है—

प्यारी शीली,

तुमने तो न लिखने की क़सम खा ली है, अच्छा है ! पर मैं न लिखूं तो मर ही जाऊँ। तुमने कहा था न कि सतलज के किनारे मिलोगी, पर न आई तुम। भई, तुम्हारे बाबा तो हुक्का गुड़गुड़ाया करते हैं और बूढ़ी माँ माला फेरा करती हैं। तुम्हारे भैया-भाभी लगे रहते हैं बच्चों में—फिर तुम्हें किसका

डर है---उस छोटे भाई का ? पर वह तो बिचारा दिन-रात सर्वे करता फिरता है और रात भर नक्शे बनाया करता है। इंजीनियर लोग मुहब्बत की बातें समझ ही नहीं सकते। पर बुरा मत मानना इस बात का। माना कि तुम्हें अपना छोटा भाई बहुत प्रिय है पर मैं तो---बक़ौल तुम्हारे---तुम्हारा प्रियतम हूँ न ? कल ज़रूर मिलना---वहीं, उसी अपनी जगह, मैं इन्तज़ार करूँगा। और शीली, इन्तज़ार को छोड़ और कर भी क्या सकता हूँ ?

सोडो तुम्हारा

लो, हवा छीन ले गई उस प्रेम-पत्र को। अब उसे सड़क पर ले जाएगी और रोता हुआ कुत्ता उसके पीछे दौड़ेगा और उसे पंजों से नोच कर टुकड़े-टुकड़े कर देगा।

पर वह हुक्का, वह तस्वीर, वह गुड़िया, वह सुमिरनी, वह बालबोध, वह स्कूल का साइट-प्लेन, वह शीली के नाम सोडो का ख़त सब बेज़बान हैं, कोई कुछ नहीं बोलता। ये बोलें तो कह सकते हैं कुछ। कुछ तो कह ही सकते हैं।

\+ + +

अब इस सब को देख कर रमेश बक्षी कल्पना करता है :

सामान से लदा ट्रक आया। एक परिवार उसमें से उतरा। पति बोला---"सुनो ! यह फ्रेम अच्छी है, इसमें हम अपने ब्याह की तस्वीर लगा लेंगे।" पत्नी स्वीकार में सिर हिला कर उस फ्रेम की तस्वीर को अलग करने में जुट जाती है। बाबा कहते हैं, "लो भाई, मुझे तो हुक्का भी मिल गया। बस, इसे भरने भर की देर है।" माँ बोली, "यह माला रोज़े के दिनों मेरे काम आएगी।" बच्चा खुश है कि उसे ऊँट, उल्लू, बत्तख, शेर, झोपड़ी, पहाड़ की रंगीन-रंगीन तस्वीरें मिल गई हैं। बेबी टूटी हुई गुड़िया में लगी है। छोटा भाई स्कूल का प्लेन निकाल कर बोर्ड रख लेता है कि वह उसके काम आयेगा। बहन के हाथ वह सोडो का ख़त पड़ जाता है---उसका दुपट्टा सिर पर से चोटियों की नसैनी उतर कर नीचे आ जाता है।

और इन सब को देख कर रमेश बक्षी की कल्पना करने की ताक़त ही चुक जाती है क्योंकि यह कल्पना कहाँ, यह तो हक़ीक़त है। १४ बरस पहले का एक अखबार उसके सामने है। छोटी-सी न्यूज़ यह है उसमें :

> ११ जुलाई, '४७। सतलज किनारे एक गाँव में पाँच मिनट में आठ हत्याएँ। बूढ़े माँ-बाप, उनके बहू-बेटे, उनके दो लड़के, छोटे भाई-बहन सब एक ही तलवार से एक साथ मौत के घाट उतार दिये गये। एक आबाद घर वीरान हो गया।

\+ + +

पर क्यों ? क्या उस फ्रेम में से तस्वीर निकालते बीबी ने यह न कहा होगा---"नहीं, बहुत प्यारी जोड़ी है यह। हम इसमें अपनी तस्वीर नहीं लगायेंगे। अपने लिए कोई और फ्रेम ले आयेंगे। इस जोड़ी वाले कभी मिल गये तो उनकी तस्वीर उन्हें ही लौटा देंगे।"

"ठीक कहती हो बीबी"---मियाँ ने खुदा को याद करते प्यार से जवाब दिया होगा---"लाओ इस तस्वीर को ताक़ पर रख दें।"

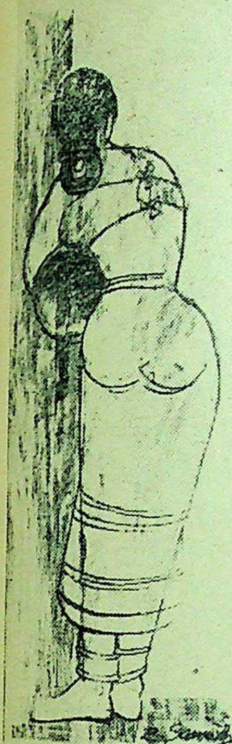
मेरा विश्वास है वह तस्वीर ऊँचे ताक़ पर ज़रूर रख दी गयी होगी। ● ● ●

प्रभाकर द्विवेदी

•

ग्रामीण परिवेश में गाँव की गोरी-साँवरी

•



ऋतुचक्र में फसलें बढ़ती हैं, लहलहाती हैं और कट जाती हैं। हवा में धान की हरी-छरहरी सुकोमल पत्तियाँ सिहर-सिहर जाती हैं तो लगता है कि धूप की एक बौछार-सी उन पर होकर दौड़ गई हो। सरपत के भुवे पर बैठ कर फूलचुस्सी या फुरगुद्दी चिड़िया सीटी बजाती है। और अनमनी-सी कोई चम्पा-साँवरी या राधा-बावरी बीच से उनके आगे बढ़ जाती है।

तभी-क्षण भर को वह ठिठकती है। अरे यह कैसी गन्ध है! यह उम्र की गन्ध है। उसे पन्द्रहवाँ लगा है। अभी पारके साल उसकी माँग में सेन्दुर पड़ा था। तब से वह बाबा के लाए गरी के तेल से बाल सींचती है। भाभी के कँघे से ऐंच कर केश सँवारती है और खूब चिपका कर, कस कर चोटी गूँथती है। टीन मढ़े दर्पण में ध्यान से देख कर साधभरी काँपती अँगुली से माँग में सेंदुर डालती है।

अब वह बिना सिंगार के बाहर न निकलेगी। ब्याह के पहले चाहे जिस तरह से झोंटे खोले-खोले फिरती रही हो, लेकिन अब सजी-सुधरी न रहेगी तो कहीं शिकायत न पहुँच जाय ससुराल के गाँव तक। तमाम किस्म के लोग आया-जाया करते हैं। गाँव के बीच से होकर निकलते हैं। सबकी नज़र के सामने वह पड़ेगी ही। वह गाँव की बहू तो है नहीं कि घर में छिप कर रहे। गाँव की कुमारी कन्या है। यहाँ के दिन

गाँव में खिले साँवरे फूल

रहना है ? इसलिए कुछ दिनों के लिए तो आजादी से, बिना पर्दे के, गाँव की धरती-सिवान देख ले---टहल-घूम ले।

तड़के भोरहरी में उठ कर चाहे महुवा बीनना हो, चाहे आम, वही जायगी। पंखा बुनने के लिए सींक लाने जाना हो या मौनी-दौरी के लिए कुश-काँस लानी हो, वह न जायगी तो, कौन जायगा! अभी कुछ साल पहले तक वह इन कामों के लिए जाती थी तो सारा ध्येय ये ही काम होते थे। किन्तु अब ? अब तो उसे लगता है कि जैसे धरती से कोई महक उठ रही है। चारों ओर की हरियाली को वह पी नहीं पाती है और शाख-शाख उसे मचलती हुई लगती हैं। जैसे कोई सुहाना सपना हो, कि जैसे कोई रंगीन धोती फरफरा कर उड़ रही हो। लाज लगती है, नहीं तो वह इन फसलों के बीच लोट मरे। या किसी पेड़ पर चढ़ जाय और फुनगी-फुनगी, पक्षी-पक्षी से बातें करके लौटे।

यह उसका अपना गाँव है। अपने भाई-भतीजे हैं। अपनी माँ-काकी हैं। कोई ससुराल नहीं है कि रात-दिन घर में बन्द रहे और सास के ताने सुने। यहाँ वह किसी की एक बात सुनेगी तो चार सुनाएगी। चार सुनाएगी और फिर सबके लिए रोएगी, क्योंकि सब अपने हैं। ब्याह हुआ था तो, गाँव भर उमड़ आया था अपनी बेटी के ब्याह में। सगोती पट्टीदार के भाई बिरन पालकी के साथ-साथ गँड़ासा लेकर चले थे कि कोई बात हो जाय तो गला काट के रख दें किसी का भी जो बहिन का अनिष्ट चाहे। बिदा कराने पति आएँगे तो गाँव भर की स्त्रियां अँकवार में भर-भर के उसे आशीष देंगी। वह बिलख-बिलख कर रोएगी। एक-एक के लिए रोएगी, क्योंकि सबसे उसका अपनापा रहा है।

घर में पाहुन आते हैं तो वही बिठाती-जिमाती है। उसके अपने घर (ससुराल) के लोग न हों तो वह खूब बातें करेगी। सब हाल-चाल ले लेगी और भीतर बैठी माँ-भाभी से बता आएगी। जो कहीं बहनोई हुए तो फिर साली-जीजा में क्या न हो जाएगा! जीजा हैं कि एक ही हैं। बातों के बान चलाते हैं। वह लजा-लजा जायगी। जीजा कहेंगे--"क्यों जानकी (या सीतापति, रामरती, शीतला, शारदा, सुनयना आदि), होली में आऊँगा तो हमसे रंग खेलोगी न!"

"आपसे न खेलूँगी तो किससे खेलूँगी ?"

"लेकिन मैं लाल गुलाल ही लाऊँगा।"

"कोई रंग लाइए। आपको सराबोर कर दूँगी।"

"लेकिन लाल गुलाल तुम्हारे ऊपर चलेगा कैसे ? इन लाल रंग के गालों पर कैसे चढ़ेगा वह ?"

और इतने में तो वह झेंप-झेंप जाती है। हाय, जीजा जी भी कैसे हैं! हिम्मत कर कहती है--"अच्छा, देखूँगी। थोड़ा सो जाइए, फिर आपकी माँग में सेंदुर न भर दिया तो कहिएगा।"

"और, जो कहीं पकड़ कर मैंने उलटे तुम्हारे ही भर दिया!"

"तो, जान लूँगी आप जनाने हैं।" बड़ी निर्लज्जता से वह कह तो जाती है, लेकिन मन ही मन बहुत झेंप जाती है। और क्यों न झेंपे वह! लड़की की जात ठहरी! फिर बाम्हन की लड़की। कोई शूद्र-चमार की लड़की नहीं।

हाँ, शूद्र-चमार की लड़की जो जनम लेते ही गाँव में घूमने लगती है और सबकी बातें सहती है। बातें सहती है और मुँहजोर होती जाती है। किसी से मजूरी भी माँगेगी तो लगेगा कि भीख माँग रही है। किसी के भी खेत से मूली उखाड़ लेगी और पकड़े जाने पर, डाँटे जाने पर, खी-खी कर हँस देगी।

लेकिन एक दिन उसको भी पन्द्रहवाँ लगता है। तब उसके पाँव धरती पर नहीं पड़ते हैं। चाहे वह किसी के यहाँ खाद फिंकवाए, चाहे ईंटा ढोए, चाहे राज-मिस्त्री को गारा-सिरमिट का तसला पकड़ाए। उसके मिजाज ही अलग होते हैं।

क्योंकि आज उसको सराहने वाले अनेक हैं। जिधर जाती है, लोग मुस्कराते हैं और सभी उससे ठिठोली करते हैं। साथ में बोझा ढोने वाला मजूरा चाहेगा कि उसी के साथ-साथ चले। सिर पर बोझा उठवाने वाला जमींदार का कारिन्दा हर बार उसके हाथ छुएगा। हवेली में बोझा उतरवाने वाला उसकी अँगुली दबाने की चेष्टा करेगा। पण्डित जी का लड़का उसे घूरेगा और लौटते वखत पण्डित जी उसके साथ लग लेंगे कि देखें कितना माल ढोना बाकी है।

ऐसे में उसका दिमाग़ क्यों न चढ़ जाय ! किन्तु वह है होशियार। चार घड़ी की मौज के लिए बदनामी होगी। नहीं भइया, नहीं, गाँव-जवार में अपनी बदनामी ! माँ-बाप की बदनामी ! वह अपने को रोकती है। ऐंठ कर रहती है।

नाच-तमाशा वह भी देखती है। जोगीड़ा उसी पर बोला जाता है, वह समझती है—

एक कुआँ कबूतर बोले, एक कुआँ में मोर
नई बहुरिया गौने आई, खिड़की लागे चोर
...चली जा सा रा-रा-रा-रा-ऽऽ...

रास्ते चलते कोई उससे कहता है—"क्यों जी, कहाँ जा रही हो ?"

"तुमसे मतलब जी ? जहन्नुम जा रही हूँ।"

"अरे बाप रे, इतना गुस्सा ! मैंने तो सोचा कि साथ ही चल रहे हैं, बातें करता चलूँ—रास्ता कट जायगा। पर ये तो साक्षात् बिच्छू हैं।"

"तुम क्या नाग हो ?"

"तुमसे तो अच्छा ही हूँ।"

फिर वह चुप-चुप भी चलने लगे तब भी वह गाएगा सुना-सुना कर—

कुल बोरन हमरे पाले पड़ीं
हाँ, पाले पड़ीं, सिव घाले पड़ीं

इसको वह कैसे रोक सकती है !

नहीं भइया, नहीं। राम अच्छे-भले रखें उसके मनसेधू को। वह आएगा तो बिदा कराके ले जाएगा। वहाँ लाख कष्ट होगा, फिर भी वह अपने आदमी के साथ—अपनी ढाल के साथ, तो रहेगी। वह बाम्हन ठाकुर की लड़की तो है नहीं कि ससुराल में लोग घर में बन्द कर देंगे। जैसे यहाँ मजूरी करती है, वहाँ भी करेगी। कमाएगी, खाएगी। घूमेगी, टहलेगी। सास बोली मारेगी तो पिया को लेकर अलग हो जायगी। उसका आदमी गाँव के सिवान पर घर उठा लेगा और चैन से गाएगा—

मोरी अँखिया की पुतरी
अकसवा से उतरी
हो मोरी कबुतरी
तुंहका लइकै छइबूँ डँड़वा पर मड़इया-या ऽऽ..●

देवेन्द्र इस्सर

◉



छरेरा बदन, सरो क़द, लम्बे स्याह बाल, काली गहरी आँखें, खिलता हुआ फूल, शोले-सी लपकती रूपसी! यह नाज़ो है।

एक दिन नाज़ो के हाथ पीले हो जाते हैं। लड़का घोड़ी पर सवार होता है। सेहरा बाँधता है और तूतियां बजती हैं। औरतें शगन करती हैं:

निकी-निकी बूटी निकयाँ मींह दे वरे
माँ वे सुहागन तेरे शगन करे

शहनाइयाँ बजती हैं, रोशनियाँ होती हैं, औरतें गीत गाती हैं। बारात का स्वागत होता है। औरतें 'सिठ-नियाँ' देती हैं:

कुड़ी ताँ साड़ी तिले दी धार ए
मुंडा ता लगदा कोई कुम्हार ए
जोड़ ताँ जुड़दा नहीं
जोड़ ताँ जुड़दा नहीं निरलज्जयो
लज्ज तुहानूँ नहीं

लेकिन लड़का इस मज़ाक का बुरा नहीं मानता। वह 'छन्द' पढ़ता है और अपने सास-ससुर के गुण गाता है:

छन्द परागे आइये-जाइये
छन्द परागे फली
सोहरा फुल गुलाब दा
सस्स चंबे दी कली

मुकलावे के समय नाज़ो रोती है। उसे अपना बाबल याद आता है। सखी-सहेलियों को छोड़ने का ग़म है। सब को रोते देख कर वह भी रोने लगती है:

होले-होले नच कुड़िये

मैं क्यों मुकलावे जावाँ
मित्रा दा देस छड के

लेकिन वह अपने पति को धीरे से आश्वासन देती है :

मैं तो कुड़ियाँ दा दिल परचावाँ
रोंदी न साथों जोड़ी सोहणया

नयी बहू का स्वागत खत्म हुआ और अब उसे हर समय घर का काम-काज करना पड़ता है। नाज़ो सास से कहती है :

ससे मैंनू तो करें तगड़इयाँ
अपणे नी दिन भुल गये
तेरे टुकड़े खाण नहीं आई
वे सों गइयों दोपट्टा तान के

नाज़ो घर में अपने पति के बिना नहीं रह सकती। जब पति को गाँव छोड़ कर परदेश जाना ही पड़ता है तो नाज़ो अपनी सास से रो-रो कर कहती है :

ससे वेख जवानी मेरी
भरती तूँ पुत रोक ले

लेकिन उसका पति जाने पर विवश है। और वह कहती है :

जाँदया दी पिठ दिखदी
भाँवे सड़ जाये तवे दी रोटी

और लो, बरसात आ जाती है :

काले बादल आ गये बिजली दे लिश्कार
मेरे नयन उडीक विच, वरसन मूले धार

अकेले सूने घर में वह अब उदास रहती है :

लीरां लमकन सूट दियाँ
मैं बैठी रोवाँ चन्ना
माहिया पींगा झूट दियाँ

वह अपने पति को पत्र लिखती है :

शकर होवे ताँ वंड आँ वे चीरे वालया
रूप न वडिया जाये जानी मेरया

वह अपनी सास से शिकायत कर के कहती है :

सस्सू नी तेरे पंज पुतर
दो देवर दो जेठ
जेहड़ा साड़े हाँड दा
ओ ही गया परदेस

सास उसका उत्तर भी देती है और दिलासा भी :

नूहें नी बड़बोलिये
ऐडे बोल न बोल
चार दिहाड़े नौकरी
सदा तुहाडे कोल

बेचारी ससुराल में सास के ताने सहती है और जिस माही के लिए उसने अपना मायका छोड़ा था वह भी परदेश में है :

नी मैं टुट गई भरावाँ नालूँ
इक तेरी जिन्द बदले

और तब पति की चिट्ठियाँ आने लगती हैं।

और आखिर नाज़ो के आग्रहों पर माही घर वापस आ रहा है। नाज़ो खुशी से उमड़ कर नाच उठती है, और दौड़ी-दौड़ी स्टेशन जाती है :

गडी आ गई टेशन ते
परा हट वे बाबू
सानू माहिया वेखन दे

●

कुमुद नागर

प्रकृति के ये परिवार-विहीन विद्रूप

पिछले आम चुनावों की बात है, लखनऊ में कई मतदान केन्द्रों पर एक अजीब मनोरंजक समस्या खड़ी हो गई। बात सिर्फ इतनी थी कि स्त्री मतदाताओं की पंक्ति में कुछ स्त्री वेशधारी किंपुरुष भी खड़े हुए अपनी वारी आने की प्रतीक्षा कर रहे थे कि तभी स्त्रियों में चख-चख आरंभ हो गई। कुछ स्त्रियों ने स्पष्ट शब्दों में उन्हें पंक्ति से निकलने को भी कहा लेकिन हिजड़े इसके लिए तैयार नहीं हुए। बात बढ़ी और अंततः मतदान केन्द्र के अधिकारियों को हस्तक्षेप करना पड़ा; उन्होंने हिजड़ों को पुरुषों की पंक्ति में खड़े होने का आदेश दिया। हिजड़े भुनभुनाते, लचकते, मटकते दूसरी पंक्ति में जाकर खड़े हो गये। पुरुष वर्ग जो अब तक चुपचाप खड़ा यह तमाशा देख रहा था, हिजड़ों को अपनी पंक्ति में शामिल होते देख कर वाचाल हो उठा और तरह-तरह की आपत्तियाँ की जाने लगीं। केन्द्र के अधिकारियों को पुनः हस्तक्षेप करना पड़ा तब कहीं मतदान कार्य संपन्न हो सका और हिजड़ों ने पुरुषों के साथ ही वोट दिये।

हिजड़ों की जमात सभ्य मानव जगत में एक भूली-बिसरी समस्या-सी आज भी मौजूद है। यों तो यह बात सर्वमान्य है कि तीसरा दल आम तौर पर स्वयं में शक्ति होता है, लेकिन स्त्री और पुरुष के बीच का यह तीसरा दल हर प्रकार से अशक्तता और हीन भावना का मूर्तिमान रूप है।

हिजड़ों को मुख्य रूप से दो श्रेणियों में रखा जा सकता है। एक तो वे जो प्रकृति



उन अभागों की कथा जो प्रकृति, समाज और परिवार, सभी द्वारा परित्यक्त हैं।

से अभिशप्त, जन्मजात नपुंसक होते हैं और दूसरे वे जिन्हें बाह्य साधनों द्वारा नपुंसक बनाया जाता है। इस दूसरी श्रेणी को भी दो उपवर्गों में बाँटा जा सकता है, १. जिनके बाह्य प्रजनन अंग नष्ट करके प्रजनन के अयोग्य बना दिया गया हो ; २. जिनकी प्रजनन ग्रंथियों को ही विनष्ट कर दिया गया हो।

ऐसे मामले आज के युग में नहीं के बराबर देखने को मिलते हैं जहाँ किसी पुरुष के बाह्य अंग नष्ट करके उसे अयोग्य बना दिया गया हो। ऐसा साधारणतया आपसी वैमनस्य के ही कारण हुआ है, परन्तु इस प्रकार के व्यक्ति केवल प्रजनन के ही अयोग्य होते हैं, उनकी चाल-ढाल, आवाज़ और स्वभाव में कोई अन्तर नहीं आता। इसके विपरीत जिनकी प्रजनन ग्रंथियाँ (विशेष रूप से अंड-कोश) कम उम्र में ही नष्ट कर दिये जाते हैं उनमें पुरुषोचित गुणों का विकास रुक जाता है।

पुरुष की प्रजनन ग्रंथियाँ लगभग १३-१४ वर्ष की अवस्था से अपना कार्य आरंभ करती हैं। वीर्य उत्पादन के अतिरिक्त यह ग्रंथियाँ अंतःमुखी ग्रंथियों (endocrine glands) के रूप में भी कार्य करती हैं और कुछ हार्मोन बनाती हैं जो बालक में पुरुषोचित गुणों—स्वर का गंभीर होना, कंधों का फैलना और दाढ़ी-मूछों का उगना आदि—के विकास के लिए उत्तरदायी होती हैं। अगर इसी वय में यह ग्रंथियाँ नष्ट कर दी जाएँ तो यह गुण या तो विकसित ही नहीं होंगे, और अगर होंगे भी तो अत्यल्प मात्रा में।

प्राचीन समय में इस प्रकार से हिजड़े बनाने की प्रथा काफी जोरों पर थी। आप्टे के कोश में हिजड़ों के लिए एक शब्द आता है "महल्लिकः" जो अरबी भाषा से संस्कृत भाषा में आया। इससे स्वाभाविक रूप में यह अनुमान लगाया जा सकता है कि प्राचीन हिन्दू राज-महलों में अरब से हिजड़े लाए जाते थे। मुस्लिम शासन काल में अंतःपुरों में खोजासराओं की नियुक्ति तो ऐतिहासिक तथ्य है ही। इस सम्बन्ध में रिज़ावे की 'डार्क ओरियंट' नामक पुस्तक में भी उद्धरण मिलते हैं जिनसे जान पड़ता है कि हब्शियों के गाँवों से लड़कों के दल इकट्ठा करके उन्हें रेगिस्तान ले जाया जाता था और वहाँ उन्हें हिजड़ा बनाने की क्रिया संपन्न की जाती थी। उनके जख़्मों पर वहीं की बालू थोप दी जाती जो कभी दवा का काम करती तो अधिकांश के लिए 'सेप्टिक' का कारण बनती। इन अभागों में से जो जीवित बचते उन्हें जहाजों पर लाद कर ईरान, बग़दाद और हिन्दुस्तान आदि देशों में ख़ोजासराओं के रूप में बिकने के लिए भेज दिया जाता।

ऐंथोनी बारनेट की पुस्तक 'दि ह्यूमन स्पिसीज' में भी कहा गया है कि पहले गिरजा-घरों में प्रार्थना गाने वाले लड़कों को भी इसी प्रकार अयोग्य बना दिया जाता था जिससे उनमें पुरुषोचित गंभीर तथा मन्द स्वर का विकास न हो और उनके स्वर ऊँचे ही बने रहें।

हम अपने यहाँ स्त्री-पुरुष के बीच जिस तीसरे वर्ग को स्पष्ट रूप से देखते हैं, इनमें से अधिकांश जन्मजात हिजड़े होते हैं। देह रचना के आधार पर इनके भी दो भेद होते हैं—एक वे जिनमें पुरुष तत्व होता है या यों कहा जाय जो पुरुष बनते-बनते रह गये। दूसरे वे जो स्त्री बनने की प्रक्रिया में अधर में

ही लटके रह गये। इस दूसरी श्रेणी के हिजड़ों (अथवा हिजड़ियों कहना उपयुक्त होगा) के कभी-कभी स्तन आदि भी होते हैं और यह 'पई' कहलाते हैं। आम तौर पर हिजड़े-हिजड़ियों की छातियाँ सपाट और संकरी होती हैं, आवाज फटी हुई और फीके चेहरे के रोम-कूप खुले-खुले होते हैं।

प्रकृति के नियम के अनुसार इनमें भी मृत्यु होती है लेकिन फिर भी नये हिजड़े जमात में शामिल होते रहते हैं, इसका कारण यही है कि अगर इन्हें पता लग जाय कि फलाँ परिवार में ऐसा बालक पैदा हुआ है या फलाँ घर में हिजड़ा या हिजड़ी है तो यह उसे अपने साथ निकाल ले जाने का भरसक प्रयत्न करते हैं।

हिजड़ों का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह है कि जन्म वे परिवार में लेते हैं किन्तु जीवन भर उन्हें परिवार और मानव-समाज से बहिष्कृत रहना पड़ता है। विशेषकर इसलिए कि हिजड़ा अपने माँ-बाप के लिए समस्या है, अपने परिवार के लिए लज्जा का कारण। स्वयं हिजड़ा भी घर-परिवार के वातावरण में घुटता है।

फिर भी, हिजड़ों का अपने ढंग का एक परिवार, एक समाज होता है। हिजड़ों के शहर में इलाके बँधे होते हैं। एक इलाके के हिजड़े दूसरे इलाके में कमाने नहीं जाते, वरना दोनों दलों में घमासान मच जाता है। हर इलाके की जमात के अलग-अलग चौधरी होते हैं और इन चौधरियों की नगर पंचायत होती है जिसका एक सरपंच होता है।

नये हिजड़े को जमात में शामिल करने की इनकी क्रिया 'मसम' या 'मिसम' कहलाती है। पंचायत के चौधरी के पास अष्टधातु का एक लिंग होता है जो इनका देवता है। नये भरती होने वाले सदस्य से उसकी पूजा कराई जाती है। एक सूप में कुछ अन्न-धान और तेल रखा जाता है और देवता को तेल से नहला कर उस पर नये सदस्य को बैठाया जाता है।

यों तो हिजड़ा सम्प्रदाय का कोई धर्म नहीं है फिर भी हिन्दू परिवार या क्षेत्र से आने वाले हिजड़े किसी न किसी हद तक अपने धार्मिक संस्कारों से प्रभावित होते हैं और इसी प्रकार मुसलमान भी।

स्त्रियोचित हाव-भाव (बल्कि एक हद तक उनसे भी अधिक स्त्रैण) और वेश-भूषा के साथ ही बातचीत में स्त्रीलिंग सूचक क्रियाओं का प्रयोग भी इनके जीवन का अंग बन गया है। हिजड़ों का दल जब ढोल-मंजीरा लटकाए, सस्ते सौन्दर्य प्रसाधनों से सजा और जतन से दाढ़ी-मूँछें बनाकर पोले हाथों से ताली पीटता 'ओह होय' या 'जियो-जियो रे लला' कहता निकलता है तो स्वाभाविक रूप से राहगीरों और दूकानदारों-खोंचेवालों के कौतूहल तथा सस्ते मज़ाकों का लक्ष्य बनने लगता है। हिजड़े भी जवाबी हमला करने से बाज नहीं आते क्योंकि उनके गाहकों का मनोरंजन जो होता है; लेकिन जब पेट की ज्वाला सारा सिंगार धो-पोंछ कर उनके सामने एक प्रश्न-चिह्न खड़ा कर देती है, सूखी रोटी भी मृग-मरीचिका बन जाती है तब स्वाभाविक रूप से किसी भी चेतन मन में प्रश्न पैदा होता है कि क्या यह लोग मानव-परिवार की सहानुभूति और दया के पात्र नहीं ?

●

लक्ष्मीशंकर व्यास

भारतीय परिवार
और पर्यटकों का सम्मेलन

अतीत की यवनिका पर प्रसारित विदेशी पर्यटकों द्वारा अंकित भारतीय परिवार और जन-जीवन की चित्र-कथा।

आज एक अनोखे अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन था। यह सम्मेलन अनोखा और अभूतपूर्व इसलिए था कि इसमें भाग ले रहे थे चौथी शताब्दी से लेकर उन्नीसवीं शती तक के महान् पर्यटक; और सम्मेलन में होने वाली थी अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटकों की भारतीय पारिवारिक जीवन सम्बन्धी संस्मरण-गोष्ठी।

सम्मेलन का मण्डप और अष्टकोणात्मक रंगमंच अपने ही ढंग का बना था। इसकी पार्श्वभूमि में भारतीय परिवार की झाँकी कराने वाले विभिन्न युगों के कलापूर्ण रेखांकन थे। कदली स्तम्भों और आम्रपल्लव के वन्दनवारों के मध्य विविध रंगों और सुगन्धों के पुष्प-गुच्छक शोभा एवं सौन्दर्य की वृद्धि करते हुए सम्पूर्ण वातावरण को सौरभमय बना रहे थे।

घोषणा की गयी कि विभिन्नकाल के महान् पर्यटक अब रंगमंच पर पधारने वाले ही हैं। और यह लीजिए—मंच पर पर्यटकों का आगमन प्रारम्भ हो गया।

सबसे आगे थे यूनानी वेशभूषा धारण किये हुए **मेगास्थनीज** जो चौथी शताब्दी के अन्तिम चरण में सेल्यूकस निकेटर के राजदूत बन कर मौर्य-सम्राट चन्द्रगुप्त के राज-दरबार में आये थे।



गैरिक चीवरयुक्त उत्तरीय और उसी रंग का अधोवस्त्र धारण किये हुए गौरवर्ण के मुखमण्डल पर स्मित की रेखाओं से युक्त बढ़े चले आ रहे थे---**फाहियान।** ये पाँचवीं शताब्दी में गुप्त-स्वर्णकाल में सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय के समय विनयपिटक की मूल पुस्तक ले जाने के लिए भारत आये थे। आपके बाद थे, उसी गैरिक परिधान में **हुएनसांग।** ये सातवीं शती में सम्राट हर्षवर्धन के शासनकाल में आये थे।

इनके बाद आने वाले पर्यटक की वेशभूषा सबसे भिन्न थी। ढीला-ढाला एड़ी तक का पायजामा और लम्बा कुर्ता। कुर्ते के ऊपर चुस्त जाकेट और सिर पर पठानी ढंग का साफा। ये थे सुलतान महमूद गजनी के दरबारी विद्वान् **अलबरूनी** जो ग्यारहवीं शताब्दी के प्रथमार्ध में भारत आये थे।

और ये रहे मोरक्को निवासी महापर्यटक **इब्न-बतूता** जो चौदहवीं शती में उस समय हिन्दुस्तान आये थे जब दिल्ली में सम्राट मुहम्मद तुगलक की हुकूमत थी। इनकी वेशभूषा भी अलबरूनी से मिलती-जुलती ही थी। फर्क सिर्फ इतना था कि इनके सिर की पगड़ी का अलग ढंग था और शरीर के ऊपर था सफेद रंग का जमीन चूमता चोंगा।

इन पर्यटकों के बाद थे पैण्ट, कोट पहने और हैट लगाये फ्रेंच-पर्यटक **डाक्टर बर्नियर** जो सत्रहवीं शती के मध्य में मुगलकाल में भारत आये थे।

सबसे अन्त में थे बम्बई के निकट थाना जिले के **श्री विष्णु भट्ट शास्त्री गोडशे** जो पेशे से पुरोहित थे पर जिन्होंने १८५७ के स्वाधीनता संग्राम के दिनों में महाराष्ट्र से उत्तर भारत की पैदल यात्रा रोमांचक परिस्थितियों में की थी। शास्त्री जी दुपट्टा ओढ़े और चौड़े किनारे की धोती पहने हुए थे। मस्तक पर त्रिपुण्ड चमक रहा था।

\+ \+ \+

सभी पर्यटक सजे हुए रंगमंच पर अपना स्थान ग्रहण कर चुके थे। अब श्रोता साँस रोक कर अतीत के इन महान् द्रष्टाओं की आँखों देखी, शताब्दियों पुरानी, भारतीय पारिवारिक जीवन की अद्भुत किन्तु वास्तविक कहानियाँ सुनने को उत्सुक थे। और लीजिये, सम्मेलन प्रारम्भ हो गया...।

मेगास्थनीज---आज के भारतीय परिवार की तुलना में जब मैं मौर्यकालीन भारतीय परिवार की रीति-नीति सुनाऊँगा जो आपको भले ही आश्चर्य लगे, पर हैं वे मेरी आँखों देखी। उस समय भारतीय परिवार में सादा जीवन, उच्च विचार सच्चे अर्थ में दृष्टिगोचर होता था। मुझे अच्छी तरह स्मरण है---मेगास्थनीज कहते गये---उस समय के परिवारों में सहज स्नेह और सहयोग की भावना थी। वे एक दूसरे के पास धरोहर रख कर निश्चिन्त रहते थे। उन्हें न मुहर और न किसी साक्षी की आवश्यकता पड़ती थी। वे अपने घरों में न ताला लगाते और न धन-सम्पत्ति तिजोरियों में रखते। चोरी की घटनाएँ बहुत कम होती थीं।

अलबरूनी---बीच में बोलने के लिए माफ करेंगे मेगास्थनीज महोदय। आप मौर्यकाल के भारतीय परिवार की यह कहानी सुना रहे हैं या राम-राज्य की?

मेगास्थनीज---यह मैंने पहले ही अर्ज कर दिया

है मौलाना महोदय ! यह किस्सा नहीं हकीकत है और वह भी आँखों देखी । अब आपको उस समय के कुछ और रोचक तथ्य बताऊं । लोग अत्यन्त सुन्दर मलमल के बने हुए फूलदार वस्त्र पहनते थे । उनके वस्त्रों पर सोने का काम किया रहता था । वे मूल्यवान रत्नों से विभूषित रहते थे । लोगों को अपने सौन्दर्य का बहुत ही ध्यान था । अपने स्वरूप को सँवारने में सुरुचिपूर्ण प्रसाधनों का वे सदा-सर्वदा उपयोग करते थे । वे व्यायाम-प्रिय थे ।

मौर्यकाल में महिलाओं की स्थिति पर प्रकाश डालते हुए मेगास्थनीज ने बताया—आपको आश्चर्य होगा, आज से प्रायः ढाई हजार वर्ष पहले तलाक की प्रथा प्रचलित थी। स्त्री-पुरुष दोनों को यह अधिकार प्राप्त था । हाँ, उस समय स्त्रियों को आधुनिक युग जैसी स्वतन्त्रता प्राप्त न थी । स्त्रियों को प्रायः घर में ही रहना होता था । वे पति के आदेशानुसार ही चलती थीं । उस समय स्त्रियों का क्रय-विक्रय प्रचलित था। एक जुआ बैल देकर पुरुष, स्त्रियों को खरीद लेते थे ।

इसी बीच अलबरूनी बोल उठे—जब मैं सन् १००० ईस्वी में भारत आया था तो स्त्रियों की स्थिति आपके समय से बहुत उन्नत थी । उस समय हिन्दू लड़कियाँ बहुत शिक्षित होती थीं । वे खेल-कूद में भी भाग लेती थीं । कला-कौशल और संगीत से उन्हें स्वाभाविक प्रेम था । इतना ही नहीं, वे सभी प्रकार के सार्वजनिक कार्यों में भी भाग लेती थीं ।

अब फाहियान बोले—मेरे समय गुप्त सम्राटों का शासनकाल था । चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन में देश में सांस्कृतिक पुनर्जागरण हो रहा था । मैंने जो कुछ देखा-सुना उससे स्पष्ट था कि प्रजा का सार्वजनिक और पारिवारिक जीवन अत्यन्त सुखी था । लोगों में परस्पर विश्वास था । व्यवहार की लिखा-पढ़ी अथवा पंचायत की उस समय कोई आवश्यकता ही न थी ।

हुएनत्सांग—मेरे समय में सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों का कुछ ह्रास दृष्टिगोचर हो रहा था । जिस देश में चोरी और लूट का नामो-निशान न था वहाँ अब राजमार्ग निरापद नहीं रह गये थे । जन-जन में शिक्षा का प्रचार-प्रसार बढ़ रहा था । मगध में नालन्दा और अन्य शिक्षा एवं कला-शिक्षण के केन्द्र देश में ज्ञान का प्रकाश विकीर्ण कर रहे थे । परिवार के लोग सुखी थे और उनमें राजा की भाँति ही धार्मिक सहिष्णुता की भावना थी ।

इब्न-बतूता—अब मैं आपको चौदहवीं शती के भारत की, जब मुहम्मद तुगलक का शासन था, कुछ बातें बताऊँगा । मुलतान से दिल्ली यात्रा के बीच अनेक दिलचस्प किस्से मेरी निगाहों से गुजरे पर मैं आपको हिन्दू समाज और परिवार की एक ऐसी प्रथा का आँखों देखा हाल सुनाना चाहता हूँ कि आपको शायद रोमांच हो जाय । वह है भारत की नारियों की सती प्रथा । तीन स्त्रियाँ अपने पति की मृत्यु के अनन्तर सती होने वाली थीं । तीनों स्त्रियों ने तीन दिन पर्यंत खूब गाया और नाना प्रकार के भोजन किये । मानो वे संसार से विदा ले रही थीं । उनके पास स्त्रियों का जमघट था । चौथे दिन उनके पास घोड़े लाये गये, तीनों बनाव-श्रृंगार कर उन पर सवार हो गयीं । चारों ओर ब्राह्मणों और सम्बन्धियों

की भीड़ लग रही थी। आगे-आगे नगाड़े और नौबत बजते थे।

तीन कोस तक इसी प्रकार चलने पर वे ऐसे स्थान पर पहुँचीं, जहाँ वृक्षों की सघनता से अन्धकार छाया था। वहाँ मन्दिरों के निकट पहुँचने पर उन स्त्रियों ने स्नान किया। वस्त्र-आभूषण उतार दिये। मोटी साड़ियाँ पहन लीं। उसी समय कुण्ड के पास नीचे स्थल में अग्नि दहकायी गयी। सरसों का तेल डालने पर अग्नि से प्रचण्ड शिखाएँ निकलने लगीं। पन्द्रह पुरुष हाथ में लकड़ियों के गट्ठर लिये खड़े थे। नगाड़े, नौबत और शहनाई बजाने वाले स्त्रियों की प्रतीक्षा में खड़े थे। तीनों सती होने वाली स्त्रियाँ अग्नि को प्रणाम कर कूद पड़ीं। ऐसा हृदय-द्रावक दृश्य देख कर मैं मूर्छित होने लगा, पर मित्रों ने सँभाल लिया।

भारतीय नारियों के सती होने के इस रोमांचक वर्णन को सुन कर सभी स्तंभित से हो रहे थे कि सत्रहवीं शताब्दी में आने वाले **डाक्टर वर्नियर** ने भी इसकी पुष्टि की और बताया---मैंने भी अनेक हिन्दू नारियों को सती होते अपनी आँखों से देखा था। उस समय इसके पीछे एक पवित्र सामाजिक आदर्श था जो बाद में समाज का अभिशाप बन गया। मैंने अपनी यात्रा में भारतीय जीवन के बहुरंगी स्वरूप का भी निकट दर्शन किया था। उस समय मीना बाजार लगा करता था। उसमें जितनी दूकानें लगती थीं वह सब सुन्दर स्त्रियाँ ही लगाती थीं। राजा अपनी रानियों के साथ जब उस बाजार में जाता तो वे उन वस्तुओं के मूल्य खूब बढ़ा-चढ़ा कर बताती थीं। इसी प्रकार प्रत्येक दूकान पर सौदे का क्रम चलता था। बादशाह को जिस दूकान की वस्तु पसन्द आती वह मुँहमाँगा मूल्य देता था। इसे आप जो कहें, तत्कालीन भारतीय जीवन की यह भी एक झाँकी ही थी।

सबसे अन्त में **श्री विष्णु भट्ट गोडशे** ने सन् १८५७ की स्वाधीनता की लड़ाई के समय झाँसी के निरपराध लोगों की हत्या और लूट-मार का आँखों देखा विवरण सुनाया कि उस समय गोरों के अत्याचार से पृथ्वी काँप उठी थी। रात को ही लोग अपने-अपने परिवार सहित सुरंग या तहखाने में जाकर छिप जाते। गोरे कहीं दूर से भी दिखाई पड़ते तो जान बचाने के लिए लोग घास के गट्ठरों में छिप जाते थे। गोरे आकर घास में आग लगा देते थे और लोग जल कर मर जाते थे। किसी ने कुएँ में कूद कर डर से जान बचानी चाही तो वे लोग बन्दूक ताने कुएँ पर ही जाकर जम जाते और भीतर की ओर गोलियाँ छोड़ा करते। इस प्रकार गोरों के अत्याचार से हजारों-लाखों निरपराध भारतीय परिवार १८५७ में उजड़ गये थे। गोरों की लूट और हत्या का वह ताण्डव आज भी मुझे रोमांच उत्पन्न कर रहा है।

पर्यटकों का यह सम्मेलन समाप्त हुआ। विभिन्न युगों के सामाजिक और पारिवारिक जीवन की कहानियाँ इन पर्यटकों की जुबानी सुन कर श्रोता कभी आनन्दित, कभी पुलकित और कभी उत्तेजित हो उठते थे।

●

अतिथि

प्रश्न भी, उत्तर भी

० ठाकुर प्रसाद सिंह

"माँ, मेहमान तो आ गये; मैं मेहमान को खा जाऊँ !"

◉ ◉ ◉

संस्कृत के प्राचीन नाटक 'मुद्राराक्षस' में एक जगह निर्धन हो गये राक्षस ने कहा है कि उसे निर्धन हो जाने पर मंत्रित्व से वंचित हो जाने का उतना दुःख नहीं है जितना दुःख यह देख कर होता है, कि जो अतिथि कल तक प्रसन्नता पूर्वक उसके यहाँ आते थे वे आज रास्ता बचा कर केवल इसलिए निकल जाते हैं कि उनके जाने से उसे व्यर्थ ही कष्ट होगा।

\+ \+ \+

.....और मेरे परिचय देते ही मेरे दूर के मामा ने घर में घुस कर दरवाजा बन्द कर लिया। मैं तो अभी माँ का पूरा सन्देश भी उन्हें नहीं दे पाया था कि वह दो कोस दूर मेरी ननिहाल में बीमार है। रात हो गयी है; बरसात की रात और चन्दौली बाजार से गाँव तक पानी में डूबे रास्ते और खेत.....मैं सुबह होते ही भागूँगा....माँ बीमार है, क्या मैं......पर दरवाज़े के धड़ाक से बन्द होने की आवाज़ ने जैसे सन्नाटे में दरार बना दी है। इसके पहिले तो एकदम

सन्नाटा था और अब जैसे इस देश में करोड़ों मेढ़क, साँप और झींगुर एक साथ बोल पड़े हैं।

हलकी-सी चाँदनी है। पुराने ठाकुरों की कोट पर से धीरे-धीरे उतर कर बाजार में जाता हूँ। बाजार में तेल के दिये और थोड़े-से ऊँघते हुए लोग। ठंढे, भुने हुए चने लेकर नमक के साथ खाता हूँ और पानी पीकर रात काटने के लिए सहारा खोजने बाजार में घूमता हूँ। मन एकदम उदास हो गया है, माँ की बीमारी न होती तो दस वाली गाड़ी पकड़ कर लौट जाता! तभी बाजार में एक नया चेहरा देख कर दो-तीन लोग पास आ जाते हैं। लम्बे, ताक़तवर लोग, टीके से हाथ भर ऊँची लाठियाँ लिये।

'कहाँ जाओगे, बचवा?'—जैसे अभी गुड़ खाकर इधर आ निकले हों।

पर मैंने तो नमक से चना खाया था। 'ऐसे ही। कहीं जाना नहीं है।'—मैं कतरा कर स्टेशन का रास्ता पकड़ता हूँ पर वे घेर लेते हैं।

गाँव का नाम बता कर बढ़ूँ तब तक 'किसके यहाँ जाना है'—नया प्रश्न।

मैं क्रोध में आकर तीन पीढ़ियों के नाम लेकर आगे बढ़ता हूँ पर इस बार और मुश्किल है।

'तो तुम बाबू लाल बहादुर सिंह के नाती हो, फलनियाँ के बेटा'.....सबसे तगड़ा आदमी रोने-रोने हो जाता है।

मैं उनका क्या करूँ?

'बाबू लाल बहादुर सिंह राजा थे, इस जवार के शेर थे। जब खाना खाकर गला साफ करते तो इस बाजार में सुन पड़ता था। वे क्या उठ गये, चाँदी की डार कट गयी। अनाथ कर गये बाबू लालू सिंह। हाय, हाय बेटा, तुम कहाँ जा रहे हो इस पानी-बाहा में।'

मुझे हाल ही में मरे नाना की याद आ गई। रुँआसा-सा मैं कोटवाली घटना दुहरा गया।

उन लोगों ने लाठियाँ पटकीं, गालियाँ दीं और वे ललकारते हुए कोट की ओर चले। बड़ी आरजू-मिन्नत करने पर किसी तरह वे रुके।

अब क्या हो?

'चलो तुम्हें कहीं सुला दें।' वे एकाएक तत्पर हो उठे। बाजार के ही एक घर में जब मैं मन मार कर सोने की कोशिश कर रहा था तब थाने के घड़ियाल ने टन-टन करके दस बजाये।

सुबह हमारे और हमारे आतिथेय के संघर्ष से बाजार में कुहराम मच गया।

आतिथेय का कहना था कि रात को वे लोग—यानी मेरे नाना के लिए रात को रोने वाले लोग—जितना रुपया उससे ठग ले गये उसका आधा भी इस फटीचर की जेब में नहीं है। कौन विश्वास करेगा कि मैं लाल बहादुर सिंह का नाती हूँ!

उसने मेरे परम पूज्य नाना को इतनी गालियाँ दीं कि तबीयत हरी हो गयी। आखिर गलती भी तो उन्हीं की थी। वे मेरे नाना क्यों हुए? न वे नाना होते न मेरे बारे में इन गरीबों को धोखा होता। बाजार के लोगों ने परम कृपा करके मुझसे डेढ़ रुपये लिये और उस गरीब की आँखें पोंछीं।

ननिहाल पहुँच कर मैंने थोड़ी बात कही, थोड़ी पेट में रख ली। नाना के लड़कों को कष्ट होता तो मुझे भी अच्छा न लगता। वे मेरे मामा ही तो थे!

'मुद्राराक्षस' पढ़कर यात्रा पर कभी न

निकलूँगा। बड़ा मनहूस नाटक है।

\+ + +

एक बात और कहूँ :—

साईं इतना दीजिए जामें कुटुम समाय
मैं भी भूखा न रहूँ साधु न भूखा जाय

गझनार पेड़ के नीचे दोपहरी में लेटा गाँव-घर के विषय में बड़े ही उदास मन से सोच रहा था। बूढ़े ठाकुर सुतली बटते हुए बातें करते जा रहे थे। संतुष्ट गृहपति के बच्चे सिंगापुर, बनारस में थे, गाँव में साधारण खेती थी। दरवाजे पर जामुन का पेड़ था। लड़कों का कुहराम बरसात में व्याकुल कर देता था।

शाम को दरवाजे पर दो-एक जन उपले दगा कर खाना जरूर बनाते थे। जिस दिन कोई न आवे वे उदास हो जाते थे। उनके घर के भीतर शाम को उपलों का धुआँ घुसे तो उसे लक्ष्मी का आगमन मानते थे। बरामदा पक्का था, छोटे बच्चों ने खूब सावधानी से चुन-चुन कर दोहे लिखे पन्ने दीवारों पर चिपका रखे थे। गाँव की संस्कृति संतों के दर्शन पर, उनकी उपमाओं पर, काव्य में आने वाले उनके बिम्बों पर छतनार पेड़ की तरह छायी रहती है। इन दोहों से सजी यह लम्बी बैठक मुझे अमराई ऐसी शीतल लग रही थी। मन में वह चित्र आज भी एक ओर टँका हुआ है।

उसी दरवाजे बीस वर्ष बाद आकर खड़ा हुआ तो पूरा मैदान नये-नये मकानों से भर गया है। परिवार बड़ा हो गया है। दूसरी पीढ़ी ने मालिकाना सँभाल लिया है। विवाह के बाजे बज रहे हैं और हाथी झूम रहे हैं।

भीड़-भाड़ में अकेला छूट गया मेरा मन उस पुराने जामुन और बैठके को खोजता है। हटकर मैं अन्दाज़ से उस ओर जाता हूँ और कई बरसातों की मार से जर्जर लम्बी दालान के सामने खड़ा हो जाता हूँ। धरनें गिर गयी हैं और दीवारों पर मिट्टी और पानी की धारें बन गयी हैं। सारा बरामदा खण्डहर हो गया है; इतने नये मकानों के बीच लज्जित, संतप्त, परीशान। कागज़ पर लिखे दोहे मिट्टी गिरने से लिप-पुत कर कभी के बह गये होंगे—२० वर्ष हो भी तो गये।

जामुन भी नहीं है।

मुझे बूढ़े ठाकुर का चेहरा याद आता है। जैसे वे उदास हों—उनका विश्वास ही खण्डहर हो गया हो।

रात को इस बैठके की दुर्दशा की चर्चा चलायी।

बाबा का बैठका सबका है। फिर कौन उसे बनवाये? बाबा का विश्वास उनका था कौन उसकी रक्षा करे?

उदास मन से दूसरे दिन गाँव के बाहर बारी में घूम रहा था। वह भी खाली हो गयी थी; पेड़ इने-गिने इधर-उधर।

तभी शोर मचा और एक बूढ़े साधू को खदेड़ते हुए पिछले पुरवे के जसवीर सिंह बारी में घुसे। लोग हाँ, हाँ करके खड़े हो गये।

भिक्षा के निमित्त साधू महाराज जब जसवीर सिंह के यहाँ पहुँचे तो वे बाहरी आँगन में गेहूँ सूखने के लिए फैला रहे थे। वहीं से ललकार उन्होंने लड़की से मटर लाकर भिक्षा देने के लिए कहा।

साधू महाराज इसी पर आग हो गये, उन्होंने चिल्ला कर कहा—

'और यह गेहूँ किस दामाद के लिए

सुखवा रहे हो ससुरऊ ??'

......आधे मील से दौड़ कर आने से बुड्ढा साधू हाँफ रहा था। ठाकुर जसवीर ने इतनी कहानी कही और पुनः याद हो आये अपमान से खौंखिया कर झपटे।

लोगों ने रोक लिया।

साधू महाराज अब तक बात कर लेने इतनी साँस सँभाल चुके थे। पीछे हट कर चीखे--

'निराल सधुक्कड़ी मत जनिहऽ बचऊ। हमहूँ ठकुरे कऽ औलाद हई। सन्तोषी सिंह सन्तोषदास हो गइलैं त का ठकुरई कत्तौं चल थोड़े गइल हौ!'

मुझे हँसी आ गई। आर्थिक विपन्नता या पारिवारिक दिक्कतों के चलते सन्तोषदास साधू भले हो जायँ पर उनके भीतर का सिंह अभी भी समझौता करने को तैयार नहीं है।

+ + +

आतिथ्य, दान या साधु-सेवा की वेदों में बड़ी चर्चा है; बाद में भी भारतीय गृहस्थ की गरिमा इसी में समझी गयी कि वह अपनी मुक्ति और मुक्ति के लिए अपने द्वार निरन्तर इनके लिए उन्मुक्त रखें। अथर्ववेद की प्रसिद्ध उक्ति 'कृतं में दक्षिणे हस्ते जयो में सव्य अहितः' के अनुसार दाहिने हाथ से किये हुए कर्म का फल तुरन्त बायें हाथ से मिल जाता है, इसलिए हमेशा ऐसे सत्कर्मों में प्रवृत्त रहना चाहिए। इससे जातक के अनुसार 'तेन सो कित्ति पधोति पेच्च सग्गे च मोदति' जीवित रहने पर यश और मरने पर स्वर्ग भी प्राप्त होता है। इसीलिए वैदिक ऋषि, अतिथिदेव को बुलाता है, 'आप प्रेम पूर्वक इन घरों में पधारिये, डरिये मत। दूध तथा रसमय अन्न की यहाँ कमी नहीं है। हम यहाँ हैं ही, आप सुखपूर्वक विश्राम कीजिये।'

अतिथिशाला, आसवथ, निषिधा, निसि-दिया, एक सालिका--अतिथियों के लिए बने भवनों के उल्लेख वेद, जातक, पाणिनी तथा अशोक के लेखों में आये हैं। श्रावस्ती का तिन्दुक नाम का बाग पहले एक सालिका था, बाद में रानी मल्लिका ने उसे सभी अतिथियों के लिए करके बहुसालाकता कर दिया।

हाँ, इस बात का ध्यान तब भी था कि अतिथि उपयुक्त हो और गृहधर्म की मर्यादा की रक्षा उसके आतिथ्य से बनी रहे। दुष्ट, अयोग्य और भण्ड फेरी लगाने वालों से सावधान रहने के उल्लेख भी मिलते हैं।

मृगचर्म ओढ़ कर घर में घुस आने वाले बन्दर को भगाने की चर्चा भी जातकों में है। वहीं एक ऐसे अतिथि का उल्लेख भी है जो महीनों तक गृहस्थ की छाती पर सवार था और किसी तरह एक दिन हटाया भी गया तो बालों में उलझ कर चले गये तिनके को लौटाने के बहाने शाम तक फिर लौट आया।

मध्ययुग से होते हुए आज तक किसी न किसी रूप में यह आतिथ्य भावना बची हुई चली आयी है अवश्य, पर आज के बदलते आर्थिक ढाँचे के चलते सब कुछ वैसे ही नहीं रहेगा। संयुक्त परिवार, बड़े गृहस्थ-कुल तथा कृषि पर आधारित वर्ण व्यवस्था--सब नये दबावों में टूट कर छोटे व्यावहारिक परिवार, सहकारी खेती-बारी तथा समान जीवनमान के नये स्वरूप में परिवर्तित होते जा रहे हैं। पुरानी संस्थाएँ अव्यावहारिक होती जा रही हैं इसलिए जल्दी ही गाँवों में दरवाजों पर पड़े पुराने पत्थर के कोल्हुओं, पालकियों की तरह ये भी मलवे में दाखिल हो जायेंगी। संचरण साधनों के विकास ने शहरों को नजदीक कर

दिया है, गाँवों की दूरियाँ कम कर दी हैं तथा बढ़ते हुए व्यापार तथा सामाजिक चक्र ने जन-संचरण में इतनी प्रगाढ़ता ला दी है कि नगरों में रहने वाले लोगों को पूर्वजों की यह अतिथि-सत्कार की परम्परा दिनोंदिन असह्य होती जा रही है। बड़े शहरों में एक कमरे या दो कमरे के फ्लैट में रहने वालों के हृदय में चाहे जितना भी स्थान हो पर निरन्तर आने वाले अतिथियों के लिए वे अपने छोटे निवास में प्रत्यक्ष स्थान की व्यवस्था नहीं कर सकेंगे, यह तय है। साधु-सन्तों की संस्था के मुरझाने के दिन तो आ ही गये हैं, शहरों में इन्हें मध्यकालीन वेश बनाये घूमते देखने का सुख धीरे-धीरे खतम होता जायेगा। गाँवों में स्थिति ऐसी है कि हर समस्या का सामूहिक समाधान ढूँढ़ने का शोर मचा है। लेकिन ऐसा तो नहीं होगा कि अतिथियों के लिए अलग विभाग खुल जायँ। भिक्षुओं के लिए तो 'रैन-बसेरा' हो गया—— अभी शहरों में, गाँवों में फिर देखा जायगा। पर बेचारे अतिथि किसके घर जायेंगे? पुराने रिश्ते खतम हो गये हैं, कुल खण्डित हैं इसलिए साव-धानीवश गाँवों में संयुक्त परिवार जब बँटने लगते हैं तब ज्येष्ठ भाई को अलग से थोड़ी सम्पत्ति 'जेठंसी' करके हिस्से से अधिक दी जाती है। इसके बल पर वह पुराने रिश्तों, अतिथियों तथा धर्म-कर्म का निर्वाह करता है। लेकिन २० वर्ष बाद जिस बँटे हुए परिवार में मैं पहुँचा था उसमें जेठंसी वाले उतने उदार से मुझसे नहीं मिले जितने छोटे भाई। मेरे अपने परिवार में सारे झगड़े उसी सम्पत्ति पर खड़े हैं जो परम्परा से इस कार्य के लिए 'जेठंसी' में मेरे जिम्मे आयी है। पुराने रिश्ते और रोज के अतिथि कितना ले जाते हैं इसका हिसाब तो खैर कभी किया नहीं पर उनसे मिलने वाला सुख भी अतुलनीय ही रह गया।

लेकिन जल्दी ही जेठंसी और यह सुख दोनों कल्पना की वस्तु होकर रहेंगे।

अतिथि या मेहमान परिवारों में आज तो विपत्ति ऐसे लगने लगे ही हैं पर इनकी इज्जत वैसे भी बराबर खतरे में रही है। पूरब-पश्चिम में ऐसी कितनी ही कहानियाँ प्रचलित हैं जिनमें मेहमान को अन्ततोगत्वा अर्धचन्द्र तक की नौबत झेलनी पड़ी है।

एक कहानी है जिसमें एक ऐसे परिवार का वर्णन है जो अतिथि को खिलाये बिना भोजन नहीं करता था। एक दिन उस घर में कोई मेहमान नहीं आये, लाचारी हालत में शक्कर (खाँड़) के मेहमान बना कर उन्हें ही भोजन समर्पित करने का निश्चय किया गया। खाँड़ के मेहमान बन कर तयार ही हुए कि एक मेहमान ने दरवाज़े पर आवाज़ लगायी। घर वाले प्रसन्न हो गये और उन्होंने बड़े ही आदर से उन्हें बिठा कर खाना परोस दिया।

इसी बीच छोटे लड़के ने माँ को पीछे से कोंचा। 'क्या है रे?' माँ ने डाँटा पर लड़का हठ साधे था 'माँ, मेहमान तो आ गये, कहो तो मैं मेहमान को खा जाऊँ?'

कितना हूँ धीरे से कहा था बच्चे ने पर आसन पर बैठे मेहमान ने उसे सुन ही लिया और उसके प्राण सूख गये।

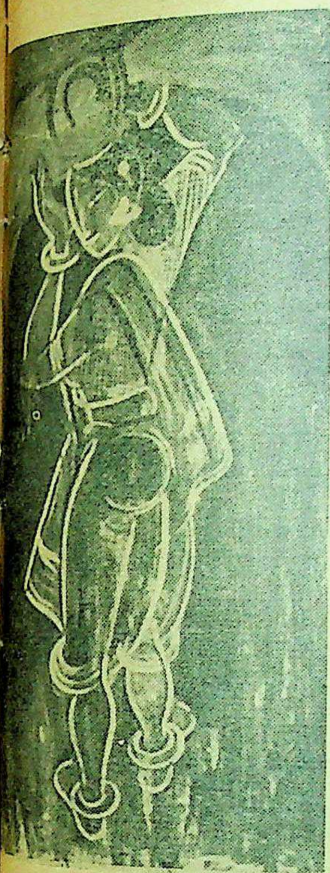
उसे क्या पता लड़का खाँड़ के मेहमान को खाने जा रहा था!

पर यह तो पुराने लड़कों की बात थी। नये लड़के कहीं सचमुच के मेहमान को ही न खा जायँ?

मेहमानों को समय रहते चेत जाना चाहिए।

◎ ◎ ◎

डॉ० शिवप्रसाद सिंह



गीत की पहली पंक्ति बुधिया के कच्चे गले में पूरे आरोह पर चढ़ कर टूट गई, तभी सुधिया के कंठ ने अँजुरी बढ़ा कर राग के टूटे हुए फूलों को संपुट में झेल लिया......और श्रोता की कल्पना में लहराने लगा एक सागर जिसके एक तट पर है देव-गणों की जागरूक दृष्टि में केन्द्रित ऋग्वेद के यम-यमी और दूसरे पर है युद्धाहत रोगियों की परिचर्या के लिए उन्मुख गतिशील ज्योति। परिवार की केसर-क्यारी की सुवास-वाहिनी—ये बहनें!

⊙

दरवाजे के सामने चबूतरे पर चारपाई थी और उस पर साफ चादर की तरह बिछी हुई चाँदनी। चाँदनी काफी चटख थी, पर गर्मी के आसमान में फैले धूल के मटमैले चँदोवे से छन कर आने की वजह से वह थोड़ी धूमिल हो गई थी—फालसई रंग की। मैं चारपाई पर लेट कर उस चाँदनी के भीतर पूरी तरह खो जाना चाहता था, शायद इसी से कुछ गर्मी का ताप कम हो सके—हल्की-हल्की झपकी आने लगी थी—तभी एक अछूता-सा कुँवारा स्वर—आगे फैले सपाट मैदान के पूरे सन्नाटे को बेधता मेरे इर्द-गिर्द मड़राने लगा—एक क्षण ही बीता होगा कि गीत की पहली पंक्ति कच्चे गले में पूरे आरोह पर चढ़ कर टूट गई तभी दूसरे कंठ ने अंजुरी बढ़ा कर राग के टूटे हुए फूलों को सम्पुट में झेल लिया। ओः....तो दीना चमार की दोनों लड़कियाँ हैं ये! बुधिया-सुधिया। कितनी गन्दी, काली हैं दोनों पर अँधेरे के पर्दे में छिपे इनके कंठ की आवाज़ कितनी मीठी है। दूध की तरह कितनी उजली है। कितना कम्पन है इसमें—

लौटि आवऽऽ लौटि आवऽऽ फूलमती बेटी-ी-ी हो—
बेटी नाहीं होइहैं तोहरो विआह
नइया दूर गई

यम - यमी, फूलमती और सिस्टर

कौन जा रहा है? किसकी नइया बेबसी के समुद्र में अनचाहे भी बढ़ी जा रही है। कौन हैं वे जो किनारे खड़े होकर अलंध्य जलराशि की गोद में जाती फूलमती को देखकर हृदय की सारी आकुलता कंठ में बसाये लौटने की पुकार दिये जा रहे हैं? और तभी जैसे मेरे मन की घुमड़ती सारी शंकाओं को धकेलती हुई राग की लहरें टूट-टूट कर बिखरने लगीं——

कइसे के लौटि आईं अम्मा हो——

अम्मा आजि अम्मा कालिह होइबू सासू हमार..

नइया दूर गई......

मैं इस राग को सुन कर चौंक पड़ता हूँ। लाख कोशिश करने पर भी तन्द्रा में खो पाना मुश्किल है। सारी स्वरमोहिनी मेरे मन के एक झटके से टूट जाती है। भाई-बहन का ब्याह——जाने किस विस्मृत युग के नष्ट-भ्रष्ट इतिहास का पन्ना है यह! नये मकान बनाने के लिए नींव खोदी जा रही है। आलीशान आधुनिक ढंग के नये मकान——और नींव में यह क्या दबा है! कुदाल से टकरा कर हड्डी का एक लम्बा-चौड़ा कंकाल बाहर आ जाता है। जाने किस समुद्र का अवशिष्ट जल है वह जो सदियों की रेत के नीचे दबा-दबाया अभी भी बचा हुआ है।

तब क्या था, पता नहीं? समुद्र अवश्य था चारों तरफ। सृष्टि में सबसे विस्तृत अंश उसी का था। क्योंकि किसी बलवती इच्छा के वशीभूत होकर विवेक खो देने पर भी यमी को समुद्र की याद न भूली। नील आकाश के नीचे नील जलराशि का अपार पारावार——जब लहरें उठतीं तो पूषा की किरणें उस पर हिरण्यगर्भ का एक नया आवरण डाल देती थी——जिसकी चमक में सब कुछ सुनहरा लगता——। नील-पीत वरुण लोक। पृथ्वी पर घन जंगल थे। मनुष्य वनचर का जीवन व्यतीत करता था, तब उसकी लालसाएं उलझनों के आवरण में लिपटती नहीं थीं, और न उन्हें व्यक्त करने में वह कभी संकोच का अनुभव ही करता था। मधुवात और मधु-जल के बीच पली यमी एक दिन प्रकृति के अपरूप सौन्दर्य से विमुग्ध, किसी नयी भावना से आक्रान्त हो उठी——उसने अपने भाई यम को 'प्राणों का सखा' कह सम्बोधित किया और हृदय की कस्तूरगंधी तीव्र वासना से प्रेरित होकर बोल उठी——

"हे यम, मैं इस विशाल समुद्र के मध्य तुमसे मिलना चाहती हूँ। तुम माता की कोख से उत्पन्न मेरे जन्म के सखा हो।"

"हे यमी, मेरी शहोदरा, प्रजापति के स्वर्गलोक के देवगण विचरते हुए हमें देख रहे हैं।"

"यम, देवताओं को अपना इच्छित करने की सामर्थ्य प्राप्त है, इसीलिये तुम मेरी इच्छा को पूरी करो।"

"यमी, मैं सत्यभाषी, तुमसे कहता हूँ सुनो, सूर्यलोक के निवासी जलधारक आदित्य हमारे पिता और वहीं वास करने वाली योषा हमारी माँ हैं।"

"हे यम, सबके आत्मारूप प्रजापति ने हमें जन्म से ही साथी बनाया है। आकाश और पृथ्वी भी हमारे इस जन्म सम्बन्ध को जानते हैं, अतः प्रजापति के कर्म को कोई अन्यथा करने में समर्थ नहीं है।"

"हे यम, प्रथम दिन के आचरण को जानने वाला कौन है! उसे किसने देखा है! मित्रावरुण के महान धाम के बारे में तुम क्या जानते हो? हे यम, जैसे रथ के दोनों चक्र एक कार्य म प्रयुक्त होते हैं, वैसे ही

हम समान मति वाले समान कार्य को करें।"

"हे यमी, देवताओं के दूत सदा चैतन्य रहते हैं, उनके लिए दिन-रात की कोई बाधा नहीं है, अतः तुम मेरे पास से दूर हो जाओ। दिन-रात्रि में यम के यज्ञ-भाग को यजमान प्रदान करें। सूर्य का तेज यम को तेजस्वी बनाये, यम की बहन भाई से दूर चली जाए।"

"हे यम, जिस भाई के रहते बहन अनाथ रहे वह कैसा भाई है!"

"यमी, मैं तुम्हारे स्पर्श से दूर रहना चाहता हूँ।"

"हे यम, तुम दुर्बुद्धिवाले हो, मैं तुम्हारे मन को समझ नहीं पाती।"

"यमी, बस चली जाओ, इसी में हमारा-तुम्हारा कल्याण है।"

---ऋग्वेद, १०।१०

भाई-बहन के बीच का यह सम्वाद मानव परिवार की प्रथम विजय का घोषणा-पत्र था। मनुष्य-मनुष्य के बीच पनपते हुए अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों का नया मंत्र था। भाई-बहन के सम्बन्धों की दिव्यता की ओर संकेत करने वाला यह नया रत्न था, इसी कारण ऋषियों ने इसे ऋग्वेद की मंत्र-मंजूषा में प्रतिष्ठित कर दिया।

मानवीय कल्याण, सुरुचि और पवित्रता के उद्देश्य से यम ने जो अग्नि प्रज्ज्वलित की, उसने सदियों से हमारे मन में व्याप्त अन्धकार को दूर किया है। इस तपश्चर्या में तप कर यम का हृदय कुन्दन की तरह चमक उठा...और यम-यमी से यम-यमुना तक फैली हुई विकसित भारतीय संस्कृति साक्षी है कि यमी ने यमुना के रूप में अपने भाई के भ्रातृत्व की रक्षा करने का अद्भुत कार्य पूरा किया... यमुना का "भैया दूज" इतिहास की एक नई घटना बन गया। यम-यमी के अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध के पीछे एक निगूढ़ अर्थ छिपा है। यम तो यमी का भाई है। उसके प्रति उसके मन में स्नेह, ममता, प्रेम का होना नैसर्गिक है। किन्तु भगिनीत्व की परीक्षा तो दूसरों के प्रति अर्पित सेवा में है। जो दूसरों को अपना परिवार बना ले वही बहन है। और जो जितने बड़े समूह को अपनी निःस्वार्थ सेवा, ममता और प्रेम के बन्धन में बाँध सके, वह उतनी ही महान् है। भगिनी अथवा 'सिस्टर' शब्द के पीछे अनहेतुक निःस्वार्थ बलिदान की यही अद्भुत भावना अन्तर्निहित है।

भारतीय पारिवारिक जीवन की अच्छाई-बुराई का अनुमान लगाना हो तो इस भगिनी अथवा बहन शब्द के व्यापक गूढ़ अर्थों की व्याख्या जरूरी है। भारतीय परिवार में 'बहन' मेरुदण्ड है। वह मर्यादा, सौन्दर्य और ऊँची प्रेम-साधना की जीवित प्रतिनिधि है। हो सकता है कि सृष्टि के आदिकाल में, मातृसत्ता के परिवार में, स्पर्धा और शक्ति-परीक्षा के क्षेत्र में वह एक उग्र-प्रतिद्वन्द्वी रही हो, किन्तु सत्ता को हस्तगत करने की उन सारी चेष्टाओं को वह बहुत पहले छोड़ चुकी है---समाज और परिवार की स्वस्ति के नाम पर। एक घर में जन्म लेना, पलना, बढ़ना और फिर किसी सामाजिक नियम को मान कर दूसरे स्थान पर ब्याह कर चले जाना, यह एक बहुत बड़ा बलिदान है: अपनी ममता, सेवा और कर्तव्य-परायणता के बल पर दूसरे परिवार में आदर और स्नेह का भाग पाने भर से उस बलिदान का महत्त्व कम नहीं हो जाता। असल में, बहन बलिदान का ही समानधर्मा है। हमारा परिवार

बहनों के इसी बलिदान पर टिका हुआ है। ज्यों-ज्यों 'बहन' के व्यक्तित्व में दिव्यता और गरिमा का समावेश होता गया, उसकी रक्षा और मर्यादा का प्रश्न भी विकट रूप लेता गया। एक ओर वह जिस घर में जन्मी, उसके सदस्यों के हृदय में उसने मर्यादा और संयम के फूल बोए...दूसरी ओर जहाँ वह गई वहाँ उसने अपने परिवार की प्रतिष्ठा को सर्वोपरि स्थान दिया। समाज में उसे दूसरों से आदर-सम्मान इसलिए मिला कि वह हर व्यक्ति को, निकट का हो या दूर का, व्यापक 'बहिन धर्म' की याद दिलाती रही। जिस भी घर में बहनें हुई उसके परिवार का सदस्य दूसरे की बहनों के सामने नतमस्तक हो जाने की शिक्षा अपनी बहन से ही पाता रहा। यही नहीं बहन के महत्त्व का सूत्र हर संकट से नारी जाति की रक्षा का सन्देश भी हमें सुनाता रहा। पुरुष वर्ग ने इस सर्वस्व बलिदान देने वाली नारी पर श्रद्धा के फूल चढ़ाने में भी कभी कमी न की।

राणा सांगा का भयंकर शत्रु बाबर रानी कर्णावती को भूला न था। किन्तु उसे विश्वास था कि बाबर का लड़का हुमायूँ उसकी राखी के धागों का बन्धन तोड़ नहीं सकेगा। और भारतीय वातावरण में जन्मे हुमायूँ ने उस राखी के बन्धन को सहर्ष स्वीकार कर लिया। स्वजातीय बहादुर शाह के आक्रमण से शत्रु-गढ़ चित्तौड़ की रक्षा के लिए वह अविलम्ब रवाना हो गया। बहादुर शाह को हरा कर जब वह चित्तौड़ के किले में घुसा तो जौहर की चितायें जलीं। कर्णावती की राख को माथे से लगाते समय उसकी आँखों से आँसुओं की धारा उमड़ पड़ी......

भगवानदास की बहन जोधाबाई ने भी एक बलिदान ही किया था...बृहत्तर हिन्दू परिवार के लिए। विदेशी, विजातीय और विधर्मी को कन्या ब्याह देना बुद्धिमत्ता थी अथवा भीरुता! इसे बहुत से विद्वान् बलिदान मानते हैं।

"सैकड़ों-हजारों राजपूतों का बलिदान न देकर अकेली अपनी ही देह का बलिदान देने में बुराई क्या है? इस्लाम धर्म यदि इस देह को पाकर प्रसन्न होता है, तो जन-साधारण की भलाई के लिए उसे देने में क्या हर्ज है? एक राजकुमारी को ऐसा विचार आया। कुटुम्ब की, प्रजा की और सैनिकों की मारकाट को रोकने के लिए यदि कोई राजकुमारी चिता में जलकर प्राण दे दे तो लोग उसकी प्रशंसा करते हैं, फिर परधर्मी के साथ बलात्कार से होने वाला लग्न अक्षम्य क्यों है? ऐसा लग्न भी तो एक प्रकार का अग्नि स्नान ही है"--गुजरात के सुप्रसिद्ध कथाकार रमणलाल देसाई ने "पहाड़ के फूल" उपन्यास में जोधाबाई के बलिदान की इन शब्दों में अभ्यर्थना की है।

कल्याण और सौभाग्य की यह पारिवारिक सदिच्छा सर्वस्व बलिदान कर देने वाली 'भगिनी' के रूप में मूर्तिमान हो उठी। 'सिस्टर' शब्द की आज जो भी दुर्गति हो, उसके मूल में विश्वव्यापी कल्याण की एक अनुपम अर्थवत्ता छिपी हुई है। आज 'सिस्टर' अन्तर्वैयक्तिक मर्यादाहीन सेक्स का आवरण बन गया है...किन्तु आवरण की शक्ति ही क्या उसके पवित्र अर्थ की अभिव्यंजना नहीं करती? आश्चर्य तो यह देख कर होता है कि 'सिस्टर' शब्द संसार की सभी भाषाओं में किसी न किसी रूप में विद्यमान है। पुरानी अंग्रेजी में Sweoster, डच

भाषा में Zuester, जर्मन में Schwester, मध्यकालीन अंग्रेजी में Suster, स्कैण्डेनेवियन में Systir, स्वीडेन भाषा में Systor, लैटिन में Soror, और इन सब का मूल कहाँ है! इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका देखिये और मूल स्पष्ट हो जायेगा। मूल में है संस्कृत शब्द स्वसृ। जिसका अर्थ अमरसिंह से पूछिए। सुष्ठु अस्यति अस्यते वा। सौष्ठव। स्वस्ति। अर्थात् जिसके कारण कल्याण हो, सौष्ठव हो।

और एक दिन ऐसा भी आया कि पारिवारिक कल्याण जन-जन का कल्याण बनने के लिए मचल पड़ा। युद्ध, दैवी प्रकोप, समय-समय पर अपनी सारी उग्रता के साथ उपस्थित होने लगे...और इसका पहला घनघोर अन्धकार क्रीमिया-युद्ध के समय प्रकट हुआ। हजारों घायलों की चीत्कार से आसमान भर गया। तत्कालीन ब्रिटिश रक्षा मंत्री सिडनी हरवर्ट युद्ध क्षेत्र से आने वाली खबरों से परेशान हो गए। कहाँ हैं वे देवदूत जो मृत्यु की घाटी में जाकर घायलों की सेवा करें! कहाँ है ऐसी तपोमूर्ति त्यागी बहन जो मजलूम, दुःखी और अपंग लोगों के घावों पर ममता की पट्टी बाँध सके! कौन पिता अपनी कन्या को ऐसे कष्टपूर्ण स्थान में जाने की आज्ञा देगा...कौन भाई अपनी बहन से रक्त की नदी में प्रवेश करने का आग्रह करेगा...शायद इस देश में ऐसी लड़कियाँ नहीं रहीं, जो वेदना और दुःख की पुकार को सुन सकें!...दुःखी लोगों की पुकार पर अपना सब कुछ, सुख, सौन्दर्य, प्रेम-प्रणय, उल्लास-विलास छोड़ कर युद्ध भूमि में जाने को कौन तैयार होगा?

और तब इस निराशा-मायूसी के अंधकार को चीरती हुई एक ज्योति रेखा चमक उठी—विलियम एडवर्ड की इकलौती पुत्री फ्लोरेंस—घायलों की सुश्रुषा के लिए अपने बलिदान करने को आगे बढ़ी। स्कुतारी में घायलों के अस्पताल में अँधेरी दालानों में हाथ में लैम्प लेकर इस शैय्या से उस शैय्या के पास चलती हुई उस महान नारी मूर्ति को कौन भूलेगा! ममता की इस प्रतिमा की झलक लांगफेलो की बूढ़ी आँखों में झाँक कर देखिए :

मैं सोचता हूँ...रात में ज्यों-ज्यों पढ़ता हूँ
खबरें, हजारों घायलों की,
खाइयाँ, कुहरा, सील और उनमें जमे हुए
बर्फीले कैम्प।
युद्ध क्षेत्र से लाये हुए हजारों मुर्दे, अधमुर्दे
उस उदास गलियारे में भरे हुए
पत्थरों के सख्त फर्श पर फेंके हुए।
आह, वह देखो उस पीड़ा के घर में कौन है वह
हाथों में लैम्प लिए
घोर अँधेरे में
इस कमरे से उस कमरे को जाते हुए
खुशियों के ख्वाब-से धीमे
जब उसके साये दीवालों पर फिसलते हैं
तब पीड़ा से व्याकुल
अनबोले घायल उसे चूमने को
करवटें बदलते हैं।

—सान्टा फिलोमीना

यह है दुखियों का अछोर परिवार और यह है उस परिवार की स्वामिनी, जिसके बलिदान को अपनी अनन्य श्रद्धा के फूल देते हुए अनाथों ने, अपाहिजों ने, सभी ने एक स्वर में पुकारा—'सिस्टर'।

●

आप इन कृपालुओं को अच्छी तरह जानते हैं। आपने भी अपने भाग्य को सराह कर अक्सर कहा है—"हमारे भी हैं, मेहरबाँ कैसे-कैसे!"

एक सज्जन अपने मित्र के घर पहुँचे। मित्र की नई शादी हुई थी सो महाशय की हार्दिक इच्छा थी कि मित्र की पत्नी देखी जाए और दाव चले तो उनके हाथ का मोहनभोग भी खा लें। दरवाजे पर पहुँचे तो अन्दर से बन्द और भीतर से पकौड़ियाँ तलने की खुशबू आ रही थी। टाई की नाट ठीक करते हुए अपने मित्र को आवाज़ लगाई तो कोई जवाब नहीं। कुंडी खटखटाने में कुछ तेजी आई तो अन्दर से दबी आवाज सुन पड़ी, "वह बाहर गये हैं।"

अपनी आवाज में मिठास घोलते हुए सज्जन बोले, "मैं उनका मित्र हूं भाभी जी, दरवाजा खोलिये।" पर भाभी जी चुप। महाशय पाँच-दस मिनट इस इन्तजार में खड़े रहे कि शायद "खुल जा सम-सम" की तरह नवेली दुल्हन की झलक और पकौड़ियों की तश्तरी लिये दरवाजा खुल जाय पर वह कम्बख्त बर्फ की तरह जम गया। निराश महाशय बड़बड़ाते पकौड़ियों की खुशबू सूँघते लौट पड़े।

अगले दिन जब मित्र से मिले तो पारा १०६ डिगरी पर। तमक कर बोले, "तुम बड़ा अपमान कराते हो जी लोगों का! कल आधे घंटे तक हम तुम्हारे दरवाजे पर भिखारियों की तरह कुंडा खटखटाते रहे पर तुम्हारी श्रीमती जी ने कुंडा खोला ही नहीं।"

मित्र मज़ाकिया थे, बोले, "भिखारी कुंडा नहीं खटखटाते, बाहर से आवाज़ लगा कर लौट जाते हैं।"

यह घर है या बटेरखाना?

बस अब क्या था, उन सज्जन को इतना ताव आया कि अपने मित्र की मित्रता पर हमेशा के लिए सांकल चढ़ा ली।

× × ×

एक महाशय के यहाँ एक वृद्ध महिला अतिथि आईं सो आते ही घर की सारी एकाउन्ट बुक खुलवा लीं। बोली, "बहू, दो मन गेहूँ तो लग जाते होंगे तुम्हारे यहाँ महीने में? और कम्बख्त महँगाई क्या कम है! छै रुपये सेर असली घी आता है, दो सेर से कम क्या मँगाती होगी! हाथ रोक कर खर्च करना चाहिए बहू। बच्चों के लिए बिस्कुट मँगवा रखी होंगी घर में। सब्जी-पतर में आठ आने रोज़ से कम क्या लगता होगा! और तेरे मरद ने बैंक में रुपया जोड़ रखा है या डाकखाने में? साल में दस-बारह साड़ियाँ तो तू मैके से ज़रूर ले आती होगी.......!"

बहू थी मीठी कटार। बीच में बात काट कर, मुस्करा कर, बोली, "माँ जी, आपको तो कम्पनियों का हिसाब जाँचने वाला आडिटर



होना चाहिये था।"

× × ×

एक नव-दम्पति के यहाँ दूर से ताऊ जी आकर ठहरे। अतिथि-सत्कार में कोई कमी नहीं। समय पर नाश्ता, भोजन, चिलम-हुक्का। जोड़ा था नव-विवाहित, सो हर समय उल्लास और उमंगों में पगे रहते। ज़रा-सा अवसर मिलते ही हँसी-मज़ाक में जुट जाते तो ताऊ जी ऊपरी क्रोध जताते, "हर वक्त घर को ठेठर बनाये रहते हैं।" पर चुपके-चुपके ताऊ जी ताक-झाँक भी करते रहते। पति-पत्नी के प्यार के नाटक को देखते तो उन्हें अपनी जवानी के दिन याद आ जाते। कसमसाहट-सी शुरू हो जाती और पिटे हुए मोहरे की तरह खँखार कर अन्दर पहुँच जाते, "अरे, मेरा चश्मा तो नहीं रह गया यहाँ?"

पति-पत्नी दोनों उनकी ताक-झाँक से परेशान। एक दिन दोनों में, आपस में, खरबूजे पर छीना-झपटी हो रही थी, ताऊ जी पर्दे की ओट से आनन्द ले रहे थे। सहसा पत्नी ने आधा कटा खरबूजा पति से छीन कर जो दरवाजे की ओर फेंका तो सटाक से ताऊ जी की नाक पर आ जड़ा। कुनमुनाते-से लौट आये।

× × ×

दो भद्र पुरुष एक परिचित के यहाँ बैठे थे। दोनों ही बुद्धिजीवी, दोनों ही साधारण धरातल से ऊँचे उठे इन्सान कहलाने का दावा करने वाले। एक कविता के तीर चलायें तो दूसरे गद्य की तलवार। एक श्याम वर्ण, दूसरे गौर वर्ण। आपस में किसी गड़े मुरदे की चर्चा चली तो पहले दोनों के होंठ

फड़के। फिर भँवें तनीं। उसके बाद माथे पर सलवटें पड़ीं। धीरे-धीरे अबे-तबे की नौबत आई, गाली-गलौज की सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते आस्तीन की बाँहें तन गईं। एक गरज रहे थे, "तुम अपने को क्या गुण्डा समझते हो, मेरे सौ छात्र तुम्हारी हड्डियाँ तोड़ देंगे!" तो दूसरे बरस रहे थे, "होश की छानो जी, मेरे १००० स्वयंसेवक तुम्हारी सात पीढ़ियों का ठिकाना नहीं छोड़ेंगे!"

दोनों हाथ फेंक फेंक कर लड़ रहे थे और बेचारे घर वाले उन दोनों की तरफ मुँह बाये हक्के-बक्के-से देखते हुए सोच रहे थे, "इन लोगों ने हमारे घर को बटेरखाना समझ लिया है क्या?"

पर जनाब, घर बटेरखाना नहीं होता, परिवार का स्वर्ग होता है और आपके ही स्वर्ग में कोई बटेर चोंच लड़ाता चला आये तो आपको [illegible] क्यों!

× × ×

आइये इन संस्मरणों की छाया में कुछ गुनें—

- परिवार में जिस व्यक्ति से आपका परिचय है यदि वह घर पर नहीं है तो अन्दर घुसने का तकाजा न कीजिये क्योंकि परिवार कोई भटियारी की सराय नहीं है।
- मेहमान बन कर इस तरह रहें कि परिवार वाले आपको अपने दैनिक जीवन की सरिता के प्रवाह में चट्टान न समझें तभी आप उनका प्यार और आदर पा सकते हैं।
- दूसरों के घर पर ऊँची आवाज़ में बोलना भी असभ्यता है, लड़ना तो जंगलीपन है ही। यदि आपमें ये दोनों 'गुण' हैं तो इन्हें अपने हृदय की कोठरी में ही बन्द रखिये, दूसरों के आँगन में बिखेर कर उसे गन्दा न कीजिये। ●

मूल० हिजाब इमतियाज़ अली
अनु० अहमद सलीम

●

परिवार के बुज़ुर्ग घर के बच्चों के साथ अपनी तस्वीर खिचवाने के लिए तैयार क्या हुए, अपना ख़ाका ही खिंचवा बैठे !

●

बहुत दिनों बाद, आज अचानक, एक पुरानी आल्मारी खोलने का इत्तिफ़ाक़ हुआ तो उसमें से एक बहुत पुरानी ख़ानदानी तस्वीर निकल आयी। उस चित्र में हम लड़के-लड़कियों के अलावा परिवार के चन्द बुज़ुर्ग भी थे। याद रहे, बुज़ुर्ग मेरे ख़ानदान के—! जो सब के सब एक ख़ास व्यक्तित्व के मालिक थे। बड़े गौर से उस चित्र को देखा तो हँसते-हँसते मेरे तो पेट में बल पड़-पड़ गये। मैं चित्र तो आपको दिखा नहीं सकती, लेकिन शब्दों में उस चित्र का चित्र खींचने की कोशिश करती हूँ।

स्कूल से शबेबरात की दो दिन की छुट्टी मिली तो उसी को ग़नीमत जानकर मैं पटाखे छोड़ने और आतशबाज़ी का तमाशा देखने घर चली आयी। उधर से भैया रेहानी अपनी युनिवर्सिटी से, और सूफ़ी अपने आर्ट कॉलेज से पहले ही आयी हुई थी।

घर पहुँची तो सबसे पहले भैया रेहानी से मुठभेड़ हुई। मुझे देखते ही बोले—"अरे रूही, आन पहुँचीं तुम !" ये कहते-कहते एक छलाँग लगायी और अमरूद तोड़कर खाने लगे। मैं बोली—"सब कैसे हैं रेहानी ?"

खान्दानी तस्वीर

रेहानी जल्दी-जल्दी अमरूद खाते हुए बोले--"क्या बताऊँ रूही, सारे बुजुर्गों की विशेषताएँ और पुरखों से आती हुई बीमारियाँ क्लाइमेक्स पर पहुँची हैं। नाक में दम है। देख लेना, तुम्हारी भी क्या गत बनती है।"

मैं बोली--"अरे नहीं। दो दिन के लिए तो आयी हूँ, दिन भर पटाखे चलाऊँगी और रात को आतशबाज़ी के तमाशे देखूँगी।"

रेहानी अमरूद फेंक कर मुँह पोंछते हुए बोले--"खैर, नाश्ते के कमरे में चलो। सब वहीं हैं, मैं भी आता हूँ।"

और जब मैं नाश्ते के कमरे में घुसी तो परिवार के सब लोग टेबिल को घेरे नाश्ते में जुटे थे। दादा जाफ़र सारी दुनिया से नाखुश, पीले रंग का ड्रेसिंग गाउन और काली मखमल की टोपी पहने टेबिल के किनारे वाली कुर्सी पर बैठे ऊँची आवाज़ में ज़ोर-ज़ोर से चाय के घूंट खींच रहे थे जिससे कमरे के वातावरण में रह-रह कर एक गूंज-सी पैदा हो रही थी। दादी ज़ुबैदा टेबिल के दूसरे किनारे वाली कुर्सी पर बैठी लख्लखा सूँघ रही थीं और दिल में उथल-पुथल मचने की शिकायत कर रही थीं। और फूफी ज़ैतून नाश्ता करने वालों की प्लेटों से मिठाई एक दूसरी प्लेट में इकट्ठी कर रही थीं, कहीं ऐसा न हो कि मिठाई का कोई बचा-खुचा कण नौकरों को नसीब हो जाए। इस तरह नौकरों की आदत बिगड़ने और फ़िज़ूलख़र्ची का डर था।

भैया रेहानी एक फूलदार ऊँची-सी बुश-शर्ट पहन कर वापस आ पहुँचे थे और बाग़ की खिड़की में बैठे केले पर केला छील-छील कर खा रहे थे और मुस्करा-मुस्करा कर सूफ़ी की ओर देख रहे थे।

और सूफ़ी एक अदा के साथ दादा जाफ़र के लिए दूध फेंट रही थी और छुप-छुप कर रेहानी को देखकर मुस्कराये जा रही थी।

डरते-डरते मैंने खाने के कमरे में पाँव रखा। फिर गला साफ़ करके सबको संबोधित करते हुए बोली--"तसलीम अर्ज़ करती हूँ।"

जवाब में दादा जाफ़र ने मुझ पर एक कड़ी नज़र डाली और चिड़चिड़े स्वर में बोले--"तसलीम! मगर आपने अपने आने का तार क्यों नहीं दिया?"

फूफी ज़ैतून बोलीं--"अच्छा किया। फ़िज़ूल के खर्च! इतने से सफ़र में तार की क्या ज़रूरत!"

"मुझे तार देने का कुछ खयाल न रहा दादा अब्बा।" मैंने क्षमा माँगने के अन्दाज़ में कहा।

दादी ज़ुबैदा लख्लखे की शीशी बन्द करते हुए बोलीं--"लो और सुनो रूही की बातें! हूँ, ख़याल न रहा--ख़याल को अपने वश में रखना चाहिए।"

मुझे इस तरह की बातें सुनने की आदत तो थी ही, इतमीनान से बोली--"बहुत अच्छा दादी जान प्यारी, अब बस में रखूंगी अपने ख़याल को। पर ये बताइए, आप सब कैसे हैं?"

दादा अब्बा चाय का एक घूंट लेकर मुँह बनाते हुए बोले--"कैसे होते! वही हालतें हैं। वही ज़ुबैदा के दिल डूबने की बीमारी, वही ज़ैतून की पेचिश और वही गुर्दे का दर्द। हूँ--हूँ!!"

भैया रेहानी तीसरा केला छील कर खाते हुए बोले--"यूँ कहिये न दादा जान :

वही सोज़े-दिल की हैं गर्मियाँ,
वही दर्दे-दिल की हैं शिद्दतें।"

यह सुन कर मेरी हँसी निकल गयी। दादा जाफ़र पलट कर मुझे देखने लगे। और एक आह भर कर बोले—"तुम्हें शाइरी सूझ रही है और इधर हमारा ये हाल है कि कब्र में पाँव लटकाए बैठे हैं।"

"ऐसी दिल फटने वाली बातें न कीजिये दादा अब्बा प्यारे।" मैंने कहा।

सूफ़ी दूध फेंटते हुए बोलीं—"खुदा आप को हमारे सरों पर कम से कम दो हज़ार बरस ज़िन्दा रखे।"

इस पर रेहानी पाँचवाँ केला उठाते-उठाते बोला—"आमीन, आमीन!—लेकिन मुझे ख़याल आ रहा है। सचमुच आजकल किसी की ज़िन्दगी का भी क्या भरोसा! इसलिए क्यों न एक खान्दानी तस्वीर खिंचवायी जाए? इत्तिफ़ाक़ से इस शबेबरात पर हम सब इकट्ठे हैं; यादगार रहेगी।"

"तुम सच कहते हो रेहानी बेटे।" दादा जाफ़र प्रभावित हुए।

दादी ज़ुबैदा 'दीवाने-हाफ़िज़' पढ़ते-पढ़ते नज़र उठा कर बोलीं—"लेकिन एक शर्त पर—नहीं तो मैं न खिंचवाऊँगी अपनी तस्वीर।"

"कौन-सी शर्त दादी जान?"

दादी ज़ुबैदा बोलीं—"एक तो ये कि मैं गले में सरानदीप के मोतियों की माला पहनूँगी, दूसरे 'दीवाने-हाफ़िज़' हाथ में होगा। और तीसरे कम्बख़्त फोटोग्राफ़र मुझे कोई हिदायत न दे कि सर तिरछा रखो, हाथ सीधे रखो, मुझसे आँखें मिलाओ—इस तरह की पाबन्दियों से मेरे रग, पुट्ठे.........।"

इस पर फूफी ज़ैतून चमचे से शहद छुड़ाते हुए बोलीं—"ए बस रहने भी दो अपनी शर्तें! झूठ-मूठ के खर्च। फोटोग्राफ़र मुट्ठी भर रुपया लेगा और तस्वीर ऐसी खींचेगा.....।"

"मुट्ठी भर रुपये देने पड़ें या चुटकी भर, तस्वीर ज़रूर खिंचवानी चाहिए। रेहानी का ख़याल ठीक है। ज़िन्दगी का कोई भरोसा नहीं। ख़ान्दानी तस्वीर ज़रूर उतारनी चाहिए।" दादा जाफ़र बोले, जिनको यूँ भी आज सुबह से रह-रह कर मौत याद आ रही थी।

आख़िर फोटोग्राफ़र बुलवाया गया। आते ही उसे अच्छी तरह यह बात समझा दी गयी कि तुम किसी बात में टाँग न अड़ाओ, मुँह में घुँगनियाँ भर कर चुप साधे रहो। तस्वीर चाहे हम बैठ कर खिंचवायें या लेट कर।

अब एक खलबली-सी मच गयी। देर तक यही तय नहीं हो सका कि तस्वीर अन्दर कमरे में ली जाए या बाहर बाग़ में।

दादा जाफ़र कहने लगे—"कमरों में अँधेरा है, कुछ दिखायी न देगा।"

इस पर दादी ज़ुबैदा बोलीं—"बाग़ में तेज़ रौशनी है, मेरी आँखें चुँधिया जायेंगी।"

"तस्वीर अन्दर ली जाए या बाहर, रुपये तो उतने ही लगेंगे।" फूफी ज़ैतून चुप न रह सकीं।

साहस करके बदनसीब फोटोग्राफ़र ने थरथराती आवाज़ से इतना कहा—"मेहरबानी करके बाग़ में आ जायें आप सब लोग।"

इस पर दादी ज़ुबैदा बहुत ही बुरा मान गयीं—"लो, शुरू हो गया न! ना बाबा, मैं नहीं खिंचवाती अपनी तस्वीर। थोड़ी देर में कहेगा—सर तिरछा रखो, आँखें मुझसे मिलाओ।"

"नहीं, नहीं, हरगिज़ नहीं बेगम साहबा। बख़ुदा नहीं। यह कभी नहीं कहूँगा कि आँखें

मुझसे मिलाओ !" फोटोग्राफ़र हाथ जोड़ने लगा।

"अरे मैं ख़ूब जानती हूँ इन लोगों को...!"

बहस करते-करते सब के सब बाहर बाग़ में निकल आए। फिर भी तय नहीं हो सका कि फ़ोटो बैठ कर लिया जाए या खड़े होकर। या कुछ लोग बैठे हों और कुछ खड़े।

"बैठे और खड़े हुए में फ़र्क़ ही क्या है, पैसे तो उतने ही लगेंगे। हाँ, फ़ोटो छोटा उतरवाओ तो कुछ फ़ायदा भी रहे।" जैतून फूफी ने कहा।

दादा जाफ़र बोले—"ख़ान्दानी तस्वीर बहुत बड़े साइज़ की होनी चाहिए।"

दादी ज़ुबैदा बोलीं—"लेकिन बड़े साइज़ की तस्वीर में शकलें बुरी आती हैं।"

"और छोटे साइज़ के फ़ोटो में ख़ूबी ये होती है कि ख़र्च कम और सूरत अच्छी।" ज़ैतून फूफी बोलीं।

"मगर बहस तो इस पर हो रही थी कि तस्वीर बैठ कर ली जाए या खड़े होकर।" रेहानी से रहा न गया, उकता कर बोला—"आप लोग साइज़ पर बहस करके वक्त बरबाद कर रहे हैं।"

मैंने कहा—"यूँ करें, औरतें बैठ जायें, और आपलोग खड़े रहें।"

सूफ़ी बोली—"या बुज़ुर्ग सारे बैठ जायें हम तीनों खड़े हो जायें।"

फूफी ज़ैतून दबी ज़ुबान से बोलीं—"इन सारे झगड़ों से तो अच्छा यही था कि सिरे से तस्वीर ही न खिचवायी जाती।"

"तुम चुप रहो ज़ैतून!" दादी ज़ुबैदा को बुरा लगा—"एक बैठा रहे और दूसरा खड़ा हो तो मेरा दिल डूबने लगता है, दम घुटने लगता है। इसलिए सब खड़े हों।"

"कैसी बात करती हो ज़ुबैदा!" दादा जाफ़र चिड़चिड़े स्वर में बोले—"एक सीध में सब खड़े हों तो सब बौने मालूम होंगे; किसी की टाँग कट जायेगी तो किसी का सर....।"

"और पैसे अलग जायेंगे।" फूफी ज़ैतून बड़बड़ायीं।

"मैं बताऊँ?" रेहानी ने ठीक वक्त पर बड़ी सूझ-बूझ से काम लिया, कहने लगे—"पीछे के बरामदे में एक गोल टेबिल पड़ी है। सब उस पर बैठ जायें।"

"और हमारी टाँगें?" दादा जाफ़र ने पूछा।

"ज़ाहिर है वे लटकती रहेंगी।" रेहानी ने जवाब दिया।

सबको यह राय पसन्द आयी। टेबिल बड़ी कठिनाई से बाग़ में निकाला जा सका।

अब एक और समस्या उठ खड़ी हुई जो मेरे खयाल में सारी समस्याओं से ज्यादा कठिन थी—टेबिल बहुत ऊँचा था।

और सब तो ले-देकर किसी तरह टेबिल के ऊपर पहुँच गये। बाकी रही एक फूफी जैतून। उन्हों ने भी किसी तरह हिम्मत की।

"अरे तुम लोगों की बहस में टेबिल तो डावाँडोल हो रही है, मैं कैसे चढ़ूँ?" हाँफते हुए फूफी ज़ैतून ऊपर पहुँच कर बोलीं।

सूफ़ी खिलखिला कर हँस पड़ी—"हाय हाय, आप चढ़ तो गयीं ऊपर ज़ैतून फूफी, मगर अपने दाँत लगाने तो भूल ही गयीं आप।"

दादी ज़ुबैदा चिढ़ गयीं—"तुम भी क्या तमाशा करती हो जैतून, पोपले मुँह में तस्वीर उतरवाओगी और वह भी ख़ान्दानी तस्वीर?"

फूफी ज़ैतून को भी ताव आ गया, बोलीं—"हाँ मैं नहीं लगाती दाँत, मेरी मरज़ी—वक्त-

बेवक्त लगाऊँ तो दाँत [illegible] मुँह [illegible] और डाक्टर को मुफ्त में रुपये देने पड़ जायें। फ़िज़ूल के खर्च!"

"तुम सब लड़ती रहो आपस में, मैं खिचवाता हूँ अपनी तस्वीर।" दादा जाफ़र ग़ुस्से से बोले—"उतारो फ़ोटोग्राफ़र तस्वीर!"

फ़ोटोग्राफ़र आगे को बढ़ा—"जी बहुत अच्छा—एक-दो-ती.....।"

"ठहरना, ठहरना—एक मिनट।" दादी ज़ुबैदा दादा जाफ़र को देख कर बोलीं—"ग़ज़ब, ग़ज़ब! ड्रेसिंग गाउन और सर पर काली मख़मल की टोपी। इसमें खिचवायी जायेगी खान्दानी तस्वीर?"

"तो तुम चाहती थीं मैं सर पर सेहरा बाँध कर खिचवाता?" दादा जाफ़र बिगड़ कर बोले।

"ख़ैर मेरी बला से।" दादी ज़ुबैदा ने बुरा-सा मुँह बनाया—"लेकिन मुझसे परे हट कर बैठना, शर्म आती है मुझे तुम्हारे ऐसे लिबास से।"

सूफ़ी झुक कर मुझे देखने लगी, फिर बोली, "है, है, रूही, तुमने चेहरे पर इतना पाउडर थोप रखा है कि सर्कस का जोकर मालूम होती हो।"

"और तुमने जो इतने गहरे रंग का लिपस्टिक लगा रखा है?" मैं जल कर बोली—"फ़ोटो में यूँ दिखाई देगा जैसे मुँह में काला चूहा पकड़ रखा हो।"

रेहानी चिल्लाए—"बाबा अब बन्द भी होंगी कभी ये बहसें?—तुम उतारो फ़ोटोग्राफ़र फ़ोटो—।"

दादी ज़ुबैदा चिल्लायीं, "ठहरना एक मिनट। ज़ैतून, तुम परे हट कर बैठो। [illegible] तुम लोगों की सूरत देख कर मैं ज़मीन में गड़ी जा रही हूँ। हूँ, पोपला मुँह और मख़मल की टोपी!"

दादा को ताव आ गया। टेबिल पर खड़े होते हुए बोले—"अच्छा बाबा अच्छा, लो, दूर हट कर बैठता हूँ।" यह कहते ही परे हट कर धम्म से टेबिल पर बैठ गये और उधर टेबिल चूँ-चूँ-चूँ करता जाने क्या हो गया।

लेकिन इसी बीच फोटो उतर चुका था।

तीसरे दिन फोटो धुल कर आया तो किसी की कुछ समझ में न आया कि फ़ोटो है किस चीज़ का और उसमें क्या हो रहा है। यूँ मालूम हो रहा था जैसे किसी शहर पर बम गिरा हो और लोग क़लाबाज़ियाँ खा रहे हों!

● दादा जाफ़र की मखमली टोपी धरती की ओर आ रही थी और वह सिजदे में गिरे पड़े थे।

● फूफी ज़ैतून मुट्ठी में कोई चीज़ पकड़े झुकी खड़ी थीं।

● दादी ज़ुबैदा मोतियों की माला सहित ज़मीन पर बैठी थीं, जैसे नमाज़ के बाद सलाम फेर रही हों।

● 'दीवाने-हाफ़िज़' कहीं दिखायी नहीं दे रहा था।

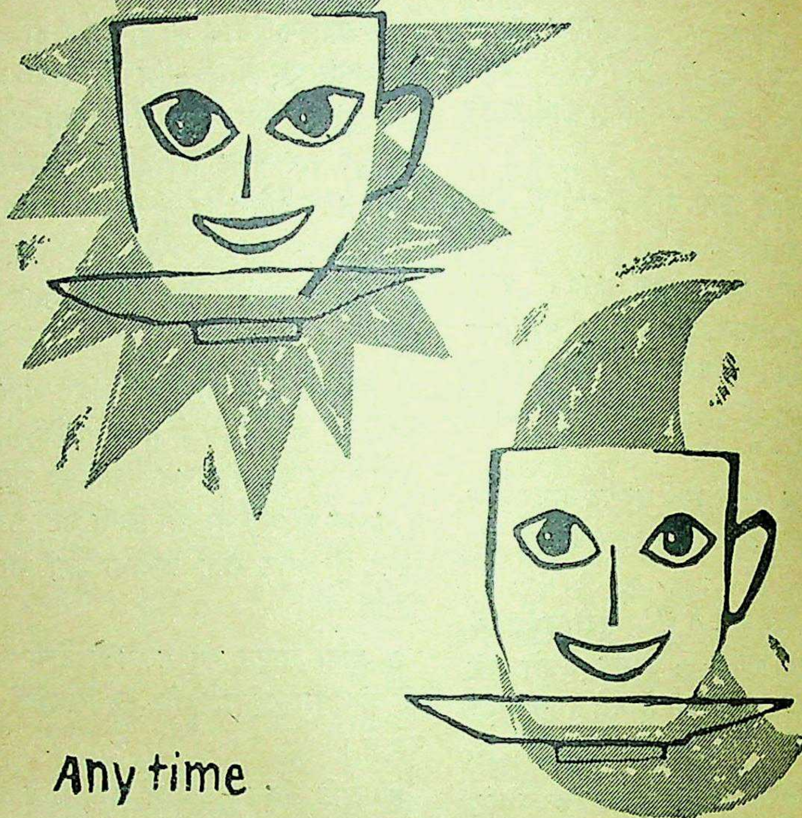
● मैं टेबिल के पाये से चिमटी हुई थी।

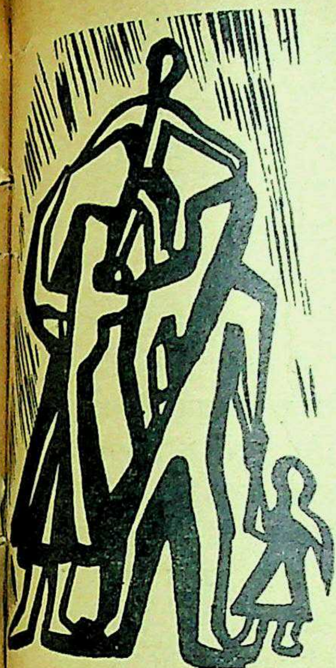
● सूफ़ी केहुनी के बल एक ओर पड़ी थी।

● और रेहानी हवा में लटके थे।

● टेबिल के कई टुकड़े इधर-उधर बिखरे पड़े थे!

यह थी हमारी खान्दानी तस्वीर! ● ●





डॉ० रमेश कुन्तल मेघ

व्यापक परिप्रेक्ष्य में परिवार-संस्था का दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक और समाजशास्त्रीय अध्ययन--पठनीय और मननीय !

•

परिवार मानवजाति की प्राचीनतम संस्था है जो आज तक अपने मूल केन्द्र को सुरक्षित रखे हुए है। मानवीय संस्थाओं का भी जन्म, विकास और मृत्यु हुआ करती है, किन्तु केवल परिवार ही जन्म से निरन्तर विकास की ओर अग्रसर होता रहा है। परिवार की धारणा के विकास में पाश्चात्य मनीषियों में ल्यूबॉक, वेस्टरमार्क, कार्लमार्क्स, फ्रीडरिख एंगेल्स, बेबेल, स्पेन्सर और अन्यान्य विद्वानों की महत्तम देनें हैं। चाहे होमर हों चाहे वाल्मीकि, चाहे कन्फूसियस हों चाहे मोज़ेज, चाहे संत आगस्टाइन हों चाहे मनु या पाराशर--सभी ने ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक परिवार-व्यवस्था के चिरंतन और अनिवार्य मूल्य खोजे हैं।

परिवार
सामाजिक और मनोवैज्ञानिक आयाम

सबसे पहले सांस्कृतिक मानवशास्त्रियों (Cultural anthropologists) और मनोविश्लेषकों ने यौन-सम्बन्धों को दूरस्थ विन्दु मान कर क्रमशः निम्नलिखित विभाजन किये—

अनेक पति+अनेक पत्नियाँ—सामूहिक विवाह (Group marriage)
एक पत्नी+अनेक पति—बहु-पतित्व (Polyandry)
एक पति+अनेक पत्नियाँ—बहु-पत्नित्व (Polygamy)
एक पति+एक पत्नी—एक-पत्नित्व (Monogamy)

मनोविश्लेषकों ने एक धारणा को पेश करते हुए कहा है कि आदिम मानव-परिवार केवल एक था ; और, पितृसत्ताक था जिसका अनुशासन तथा प्रबन्ध एक "बूढ़े मनुष्य" के द्वारा होता था जो नितांत निरंकुश और इर्ष्यालु था। इस "बूढ़े मनुष्य" ने सभी युवक, पुत्रों और पुरुषों को निकाल कर सभी नारियों पर (अपनी लड़कियों पर भी) कब्जा कर लिया। अन्ततः इन पुत्रों ने इस "बूढ़े मनुष्य" की हत्या करके अपने उग्र काम (सेक्स) और क्षुधा (हंगर) को तुष्ट किया। किन्तु इसका प्रभाव उनके नैतिक मन (सुपर-ईगो) पर पड़ा जो आज तक हमारी कई सामाजिक संस्थाओं में दृष्टव्य है।....यह सिद्धान्त सिद्ध नहीं हो सका है ; न यह सिद्ध हो पाया है कि आदिम परिवार पितृसत्ताक था।...यदि ऐसा कोई "बूढ़ा मनुष्य" था भी, तो वह तभी समाप्त हो गया होगा जब हम मनुष्य की शक्ल में पहचाने जाने के काबिल हुए होंगे।

जो हो, 'विवाह' (वि+वाह=विशेष प्रकार का वहन) या Matrimony (= to impart motherhood) परिवार का ध्रुव-बिंदु है। "विवाह एक मनुष्य या अधिक मनुष्यों तथा एक नारी या अधिक नारियों का वह समाज स्वीकृत एका है जिसमें वे पति-पत्नी सम्बन्ध कायम करते हैं।"

इसी प्रकार "परिवार मनुष्यों का वह समूह है जो विवाह, रक्त या गोद लेने के द्वारा ऐक्य-सूत्र में बँधा है ; जिसका एक घराना (Household) है ; जिसके सदस्य एक दूसरे से अन्तर्व्यवहार और अन्तर्विनिमय करते हैं और इसके लिए पति-पत्नी, माता-पिता, भाई-बहिन, पुत्र-पुत्री आदि की अपनी सामाजिक भूमिकायें अदा करते हैं। यहीं नहीं, वे मिल कर घराने की एक सामान्य(Common) संस्कृति को भी जन्म देते तथा सुरक्षित रखते हैं।"

वर्गीकरण

हमने परिवारों का जो वर्गीकरण किया है उसमें मातृरेखाक तथा पितृ-

रेखाक परिवार "प्राक्-साक्षर" (Pre-literate) कहे जाते हैं। इस अवस्था के बाद "ऐतिहासिक परिवार" (Historical family) का विकास तीन चरणों में हुआ है—(क) प्राचीन समाज का विशाल पितृसत्ताक परिवार अर्थात् 'कुटुंब कबीला' जिसमें वरिष्ठ की सत्ता निरंकुश होती है; (ख) छोटा पितृसत्ताक परिवार अर्थात् 'कुटुंब' जो मध्यकालीन विकास है, जहाँ माता-पिता विवाह कराते हैं और प्रणय सम्बन्धी पक्षों की अपेक्षा आर्थिक पक्षों पर ज़ोर देते हैं। इसमें पिता-पितामह शामिल होते हैं, और (ग) आधुनिक प्रजातांत्रिक परिवार जो पूँजीवादी युग और औद्योगीकरण का परिणाम है।

पितृसत्ताक तथा आधुनिक परिवार की विशेषताओं का भेद निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

पितृसत्ताक परिवार	आधुनिक परिवार
१. अधिकारवादी और निरंकुश जिनमें गृहपति में सारी शक्ति केन्द्रित होती है—और पत्नी, बच्चे; उनकी पत्नी और उनके बच्चे अनुयायी होते हैं।	१. प्रजातांत्रिक जिसमें पति और पत्नी के समानाधिकार होते हैं। बच्चे भी बड़े होने पर निर्णयों में हिस्सा बँटाते हैं।
२. विवाह माता-पिता कराते हैं और दूरदर्शिता, आर्थिक और सामाजिक स्थिति पर बल देते हैं। दामाद या पुत्रवधू का परिवार-चक्र के अंतर्गत संनिवेश प्रमुख होता है।	२. विवाह युवक-युवतियाँ करते हैं। आपसी चुनाव का आधार रोमांस, प्रीति और पारस्परिक व्यक्तित्व का संयोजन (Personality adjustment) होता है।
३. कर्त्तव्य-पालन तथा परंपरा-आस्था निर्णायक सिद्धांत होते हैं।	३. व्यक्तिगत कल्याण तथा नवलता की कामना ही श्रेय-प्रेय होती है।
४. ऐतिहासिक कार्यों से ओत-प्रोत—जैसे आर्थिक, शिक्षा और स्वास्थ्य संबंधी, सुरक्षा संबंधी, धार्मिक निवेश आदि।	४. आधुनिक नागर परिवारों में तो ऐतिहासिक कार्य लगभग समाप्त हो चुके हैं।
५. पुत्र-पुत्री पिता या श्वसुर आश्रित।	५. पुत्र-पुत्री विवाहोपरांत स्वतंत्र।

भारत के हिन्दू परिवार का क्लासिकल स्वरूप एक सम्मिलित परिवार का है जिसका निर्धारण शताब्दियों से धर्म-ग्रंथों ने किया है। ऊपर की तालिका की पितृसत्ताक संबंधी विशेषताएँ भारतीय हिन्दू परिवारों पर लागू होती हैं। सम्मिलित कुटुंब में वैयक्तिकता और एकांतिकता का नितांत अभाव होता है। बहुधा पिता ही सब बेटों की एकत्र आय का, कमाऊ और आश्रित सदस्यों के बीच, उपयुक्त वितरण करता है।

औद्योगिक और टेक्नालॉजिकल परिवर्तनों ने परिवारों के बीच में धर्म और परंपरा के प्रभाव को कम कर दिया है। शहर में परिवार की इकाई तथा पड़ोस-भावना खंडित होती है और व्यक्ति और वैयक्तिकता की प्रधानता हो जाती है।

पारिवारिक मनोनाटक

मनोवैज्ञानिक और मनोदैहिक क्षेत्रों में परिवार के सदस्यों की जो आपसी क्रिया-प्रतिक्रियाएँ होती हैं, उन्हें आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने "पारिवारिक मनोनाटक" (Family Psycho-Drama) की संज्ञा दी है। वस्तुतः परिवार एक रंगमंच या थियेटर है जहाँ संस्कृति के परदे और वंशानुक्रम का नेपथ्य है। अभिनेता के रूप में परिवार के सभी सदस्य आते हैं किन्तु नायक-नायिका पति-पत्नी ही हैं। इस नाटक का तीसरा पताका-नायक नवजात शिशु है।

परिवार पति-पत्नी तथा अन्य सदस्यों के व्यक्तित्व के विकास का महत्तम नियंता है। फ्रैंक रेडक्लिपफ़ ने शिशु के विकास के निमित्त निम्नलिखित कारण गिनाये हैं--

(१) परिवार अनुकरण वृत्ति की सर्वप्रमुख प्रयोगशाला है जहाँ विशिष्ट पैटर्नों के अनुरूप बच्चे की भूख की, वाणी की, यौनवृत्तियों की उत्तेजनाएँ ढाली जाती हैं, (२) परिवार के सदस्य बच्चे के व्यक्तित्व के लिए मौलिक दिशाएँ (मात्र) देते हैं, (३) शैशवकालीन अनुभव ही अप्रत्यक्ष रूप में बाद के व्यवहारों का नियंत्रण करते हैं, और (४) परिवार के सदस्यों का भी क्रमिक संशोधन शिशु को प्रभावित करता है।

वैवाहिक अभियोजन

पति-पत्नी के भी व्यक्तित्व के विकास के लिए वैवाहिक अभियोजन (Marital adjustment) अनिवार्य है। वे जीवन भर एक ही शैय्या पर सोकर भी आजीवन एक दूसरे से अपरिचित बने रह सकते हैं; आर्थिक और सांस्कृतिक दृष्टि से नितान्त समृद्ध होकर भी अपने मनोलोक में अविराम थका-हारा युद्ध रचाये रख सकते हैं या आरंभिक व्यवस्थित जीवन से शुरू करके एक दूसरे की उपेक्षा के कारण जीवन को 'दीर्घ बोझ' बना सकते हैं। वैवाहिक अभियोजन के निम्नलिखित खास तत्त्व हैं--

(१) व्यक्तित्व की निम्नलिखित मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ दुःख का कारण होती हैं: (क) निराशावादी स्वभाव, (ख) न्यूरोटिक वृत्ति जैसे एकाकीपन,

अकारण पराजय भावना, छुईमुई जैसी भावुकता आदि, (ग) दूसरे की भावनाओं की उपेक्षा करके अपनी मनमानी करने की प्रवृत्ति, (घ) आत्म-विश्वास की कमी (पति-पक्ष में) और (ङ) दूसरों की सलाह बिना कठिनाइयों का अकेले सामना करने की आत्मनिर्भरता जिससे दूसरे को आघात पहुँचता है।

(२) सांस्कृतिक तत्त्वों का विश्लेषण राबर्ट एफ विंच ने किया है। उनके अनुसार (क) पत्नी के माता-पिता के सांस्कृतिक स्तर की अपेक्षा पति के माता-पिता का सांस्कृतिक स्तर वैवाहिक खुशी में ज्यादा महत्त्वपूर्ण है, (ख) शिक्षा जैसे कुछ सांस्कृतिक-विभेद, जो पहले सफल विवाह मे घातक समझे जाते रहे थे, कोई ज्यादा असर नहीं डालते यदि आर्थिक और व्यक्तित्व के तत्त्व अभियोजित हों।

(३) सामाजिक सक्रियता भी एक अंग है। हार्वे, लॉक तथा जार्ज कार्लसन् ने कहा है कि यदि पत्नी की शिक्षा का स्तर ऊँचा है तो वह सामाजिक प्रतिष्ठा बढ़ाती है। अन्य प्रकार की सामाजिक सक्रियता—सामाजिक संगठनों में भाग लेना, धार्मिक कार्यों में भाग लेना, पड़ोसियों के साथ व्यवहार और मित्रों की संख्या तथा लिंग (पुल्लिग या स्त्रीलिङ्ग) है।

(४) आर्थिक स्तर के अन्तर्गत लाजिमी है कि विवाह के अवसर पर आय न तो कम हो, न अधिक, बल्कि औसत हो। कई अवसरों पर आय के बढ़ने से पति-पत्नी के सम्बन्ध मधुर होने लगते हैं और घटने पर—अव्यवस्थित मनोजगत् के कारण—बिगड़ने। यह भी लाजिमी है कि विवाह के पूर्व और पश्चात् बचत की जाय।

(५) आपसी प्रतिनिवेदन। यह भी वैवाहिक अभियोजन का एक तत्त्व है। इसके अन्तर्गत प्रेम के विकास की स्थितियाँ प्रमुख हैं। प्रेम या तो देखते ही हो जाता है (Love at first sight) जो संस्कृति, जाति, अवस्था और विवेक के सभी बन्धनों को रौंद देता है अथवा मित्रता के परिणामस्वरूप शनैः शनैः प्रस्फुटित होता है। व्यापक रूप से प्रेम के ये दोनों प्रकार ही "रोमांटिक प्रेम" कहे जा सकते हैं। समाज इनकी स्वीकृति नहीं देता, किन्तु इनकी परिणति मानने को मजबूर है। वैवाहिक और पारिवारिक व्यवहार में निम्नलिखित मूल्य शामिल हैं—(१) रोमांस या स्थायी प्रेम, (२) कान्त मैत्री, (३) स्वामित्व या शक्ति, (४) सेवा और कर्त्तव्य तथा (५) भाव-सम्बन्धों की विविधता।

वैवाहिक सफलता का माप

सफल विवाह के मूल्यांकन के लिए कुछ कसौटियों को चुनने की शाश्वत

समस्या है। टरमान, बर्गेस, कार्ट्रेल, हैमिल्टन, लॉक आदि ने अपने अध्ययनों में जिन कसौटियों का उपयोग किया है वे निम्नलिखित हैं––(१) विवाह का स्थायित्व, (२) पति-पत्नी की प्रसन्नता, (३) विवाह से सन्तोष, (४) यौन-अभियोजन, (५) वैवाहिक अभियोजन (इसकी चर्चा हम कर चुके हैं) और (६) दम्पति का तादात्म्य।

अब हम वैवाहिक सफलता की इन कसौटियों का स्पष्टीकरण करेंगे।

(१) **स्थायित्व** ही सफलता का सबसे बड़ा बाहरी प्रमाण है। तलाक़ कानून, शारदा-एक्ट, हिन्दू कोड बिल आदि के पूर्व भारतीय हिन्दू समाज में यह सवाल ही नहीं उठता था क्योंकि हिन्दू-परिवार एक इकाई था जहाँ पति-पत्नी के व्यक्तित्व सम्बन्धी ऐसे जीवंत और वास्तविक प्रश्नों को घोर रूढ़ियाँ कुचल चुकी थीं। अस्थायित्व के कारणों में तलाक़ कानून की स्वतंत्रता, स्वतंत्र विच्छेद की भावना का प्रचार और धार्मिक-नैतिक नियंत्रणों का ढीला पड़ जाना है।

(२) **स्वयं प्रसन्न रहने का अधिकार तथा परस्पर एक दूसरे को प्रसन्न रखने का कर्तव्य**––यह तथ्य हमारे वैयक्तिक चरित्र से संबंधित है और आधुनिक प्रजातांत्रिक परिवारों में ही लागू होता है। बर्गेस, काट्रेल तथा लॉक ने प्रसन्नता की पाँच श्रेणियाँ मानी हैं––बेहद प्रसन्न, प्रसन्न, औसत, अप्रसन्न, बेहद अप्रसन्न।

(३) **विवाह से संतोष** प्रसन्नता और सामंजस्य से बँधा है। हेमिल्टन के अध्ययन के अनुसार दम्पति प्रसन्न और समंजस हो सकते हैं किन्तु सन्तुष्ट नहीं। इसके लिए व्यक्तित्व का संयोजन, सांस्कृतिक उदात्तीकरण और साहचर्य-भावना अनिवार्य हैं।

(४) **यौन सम्बन्धी अध्ययन**––इसका समाजशास्त्रीय अध्ययन बर्गेस, कार्लसन, वॉलिन, लॉक, टरमान और ओडेन ने किया है। टरमान ने नौ बातें शामिल की हैं––सहवास की वांछित तथा घटित संख्या के बीच अनुपात, दोनों की समान कामोत्तेजना का अनुपात, पत्नी का रत्यावेश, सहवास से विश्रान्ति और तृप्ति, कभी नहीं या कभी-कभी इच्छित परकीय सहवास, अधिक समय तक सहवास न होने से प्रसन्न या अप्रसन्न, यौन सम्बन्धी कुछ अथवा कुछ भी नहीं शिकायतें, कौमार्य-सहवास का अभाव या केवल वाग्दत्ता या भावी संगी के साथ ही सहवास। फ्रायड, युंग, एडलर, हैवलॉक एलिस, ऑटो रैंक आदि ने इसी समस्या का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया है। किन्तु यह निर्विवाद है कि काम का पारिवारिक प्रसन्नता में महत्त्वपूर्ण योगदान है। टरमान मानते हैं कि माता-पिता को विवाह-पूर्व पुत्र-पुत्री को यौन-शिक्षा दे देनी चाहिए जिससे उनका जीवन कुछ कुंठाओं से मुक्त हो सके। डेवीस तथा श्रोडा मानते हैं कि समंजस परिवार के लिए विवाह-पूर्व यौन-

पवित्रता वांछनीय है।

(५) संश्लेषण—यहाँ तादात्म्य की श्रेणियाँ हैं जिनमें दम्पति केवल लीन और पूर्णतः तिरोहित ही नहीं होते, बल्कि उभय सन्तुष्टि तथा सामान्य लक्ष्यों की पूर्ति के लिए पूरक भी होते हैं। यहाँ आन्तर-विनिमय पर जोर है। यहाँ आकर सफल परिवार की अन्तर्बाह्य कसौटी का मेल हो जाता है। वॉलिन और बर्गेस ने कई तत्त्व गिनाये हैं जिनमें से ये प्रमुख हैं—विवाह-पूर्व तथा पश्चात् प्रेम की मात्रा और स्थायित्व; स्वभावों का आसंग; भावात्मक आलंबन; उभयाश्रय या स्वतंत्रता; दोनों या एक पर माता-पिता के आदर्श बिंब का प्रभाव; यौन-अभियोजन; परिवार-नियोजन के प्रति दृष्टिकोण; सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की समानताएँ और अन्तर; सामान्य रुचियों पर एकता या भेद; मित्रों के सम्बन्ध में सहमति या असहमति; माता-पिता या श्वसुर-सास से सम्बन्ध; जीवन-दर्शन की मान्यताओं में सामंजस्य या विरोध और आर्थिक आचरण तथा आर्थिक अवस्था आदि।

भारतीय परिवार—प्रजातंत्र के आलोक में

परिवार में उपरिलिखित समाजशास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक विवेचन के आधार पर हम वर्तमान भारत में पितृसत्ताक विशेषताओं के पंजे में जकड़े हुए सम्मिलित परिवार को एक असफल और खंडित इकाई पाते हैं। वर्तमान भारत में परिवार का शहरीकरण हो रहा है, उसकी इकाई के सदस्य कम से कम हो रहे हैं, उस पर वैयक्तिकता और व्यक्तिगत स्वातंत्र्य का दबाव पड़ रहा है, उसकी विवाह व्यवस्था के जुए तले युवक-युवती दोनों कराह रहे हैं और उस पर कर्त्तव्यों का इतना बोझ है कि अधिकार की पगडण्डी तक भी नहीं झिलमिला रही है। इसीलिये लाखों-करोड़ों सुभाषितम्, पौराणिक चरितनायकों और सती-देवियों की कथाएँ भारतीय हिन्दू परिवार को कुरीतियों से मुक्त नहीं कर पा रही हैं। यदि दस घरों का एक औसत लें तो उनमें से नौ घर खंडित हैं। प्रजातांत्रिक भारत में भी इन परिवारों की विधा ग्रामीण है इसीलिए बिना बुनियाद बदले मर्ज़ बे-इलाज़ ही रहेगा। प्रजातांत्रिक युग में परिवार को भी आधुनिक प्रजातांत्रिक परिवार बनाना होगा। ठीक है, उसमें परम्पराएँ प्रगतिशील सांस्कृतिक परिवेश का काम करें।

यदि विवाह को लें तो वर्ण, गोत्र और दहेज के बन्धन जीवन-साथी के चुनाव को सीमित कर देते हैं। इसके बाद, माता-पिता द्वारा विवाह रचाए जाने की सामंतीय प्रथा बरकरार है। इसके उपरान्त, जन्म-कुंडली का और भी कठोर नियंत्रण है। और अंततः, सांस्कृतिक स्तरों की भिन्नता रहा-सहा अभियोजन भी तहस-नहस कर डालता है।

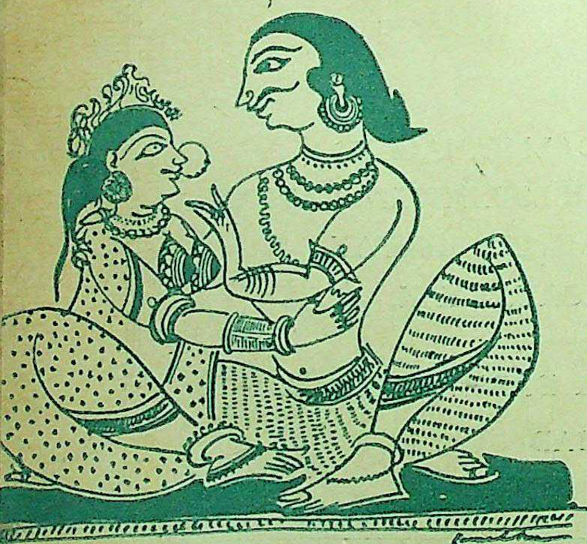
जब से पत्नी वधू-रूप में [illegible] नये घर में आती है तभी से वह परिवार की सबसे नीची श्रेणी में जा बैठती है और उसे सास की आज्ञानुवर्तिनी होना पड़ता है जो परम्परा से सम्मान और अत्याचार की भूखी मानी जाती है। ननदें उसे अपना प्रतिद्वंद्वी समझने लगती हैं और देवरानियों-जेठानियों का वैमनस्य उसके व्यक्तित्व को खत्म कर देता है। वस्तुतः यह स्थिति बड़े परिवार को अनिवार्यतः खंडित कर देने की है लेकिन खंडित-परिवार कलह-ईर्ष्या-अत्याचार-उत्पीड़न और आत्म-हनन के दमघोंटू वातावरण में चलता रहता है। इसका मनोवैज्ञानिक परिणाम पति तथा पत्नी दोनों के व्यक्तित्वों में भय, कायरता, ईर्ष्या और गोपनीयता का समा जाना है। विवश पति परिवार के दकियानूस वरिष्ठों का आज्ञाकारी होते हुए भी पत्नी के भावना-लोक में पिता का अहं-आदर्श (Ego-ideal of the father) बन जाता है जिसकी वजह से समान-धर्मी प्रेम और प्रसन्न निर्भीकता व्यक्तित्व से अलविदा ले लेते हैं। इन परिवारों में न तो तलाक़ हो सकता है, और न विधवा विवाह ही। इस प्रकार व्यक्तित्व पूरी तरह से कुचल दिया जाता है। अतः हिन्दू परिवार को सामंतीय संस्कारों से निकाल कर प्रजातांत्रिक मूल्यों से अभिषिक्त करना आज के युग की चुनौती है। ● ● ●

हरिशंकर परसाई

बदलती पारिवारिक प्रथाएँ

शहर से बहुत दूर गाँव में, शादी के अवसर पर जब कुलवधुएँ लोक-गीत छोड़, ताज़ा फिल्म की लोकप्रिय ट्यून में गाना गाती हैं और कीर्तन-मंडली सूर-कबीर-मीरा के भजन छोड़, सस्ती सिनेमा धुन पर भजन बना कर भद्दे ढंग से गाती है--तब उनके ऊपर हँसी आती है, जो गर्दन डाल कर कहते हैं कि भारतीय जीवन में कुछ बदल नहीं रहा है। बदल रहा है--जो चाहते हैं वह भी बदल रहा है और जो नहीं चाहते, वह भी बदल रहा है। उन्हें निराशा हो रही है, जो सोचते थे कि ग्राम-गीत छोड़ कर कुलवधुएँ छायावादी कविता गायेंगी। और उन्हें प्रसन्नता है, जिनके वनस्पति घी के कारखाने हैं--आज गाँव का ग्वाला शहर से वनस्पति घी ले जाता है और घर के घी में मिला कर फिर शहर में शुद्ध देहाती घी के नाम से ले आता है और मिलावट सिद्ध करने वाले को १०००) इनाम का वादा करने वाली 'शुद्ध ग्रामीण घी' की दूकान पर बेच जाता है। इस तरह सब बदल रहा है।

आदमी सुभीते का रास्ता अपनाता है। सुभीते के लिए वह श्रद्धा से भगवान की मूर्ति स्थापित करता है और जब किराये के लिए उस जगह 'ब्लॉक' बनवाने लगता है तो मूर्ति को श्रद्धापूर्वक हटा कर एक कोने में रख देता है। बच्चों की पहली पुस्तक में पाठ है--'रामा उठ। पानी भर। खाना खा। बस्ता उठा। पाठशाला जा।' मेरे एक मित्र ने बदली परिस्थिति में बेटे को यह नया पाठ रटवाया है--'रामा उठ। दरवाज़ा



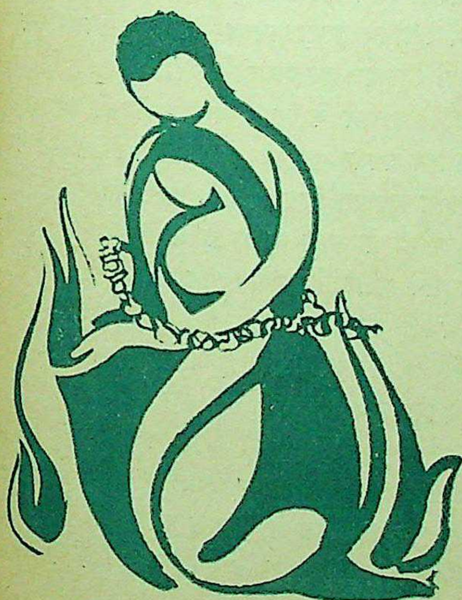
कितनी ही ऐसी पारिवारिक प्रथाएँ हैं जो कभी बड़े शौक़ से मनायी जाती थीं, लेकिन आज जिन्हें अनुपयुक्त समझ कर त्याग दिया गया है। उन्हीं का एक रोचक लेखा-जोखा।

लगा। मेहमान आया। उसे भगा। महाभारत का सोने का नेवला किसकी अतिथि-सेवा के गीत गायेगा?

सब बदल रहा है। जो इस पर केवल सिर धुनते हैं, उन पर दया आती है। और जो इसकी केवल जय बोलते हैं, उन पर हँसी आती है। परिवर्तन का मूल्य बाद में आंका जायगा। अभी केवल इतना सत्य है कि सब कुछ बदल रहा है।

परिवारों की कितनी ही प्रथाएँ जो बचपन में देखी थीं, अब कहीं-कहीं ही दिखती हैं। आगे बिल्कुल नहीं दिखेंगी। अभी भी निम्न मध्यम वर्ग में और निम्न वर्ग में, कुछ कम उत्साह से ही सही, प्रथाएँ चलाई जा रही हैं।

इधर एक प्रकार के रिश्तेदारों को 'मानपान' के आदमी कहते हैं। जिस घर में लड़की दी है, उस घर के लोग इस श्रेणी में आते हैं और विशेष आदर के हकदार होते हैं। आदर के साथ ही भेंट के हकदार भी होते हैं।



हर बार जब मानपान का आदमी आता है या विवाहादि में मिलता है, उसे भेंट दी ही जाती है और बार-बार की इस भेंट को भावना-हीन रस्म बनाकर उसकी रकम एक रुपया परम्परा और सुविधा ने निश्चित कर दी है। साला बहनोई को और श्वसुर दामाद को १) देकर चरण छू लेता है। विवाह में जब सैकड़ों रिश्तेदार इकट्ठे होते हैं तब १) के लेन-देन की यह शृंखला बड़ी लम्बी बनती है। इसमें भी सुभीता कैसे देखा जाता है, इसकी एक स्वानुभूत घटना एक मित्र ने सुनाई। वे एक विवाह समारोह से लौटे थे। कहने लगे, शादी के बाद जब रिश्तेदार लौटने लगे, तो भेंट देना शुरू हुआ। मेरे बहनोई के भाई का बिस्तर जब उठने लगा, तो मैंने उन्हें एक रुपया दिया। वह रुपया खोटा था। उन्होंने अपने बहनोई के चरण छुए और वही रुपया दे दिया। वे चले गये। इधर आगामी २४ घंटों में वह खोटा रुपया भेंट में इस हाथ से उस हाथ जाता रहा। सब जानते थे कि रुपया खोटा है, पर पूरी श्रद्धा से उसे दे रहे थे। दूसरे दिन जब मैं चलने लगा, तो मेरा बड़ा साला आया, मेरे चरण छुए और हाथ में वही मेरा खोटा रुपया रख दिया। खोटा रुपया, देने और नहीं देने के, बीच की 'स्टेज' है। आगामी पीढ़ी से कोई किसी से ज़िन्दगी भर भेंट लेने का हक़दार केवल इस कारण नहीं रहेगा कि उसने उनकी लड़की ब्याहने का अहसान किया है।

इधर साल में एक पर्व ऐसा भी होता है जिस पर बहू सास को मारती है। भारतीय परिवारों में सास-बहू का सम्बन्ध बड़ा भयावह है। बहू को पीटना सास का अतर्कित अधिकार हो गया है। पर एक दिन ऐसा

होता है, जब सास बहू के हाथ से समारोह-पूर्वक पिटती है। सास अपने हाथ से किसी पौधे की नर्म टहनी को छील-काट कर सुन्दर छड़ी बनाती है। उसे बहू के हाथ में देती है। उसके मुँह में मिठाई अपने हाथ से देती है। इसके बाद बहू पाँच बार वह छड़ी छुआ देती है। पता नहीं यह पर्व किसने बनाया---बहू ने साल भर का बदला एक दिन निकालने के लिए? या सास ने साल भर बहू को पीटने का अधिकार पाने के लिए? पहिले बहुओं ने सासों को अच्छी मोटी छड़ी से पीटा होगा। तब पीड़ित सासों ने ही यह परम्परा चलाई होगी कि छड़ी सास अपने हाथ से बनायेगी।

विवाह समारोह में गाली की प्रथा प्रायः सब जगह है। 'घराती' और 'बराती' दोनों को प्रिय लगने वाली ये गालियाँ अब आगे सुनने को नहीं मिलेंगी क्योंकि विश्वविद्यालयों से निकलने वाली भविष्य की गृहणियों को यह विद्या नहीं आती। जिन जातियों में स्त्रियाँ भी बरात में जाती हैं, उनमें बड़ा अजीब दृश्य दिखता है। बरात के साथ स्त्रियों का एक दल गाली गाता हुआ आता है और इधर वधू-पक्ष की स्त्रियाँ भी आँगन में बढ़ कर गाली गाती हैं।

विवाह-स्थल पर दोनों दलों की नोक-झोंक चलती है। इस प्रसंग में एक लतीफ़ा बड़ा प्रचलित है---एक कानी लड़की की शादी नहीं हो रही थी। किसी तरह उसके कानेपन को छिपा कर एक लड़के से शादी तय की गई। लड़का लँगड़ा था और उसके अभिभावकों ने भी यह बात छिपा ली थी। दोनों पक्ष प्रसन्न थे। एक सोचता कि दूसरे को धोखा दे दिया। बरात आई, तो वधू-पक्ष की स्त्रियाँ अपनी प्रसन्नता को रोक नहीं पाईं और गा उठीं---

'वर जीत गई मोरी कानी।'

वर पक्ष की स्त्रियों को उनकी प्रसन्नता अखर गई। ये समझती हैं कि इनकी कानी जीत गई! इन्हें हमारे लँगड़े की सफलता का रहस्य नहीं मालूम। वे जवाब में गा उठीं--

'वर खड़ा होय तब जानी!'

वर और उसके साथियों को तंग करने के तो अनगिनत तरीके अपनाये जाते हैं। वर को वधू की माँ नाक पकड़ कर भीतर ले जाती है। जब वर अपने साथियों के साथ भोजन करने घर के भीतर जाता है, तब स्त्रियाँ तरह-तरह के अत्याचार करती हैं! चिमटी लेने से पीटने तक की क्रिया होती है। मर्यादा में बँधी स्त्रियाँ जब उस प्रसंग पर घड़ी भर की छूट पाती हैं, तब क्या नहीं करतीं। हल्दी में मिर्च घोल कर छिड़की जाती है, कपड़े उतार लिये जाते हैं, पकौड़ी में कपास भरा रहता है और कचौड़ी में मिर्च! इस सब अत्याचार की पूर्वाशंका से वर और उसके साथी इतने भयभीत रहते हैं कि मैंने एक विवाह में देखा कि दूल्हा जब जाने के लिए तैयार किया जा रहा था, तब वह रोने लगा था।

भोजन के वक्त बरातियों को वधू का पिता रुपया देता है। भोजन परोस देने के बाद वर का पिता वधू के पिता को लेकर हर बराती के पास जाता है और वधू का पिता उसके पत्तल के पास रुपया रखता है। यह अवसर विवाह का होता है। किसी भी कारण से बराती रूठ जाते हैं और भोजन करने से इनकार कर देते हैं। तब उन्हें मनाने में घंटे लग जाते हैं। शाम का परोसा गया भोजन कभी-कभी सबेरे खाया जाता है।

एक बरात में मैं फँस गया था! रुपया दिया जा रहा था कि एक बुढ़ऊ खड़े हो गये

और बोले, 'बस, हम भोजन नहीं करेंगे। पहिला रुपया हमें मिलना था। वह अमुक को क्यों दिया गया? हम उनसे बड़े हैं, उम्र में और दर्जे में। पहिले हमारा हक है।' अब बहस होने लगी। अमुक जी ने प्रत्युत्तर में कहा कि मैं ही बड़ा हूँ। मेरा ही हक है। अब दोनों यह सिद्ध करने के प्रयत्न करने लगे कि मैं बड़ा हूँ। दो घंटे लग गये। सामने भोजन रखा है और हम बैठे हैं। दाल में डाला गया गरम घी जम गया। बड़ी मुश्किल से उनमें से एक को यह मनवाया गया कि वह छोटा है। तब खाना शुरू हुआ। इधर इस तरह की प्रथाओं में बहुत-कुछ कमी हो गयी है।

विवाह में अधिक प्रथाएँ (बल्कि लगभग सभी) स्त्रियों द्वारा संचालित होती हैं। ऐसा मालूम होता है कि भारतीय परिवारों में स्त्रियों के दमन की यह प्रतिक्रिया है कि अवसर पर उन्होंने ऐसे रिवाज़ चलाये हैं जिनसे उन्हें पूरी उच्छृङ्खलता का मौक़ा मिलता है। बरात के चले जाने पर पीछे से घर में स्त्रियों द्वारा कई तरह के ऐसे भोंड़े आयोजन गाँवों में किये जाते थे जो आजकल प्रायः बन्द हो गये हैं।

कितनी ही विचित्र प्रथाएँ हैं, जो शिक्षा, औद्योगिक सभ्यता और नयी जीवन-परिस्थितियों के कारण समाप्त हो रही हैं। नयी सभ्यता, अपनी अलग प्रथाएँ गढ़ रही है। इन दोनों का संघर्ष भी जगह-जगह हो रहा है और अजीब हास्यास्पद स्थितियाँ पैदा कर रहा है।

◉ ◉ ◉

आज की लड़की : बक़लम गाँधी जी

आजकल की लड़की को अनेक मजनुओं की लैला बनना प्रिय है। वह दुस्साहस को पसन्द करती है।......आजकल की लड़की वर्षा या धूप से बचने के लिए नहीं, बल्कि लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचने के उद्देश्य से तरह-तरह के कपड़े पहनती है।

—महात्मा गाँधी

संकलन : सतीश कुमार

• शशिप्रभ •

भारतीय परिवार फ़िल्मों के परिप्रेक्ष्य में

दिल्ली के एक मासिक-पत्र के लिए फ़िल्म 'नवरंग' की समीक्षा लिखने के लिए मुझसे कहा गया। दो-तीन अन्य पत्रकार मित्रों के साथ मैं भी फ़िल्म देख चुका था। साथियों की राय जाननी चाही मैंने, तो उन्होंने फ़िल्म के सम्बन्ध में कई फ़तवे दिये––"यह तो 'कला कला के लिए' जैसे नारे बुलन्द करने वाली फ़िल्म है।" "कहानी तो कुछ है ही नहीं!".... मुझे लगा कि एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तत्त्व, जो इस फ़िल्म का मूल्य शत-गुण किये हुए है, साथियों की उपेक्षा का शिकार हुआ जा रहा है।

फ़िल्म 'नवरंग', भारतीय पारिवारिक जीवन के सम्बन्ध में, एक महत्त्वपूर्ण सत्य को, एक विकट समस्या को, हमारे सामने प्रस्तुत करती है। हमारे देश में बनने वाले पारिवारिक चित्रों की संख्या वैसे ही बहुत थोड़ी है; तिस पर यदि, किसी चित्र की लोकप्रियता के लिए बहुत हद तक ज़िम्मेदार हम पत्रकार लोग इस प्रकार के चित्रों को सही परिप्रेक्ष्य में न रख कर इधर-उधर की बातों को समीक्षा का आधार बनायेंगे, तो फ़िल्म उद्योग में कार्य करने वाली रचनात्मक शक्तियों का ही उत्साह भंग नहीं होगा, अपितु फ़िल्मों का सामान्य दर्शक भी भ्रम में पड़ जायेगा।

भारत में विशुद्ध पारिवारिक चित्रों के निर्माण की परम्परा बहुत पुरानी नहीं है––जेमिनी कृत 'संसार' को सर्वप्रथम पारिवारिक चित्र माना जाता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पारिवारिक विग्रह, ग़रीबी के कारण उसमें अंकित परिवार पर पड़ने वाली नाना विपत्तियाँ और गृहस्वामिनी तथा गृहस्वामी की ईमानदारी के कारण परिवार के पुनर्मिलन को लेकर विशुद्ध पारिवारिक पृष्ठभूमि में बनाया गया यह चित्र भारतीय पारिवारिक जीवन को कष्टकर बना देने वाले अनेक तत्त्वों की ओर संकेत करता था (और

इसीलिये अत्यन्त लोकप्रिय भी हुआ था) किन्तु साथ ही इसमें किया गया अंकन पर्याप्त अतिशयोक्तिपूर्ण भी था।

शिक्षा के प्रसार के कारण भारतीय पारिवारिक जीवन में सदियों से चली आ रही अनेक परम्पराओं को अब समस्या के रूप में, सामाजिक बुराई के रूप में, ग्रहण किया जाने लगा है। इन समस्याओं को हम अपने दैनिक जीवन में उतनी तीव्रता से अनुभव नहीं कर सकते, जितनी तीव्रता से उनका अनुभव हम, थियेटर में बैठ कर, फ़िल्मों द्वारा प्रस्तुत, उनके नाटकीय रूपों को देख कर करते हैं। उदाहरण के लिए दहेज को एक अभिशाप के रूप में शान्ताराम की 'दहेज' और सोहराब मोदी की 'शीशमहल' जैसी फ़िल्मों ने प्रस्तुत किया। पतिता बहनों के उद्धार ('कश्ती', 'प्यासा', 'साधना', 'अमर'), सामाजिक उपद्रवों और विडम्बनाओं द्वारा छली गई महिलाओं को अपनाने की आवश्यकता ('नास्तिक', 'छलिया', 'पतिता'), बेमेल विवाह की वर्जनीयता ('शिकस्त', 'शारदा', 'देवदास'), विवाह-सम्बन्ध स्थापित करते समय धनी और निर्धन की कसौटी की व्यर्थता और उसके कुपरिणाम ('बाबुल', 'जिन्दगी के मेले', 'बन्दी'), विधवा-विवाह की आवश्यकता ('सुबह का तारा', 'एक ही रास्ता', 'शिकस्त', 'भाभी'), प्रेम-विवाह को सामाजिक मान्यता देने की उपयोगिता ('परिणीता', 'धूल का फूल'). अनाथ बच्चों की समस्या ('बूट पालिश', 'अब दिल्ली दूर नहीं'), अवैध बच्चों के प्रति न्यायपूर्ण व्यवहार की वांछनीयता ('सीमा', 'धूल का फूल'), घरेलू लड़ाई-झगड़ों के कुपरिणाम ('सजनी', 'तलाक'), पर्दा-प्रथा की विडम्बना ('घूँघट') जैसी समस्याओं और समाधानों को अत्यन्त तीव्रता से अनुभव कराने का श्रेय हमारी फ़िल्मों को है।

\+ \+ \+

भारतीय पारिवारिक जीवन पर फ़िल्मों का एक और रूप में भी प्रभाव पड़ा है और यह प्रभाव कई अर्थों में विनाशकारी सिद्ध हो रहा है। तलाक के लिए बढ़ती हुई अर्जियों की संख्या, गृह-विच्छेद के बढ़ते हुए उदाहरण, स्त्री-पुरुषों में प्रगति के नाम पर बढ़ती हुई उच्छृंखलता, स्कूलों-कालेजों में शिक्षा के स्तर की उन्नति के बजाय रूमानी जीवन की बढ़ती हुई लालसा, महिलाओं और पुरुषों में मानसिक विकास के स्थान पर श्रृंगार की बढ़ती हुई रुचि, और नारी-परिधान की नग्न रुचि की ओर, घरेलू समारोहों में संगीत के नाम पर प्रस्तुत किये जा रहे गन्दे और बेतुके फ़िल्मी गीत......ये सब भी इन्हीं फ़िल्मों की देन है।

फ़िल्मों के इसी प्रभाव के कारण परिवार का सहकारी और समग्र रूप नष्ट होता जा रहा है—गृहस्वामी अपने दोस्तों के साथ क्लब में जा बैठते हैं; गृहस्वामिनी माँ अपनी 'फ्रैण्ड्स' के साथ 'पिकनिक' मनाने जा रही

फ़िल्मों की फ़ैशनेबिल माताएँ
चित्र : भाऊ समर्थ



हैं ; घर के वयस्क लड़के-लड़कियां सिनेमा देखने चले गये हैं और छोटे बच्चों को नौकरों के सहारे छोड़ दिया गया है। क्या इसी को हम अपना पारिवारिक जीवन कहते हैं ?

आज हमारे देश में पारिवारिक जीवन का बीजारोपण उसी समय हो जाता है जब **'......मेरा मैके में जी घबरावत है'**--(दहेज) और **'दिला दो हमें भी दुल्हन गोरी-गोरी'**--(एक ही रास्ता) जैसी उक्तियों के साथ युवा कन्यायें और लड़के अपनी यौनेच्छा को अभिव्यक्त करने लगते हैं। माता-पिता के सिर पर उचित वर अथवा कन्या की खोज का भूत सवार हो जाता है और बच्चे अपने गुड्डे-गुड्डी का ब्याह रचाने लगते हैं।--

+ + +

एक दूसरा चित्र भी है। फ़िल्म 'सन्तान' में कोरस को गाने वाले बच्चे शादी के समय भारतीय नारी को याद दिलाना नहीं भूलते--

देश पिया के जाकर लाडो प्यार से हिल-मिल रहना।
सेवा करना अपने घर की कड़वे बोल भी सहना॥

(हसरत जयपुरी)



फ़िल्म-तारिकाओं से प्रभावित एक आधुनिका

भारतीय पारिवारिक जीवन में सास-बहू और ननद-भौजाई की नोक-झोंक को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। यह नोक-झोंक बहू की श्रृंगारप्रियता और पति से (ननद या सास की उपस्थिति में ही) ज्यादा घुल-मिल कर बातचीत करने की बातों को लेकर हुआ करती है। फ़िल्म 'अर्द्धांगिनी' में एक ऐसा ही मनोरंजक चित्र प्रस्तुत किया गया है, इस 'मुँहफट' किस्म के गीत के साथ--

अपने सैयां से नैना लड़इबे
हमार कोई का करि हैं ?

--यह वाणी अपने अधिकारों के प्रति अत्यन्त सजग रहने वाली किसी बहू की है।

+ + +

देखते ही देखते, हँसी-खुशी में दिन बीत जाते हैं। घर में एक नई खुशी का इन्तजार होने लगता है। एक दिन अचानक किसी नन्हें-मुन्ने नवागत की रुलाई फूट पड़ती है। पिता शिशु की ओर देखता है, फिर माँ की गर्वीली आँखों से आँख मिलाता है तो वह झेंप जाती है। लेकिन थोड़ी ही देर बाद जब दोनों का प्यार नवागत के लिए उमड़ आता है तो 'नवरंग' की नायिका के मुख से व्यक्त होता है :

बीती दुख की वो अँधियारी घड़ियाँ जोत सुहाग की चमके।
हाथों में कँगना खन-खन करे मेरे माथे की बिंदिया दमके।।
सब के दुखड़े भूले गोदी में झूले सपनों का यह संसार!
(भरत व्यास : 'नवरंग')

\+ \+ \+

हमारे पारिवारिक जीवन से सम्बद्ध कुछ पारिवारिक पर्व भी हैं, जिनको मनाने के बहाने हमलोग आपसी सम्बन्धों की, पारस्परिक स्नेह और सौहार्द से बटी हुई डोरी में मज़बूती लाने के लिए उल्लास का नया मोम चढ़ाते हैं। राखी एक ऐसा ही पारिवारिक पर्व है जिसे मनाते हुए फिल्म 'राखी' की एक बहन सखियों समेत गाती है :

मोरे भैया जियें, जलें घर में दिये,
मैं उसी के लिये बाँधूं राखी में आशा के तार।

--और इसी राखी को भैया की कलाई पर बाँधते समय 'छोटी बहन' की छोटी बहन भैया से कहती है :

भैया मेरे राखी के बन्धन को निभाना।
ये दिन ये त्यौहार खुशी का
पावन जैसे नीर नदी का
भाई के उजले माथे पर
बहन लगाये चन्दन टीका

\+ \+ \+

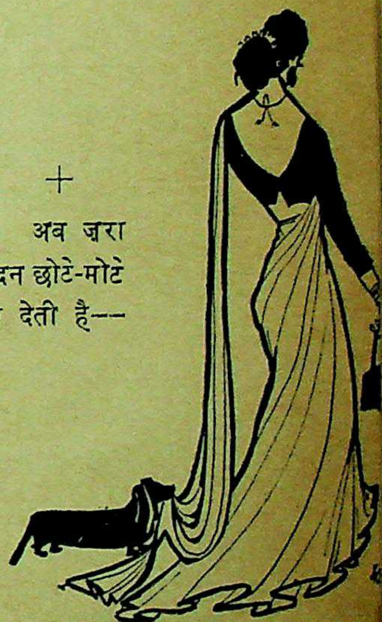
यह तो हुईं पारिवारिक जीवन के सुखद चित्रों की बातें। अब ज़रा तस्वीर का दूसरा रुख भी देखिये। पारिवारिक जीवन में आये दिन छोटे-मोटे लड़ाई-झगड़े लगे ही रहते हैं। इन झगड़ों में कभी स्त्री उलाहना देती है--

ये मर्द बड़े सिर दर्द बड़े
बेदर्द न धोखा खाना।
मीठी-मीठी बतियों में भूल के न आना।।

--और कभी पुरुष क्रोध में चिल्ला उठता है :

जवान हो या बुढ़िया
या नन्हीं - सी गुड़िया
कुछ भी हो औरत ज़हर की है पुड़िया।।
(भाभी : राजेन्द्र कृष्ण)

फ़िल्मी तारिकाओंसे प्रभावित एक अन्य आधुनिका



ऐसे अवसरों पर फ़िल्मी गीतकार बीच-बचाव करने के लिए भी तत्पर नज़र आता है। वह बड़े-बूढ़ों की तरह दम्पति को समझाने लगता है :

एक पाट से चले न चक्की
एक हाथ से बजे न ताली
घर की रौनक है घर वाली।

(बन्दी)

पुरुष के प्यार की एकमात्र अधिकारिणी स्त्री, अपने अधिकार से वंचिता होकर, कागा पंछी से कह उठती है :

कहियो रोये दुखिया रे!
जा रे पंछी, जा रे कागा देश हमारे!
एक ना कहियो माँ रानी से
रोयेगी वह मेरी गुड़ियों को देख के।
एक ना कहियो बाबुल जी से
रोयेंगे मुंह को पगड़ी से लपेट के।।

(गर्म कोट)

× × ×

भारत-विभाजन के फलस्वरूप अनेक अपहृता महिलाओं को भी जब मुक्ति दिला कर भारत लाया गया तो उनके परिवारों ने उन्हें अपनाने से इनकार कर दिया। ऐसी अपहृता, परित्यक्ता और पीड़िता नारी के लिए फ़िल्मी गीतकार से अधिक सहानुभूति अन्य कोई व्यक्ति दर्शा नहीं सका है। 'पतिता' और 'कलंकिनी' कह कर पददलित की गयी इसी नारी की कथा 'छलिया' के छलिया ने हमको सुनाई है :

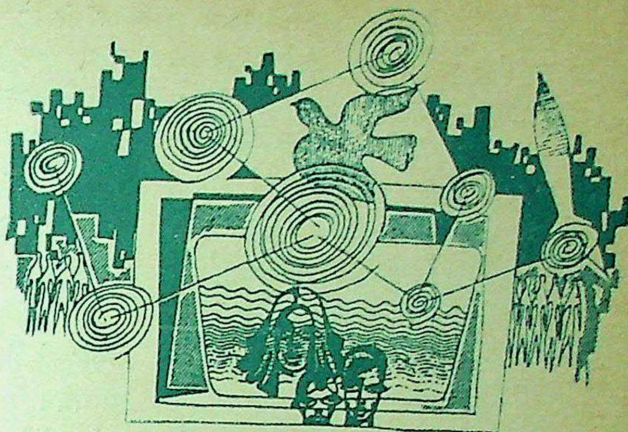
गली-गली सीता रोये आज मेरे देश में।
सीता देखी राम देखा आज नये भेष में।।

० ० ०

बहन जिस भाई की है वो भी ख़फ़ा हो गया
माँ ये किसी लाल की है वो भी जुदा हो गया
जनक सुता छोड़ दें तो कहाँ जाये जानकी
माँ इसे पहचान के भी अब नहीं पहचानती

० ० ०

यह है भारतीय परिवार की एक संक्षिप्त-सी झाँकी जिसे अनेक प्रकार से, अनेक रूपों में, हमारी फ़िल्मों में अंकित किया गया है। • • •



जब किसी की कुण्डली में राहु-केतु का भय नहीं रहेगा, जब चन्द्रमा और मंगल किसी के लिए शुभ और अशुभ नहीं होंगे, और जब प्रगल्भ प्रेमी अपनी प्रिया के मुख की उपमा सोलह कलाओं वाले चन्द्रमा से नहीं देगा और रेडियो-मैरिज कृत्रिम जन्म की भूमिका होगी ......उस युग के परिवार की झाँकी ।

पितामह की डायरी

ईस्वी सन २०५०। मेरे देश के राष्ट्रीय कैलेण्डर में लाल-लाल अक्षरों में अंकित है...शकाब्द १९७२। पर विक्रमाब्द अब भी प्रचलित है....३००७।

इस कालपट में कितने परिवर्तन छिपे हैं! कभी टुंड्रा प्रदेशी कुत्तों की स्लेज पर दौड़ता था पर अब अणुशक्ति से चालित पनडुब्बियाँ हिमपिंडीभूत ध्रुव-प्रदेशों के सागरों में ऐसें संतरण करने लगी हैं जैसे मेरे शैशव में, अब से कोई एक शतक पूर्व, नालियों में बरसाती पानी भर जाने पर मेरी बनाई काग़ज़ की नावें तिरा करती थीं। पृथ्वी सचमुच गोष्पद हो गई। मनुष्य की विराट कल्पना समुद्र मेखला धारण करने वाली, पर्वत स्तनों से मंडित, वसुधा नाम के अनुरूप समस्त सम्पन्नताओं से युक्त धरा सुन्दरी के सौन्दर्य से भी विराट

भविष्य का वातायन

सौन्दर्य की कामनाओं से आपूरित है आज। अब तो वह ब्रह्माण्ड के उस सौन्दर्य के साक्षात्कार में समर्थ है जो नीलाकाश के झीने आवरण में लिपटा तरुणी के उरोजों से भी अधिक आकर्षक है, जो कभी 'योगिनां ध्यान गम्यम्' था।

अपने युवा काल में जब मैंने गैगरीन और शैपर्ड की ब्रह्माण्ड यात्रा का विवरण समाचार-पत्रों में पढ़ा था, तब यह कल्पना भी नहीं की थी कि एक दिन मैं स्वयं उस रस का साक्षात भोक्ता बन सकूँगा।

धरती से उड़-उड़ कर रॉकेट यान आते हैं। स्पेसशिप में बने अड्डों से आगे की यात्रा के लिए ईंधन लेते हैं। और फिर शून्य को विदीर्ण करते हुए धरती के आकर्षण की सीमाओं को लाँघ जाते हैं।

युगान्तर!

नवग्रहों की पूजा करने वाले मेरे अपने देश में अब किसी की कुंडली में राहु-केतु का भय नहीं रहता। चन्द्रमा-मंगल किसी के लिए शुभ-अशुभ नहीं होते। अब प्रगल्भ प्रेमी अपनी प्रियाओं के सुन्दर मुख की उपमा सोलह कलाओं वाले चाँद से नहीं देते।

इन्हीं गतिमय परिवर्तनों में मनुष्य कहाँ से कहाँ पहुँच गया! अकेलेपन में सुरक्षा न पाकर उसने समर्थ परिवारों-कुलों को स्वीकार किया था। पति-पत्नी के युग्मों से विराट से विराटतर होते हुए ये परिवार पिता, पितामह, प्रपितामह वाले हुए। पुत्र-पुत्रियाँ, दास-दासियाँ, गोधन और भूधन सभी उनके अंग बने। जब तक भूधन न था ये परिवार और कुल अस्थिर ही रहे। भूधन से युक्त होकर नदी के प्रवाह ने अन्तः प्रवहमान सागर का रूप ले लिया। परिवार संश्लिष्ट इकाई हो गया। मेरे इस युग में तो आज वह एक ही अन्तर्हित जल-कोष से यत्र-तत्र फूटे अनन्त जलस्रोतों की तरह दिशा-विदिशाओं में फैल उठा है। अब धरती उसे बाँध नहीं पा रही है। गोधन, भूधन, धन की संज्ञाओं से परे चले गये हैं। किसी-किसी क्षण लगता है कि विकास की यह चरम सीमा घूम-फिर कर आदिकालीन परिवार की देहरी पर ही तो नहीं जा पहुँची है कहीं? सच ही, लगता है कि उचक कर उस आदि अतीत के वातायन से झाँकूँ तो आदिम स्त्री-पुरुष के ही दर्शन होंगे....पुरुष की खोज में स्त्री, स्त्री की खोज में पुरुष। मातृसत्ताक समाज।

तीसरी पीढ़ी : हैमलेट का एक पत्र :

प्रिय चन्द्र! चन्द्रलोक से हैमलेट यह पत्र तुम्हें लिख रहा है। नाम से शायद तुम न पहचानो। पर लेख से तो पहचान सकते हो। शायद नहीं ही पहचान पाए। बुद्धू हो! बुद्धू न होते तो अपना चन्द्र नाम ही क्यों रखते! क्या सौन्दर्य देखा बावले तुमने इस नाम में? मैं चाहता हूँ कि तुम भी एक बार मरुस्थल-से ठंढे, ऊबड़-खाबड़ और अभी तक वीरान इस लोक की सैर कर जाते। लो, तुम झुंझला रहे हो! झुंझलाओ। संस्कार तुम्हारे मेरे दादा के युग के-से ही जो हैं, जिनकी आयु आज पूरे एक सौ दस वर्ष की है। तुम, लगता है, कुछ और भड़के! जानना चाहते हो कि यह हैमलेट आखिर है कौन? तो सुनो, मैं हूँ तुम्हारा केशव। जानते हो, यह हैमलेट नाम मुझे किसने दिया? तुम्हारी भाभी ने। हाँ, तुम्हारी भाभी ही।

तब मैंने शादी कर ली है। बड़े मजेदार ढंग से शादी हुई। तुम्हारी भाभी मेरी है। मेरी से मेरा मतलब है कि उसका नाम मेरी है। इङ्गलैण्ड की एक रानी भी तो मेरी हुई है न! और सुनो वह भी है इङ्गलैण्ड की ही पर रानी कहीं की न होकर मेरे दिल की है। मैंने यहाँ चन्द्रलोक में एक टेलीविज़न प्रोग्राम में उसे देखा था। तुम तो पढ़े-लिखे आदमी हो। कादम्बरी को स्वप्न में प्रिय-दर्शन से ही प्रेम हो गया था। मुझे अगर टेलीविज़न पर देख कर हुआ तो क्या ताज्जुब! बस मैंने तभी उससे रेडियो टेलीफ़ोन से बात की। मज़े की बात तो सुनो। उसने कहा, "तुम्हारी आवाज़ बेहद प्यारी है। इतनी खूबसूरत आवाज़ वाला खुद भी खूबसूरत ही होगा। मुझे तुम्हारा शादी का प्रस्ताव स्वीकार है। अगर देखने-भालने में कहीं कोई कमी भी हुई तो मैं सब ठीक कर लूँगी। मेरे चचेरे भाई बहुत बड़े सर्जन हैं। प्लैस्टिक सर्जरी में उनका मुकाबला नहीं। मैं खुद इसका नमूना हूँ। मेरी उम्र पूरी सत्तर साल है। पर तुम्हीं बताओ, क्या मैं तुम्हें पच्चीस से ज्यादा लगी?"

और सुनो प्यारे चन्द्र! हमारी रेडियो-मैरिज हो गई है। दादा से अनुमति लेकर ही की है। ज्यादा खुश तो नज़र नहीं आये। बीसवीं सदी के संस्कार जो प्रबल हैं। फिर भी यह कह कर आज्ञा दे दी कि तुम जो कर रहे हो अपने युग के अनुरूप कर रहे हो। तुम्हारे पिता होते तो आपत्ति नहीं करते।

तुम जानते ही हो मून, (मेरा मतलब चन्द्र से है) कि मेरी माताजी और पिताजी का स्वर्गवास एक रॉकेट दुर्घटना में कोई बीस वर्ष पूर्व हो चुका है। देखो, यह भाषा भी कितनी भ्रामक है! सारा ब्रह्माण्ड घूम चुका हूँ। कहीं स्वर्ग-वर्ग जैसी कोई चीज नहीं। फिर भी लिखा स्वर्गवास! अपने पूज्य पितामह की सिखाई भाषा के संस्कार जो नहीं छोड़ पाया।

लो, तुम्हारी भाभी की बात से किस बात पर चला आया। उसके इससे पूर्व तीन विवाह हो चुके हैं। दो पूर्व-पति अब भी जीवित हैं—एक जर्मन और दूसरा आस्ट्रियन। पर तलाक तीसरे से भी उसके जीवनकाल में ही हो गया था। वह कैनेडियन था। तुम जानते ही हो कि इधर यूरोप में पोप के विरोध के बावजूद भी कृत्रिम गर्भाधान पर जोर रहा है। तुम्हारी भाभी, मतलब कि मेरी मेरी, इसी बात पर भड़क गई। और यही उसके दो तलाकों का कारण है। उसका एक और भाई बायोलॉजिस्ट है। उसने



चन्द्रमार्ग पर उड़ते हुए एक गाँव का दृश्य : कलाकार की कल्पना में

चित्र : भाऊ समर्थ

कृत्रिम गर्भाधान से भी अद्भुत आविष्कार किया है। फलतः माता प्रजनन की पीड़ा से ही बच जाती है। उसने तो अनेक शिशुओं को कृत्रिम जन्म दिया है। माता के मंगल-लोक और पिता के चन्द्रलोक में होने पर भी संतान भूलोक में पैदा हो सकती है। तुम्हारी भाभी इसी सम्प्रदाय की हैं। यही कारण है कि वे तीन-तीन बच्चों की माता होने पर भी तुम्हारी पंच कन्याओं की तरह आज तक कन्या ही बनी हैं। मुझे कृत्रिम जन्म की बात बहुत पसन्द आयी। मगर अभी तारीख के मामले में दुविधा में हूँ। तुम्हारी भाभी को इस सिलसिले में चार-चार बार तारीख देकर कैंसिल कर चुका हूँ। बस इसी से उन्होंने मेरा नाम हैमलेट रख दिया है। कहती हैं कि तुम कभी किसी बात में जल्दी से निर्णय नहीं ले पाओगे। मैंने कहा कि, देखो शादी का निर्णय कैसा झट से किया ; तो बोलीं, "वह तो मेरे चिर यौवन और रूप की विजय है !"

पर सबसे मजेदार बात यह है कि शादी को हुए पाँच वर्ष बीत चुके हैं, पर अभी तक तुम्हारी भाभी से साक्षात् मुलाकात नहीं हुई। हाँ, टेलीविज़न पर उन्हें अक्सर देख लेता हूँ। अपना रेडियो फोटो भी उनके पास भेज चुका हूँ। रेडियोफ़ोन पर बात तो अक्सर करता हूँ। तुम्हारी भाभी सचमुच ही आदर्श भार्या हैं। मैं कितना सुखी और भाग्यशाली हूँ प्यारे, उसे पाकर !

प्रपितामह की डायरी :

आजकल केशव के आग्रह पर चन्द्रलोक आया हुआ हूँ। प्राचीन वैदिक ऋषि की वाणी थी, "वसुधैव कुटुम्बकम्"। जहाँ इस उक्ति में विश्व बन्धुत्व का अमृत संकल्प निहित है, वहाँ जीवन और उसके सम्बन्धों के विस्तार की कामना भी। वैदिक युग का आर्य संघ इसी भावना से प्रेरित होकर नवीन भूमि खंडों की विजय में सतत अग्रसर रहा हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। ऋषि का वह संकल्प सहस्रों युग बाद आज अनायास ही पूर्ण हो गया है। मेरे पौत्र केशव ने आंग्ल महिला से रेडियो विवाह किया है। उधर मेरी पौत्री कुन्तला ने एक रूसी भद्र पुरुष को अपना पति वरण किया है। मेरे सबसे छोटे पौत्र की पत्नी ब्रह्मदेशी है और मँझले की भार्या चीनी। मेरे यौवन में ऐसी बातें क्वचिद् ही थीं। हमारा समाज ऐसे सम्बन्धों के लिए बुद्धितया कुछ-कुछ तैयार होकर भी मन से तैयार न था। तब ये विवाह विषम लगते थे, और सच तो यह है कि पारिवारिक जीवन में इनसे विषमता उत्पन्न हो ही जाती थी। पर अब तो वैसी कोई समस्या ही नहीं। सामूहिक हित में विश्वास रखते हुए भी व्यक्ति के विकास को निर्बन्ध रखने की भावना ने समाज के मूलाधार परिवार के स्वरूप को ही बदल दिया है। निर्बन्धता ही इन परिवारों को बाँधे हुए है। यही इनके सुख का मंत्र है।

सुख ? वैसे प्रश्न मेरे मन में आज भी उठता है कि सुख क्या है ? सुख की मूल भावना सदैव एक-सी रही है, पर इसकी परिभाषाएँ और अधिकरण बदलते रहे हैं। सुख की एक बहुत पुरानी परिभाषा वैसे आज भी नयी ही बनी है। वैदिक ऋषि ने कहा था, "भूमा वै सुखं, नात्यल्पे'। अक्षय प्रचुरता ही सुख की साधिका है। इस अन्तरिक्ष युग ने इस परिभाषा के सत्य को सबसे अधिक जाना है। आज जीवन की प्रत्येक पूर्ति की प्रचुरता है।

प्रभाव जैसे सर्वथा मिल गये हैं। 'मधु क्षरन्ति सिन्धवः'। शहद से भरी नदियों की कल्पना इसी ओर तो इंगित करती है। रोग-शोक-मृत्यु सभी पर विजय-सी पाता जा रहा है मानव। सौ-सौ शरदों को देखते-भोगते जीने की कामना जाने मेरे जैसे कितने जीवनों में चरितार्थ हो रही है। मेरे देह-यंत्र के निरर्थक पुर्जों को कितनी ही बार बदला जा चुका है! मैं आज भी साठ वर्ष की आयु के पूर्ण स्वस्थ व्यक्ति के समान उधम कर सकता हूँ। मेरा यह केशव तो निरा पगला है। कहता है ग्रैण्डदा, प्लैस्टिक सर्जरी करा लो तो तुम्हारा शरीर अस्सी वर्ष छोटा हो जायगा। गीता का सत्य कितने अद्‌भुत ढंग से इस विज्ञानी युग में फलित हो रहा है! जैसे जीर्ण वस्त्र का त्याग कर कोई नूतन परिधान करता है वैसे ही यह आत्मा जीर्ण देह को छोड़ कर नूतन में अधिष्ठित होता है। देह को जीर्ण ही न होने दिया जाए, देह-यंत्र को शिथिल ही न पड़ने दिया जाए, तो यह शरीर की आत्मा पर विजय होगी। जीवात्मा परमात्मा तुल्य हो उठेगा; मनुष्य योग की चरम कोटि पर अधिष्ठित हो सकेगा। 'योगः कर्मसु कौशलं'। मेरे पौत्र के इस युग ने कैसा अद्‌भुत कर्मयोग साध लिया है। अनदेखी स्त्री से विवाह किया। आज तक साक्षात्कार से वंचित। फिर भी प्रसन्न। फिर भी संतानवान। मैं कितना सौभाग्यशाली हूँ! मेरा परिवार बढ़ रहा है। मैं पितामह से प्रपितामह हो गया हूँ। संतान को यंत्र-नियोग द्वारा जन्म देने का यह कितना सुन्दर प्रकारान्तर है! महाभारत के विचित्रवीर्य की सुन्दर भार्याएँ इस विधा से संतानवती होकर कितनी कृत-कृत्य होतीं!

हैमलेट का दूसरा पत्र :

माई डियर मेहताब! मतलब कि प्यारे चन्द्र, कल तो बेहद मज़ा आया। तुम तो जानते ही हो कि मेरा परिवार कितना विराट रूप है! पर इधर कुछ बाधाएँ आ रही थीं कि हम सब एक साथ मिल ही नहीं पाते थे। भाषा की भी कुछ ऐसी कठिनाई थी कि मिलने पर सब एक-दूसरे से बातें भी नहीं कर पाते। पर कल तो हमने इन सब दिक्कतों पर जैसे विजय ही पा ली। पितामह प्रपौत्र के लिए विकल थे। तुम्हारी भाभी, अपनी ब्रह्मदेशी और चीनवर्ती देवरानियों से मिलने को उतावली थीं। मैंने तुम्हें शायद बताया नहीं कि मेरे ये दोनों भाई अपनी पत्नियों के देश में ही बस गये हैं। साथ ही तुम्हारी भाभी रूस में रहने वाली ननद से भी बात करना चाहती थीं। मैं खुद इस संयोग को जुटाने में बेचैन था। मेरे छोटे भाई ने कल इस असम्भव को सम्भव कर ही दिया। उसने वर्षों के सतत प्रयत्नों से एक ऐसे यंत्र का आविष्कार कर लिया है जो भाषाओं की समस्याओं का बड़ा ही अनूठा निदान है। उस यंत्र के द्वारा किसी भी एक भाषा का अन्य अनेक भाषाओं में युगपत् अनुवाद होता चलता है और जिस भाषा के अनुवाद की अपेक्षा हो उसी को सुना भी जा सकता है। उसने टेलीविज़न से इस प्रक्रिया का कुछ ऐसा सम्बन्ध बैठाया कि इंग्लैण्ड, रूस, चीन, बर्मा और इन सबसे दूर चन्द्रलोक में होने पर भी हम सब एक-दूसरे को न केवल देखते रहे बल्कि परस्पर बातें भी करते रहे। तुम्हें जान कर अचरज होगा कि मेरा बेटा फिलिप एकदम अपने परदादा पर पड़ा है। दादा इस साम्य से

बेहद प्रसन्न हैं। मेरी रूस वाली बहन का बच्चा तो बड़ा ही प्यारा है। अपनी चीनी-बर्मी देवरानियों को देखकर तुम्हारी भाभी खूब हँसी। हँसते-हँसते उनके दाँतों का जोड़ा ही निकल पड़ा। पर प्यारे, बड़ा ही खूबसूरत सेट है! जब मेरे ये दाँत बेकार हो जायेंगे तो मैं तुम्हारी भाभी जैसा ही सेट लगवा लूँगा। तुम्हारी भाभी तो केशों में भी नायलॉन हेयर का प्रयोग करती हैं। टेलीविज़न पर मन करता था कि उनके उन प्यारे बालों को चूम लूं। सचमुच ही मेरी का यह अद्वितीय सौन्दर्य हमारे युग की श्रेष्ठतम उपलब्धि है। मैं स्वयं अपने कुछ अंगों को नया करवा डालना चाहता हूँ।

पुरातन पुरुष की डायरी :

मैं पुनः भारत लौट आया हूँ। चन्द्रलोक का जलवायु मुझे ज़्यादा अनुकूल नहीं पड़ा। फिर चन्द्रलोक में भारहीनता की स्थिति पैदा हो जाने से उसके निदान के लिए देह का जो सूक्ष्म यंत्रीकरण करना पड़ता है, वह भी मुझे अधिक सुविधाजनक नहीं लगता। अब तो मैं कुछ-कुछ दिन अपनी बहुओं के पास बर्मा और चीन में जाकर रह आना चाहता हूँ। रूस वाली बेटी का भी बड़ा आग्रह है कि उसके पास आकर रहूँ। उसने अपने बच्चों के जो चित्र भेजे हैं, उनसे लगता है कि वे बड़े ही सुन्दर हैं। इधर केशव की पत्नी भी हठ कर रही है कि मैं इङ्गलैण्ड आऊँ।

असल में, सब अपने-अपने कामों में व्यस्त हैं। निठल्ला हूँ तो बस मैं ही। इसलिए दशों दिशाओं में फैले अपने इस परिवार की निकटता का अनुभव करने के लिए मुझे ही परिव्राजक बनना पड़ेगा। जब मैं युवा था तो आणविक युद्धों का कितना बड़ा भय था! एक बार तो लगता था कि बस प्रलय होकर ही रहेगा। पर मनुष्य की संहार बुद्धि पर उसकी शुभ बुद्धि ने विजय पायी। विश्व सरकार की नींव पड़ी। देशज राष्ट्रों से वृहत्तर विश्वराष्ट्र ने जन्म लिया। पत्नी, पुत्र, माता, पिता, बंधु-बांधव से युक्त व्यक्ति के परिवार को एक नई आधार भूमि मिली। परिवारों के स्तर पर आर्य-अनार्य के मिश्रण से जो प्रयोग कभी वशिष्ठ, विश्वामित्र के युग में हुए थे, वैसे ही प्रयोग आज हो रहे हैं, जिनके शुभ फलस्वरूप राष्ट्रों का संमिश्रण तेज़ी से हो रहा है। ये संमिश्रित परिवार किसी न किसी विश्वभाषा को जन्म देंगे ही और तब मुझे पूरा विश्वास है कि विश्वराष्ट्र ही विश्व-परिवार का रूप ले लेगा।

"वसुधैव कुटुम्बकम्" की कामना आज मेरे अपने ही परिवार में कितनी सुन्दरता से फलित होरही है! किसी भी युग का सुखी परिवार वही है जो इस मंत्र के रहस्य को जानता है। मेरे युग ने इस मंत्र को जान लिया है। मेरे परिवार में वह चरितार्थ हो रहा है। मैं सचमुच ही कितना पुण्यशाली, कितना सुखी और सार्थक जीवन वाला हूँ, जो मेरा परिवार ऐसा है!

○ ○ ○

इस मनुष्य नाम के जीव का स्वभाव भी कितना विचित्र है! जब वह सीख देता है, तो पूरे घड़े भर, लेकिन लेता रत्ती-भर भी नहीं।

—संकलन : सत्यदेव नारायण सिन्हा

काश ! भीतर की वस्तुएं

बोल पातीं....

...तो वे जिनकी मुक्तकंठ
से प्रशंसा करतीं,
वे होते
उनके आकर्षक

डिब्बे

आधुनिक मार्केटिंग की नयी धारणा के अनुसार पैकेजिंग ने विशेष महत्व प्राप्त कर लिया है। डिब्बे बाजार में प्रकट करते हैं कि भीतर की चीजें कितनी अच्छी हैं ; प्रबल प्रतियोगिता के कारण उन्हें ग्राहकों का ध्यान आकृष्ट करना पड़ता है और विशेष प्रयत्नों के बिना ही चीजों को बेचना भी पड़ता है।

ओरिएन्ट के ड्यूप्लेक्स बोर्ड आपके लिए सफल सेल्समैन के काम करेंगे, क्योंकि उनको अनुसन्धान प्रयोगशालाओं और उत्पादन के प्रत्येक स्तर पर विशेषज्ञों की तकनीकी देखभाल की अतिरिक्त सुविधाएं प्राप्त हैं, जिससे आपकी वस्तुओं के लिए उपयुक्त सामग्री से प्रस्तुत डिब्बे मिल सकते हैं।

OPM—1/60

ओ रि एन्ट पे प र मि ल्स लि मि टे ड

ब्र ज रा ज न ग र उ ड़ी सा

SPIN WITH SPINRITE

THE LATEST PERFECTED BOBBIN

Manufactured in

INDIA FOR THE FIRST TIME BY SHALIMAR

IN

Collaboration with Mcgregor & Balfour Ltd., Dundee.

IN

SERVICE OF INDIAN JUTE MILLS

with a Glorious Record of

PRODUCTS



Shalply Bobbin—Shalmet Metal Rimmed Bobbin.
Shalhalley Staves—Shalimar Shuttles.
Shalhalley Longlast Cardpins Shalfibe Bobbins.

SHALIMAR WOOD PRODUCTS Private LTD.

Managing Agents :

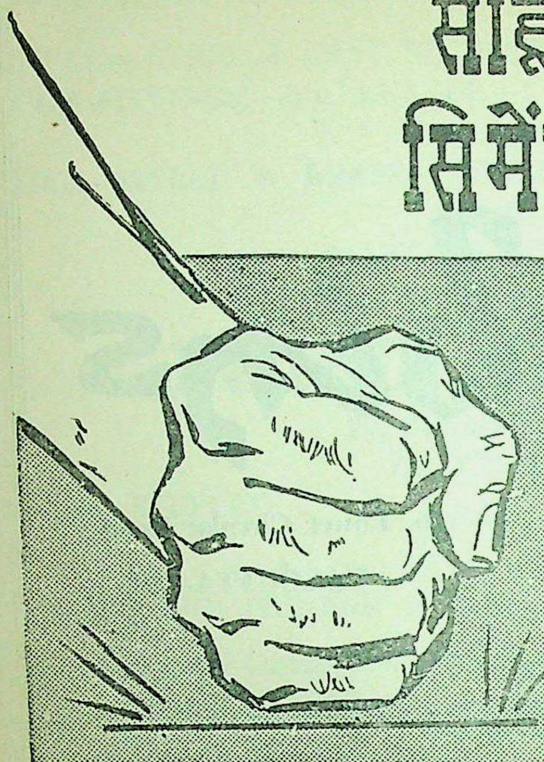
SATYANARAYAN KHAITAN PRIVATE LTD.
138, CANNING STREET, CALCUTTA-1.

Factory :—**1, SWARANAMOYEE ROAD, SHALIMAR.**

Phone Office :
22-7244-7245.

Factory :
Sibpore-3263.

साहू सिमेंट



निश्चय ही सब से पहली पसन्द है!

साहू सिमेंट की विशेषताएँ परिमित नियत्रणों और लगातार परीक्षाओं से प्राप्त विशेष ज्ञान और अनुभवों का फल है।



अशोका
रोहतास इण्डस्ट्रीज लि०
डालमियानगर, बिहार



साहुल
अशोका सिमेंट लि०
डालमियानगर, बिहार



त्रिशूल
दि जयपुर उद्योग लिमिटेड
सवाई माधोपुर, राजस्थान



रोहतास
सोन वैली पोर्टलैण्ड
सिमेंट कं० लि०
जापला, बिहार

विक्रय प्रतिनिधि :
अशोका मार्केटिंग लिमिटेड
कलकत्ता, पटना, नई दिल्ली, लखनऊ,
चण्डीगढ़, जयपुर, वाराणसी और भोपाल



निर्माण कार्य में सिमेंट के
व्यवहार के लिये
साहू सिमेंट सर्विस
से मुफ्त सलाह लीजिये

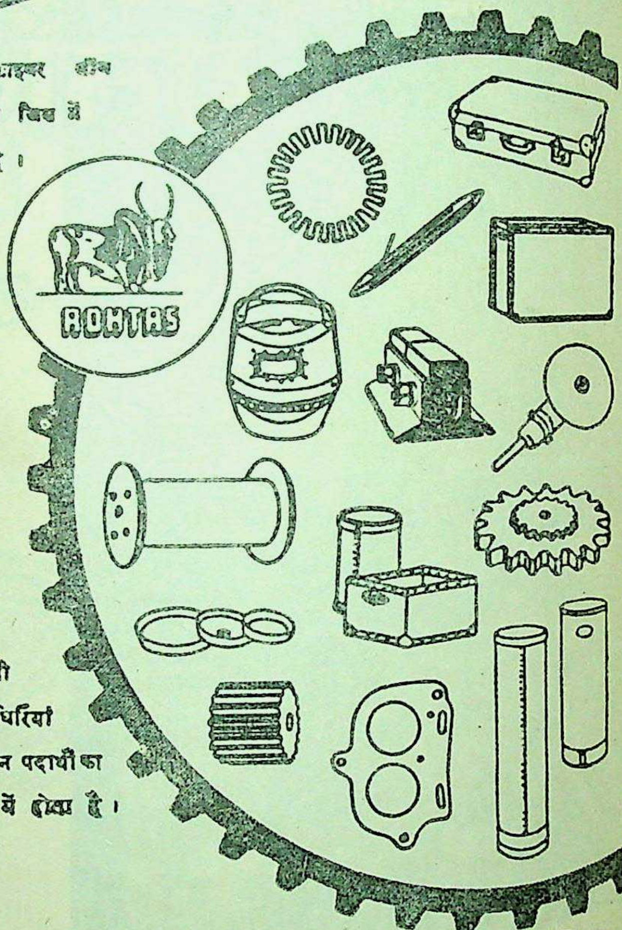
सर्वत्र फैले स्टाकिस्टों से उपलब्ध

वल्कैनाइज़्ड फाइबर

ऐसा द्रव्य जो बिजली, मशीनों और उद्योगों के क्षेत्रों में लाखों प्रकार से उपयोगी है।

वल्कैनाइज़्ड फाइबर सींग जैसा ठोस और दृढ़ पदार्थ है जिस में अनेक प्रकार के गुणों का समावेश है। इस्पात जैसा दृढ़ और एल्युमिनियम जैसा हल्का, छीजने का नाम नहीं लेता, इसकी प्रत्येक तह चमड़े की तरह फिर भी ऐसा कि इसे आवश्यकतानुसार तरह तरह के रूपों में ढालिये, काटिए, तराशिए।

इसका विशेष उपयोग पदार्थों के ढका कवच के रूप में, न छीजने वाली पुश या पुट्ठे के रूप में, सूटकेस, सीढ़ों की काठी, लाइनिंग और सुरक्षा का सामान बनाने में होता है। इसी तरह इससे टोपियां, गियर, चर्खियां, घिरियां शटल, स्लाइबर कैन आदि बनाइये जिन पदार्थों का उपयोग जूट और कपड़े के कारखानों में होता है।



रोहतास इंडस्ट्रीज़ लिमिटेड

डालमियानगर, बिहार

भारत में वल्कैनाइज्ड फाइबर के एकमात्र निर्माता

साहू जैन इंडस्ट्रीज़

सफ़ेद बाल के लिए प्रकृति को दोष मत दीजिये



"महाशय, जब प्रकृतिने ही मेरे बालोंको सफेद कर दिया है, तब किया ही क्या जा सकता है" हम लोग पुरुषोंको ऐसी ही बातों द्वारा विषाद की भावना व्यक्त करते हुए देखते और सुनते हैं। पर जो लोग सफेद बाल के लिए प्रकृति को दोष देते हैं, उन्हें यह जानना चाहिए कि बाल सफेद क्यों हो जाते हैं। अनुसंधान से यह पता चला है कि ९० प्रतिशत मामलों में बाल समय से पहले इस कारण सफेद हो जाते हैं कि उनकी उचित देख-भाल नहीं की जाती। इसके अलावा अस्वास्थ्यकर वातावरण तथा निम्न कोटि के तेलों का अंधाधुंध प्रयोग भी बाल सफेद होने के कारण हैं।

"लोमा" में, जो अहमदाबाद में सर्वाधिक आधुनिक कारखाने में वैज्ञानिक पद्धति से तैयार किया जाता है, बाल की सफेदी को खत्म कर देने के सभी तत्व मौजूद हैं। "लोमा" के लिए क्वालिटी सम्बंधी नियमों का पूरा-पूरा पालन किया जाता है। आज से ही "लोमा" का उपयोग करना प्रारंभ कर दें और आप को शीघ्र यह मालूम हो जायगा कि देश तथा विदेश में लाखों लोगों का "लोमा" में क्यों विश्वास उत्पन्न हो गया है। स्मरण रखिये

'लोमा' का अर्थ क्वालिटी है—वह क्वालिटी जिसकी आप आशा रखते हैं।

आकर्षक व्यक्तित्व के लिए 

इस्तेमाल कीजिये

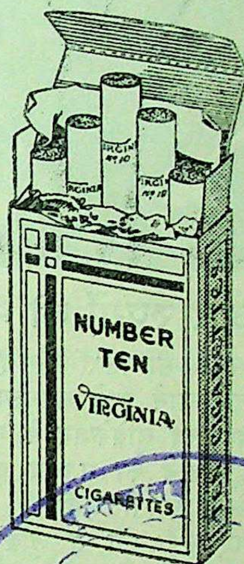


एकमात्र एजेंट और निर्यातक: एम. एम. खंभातवाला अहमदाबाद-१ (भारत)

एजेंट्स: सी. नरोत्तम एंड कम्पनी, बम्बई-२

शाह बवीसी एण्ड कं०; १२९ राधाबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता

NUMBER
TEN
VIRGINIA



A tradition in QUALITY

NTN—113

कलपुर्जों और रुपयों को मत फेंकिए...

हमलोग जानते हैं, यह असम्भव-सा प्रतीत होता है, किन्तु यह है पूर्णतः सत्य। बहुत से कठिनाई से बदले जाने वाले बहुमूल्य कलपुर्जों को इसलिये फेंक दिया जाता है क्योंकि वे ग़लत लुब्रिकेशन के कारण बर्बाद हो जाते हैं।

मशीनरी के बन्द हो जाने का मतलब होता है उत्पादन, समय एवं रुपये की क्षति। इसलिये कीमती मशीनरी के संरक्षण और कार्यक्षमता को बनाये रखने के लिए सही ढंग से लुब्रिकेशन अत्यन्त आवश्यक है। कम खर्च पर अधिक उत्पादन के लिए सुनियोजित लुब्रिकेशन जरूरी है।

आपके चाहते ही हम आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं—अपने कालटेक्स लुब्रिकेशन इन्जीनियर को बुलाइये—और अपने यन्त्र के लिए सही लुब्रिकेशन कार्यक्रम तैयार करा लीजिये। आपके कलपुर्जों और रुपये बचाने में हमें सहयोग करने का मौका दीजिये।

कम्पनी के कार्याधिकारी अपने समीप के कालटेक्स आफिस को अपने कार्यालय के लेटरहेड पर पत्र लिख कर इस पुस्तिका की एक प्रति मुफ्त प्राप्त कर सकते हैं।





PLANNED LUBRICATION—A VITAL FACTOR IN COST CONTROL

*

*

*

CONTROL CORROSION
by using
POLYTHENE PIPE FITTINGS

NOW MADE IN INDIA BY:
ATLAS INDUSTRIES CO. 13/C, RAJA RAJKISSEN ST. CAL-6, PHONE: 55-1551

*

*

*

भारतीय ज्ञानपीठ के नये प्रकाशन

हिन्दी नवलेखन ४)
रामस्वरूप चतुर्वेदी
हिन्दी में अपने विषय की सर्वथा पहली पुस्तक।

सूने अँगन रस बरसै ३)
लक्ष्मीनारायण लाल
लेखक की चुनी हुई कहानियों का संग्रह जो आपको रस-विभोर कर देगा।

रूपाम्बरा १२)
सम्पादक : अज्ञेय
पिछले सौ वर्षों में प्रसूत हिन्दी के प्रकृति-काव्य का प्रतिनिधि संकलन।

तीसरा सप्तक ५)
सम्पादक : अज्ञेय
तार सप्तक और दूसरा सप्तक की परम्परा में अज्ञेय द्वारा सम्पादित नया कविता संकलन।

कनुप्रिया ३)
धर्मवीर भारती
अत्यन्त मधुर और भावपूर्ण काव्य-रूपक। भारती की प्रतिभा का नवीनतम चमत्कार।

सात गीत वर्ष ३)
धर्मवीर भारती
नवीन कविताओं का दमकता हुआ, महकता हुआ संकलन।

काग़ज़ की किश्तियाँ २।।)
लक्ष्मीचन्द्र जैन
प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य के अनेक पक्षों तथा आधुनिक जीवन की रंग-विरंगी विविधताओं का मोहक शैली में चित्रण।

देशान्तर १२)
धर्मवीर भारती
इक्कीस पाश्चात्य देशों की आधुनिक कविताओं का अनूठा काव्य-संग्रह।

ग्यारह सपनों का देश ४)
सम्पादक : लक्ष्मीचन्द्र जैन
'ज्ञानोदय' में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हिन्दी का बहु-चर्चित सहयोगी उपन्यास।

अरी ओ करुणा प्रभामय ४)
अज्ञेय
१९५६ से १९५८ तक की कविताओं का भव्य संकलन।

दीप जले शंख बजे ३)
कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर
लघुता के अणु में महत्ता के विराट का प्रदर्शन करनेवाले प्रकाश तथा जागरण से पूर्ण पच्चीस संस्मरण।

गुनाहों का देवता ५)
धर्मवीर भारती
मध्यमवर्गीय जीवन की अत्यंत मार्मिक कथा। भारती की लोकप्रिय रचना।

पत्थर का लैम्प-पोस्ट ३)
शरद देवड़ा
लेखक की चुनी हुई बारह गद्य-रचनाएँ, बारह राजस्थानी विरह चित्र और बारह लम्बी कविताएँ।

आवाज़ तेरी है ३)

राजेन्द्र यादव

दुरूहता एवं अस्पष्टता से सर्वथा मुक्त और निर्भ्रान्त सामाजिक चेतना का निर्भीक वक्तव्य ।

ज्ञानगंगा (भाग २) ६)

नारायण प्रसाद जैन

विश्व की अनेक भाषाओं से महत्वपूर्ण सूक्तियों का संग्रह ।

वाणी ४)

सुमित्रा नन्दन पन्त

वाणी में पन्तजी के कवि का व्यक्तित्व अधिक प्रौढ़, परिणत तथा हृदयस्पर्शी होकर निखरा है ।

सौवर्ण २॥)

सुमित्रा नन्दन पन्त

मानव जाति के विगत सांस्कृतिक संचय का, जिसमें विकास अपेक्षित है, प्रतीकात्मक रूप से दिग्दर्शन ।

लेखनी बेला ३)

वीरेन्द्र मिश्र

गीतों का संकलन, जिनमें विभिन्न जीवनानुभूतियाँ और गहरी संवेदनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं ।

शाइरी के नये दौर [भाग १]

शाइरे-इन्क़िलाब 'जोश' मलीहाबादी की आत्म-विभोर कर देनेवाली नज़्में और रुबाइयात, जोश का परिचय एवं उनकी शाइरी पर विवेचन ।

[भाग २]

वर्तमानयुगीन शाइर आनन्दनारायण मुल्ला, रघुपति सहाय फ़िराक़, विश्वेश्वर प्रसाद 'मुनव्वर', गोपीनाथ अम्न, हरीश्चन्द्र अख़्तर, हफ़ीज़ जालंधरी का जीवन-परिचय एवं चुने हुए कलाम ।

[भाग ३]

सागर निज़ामी के सर्वप्रिय कलाम तथा परिचय ।

[भाग ४]

अख़्तर शीरानी, अबुल हमीद अदम तथा अहसान दानिश के कलाम तथा परिचय ।

प्रत्येक भाग का मूल्य तीन रुपये

शाइरी के नये मोड़ [भाग १]

१९४६ से मार्च १९५८ तक की नवीन शाइरी की गतिविधि का अध्ययन ।

पृष्ठ २७२ मूल्य ३.००

[भाग २]

१९३५ से १९५८ तक की शाइरी पर एक नज़र तथा चुने हुए शाइर अर्श मलसियानी, जगन्नाथ आजाद, गोपाल मित्तल, अहमद नदीम कासिमी, अख़्तर अन्सारी, रईस अमरोहवी के फड़कते हुए कलाम तथा जीवन-परिचय ।

सचित्र मूल्य ३.००

बना रहे बनारस

विश्वनाथ मुखर्जी

बनारस के गौरवमय सांस्कृतिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और धार्मिक जीवन की जानकारी देने वाला अधिकारी ग्रन्थ ।

पृष्ठ १८८ मूल्य २.५०

पार उतरि कहँ जइहौ

(यात्रा संस्मरण)

प्रभाकर द्विवेदी

इस पुस्तक का प्रकाशन हिन्दी के यात्रा-साहित्य में एक नये क्षितिज का उद्घाटन है ।

मूल्य ३.००

शतरंज के मोहरे ६)

अमृतलाल नागर

सवा डेढ़ सौ वर्ष पहले की अवध की नवाबी और ईस्ट इंडिया कम्पनी की नीति में उत्पन्न गदर की पृष्ठभूमि पर आधारित ऐतिहासिक उपन्यास।

कालिदास के सुभाषित ५)

भगवतशरण उपाध्याय

भारतीय भाषाओं में महाकवि कालिदास की सूक्तियों की विशेष व्याख्या करने वाली पहली पुस्तक।

कहानी कैसे बनी २॥)

कर्तारसिंह दुग्गल

रेडियो के मँजे हुए रूपक-लेखक श्री दुग्गल के आठ एकांकी नाटकों का संग्रह।

अंगद का पाँव २॥)

श्रीलाल शुक्ल

हिन्दी में शिष्ट और उच्चस्तर के व्यंग्यात्मक निबन्धों के ख्यातिप्राप्त लेखक श्रीलाल शुक्ल के निबन्धों का प्रथम संग्रह।

मुर्ग छाप हीरो २)

केशवचन्द्र वर्मा

हास्यरस की कहानियों एवं लेखों का अनुपम संग्रह।

शह और मात ४)

राजेन्द्र यादव

नये लेखकों में जीवन के सत्य और दर्शन को समझने का सर्वाधिक निष्ठावान प्रयत्न राजेन्द्र यादव ने किया है। यह उनका चौथा उपन्यास है।

काठ की घंटियाँ ७)

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

अज्ञेय द्वारा सम्पादित इस ग्रन्थ में बीस कहानियाँ, इकहत्तर कविताएँ तथा एक लघु उपन्यास संग्रहीत है।

जनम क़ैद २॥)

गिरिजाकुमार माथुर

सफल और अभिनय योग्य सात एकांकियों का अमूल्य संग्रह।

वृन्त और विकास २॥)

शान्तिप्रिय द्विवेदी

वृन्त और विकास की लेखनशैली और विचारधारा पूर्णतः रचनात्मक है। राजनीति, समाज, साहित्य, संस्कृति, जीवन की सभी दिशाओं के छोटे-बड़े कृतियों के प्रयत्नों का इसमें सर्वेक्षण और संयोजन किया गया है।

मीर ६)

रामनाथ सुमन

श्रीवृन्दावन लाल वर्मा के शब्दों में "प्रस्तुत पुस्तक विद्वत्तापूर्ण और साथ ही मनोरंजक, बहुत मनोरंजक भी है। न केवल मीर की मीरता निखर गयी है, वरन् उस युग का समूचा चित्र ही आँखों के सामने आ जाता है।"

सीढ़ियों पर धूप में ५)

रघुवीर सहाय

रघुवीर सहाय आपके जाने-माने लेखक हैं। प्रस्तुत संग्रह में अज्ञेय द्वारा सम्पादित लेखक की प्रतिनिधि कविताएँ, निबन्ध और कहानियाँ संकलित हैं।

ठूँठा आम २)

भगवतशरण उपाध्याय

भावपूर्ण रचनाएँ।

सुन्दर रस १॥)

सूखा सरोवर २)

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के दो नाटक

डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल एक बड़े ही जागरूक नाटककार हैं, जिनके नाट्य-लेखन के पीछे रंगमंच की व्यावहारिक अनुभूति उनकी नाट्यकलागत धर्मिताओं को अदम्य बल देती है, ये दोनों नाटक इस सत्य के सफलतम उदाहरण हैं।

कुछ फीचर कुछ एकांकी ३॥)

भगवतशरण उपाध्याय

जिस अनुभूति, भाव और भाषा की यहाँ एकत्र परिणति हुई है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

भूमिजा १॥)

सर्वदानन्द

दो अंकों के इस नाटक को दो सारगर्भ दृश्यों में प्रस्तुत किया गया है।

अनुक्षण ३)

प्रभाकर माचवे

१९३३ से १९५८ के बीच लिखी हजारों पंक्तियों से यह संकलन तैयार किया गया है।

मानव मूल्य और साहित्य २॥)

धर्मवीर भारती

प्रस्तुत पुस्तक में तीन खण्ड हैं। पहले में मानवीय तत्त्व का विघटन, दूसरे में नयी मर्यादाओं का उदय और तीसरे में विविध सन्दर्भों में नये मूल्यों का दिग्दर्शन प्रस्तुत किया गया है।

सांस्कृतिक निबन्ध ३)

भगवतशरण उपाध्याय

अव्यस्त क्षणों में ये निबन्ध पाठक के व्यापक ज्ञान और मनोरंजन के साधन होंगे।

सागर की लहरों पर ४)

भगवतशरण उपाध्याय

डॉ० उपाध्याय द्वारा विदेश यात्रा का सरस मनोहर वर्णन।

एक परछाईं : दो दायरे ३)

गुलाबदास ब्रोकर

ब्रोकरजी की सुन्दरतम पन्द्रह कहानियों का पहला हिन्दी अनुवाद।

माखनलाल चतुर्वेदी-जीवनी ६)

बच्चा

प्रस्तुत कृति श्री माखनलाल चतुर्वेदी के शैशव व कैशोर काल की जीवनी प्रस्तुत करती है।

आत्मनेपद ४)

'अज्ञेय'

समकालीन साहित्यकार की स्थिति, समस्याओं और सम्भावनाओं पर विशेष रूप से विचार।

राजसी २॥)

देवेशदास आई० सी० एस०

मरुभूमि राजस्थान की पृष्ठभूमि पर ऐतिहासिक उपन्यास।

ग़ालिब ८)

ले० रामनाथ 'सुमन'

'सुमन' जी ने प्रस्तुत ग्रन्थ में इस महाकवि की रहस्य में छुपी ऊँचाइयों को अपनी परख प्रतिभा से पूरी तौर पर अफ़शाँ कर दिया है।

कहानियाँ

गहरे पानी पैठ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
जिन खोजा तिन पाइयाँ	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	२॥)
नये बादल	मोहन राकेश	२॥)
आकाश के तारे धरती के फूल	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	२)
खेल खिलौने	राजेन्द्र यादव	२)
अतीत के कम्पन	आनन्दप्रकाश जैन	३)
काल के पंख	आनन्दप्रकाश जैन	३)
जय दोल	अज्ञेय	३)
नये चित्र	सत्येन्द्र शरत्	३)
मेरे कथागुरु का कहना है	रावी	३)
हरियाणा लोकमंच की कहानियाँ	राजाराम शास्त्री	३)
अपराजिता	भगवतीशरण सिंह	२॥)
कर्मनाशा की हार	डॉ० शिव प्रसाद सिंह	३)

उपन्यास

मुक्तिदूत	वीरेन्द्रकुमार एम० ए०	५)
तीसरा नेत्र	आनन्दप्रकाश जैन	२॥)
रक्तराग	देवेशदास आई० सी० एस०	३)

इतिहास

हिंदी-जैन-साहित्य-परिशीलन (भाग १-२)	नेमिचन्द्र शास्त्री	५)

एकांकी : नाटक

रेडियो नाट्य शिल्प	सिद्धनाथ कुमार	२॥)
तरकश के तीर	श्रीकृष्ण	३)
चेखव के तीन नाटक	राजेन्द्र यादव	४)
बारह एकांकी	विष्णु प्रभाकर	३॥)

संस्मरण

जैन जागरण के अग्रदूत	अयोध्याप्रसाद गोयलीय	५)

राजनीति

एशिया की राजनीति	परदेशी	६)

ललित निबन्ध : आलोचनाएँ

जिन्दगी मुस्करायी	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४)
गरीब और अमीर पुस्तकें	रामनारायण उपाध्याय	१)
हिन्दू विवाह में कन्यादान का स्थान	सम्पूर्णानन्द	१)

दर्शन

भारतीय विचारधारा	मधुकर एम० ए०	२)

ललित-निबन्ध, आलोचनादि

बाजे पायलिया के घुंघरू	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	४)
माटी हो गयी सोना	कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर	२)
शरत् के नारी पात्र	रामस्वरूप चतुर्वेदी	४॥)
क्या मैं अन्दर आ सकता हूँ ?	रावी	२॥)
संस्कृत साहित्य में आयुर्वेद	अत्रिदेव विद्यालंकार	३)
वृन्त और विकास	शान्तिप्रिय द्विवेदी	२॥)

ज्योतिष

भारतीय ज्योतिष	नेमिचन्द्र जैन ज्योतिषाचार्य	६)

आध्यात्मिक

वैदिक साहित्य	पं० रामगोविन्द त्रिवेदी	६)

भाषा विज्ञान

संस्कृत का भाषाशास्त्रीय अध्ययन	भोलाशंकर व्यास	५)

पत्र-संकलन

द्विवेदी पत्रावली	बैजनाथ सिंह विनोद	२॥)

संगीत, प्रसाधन

ध्वनि और संगीत	ललित किशोर सिंह	४)
प्राचीन भारत के प्रसाधन	अत्रिदेव विद्यालंकार	३॥)

अन्य सुरुचिपूर्ण प्रकाशन

कविताएँ

मेरे बापू	हुकुमचन्द्र बुखारिया	२॥)
पंच प्रदीप	शान्ति एम० ए०	२)

सूक्तियाँ

ज्ञानगंगा (भाग १)	नारायणप्रसाद जैन	६)
शरत की सूक्तियाँ	रामप्रकाश जैन	२)



